

श्रीमद्भगवद्गीता नवलभाष्य

श्रीआनन्दगिरि श्रीशाङ्करभाष्य व श्रीधरस्वामिकृत सुबोधिनी
टीकासहित दोभागों में वर्णित हैं -

प्रथमभाग

जिसमें

१ अध्यायसे ९ अध्यायतककी कथा ीधर्मधुरंधर धीरधर परम
सखा श्रीअर्जुनजीके हृदयजनितमोहनाशार्थ श्रीकृष्णचन्द्र
आनन्दकन्दजीने प्रत्यकसांसारिक मार्ग मिथ्याभासितकर
वेदान्तसारसे भगवद्भक्तिमार्ग दर्शायाहै

जिसको

भगवद्भक्तजनोंके चित्तोल्लासितार्थ श्रीसर्वैश्वर्य्यसम्पन्न सकलकला
विभूषित श्रीमन्मुंशी नवलकिशोरजी(सी आई ई)के निदेशसे
शहर फ़र्रुख़ाबादनिवासि स्वर्गवासि सर्वविद्याविशारदश्री
पण्डितवरत्रिपाठ्युमादत्तजीने श्रीशंकराचार्य्यजीके कथ-
नानुसार शांकरभाष्यका सारांश लेकरअति मनहरण
तत्त्वाविवेकामृत नामभाषाटीका कर प्रभातकाल
के कमलसरिस प्रफुल्लित करादियाहै

—— ※ ——

प्रथमबार

स्थान लखनऊ

...छापेखाने में छपा—एप्रिल सन् १८८८ ई० ॥

विज्ञापनपत्र ॥



प्रकटहो कि यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता शास्त्र सम्पूर्ण वेदान्तकासार-भूत जिसको कि पूरण परब्रह्म भक्तानन्दकर श्रीमहाराज कृष्णचन्द्र जी ने निज मुखारविन्द से वर्णनकर अपने परमसखा श्रीअर्जुनजीके हृदय जनित मोहनाशार्थ सबप्रकार अपार संसार निस्तारिक भगवत् पादाब्ज भक्तिमार्ग दृष्टिगोचर कराया है—वही उक्त भगवद्गीता बज्रवत् वेदान्तान्तर्गत जिसको कि अच्छे२ शास्त्रवेत्तार अपनी बुद्धि से पारनहीं पासके तब मन्दबुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठन पाठन करनेकी सामर्थ्य है वह कब इसके अन्तराभिप्राय को जानसक्ते हैं—और यह प्रत्यक्षही है कि जबतक किसी पुस्तक अथवा किसी बस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छे प्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिलै केवल इस कहावतही के समान है कि (गर्दभोभारवाहकः) अर्थात् गर्दभ जिस प्रकार अपने पृष्ठिभारको नहीं जानता कि मलयागिरि है या कोई निषिद्ध वस्तु है—केवल भारको जानता है—इस कारण संपूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्त पादाब्ज रसिकजनोंके चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्ततधर्म धुरीण सकल कला चातुरीण सर्वविद्याविलासी भगवद्भक्त्यानुरागी श्रीमन्मुन्शीनवलकिशोरजी ने बहुतसा धन व्ययकरके फ़र्रुखाबाद निवासि स्वर्गवासि पण्डित उमादत्तजीसे इसमनोरंजन वेदवेदान्तशास्त्रोपरि पुस्तकको श्रीशंकराचार्य निर्मित भाष्यानुसार संस्कृत से सरल देशभाषा में तिलक रचाय नवलभाष्य आख्यसे प्रभातकालिक कमल सरिस प्रफुल्लित करादिया है कि जिसको केवल भाषामात्रके जाननेवाले पुरुष भी जानसक्ते हैं—पुनः द्वितीय आनन्दीय वार्त्ता यह कि उसीमें श्रीस्वामी शंकराचार्यजी की शांकरभाष्यका तिलक व श्रीआनन्दगिरिकृत तिलक व श्रीधरस्वामिकृत तिलक भी मूलश्लोकों सहित उपस्थित है—निश्चय तो यही है कि यह पुस्तक अद्वितीयही दृष्टिगोचर होगी—तथापि आशा है कि संपूर्ण भगवद्भक्त व विद्याविलासीजन इस पुस्तकको अवलोकनकर इसप्रकार प्रसन्न

होंगे कि यथा—(अन्धमनुष्यहिनैनलाभअरु रंकाहिमिलैकनकमणिखानी ।
तिमियहपुस्तकअवलोकनकरि ह्वैहैंमुदितभक्तजनज्ञानी)

दो॰ शरश्रुतिअंकशशांकशुभ चैत्रपक्षउजियार ।
जगरानीकीकृपासों पुस्तकभईतयार ॥

जिन महाशयोंको पुस्तकावलोकन करनेकी अपेक्षाहो वह—शहर लखनऊ हज़रतगंज व कानपुर छापेखाने मुन्शीनवलकिशोरसे मँगासक्तेहैं ॥

(नवलकि...)

इति ॥

श्रीमद्भगवच्छङ्करकृतभाष्य भाषा नवलभाष्य आरभ्यते

तत्रादौमङ्गलाचरणम् ॥

सोरठा ॥

सकलगुणनकीखानि सिद्धिसदनकरिवरवदन ॥ द्रवौसोनिजजनजानि उमाशम्भुसुतसुखसदन १ इन्दीवरघनश्याम धनुषबाणकरमेंलिये ॥ करौ सोममउरधाम जनकनन्दिनीसहितविभु २ श्रीहरिमुखशशधारि स्रवतसु भक्तिचकोरवश ॥ पियोसोनरतनुधारि चिदानन्दमयअमियरस ३ प्रथम रह्योगतभेद चिदानन्दसन्दोहप्रभु ॥ पुनिप्रकटेसबवेद जाकेश्वाससमूहते ४ सकललोकसन्तान जिहिकेनाभिसरोजते ॥ नानाधर्मविधान प्रकट्योब्रह्मा वेदमय ५ सोइप्रकट्योभगवान भक्तिविप्रसुरधेनुहित ॥ सदसद्वस्तुनिदान कृष्णसच्चिदानन्दघन ६ करहुअनुग्रहसोइ कृपासिन्धुममकष्टहनि ॥ जड़हु सूरिवरहोइ जिहिकीकृपाकटाक्षते ७ सकलवेदशिरगाइ पार्थवत्सविश्वास मय ॥ कृष्णदुहीहरषाइ परमचतुरगोपालसुत ८ उपजोदुग्धसुबोध भक्ति विरागविवेकयुत ॥ विगतलोभभयक्रोध पियोविमलमतिकामतजि ९ गीता अर्थगभीर व्यक्तकियोशिवरूपधरि ॥ जानैंशुभमतिधीर योगनिरतवेदान्त विद १० शंकरभाष्यअपार कसअवगाहैमोरमति ॥ कहौंस्वमतिअनुसार सुमिरिकृष्णपदकमलको ११ प्रतिपदअर्थविचारि श्रीमतशंकरभाष्यको ॥ करौंसुमतिअनुहारि नरभाषामयललितपद १२ उमादत्तभूदेव ग्रन्थविवेका-मृतरचो ॥ करिप्रणामगुरुदेव निजतोषकहरिजनसुखद १३ जिनप्रेरोचित मोर सहजसुखदहरिचरितमें ॥ मुन्शीनवलकिशोर सोजीवोसम्पतिस-हित १४ देवगिरामेंगूढ़ हरिमतशंकरनेकह्यो ॥ सोजानौंमतिमूढ़ अतिदुर्लभ निधिरंकजिमि १५ असविचारिमनमांहि मुन्शीनवलकिशोरवर ॥ सेवैंस-ज्जनजाहि कह्योभाष्यभाषाकरौ १६ बुधवरकीन्हविचार विनयसहितयह बचनसुनि ॥ होइविश्वउपकार अवशिकरिययहकाजबड़ १७ तातेकरौं सम्हारक्षमौसुजनममसाहसहि ॥ विनवोंबारम्बार कृपाकरौअबसबजन १८ कहँमतिमन्दविलास कहांक्षीरसागरमथन ॥ ममउरहोइहुलास तदपिशम्भु गुरुकृपाबल १९ यद्यपिग्रन्थअनेक निजनिजमतिभाषैंसुकवि ॥ जनैजो विमलविवेक होयसफलअसबुधकहहिं २० बरणतकविसबकोइसरसकवित सुखजनकहैं ॥ बिरलाजानैकोइ सोरसकेवलब्रह्मयह २१ ॥

तिस गीता शास्त्र का संक्षेपसे मुख्य प्रयोजन यह है कि अविद्या सहित अनर्थ रूप संसारकी अत्यन्त निवृत्तिही स्वरूप जिसका ऐसा मोक्षरूप कल्याण सो सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागपूर्वक आत्मज्ञाननिष्ठारूप धर्महीसेहोताहै यही सम्पूर्ण गीताके अर्थको लक्ष्यकरकै भगवान्ने अनुगीतामें कहा है कि वोही परम परिपूर्ण धर्महै जो ब्रह्मका जानना और यहभी वहां कहा है कि नतौ वह धर्मयुक्त है और न वह अधर्म युक्तहै औ न उसमें शुभ अशुभहै जो एक आसनपै मौनहो स्थितरहै और कुछ विषय चिन्तन न करे अर्थात् असंप्रज्ञात समाधिमें स्थितरहै और यह भी कहा कि ऐसे सदासमाधिमें स्थितको संन्यास लक्षण ज्ञान होताहै और इस भगवद्गीताके अठारहें अध्याय में सर्व धर्मोंके उपदेशके अनन्तर अर्जुनसे भगवान्ने कहा कि हे अर्जुनतू सब धर्मोंको त्यागकै अर्थात् प्रवृत्त निवृत्ति विहित अविहितादि सबइंद्रियों के धर्मों को त्यागकरकै एक अद्वितीय असंग निर्मल चिदानन्द संदोहरूप जो मैं हूँ तिसीका आश्रयण कर अभेद करकै देख फिर ऐसी भावना से मैं तुझको सबपापोंसे छुड़ादेऊंगा तू मतशोचकर इसकथनसे संसाररूप दुःख की अत्यन्त निवृत्तिहीमें गीताशास्त्रका प्रयोजन सिद्धहुआ और जो गीताजीके तीसरे अध्यायके सहयज्ञाःप्रजास्सृष्ट्वा इत्यादि दशमश्लोकसे लेकर ऐश्वर्यादि प्राप्तिकेलिये (प्रवृत्ति लक्षण धर्म) प्रवृत्ति है स्वरूप जिसकाऐसा धर्म वर्णआश्रमोंका आश्रयकर विधान कियागया सो देवादि स्थानकी प्राप्ति में यद्यपि कारणभूत है तौ भी वही धर्म ईश्वरार्पण बुद्धिसे फलकी चाहना छोड़कै जब कियाजाय तौ अन्तःकरणकी शुद्धिको उत्पन्नकर शुद्धान्तःकरण पुरुष को ज्ञाननिष्ठाकी योग्यताप्राप्तिद्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारणता को प्राप्तहो मोक्षकारणता को भी प्राप्तहोताहै अर्थात् मोक्षका हेतुभी होता है फिर इसीतात्पर्यको मनमें कर कृष्णभगवान् भी पञ्चमाध्यायमें कहैंगे कि ब्रह्ममें कर्मोंको समर्पणकर फलाभिसंधि रहित जो कर्म करताहै सो लिप्तनहीं होताहै और यहभीकहा कि चित्त औइन्द्रियोंको जीतकै कर्मकरते हैं और यहकहा कि योगीजन आसक्तिको त्यागकै अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्मकरते हैं इनप्रमाणोंसे यह निश्चितहुआ कि प्रवृत्तकर्म भी फलाभिसन्धिरहित ईश्वरार्पण बुद्धिसे कियाहुआ अन्तःकरण शुद्धिद्वारा मोक्षसाधक होताहै इसप्रकार दोनोंतरह का धर्म मोक्षमें कारणभूत है औवासुदेव शब्दसे कहा परब्रह्म इसगीता शास्त्रमें प्रतिपादन कियागया है इस अर्थको प्रकटकरता हुआ गीताशास्त्र विषय प्रयोजन अधिकारी सम्बन्धयह चारि प्रबन्धकरके युक्तशोभित होरहाहै तिसमें विषय तौ परमात्माहै और तिसका जाननाही प्रयोजनहै और जाननेकी इच्छा करनेवालाही अधिकारी है औपरमात्मासे औगीताशास्त्रसे प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावसंबन्ध है अर्थात् गीताशास्त्र प्रतिपादकहै औपरमात्मा प्रतिपाद्यहै औजिस हेतुसे गीताके जाननेसे सकल पुरुषार्थ की सिद्धिहोती है इसकारणसे इसकेव्या

स्थानमें यत्नकिया जाताहै तहां धृतराष्ट्र उवाच औ धर्मक्षेत्रेइत्यादि श्लोकसे लेके पाहिला अध्याय और दूसरे अध्यायके दशश्लोकतक ग्रन्थका व्याख्यान अर्थात् उसका भाष्यरूप अपना टीका श्रीशंकराचार्य जीने सीधा जानके प्रतिश्लोक नहीं किया है उसका तात्पर्यमात्र कुछ कहा सो आगे द्वितीयाध्यायके भाष्य भाषानुवादमें लिखाजावैगा औप्रथमाध्याय का टीका आनन्दगिरि जीने औ श्रीधरस्वामीआदि आचार्य्योंने जैसे संस्कृत भाषामें कियाहै तिसका अनुवाद मनुज भाषामें मैं मूलग्रन्थका उपयोगी यथामति करताहूं और द्वितीयाध्यायके, ग्यारहवें अशोच्यानन्व शोचस्त्वम् इत्यादि श्लोकसे जबभाष्यका प्रारम्भहोगा तौ उसका अनुवाद लिखा जावैगा औउसश्लोकके व्याख्यान भूत भाष्यके प्रथमभाग मेंभी भाष्यकारने गीताका प्रयोजन विस्तारसे अपने भाष्यमें लिखाहै तिसका अनुवाद द्वितीयाध्याय की भूमिकामें लिखाजायगा ॥

विज्ञापन ॥

सकल निगम पुराणस्मृति सांख्यादि शास्त्रसारभूत परमरहस्यगीताशास्त्रका सर्वविद्यानिधान सौशील्यविनयोदार्य सत्यसंगर शौर्यादि शुभगुणसंपन्न नरावतार महानुभाव अर्जुनको परमअधिकारी जानके ब्रह्मादि देवनकर वन्दित पादपीठ सर्वज्ञ अनन्तशक्ति परमदयालु श्रीकृष्णभगवान् ने उपदेशकिया तिसगीता शास्त्रका अपनी अपनी मतिके अनुसार अनेक टीकाकारोंने अर्थकिया अर्थात् किसीने तौ अर्जुन को अपने क्षत्रियधर्म में प्रवृत्तिकरानेकेलिये प्रधानतासे भगवान् ने वर्णाश्रम धर्महीका उपदेश कियाहै इससे कर्मकाण्डमें गीताका तात्पर्य है ऐसा वर्णनकिया और किसी ने तो उपासना काण्डमें अर्थात् परमेश्वरकी भक्तिहीमेंसब गीताशास्त्रका तात्पर्य्य वर्णन किया और किसीने ज्ञानकाण्डमें सबगीताका तात्पर्य्य है ऐसा कहा क्योंकि बिनाज्ञानके मोहके निवृत्ति होनहीं सक्ती और किसीने तोज्ञान औ कर्मदोनों मिलेहुयेमें गीताशास्त्र का तात्पर्यकहा क्योंकि बीच बीचमें बारम्बार भगवान्होंने कर्मका भी उपदेशकिया और भक्तिकाण्ड तो दोनोंका उपकारक है इससे कर्म सहित ज्ञानके उपदेशमें सब गीताशास्त्र का तात्पर्य्य समुच्चयवादियोंनेकहा तो इसप्रकार टीकाकारोंकी मतिकी विषमतासे परस्पर विरोधहोने से भगवान्का आशय कौन अर्थ में है यह निश्चयजब न हुआ और बिना निश्चयके जीवोंका कल्याण नहीं संभव होता और जो वेदोंके देखनेसे कोई संदेहको निवृत्तकरै तो तात्पर्यसहित सबवेदोंके अर्थको अल्पज्ञमनुष्य कैसे जानसक्ताहै और जिसमति की विषमतासे मतवादियोंने गीता शास्त्रका विरुद्ध अर्थ प्रतिपादन किया वेपुरुष श्रुतियोंका भी विरुद्ध अर्थकल्पनाकरैं तो कैसे निर्णय होसक्ताहै ऐसेअनर्थ को देखके सकल विद्याओं के कारण श्रीमहादेवजी शंकराचार्य्यका रूप

धारण करके प्रथम तो सबवेदोंके उपनिषदोंका अनेक मतवादियोंने विरुद्ध अर्थकिया था उसके सम्हारनेको उपनिषदों के ऊपर भाष्य निर्माण करके सिद्धान्त स्थापन किया फिर इसीप्रकार ब्रह्मसूत्रोंका भाष्यभी निर्माणकर वेद विरोधियोंके मतको खण्डनकरके सिद्धान्त स्थापन किया फिर सब उपनिषदोंका और ब्रह्मसूत्रोंकासार और साक्षात् श्रीपद्मनाभ कृष्णभगवान् के मुखसे प्रकटहुआ जो गीताशास्त्र तिसका भाष्य निर्माणकरतेहुये जिस भाष्यमें अनेकमतवादियों के वेदादि विरुद्धमतको अनेक श्रुतिस्मृतियों के प्रमाणोंकरके और युक्तियोंसे खण्डनकरके जैसा कुछ भगवान्को अभिमत सिद्धान्तथा सो स्थापनकिया जिसआशयको जानके वैसाही आचरणकरता हुआ भक्तसब संसारके दुःखोंसे छूटके शीघ्रही परमानन्दको प्राप्त होताहै अर्थात् गीताशास्त्रका वैसाफलनहीं है जोदेहपातके अनन्तरही जिसका सुखहोय किन्तु इसको जानतेही ऐसा अपूर्वहृदय में आनन्द होता है जिसके आगे सांसारिकराज्यादि सुखभीतुच्छ मालूम पड़तेहैं परन्तुयहगीताशास्त्रका अतिरहस्य आनन्दरूपी अमृत शंकरभाष्यही के यथावत् जाननेंसे प्राप्तहोताहै क्योंकि और टीकाओंके देखनेसे सबसंदेह निवृत्तहोते नहीं और जबतक संदेह है तबतक चित्तकी शान्ति नहीं और विना चित्तकी शान्ति सुखनहीं होता परन्तु यह शंकरभाष्यभी संस्कृतग्रन्थोंमें अतिगम्भीर होनेसे बहुतकठिनहै अर्थात् इसका अर्थहरएक पण्डितभी नहीं कहिसक्ता जिसका वेदान्तशास्त्रमें पूर्णप्रवेश होय वहजान सक्ताथा तब श्रीआनन्दगिरिजीने बड़ी दयालुता करके इस आनन्दके प्रकटकरनेको शंकरभाष्यका टीकाकिया तबसे अनेक पण्डितलोग इसशंकरभाष्यके आनन्द के जाननेको समर्थहुये तोभी जेसाधारण पंडितहैं अर्थात् व्याकरण न्यायमीमांसादिकोंमें जिनका प्रवेश नहीं वे आनन्दगिरिजी के अक्षरार्थ के जाननेकी असमर्थतासे इसआनन्दको यथावत् प्राप्त न हुये और जिन्होंका संस्कृत विद्यामें प्रवेशही नहीं है अर्थात् नागरी मात्रही जानतेहैं उनको तो यह आनन्द अत्यन्त दुर्लभहुआ अर्थात् किसी प्रकारसे जाननेकी संभावनानहीं देखपड़ी तो परम बुद्धिके सागर मुन्शी नवलकिशोर साहिबने अल्पबोधवाले मनुष्योंको भी इस अतिदुर्लभ शंकराचार्य्य जी के सिद्धान्तके जानने से गीताशास्त्र के आनन्द को प्रकटकरने के लिये बैकुण्ठवासि शहरफ़र्रुखाबाद निवासि पंडित उमादत्त जीसे कहा कि जो आप इस शंकरभाष्यका अतिललित सरल मनुष्य भाषामें अनुवाद अर्थात् तर्जुमाकरैं तो बहुत मनुष्योंका कल्याण होने से बड़ाउपकार होय यहसुनिके उक्तपण्डितजी श्रीशंकरभाष्य का प्रतिपद सरल मनुष्य भाषामें अनुवाद करतेहुये और इस शंकरभाष्य में जो जो स्थल अतिगूढ़रहे तिनको पर्यायशब्दों करके अर्थात् उनशब्दोंके अर्थके कहनेवाले और लेभाषामें प्रसिद्धशब्द हैं तिन्होंकरके अर्थविशद किया प्रायःऐसी जगहपर अर्थात्

और नाम ऐसापद आदिमें लिखके उसगंभीर अर्थको खोला है इस से कोई पुनरुक्ति न जानै और तिसपैभी जहां अच्छीतरह अर्थ नहीं विशद हुआहै तहां उस शंकरभाष्यके तर्जुमासे पृथक्नोट लिखागया है उसमें और ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे और युक्तियोंसे उसभाष्यके आशयको और मूलभगवद्गीताके आशयको भी प्रकटकिया है परन्तु वहां * इस प्रकारके चिह्न प्रायःलिखेगये हैं कहीं बहुत आशय लिखाहै तहांनोटशब्द करकेही चिह्नितकियाहै और जिसजिस जगहपर भाष्यमें शास्त्रार्थकी रीतिसे बहुत सफ़ों में एकही श्लोकके ऊपरखण्डन मण्डनकरके सिद्धान्त स्थापन कियाहै वहां भाषानुवादमें भी उसीरीतिसे वादी और प्रतिवादियों के पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष विस्तार पूर्वक लिखेगये हैं जिससे सबमहाशयोंको भाष्यकारके बचनामृतोंका अर्थ और सिद्धान्त विदितहोवे अर्थात् जैसे समुच्चयवाद और सांख्य और वौद्ध और वैशेषिक और मीमांसक इनके मतोंका जिसजिस स्थलपै भाष्यकारने खण्डन मण्डनादि करके सिद्धान्त स्थापन किया है वहांवहां हमने भी भाषामें उसीरीतिसे अर्थ खोलाहै क्योंकि बिनाबहसके सिद्धान्त निकल नहीं सक्ताहै और जहांजहां भाष्यकारने श्रुतिऔर स्मृति और पुराणोंके प्रमाणरूप वचन लिखेहैं तहां तहां भाषानुबादमें भी प्रथम संस्कृतमें उनको लिखके फिर उसीके आगे भाषामें उनका अर्थ लिखा है परन्तु जहां अत्यन्त आवश्यकता देखीगईहै तहां इसरीतिसे प्रमाण लिखे हैं और कहीं भाषानुबादही में अर्थद्वारा प्रमाण लिखेहैं ऐसा कोई प्रमाण नहीं जिसके अर्थका भाषा में अनुवाद न होय और सबक्रम भाष्यके अर्थके लिखनेकी प्रतिज्ञासे कहीं इबारातकी रीति इसग्रन्थमें नहींहै क्योंकि इबारत में पुनरुक्ति नहीं होती है इसग्रन्थमें जहांकहीं पुनरुक्तिहोगी सो सबभाष्यके अनुरोधसेही होगी इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो कोई महात्मा वेदान्तशास्त्रका जाननेवाला इसग्रन्थको देखके यह न कहै कि कोई अर्थभाष्य का इस ग्रन्थमें छूटिगया है अथवा संस्कृत में तो अर्थ और होय और भाषामें और है और प्रशंसनीय वोही अनुवाद होता है जो कहीं मूलसे विरुद्ध नहोय परन्तुतोभी सब महाशय पुरुषों को आनंद के लिये इसकी इबारत में भी दृष्टि की गई अर्थात् बहुत साफ़कर स्पष्ट ऐसा लिखागयाहै जिसमें स्वल्पबोध वालोंकोभी इसपरमानन्दकी प्राप्ति होय और जो कहीं संस्कृत वेदान्तशब्द और शास्त्रार्थ विषयके शब्द ऐसे ही भाष्यमें आपड़े हैं जिन्हों का मतलब ठेठ भाषामें नहीं निकलसक्ताहै उन्होंके अर्थके जनानेके लिये जे सलिल संस्कृतपद इस भाषानुवाद में लिखेगये हैं तिन्होंका अर्थप्रायः ऐसासीधा है कि भाषाव्याकरण पढ़नेवाले भी जानसक्ते हैं तिसपै भी कोई नहीं समुझपड़े तो उसका संकेत जिसने गुरूके मुखसे वेदान्तशास्त्र जानाहोय उससे जानना चाहिये क्योंकि वेदान्तशास्त्र चाहै तैसा कोई भाषामें सीधाकरके लिखै परन्तु यह ऐसा

क्लिष्टहै कि महात्मालोगों से पूंछहीसे संकेत विदितहोता है इसीसे श्रुति में भी ऐसाकहा है ब्रह्मविद्या गुरुमुखसे सुनीहुईहीं फलदायक होती है ॥ इससे जिन्होंने थोड़ाभी वेदान्त गुरुमुखसे जाना है और भाष्यके आशय के जाननेकी अभिलाषा है और संस्कृतभाष्यके जाननेकी शक्ति भी नहीं है तिन्होंको यह अत्यन्त आनन्ददायक होगा ॥

(पण्डित उमादत्त शास्त्री)





श्रीमद्भगवद्गीतासटीक॥

धृतराष्ट्र उवाच।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय॥ १॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तत्रैवमक्षरयोजना धृतराष्ट्र उवाचेति धृतराष्ट्रो हि प्रज्ञाचक्षुर्बाह्यचक्षुरभावाद्बाह्यमर्थं प्रत्यक्षयितुमनीशः सन्नभ्यासवर्त्तिनं सञ्जयमात्मनो हितोपदेष्टारं पृच्छति धर्मक्षेत्र इति धर्मस्य तद्वृद्धेश्च क्षेत्रे समभिवृद्धिकारणं यदुच्यतेकुरुक्षेत्रमिति तत्र समवेताः संगता युयुत्सवोयोद्धुकामास्ते च केचिन्मदीयाः दुर्य्योधनप्रभृतयः पाण्डवाश्चापरे युधिष्ठिरादय स्तच सर्वेयुद्धभूमौ संगताः भूत्वा किं अकुर्वत कृतवन्तः॥ १॥

स्वामिकृतटीका।

धृतराष्ट्र उवाच धर्मक्षेत्र इत्यादि भोः संजय धर्मभूमौ कुरुक्षेत्रे धर्मक्षेत्रइतिकुरुक्षेत्रविशेषणम् एषामादिपुरुषः कश्चित् कुरुनामा बभूव तस्य कुरोर्धर्मस्थाने मामकामत्पुत्राःपाण्डुपुत्राश्च युयुत्सवो योद्धुमिच्छन्तः समवेता मिलिताः सन्तःकिमकुर्वत किंकृतवंतः १॥

नवलभाष्य।

तहां श्रीमन्महाभारतमें जब कौरव पाण्डवोंके युद्धका निश्चयहुआतौ धृतराष्ट्र ने व्यासजी से यह प्रार्थनाकी कि हे भगवन् सबयुद्ध मैं प्रत्यक्षदेखा चाहताहूं सो ऐसी कृपाकीजिये जो अन्धभी मैं सब नित्य नित्य का हाल जानों तब व्यासजीने कहा कि हे पुत्र इससंजयको मैं दिव्यदृष्टि देताहूं तिसके प्रभावसे यहसञ्जय तुम्हारे समीपबैठेही जोकुछ हालयुद्धकाप्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष हुआकरैगा अर्थात् जिसको युद्धके मनुष्यभी सबनहीं जानसकैंगे तिस सबहालको यहांसेही देखके तुमसे सब कहाकरैगा इसव्यासजीके वरदानसे दिव्यदृष्टिको प्राप्तजोसंजय तिससे धृतराष्ट्रराजा पूंछताहै कि हे सं-

जय धर्मक्षेत्र + धर्मका क्षेत्र अर्थात् खेत ऐसा जोप्रसिद्ध कुरुक्षेत्र तीर्थ तिसमें युद्धकी इच्छासे इकट्ठे हुये जेमेरे पुत्र दुर्योधनादि और पांडुकेपुत्रजे युधिष्ठिरादि तेसब क्याकरते हुये सोकहिये ॥ १ ॥

संजय उवाच ।

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

किमस्मदीयं प्रबलं बलं प्रतिलभ्य धीरपुरुषैर्भीष्मादिभिरधिष्ठितं परेषां भयमाविर्भूत् यद्वा पचद्वयहिंसानिमित्ताधर्मभयमासीद्येन एते युद्धादुपरमेरन्निति एवं पुत्रपरवशस्य पुत्रस्नेहाभिनिविष्टस्य धृतराष्ट्रस्यप्रश्ने सञ्जयस्य प्रतिवचनं दृष्ट्वे त्यादि पाण्डवानां भयप्रसंगो नास्तीत्येतत् तुशब्देन द्योत्यते प्रत्युत दुर्य्योधनस्यैव राज्ञो भयं प्रभूतं प्रादुर्बभूव पाण्डवानां पाण्डुसुतानां युधिष्ठिरादीनामनीकं सैन्यं धृष्टद्युम्नादिभिरतिधृष्टैर्व्यूहाधिष्ठितं दृष्ट्वा प्रत्यचेण प्रतीत्य त्रस्तहृदयो दुर्य्योधनो राजा तदा तस्यां संग्रामोद्योगावस्थायामाचार्यं द्रोणनामानमात्मनः शिचितारं रचितारञ्च श्लाघयन्नुपसंगम्य तदीयं समीपं बिनयेन प्राप्य भयोद्विग्नहृदयत्वेऽपि तेजस्वित्वादेव वचनमर्थसहितं वाक्यमुक्तवानित्यर्थः ॥ २ ॥

स्वामिकृतटीका ।

संजयउवाच दृष्ट्वेत्यादि पाण्डवानामनीकं सैन्यं व्यूढं व्यूहरचनयाऽधिष्ठितं दृष्ट्वा द्रोणाचार्य्यसमीपं गत्वा राजा दुर्योधनो वक्ष्यमाणं वचनमुवाच ॥ २ ॥

नवलभाष्य ।

अब संजय कहता है कि हे राजन् जबदोनों तरफ सेना युद्धको तैयार हुई उस समयमें राजादुर्योधन व्यूहरचनासे* खड़ीहुई पांडवोंकी सेनाको देखके द्रोणाचार्य के समीप जाके यहबचन कहताहुआ २ ॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

+ धर्मक्षेत्र कहनेका यह आशय कि यहकुरुराजाका क्षेत्र धर्मका क्षेत्र है इस से मेरे पुत्रधर्ममें बुद्धिकर राज्यबांटिके कहीयुद्ध से निवृत्त तौनहींहोगये औ मामकशब्दकाअर्थ यहहै कि जोमेराहोय तो मामक कहने से पांडवोंका ग्रहणहोहीजाता क्योंकि पाण्डव भ ईके बेटेहोनेसे धृतराष्ट्रहीके संबन्धीहुये फिरपाण्डवों को जुदाकहने से पाण्डवोंमें धृतराष्ट्रके ममत्वका अभाव सूचन किया ॥ १ ॥

* और व्यूहरचना उसे कहते हैं किजो कवायदकी रीतिसे सेनाको ऐसा जमाया जावे जिसमें विना अफ़सरके हुक्म न कोई बाहर का भीतर जानेपावे औ न भीतरका बाहर जासके ॥ २ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

तदेव वचनमुदाहरति पश्येति एतामस्मदभ्यासे महापुरुषानपि भवत्प्रमुखानपरिगणय्य भयनैरशून्यामवस्थितां चमूमिमां सेनां पाण्डुपुत्रैर्युधिष्ठिरादिभिरानीतां महतीमनेकाक्षौहिणीसहितामक्षोभ्यां पश्येताचार्य्यं दुर्योधनो नियुक्तनियोगद्वारा च तस्मिन् परेषामवज्ञां विज्ञापयत् क्रोधातिरेकमुत्पादयितुमुत्सहते परकीयसेनायावैशिष्ट्याभिधानद्वारा परापरपक्षेऽपि त्वदीयमेव बलमिति सूचयन्नाचार्य्यस्य तन्निरसनं सुकरमिति मन्वानः सन्नाह व्यूढामिति राज्ञो द्रुपदस्य पुत्रस्तव शिष्यो धृष्टद्युम्नो लोके ख्यातिमुपगतः स्वयञ्च शस्त्रास्त्रविद्यासम्पन्नो महामहिमः तेन व्यूहमापाद्याधिष्ठितामिमाञ्चमूं किमिति न प्रतिपद्यसे किमिति वा न मृष्यसीत्यर्थः ॥ ३ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तदेव वचनमाह पश्यैतामित्यादि नवभिःश्लोकैः पश्यैतादि हेआचार्य्य ! पाण्डवानां महतीं विततां चमूंसेनां पश्यतवशिष्येणद्रुपदपुत्रेण धृष्टद्युम्नेनव्यूहरचनयाऽधिष्ठिताम् ॥३॥

नवलभाष्य ।

अबजो बचन दुर्योधनकहताहुआ उसीको कहतेहैं कि हेआचार्य्य शस्त्र अस्त्र विद्यामें बड़ा बुद्धिमान् औ आपका शिष्य जो राजा द्रुपदकापुत्र धृष्टद्युम्न तिसने व्यूह रचनाकरके स्थापनकीहुई जोपांडवोंकी बड़ीभारी सेना अर्थात् बहुत अक्षौहिणी जिसमें ऐसी जो सेना तिसको देखिये अब यहां दुर्योधन ने आपका शिष्यजो धृष्टद्युम्न तिसने यहसेना स्थापन करीहै इसके कहनेसे द्रोणाचार्य्यजी को क्रोधउत्पत्ति कराना सूचन किया कि जिससे द्रोणाचार्य यहजानै कि देखो मेरा शिष्य धृष्टद्युम्न मेरे मारनेके उद्योगसे ऐसीसेनाको स्थापन करता हुआ ॥ ३ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

अन्येऽपि प्रतिपक्षे पराक्रमभाजो बहवः सन्तीत्यनुपेक्षणीयत्वं परपक्षस्य विवक्षयन्नाह अत्रेति तस्यां हि प्रतिपक्षभूतायां सेनायां शूराः स्वयमभीरवः शस्त्रास्त्रकुशलाः भीमार्जुनाभ्यां सर्वसम्प्रतिपन्नवीर्याभ्यां तुल्याः युद्धभूमावुपलभन्ते तेषां युद्धशौण्डीर्यं विशदीकर्तुं विशिनष्टि महेष्वासा इतिइषुरस्यतेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या धनुस्तदुच्यतेतच्च महदन्यैरप्रधृष्यंतद्दृश्यते येषान्तेराजानस्तथाविवक्षन्ते यानेवपरसेनामध्यमध्यासीनानुपरपक्षानुरागिणो राज्ञोविज्ञापयति युयुधान इत्यादिना सौभद्रो द्रौपदेयाश्चेत्यन्तेन ॥ ४ ॥

स्वामिकृतटीका ।

अत्रेत्यादि अत्रास्यां चम्वां इषवोबाणा अस्यन्ते क्षिप्यन्ते एभिरिति इष्वासा धनूंषि महान्त इष्वासा येषान्ते महेष्वासाः भीमार्जुनौ तावदत्रातिप्रसिद्धौ योद्धारौ ताभ्यां समाः शूराः सन्ति तानेव नामभिर्निर्दिशति युयुधान इति युयुधानः सात्यकिः ॥ ४ ॥

नवलभाष्य।

औ हे आचार्य्य इसपाण्डवों की सेनामें बीरता में बड़ेप्रसिद्ध जोभीम अर्जुन तिनके समान और बड़ेबड़े हैं धनुष जिन्होंके ऐसेशूर हैं तिन्हों में प्रथमतो युयुधान अर्थात् सात्यकिहै औ राजाबिराटहै औ महारथी राजा द्रुपदहै ॥ ४ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

किञ्च धृष्टकेतुरिति स्पष्टम् ॥ ५ ॥

स्वामिकृतटीका।

किंचधृष्टकेतुरिति चेकितानो नाम एको राजा नरपुंगवः नरश्रेष्ठः शैब्यः ॥ ५ ॥

नवलभाष्य।

और राजाधृष्टकेतुहै औ राजाचेकितानहै औ बड़ापराक्रमी काशिदेशका राजाहै औ पुरुजित्राजाहै औ राजाकुन्तिभोजहै औ मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा शैब्य है ॥ ५ ॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्वएव महारथाः ॥ ६ × ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तेषां सर्वेषामपि महाबलपराक्रमभाक्त्वादनुपेक्ष्यत्वं पुनर्विवक्षति सर्व एवेति ॥ ६ ॥

स्वामिकृतटीका।

युधामन्युरिति विक्रांतो युधामन्युर्नामिकः सौभद्रोऽभिमन्युः द्रौपदेया द्रौपद्यांपंचभ्यो युधिष्ठिरादिभ्यो जाताः पुत्राः प्रतिविन्दादयः(पंचमहारथादीनांलक्षणं) एको दशसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च महारथ इति स्मृतः ॥ अमितान् योधयेद्यस्तु सम्प्रोक्तोतिरथस्तुसः । रथी चैकेन यो योद्धा तन्न्यूनोर्द्धरथस्तु सः ॥ ६ ॥

नवलभाष्य।

औ पराक्रमयुक्त राजायुधामन्युहै औ बड़ापराक्रमी उत्तमौजानाम राजा है औ सुभद्राकापुत्र अभिमन्युहै इतनेसब पाण्डवोंकीसेनामें महारथीहैं॥६॥

× एकोदशसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च महारथइतिस्मृतः १ अमितान्योधयेद्यस्तु संप्रोक्तोतिरथस्तु सः । रथी चैकेनयोयोद्धा तन्न्यूनोर्द्ध रथस्तुसइति २ अर्थ ॥ जोएकदश हजार धनुर्धारियोंके साथ युद्धकरसकै औ शस्त्र शास्त्रमें प्रवीणहोय सो महारथी कहाता है औ जो असंख्य योधों के संग अकेला युद्ध करसकै सो अतिरथ कहाता है औ जो एकहीके साथ युद्धकरसकै सो रथी कहाताहै औ जो एककेसाथभी युद्ध न करसके वह अर्द्धरथ कहाता है २ ॥

अस्माकन्तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

यद्येवं परकीयं बलमतिप्रभूतं प्रतीत्यातिभीतवदभिदधासि हन्त सन्धिरेव परीरिप्स्यतामलं विग्रहाग्रहेणेत्याचार्याभिप्रायमाशंक्य ब्रवीति अस्माकमिति तुशब्देनान्तरुत्पन्नमपि स्वकीयं भयं तिरोदधानो धृष्टतामात्मनोद्योतयति ये खल्वस्मत्पक्षे व्यवस्थिताः सर्वेभ्यः समुत्कर्षजुषस्तान्मयोच्यमानान्निबोध निश्चयेन मद्वचनादवधारयेत्यर्थः यद्यपि त्वमेव त्रैवर्णिकेषु त्रैविद्यवृद्धेषु प्रधानत्वात् प्रतिपत्तुं प्रभवसि तथापि मदीयसैन्यस्य ये मुख्यास्तानहन्ते तुभ्यं संज्ञार्थमसङ्ख्येषु तेषु मध्ये कतिचिन्नामभिर्गृहीत्वा परिशिष्टानुपलक्षयितुं विज्ञापनंकरोमिनत्वज्ञातंकिञ्चित् तवज्ञापयामीतिमत्वाहद्विजोत्तमेति ॥७॥

स्वामिकृतटीका ।

अस्माकमिति निबोध बुद्ध्यस्व नायका नेतारः संज्ञार्थं सम्यक्ज्ञानार्थं मित्यर्थः ॥ ७ ॥

नवलभाष्य ।

औ हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठआचार्य्य अबमें जिन्होंको अधिक समझरहाहौं ऐसे जे मेरी सेनाके मालिक श्रेष्ठयोधाहैं तिनको मैं आपको यादकरानेके लिये कहताहूं सो सुनिये ॥ ७ ॥

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ॥ ८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

तानेव स्वसेनानिविष्टान् पुरुषधौरेयानात्मीयभयपरिहारार्थं परिगणयति भवानित्यादिना ॥ ८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तानेवाह भवानिति द्वाभ्यां भवान् द्रोणाचार्य्यः समितिं संग्रामं जयतीति तथासौमदत्तिः सोमदत्तस्य पुत्रो भूरिश्रवाः ॥ ८ ॥

नवलभाष्य ।

तिन्होंमें प्रथमतो आपही हैं फिर भीष्मपितामहजी हैं औ कर्ण हैं औ संग्रामके जीतनेवाले कृपाचार्य्य हैं औ अश्वत्थामा औ विकर्ण औ सोमदत्त कापुत्र भूरिश्रवा येसब मेरी सेनामें महारथीहैं ॥ ८ ॥

अन्येच बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

द्रोणादिपरिगणनं स्वपरिशिष्टपरिसंख्यार्थंत्वं व्यावर्तयति अन्येचेति सर्वेऽपि भवन्त

मारभ्य मदीयपृतनायां प्रविष्टाः स्वजीवितादपि मह्यं स्पृहयन्तीत्याह मदर्थे इति यत् तु तेषां शूरत्वमुक्तं तदिदानीं विशदयति नानेति नानाविधान्यनेकप्रकाराणि शस्त्राण्यायुधानि प्रहरणानि प्रहरणसाधनानि येषान्ते तथा बहुयुधायुधसम्पन्नावपि तत्प्रयोगे नैपुण्याभावे तद्वैफल्यमिति चेन्नेत्याह सर्वे इति ॥ ९ ॥

स्वामिकृतटीका।

मदर्थे मत्प्रयोजनार्थं जीवितं त्यक्तुमध्यवसिता इत्यर्थः नाना अनेकानि शस्त्राणि प्रहरणसाधनानि येषान्ते युद्धे विशारदा निपुणाः ॥ ९ ॥

नवलभाष्य।

औ इनसबोंके सिवाय और भी मेरी सेना में ऐसे २ शूर हैं ये मेरे अर्थ अपने २ जीवनकी आशाको त्यागके प्राप्तहुये हैं औ अनेकप्रकारके चलाने योग्य जिनके पास शस्त्रहैं औ युद्धकरनेमें भी बड़े कुशल हैं ॥ ९ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

राजा पुनरपि स्वकीयभयाभावे हेत्वन्तरमाचार्यं प्रत्यावेदयति अपर्याप्तमिति अस्माकं खल्विदमेकादशसंख्यकाक्षौहिणीपरिगणितमपरिमितं बलं भीष्मेण च प्रथितमहामहिम्ना सूक्ष्मबुद्धिना सर्वतोरक्षितं पर्याप्तं परेषां पुनस्तदल्पसप्तसंख्यकाक्षौहिणी परिमितबलं भीमेन च चपलबुद्धिना कुशलताविकलेन परिपालितमपर्याप्तमस्माकमभिभवितुमसमर्थमित्यर्थः अथवा तदिदमस्माकं बलं भीष्माधिष्ठितमपर्याप्तमपरिमितमधृष्यमक्षोभ्यमेतेषां पाण्डवानां बलं भीमेनाभिरक्षितं पर्याप्तं परिमितं सोढुं शक्यमित्यर्थः अथवा तत् पाण्डवानां बलमपर्याप्तं नालमस्माकमस्मभ्यं भीष्माभिरक्षितं भीष्मोभिरक्षितोऽस्मै परबलनिवृत्त्यर्थमिति तदेव तथोच्यते इदं पुनरस्मदीयं बलमेतेषां पाण्डवानां पर्याप्तंपरिभवे समर्थं भीमाभिरक्षितं भीमोदुर्बलहृदयो यस्मादस्मै परबलनिवृत्त्यर्थमभिरक्षितः तस्मादस्माकं न किञ्चिदपि भयकारणमस्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

स्वामिकृतटीका।

ततः किमत आह अपर्याप्तमित्यादि तत्तथाभूतैर्वीरैर्युक्तमपि भीष्मेणाभिरक्षितमपि अस्माकं बलं सैन्यं अपर्याप्तं तैस्सहयोद्धुमसमर्थं भातिइदन्त्वेतेषां पांडवानां बलं भीमाभिरक्षितं सैन्यं पर्याप्तं समर्थं भाति ॥ १० ॥

नवलभाष्य।

और हे आचार्य्य सकलविद्यानिधान भीष्मपितामह करके सबप्रकारसे रक्षित औ पूर्वोक्त महारथियों करकेयुक्त हमारी भी सेनाहै सो इनपाण्डवों की सेनासे युद्धकरनेको असमर्थके सदृश प्रतीत होतीहै अर्थात् जानीजाती है और भीमसेनकरके चारोंतरफसे रक्षाको प्राप्त जोयह पाण्डवोंकी सेना है सो हमारी सेनासे युद्धकरनेको समर्थ मालूम पड़तीहै अर्थात् पाण्डवों

की थोड़ीभी सेनाहै परन्तु ऐसी उत्साहयुक्त मुझको विदितहोती है कि हमारी सेनाको जीतलेवेगी इसश्लोकका यहअर्थ श्रीधरस्वामीके संस्कृतटीका के अनुरोधसे लिखागया ॥ औ आनन्दगिरिजीकिटीकामें तो इससे विपरीत अर्थ कियाहै सोभी लिखतेहैं किहे आचार्य्य सूक्ष्मबुद्धि बड़ेमहात्मा भीष्म पितामहसे सबप्रकारकरके रक्षाको प्राप्त औ ग्यारहअक्षौहिणी होनेसे अपरिमित ऐसी हमारी सेना पाण्डवोंसे युद्धकरने को समर्थ है औ विद्याहीन चपलबुद्धि भीमसेन करके रक्षित औ सात अक्षौहिणी होने से थोड़ी जो पाण्डवों की सेना सो हमसे युद्धकरनेकोही असमर्थहै ×जीतनेकी तो वार्त्ता ही क्याहै और इसी अर्थका पोषक अर्थ प्रकारान्तरसे भी किया ॥ १० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एवहि ॥ ११ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

स्वकीयबलस्य भीष्माधिष्ठितत्वेन बहुत्वमुक्त्वा भीष्मशेषत्वेन तदनुगुणत्वं द्रोणादीनां प्रार्थयते अयनेष्विति कर्त्तव्यविशेषद्योतो च शब्दः समरसमारम्भसमये योद्धानां यथा प्रधानं युद्धभूमौ पूर्वापरादिदिग्विभागेनावस्थितिस्थानानि नियम्यन्ते नान्यत्रायनान्युच्यन्ते सेनापतिश्च सर्वसैन्यमधिष्ठाय मध्ये तिष्ठति तेषु सर्वेषु प्रक्लृप्तं प्रविभागमप्रत्याख्याय भवान् अश्वत्थामा कर्णश्चेत्येवमादयोभवन्तः सर्वेवस्थिताः सन्तो भीष्ममेव सेनापतिं सर्वतो रक्षन्तु तस्य हि रक्षणे सर्वमस्मदीयं बलं रक्षितं स्यात् परबलनिवृत्त्यर्थत्वेन तस्यास्माभीरक्षितत्वादित्यर्थः ॥ ११ ॥

स्वामिकृतटीका।

तस्माद्भवद्भिरेवं वर्त्तितव्यमित्याह अयनेष्विति अयनेषु व्यूहप्रवेशमार्गेषु यथाभागंविभक्तां स्वांस्वां रणभूमिंअपरित्यज्यावस्थिताः सन्तो भीष्ममेवाभिरक्षन्तुयथान्यैर्युद्ध्यमानःपृष्ठतः कैश्चिन्नहन्येत् तथा रक्षन्तु भीष्मबलेनास्माकं जीवनमितिभावः ॥ ११ ॥

नवलभाष्य।

तिससे सेनाके आनेजाने के स्थानोंपै अपनी अपनी रणभूमि को नहीं त्यागके सावधान स्थित आपसब बीरलोग भीष्मपितामहकी रक्षामें तत्परहूजिये जिसमें कोई भीष्मको पिछाड़ीसे न मारै क्योंकि भीष्मपितामह हमारे सेनापतिहैं इससे तिनकी रक्षाहीसे हमारी सब रक्षाहै ॥ ११ ॥

तस्य सञ्जनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

× अबहमारी रायमें तो यहां श्रीधरस्वामी का अर्थश्रेष्ठहै क्योंकि पाण्डवोंकी सेना में धर्म और कृष्णका बल अधिक होनेसे पाण्डवोंकी जयहोनेवाली है यह निश्चय पाण्डवों की सेनाके उत्साह दर्शन से दुर्योधन को भासजानाठीकही है ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तमेवमाचार्यं प्रतिसंवादं कुर्वन्तं भयाविष्टं राजानं दृष्ट्वा तदभ्यासवर्ती पितामह स्तद्बुद्ध्यनुरोधार्थं इत्थं कृतवानित्याह तस्येति राज्ञो दुर्य्योधनस्य हर्षं बुद्धिगतमुल्लासविशेषंपरपरिभवद्वारा स्वकीयविजयद्वारकं सम्यगुत्पादयन् भयं तदीयमपनिनीषुरुच्चैः सिंहनादंकृत्वा शङ्खमापूरितवान् किमिति दुर्य्योधनस्य हर्षमुत्पादयितुं पितामहो यतते कुरुवृद्धत्वात्तस्य कुरुराजत्वात् पितामहत्वाच्चास्य दुर्य्योधनभयापनयनार्था प्रीतिरुचिता तदुपजीवितयातद्वशत्वाच्च तस्य सिंहनादे शङ्खशब्देच परेषां हृदयव्यथां सम्भाव्यते दूरादेवारिनिवहं प्रतिभयजननलक्षणप्रतापत्वादित्यर्थः ॥ १२ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवंबहुमानयुक्तं राजवाक्यंश्रुत्वा भीष्मःकिंकृतवान् तदाहतस्येत्यादि तस्यराज्ञोहर्षं कुर्वन् पितामहो भीष्म उच्चैर्महान्तं सिंहनादंकृत्वा शंखंदध्मौवादितवान् ॥ १२ ॥

नवलभाष्य।

तब कुरुबंशियों में वृद्ध जो बड़े प्रतापी भीष्मजी सो राजाको भयभीत जानके उसके हृदयमें हर्षउत्पन्नकरते सिंहकेसदृश ऊंचेस्वरसे गाजिके अपने शंखको बजातेहुए १२ ॥

ततः शंखाश्च भेर्य्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

राजाभिप्रायं प्रतीत्यभीष्मप्रवृत्त्यनन्तरं तत्पक्षैस्तैस्तैराजभिः शङ्खादयो वाद्यविशेषा झटिति शब्दवन्तः सम्पादिताःसच शङ्खादिप्रयुक्तशब्दस्तुमुलो बहुलं भयं परेषां परिद्योतयन्नासीदित्याह तदिति ॥ १३ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवंसेनापतेर्भीष्मस्य युद्धोत्सवमालोक्य सर्वतोयुद्धोत्सवः प्रवृत्त इत्याह ततइत्यादिना पणवा मर्द्दला आनका गोमुखाश्च वाद्यविशेषाः सहसा तत्क्षणादेवाभ्यहन्यंत वादिताः स शब्दः शंखादिशब्दस्तुमुलो महान् अभूत् ॥ १३ ॥

नवलभाष्य।

तिसके अनन्तर दुर्योधन की सेनामें अनेक राजाओं के शंख औ भेरी अर्थात् नगारा औ ढोल औ मृदंग औ गोमुख आदि अनेकप्रकार के बाजे शीघ्रहीबजतेहुए फिर वेसब शब्दमिलके एकबड़ाभारीशब्द होताहुआ१३॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

एवं दुर्य्योधनपक्षे प्रवृत्तिमालक्ष्य परिसरवर्तिनौ केशवार्जुनौ श्वेतैर्हयैरतिबलै राक्रान्ते

युक्ते महत्यप्रधृष्ये रथे व्यवस्थितावप्राकृतौ शङ्खौ पूरितवन्तावित्याह ततः श्वेतैर्हयैरिति ॥ १४ ॥

स्वामिकृतटीका।

गतः पांडवसैन्ये प्रवृत्तं युद्धोत्सवमाह तत इत्यादि पंचभिः स्यन्दने रथे स्थितौ सन्तौ कृष्णार्जुनौ शंखौ प्रकर्षेण दध्मतुर्वादयामासतुः ॥ १४ ॥

नवलभाष्य।

अब पाण्डवोंकी सेनाका युद्धोत्सव कहते हैं कि हेराजन् फिर तिसके अनन्तर श्वेतवर्ण घोड़ोंसे जुड़ाहुआ जो बड़ाश्रेष्ठ रथ तिसमें बैठे हुए जो श्रीकृष्णमहाराज औ अर्जुन ये दोनों अपने २ दिव्यशंखोंको बजातेहुए॥१४॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

शङ्खयोर्दिव्यत्वमेवापादयति पाञ्चजन्यमिति केशवार्जुनयोर्युद्धाभिमुख्यं दृष्ट्वा संहृष्टः सारथ्येन समररसिको भीमसेनोपियुद्धाभिमुखोभूदित्याह पौण्ड्रमिति ॥ १५ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेव विभागेन दर्शयन्नाह पांचजन्यमिति पांचजन्यादीनि नामानि श्रीकृष्णादिशंखानां भीमं घोरं कर्म यस्य सः ॥ १५ ॥

नवलभाष्य।

तिसमें पांचजन्य× नामसे प्रसिद्ध जो शंखहै तिसको श्रीकृष्णमहाराज बजातेहुए औ देवदत्तशंखको अर्जुन वीर बजाताहुआ औ संग्राममें भयंकरहै कर्मजिसका अर्थात् बड़े घोरयुद्ध करनेवाला भीमसेन पौण्ड्रनाम बड़े भारी शंखको बजाता हुआ ॥ १५ ॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

एतेषां ईदृशीं प्रवृत्तिं प्रतीत्य परिपालनावकाशमासाद्य राज्ञोयुधिष्ठिरस्यापि प्रवृत्तिं दर्शयति अनन्तेति ज्यायसां भ्रातॄणामनुसरणमावश्यकमिति मत्वा तयोर्यवीयसोर्भ्रात्रोरपि प्रवृत्तिमाह नकुल इति ॥ १६ ॥

स्वामिकृतटीका।

अनन्तेति नकुलः सुघोषं नाम शंखं दध्मौ सहदेवोमणिपुष्पकं नाम ॥ १६ ॥

× एक समय श्रीकृष्णमहाराज समुद्र में प्रवेशकर पंचजन दैत्यको मारतेहुये उसके देहसे जो शंख उत्पन्नहुआ उसका नाम पांचजन्यहुआ ॥

नवलभाष्य ।

औ कुन्तीकापुत्र जो राजायुधिष्ठिर सो अनन्तविजय नाम शंखको बजाताहुआ औ नकुल औ सहदेव ये सुघोष औ मणिपुष्पक नाम शंखोंको बजाते हुए ॥ १६ ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

अन्येषामपि तत्पक्षीयाणां राज्ञामैकमत्यं विज्ञापयन् धृतराष्ट्रस्य दुराशां सञ्जयो व्युदस्यति काश्यश्चेत्यादिना ॥ १७ ॥

स्वामिकृतटीका ।

काश्यश्चेति काश्यः काशीराजः कथम्भूतः परमः श्रेष्ठ इष्वासो धनुर्यस्य सः ॥ १७ ॥

नवलभाष्य ।

औ श्रेष्ठहै धनुष जिसका ऐसा काशीकाराजा औ महारथी शिखण्डी औ धृष्टद्युम्न औ राजा विराट औ जिसका कहीं पराजय नहीं हुआ ऐसा जो सात्यकिनाम यादव ॥ १७ ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ॥
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान् दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

द्रुपदइति परमेष्वासादिविशेषलक्षणचतुष्टयं प्रत्येकं सम्बध्यते ॥ १८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

द्रुपद इति हे पृथिवीपते धृतराष्ट्र ॥ १८ ॥

नवलभाष्य ।

औ राजाद्रुपद औ द्रौपदी के पांचोपुत्र औ बड़ी भुजाहैं जिसकी ऐसा सुभद्राकापुत्र जो अभिमन्यु हे राजन् ये सब अपने अपने शंखोंको न्यारे २ बजाते हुये ॥ १८ ॥

सघोषोधार्त्तराष्ट्राणां हृदयानिव्यदारयत् ।
नभश्चपृथिवींचैव तुमुलोभ्यनुनादयन् ॥ १९* ॥

---

*यहां उन्नीसवें श्लोकमें व्यनुनादयन् ऐसाभी पाठहै उसमें आनन्दगिरिजीकी संमति भीहै इसीसे उन्होंने अपनेही टीकामें विशेषकरके अनुक्रमसे तीनों लोकोंको शब्दयुक्त करते सते ऐसा अर्थ किया ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तैस्तैराजभिः शङ्खानापूरयद्भिरापादितो महान् घोषस्तुमुलोऽतिभैरवोनभश्चान्तरिक्षं पृथिवीञ्च भुवनं लोकत्रयं सर्वमेव विशेषानुक्रमेण नादयन् नादयुक्तं कुर्वन् धार्त्तराष्ट्राणां दुर्योधनादीनां हृदयान्यन्तःकरणानि व्यदारयत् विदारितवान् युज्यतेहि तत्प्रेरितशङ्खघोषश्रवणात्त्रैलोक्याक्रोशे तमुपश्रृण्वतां तेषां हृदयेषुदोधूयमानत्वंतदाह सघोषइति॥१६॥

स्वामिकृतटीका।

सच शंखानां नादस्त्वदीयानां महाभयं जनयामासेत्याह सघोष इत्यादि धार्त्तराष्ट्राणां त्वदीयानां हृदयादिविदारितवान् किं कुर्वन् नभश्च पृथिवींचाभ्यनुनादयन् प्रतिध्वनिभिरापूरयन् ॥ १६ ॥

नवलभाष्य।

औ हे धृतराष्ट्र वहजो पाण्डवोंकी सेनाके राजाओंका औश्रीकृष्ण अर्जुनादिकों के शंखोंका शब्दसो सबमिलिकै आकाश औपृथिवी इन्होंको शब्द युक्तकरता हुआ अर्थात् पृथिवी आकाशमें भराहुआ दुर्योधनादिकोंके हृदय को बिदारण करताहुआ ॥ १९ ॥

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते॥ २० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

दुर्योधनादीनां धार्त्तराष्ट्राणामेवं भयप्राप्तिं प्रदर्श्य पार्थादीनां पाण्डवानां तद्वैपरीत्यमिदानीमुदाहरति अथेत्यादिना भीतिप्रत्युपस्थितेरनन्तरं पलायने प्राप्तेऽपि धैर्यमुत्पाद्य व्यवस्थितानप्रचलितानेव परान् प्रत्यक्षेणोपलभ्य हनुमन्तं वानरवरं ध्वजलक्षणत्वेनादायावस्थितोऽर्जुनो भगवन्तमाह इतिसम्बन्धः किमाहेत्यपेक्षयामिदं वक्ष्यमाणं हेतुमद्वचनमाह वाक्यमिति कस्यामवस्थायामिदमुक्तवानिति तत्राह प्रवृत्तइति शस्त्राणामिषुप्रासप्रभृतीनां सम्पातः समुदायस्तस्मिन् प्रवृत्ते योगाभिमुखे सतीति यावत् किंकृत्वा भगवन्तं प्रत्युक्तवानिति तदाह धनुरिति महीपतिशब्देन राजा प्रज्ञाचक्षुः सञ्जयेन संबोध्यते ॥ २० ॥

स्वामिकृतटीका।

एतस्मिन् समये श्रीकृष्णमर्जुनो विज्ञापयामासेत्याह अथेत्यादि चतुर्भिःश्लोकैः अथेतिअथानन्तरंमहाशब्दानन्तरं व्यवस्थितान् युद्धोद्योगेऽवस्थितान्कपिध्वजोऽर्जुनः२०॥

नवलभाष्य।

हे राजन् अबशंखों के नादके अनन्तर जबशस्त्र चलनेलगे उससमयमें अर्जुन युद्धकेउद्योगमें स्थित धृतराष्ट्र के बेटाओंको देखिके श्रीकृष्ण से यह वचन कहताहुआ ॥ २० ॥

अर्जुनउवाच।

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१

आनन्दगिरिकृतटीका।

तदेव गाण्डीवधन्विनोवाक्यमनुक्रामति सेनयोरिति उभयोरपि सेनयोः सन्निहितयोर्मध्ये मदीयं रथं स्थापयेत्यर्ज्जुनेन सारथ्ये सर्वेश्वरो नियुज्यते किंहि भक्तानामशक्यंयद्भगवानपि तन्नियोगं अनुतिष्ठति युक्तं हि भगवतो भक्तपारवश्यं अच्युतेति सम्बोधनं तया भगवतः स्वरूपं न कदाचिदपि प्रच्युतिं प्राप्नोतीत्युच्यते ॥ २१ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेव वाक्यमाह सेनयोरित्यादि ॥ २१ ॥

नवलभाष्य।

हे कृष्ण दोनों सेनाओंके बीचमें मेरे रथको खड़ा कीजिये ॥ २१ ॥

यावदेतान्निरीक्षेहं योद्धुकामानवस्थितान् ।

कैर्मयासहयोद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

मध्ये रथं स्थापयेत्युक्तं तदेव रथस्थापनस्थानं निर्धारयति यावदिति एतान् प्रतिपक्षत्वेनप्रतिष्ठितान् भीष्मद्रोणादीनस्माभिःसार्द्धंयोद्धुमपेक्षावतो यावद्गत्वानिरीक्षितुमहं क्षमः स्वां तावति प्रदेशे रथस्य स्थापनं कर्त्तव्यमित्यर्थः किञ्च प्रवृत्ते युद्धप्रारम्भे बहवो राजानोऽमुष्यां युद्धभूमावुपलभ्यन्ते तेषां मध्ये कैः सह मया योद्धव्यं न हि क्वचिदपि मम गतिप्रतिहतिरस्तीत्याह कैर्मयेति ॥ २२ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननुत्वं योद्धा नतु युद्धप्रेक्षकस्तत्राह कैर्मयेत्यादि कैः सह मया योद्धव्यं ॥ २२ ॥

नवलभाष्य।

दुर्बुद्धी जो दुर्योधन तिसकीयुद्धमें प्रीति करनेकी इच्छासे जे कोईराजा लोग युद्ध करनेके मनोरथ से यहां आयेहैं तिनमें मुझको किन्हों के संग युद्धकरना उचितहै औकिन्होंके संग नहीं उचित है ॥ २२ ॥

योत्स्यमानानवेक्षेहं य एतेऽत्रसमागताः ।

धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धेप्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

प्रतियोगिनामभावे कथं तव युद्धौत्सुक्यं फलवद्भवेदिति तत्राह योत्स्यमानानिति ये केचिदेते राजानो नानादेशेभ्योऽत्र कुरुक्षेत्रेसमवेतास्तानाहं योत्स्यमानान् परिगृहीत प्रहरणोपायानतितरां संग्रामसमुत्सुकानुपलभे तेन प्रतियोगिनां बाहुल्यमित्यर्थः तेषामस्माभिः सह पूर्ववैराभावे कथं प्रतियोगित्वं कल्प्यते तत्राह धार्त्तराष्ट्रस्येति धृतराष्ट्र

पुत्रस्य दुर्योधनस्य दुर्बुद्धेः स्वरक्षणोपायमप्रतिपद्यमानस्य युद्धाय संरम्भं कुर्वतो युद्धे युद्धभूमौ स्थित्वा प्रियं कर्तुमिच्छवो राजानः समागता दृश्यन्ततेन तेषामौपाधिकमस्मत् प्रतियोगित्वमुपपन्नमित्यर्थः ॥ २३ ॥

स्वामिकृतटीका।

योत्स्यमानानिति धार्तराष्ट्रस्य दुर्योधनस्य प्रियंकर्तुमिच्छन्तो य इह समागतास्तानहं द्रक्ष्यामि यावत् तावदुभयोः सेनयोर्मध्ये मे रथं स्थापयेत्वन्वयः ॥ २३ ॥

नवलभाष्य।

यहजाननेकेलिये जबतकमैं युद्धकरनेवाले राजाआदिशूरोंको देखूं तबतक दोनों सेनाओंके मध्यमें मेरेरथको आपस्थापनकीजिये ॥ २३ ॥

संजयउवाच।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

एवमर्जुनेन प्रेरितोभगवानहिंसारूपं धर्ममाश्रित्य प्रायशो युद्धात् तं निवर्त्तयिष्यतीति धृतराष्ट्रस्य मनीषां दुदूषयिषुः सञ्जयो राजानं प्रत्युक्तवानित्याह सञ्जय इति भगवतो हि भूभारापहारार्थं प्रवृत्तस्यार्जुनाभिप्रायप्रतिपत्तिद्वारेण स्वाभिसन्धिम्प्रतिलभ्यमानस्य परोक्तिमनुसृत्य स्वाभिप्रायानुकूलमनुष्ठानमादर्शयति एवमिति ॥ २४ ॥

स्वामिकृतटीका।

ततः किं वृत्तं इत्यपेक्षायां संजयउवाच एवमुक्त इत्यादि गुडाका निद्रा तस्याईशेन जितेन्द्रियेणार्जुनेन एवमुक्तः सन् हे भारत हे धृतराष्ट्र ॥ २४ ॥

नवलभाष्य।

हे राजन् इसप्रकार अर्जुनकरके प्रार्थनाकियेगये श्रीकृष्णभगवान् दोनों सेनाओंके मध्यमें ॥ २४ ॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषाञ्च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

भीष्मद्रोणादीनामन्येषाञ्च राज्ञामन्तिके रथं स्थापयित्वा भगवान् किं कृतवानिति तदाह उवाचेति एतानभ्यासे वर्तमानान् कुरून् कुरुवंशप्रसूतान् भवद्भिः सार्द्धं युद्धार्थं संगतान् पश्य दृष्ट्वाच यैः सहात्र युयुत्सा तैर्वोपावर्त्तते तैः साकं युद्धं कुरु नोखल्वेते शस्त्रास्त्रशिक्षावतां महीक्षितामुपेक्षोपपद्यते सारथ्ये तु न मनःखेदनीयमित्यर्थः ॥ २५ ॥

स्वामिकृतटीका।

भीष्मेति महीक्षितां राज्ञांच प्रमुखतः सम्मुखेरथं स्थापयित्वा हे पार्थ एतान् कुरून् पश्येति श्रीभगवानुवाच ॥ २५ ॥

नवलभाष्य।

भीष्म और द्रोणाचार्य के सम्मुख औ सब राजाओंके सम्मुख अर्थात् सामने रथको स्थापनकर बोलते हुए कि हे अर्जुन ये सब इकट्ठे हुए कौरवोंको तू देख ॥ २५ ॥

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान्।
आचार्य्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान्पौत्रान् सखींस्तथा।
श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥ २६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

एवंस्थिते महानधर्मो हिंसेति विपरीतबुद्ध्या युद्धादुपरिरंसा पार्थस्य संप्रवृत्तेति कथयति अत्रेत्यादिना सप्तम्या भगवदभ्यनुज्ञाने समरसमारम्भाय संवृत्तेसतीत्येतदुच्यते सेनयोरुभयोरपि स्थितान् पार्थो पश्यदितिसम्बन्धः अथ शब्दस्तथाशब्दपर्यायः श्वशुराः भार्याणां जनयितारः सुहृदो मित्राणि कृतवर्म प्रभृतयः ॥ २६ ॥

स्वामिकृतटीका।

ततः किंवृत्तमित्याह तत्रेत्यादि पितॄन् पितृव्यानित्यर्थः पुत्रान्पौत्रानितिदुर्योधनादीनां ये पुत्राः पौत्राश्च तानित्यर्थः सखीन् मित्राणि सुहृदः कृतोपकाराश्चापश्यत्२६ ॥

नवलभाष्य।

हे राजन् अब अर्जुन तिनदोनों सेनाओं के मध्यमें स्थित अर्थात् खड़े हुए जे पितृ अर्थात् पिताकेभाई औ पितामह भीष्मादि औ आचार्यद्रोण कृपादि औ मामा औ भाई औ पुत्र और पौत्र अर्थात् दुर्योधनादिकोंकेपुत्रों के बेटे औ मित्र औ श्वशुर औ जिन्होंनेअपने संग उपकार कियाहै २६॥

तान् समीक्ष्य सकौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान्।
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

सेनाद्वये व्यवस्थितान् यथोक्तान् पितृपितामहादीनालोक्य परमकृपापरवशः सन्नर्जुनो भगवन्तमुक्तवानित्याह तानिति विषीदन् यथोक्तानां पित्रादीनां हिंसासंरम्भनिबन्धनं विषादमुपतापं कुर्वन्नित्यर्थः ॥ २७ ॥

स्वामिकृतटीका।

ततः किंकृतवानित्याह तानिति सेनयोरुभयोरेतं समीक्ष्य कृपया महत्याविष्टो गृहीतोविषण्णः सन्निदमर्जुनोऽब्रवीदित्युत्तरस्यार्द्धश्लोकस्यवाक्यार्थः आविष्टो व्याप्तः २७॥

नवलभाष्य।

इनसबों को देखताहुआ इसप्रकार दोनों सेनाओंमें स्थित अपने सब बन्धुओं को अर्जुन देखके ॥ २७ ॥

अर्जुनउवाच ।

दृष्ट्वेमान् स्वजनान् कृष्ण युयुत्सून् समवस्थितान्
सीदन्ति मम गात्राणि मुखञ्च परिशुष्यति ॥ २८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

तदेवेदं शब्दवाच्यं वचनमुदाहरति दृष्ट्वेति आत्मीयं बन्धुवर्गं युद्धेच्छया युद्धभूमावुपस्थितमुपलभ्य शोकप्रवृत्तिं दर्शयति सीदन्तीति देवांशस्यैवार्जुनस्यानात्मविदः स्वपरदेहेष्वात्मीयाभिमानवतस्तत्प्रियस्य युद्धारंभे तन्मृत्युप्रसंगदर्शिनः शोकोमहानासीदित्यर्थः ॥ २८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

किमब्रवीदित्यपेक्षायामाह दृष्ट्वेमानित्यादि यावदध्यायसमाप्ति हेकृष्णयोद्धुमिच्छतः पुरतः सम्यगवस्थितान् स्वजनान् बन्धुजनान्दृष्ट्वा मदीयानि गात्राणि करचरणादीनि सीदन्तिविसीर्य्यन्ते ॥ २८ ॥

नवलभाष्य ।

बड़ीभारी कृपासे विषादको अर्थात् क्लेशको प्राप्तहो यहवचन बोलाकि हेकृष्ण युद्धकीइच्छासे मेरे समीप प्राप्तइनसबभाईबन्धुमित्रोंकोदेखके २८॥

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक् चैव परिदह्यते ॥ २९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

अंगेषु व्यथा मुखे परिशोषश्चेत्युभयं शोकलिंगमुक्तं संप्रति वेपथु प्रभृतीनि भीतिलिंगान्युपन्यस्यति वेपथुश्चेति रोमहर्षो रोम्नां गात्रेषु पुलकितत्वं ॥ २९ ॥

स्वामिकृतटीका ।

किंच वेपथुश्चेत्यादि वेपथुः कम्पः रोमहर्षो रोमाञ्चः स्रंसते निपतति परिदह्यते सर्वतः सन्तप्यते ॥ २९ ॥

नवलभाष्य ।

मेरा शरीर व्यथाको प्राप्तहो गिरासापड़ता है औ मेरामुख सूखता है औ मेराशरीर कम्पायमान होरहाहै औ रोमावली सब खड़ीहोरही हैं औ मेरे हाथसे गाण्डीव धनुष छूटापड़ताहै औ मेरे शरीर की त्वचा अर्थात् खाल भस्म होरही है ॥ २९ ॥

नच शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ।
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥ ३० ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

किञ्च धैर्यमपि संवृत्तमित्याह नचेति मोहोपि महान् भवतीत्याह भ्रमतीवेति विप

रीतनिमित्तप्रतीतिरपि मोहोभवतीत्याह निमित्तानीति तानि विपरीतानि निमित्तानि यानि वामनेत्रस्फुरणादीनि ॥ ३० ॥

स्वामिकृतटीका ।

अपि च नच शक्नोमीत्यादि विपरीतानि निमित्तानि अनिष्टसूचकानि शकुनादीनि पश्यामि ॥ ३० ॥

नवलभाष्य ।

औ मैं अब संग्राममें स्थितहोनेको समर्थ नहीं हौं औ मेरामन भ्रमसा रहाहै औ हेकृष्ण सगुनभी मैं विपरीत अर्थात् उलटेही देखता हूं ॥ ३० ॥

नच श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।
न कांक्षे विजयं कृष्ण नच राज्यं सुखानिच ॥ ३१ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

युद्धे स्वजनहिंसया फलानुपलम्भादपि तस्मादुपरिरंसा जायत इत्याह नचेति प्राप्तानां युयुत्सूनां हिंसया विजयो राज्यं सुखानि च लब्धुं शक्यानीति कुतो युद्धादुपरतिरित्याशङ्क्याह न कांक्षइति ॥ ३१ ॥

स्वामिकृतटीका ।

किंच नचेत्यादि आहवे युद्धे स्वजनं हत्वाश्रेयः फलंनपश्यामि विजयादिकं फलं किं न पश्यसीति चेत् तत्राह न कांक्ष इति ३१ ॥

नवलभाष्य ।

औ संग्राममें अपने मित्र बान्धवोंको मारके कुछफल नहीं देखता कदाचित् राज्यलाभादिही फलकहो तो हेकृष्ण न तो मैं विजयचाहताहूं औ राज्य न सुख ॥ ३१ ॥

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ।
येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥ ३२॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

किमिति राज्यादिकं सर्वाकांक्षितत्वात् न कांक्षसे तेन हि पुत्रभ्रात्रादीनां स्वास्थ्य सधातुं शक्यमित्याशंक्याह किमिति राजादीनामाक्षेपे हेतुमाह येषामिति ॥ ३२ ॥

स्वामिकृतटीका ।

एतदेव प्रपंचयति किं नो राज्येन इत्यादि सार्द्धद्वयेन ॥ ३२ ॥

नवलभाष्य ।

औ हे गोविन्द हमको राज्य औ भोग औ जीवन इन्होंसे क्या होना है क्योंकि जिन इष्टमित्रों के लिये राज्य औ भोग औ सुख ये सब सम्पादन कियेजाते हैं अर्थात् इकट्ठे कियेजातेहैं ॥ ३२ ॥

त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।
आचार्य्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥ ३३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तानेव विशिनष्टि आचार्य्या इति ॥ ३३ ॥

स्वामिकृतटीका।

इमे इति यदर्थमस्माकं राज्यादिकमपेक्षितन्ते एते प्राणधनादित्यागमङ्गीकृत्य युद्धार्थमवस्थिताः अतः किमस्माकं राज्यादिभिः कृत्यमित्यर्थः ॥ ३३ ॥

नवलभाष्य।

वे सब मित्र बान्धव तो अपने प्राण औ धन इनको त्यागके युद्धकरने को संग्रामभूमि में प्राप्तहुये हैं इससे हेकृष्ण आचार्य अर्थात् विद्याप्रदाता द्रोणादिक औ पिताकेभाईऔ पुत्र औ पितामह भीष्मादि॥ ३३ ॥

मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा।
एतान्नहंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ॥ ३४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

मातुला इति श्याला भार्य्याणां भ्रातरो धृष्टद्युम्नप्रभृतयः बध्येष्वपि स्वराज्यपरिपंथिष्वाततायिषु कृपाबुद्ध्या स्वधर्मात् पूर्वोक्तमोहादिवशात् प्रच्युतिं प्रदर्शयति एतानिति जिघांसन्तं जिघांसीयादिति न्यायादेतेषां हिंसा न दोषायेत्याशंक्याह घ्नतोपीति ॥ ३४ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु यदि कृपयात्वमेतान्नहंसि तर्हित्वामेते राज्यलोभेन हनिष्यन्त्येव अतस्त्वमेवैतान् हत्वा राज्यं भुङ्क्ष्वेति तत्राह एतानित्यादिसार्द्धेन घ्नतोऽपि अस्मान्मारयतोऽपि एतान् ॥ ३४ ॥

नवलभाष्य।

औ मामा औश्वशुर औ पौत्र अर्थात् दुर्योधनादिकोंके पुत्रोंके पुत्र औ श्यालपत्नियोंके भाई औ सम्बन्धी नातेदार ये सब राज्यलोभकरके मुझको मारैं तौ भी हे मधुसूदन ॥ ३४ ॥

अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किंनु महीकृते।
निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ॥ ३५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

पृथिवी प्राप्त्यर्थं हि हननमेतेषामिष्यते न च तत्प्राप्तिः समीहितेति कैमुतिकन्यायेन दर्शयति अपीति न हि महदपि त्रैलोक्यलक्षणं राज्यं लब्धुं स्वजनहिंसायै मनोमदीयं स्पृहयति पृथिवी प्राप्त्यर्थं पुनर्बन्धुबधं न श्रद्दधामीति किं वक्तव्यमित्यर्थः दुर्योधनादीनां शत्रूणां निग्रहे प्रीतिप्राप्तिसम्भवाद् युद्धं कर्त्तव्यमित्याशंक्याह निहत्येति॥३५॥

स्वामिकृतटीका ।

अपीति त्रैलोक्यराज्यस्यापि हेतोः तत्प्राप्त्यर्थमपि हन्तुंनेच्छामि किं पुनर्महीमात्र प्राप्तये इत्यर्थः ॥ ३५ ॥

नवलभाष्य ।

तीनलोकोंके राज्यकेलिये भी मैं इनको नहींमाराचाहताहूं और पृथिवीमात्र की राज्यके लिये मारौं यह कहनाही क्याहै औ हे जनार्दन इन धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारके क्याहमको प्रीतिहोगी ॥ ३५ ॥

पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ।
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

यदिपुनरमी दुर्योधनादयो न निगृह्येरन् भवन्तस्तर्हि तैर्निगृहीता दुःखिताः स्युरित्याशङ्क्याह पापमेवेति यदिमे दुर्योधनादयो निर्दोषानेवास्मान् युद्धभूमौ हन्यु स्तदैतानग्निदोगरदश्चेत्यादिलक्षणोपेतानाततायिनो निर्दोषस्वजनहिंसाप्रयुक्तं पापं पूर्वमेव पापिनः समाश्रयेदित्यर्थः अथवा यद्यप्येते भवन्त्वाततायिनस्तथाप्येतानतिशोच्यान् दुर्योधनादीन्हिंसित्वातत्कृतं पापमस्मानेवाश्रयेदतो नास्माभिरेते हन्तव्या इत्यर्थः अथवा गुरुभ्रातृसुहृत्प्रभृतीनेतान् हत्वा वयमाततायिनः स्यामः ततश्चैतान् हत्वा तत्कृतं पापमाततायिनोऽस्मानेवसमाश्रयेदिति युद्धादुपरमणमस्माकं श्रेयस्करमित्यर्थःफलाभावादनर्थसम्भवाच्च परहिंसानकर्तव्या इत्युपसंहरतितस्मादिति किञ्चराज्यसुखमुद्दिश्य युद्धमुपक्रम्यते नच स्वजनपरिक्षये सुखमुपपद्यते तेननकर्तव्यं युद्धमित्याहस्वजनंहीति ॥ ३६ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ननुचअग्निदोगरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः ॥ इति स्मरणादग्निदाह्यादिभिः षड्भिर्हेतुभिरेते तावदाततायिनः आततायिनांच बधो युक्त एव आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । नाततायिबधे दोषो हन्तुर्भवतिकश्चनेति वचनात् तत्राह पापमेवेत्यादि सार्द्धेन आततायिनमायान्तमित्यादिकमर्थशास्त्रं तच्च धर्मशास्त्रात् तु दुर्बलं यथोक्तं याज्ञवल्क्येन। स्मृत्योर्विरोधेन्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः । अर्थशास्त्रात् तु बलवद्धर्मशास्त्रमितिस्मृतिः इति । तस्मादाततायिनामप्येतेषामाचार्यादीनां बधेऽस्माकं पापमेव भवेत् अन्याय्यत्वात् अधर्मत्वाच्चैतद्बधस्य अमुत्रेहवा न सुखं स्यात् इत्याह स्वजनं हीति ॥ ३६ ॥

नवलभाष्य ।

और आततायीभी अर्थात् शस्त्रलेके हमारे मारनेको उद्यतभी ये दुर्योधनादिक तिनको मारके केवल हमको पापहीहोगा अर्थात् कुछ सुख न होगा न कहौ मन्वादिस्मृतियों में तौ ऐसा लिखाहै कि जो अपने घरमें आगलगादे १ और जो विषदेदेवै २ और जो शस्त्र हाथमें लिये मारने को

आवताहोय ३ और जिसने अपनाधन हरलियाहोय ४ और जिसने अपनी पृथिवी हरलयीहोय ५ और जिसने स्त्रीको हरलिया होय ६ ये छः आततायी कहातेहैं औ आततायी को आतेदेखके बिनाविचारेही मारदेय क्योंकि आततायीके मारनेमें कुछ दोष नहीं है तौ इसप्रमाणसे यहासिद्ध हुआ कि इन छःतरहके आततायियों में कोईप्रकार का आततायी होय तिसकामारना योग्यहीहै औ ये दुर्योधनादिक तौ सबप्रकारसे आततायी हैं क्योंकि इन्होंने लाक्षागृहमें अग्निभी दी औ भीमसेनको विष भी दिया औ शस्त्रपाणि तौ प्रत्यक्षही खड़े हैं औ द्यूतमिष से धनभी हरलिया औ पृथिवी भी इन पाण्डवों के भागकी नहींदेते हैं औ द्रौपदीको भी सभा में नग्नकरना विचारा फिर इनआततायियों के मारनेमें शास्त्रसे भी कुछ पाप नहीं पायाजाता है फिर अर्जुनने किसआशयसे कहा कि इनआततायी दुर्योधनादिकों के मारनेमें पापहोगा अब इसप्रश्नका उत्तर यहहै कि आततायीको मारना यह अर्थशास्त्रहै क्योंकि अपने प्रयोजनके लिये आततायी का बधकियाजाता है कुछ धर्मबुद्धि से नहीं कियाजाता है औ शास्त्रने भी आततायीके×बधमें दोषाभाव प्रतिपादन किया कुछ रक्षण हरिस्मरणादिक के सदृश पुण्याधिक्य नहीं प्रतिपादनकिया न कुछ आततायीके नहींमारनेमें प्रत्यवाय अर्थात् दोषकहा इससे यह अर्थशास्त्रहै औ गुरुओंको और ज्ञातिबन्धुमित्रवर्गोंकानहींमारना यहधर्मशास्त्रहै क्योंकिगुर्वादिकोंकी अर्थात् गुरूको आदिलेके जे बड़ेहैं तिनकीरक्षा धर्मबुद्धिही से होती है और नहीं करनेमें शास्त्रमें दोषभी कहाहै और अर्थशास्त्रसे धर्मशास्त्रको बलवत्त्व औ श्रेष्ठत्व याज्ञवल्क्यादिस्मृतियों*में कहाहै इसआशय से अर्जुनने कहा कि इनआततायि दुर्योधनादिकों को मारके कुलक्षयादि दोषसे हमको पापही होगा तिसकारणसे हेकृष्ण अपने बान्धव जे धृतराष्ट्रके पुत्र तिनको मारने को हम योग्यनहीं हैं औ हे माधवलक्ष्मीपते अपने मित्रजनों को मारके हम कैसे सुखीहोवेंगे ॥ ३६ ॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

कथं तर्हि परेषां कुलक्षये स्वजनहिंसायाञ्च प्रवृत्तिस्तत्राह यद्यपीति लोभोपहतबुद्धित्वात् तेषां कुलक्षयादिप्रयुक्तदोषप्रतीत्यभावात् प्रवृत्तिविस्रम्भःसम्भवतीत्यर्थः ॥ ३७ ॥

× अग्निदोगरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेतेआततायिनः १ आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । नाततायिबधेदोषो हन्तुर्भवतिकश्चन २ ॥

* याज्ञ०व्या० १२ स्मृत्योर्विरोधन्यायस्तुबलवान् व्यवहारतः । अर्थशास्त्रात्तुबलवद्धर्म्मशास्त्रमितिस्थितिः ६ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ननु चैतेषामपि बन्धुवधो दोषे समाने यथैवेते बन्धुबधमंगीकृत्यापि युद्धे प्रवर्त्तन्ते तथैव भवानपि प्रवर्त्ततां किमनेन विषादेनेत्याह यद्यपीति द्वाभ्यां राजलोभेनोपहतं भ्रष्टविवेकं चेतो येषान्ते एते दुर्योधनादयो यद्यपि दोषं न पश्यन्ति ॥ ३७ ॥

नवलभाष्य ।

औ लोभसे नष्टविवेक हुआ चित्तजिन्होंका ऐसे दुर्योधनदि यद्यपि कुलके क्षयसे कियेहुये दोषऔ मित्र द्रोहमें पातकको नहींदेखतेहैं ॥ ३७ ॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्त्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

परेषामिवास्माकमपि प्रवृत्तिविश्रम्भः सम्भवेदिति चेन्नेत्याह कथमिति कुलक्षयेति कुलक्षये मित्रद्रोहे च दोषं प्रपश्यद्भिरस्माभिस्तद्दोषशब्दितं पापं कथं न ज्ञातव्यं तद ज्ञाने तत्परिहारासम्भवादतोस्मात् पापान्निवृत्तत्यर्थं तज्ज्ञानमपेक्षमिति पापपरिहारार्थि नामस्माकं न युक्ता युद्धे प्रवृत्तिरित्यर्थः ॥ ३८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

कथमिति तथाप्यस्माभिर्दोषं प्रपश्यद्भिरस्मात् पापान्निवर्त्तितुं न ज्ञेयं निवृत्तावेव बुद्धिः कर्तव्येत्यर्थः ॥ ३८ ॥

नवलभाष्य ।

औ हे जनार्दन* इसकुल क्षयसे उत्पन्नहुये दोषको देखनेवाले जेहमतिन को इसपापसे निवृत्तहोनाकैसे नहींचाहिये ॥ ३८ ॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ३९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

कोसौ कुलक्षये दोषो यद्दर्शनाद्युष्माकं युद्धादुपरतिरपेक्ष्यते तत्राह कुलेति कुलस्य हिक्षये कुलसम्बन्धिनश्चिरन्तनाधर्मास्तत् तदग्निहोत्रादिक्रियासाध्यानाशमपयान्ति क र्तुरभावादित्यर्थः धर्मनाशेपि किं स्यादिति चेत् तत्राह धर्मइति कुलप्रयुक्ते धर्मे कुलना शादेव नष्टे कुलक्षयकरस्य कुलपरिशिष्टमखिलमपि तदीयोऽधर्मोऽभिभवत्यधर्मभूयिष्ठं तस्य कुलं भवतीत्यर्थः ॥ ३९ ॥

---

* जो भक्तजनों करके प्रार्थना कियाजाय औ दुष्टजनोंको पीड़न करै उसको जनार्दन कहते हैं यह व्याकरण में प्रसिद्धहै यहां जनार्दन कहने का अर्जुनका यह आशय है कि मुझको अपने दुःख के निवृत्तिके लिये आपही प्रार्थनीयहो ॥

स्वामिकृतटीका।

तमेव दोषं दर्शयति कुलक्षय इत्यादि सनातनाः परम्पराप्राप्ताः उत अपि अवशिष्टं कृत्स्नमपि कुलं अधर्मोऽभिभवति प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ३९ ॥

नवलभाष्य।

क्योंकिजबकुल का क्षयहोताहै तौहमेशासे चलेआये जेकुलके धर्म तेसब नष्टहोजाते हैं अबजो धर्मनष्टहुआ तौ सबकुलको अधर्म दबालेताहै ३९ ॥

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ ४० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

कुलक्षयकृतेऽवशिष्टकुलस्याधर्मप्रवणत्वे को दोषः स्यादिति तत्राह अधर्मेति पापप्रचुरे कुले प्रसूतानां स्त्रीणां प्रदुष्टत्वे किं प्रदुष्यति तत्राह स्त्रीष्विति ॥ ४० ॥

स्वामिकृतटीका।

ततश्च अधर्माभिभवादित्यादि ॥ ४० ॥

नवलभाष्य।

फिरजब अधर्मके दबाउ से धर्मकीहानि होतीहै तौ उन अच्छे कुलोंकी स्त्रियां दोषयुक्तहोती हैं अर्थात्व्यभिचारिणी होजातीहैं फिरहेकृष्ण उनस्त्रियाओंको दोषयुक्तहोनेसे अर्थात् व्यभिचारहोनेसे वर्णसंकरपुत्रउत्पन्नहोताहै हीनजातीय अन्यपुरुष अर्थात्कमीनाजाति से पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ ४० ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्यच।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ४१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

वर्णसंकरस्य दोषपर्यवसायितामादर्शयति संकर इति कुलक्षयकराणां दोषान्तरं सञ्चिनोति पतन्तीति कुलक्षयकृतां पितरो निरयगामिनः सम्भवन्तीत्यत्र हेतुमाह लुप्तेति पुत्रादीनां कर्तॄणामभावात् लुप्ता पिण्डस्योदकस्य च क्रिया येषान्ते तथा ततश्च प्रेतत्वपरावृत्तिकारणाभावान्नरकपतनमेवावश्यकमापद्येदित्यर्थः ॥ ४१ ॥

स्वामिकृतटीका।

एवं सति संकर इत्यादि एषां कुलघ्नानां पितरः पतन्ति हि यस्मात् लुप्ताः पिण्डोदकक्रियाः येषान्ते तथा ॥ ४१ ॥

नवलभाष्य।

फिरजिन पुरुषोंने कुलका नाशकियाहै उनकेकुलके नरक प्राप्तिके लियेही वहवर्णसंकर होताहै क्योंकि श्रद्धादि कर्मोंके अधिकारी के अभावसे लुप्तहो

गई अर्थात् छूटगईहै श्राद्ध तर्पणादि क्रियाजिन्होंकी ऐसे जेउन कुलनाशकों केपितर ते नरकमें गिरपरते हैं ॥ ४१ ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥ ४२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

कुलक्षयकृतामेतैरुदाहृतैर्दोषैः वर्णसंकरहेतुभिर्जातिप्रयुक्ताश्च धर्माः सर्वे समुत्साद्यन्ते तेन कुलक्षयकारणाद्युद्धादुपरतिरेव श्रेयसीत्याह दोषैरिति ॥ ४२ ॥

स्वामिकृतटीका।

उक्तदोषमुपसंहरति दोषैरित्यादि द्वाभ्याम् उत्साद्यंते लुप्यन्ते जातिधर्मावर्णधर्माः कुलधर्माश्चेति चकारादाश्रमधर्मादयोऽपि गृह्यन्ते ॥ ४२ ॥

नवलभाष्य।

औ हे कृष्ण वर्णसंकरके उत्पन्न करनेवाले जे कुलघ्नपुरुषोंके अर्थात् कुल के नाश करनेवाले पुरुषोंके पूर्वोक्त दोषतिन्हों करके ब्राह्मणादि जातिकेधर्म और सनातन कुलोंके जे सबधर्मते नाशको प्राप्तहोजाते हैं ॥ ४२ ॥

उत्सन्नकुलधर्म्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

किञ्च जातिधर्मेषु कुलधर्मेषु च उत्सन्नेषु तत्तद्धर्मवर्जितानां मनुष्याणामनधिकृतानां नरकपतनध्रौव्यादनर्थकरमिदमेव हेयमित्याह उत्सन्नेति तथोक्तानां मनुष्याणां नरकपातस्यावश्यकत्वे प्रमाणमाह इत्यनुशुश्रुमेति ॥ ४३ ॥

स्वामिकृतटीका।

उत्सन्नेति उत्सन्नाः कुलधर्माः येषामिति उत्सन्नजातिधर्मादीनामप्युपलक्षणम् अनुशुश्रुम श्रुतवन्तो वयं प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पापेष्वभिरतानराः अपश्चात्तापिनः पापान्निरयान् यान्ति दारुणानित्यादि वचनेभ्यः ॥ ४३ ॥

नवलभाष्य।

औ हे जनार्दन जिन्होंके कुलधर्मनष्टहुये ऐसे मनुष्योंका नियत नरकमें बास होताहै यहहम सुनते हुयेहैं ॥ ४३ ॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥ ४४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

राज्यप्राप्तिप्रयुक्तसुखोपभोगलब्धतया स्वजनहिंसायां प्रवृत्तिरस्माकं गुणदोषविभागविज्ञानवतामतिकष्टेति परिभ्रष्टहृदयः सन्नाह अहोबतेति ॥ ४४ ॥

स्वामिकृतटीका।

बन्धुबधाध्यवसायेन सन्तापमान आह अहोवतेत्यादि स्वजनं हन्तुमुद्यता इति यत् एतन्महत् पापं कर्तुमध्यवसायात् कृतवन्तो वयम् अहोवत बृहत्कष्टमित्यर्थः॥ ४४॥

नवलभाष्य।

औ यहबड़ा आश्चर्य्यहै औबड़ेखेदकी बातहै जोहमराज्यके सुख लोभसे अपने इष्टमित्र बन्धुजनों को मारने को उद्यत हुये सो बड़ापाप करने को-निश्चय करतेहुये॥ ४४॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्त्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥ ४५॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तदेवं युद्धे विमुखः सन् परपरिभवप्रतीकाररहितोवर्तेयास्तर्हित्वां शस्त्रपरिग्रहरहितं शत्रवः शस्त्रपाणयो धार्त्तराष्ट्रानिघ्नीयुरित्याशंक्याह यदीति प्राणत्राणादपि प्रकृष्टो धर्मः प्राणभृतामहिंसेति भावः॥ ४५॥

स्वामिकृतटीका।

एवं सन्तप्तः सन् मृत्युमेवाशंसमान आह यदि मामित्यादि अकृतप्रतीकारं दृष्ट्वा तूष्णीमुपविष्टं मां यदि हनिष्यन्ति तर्हि तद्धननं ममक्षेमतरम् अत्यन्तहितं भवेत् पापान्निष्पत्तेः॥ ४५॥

नवलभाष्य।

इससे जो मैं जो कुछयत्ननकरूं औ शस्त्रोंकोभी त्यागदेऊं ऐसेमुझको शस्त्रोंकोहाथमें लियेहुये धृतराष्ट्रके पुत्र संग्राम में मारैं तौ मेरा बड़ा कल्याण होय॥ ४५॥

संजय उवाच।

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः॥ ४६॥

इतिश्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादेसैन्यदर्शनोनामप्रथमोऽध्यायः॥ १॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यथोक्तमर्जुनस्य वृत्तान्तं सञ्जयो धृतराष्ट्रं राजानं प्रतिप्रवेदितवान् तमेव प्रवेदनप्रकारं दर्शयति एवमिति प्रदर्शितेन प्रकारेण भगवन्तं प्रतिविज्ञापनं कृत्वा शोकमोहाभ्यां परि

भूतमानसः सन्नर्जुनः संख्ये युद्धमध्ये शरेण सहितं गाण्डीवंत्यक्त्वा न योत्स्येऽहमिति ब्रुवन् मध्ये रथस्य संन्यासमेव श्रेयस्करं मत्वोपविष्टवानित्यर्थः ॥ ४६ ॥

इति आनन्दगिरिटीकायां प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

स्वामिकृतटीका।

ततः किंवृत्तमित्यपेक्षायां संजय उवाच एवमुक्त्वेत्यादि संख्येसंग्रामे रथोपस्थे रथस्योपरि उपाविशत् उपविवेश शोकेन संविग्नं प्रकम्पितं मानसं चित्तं यस्य सः तथा ॥४६॥

इतिश्रीधरस्वामिकृतायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

नवलभाष्य।

अबसंजय धृतराष्ट्रसे कहताहै कि हे राजन् इसप्रकार अर्जुन संग्राम में कृष्णसे बचन कहिकै औ धनुषबाण को त्यागशोकग्रस्त मनहो रथक उपस्थभागमें अर्थात् तकियाके स्थानपर बैठता हुआ ॥ ४६ ॥

इतिश्रीस्वर्गवासि त्रिपाठ्युमादत्तशर्मविरचिते भगवद्गीताभाषानुवादे सैन्यदर्शनो नामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



श्रीमद्भगवद्गीतासटीक॥

द्वितीयोऽध्यायः।

संजय उवाच।

* तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः* ॥ १ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अहिंसा परमो धर्मो भिक्षाशनञ्चेत्येवं लक्षणयाबुद्ध्या युद्धवैमुख्यमर्जुनस्य श्रुत्वा स्वपुत्राणां राज्यैश्वर्यमप्रचलितमवधार्य स्वस्थहृदयं धृतराष्ट्रं दृष्ट्वा तस्य दुराशामपनेष्यामीति मनीषया सञ्जयस्तं प्रत्युक्तवानित्याह सञ्जय इति परमेश्वरेण स्मार्यमाणोऽपि कृत्याकृत्ये सहसा नार्जुनः सस्मार विपर्ययप्रयुक्तस्य शोकस्य दृढतरमोहहेतुत्वात् तथापि तं भगवान्नोपेक्षितवानित्याह तं तथेति तं प्रकृतं पार्थं तथा स्वजनमरणप्रसंगदर्शनेन कृपया करुणयाविष्टमधिष्ठितमश्रुभिः पूर्णे समाकुले चेक्षणे यस्य तम् अश्रुव्याप्ततरलाक्षं विषीदन्तं शोचन्तमिदं वक्ष्यमाणं वाक्यं सोपपत्तिकं वचनं मधुनामानमसुरं सूदितवानिति मधुसूदनो भगवानुक्तवान्नतु यथोक्तमर्जुनमुपेक्षितवानित्यर्थः ॥ १ ॥

स्वामिकृतटीका।

द्वितीये शोकसन्तप्तमर्जुनं ब्रह्मविद्यया। प्रतिबोध्य हरिश्चक्रे स्थितप्रज्ञस्य लक्षणम् ॥
ततः किं वृत्तमित्यपेक्षायां सञ्जय उवाच तं तथेति अश्रुभिः पूर्णे आकुले ईक्षणे यस्य तं तथा उक्तप्रकारेण विषीदन्तमर्जुनं प्रति मधुसूदन इदं वाक्यमुवाच ॥ १ ॥

नवलभाष्य।

शोकमोहयुतमित्रकोकरिविद्याउपदेश।हरिदूसरअध्यायमेंपरमतिकीन्हनिदेश
अबसंजय धृतराष्ट्रसे कहताहुआ कि हे राजन् तिसपूर्वोक्त प्रकार करके

---

* मधुसूदन कहनेका यह आशयहै कि जोमोहरूप मधुदैत्यका नाशकरने वाला नारायण उसको मधुसूदन कहतेहैं तो जो विश्वके मोहके नाशकरनेमें समर्थ उसको एकअर्जुनका शोकमोह नाश करना क्या बड़ी बात है ॥

अत्यन्त कृपा युक्त औ आंसुओं से परिपूर्ण औव्याकुल जिसके नेत्रहोइर-
हे औ बिषादको प्राप्त अर्थात् शोक जनितक्लेशयुक्त (शोक से उत्पन्न हुआ
जो क्लेश तिसकरके युक्त) ऐसे अर्जुन को देखके मधुसूदन जो श्रीकृष्णसो
यह बचन कहतेहुये ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

किं तद्वाक्यमित्यपेक्षायामाह श्रीभगवानिति कुतो हेतोस्त्वा त्वां सर्वक्षत्रियप्रवरं कश्मलं मलिनं शिष्टगर्हितं युद्धात् पराङ्मुखत्वं विषमे सभयस्थाने समुपस्थितं प्राप्तम नार्यैःशास्त्रार्थमविद्भिर्जुष्टं सेवितमस्वर्ग्यं स्वर्गानर्हं प्रत्यवायकारणमिह चाकीर्तिकरम यशस्करमर्जुननाम्ना प्रख्यातस्य तत्र नैतत् युक्तमित्यर्थः ॥ २ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तदेव वाक्यमाह कुत इति कुतो हेतोस्त्वा त्वां विषमे सङ्कटे इदं कश्मलमुपस्थितमयं मोहः प्राप्तो यत आर्यैरसेवितमस्वर्ग्यमधर्म्यमयशस्करञ्च ॥ २ ॥

नवलभाष्य ।

कि हे अर्जुन इससंकटमें तुझको कौनकारणसे जो श्रेष्ठ पुरुषों ने नहीं
सेवनकिया औधर्मकीर्त्तिका नाशकरने वाला कश्मल अर्थात् मोहसो प्रा-
प्तहुआहै ॥ २ ॥

माक्लैव्यं गच्छ कौन्तेय नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ ३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

पुनरपि भगवानर्जुनं प्रत्याह क्लैव्यमिति क्लैव्यं क्लीबभावमधैर्यं मास्मगमः मागाः हे पार्थ पृथातनय न हि त्वयि महेश्वरेणापि कृताहवे प्रख्यातपौरुषे महामहिमन्येतदुपपद्यते क्षुद्रं क्षुद्रत्वकारणं हृदयदौर्बल्यं मनसो दुर्बलत्वमधैर्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ युद्धायोपक्रमं कुरु हे परन्तप परं शत्रुं तापयतीति तथा संबोध्यते ॥ ३ ॥

स्वामिकृतटीका ।

माक्लैव्यमिति तस्मात् हेपार्थ क्लैव्यं कातर्यं मागच्छ न प्राप्नुहि यतस्त्वय्येतन्नोपपद्यते योग्यं न भवति क्षुद्रं तुच्छं हृदयदौर्बल्यं कातर्यं त्यक्त्वा युद्धायोत्तिष्ठ हे परन्तप शत्रुतापन ॥ ३ ॥

नवलभाष्य ।

औ हे पार्थ औ हे कुन्ती के पुत्रतूक्लैव्य जो कातरतातिसको मतप्राप्तहो

औ महानुभाव शूरशिरोमणि जोतूहै तिसमें यहकातरता अर्थात् कादरपना होना युक्तनहीं है इससे हे परंतप शत्रु संतापकारक क्षुद्रअर्थात् अत्यन्तक-महकीकत जो अपने हृदयका दौर्बल्य अर्थात् कादरपना तिसको त्याग के युद्धकरने को उठ ॥ ३ ॥

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

एवं भगवता प्रतिबोध्यमानोऽपि शोकाभिभूतचेतस्त्वादप्रतिबुध्यमानः सन्नर्जुनः स्वाभिप्रायमेव प्रकृतं भगवन्तं प्रत्युक्तवान् कथमित्यादिना भीष्मं पितामहं द्रोणं द्रोणाचार्यं संख्ये रणे हे मधुसूदन इषुभिः यत्र वाचापि योत्स्यामीति वक्तुमनुचितं तत्र कथं वाणैर्योत्स्य इति भावः सायकैस्ते कथं प्रतियोत्स्ये तौ हि पूजार्हौ कुसुमादिभिरर्चनयोग्यौ हे अरिसूदन सर्वानेवारीन् यत्नेन सूदितवानिति भगवानेवं संबोध्यते ॥ ४ ॥

स्वामिकृतटीका।

नाहं कातरत्वेन युद्धादुपरतोऽस्मि किन्तु युद्धस्यान्याय्यत्वादधर्मत्वाच्चेत्याह अर्जुन उवाच कथमिति भीष्मद्रोणौ पूजार्हौ पूजायामर्हौ योग्यौ तौ प्रतिकथमहं योत्स्यामि तत्रापीषुभिर्यत्र वाचापि योत्स्यामीति वक्तुमनुचितं तत्र वाणैः कथं योत्स्यामीत्यर्थः हे अरिसूदन शत्रुविमर्दन ॥ ४ ॥

नवलभाष्य।

तबअर्जुनबोला कि हे अरिसूदन हे मधुसूदन अर्थात् हेकामादिशत्रु नाशकर्मैं पुष्पोंसे पूजाकेयोग्य जोभीष्म औ द्रोणतिनकेसंग संग्राममें बाणों करके युद्धकैसे करौं ॥ ४ ॥

गुरूनहत्वाहि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीहलोके।
हत्वार्थकामांस्तुगुरूनिहैव भुंजीयभोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ५॥

आनंदगिरिकृतटीका।

राज्ञां धर्मेऽपि युद्धे गुर्वादिवधे वृत्तिमात्रफलत्वं गृहीत्वा पापमारोप्य ब्रूते गुरूनिति गुरून् भीष्मद्रोणादीन् आचार्यादींश्चात्र प्राप्तान् अहिंसित्वा महानुभावान् महामाहात्म्यान् श्रुताध्ययन सम्पन्नान् श्रेयः प्रशस्यतरं युक्तं भोक्तुमभ्यवहर्तुं भैक्ष्यं भिक्षाणां समूहं भिक्षाशनं नृपादीनां निषिद्धमपि इहलोके व्यवहारभूमौ नहि गुर्वादिहिंसया राज्य भोगोऽपेक्ष्यते किञ्च हत्वा गुर्वादीनर्थकामानेव भुञ्जीय नमोक्षमनुभवेयमिहैव भोगो न स्वर्गे अर्थकामानेव विशिनष्टि भोगानिति भुज्यत इति भोगास्तान् रुधिरप्रदिग्धान् लोहितलिप्तानिवात्यन्तगर्हितानतो भोगान् गुरुवधादिसाध्यान् परित्यज्य भिक्षाशनमेव युक्तमित्यर्थः ॥ ५ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तर्हि तानहत्वा तव देहयात्रापि न स्यादिति चेत् तत्राह गुरूनिति गुरून् द्रोणाचार्या दीनहत्वा परलोकविरुद्धगुरुबधमकृत्वेह लोके भिक्षान्नमपि भोक्तुं श्रेय उचितं विपत्ते तु न केवलं परत्र दुःखं किन्त्विहैव च नरकदुःखमनुभवेयमित्याह हत्वेति गुरून् हत्वे हैव रुधिरेण प्रदिग्धान् प्रकर्षेण लिप्तान् अर्थकामात्मकान् भोगान् भुञ्जीयाशीयां यद्वा अर्थकामानिति गुरूणां विशेषणम् अर्थतृष्णाकुलत्वादेते तावद्युद्धान्न निवर्त्तरंस्तस्मा देतद्वधः प्रसज्येतैवेत्यर्थः (तथा च युधिष्ठिरंप्रति भीष्मेणोक्तम्) अर्थस्य पुरुषो दासो दास स्त्वर्थो न कस्यचित् । इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैरिति ॥ ५ ॥

नवलभाष्य ।

औ हे कृष्णमहानुभाव महात्मा जो द्रोण भीष्मादि गुरूतिनको बिना-मारेभिक्षाका अन्नभी भोजनकरने को श्रेयहै अर्थात् कल्याण देनेवाला है यद्यपि क्षत्रियको भिक्षाकी विधिनहींहै तौभी गुरूबध करके राजभोगकी अ-पेक्षा भिक्षाभी श्रेष्ठहै यहअर्जुनका आशयहै सोईकहताहै औ हे कृष्ण धनकी है कामना जिनको ऐसे गुरुओंको मारके तौ उन्होंके रुधिरसे सींचेसरीखे जे राजभोग तिनको भोगोंगा भीष्मादिकोंकीधनकामना+भारतमें प्रसिद्धहै ५॥

नचैतद्विद्मः कर्तरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेवस्थिताः प्रमुखेधार्त्तराष्ट्राः ६॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

क्षत्रियाणां स्वधर्मत्वाद्युद्धमेव श्रेयस्करमित्याशङ्क्याह नचैतदिति एतदपि न जानीमो भैक्ष्ययुद्धयोः कतरं नोऽस्माकं गरीयः श्रेष्ठं किं भैक्ष्यं हिंसाशून्यत्वादुतयुद्धं स्ववृत्तित्वा दिति सन्दिग्धा च जयस्थितिः किं साम्यमेवोभयेषां यद्वा वयं जयेमातिशयेन हि यदि वा नोऽस्मान् धार्त्तराष्ट्रा दुर्योधनादयो जयेयुः जातोऽपि जयो न फलवान् यतो यान् बन्धून् हत्वा न जिजीविषामो जीवितुं नेच्छामस्ते एवावस्थिताः प्रमुखे सम्मुखे धार्त्त राष्ट्रा धृतराष्ट्रस्यापत्यानि तस्माद्भैक्ष्याद्युद्धस्य श्रेष्ठत्वं न सिद्धमित्यर्थः ॥ ६ ॥

स्वामिकृतटीका ।

किञ्च यद्यधर्ममंगीकरिष्यामस्तथापि किमस्माकं जयः पराजयो वा गरीयान् भवे दिति न ज्ञायत इत्याह नचैतदिति द्वयोर्मध्ये नोऽस्माकं कतरत् किन्नाम गरीयोऽधिक तरं भविष्यतीति न विद्मः तदेव द्वयं दर्शयति यद्वा एतान् वयं जयेम जेष्यामः यदि वा नोऽस्मानेते जयेयुर्जेष्यन्तीति किञ्चास्माकं जयोऽपि फलतः पराजय एवेत्याह या निति यानेव हत्वा जीवितुं नेच्छामस्त एवैते सम्मुखेऽवस्थिताः ॥ ६ ॥

+ श्रीमन्महाभारते युधिष्ठिरम्प्रति भीष्मवचनम् ॥ अर्थस्यपुरुषोदासो दासस्त्वर्थोनकस्यचित् । इतिसत्यं महाराज बद्धोस्म्यर्थै नकौरवैरिति ॥

नवलभाष्य।

औ हे कृष्ण यहभी हमनहीं जानतेकि युद्धकरना हमकोश्रेष्ठहै अथवायुद्धनहीं करना और जो कदाचित् युद्धकरैंभी तौयहनहीं जानते कि हमदुर्योधनादिकोंको जीतैंगे किंवा हमको वे दुर्योधनादि जीतैंगे और वास्तव में तौ जयकाभी फलनहीं देखपड़ता क्योंकि जिनदुर्योधनादिकों को मारकर हमनहीं जीवनेकी इच्छा करते हैं ते धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे संमुखमरने को खड़ेहुये हैं ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितंब्रूहितन्मे शिष्यस्तेऽहंशाधिमांत्वांप्रपन्नम्७

आनन्दगिरिकृतटीका।

समधिगतसंसारदोषजातस्यातितरां निर्विण्णस्य मुमुक्षोरुपसन्नस्यात्मोपदेशसंग्रहणेऽधिकारं सूचयति कार्पण्येति योऽल्पां स्वल्पामपि स्वक्षतिं न क्षमते स कृपणस्तद्विधत्वादखिलोऽनात्मविदप्राप्तपरमपुरुषार्थतया कृपणो भवति यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात् प्रैति स कृपण इति श्रुते तस्य भावः कार्पण्यं दैन्यं तेन दोषेणोपहतो दूषितः स्वभावश्चित्तमस्येति विग्रहः सोऽहं पृच्छाम्यनुयुञ्जे त्वा त्वां धर्मसंमूढचेताः धर्मो धारयतीति परं ब्रह्म तस्मिन् संमूढमविवेकतां गतं चेतो यस्य ममेति तथाहमुक्तः किं पृच्छसि यन्निश्चितमैकान्तिकमनापेक्षिकं श्रेयः स्यान्न रोगनिवृत्तिवदनैकान्तिकमनात्यन्तिकं स्वर्गवदापेक्षिकं वा तन्निःश्रेयसं मे मह्यं प्रब्रूहि नापुत्रायाशिष्यायेति निषेधात् न प्रवक्तव्यमिति मावमंस्था यतः शिष्यस्तेऽहं भवामि शाध्यनुशाधि मां निःश्रेयसं त्वामहं प्रपन्नोऽस्मि ॥ ७ ॥

स्वामिकृतटीका।

कार्पण्येत्यादि तस्मादेतान् हत्वा कथं जीविष्याम इति कार्पण्यं दोषः कुलक्षयकृतः ताभ्यामुपहतोऽभिभूतः स्वभावः शौर्यलक्षणो यस्य सोऽहं त्वां पृच्छामि तथा धर्मे संमूढं चेतो यस्य सः युद्धं त्यक्त्वा भिक्षाटनमपि क्षत्रियस्य धर्मोऽधर्मो वेति सन्दिग्धचित्तःसन्नित्यर्थः अतो मे यन्निश्चितं श्रेयः स्यात् तद्ब्रूहि किञ्च तेऽहं शिष्यः शासनार्होऽतस्त्वां प्रपन्नं शरणागतं मां शाधि शिक्षय ॥ ७ ॥

नवलभाष्य।

औ हेकृष्णआत्मज्ञानके×नहींहोनेसे जोकार्पण्यअर्थात् दीनतानामअपनाको हीन जानके किसीपदार्थकी चाह तिसदीनतासे नष्टहुआहै शूरता रूप क्षत्रियस्वभाव जिसका इसीसे धर्मकेविषयमें मूढ़होरहाहै चित्तजिसकाअर्था-

× योवाएतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति सकृपणइतिवृहदारण्यकश्रुतिः॥ अर्थ याज्ञवल्क्यऋषि अपनी स्त्रीसे कहतेहैं कि हेगार्गि जो पुरुष इस ब्रह्मरूप आत्माको बिनाजाने इसलोकसे मरके जाताहै वह कृपण है दीनही रहताहै ॥

तू युद्धकरना धर्महै अथवा युद्धकोत्यागि भिक्षासे जीवनकरना धर्महै इन दोनोंमेंसे किसीमें निश्चयको नहींप्राप्तहुआ चित्तजिसका ऐसा जो मैं हूं सो आपसे पूछताहूं कि जिसमें मेरा निश्चयकरके कल्याणहोय तिसको कहिये औ मैं आपका शिष्यहौं औ शरण प्राप्तहुआहौं तिसको शिक्षाकीजिये॥७॥

नहिप्रपश्यामिममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्यभूमावसपत्नमृद्धं राज्यंसुराणामपिचाधिपत्यम्॥ ८॥

आनंदगिरिकृतटीका।

कुतो निःश्रेयसमवेच्छसि तत्राह नहीति तस्मान्न प्रपश्यामि किं न प्रपश्यसि समापनुद्यादपनयेत् यच्छोकमुच्छोषणं प्रतपनमिन्द्रियाणां तन्न पश्यामि ननु शत्रून्निहत्य राज्ये प्राप्ते शोकनिवृत्तिस्ते भविष्यति नेत्याह अवाप्येति अविद्यमानः सपत्नः शत्रुर्यस्य तदृद्धं राज्यं राज्ञः कर्म प्रजारक्षणप्रशासनादि तदिदमस्यां भूमाववाप्यापि शोकापनयकारणं न पश्यामीत्यर्थः तर्हि देवेन्द्रत्वादिप्राप्तौ शोकापनयस्ते भविष्यति नेत्याह सुराणामपीति तेषामाधिपत्यम् अधिपतित्वं स्वाम्यमिन्द्रत्वं ब्रह्मत्वं वा तदवाप्यापि मम शोको नापगच्छेदित्यर्थः॥ ८॥

स्वामिकृतटीका।

त्वमेव विचार्य यद्युक्तं तत् कुर्विति चेत् तत्राह न हि प्रपश्यामीति इन्द्रियाणामुच्छोषणमतिशोषकरं मदीयं शोकं यत्कर्म अपनुद्यादपनयेत् तदहं न पश्यामीति यद्यपि भूमौ निष्कण्टकं समृद्धं राज्यं प्राप्स्यामि तथा सुरेन्द्रत्वमपि यदि प्राप्स्यामि एवमभीष्टं तत् सर्वमवाप्यापि शोकापनोदनोपायं न प्रपश्यामीत्यर्थः॥ ८॥

नवलभाष्य।

औ सिवाय आपके मेरे हृदयके दुःखका दूरकरनेवाला तीनोंलोक में कोई नहींहै इसआशयसे अर्जुनकहताहै हे भगवन् पृथिवी में निष्कण्टकचक्रवर्त्तित्वराज्यको प्राप्तहो और स्वर्ग में इन्द्रपदकोभी प्राप्तहोके जो बस्तु मेरे इन्द्रियोंके सुखानेवाले शोकको दूरकरै तिसको मैं नहीं देखताहूं इससे आपही सकलदुःखशमनी अध्यात्मविद्याका उपदेशकरिये यहतात्पर्यहै॥८॥

सञ्जयउवाच। एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तपः।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूवह॥ ९॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

एवमर्जुनेन स्वाभिप्रायं भगवन्तंप्रति प्रकाशितं सञ्जयो राजानमावेदितवानित्याह सञ्जय इति एवं प्रागुक्तप्रकारेण भगवन्तं प्रत्युक्त्वा परन्तपोऽर्जुनो न योत्स्ये न समाहरिष्ये अत्यन्तासह्यशोकप्रसङ्गादिति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीमब्रुवन् बभूव किलेत्यर्थः॥ ९॥

स्वामिकृतटीका।

एवमुक्त्वाऽर्जुनः किं कृतवानित्यपेक्षायां सञ्जय उवाच एवमिति॥ ९॥

नवलभाष्य।

अब सञ्जय धृतराष्ट्रसे कहताहै कि हे राजन् यहपूर्वोक्त वचन अर्जुन धृतराष्ट्रसे कहिके फिर हे गोविन्द मैं नहीं युद्धकरूंगा यहकहिके मौन होताहुआ ॥ ९ ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ १० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तमर्जुनं सेनयोर्वाहिन्योरुभयोर्मध्ये विषीदन्तंविषादं कुर्वन्तमतिदुःखितं शोकमोहाभ्यामभिभूतं स्वधर्मात् प्रच्युतप्रायं प्रतीत्य प्रहसन्निवोपहासं कुर्वन्निव तदाश्वासार्थं हे भारतभारतान्वय इत्येवं सम्बोध्य भगवानिदं प्रश्नोत्तरं निःश्रेयसाधिगमसाधनं वचन मूचिवानित्याहतमुवाचेति ॥ १० ॥

स्वामिकृतटीका।

ततः किं वृत्तमित्यत आह तमुवाचेति प्रसन्नमुखः सन्नित्यर्थः ॥ १० ॥

नवलभाष्य।

अब दोनोंसेनाओं के मध्यमें विषादको प्राप्तजो अर्जुन तिससे सबइन्द्रियोंका प्रेरक जो कृष्ण सो प्रसन्नमुखहो यहवचन कहताहुआ ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ११ ॥

शङ्करभाष्यम्।

दृष्ट्वा तु पांडवानीकमित्यारभ्य न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव हेत्येतदन्तः प्राणिनां शोकमोहादिसंसारदुःखबीजभूतदोषोद्भव कारणहेतुप्रदर्शनार्थत्वेन व्याख्येयो ग्रन्थस्तथाह्यर्जुनेन राज्य गुरु पुत्र मित्र सुहृत् स्वजनसम्बन्धिबान्धवेष्वहमेषां ममैते इत्येवं भ्रान्तिप्रत्ययनिमित्तस्नेहविच्छेदादिनिमित्तावात्मनः शोकमोहौ प्रदर्शितौ कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये इत्यादिना शोकमोहाभ्यां ह्यभिभूतविवेकविज्ञानः स्वतएव क्षात्रधर्मे युद्धे प्रवृत्तोऽपि तस्माद् युद्धादुपरराम परधर्मञ्च भिक्षाजीवनादिकं कर्तुं प्रववृते तथा च सर्वप्राणिनां शोकमोहादिदोषाविष्टचेतसां स्वभावत एव स्वधर्म परित्यागः प्रतिषिद्धसेवा च स्यात् स्वधर्मे प्रवृत्तानामपि तेषां वाङ्मनःकायादीनां प्रवृत्तिः फलाभिसन्धिपूर्विकैव साहङ्कारा च भवति तत्रैवं सति धर्माधर्मोपचयादिष्टानिष्टजन्मसुखदुःखादिप्राप्तिलक्षणः संसारोऽनुपरतो भवतीति अतः संसारबीजभूतौ शोकमोहौ तयोश्च सर्वकर्मसंन्यासपूर्वकादात्मज्ञानात् नान्यतो निवृत्तिरिति तदुपादिदिक्षुः सर्वलोकानुग्रहार्थम् अर्जुनं निमित्तीकृत्याह भगवान् वासुदेवः अशोच्यानित्यादि।

तत्र केचिदाहुः सर्वकर्मसंन्यासपूर्वकादात्मज्ञाननिष्ठामात्रादेव केवलात् कैवल्यं न प्राप्यतएव किं तर्ह्यग्निहोत्रादिश्रौतस्मार्तकर्मसहितात् ज्ञानात् कैवल्यप्राप्तिरिति सर्वासु गीतासु निश्चितोऽर्थ इति ज्ञापकञ्चाहुरस्यार्थस्य अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि कर्मण्येवाधिकारस्ते कुरु

कर्मैवतस्मात्त्वमित्यादि हिंसादियुक्तत्वाद्वैदिकं कर्म अधर्मायेतीयमप्याशङ्का न कार्या कथं क्षात्रं कर्म युद्धलक्षणं गुरुभ्रातृपुत्रादिहिंसादिलक्षणमत्यन्तगर्हिततरमपि स्वधर्म इति कृत्वा नाधर्माय तदकरणे च ततः स्वधर्मं कीर्त्तिञ्चाहित्वापापमेवाप्स्यसीति ब्रुवता यावज्जीवादिश्रुतिचोदितानां स्वकर्मणांपश्वादि हिंसालक्षणानाञ्च कर्मणां प्रागेव नाधर्मत्वमिति सुनिश्चितमुक्तं भवतीति॥

तदसत् ज्ञानकर्मनिष्ठयोर्विभागवचनात् बुद्धिद्वयाश्रययोरशोच्यानित्यादिना ग्रन्थेन भगवता यावत् स्वधर्ममपि चावेक्ष्येत्येतदन्तेन ग्रन्थेनयत्परमार्थात्मतत्त्वनिरूपणं कृतं तत् सांख्यं तद्विषया बुद्धिरात्मनो जन्मादिषड्विक्रियाभावादकर्तात्मेतिप्रकरणार्थनिरूपणात् या जायते सासांख्यबुद्धिः सा येषां ज्ञानिनामुचिता भवति ते सांख्याः एतस्याबुद्धेर्जन्मनः प्रागात्मानो देहादिव्यतिरिक्तस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यपेक्षो धर्माधर्मविवेकपूर्वको मोक्षसाधनानुष्ठाननिरूपणलक्षणो योगः तद्विषया बुद्धिर्योगबुद्धिः सा येषां कर्मिणामुचिता भवति ते योगिनः तथात्र भगवता विभक्ते द्वे बुद्धी निर्दिष्टे एषा तेभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगेत्विमां शृण्विति तयोश्च सांख्य बुद्ध्याश्रयां ज्ञानयोगेन निष्ठां सांख्यानां विभक्तां वक्ष्यतिपुरावेदात्मना मयाप्रोक्तेति तथाच योगबुद्ध्याश्रयांकर्मयोगेन निष्ठां विभक्ताञ्च वक्ष्यति कर्मयोगेनयोगिनामित्येवंसांख्यबुद्धिंयोगबुद्धिञ्चाश्रित्यद्वेनिष्ठे विभक्तेभगवतैवोक्ते ज्ञानकर्मणोःकर्तृत्वाकर्तृत्वैकत्वानेकत्वबुद्ध्याश्रययोरेकपुरुषाश्रयत्वासम्भवं पश्यता यथैतद्विभागवचनंतथैव दर्शितंशातपथीये ब्राह्मणेएतमेवप्रव्राजिनोलोकामिच्छताब्राह्मणाः प्रव्रजन्तीति सर्वकर्मसन्न्यासंविधाय तच्छेषेण किंप्रजया करिष्यामोयेषां नायमात्मायं लोकइति तत्रैवचप्राग्दारपरिग्रहात् पुरुषश्चात्मा प्राकृतो धर्मजिज्ञासोत्तरकालं लोकत्रयसाधनं पुत्रं द्विप्रकारञ्च वित्तं मानुष्यं दैवञ्च तत्र मानुष्यं वित्तंकर्मरूपं पितृलोकप्राप्तिसाधनं विद्याञ्च दैवं वित्तं देवलोकप्राप्तिसाधनं सोऽकामयतेति आविद्याकामवतएव सर्वाणि कर्माणि श्रौतादीनि दर्शितानि तेभ्यो व्युत्थाय प्रव्रजन्तीति व्युत्थानमात्मानमेव लोकामिच्छतोऽकामस्य विहितं तदेतद्विभागवचनमनुपपन्नं स्यात् यदि श्रौतकर्मज्ञानयोः समुच्चयोऽभिप्रेतः स्याद्भगवतः।

नच अर्जुनस्य प्रश्न उपपन्नो भवति ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते इत्यादि एकपुरुषानुष्ठेयत्वासम्भवं बुद्धिकर्मणोर्भगवता पूर्वमनुक्तकथमर्जुनोऽश्रुतं बुद्धेश्च कर्मणो ज्यायस्त्वं भगवत्यध्यारोपयेत् मृषैव ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता बुद्धिरिति किञ्च यदि बुद्धिकर्मणोः सर्वेषां समुच्चय उक्तः स्यात् अर्जुनस्यापि स उक्त एवेति यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितमिति कथमुभयोरुपदेशे सत्यन्यतरविषय एव प्रश्नः स्यात् नहि पित्तप्रशमनार्थिनो वैद्येन मधुरं शीतलञ्च भोक्तव्यमित्युपदिष्टे तयोरन्यतरत् पित्तप्रशमनकारणं ब्रूहीति प्रश्नः सम्भवति अथार्जुनस्य भगवदुक्तवचनार्थविवेकानवधारणानिमित्तः प्रश्नः कल्प्येत तथापि भगवता प्रश्नानुरूपं प्रतिवचनं देयं मया बुद्धिकर्मणोः समुच्चय उक्तः किमर्थमित्थं त्वं भ्रान्तोऽसीति न तु पुनः प्रतिवचनमनुरूपं पृष्टादन्यदेव द्वे निष्ठे मया पुरा प्रोक्ते इतिवक्तुं नापि स्मार्तेनैव कर्मणा बुद्धेः समुच्चयेऽभिप्रेते विभागवचनादि सर्वमुपपन्नं किञ्च क्षत्रियस्य युद्धं स्मार्त्तं कर्म स्वधर्म इति जानतस्तत् किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसीत्युपालम्भोऽनुपपन्नस्तस्मात् गीताशास्त्रे ईषण्मात्रेणापि श्रौतेन स्मार्त्तेन वा कर्मणात्मज्ञानस्य समुच्चयो न केनचिद्दर्शयितुं शक्यः।

यस्य त्वज्ञानाद्रागादिदोषतो वा कर्मणि प्रवृत्तस्य यज्ञेन दानेन तपसा वा विशुद्धसत्त्वस्य ज्ञानमुत्पन्नं परमार्थतत्त्वविषयमेकमेवेदं सर्वं ब्रह्माकर्तृ चेति तस्य कर्मणि कर्मप्रयोजने च निवृत्तेऽपि लोक संग्रहार्थं यत्नपूर्वं यथा प्रवृत्तिस्तथैव कर्माणि प्रवृत्तस्य यत् प्रवृत्तिरूपं दृश्यते न तत् कर्म येन बुद्धेः समुच्चयः स्यात् यथा भगवतो वासुदेवस्य क्षत्रधर्मं चेष्टितं न ज्ञानेन समुच्चीयते पुरुषार्थसिद्धये तद्वत्तत् फलाभिसन्ध्यहङ्काराभावस्य तुल्यत्वात् विदुषः तत्त्वविन्नाहं करोमीति मन्यते नच तत्फलमभिसंधत्ते यथा च स्वर्गादि कामार्थिनोऽग्निहोत्रादि कर्मलक्षणधर्मानुष्ठायाऽहिताग्नेः काम्यएवाग्निहोत्रादौ प्रवृत्तस्य सकामिकृते विनष्टेऽपि कामे तदेवाग्निहोत्रा-

अनुतिष्ठतोऽपि न तत् काम्यमग्निहोत्रादि भवति तथा च दर्शयति भगवान् कुर्वन्नपि न करोति न लिप्यते इति अत्र यच्च पूर्वैः पूर्वतरं कृतं कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय इति तत्तु प्रविभज्य विज्ञेयं तत् कथं यदि तावत् पूर्वे जनकादयः तत्त्वविदोऽपि प्रवृत्तकर्माणः स्युस्ते लोकसंग्रहार्थं गुणागुणेषु वर्त्तन्त इति ज्ञानेनैव संसिद्धिमास्थिताः कर्मसंन्यासे प्राप्तेऽपि कर्मणा सहैव संसिद्धिमास्थिताः न कर्मसंन्यासं कृतवन्त इत्येषोऽर्थः अथ नते तत्त्वविद ईश्वरसमर्पितेन कर्म्मणा साधनभूतेन संसिद्धिं सत्त्वशुद्धिं ज्ञानोत्पत्तिलक्षणां वा संसिद्धिमास्थिता जनकादय इति व्याख्येयम् एतमेवार्थं वक्ष्यति भगवान् सत्त्वशुद्धये कर्म्म कुर्वन्तीति स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दन्ति मानवा इत्युक्त्वा सिद्धिंप्राप्तस्य च पुनर्ज्ञाननिष्ठां वक्ष्यति सिद्धिंप्राप्तो यथा ब्रह्मेत्यादिना तस्माद्गीतासु केवलादेव तत्त्वज्ञानान्मोक्षप्राप्तिः नकर्म्म समुच्चितादिति निश्चितोऽर्थः यथाचायमर्थस्तथा प्रकरणशो विभज्य तत्र तत्र दर्शयिष्यामः।

तत्रैवन्धर्म्मसंमूढ़चेतसो मिथ्याज्ञानवतो महति शोकसागरे निमग्नस्यार्जुनस्यान्यत्रात्मज्ञानादुद्धरणमपश्यन् भगवान् वासुदेवस्तं ततः कृपयार्जुनमुद्दिधारयिषुरात्मज्ञानायावतारयन्नाह।

अशोच्यानित्यादि न शोच्या अशोच्या भीष्मद्रोणादयः सद्वृत्तत्वात् परमार्थरूपेण च नित्यत्वात् तानशोच्या नन्वशोचोऽनुशोचितवानासि ते म्रियन्ते मन्निमित्त.महं तैर्विनाभूतः किं करिष्यामि राज्यसुखादिनेतित्वं प्रज्ञावतां बुद्धिमतां वादांश्च वचनानि च भाषसे तदेतन्मौढ्यं पाण्डित्यविरुद्धमात्मानिदर्शयस्युन्मत्त इवेत्यभिप्रायः यस्माद्गतासून् गतप्राणान् मृतानगतासून् अगतप्राणान्जीवतश्च न अनुशोचन्ति पण्डिताः आत्मज्ञाः पण्डा आत्मविषया बुद्धिर्येषान्तेहि पण्डिताः पाण्डित्यं निर्विद्येति श्रुतेः परमार्थतस्तुनित्या न शोच्या ननु शोचस्यतो मूढोऽसीत्यभिप्रायः॥ ११॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तदेव वचनमुदाहरति श्रीभगवानिति अतीतसन्दर्भस्येत्थमचरोत्यमर्थं विवक्षित्वा तस्मिन्नेव वाक्यविभागमवगमयति दृष्ट्वा त्विति धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे इत्यादिराद्यश्लोकस्तावदेकं वाक्यं शास्त्रस्य कथासम्बन्धपरत्वेन पर्य्यवसानात् दृष्ट्वेत्यारभ्य यावत् तूष्णीं बभूवहेति तावच्चैकं वाक्यम् इत आरभ्य इदं वच इत्येतदन्तो ग्रन्थो भवत्यपरं वाक्यमिति विभागः नन्वाद्यश्लोकस्य युक्तमेकवाक्यत्वं प्रकृतशास्त्रस्य महाभारतेऽवतारद्योतितत्वादन्तिमस्यापि सम्भवत्येकवाक्यत्वमर्जुनाश्वासार्थतया प्रवृत्तत्वादित्याह प्राणिनामिति शोकोमानसस्तापो मोहो विवेकाभाव आदिशब्दस्तदवान्तरभेदार्थः सएव संसारस्य दुःखात्मनो बीजभूतो दोषस्तस्योद्भावे कारणमहङ्कारो ममकारस्तद्धेतुरविद्या च तत्प्रदर्शनार्थत्वेनेति योजना संगृहीतमर्थं विवृणोति तथा हीति राज्यं राज्ञः कर्म परिपालनादि पूजार्हा गुरवो द्रोणादयः पुत्राः स्वेनोत्पादिताः सौभद्रादयः सम्बन्धान्तरमन्तरेण स्नेहगोचरा गुरुपुत्रप्रभृतयो मित्रशब्देनोच्यंते उपकारनिरपेक्षतया स्वयमुपकारिणो हृदयानुरागभाजो भगवत्प्रमुखाः सुहृदः स्वजना ज्ञातयो दुर्योधनादयः सम्बन्धिनः श्वशुरश्यालप्रभृतयो द्रुपदधृष्टद्युम्नादयः परम्परया पितृपितामहादिष्वनुरागभाजो राजानो बान्धवास्तेषु यथोक्तं प्रत्ययं निमित्तीकृत्य यः स्नेहो यश्चतैः सह विच्छेदो यच्चैतेषामुपघाते पातकं याचलोकगर्हा सर्वं तन्निमित्तं ययोरात्मानः शोकमोहयोस्तावेतौ संसारबीजभूतौ कथमित्यादिना दर्शितावित्यर्थः कथं पुनरनयोः संसारबीजयोरर्जुने सम्भावना उपपद्यते न हि प्रथितमहामहिम्नो विवेकविज्ञानवतः स्वधर्मे प्रवृत्तस्य तस्य शोकमोहावनर्थहेतू सम्भावितावित्याशङ्क्य विवेकतिरस्कारेण तयोर्विहिताक

रणप्रतिषिद्धाचरणकारणत्वादनर्थाधायकयोरस्ति तस्मिन् सम्भावनेत्याह शोकमोहा भ्यामिति भिक्षाया जीवनं प्राणधारणमादिशब्दाद शेषकर्म संन्यासलक्षणं परिव्राज्यमा त्माभिध्यानमित्यादि गृह्यते किञ्चार्जुने दृश्यमानौ शोकमोहौ संसारबीजं शोकमोहत्वा दस्मदादि निष्ठशोकमोहवदित्युपलब्धौ शोकमोहौ प्रत्येकंपक्षीकृत्यानुमातव्यमित्याह त थाचेति शोकमोहादीत्यादिशब्देन मिथ्याभिमानस्नेहगर्हादयो गृह्यन्ते स्वभावतश्चित दोषसामर्थ्यादित्यर्थः अस्मादादीनामपि स्वधर्मे प्रवृत्तानां विहिताकरणत्वाद्यभावान्न शोकादेः संसारबीजतेति दृष्टान्तस्य साध्यविकलतेतिचेत् तत्राह स्वधर्म इति कामादी नामित्यादिशब्दादविशिष्टानीन्द्रियाणयादीन्ते फलाभिसन्धिस्तद्विषयेऽभिलाषः कर्तृत्व भोक्तृत्वाभिमानोऽहङ्कारः प्रागुक्तप्रकारेण वागादिव्यापारे सति किं सिध्यति तत्राह तत्रे ति शुभकर्मानुष्ठानेन धर्मोपचयादिष्टं देवादिजन्म ततः सुखप्राप्तिः अशुभकर्मानुष्ठानेन धर्मोपचयादनिष्टं तिर्यगादिजन्म ततो दुःखप्राप्तिः व्यामिश्रकर्मानुष्ठानादुभाभ्यां धर्माध र्माभ्यां मनुष्यजन्म ततः सुखदुःखे भवतः एवमात्मकः संसारः सन्ततो वर्त्तत इति इत्यर्थः अर्जुनस्यान्येषाञ्च शोकमोहयोः संसारबीजत्वमुपपादितमुपसंहरति इत्यत इति तदेवं प्रथमाध्यायस्य द्वितीयाध्यायैकदेशसहितस्यात्मज्ञानोत्थनिवर्तनीयशोकमो हाख्यसंसारबीजप्रदर्शनपरत्वं दर्शयित्वा वक्ष्यमाणसन्दर्भस्य सहेतुसंसारनिवर्तकसम्यक् ज्ञानोपदेशे तात्पर्यं दर्शयति तयोश्चेति तद्यथोक्तं ज्ञानमुपदिदिक्षुरुपदेष्टुमिच्छन् भगवा नाहेति सम्बंधः सर्वलोकानुग्रहार्थं यथोक्तं ज्ञानं भगवानुपदिदिक्षतीत्ययुक्तम् अर्जुनंप्र त्येवोपदेशादित्याशङ्क्याह अर्जुनमिति न हि तस्यामवस्थायामर्जुनस्य भगवतो यथोक्तज्ञानमुपदेष्टुमिष्टं किन्तु स्वधर्मानुष्ठानाद् बुद्धिशुद्ध्यतरकालमित्यभिप्रेत्योक्तं निमित्तीकृत्येति ।

सर्वकर्मसंन्यासपूर्वकादात्मज्ञानादेव केवलात् कैवल्यप्राप्तिरिति गीताशास्त्रार्थः स्वा भिप्रेतो व्याख्यातः सम्प्रति वृत्तिकृतामभिप्रेतं निरसितुमनुवदति तत्रेति निर्द्धारितशा स्त्रार्थः सतिसप्तम्यापरामृष्यते तेषामुक्तिमेव विवृण्वन्नादौ सैद्धान्तिकमभ्युपगमं प्रत्यादि शति सर्वकर्मेति वैदिकेन कर्मणा समुच्चयं व्युदसितुं मात्रपदं स्मार्तेन कर्मणा समुच्चयं निरसितुमवधारणम् अभ्याससम्बन्धन्धुनोते केवलादिति नैवेत्येवकारः संबध्यते केन तर्हि प्रकारेण ज्ञानं कैवल्यप्राप्तिकारणमित्याशङ्क्याह किं तर्हीति किं तत्र प्रमापकमित्याशङ्क्य इदमेव शास्त्रमित्याह इतिसर्वास्विति यथा प्रयाजानुयाजाद्युपकृतमेव दर्शपूर्णमासादि स्वर्गसाधनं तथा श्रौतस्मार्तकर्मोपकृतमेव ब्रह्मज्ञानं कैवल्यं साधयति विमतं सेतिकर्त व्यताकमेव स्वफलसाधकं कारणत्वाद्दर्शपौर्णमासादिवत् तदेवं ज्ञानकर्मसमुच्चयपरं शास्त्र मित्यर्थः इतिपदमाहुरित्यनेन पूर्वेण संबध्यते पौर्वापर्यपर्यालोचनायां शास्त्रस्य समुच्च- यपरत्वं न निर्द्धारितमित्याशङ्क्याह ज्ञापकंचेति न केवलं ज्ञानं मुक्तिहेतुरपितु समुच्चित- मित्यस्यार्थस्य स्वधर्माननुष्ठाने पापप्राप्तिवचनस्य मध्ये लक्षणं लिंगं गमकमित्यर्थः शास्त्रस्य समुच्चयपरत्वे लिंगवद्वाक्यमपि प्रमाणमित्याह कर्मण्येवेति तत्रैव वाक्यान्तरमुदाहरति कुरुकर्मेति ननु न हिंस्यात् सर्वभूतानि इत्यादिना प्रतिसिद्धत्वेन हिंसादेरनर्थहेतुत्वावग मात् तदुपेतंवैदिकं कर्माधर्मायेति नानुष्ठातुं शक्यते तथा च तस्य सापेक्षज्ञानेन समुच्चयो न सिध्यतीति सांख्यमतमाशङ्क्य परिहरति हिंसादीति आदिशब्दादुच्छिष्टभक्षणं गृह्यते तथोक्ताशङ्कान कर्तव्येत्यत्राकांक्षापूर्वकं हेतुमाहकथमित्यादिना स्वशब्देन क्षत्रियो विव- क्ष्यते युद्धाकरणे क्षत्रियस्य प्रत्यवायश्रवणात् तस्य तं प्रति नित्यत्वेनावश्यकर्तव्यत्वं

प्रतीनेर्गुर्वादिहिंसायुक्तमतिक्रूरमपि कर्म नाधर्मायेति इत्वन्तरमाह तदकरणेचेति आ-चार्य्यादिहिंसायुक्तमतिक्रूरमपि युद्धं नाधर्मायेतिब्रुवता भगवता श्रौतानां हिंसादियुक्तानामपि कर्मणां दूरतो नाधर्मत्वमिति स्पष्टमुपदिष्टं भवति सामान्यशास्त्रस्य व्यर्थहिंसानिषेधार्थत्वात् क्रतुविषये चोदितहिंसायास्तदविषयत्वात् कुतो वैदिककर्मानुष्ठानानुपपत्तिरित्यर्थः ज्ञानकर्मसमुच्चयात् कैवल्यसिद्धिरित्युपसंहर्तुमितिशब्दः यत् तावद्ब्रह्मज्ञानं सेतिकर्तव्यताकं स्वफलसाधकं करणत्वादिति अनुमानं तद्दूषयतितदसदितिनहि शुक्तिकादिज्ञानमज्ञाननिवृत्तौ स्वफले सहकारिकिञ्चिदपेक्षते तथाच व्यभिचारादसाधकंकरणत्वमित्यर्थः यत्तु गीताशास्त्रे समुच्चयस्यैव प्रतिपाद्यतेति प्रतिज्ञातं तदपि विभागवचनविरुद्धमित्याह ज्ञानेति सांख्यबुद्धिर्योगबुद्धिश्चेति बुद्धिद्वयं तत्रसांख्यबुद्ध्याश्रयां ज्ञाननिष्ठां न व्याख्यातुं सांख्यशब्दार्थमाह अशोच्यानित्यादिना इति अशोच्यानित्यादिना स्वधर्ममपिचावेक्ष्य त्येतदन्तं वाक्यंयावद्भविष्यति तावताग्रन्थेन यत्परमार्थभूतमात्मतत्त्वंभगवतानिरूपितं तद्यथा सम्यक् व्याख्यायते प्रकाश्यतेसा वैदिकी सम्यक् बुद्धिः संख्यातया प्रकाश्यत्वेन सम्बन्धि प्रकृ तंतत्त्वं सांख्यमित्यर्थः सांख्यशब्दार्थमुक्त्वा तत्प्रकाशिकांबुद्धिं तद्गतश्चसांख्यान् व्याकरोति तद्विषयेति तद्विषयाबुद्धिः सांख्ये बुद्धिरिति सम्बन्धः तामेव प्रकटयतिआत्मन इति न जायते म्रियते वेत्यादिप्रकरणार्थनिरूपणद्वारेणात्मनः षडभावानिति क्रियासम्भवान् कूटस्थो साक्षिति सा बुद्धिरुत्पद्यते सा सांख्यबुद्धिः तत्पराः संन्यासिनः सांख्याइत्यर्थः सम्प्रति योगबुद्ध्याश्रयां कर्मनिष्ठां व्याख्यातुकामो योगशब्दार्थमाह एतस्यादिति यथोक्त बुद्ध्युत्पत्तौ विरोधादेवानुष्ठाना योगात् तस्यास्तन्निवर्तकत्वात् पूर्बमेव तदुत्पत्ते रात्मनश्च देहादिव्यतिरिक्तत्वाद्यपेक्षया धर्माधर्म निष्कृष्य तेनेश्वराराधनरूपेण कर्मणा पुरुषोमोक्षाय युज्यते योग्यः सम्पद्यते तेन मोक्षसिद्धये परम्परया साधनीभूतप्रागुक्तधर्मानुष्ठानात्मको योग इत्यर्थः अथ योगबुद्धिं विभजन् योगिनो विभजते तद्विषयेति उक्त बुद्धिद्वये भगवतोऽभिमतं दर्शयति तथाचेति सांख्यबुद्ध्याश्रया ज्ञाननिष्ठेत्येतदपि भगवतोऽभिमतमित्याह तयोश्चेतिज्ञानमेव योगो ज्ञानयोगस्तेन हि ब्राह्मणा युज्यते तादात्म्यमापद्यते तेन संन्यासिनां निष्ठानिश्चयेन स्थितिस्तात्पर्य्येण परिसमाप्तिस्तां कर्मनिष्ठातो व्यतिरिक्तां निष्ठयोर्मध्ये निष्कृष्य भगवान् वक्ष्यतीति योजना ॥ लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेनसांख्यानामित्येतद्वाक्यमुक्तार्थविषयमर्थतोऽनुवदति योगबुद्ध्याश्रया कर्मनिष्ठेत्यत्रापि भगवदनुमतिमादर्शयति तथाचेति कर्मैव योगस्तेन हि बुद्धिशुद्धिद्वारा मोक्षहेतुज्ञानाय पुमान् युज्यते तेन निष्ठां कर्मिणां ज्ञाननिष्ठातो विलक्षणां कर्मयोगेनेत्यादिना वक्ष्यति भगवानिति योजना निष्ठाद्वयं बुद्धिद्वयाश्रयं भगवता विभज्योक्तमुपसंहरति एवमिति कथा पुनरनुपपत्त्या भगवता निष्ठाद्वयं विभज्योक्तमित्याशङ्क्याह ज्ञानकर्मणोरिति कर्म हि कर्तृत्वाद्यनेकत्वबुद्ध्याश्रयं ज्ञानं कर्तृत्वैकत्वबुद्ध्याश्रयं तदुभयमित्थं विरुद्धसाधनसाध्यत्वान्नैकावस्थस्यैव पुरुषस्य सम्भवत्यतो युक्तमेव तयोर्विभागवचनमित्यर्थः भगवदुक्त विभागवचनस्य मूलत्वेन श्रुतिमुदाहरति तथेति तत्र ज्ञाननिष्ठाविषयं वाक्यं पठति एतमेवेति प्रकृतमात्मानं नित्यविज्ञप्तिस्वभावं वेदितुमिच्छन्तः त्रिविधेऽपि कर्मफले वैतृष्ण्यभाजः सर्वाणि कर्माणि परित्यज्य ज्ञाननिष्ठाः भवन्तीति पञ्चमलकारस्वीकारेण संन्यासविधिं विवक्षित्वात् तस्यैव विधेः विशेषेणार्थवादेन किं प्रजयेत्यादिना मोक्षफलं ज्ञानमुक्तमित्यर्थः ननु फलाभावात् प्रजाक्षेपो नोपपद्यते पुत्रेणैतल्लोकजयस्य वाक्यान्तरसिद्धत्वादित्या

शङ्का विदुषां प्रज्ञासाध्यमनुष्यलोकस्यात्मव्यतिरेकेणाभावादात्मनश्चासाध्यत्वादचेपो युक्तिमानिति विवक्षित्वाह येषामिति इति ज्ञानं दर्शितमिति शेषः तस्मिन्नेव ब्राह्मणे कर्मनिष्ठावाक्यं दर्शयति तत्रैवेति प्राकृततत्त्वमतत्त्वदर्शित्वेनाज्ञत्वं स च ब्रह्मचारी सन् गुरुसमीपे यथाविधि वेदमधीत्यार्थज्ञानार्थं धर्मजिज्ञासां कृत्वा तदुत्तरकालं लोकत्रय प्राप्तिसाधनं पुत्रादित्रयं सोऽकामयत जाया मेस्यादित्यादिना कामितवानिति श्रुतमित्यर्थः वित्तं विभजते द्विप्रकारमिति तदेव प्रकारद्वैरूप्यमाह मानुष्यमिति मानुष्यं वित्तंव्याचष्टे कर्मरूपमिति तस्य फलपर्यवसायित्वमाह पितृलोकेति दैवं वित्तं विभजते विद्याञ्चेति तस्यापि फलनिष्ठत्वमाह देवे ति कर्मनिष्ठाविषयत्वेनोदाहृतश्रुतेस्तात्पर्यमाह अविद्येति अज्ञस्य कामनाविशिष्टस्यैव कर्माणि सोऽकामयतेत्यादिना दर्शितानीत्यर्थः ज्ञाननिष्ठा विषयत्वेन दर्शितश्रुतेरपि तात्पर्यं दर्शयति तेभ्य इति कर्मसु विरक्तस्यैव संन्यासपूर्विका ज्ञान निष्ठा प्रागुदाहृतश्रुत्या दर्शितेत्यर्थः अवस्थाभेदेन ज्ञानकर्मणोर्भिन्नाधिकारत्वस्य श्रुतत्वात् तन्मूलेन भगवतो विभागवचनेन शास्त्रस्य समुच्चयपरत्वप्रतिज्ञातमपबाधितमिति साधितं किञ्च समुच्चयो ज्ञानस्य श्रौतेन स्मार्त्तेन वा कर्मणा विवक्ष्यते यदि प्रथमंतत्राहतदेतदिति।

समुच्चयेऽभिप्रेते प्रश्नानुपपत्तिं दोषान्तरमाह नचेति तामेवानुपपत्तिं प्रकटयति एक रूपेति यदि समुच्चयः शास्त्रार्थो भगवता विवक्षितस्तदा ज्ञानकर्मणोरेकेन पुरुषेणानुष्ठेय त्वमेव तेनोक्तमर्जुनेन श्रुतं तत्कथं तदसम्भवमनुक्तमश्रुतञ्च मिथ्यैव श्रोता भगवत्यारो पयन्नच तदारोपात्तृते किमिति मां कर्मण्येवातिक्रूरे युद्धलक्षणे नियोजयसि इति प्रश्नो ऽवकल्प्यते तथा च प्रश्नालोचनयाप्रष्टृ प्रतिवक्त्रोः शास्त्रार्थतया समुच्चयोऽभिप्रेतो न भवतीति प्रतिभातीत्यर्थः किञ्च समुच्चयपक्षे कर्मापेक्षया बुद्धेर्ज्यायस्त्वं भगवता पूर्व मनुक्तमर्जुनेन चाश्रुतं कथमसौ तस्मिन्नारोपयितुमर्हति ततश्चानुवादवचनं श्रोतुरनुचित मित्याह बुद्धिश्चेति इतश्च समुच्चयः शास्त्रार्थो न सम्भवत्यन्यथा पञ्चमादावर्जुनस्य प्रश्नानुपपत्तेरित्याह किञ्चेति ननु सर्वान् प्रत्युक्तोऽपि समुच्चयेनार्जुनं प्रत्युक्तोऽसाविति तदीय प्रश्नोपपत्तिरित्याशङ्क्याह यदीति एतयोः कर्म तत्त्यागयोरिति यावत् ननु क र्मापेक्षया कर्मत्यागपूर्वकस्य ज्ञानस्य प्राधान्यात् तस्य श्रेयत्वात् तद्विषयप्रश्नोपपत्ति रिति चेन्नेत्याह न हीति तथैव समुच्चये पुरुषार्थसाधने भगवतादर्शिते सत्यन्यतरगोच रो न प्रश्नोभवतीति शेषः समुच्चये भगवतोक्तेऽपि तदज्ञानादर्जुनस्य प्रश्नोपपत्ति रिति शङ्कते अथेति अज्ञाननिमित्तं प्रश्नमङ्गीकृत्यापि प्रत्याचष्टे तथापीति भगवतो भ्रान्त्यभावेन पूर्वापरानुसन्धानसम्भवादित्यर्थः प्रश्नानुरूपत्वमेव प्रतिवचनस्य प्रकटयति मयेति व्यावर्त्यमंशमादर्शयति नत्विति प्रतिवचनस्य प्रश्नाननुरूपत्वमेव स्फुटयति पृष्टादिति श्रौतेन कर्मणा समुच्चयो ज्ञानस्येति पक्षं प्रतिक्षिप्य पक्षान्तरं प्रतिक्षिपति ना पीति श्रुतिस्मृत्योर्ज्ञानकर्मणोर्विभागवचनमादिशब्दगृहीतं बुद्धेर्ज्यायस्त्वं पञ्चमादौ प्रश्नो भगवत् प्रतिवचनं सर्वमिदं श्रौतेनेव स्मार्त्तेनापि कर्मणा बुद्धेः समुच्चये विरुद्धं स्यादित्यर्थः द्वितीयपक्षासम्भवे हेत्वन्तरमाह किञ्चेति समुच्चयपक्षे प्रश्नप्रतिवचनयो रसम्भवान्नेदं गीताशास्त्रं तत्परमित्युपसंहरति तस्मादिति विशुद्धब्रह्मात्मज्ञानं स्वफ लसिद्धौ न सहकारि सापेक्षमज्ञाननिवृत्तिफलत्वाद्रज्जादितत्त्वज्ञानवत् अथवा बन्धः सहायानपेक्षेण ज्ञानेन निवर्त्यते अज्ञानात्मकत्वात् रज्जुसर्पादिवदिति भावः।

ननु कुर्य्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहमिति वक्ष्यमाणत्वात् कथं गीताशास्त्रे समुच्चयो नास्ति तत्राह यस्य त्विति चोदनासूत्रानुसारेण विधितोऽनुष्ठेयस्य कर्मणो धर्

त्वाद्व्यापारमात्रस्य तथात्वाभावात् तत्त्वविदश्च वर्णाश्रमाभिमानशून्यस्याधिकारप्रतिपत्त्यभावाद्रागादिप्रवृत्तीनामविद्यालेशतो जायमानां कर्माभासत्वात् कुर्य्याद्विद्वानित्यादि वाक्येन समुच्चयप्रापकमिति भावः वाशब्दश्चार्थे द्वितीयस्तु विविदिषावाक्यस्य साधनान्तरसंग्रहार्थः सांसारिकं ज्ञानं व्यावर्त्तयति परमार्थेति तदेवाभिनयति एकमित प्रवृत्तिरूप मति रूपग्रहणमाभासत्वप्रदर्शनार्थं कर्माभाससमुच्चयस्तु याट्टच्छिकत्वान्न मोक्षं फलयतीति शेषः किञ्च ज्ञानिनो रागादि प्रवृत्तिर्नज्ञानेन तत्फलेन समुच्चीयते फलाभिसन्धिविकलप्रवृत्तित्वादहङ्कारविधुरप्रवृत्तित्वाद्वा भगवत् प्रवृत्तिवदित्याह यथेति हेतुद्वयस्यासिद्धिमाशङ्क्य परिहरति तत्त्वविदिति कूटस्थं ब्रह्मैवाहमिति मन्वानो विद्वान् प्रवृत्तिं तत्फलं वा नैव खगतत्वेन पश्यति रूपादियद् दृश्यद्रष्टृधर्मत्वायोगात् किन्तु कार्य्यकारणसंघातत्वेनैव प्रवृत्त्यादि प्रतिपद्यते ततस्तत्त्वविदो व्याख्यानभिचाटनादौ अहङ्कारस्य तृप्त्यादिफलाभिसन्धेश्चाभासत्वान्नासिद्धं हेतुद्वयमित्यर्थः ननु ज्ञानोदयात् प्रागवस्थायामिवोत्तरकालेऽपि प्रति नियतप्रवृत्त्यादर्दनान्न तत्त्वदर्शी निष्ठप्रवृत्त्या देराभासत्वमिति तत्राह यथा चेति स्वर्गादिरेव काम्यमानत्वाद् कामस्तदर्थिनः स्वर्गादिकामस्याग्निहोत्रादेरपेक्षितस्वर्गादिसाधनस्यानुष्ठानार्थमग्निमाधाय व्यवस्थितस्य तस्मिन्नेव काम्ये कर्मणि प्रवृत्तस्यार्द्धकृते केनापि हेतुना कामे विनष्टे तदेवाग्निहोत्रादि निर्वर्त्तयतो न तत् काम्यं भवति नित्यकामविभागस्य स्वाभाविकत्वाभावात् कामोपबन्धानपबन्धकृतत्वात् तथा विदुषोऽपि विध्यधिकाराभावाद्रागादिप्रवृत्तीनां कर्माभासतेत्यर्थः विद्वत्प्रवृत्तीनां कर्माभासत्वमित्यत्र भगवदनुमतिमुपन्यसति तथा चेति ननु विद्वद्व्यापारेऽपि कर्मशब्दप्रयोगदर्शनात् तद्व्यापारस्य कर्माभासत्वानुपपत्तेः समुच्चयसिद्धिरिति तत्राह यज्ञेति ज्ञानकर्मणोः समुच्चित्यैव संसिद्धिहेतुत्व प्रतिपन्ने कुतो विभज्यार्थज्ञानमिति पृच्छति तत्कथमितितच्च किं जनकादयोऽपि तत्त्वविदः प्रवृत्तकर्माणः स्युराहो स्विदतत्त्वविद इति विकल्प्य प्रथमं प्रत्याह यदीति तत्त्वावित्त्वे कथं प्रवृत्तकर्मत्वं कर्मणामकिंचित् करत्वादित्याशंक्याहते लोकेति तेषामुक्तप्रयोजनार्थमपि न प्रवृत्तिर्युक्ता सर्वत्राप्युदासीनत्वादित्याशंक्याह गुणाइन्द्रियाणां विषयेषु प्रवृत्तिद्वारा तत्त्वविदां प्रवृत्तकर्मत्वेऽपि ज्ञानेनैव तेषां मुक्तिरित्याह ज्ञानेनेति उक्तमेवार्थं संक्षिप्य दर्शयति कर्मेति कर्मणेत्यादौ वाधितानुवृत्त्याभावो गृह्यते द्वितीयमनुवदति अथेति तत्रवाक्यार्थं कथयति ईश्वरेति विभज्य विज्ञेयत्वं वाक्यार्थस्योक्तमुपसंहरति इति व्याख्येयमिति कर्मणां चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानहेतुत्वमित्युक्तेऽर्थे वाक्यशेषं प्रामाणयति एतमेवेति योगिनः कर्मकुर्वन्तीत्यादि वाक्यमर्थतोनुवदति सत्वेति स्वकर्मणा इत्यादौ साक्षादेव मोक्षहेतुत्वं कर्मणां वक्ष्यतीत्याशंक्याह स्वकर्मणेति स्वकर्मानुष्ठानादीश्वरप्रसादद्वारा ज्ञाननिष्ठायोग्यता लभ्यते ततो ज्ञाननिष्ठया मुक्तिस्तेन न साक्षात् कर्मणां मुक्तिहेतुतेत्यग्रे स्फुटो भविष्यतीत्यर्थः तत्त्वज्ञानोत्तरकाले कर्म्मासम्भवे फलितमुपसंहरति तस्मादिति ननु यद्यपि गीताशास्त्रं तत्त्वज्ञानप्रधानमेकं वाक्यंतथापि तन्मध्ये श्रूयमाणं कर्मतदङ्गमङ्गी कर्त्तव्यं प्रकरणप्रामाण्यादिति समुच्चयसिद्धिस्तत्राह यथा चेति अर्थशब्दे नात्मज्ञानमेव केवलं कैवल्यहेतुरिति गृह्यते।

वृत्तिकृतामभिप्रायं प्रत्याख्याय स्वाभिप्रेतः शास्त्रार्थः समर्थितः संप्रत्यशोच्यानित्यस्मात् प्राक्तनग्रन्थसन्दर्भस्य प्रागुक्तं तात्पर्य्यार्थमनूद्याशोच्यानित्यादेः स्वधर्ममपि चावेक्ष्येत्येतदन्तस्य समुदायस्य तात्पर्य्यमाह तत्रेति अत्र हि शास्त्रे त्रीणिकाण्डान्य

ष्टादशसंख्याकानामध्यायानां षट्कत्रितयमुपादाय त्रैविध्या तत्र पूर्व षट्कात्मकं पूर्वकाण्डं त्वं पदार्थैः विषयीकरोति मध्यमषट्करूपं मध्यमकाण्डं तत्पदार्थं गोचरयति अन्तिमषट्कलक्षणमन्तिमं काण्डं तत्त्वं पदार्थयोरैक्यं वाक्यार्थमधिकरोति तज्ज्ञानसाधनानि तत्र तत्र प्रसंगादुपन्यस्यन्ते तज्ज्ञानस्य तदधीनत्वात् तत्त्वज्ञानमेव केवलं कैवल्य साधनमिति च सर्वत्र विगीतंएवं पूर्वोक्तरीत्या गीताशास्त्रार्थे परिनिश्चिते सतीति यावत् धर्मे संमूढ़ं कर्तव्याकर्तव्यविवेकविकलं चेतो यस्य तस्य मिथ्याज्ञानवतोऽहङ्कार मम कारवतः शोकाख्यसागरेदुरुत्तरे प्रविश्य क्लिश्यतो ब्रह्मात्मैक्यलक्षणवाक्यार्थज्ञानमात्म ज्ञानं तदतिरेकेणोद्धरणासिद्धेः तमतिभक्तमतिस्निग्धं शोकादुद्धर्तुमिच्छन् भगवान् यथोक्तज्ञानार्थं तमेवार्जुनमवतारयन् पदार्थपरिशोधने प्रवर्तयन्नादौ त्वं पदार्थं शोधयितुमशोच्यानित्यादि वाक्यमाहेति योजना ।

यस्याज्ञानं तस्य भ्रमो यस्य भ्रमस्तस्य पदार्थपरिशोधनपूर्वकं सम्यक् ज्ञानं वाक्यादुदेतीति ज्ञानाधिकारिणामभिप्रेत्याह अशोच्यानित्यादीति यत्तु केश्चिदात्मा वा अरे-द्रष्टव्यइत्याद्यात्मयाथात्म्यदर्शनविधिवाक्यार्थमनेन श्लोकेन व्याचष्टे स्वयं हरिरित्युक्तं तदयुक्तकृतियोग्यतैकार्थसमवेतश्रेयः साधनतायाः पराभिमतनियोगस्य या विध्यर्थस्यात्रा प्रतीयमानस्य कल्पना हेत्वभावात् नच दर्शने पुरुषतन्त्रत्वरहिते विधेययागादिविलक्षणोविधिरुपपद्यते कृत्वान्तभूतस्याज्ञार्थत्वात् तच्चो न विधिमधिकरोतीत्यभिप्रेत्य व्याचष्टे न शोच्या इति कथं तेषामशोच्यत्वमित्युक्ते भीष्मादिशब्दवाच्यानां शोच्यत्वं तत्पदलक्ष्याणां वेतिकल्प्याद्यं दूषयति सद्वृत्तत्वादिति ये भीष्मादिशब्दैरुच्यन्ते ते श्रुति स्मृत्युदीरिता विगीताचारवत्वान्नशोच्यतामश्नुवीरन्नित्यर्थः द्वितीयं प्रत्याह परमार्थेति अरजते रजतबुद्धिवदशोच्येषु शोच्यबुद्ध्या भ्रान्तोऽसीत्याह तानिति अनुशोचनप्रकारमभिनयन् भ्रान्तिमेव प्रकटयति ते म्रियन्त इति पुत्रभार्य्यादिप्रयुक्तं सुखमादिशब्देन गृह्यते इत्यनुशोचितवानसीतिसम्बन्धः विरुद्धार्थाभिधायित्वेनापि भ्रान्तत्वमर्जुनस्य साधयति त्वं प्रज्ञावतामिति उत्सन्नकुलधर्माणामित्यादीनि वचनानि किमेतावता फलितमिति तदाह तदेतदिति तन्मौढ्यमशोच्येषु शोच्यदृष्टित्वमेतत् पाण्डित्यं बुद्धिमतां वचनभाषित्वमिति यावत् अर्जुनस्य पूर्वोक्तभ्रान्तिभाक्त्वे निमित्तमात्माज्ञानमित्याह यस्मादिति ननु सूक्ष्मबुद्धिभाक्त्वमेव पाण्डित्यं नत्वात्मज्ञत्वं हेत्वभावादित्याशङ्क्याह तेहीति पाण्डित्यं पण्डितभावमात्मज्ञानं निर्विद्यनिश्चयेनलब्ध्वा बाल्येन तिष्ठासेदिति बृहदारण्यकश्रुतिमुक्तार्थामुदाहरति पाण्डित्यमिति यथोक्तं पाण्डित्यराहित्यं कथं ममावगतमित्याशङ्क्य कार्य्यदर्शनादित्याह परमार्थतस्त्विति यस्मादित्यस्यापेक्षितं दर्शयति अत इति ॥ ११ ॥

स्वामिकृतटीका ।

अशोच्यानित्यादि शोकस्याविषयीभूतानेव बन्धूनन्वशोचोऽनुशोचितवानसि दृष्ट्वेमान्स्वजनान् कृष्णेत्यादिना तत्र कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितमित्यादिना मयाबोधितोऽपि पुनश्च प्रज्ञावतां पण्डितानां वादान् शब्दान् कथं भीष्ममहं संख्ये इत्यादीन् केवलं भाषसे न तु पण्डितोऽसि यतः पण्डिता गतासून् गतप्राणान् बन्धून गतासूंश्चजीवतोऽपि बन्धुहीना एते कथं जीविष्यन्तीति नानुशोचन्ति पण्डिताः विवेकिनः ॥ ११ ॥

नवलभाष्य।

अब यहांतक तौ श्रीधरस्वामी औ आनन्दगिरि आदि महात्माओं ने जैसे अपने संस्कृतटीकाओंमें श्रीगीताजीके प्रथमाध्यायका और दूसरे अध्यायके आदिसे दश १० श्लोकों का अर्थ कियाहै तिसके अनुकूल भाषानुवाद कियागया अब भाष्यका अनुवाद लिखते हैं तहां दृष्ट्वातु पाण्डवानीकम् इत्यादि प्रथमाध्यायके दूसरेश्लोकसे लेकर नयोत्स्यइतिगोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूवह यहदूसरे अध्यायके नवमश्लोक तक गीताके ग्रन्थसे यहबात दिखलाई कि जीवोंके संसार दुःखके बीजशोक मोह हैं औशोकमोहकाकारण अहंकारहै औअहंकारका कारण अज्ञानहै क्योंकि पुष्पमालाओं से पूजन करनेयोग्य द्रोणभीष्मादिकोंको बाणोंसे कैसेताड़नकरौं इत्यादिकथनसे अर्जुनने राज्यगुरु पुत्रमित्र सुहृद्स्वजन संबन्धी बान्धव इनके बिषे मैंइनकाहौं औयेमेरेहैं इसप्रकार भ्रान्तिज्ञानके कारणसे उत्पन्नहुआ जो स्नेह तिसका विच्छेदअर्थात् छूट जानाही निमित्त जिन्होंका ऐसे अपने शोकमोह दिखलाये क्योंकि सकल शास्त्रोंमें प्रवीणभी महात्माअर्जुन पहिले तौ आपही क्षत्रियोंकाधर्म जोयुद्धतिसमें प्रवृत्तभीहुआ फिरशोकमोहकारणसेनष्टहुआ है विवेकज्ञान जिसका ऐसा होके तिसयुद्ध से निवृत्त होगया औभिक्षाभोजन रूपजो परधर्मतिसमें प्रवृत्तहुआ औऐसेही शोकमोहादिदोषोंमें प्रविष्टहुआहै चित्तजिन्होंका ऐसे औरभी सबप्राणियोंकी स्वभावहीसे अपने धर्मकात्याग औपरधर्ममें प्रवृत्तिहोतीहै औजे कोई स्वधर्ममें प्रवृत्तहैं तिनकीभी बाणीमनआदि इंद्रियोंकी प्रवृत्ति किसीकामनाको लियेहुए अहंकारसहितही होतीहै ऐसासिद्धान्त जबसिद्धहुआ तौधर्म औअधर्म इनके बढ़नेसे इष्टअनिष्ट अर्थात् प्रियअप्रिय जन्मऔसुखदुःखादि इनकी प्राप्तिहै जिसमें ऐसासंसार कभी निवृत्तनहीं होता इससे संसारके बीजअर्थात् कारणरूप शोकमोहहैं तिनशोकमोहोंकी निवृत्तिसर्व कर्मत्याग संन्यासपूर्वकआत्मज्ञानहीसे होतीहै औरकिसीप्रकारसे नहींहोती इससेसब लोकोंके अनुग्रहकेलिये श्रीभगवान् वासुदेव उसआत्मज्ञानके उपदेशकी इच्छाकर अर्जुनको निमित्तकरके अशोच्यानन्वशोचस्त्वम् इत्यादिग्रन्थको कहतेहुए तहां कोई आचार्य ऐसा कहते हैं किसबकर्मोंका त्यागकरके केवलआत्मज्ञान निष्ठामात्रहीसे मोक्षकी प्राप्तिनहीं होतीहै किंतु अग्निहोत्रादि वैदिक औ स्मार्त कर्म सहित जो आत्मज्ञान तिससे मोक्षकीप्राप्तिहोतीहै यहीसबगीताका निश्चय कियागयाअर्थहै और इसअर्थका बोधकप्रमाणभी कहते हैं कि इसी अध्यायमें अगाड़ी भगवान्कहैंगे × कि हे अर्जुन जो कदाचित् तू इसधर्म

अथचेत्त्वमिमंधर्म्यंसंग्रामंनकरिष्यसि । ततःस्वधर्मंकीर्तिंच हित्वापापमवाप्स्यसीति ॥
कर्मण्येवाधिकारस्तेमाफलेषुकदाचनेति । कुरुकर्मैवतस्मात्त्वंपूर्वैःपूर्वतरंकृतमितिच ॥

युक्त संग्रामको न करैगा तौ अपनेधर्म को और कीर्त्तिको त्यागके पापको प्राप्तहोगा और यहभी कहा कि कर्महीमें तेरा अधिकारहै और चौथे अध्याय में यहकहा कि जिससे पहिले आचार्योंने कर्मकियाहै तिससे, उसप्राचीन कर्मोंको तूभीकर और हिंसादिदोष युक्तहोनेसे वैदिककर्म अधर्मके अर्थ है यहआशंका तौ नहीं करनाचाहिये क्योंकि जब गुरूऔभाई औ पुत्रादि बान्धवोंकी जिसमें बड़ी२ हिंसाहुआकरतीहैं ऐसेयुद्धहीको भगवान्ने धर्म रूपकरके उपदेशकिया और यहभीकहा कि हेअर्जुन जो इसस्वधर्मसंग्राम को नकरैगा तौ धर्म औ कीर्त्ति इनकोत्यागके पापको प्राप्तहोगा तौ जबतक जीवै तबतक अग्निहोत्रकरै इसप्रकारकी आज्ञासे वेदबोधित पश्वादि हिंसा युक्तकर्मोंमें अधर्मनहीं है औ स्वधर्मताहै इसकानिश्चय पहिलेही करचुके यहज्ञानकर्म समुच्चयबादियों का अर्थात् कर्मसहितज्ञानसे मुक्तिहोतीहै ऐसे कहनेवालोंका मत ठीकनहींहै क्योंकि ज्ञाननिष्ठा औ कर्मनिष्ठाको भगवान्ने न्यारा न्यारा कहाहै (एषातेभिहितासांख्ये बुद्धिर्योगेत्विमांशृणु) इत्यादि वाक्यसे इसकाअर्थ यहहै कि हेअर्जुन यह सांख्यविषयिणी बुद्धि मैंने तुझसेकही अब इसके अनन्तर इसयोगाविषयिणी बुद्धिकोसुन तहां इसी अध्यायमें अशोच्यानन्वशोचस्त्वम् इत्यादि श्लोकसे लेके स्वधर्ममपिचावेक्ष्यनविकम्पितुमर्हसि यहां तक बीस श्लोककरके जो परमार्थ आत्मतत्त्वनिरूपण किया उसको सांख्ययहां कहतेहैं उसआत्मतत्त्वको विषयकरनेवाली अर्थात् जन्मादि छःविकार नहींहोनेसे आत्माअकर्ताहै ऐसानिश्चय करनेवाली जोबुद्धि सोसांख्यबुद्धि कहाती है वहबुद्धि जिनज्ञानियोंमें होय वे ज्ञानीभी सांख्यकहातेहैं औरऐसीबुद्धिके उत्पन्नहोनेके पहिले देहादिरहित आत्माको कर्त्ताभोक्तामानके धर्माधर्म विवेकपूर्वक अर्थात् धर्म अधर्म का स्वरूप अच्छीतरह जानके मोक्षसाधनरूप जो निष्काम कर्मकाकरना उसको इसप्रकरणमें योगकहतेहैं उसयोगको निश्चयकरनेवाली जो बुद्धि सोयोगबुद्धि कहातीहै वहबुद्धि जिनकर्म करनेवालोंके योग्यहोय वे योगी कहातेहैं इसप्रकार न्यारीन्यारी ज्ञाननिष्ठा औकर्मनिष्ठा भगवान्ने यहांकहीं औपरस्पर विरुद्धहोनेसे भी एककालमें एकपुरुषमें दोनों निष्ठा संभवनहींहोसक्तीं क्योंकि अकर्तृत्व औएकत्व बुद्धिको आश्रयण करनेवाली तौ ज्ञाननिष्ठा औकर्तृत्व औअनेकत्व बुद्धिको आश्रयण करनेवाली कर्मनिष्ठा है अर्थात् आत्माएकहै औअकर्ताहै यहनिश्चययुक्त जिसपुरुषकी बुद्धिहोगी उसबुद्धिमें ज्ञाननिष्ठा रहिसक्तीहै और आत्माकर्ताहै अर्थात् मैंकरनेवालाहौं औजेबहुत यजनीय इन्द्रवरुणदेवताहैं जबऐसे निश्चययुक्त बुद्धिहोयतौ वहांकर्मनिष्ठा रहिसक्तीहै अर्थात् तबकर्म करसक्ता है फिरजे दिनरात्रिकीतरह परस्पर विरुद्धएक पुरुषमें दोनों बुद्धि कैसे एकसमयमें रहिसक्ती हैं औरजो नहीं एकत्रएककालमें दोनोंबुद्धि इकट्ठीहुई तौ ज्ञानकर्म दोनोंएकपुरुषमें कैसे संभवयुक्त होसकेहैं इससे समुच्चय वादीका मतसर्वथा असं-

मतहै औरइसी विरोधको देखके भगवान्ने तीसरे अध्यायमेंभी अर्जुनकी प्रश्नकायही उत्तरदिया कि हेअर्जुन इसलोकमें दोप्रकारकी निष्ठामैंने कही आत्मानात्मविवेक ज्ञानयुक्त जेपुरुषहैं तिनको ज्ञानयोग करके विभक्तन्यारी सांख्य बुद्धिमें रहनवाली ज्ञाननिष्ठा कही औकर्म करनेवाले जोपुरुषहैं तिनको कर्मयोग करके विभक्त अर्थात् न्यारी योगबुद्धिमें रहनेवाली कर्मनिष्ठाकही यहभगवान्ने अर्जुनसेकहा और जैसेयहां दोनोंनिष्ठा पृथक्पृथक् कहीहैं तैसेही शतपथ ब्राह्मणमेंभी विभागसे दोनोंनिष्ठा कही कि इसी आत्मरूप संन्यासियोंके लोककी इच्छाकरतेहुए ब्राह्मण गृहादित्यागके संन्यासधारणकरतहैं इसप्रकार सर्व कर्मोंका संन्यास विधानकर फिरयहकहा कि हमप्रजाकरके अर्थात् संतानकरके क्याकरैंगे जिनहमारे को यहआत्माही प्रकाशरूपलोकहै फिरउसीशतपथ ब्राह्मणमें विवाहकरने के पूर्वऔर विद्यापढ़नेके अनन्तर यहप्राकृतपुरुष तीनोंलोकके साधनकरनेवाला जोपुत्र तिसको और दोप्रकारकाधन एकमानुष्य एकदैव तहांमानुष्यधन तौपितृलोकका साधन सकामकर्मरूप औदैवधन उपासनारूप देवलोककी प्राप्ति कासाधन विद्याइनकी इच्छा करताहुआ औराफिर इच्छाकरके रचताभीहुआ इत्यादिकथनसे अविद्याकाम युक्तपुरुषही को संपूर्णश्रौतस्मार्त्त कर्मदिखलाये फिरतिसके उपरान्तभी उसीशतपथ ब्राह्मणमें यहकहाकि जबवैराग्यको प्राप्तहोताहै तौ उनसबकर्मोंसे मनको उठाकरसंन्यास को धारणकरताहै तौ इसकथनसे आत्मलोककी इच्छाकरने वालेहीको सर्वकर्म त्यागरूपसंन्यास कहा सो जो गीताशास्त्र में ज्ञानकर्मका समुच्चयअर्थात् एकही पुरुषको संगसंग दोनोंका करना जो कृष्णभगवान् को अभिप्रेत होगा अर्थात् कृष्णभगवान्का समुच्चय कथन में तात्पर्य्य होगा तौ जो शतपथ ब्राह्मण में न्यारा न्यारा अधिकारी के भेदसे कर्म और संन्यास का वर्णन है सो असंगत होजायगा अर्थात् उस वेदसे और गीताशास्त्र से महान् विरोध होगा और जो एकपुरुष करके ज्ञान और कर्म इनका असम्भव भगवान् प्रथमनहीं कहतेतौ कैसेअर्जुन ज्ञानको श्रेष्ठमानके प्रश्नकरताकि [ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मताबुद्धिर्जनार्दनेत्यादि] हेजनार्दन जो तुमको कर्मसे ज्ञानश्रेष्ठ अभिमतहै तौ घोरकर्ममें मुझको किसवास्ते प्रेरणा करतेहौ इससे निश्चित हुआ कि एकअधिकारी को ज्ञानकर्मका एककाल में करना भगवान्ने नहींकहा और जोदोनों का उपदेशकरते तौ सामान्यसे अर्जुनकोभी उपदेश होई गयाथा तौ फिर अर्जुन ने यहकैसे पूछा कि (यच्छ्रेयएतयोरेकंतन्मेब्रूहिसुनिश्चितम्)अर्थ। हे कृष्ण जो इनज्ञानकर्मोंके मध्यमें श्रेय अर्थात् मुझको कल्याणकारक एकको कोई निश्चय करके होय उसीको कहिये यह अर्जुनका प्रश्नदेने के उपदेशमें नहीं संभवहोता जैसे किसी वैद्यने किसी को पित्तदोष की शान्तिके लिये यहकहा कि मीठा और ठंढा अन्नभोजनकरना चाहिये ऐसा उपदेश जब वैद्यने किया तौ यहकोई नहीं पूछता है कि-

इनमीठे और ठंढेमें जो अच्छाहोय तिसको कहिये क्योंकि विनामीठे के केवल ठंढा अन्न नहीं पित्तको शान्तकरता और मीठाभी गरम अन्नहोय तौभी पित्तको शान्तनहीं करताहै किन्तु दोनोंमिलके शान्तकरते हैं इस से वहां प्रश्नका अवकाश नहीं हां जो न्यारीन्यारी दो औषधी उपदेश कीजावैं तभी प्रश्नका संभवहोताहै तैसे यहांभी अर्जुनके प्रश्नसे निश्चितहोता है कि न्याराही न्यारा उपदेशहै नकहौ अर्जुनने भगवान् के वचनके अर्थ को विवेकसे नहींजाना इससे ऐसा प्रश्नकिया ऐसीही कल्पनारहौ सोयह ठीकनहीं क्योंकि जब अर्जुनने भगवान्के अभिप्रायको विनाजाने प्रश्नाकियाथा तौ भगवान् को तौ उसप्रश्नके योग्यही उत्तरदेनाचाहिये कि हेअर्जुन मैंने तौ ज्ञानकर्मका समुच्चयकहाहै फिर तू किसवास्ते भ्रमकरके ऐसा पूछताहै ऐसाकहना उचितथा और फिर उसअयोग्य उत्तरको अर्थात् हे अर्जुन मैंने तुझसे पहिलेही दोनिष्ठाकहीहैं ऐसाक्योंकहते इससे भगवान् ने भी यहीसूचनकिया कि मैंने समुच्चय नहींकहाहै और स्मार्त्तकर्मके साथ ज्ञानकासमुच्चय रहै और श्रौतकर्मसे विभागरहै इस रीतिसे अर्जुनका प्रश्नरहै सो यहभी सम्भवनहींहै क्योंकि अर्जुनकायुद्धरूपकर्महै सोभीस्मार्त्तही है तौ फिर अर्जुनने यह क्योंकहा कि घोरयुद्धादि कर्म में मुझको किसवास्ते प्रेरणाकरतेहौ इससे भगवान्के कहेहुए सबकर्मोंका और ज्ञानका विभाग जानहीके अर्जुनने प्रश्नकिया और भगवान्ने उत्तरभी उसकोदिया कुछ समुच्चय जानके न प्रश्नहीहै न उत्तरहीहै तिससे गीताशास्त्रमें थोड़ेसेभी नवैदिककर्मके साथ और न धर्मशास्त्रोक्त वापी कूप तड़ागादि कर्म के साथ ज्ञानकासमुच्चय अर्थात् संग संग करना कोईदिखानेको समर्थहै यह सिद्धान्त सिद्धहुआ और जो पुरुष अज्ञानसे वा रागादिदोषोंसे कर्ममें प्रवृत्तहुआ और फिर कर्मरहित यज्ञ और दान और तप इनका करनेसे जब अन्तःकरण शुद्धहुआ और फिर तिसके अनन्तर उसको परमार्थतत्त्व विषयमें एक अद्वितीय ब्रह्मरूपही सबजगत्है और कर्तृत्वादि धर्मरहित हों तिसपुरुषका कर्म और कर्मकाप्रयोजन फलादिकभी सब निवृत्तहोगया फिर तिसके अनन्तर वहपुरुष लोकसंग्रहके अर्थ योगादि यत्नपूर्वक कर्ममें प्रवृत्तहोवै तौ उसकी जो कर्ममें प्रवृत्ति दिखाईपड़ती हैं सोवह कर्मनहीं है जिससे ज्ञानसे समुच्चयहोय क्योंकि कर्मकाकारणतौ अज्ञान उसका पहिलेही नष्टहोगया है अबतौ बालवत् निरभिमान लोकसंग्रहार्थही प्रवृत्तादिखाई पड़ताहै जैसेभगवान् वासुदेवका क्षात्रधर्म युद्धादि प्रतीतहोताहै सोवहमोक्षके लियेज्ञानके साथथोड़ेही समुच्चयको प्राप्तहोताहै किन्तुलोकसंग्रहार्थही कियाजाता है सो जैसे भगवान्के कर्मकरनेमें फलाभिसन्धि औरअहंकारये नहींहोतेहैं तैसेही ज्ञानीके कर्ममेंभी इनदोनोंका नहोनातुल्यहीहै क्योंकि तत्त्ववेत्ता पुरुषयह जानताहै किमैं कुछनहीं करताहूं इसीसे कुछफलकी चाहनाभी मनमें नहीं करताहै जैसेस्वर्गादि कामना करनेवाला पुरुष अग्निहोत्रादि कर्मरूपधर्मक-

रनेको वेदकी विधिसे अग्निकाआधान कुंडमें किया फिरस्वर्गादिककी कामनाहीसे उसके करनमें प्रवृत्तहुआ और फिरउस यज्ञको आधाकरचुका उसी समयमें दैवयोगसे स्वर्गादिककी कामना नष्टहोगई और उसी अग्निहोत्रादिकर्मको फिरकरनेलगा तौफिर वहअग्निहोत्रादि काम्य नहींहोताहै अर्थात् स्वर्गादि फलदायकनहींहोता उसको आगे भगवान्ही दिखावैंगे किज्ञानी कर्मकरताभी और लिप्तनहीं होताहै यह पंचमाध्यायके७ श्लोकमेंकहा और तेरहवें अध्यायके ३१ इकतीसवें श्लोकमें कहाहै और जोतौ चतुर्थाध्याय के १५ पंदरहवें श्लोकमें (पूर्वैःपूर्वतरंकृतम्) पहिले महात्माओंकरके कियाहुआ जो पहिलेका कर्मतिसको तूकरऐसा कहा औरतीसरे अध्याय के २० बीसवें श्लोकमें [कर्मणैवहिसंसिद्धिमास्थिताजनकादयः] किकर्महीकरके जनकादिक मोक्षरूप संसिद्धिको प्राप्तहोतेहुये यहकहासो यहांभीविभागही करके अर्थविवक्षितहै कुछज्ञानकर्मके समुच्चयकरके अर्थ नहीं है सो अर्थ इसप्रकारकरके होताहै कि जो कदाचित् पूर्व अर्थात् पहिले जनकादिक तत्त्ववत्ताथे औरकर्ममेंभी प्रवृत्तहुये ऐसा जोकहो तौ वे जनकादि लोकसंग्रह केअर्थ [गुणागुणेषुवर्त्तन्त] गुण जो इन्द्रियां ते गुणोंमें अपनेअपने विषयमें प्रवृत्तहोती हैं और मैं तो कुछनहीं करताहूं इसज्ञानही करके संसिद्धि जो मोक्ष तिसको प्राप्तहोतेहुए और कर्मकेसंन्यासकी योग्यताभीथी परन्तु कर्मकरके सहितही मोक्षको प्राप्तहुए कर्मकान्यास अर्थात् त्याग नहीं करते हुए यह अर्थहै और जो वे जनकादिक तत्त्ववेत्ता नहींथे तौ ईश्वरसमर्पित जो कर्मरूपसाधन तिसकरके अन्तःकरण शुद्धिरूप संसिद्धिको अथवा ज्ञान लक्षणा सिद्धिको प्राप्तहोतेहुए यह अर्थ जानना और इसीअर्थको भगवान् पांचवें अध्यायके ११ ग्यारहवें श्लोकमें कहैंगे कि योगीलोग असक्तिको त्यागके अन्तःकरणकी शुद्धिकेलिये कर्मकरते हैं और १८ अठारहवें अध्यायके ४६ छियालीसवें श्लोकमें अपने कर्मकरके मनुष्य उसपरमेश्वरका पूजनकरके ज्ञानरूप सिद्धिको प्राप्तहोताहै ऐसाकहिकै फिर उसीअध्यायके ५० पचासवें श्लोकमें हे अर्जुन सिद्धिकोप्राप्तहोके वहपुरुष जैसे ब्रह्मको प्राप्तहोताहै उसप्रकार को मुझसेश्रवणकर यह भगवान्नेकहा तिससेगीता शास्त्रमें केवल तत्त्वज्ञानहीसे मुक्तिहोती है और कर्मसहितज्ञानसेनहींहोती है यहीअर्थ निश्चय कियागयाहै और जैसे यह अर्थसिद्धान्त है तैसे प्रकरण प्रकरणमें तहां तहां विभागकरके दिखलावैंगे तहां इसपूर्वोक्तप्रकारकरके धर्मके विषयमें मूढ़है अर्थात् मोहयुक्तहुआहै चित्तजिसका और झूठे ज्ञान करके युक्त होरहाहै और बड़ाभारी जो शोकरूपी समुद्र तिसमें डूबरहा है ऐसा जो अर्जुन तिसका सिवाय आत्मज्ञानते और किसीजगह उद्धार को नहीं देखतेहुए जो भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण सो तिस शोकसागरसे कृपा करके उसअर्जुन को उद्धारकरनेकी इच्छाकरतेहुए आत्मज्ञानकेलिये अवतरणकरतेहुए श्लोकको कहते हैं अशोच्यानन्वशोच इति हे अर्जुन अच्छे

आचरणकरनेवाले हैं इसहेतुसे तौ व्यवहारदशामें औ आत्मा असंग अजरअमरहै इसकारणसे परमार्थदशामेंभी नहीं शोचनीय अर्थात् नहींशोच करिबेयोग्य जे भीष्मद्रोणादि तिनको तू हाय ये मेरे निमित्तसे मरतेहैं औ मैं इनकेबिना राज्यसुखादिकों करके क्याकरूंगा इसप्रकार शोचता है औ प्रज्ञावान् जेपण्डितलोग तिनकेसे वचनभी कहताहै अर्थात् पुष्पोंसे पूजाके योग्य भीष्मद्रोणादिकों से बाणोंकरके कैसे युद्धकरौं ऐसे कहताहै सो तेरी बड़ीभारी मूर्खताहै जो तू पण्डिताई से विरुद्ध अपनेमें व्यवहार दिखाता हुआ सिड़ीकी तरह वर्त्तरहाहै जिससे जे कोई पण्डित आत्मज्ञानीहैं ते मरेहुओंको और जीवतेहुओं को भी नहीं शोचते हैं अर्थात् ये पित्रादिक मरतेहैं इनकेबिना मेरानिर्वाह कैसेहोगा इसप्रकार मरेहुओंको नहीं शोचते हैं औ मैं तो मरताहूं मेरे बिना ये पुत्रादिक कैसे जीवैंगे इसप्रकार जीवतेहुओंको भी पंडितलोग नहीं शोचते हैं औ तू परमार्थमें नित्यहोनेसे शोचनीय नहींहै औ तू शोचताहै इससे मूढ़है यहअभिप्रायहै औ पण्डा आत्मविषया बुद्धि जिनकेहोय वे पंडितकहाते हैं यह पंडितशब्दके अर्थ से पण्डित शब्द इहां ज्ञानीको कहताहै औ (पाण्डित्यंनिर्विद्येतिश्रुतेः) आत्मज्ञानरूप पण्डिताईको प्राप्तहो बालककेसदृश स्थितहोनेकी इच्छा करै ऐसा वेदमें भी कहाहै इति ॥ ११ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कुतस्ते अशोच्या यतो नित्याः कथं नतु एव जातु कदाचिदहं नासं किन्त्वासमेव अतीतेषु देहोत्पत्तिविनाशेषु घटादिषु वियदिवनित्यमेवाह मासमित्यभिप्रायः तथा नत्वं नासीः किन्त्वासीरेव तथा नेमे जनाधिपाः नासन् किन्त्वासन्नेव तथा नचैव न भविष्यामः किंतु भविष्याम एव सर्वे वयमतोऽस्माद्देहविनाशादुत्तरकालेऽपि त्रिष्वपि कालेषु नित्या स्वरूपेणेत्यर्थः देहभेदानुवृत्त्या बहुवचनं नात्मभेदाभिप्रायेण ॥ १२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

नित्यत्वमशोच्यत्वे कारणमिति सूचितं विवेचयितुं प्रश्नपूर्वकं प्रतिजानीते कुतइत्यादिना नित्यत्वमसिद्धं प्रमाणाभावादिति चोदयति कथमिति आत्मा न जायते प्रागभावशून्यत्वान्नरविषाणवदिति परिहरति नत्वेवेति किञ्चात्मा नित्यो भावत्वे सत्यजातत्वाद्व्यतिरेके घटवदित्यनुमानान्तरमाह नचैवेति यत्तु कैश्चिदात्मयाथात्म्यं जिज्ञासितं भगवानुपदिशति नत्वित्यादिना श्लोकचतुष्टयेनेत्यादिष्टं तदसद्विशेषवचने हेत्वभावात् सर्वत्रैवात्मयाथात्म्यप्रतिपादनाविशेषादित्याशयेन पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजनेति त्रितयमपि व्याख्यानांगं प्रतिपादयति नत्वित्यादिना मन्वात्मनो देहोत्पत्तिविनाशयोस्तदुत्पत्तिविनाशप्रसिद्धेरुक्तमनुमानद्वयं प्रसिद्धिविरुद्धतया कालात्ययापदिष्टमिष्टमितिनेत्याह अतीतेष्विति चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यादिति न्यायेनात्मनो जन्मविनाशप्रसिद्धेरौपाधिकजन्मविनाशविषयत्वान्निरुपाधिकस्य तस्य जन्मादिराहित्यमिति भावः यद्यपि तवेश्वरस्य जन्मराहित्यं तथापि कथं ममेत्याशङ्क्याह तथेति तथापि भीष्मादीनां कथं जन्माभावस्तत्राह तथा नेम इति द्वितीयमनुमानं प्रपञ्चय

त्तरार्द्धं व्याचष्टे तथेत्यादिना ननु देहोत्पत्तिविनाशयोरात्मनो जन्मनाशाभावेऽपि महास्वर्गमहाप्रलययोस्तस्याग्निविस्फुलिङ्गदृष्टान्तश्रुत्या जन्मविनाशावेष्टव्यावित्याशङ्क्य नात्माश्रुतेरिति न्यायेन परिहरति त्वष्वपीति यावद्विकारन्तु विभागो लोकवदिति न्यायेन भिन्नत्वाद्विकारित्वमात्मनामनुमीयते भिन्नत्वञ्च बहुवचनप्रयोगप्रामतमित्याशङ्क्याह देहेति ॥ १२ ॥

नत्वेवाहं जातु नासं नत्वं नेमे जनाधिपाः ।
नचैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

स्वामिकृतटीका ।

अशोच्यत्वे हेतुमाह इति यथार्थं परश्वरो जातु कदाचिल्लीलाविग्रहस्याविर्भावतिरोभावतो नासमिति तु नैवापि त्वासमेवानादित्वात् नच त्वं नासीनाभूरपि त्वासीरेव इमे च जनाधिपा नृपा नासन्निति तुनापि तुत्थास्याम एवेति जन्ममरणशून्यत्वादशोच्य इत्यर्थः ॥ १२ ॥

नवलभाष्य ।

काहेसे भीष्मादिक अशोच्यहैं जिसते नित्यहैं काहेसे नित्यहैं यह अर्थ के निश्चयकरनेको भगवान् अर्जुनसे कहतेहैं कि हेअर्जुन इसलीलादेहके धारणकेपूर्व कदाचित् क्या मैं नहींहोताहुआ किन्तु होताही हुआ देहों के उत्पत्ति विनाशहोतेहुएभी घटादिकोंके नाशमें आकाशके सदृश नित्यही मैं हूं यहअभिप्रायहै तैसेही इसदेहधारणकेपूर्व तू क्यानरहा किन्तु रहाही था तैसेही ये सबराजालोग पहिले न थे किन्तु ये होतेही हुए तैसेही हम सब अगाड़ी क्या नहींहोवेंगे किन्तु होवेंगेही इससे यह सिद्धहुआ हमतुम जे सब पहिलेभीथे औ अबहैं औ आगेभीहोंगे इसप्रकार तीनोंकालमें आत्मरूपकरके नित्यहैं औ यद्यपि आत्माएकहै तौभी देहोंकेभेदसे यहां बहुबचन किया कुछ आत्मभेदके अभिप्रायसे नहीं है ॥ १२ ॥

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

तत्र कथमिव नित्य आत्मेति दृष्टान्तमाह देहिनः देहोऽस्यास्तीति देही तस्य देहिनो देहवतः आत्मनः अस्मिन् वर्त्तमाने देहे यथा येनप्रकारेण कौमारं कुमारभावो बाल्यावस्था यौवन यूनो भावो मध्यमावस्था जरावयो हानिर्जीर्णावस्था इत्येताः तिस्रोऽवस्था अन्योन्यविलक्षणा स्तासां प्रथमावस्था नाशेन नाशो द्वितीयावस्थोपजननेनोपजनमात्मनः किं तर्ह्यविक्रियस्यैव द्वितीयात्तृतीयावस्थाप्राप्तिरात्मनो दृष्टा यथा तद्वदेव देहादन्यो देहो देहान्तरं तस्य प्राप्तिर्देहान्तरप्राप्तिरविक्रियस्यैवात्मन इत्यर्थः धीरो धीमांस्तत्रैव सति न मुह्यति न मोहमापद्यते ॥ १३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

ननु पूर्वं देहं विहायाऽपूर्वं देहमुपादानस्य विक्रियावत्त्वेनोत्पत्तिविनाशवत्त्वाद्विभ

मः समुद्भवेदिति शङ्कते तत्रेति अशोच्यत्वप्रतिज्ञायां नित्यत्वे हेतू कृते सतीति यावत् अवस्थाभेदे सत्यपि वस्तुतोऽविक्रियभावादात्मनो नित्यत्वमुपपन्नमित्युत्तर श्लोकेन दृष्टान्तावष्टम्भेन प्रतिपादयतीत्याह दृष्टान्तमिति न केवलमागमादेवात्मनो नित्यत्वं किन्त्ववस्थान्तरवज्जन्मान्तरे पूर्वसंस्कारानुवृत्तेश्चेत्याह देहिन इति देहवतः त्वं तस्मिन्नहं ममाभिमानभावत्वं तासामिति निर्धारणे षष्ठी आत्मनः श्रुतिस्मृत्युपपत्तिभिर्नित्यत्वज्ञानं धीमानित्यत्र धीर्विवक्ष्यते एवं सतीति तत्त्वतोऽविक्रियाभावान्नित्यत्वे समधिगते सतीत्यर्थः॥ १३॥

स्वामिकृतटीका।

नन्वीश्वरस्य तव जन्ममरणशून्यत्वं सत्यमेव जीवानान्तु जन्ममरणे प्रसिद्धे तत्राह देहिन इति देहिनो देहाभिमानिनो जीवस्य यथास्मिन् स्थूलदेहे कौमाराद्यवस्थास्तद्देहनिबन्धना एवात्मनः पूर्वावस्थानाशेऽवस्थान्तरोत्पत्तावपि स एवाहमिति प्रत्यभिज्ञानात् तथैवैतद्देहनाशे देहान्तरप्राप्तिरपि लिंगदेहनिबन्धनैव नतु तावतात्मनो नाशो जातमात्रस्य पूर्वसंस्कारेणस्तन्यपानादौ प्रवृत्तिदर्शनात् अतो धीरो धीमांस्तत्र तयोर्देहनाशोत्पत्त्योर्नमुह्यति आत्मैव मृतो जातश्चेति न मन्यत इति॥ १३॥

नवलभाष्य।

अब किसप्रकारसे आत्मानित्य है इसमें दृष्टान्त कहतेहैं जैसे इसस्थूलदेहाभिमानी आत्माको परस्पर विलक्षण अर्थात् तरह तरह की बाल्य यौवन वृद्धावस्था प्राप्तहोती हैं फिर इनतीनों अवस्थाओं के मध्यमें प्रथम अवस्थाकेनाशमें आत्माकानाश नहींहोता औ द्वितीय अवस्थाकी उत्पत्ति में आत्माकी उत्पत्ति नहींहोती किन्तु विकाररहितही आत्माको दूसरी वा तीसरी अवस्थाकी प्राप्ति जैसे देखीहै अर्थात् प्रथमअवस्थाके नाशमें और द्वितीय अवस्थाकी प्राप्तिमें जो मैं बाल्यअवस्थामें था सोई मैं अब युवावस्थापन्नहों ऐसी नियमसे सबमनुष्योंको प्रतीति होती है औ युवादि अवस्थाकी प्राप्तिमें देहहीमें केशश्मश्रु अर्थात् डाढ़ीआदि विकार देखपड़ता है आत्मातौ वैसाही अविकृतरहताहै इससे तीनों अवस्थाओंमें आत्मानित्यहै यहनिश्चय सिद्धहुआ ऐसेही लिंगदेहाभिमानी आत्माको और और विलक्षणस्थूलदेहों की प्राप्तिमेंभी विकाररहितही वहआत्मारहताहै इसीसे जातमात्र बालकी प्रवृत्तिमाताके स्तनपानमें होतीहै औ कर्मोंकी विचित्रतासे जन्मसमयमें मूर्छावशसे ज्ञानके आवृतहोनेसे पूर्व जन्मका स्मरण नहींरहताहै औ जिनका उत्पत्ति समयमें ज्ञानआवृत नहीं होता उनकोपूर्वजन्मकास्मरणभी होताहै यहआगे स्पष्टहोगा इससे हे अर्जुन जोधीरपुरुषअर्थात् बुद्धिमान् औरदेहकी प्राप्तिमें मोहको प्राप्तनहीं होता है ॥ १३ ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यद्यप्यात्मविनाशनिमित्तो मोहो न सम्भवति नित्य आत्मेति विजानतस्तथापि शीतोष्णसुखदुःखप्राप्तिनिमित्तो मोहो लौकिको दृश्यते सुखवियोगनिमित्तो मोहो दुःखसंयोगादिनिमित्तश्च शोक इत्येतदर्जुनस्यवचनमाशंक्याह मात्रास्पर्शा इति आभिर्मीयन्ते शब्दादय इति श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि मात्राणां स्पर्शा शब्दादिभिः संयोगास्ते शीतोष्णसुखदुःखदाः शीतमुष्णं सुखं दुःखञ्च प्रयच्छन्तीति अथवा स्पृश्यन्ते इति स्पर्शा विषयाः शब्दादयः मात्राश्च शीतोष्णसुखदुःखदाः शीतं कदाचित् सुखं कदाचिद् दुःखं ततोष्णमप्यानियतस्वरूपं सुखदुःखे पुनर्नियतरूपे यतो न व्यभिचरतोऽतस्ताभ्यां पृथक् शीतोष्णयोर्ग्रहणं यस्मात्ते मात्राः स्पर्शादयः आगमापायिनः आगमापायशीलाः तस्मादनित्या उत्पत्तिविलयरूपत्वात् अतस्तान् शीतोष्णादींस्तितिक्षस्व प्रसहस्व तेषु हर्षविषादं माकार्षीरित्यर्थः ॥ १४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

आत्मनः श्रुत्यादिप्रमिते नित्यत्वे तदुत्पत्तिविनाशप्रयुक्तशोकमोहाभावेऽपि प्रकारान्तरेण शोकमोहौ स्यातामित्याशङ्कामनूद्योत्तरत्वेन श्लोकमवतारयति यद्दीत्यादिना शीतोष्णयोस्ताभ्यां सुखदुःखयोश्च प्राप्तिं निमित्तीकृत्य यो मोहादिर्दृश्यते तस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यां दृश्यमानत्वमाश्रित्य लौकिकविशेषणमशोच्यानित्यत्र यो विद्याधिकारी सूचितस्तस्य तितिक्षुः समाहितो भूत्वेति श्रुतेः तितिक्षुत्वं विशेषणमिहोपदिश्यते व्याख्येयं पदमुपादाय करणव्युत्पत्त्या तस्येन्द्रियविषयत्वं दर्शयति मात्रा इत्यादिना षष्ठीसमासं दर्शयन् भावव्युत्पत्त्या स्पर्शशब्दार्थमाह मात्राणामिति तेषामर्थक्रियामादर्शयति ते शीतेति संप्रति शब्दद्वयस्य कर्मव्युत्पत्त्या शब्दादिविषयपरत्वमुपेत्य समासान्तरं दर्शयन् विषयानां कार्यं कथयति अथवेति ननु शीतोष्णप्रवृत्तेः सुखदुःखप्रदत्वस्य सिद्धत्वात् किमिति शीतोष्णयोः सुखदुःखाभ्यां पृथक्ग्रहणमिति तत्राह शीतमिति विषयेभ्यस्तु पृथक् कथनं तदन्तर्भूतयोरेवतयोः सुखदुःखहेत्वोरानुकूल्यप्रातिकूल्ययोरुपलक्षणार्थम् अध्यात्मं हि शीतमुष्णं वानुकूल्यं प्रातिकूल्यं वा सम्पाद्य बाह्या विषयाः सुखादिजनयन्ति ननु विषयेन्द्रियसंयोगस्यात्मनि सदा सत्त्वात् तत्प्रयुक्तशीतादेरपि तथात्वात् तन्निमित्तौ हर्षविषादौ तस्मिन्नापन्नावित्याशङ्कोत्तरार्द्धं व्याचष्टे यस्मादित्यादिना अत्र च कौन्तेय भारतेति सम्बोधनाभ्यामुभयकुलशुद्धस्यैव विद्याधिकारित्वमिति एतदेव द्योत्यते ॥ १४ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु तामहं न शोचामि किन्तु तद्वियोगादिदुःखभावेति चेत् तत्राह मात्रास्पर्शा इति मीयन्ते ज्ञायन्ते विषया आभिरति मात्रा इन्द्रियवृत्तयस्तासां स्पर्शा विषयैः सह सम्बन्धास्ते शीतोष्णादिप्रदाभवन्तितेत्वागमापायवत्त्वादनित्या अस्थिरा अतस्तांस्तितिक्षस्व सहस्व यथा जलातपादिसंसर्गास्तत्तत्कालकृताः स्वभावतः शीतोष्णादिप्रयच्छन्ति एवमिष्टसंयोगवियोगा अपि सुखदुःखादिप्रयच्छन्ति तेषाञ्चास्थिरत्वात् सहनं तव धीरस्योचितं नतु तन्निमित्तहर्षविषादपारवश्य मित्यर्थः ॥ १४ ॥

नवलभाष्य।

यद्यपि आत्मानित्यहै ऐसा जाननेवाले पुरुषको आत्मविनाश के का-

रणसे तौमोह नहीं सम्भवहोता तौभी शीत अर्थात् जाड़ा औगरमी औसु-खदुःख इन्होंके कारणसेभी लोकमें मोह औसुखवियोगसे औदुःख संयोग से शोकदिखाई पड़ताहै यहकदाचित् अर्जुन कहै तिससे भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन मात्रास्पर्श ये शब्दादि विषयते स्वभावही से शीत उष्णसुख दुःख देनेवाले होतेहैं अर्थात् अनुकूल विषय सुखका देनेवाला होताहै औ प्रतिकूल दुःखको देताहै जैसे गरमीकी ऋतुमें शीतल सुखदायी होताहै व-हीजाड़ोंमें दुःखदायी होताहै तैसेही मित्रदर्शन सुखदहोताहै औशत्रुदर्श-नदुःखदेता है ऐसेही अनुकूल शब्दादि विषयोंके संबन्धमें सुखहोताहै औ प्रतिकूलमें दुःखहोताहै औफिर जेविषय आगमापायीहैं आतेभीहैं चलेभी जातेहैं सदानहीं रहतेहैं इसीसे अनित्यहैं इससे हे अर्जुन इनकोसहौ अ-र्थात् इनमें हर्षविषाद मतकरौ इसका तात्पर्य यहहै कि जो भीष्मादि इष्ट-मित्रोंके संयोगमें वाह्येन्द्रिय संबन्धसे इनके दर्शन स्पर्शनादिकमें सुखमा-नतेहौ उसको अनित्यजानके उसमेंसे सुखबुद्धिको हटाओ और इनकेवि-योगकी संभावना से जो दुःखमानतेहौ उसको भी अनित्यजानके उसमें दुःखबुद्धि न करौ॥ १४॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्प्यते॥ १५॥

शङ्करभाष्यम्।

शीतोष्णादीन् सहतः किं स्यादिति शृणु यंहीति यं हि पुरुषं समे दुःखसुखे यस्य तं समदुःखसुखं सुखदुःखप्राप्तौ हर्षविषादरहितं धीरंधीमन्तं न व्यथयन्ति न चालयन्ति नित्यात्मदर्शनादेते यथोक्ताः शीतोष्णादयः स नित्यानित्यस्वरूपदर्शननिष्ठाद्वन्द्वसहिष्णुरमृतत्वाय अमृतभावाय मोक्षायेत्यर्थः कल्प्यते समर्थोभवति॥ १५॥

आनंदगिरिकृतटीका।

अधिकारिविशेषणांति तत्त्वं केवलस्य तस्य पुमर्थाहेतुत्वादिति शङ्कते शीतेतिविवेकवैराग्यादिसहितं तन्मोक्षहेतुज्ञानद्वारा तदर्थमितिपरिहरति शृणु तितिक्षमाणस्य विवक्षितं लाभमुपलम्भयति यं हीति हर्षविषादरहितमित्यत्र शमादिसाधनसम्पन्नत्वमुच्यते धीमन्तमिति नित्यानित्यविवेकभागित्वमेतच्चोभयं वैराग्यादेरुपलक्षणं नित्यात्मदर्शनं त्वमर्थज्ञानं साधनचतुष्टयवन्तमधिकारिणमनूद्य त्वं पदार्थज्ञानवतस्तस्यमोक्षौपयिकवाक्यार्थज्ञानयोग्यतामाह सनित्येति॥ १५॥

स्वामिकृतटीका।

तत्प्रतीकारप्रयत्नादपि तत्सहनमेवोचितं महाफलत्वादित्याह यं हीति एते मात्रास्पर्शा यं न व्यथयन्ति नाभिभवन्ति समे दुःखसुखे यस्य तं स तैरविक्षिप्यमाणो धर्मज्ञानद्वारामृतत्वाय मोक्षाय कल्प्यते योग्यो भवति॥ १५॥

नवलभाष्य।

कदाचित् कहौ शीतोष्णादि द्वन्द्व सहनेमें क्याहोताहै तो सुनो हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ समानहै सुखदुःख जिसको अर्थात् न जिसको सुखकी प्राप्तिमें हर्ष है और न जिसको दुःखकी प्राप्तिमें विषादहै ऐसे जिस धीरविवेकी पुरुष को ये शीतोष्ण सुखदुःखादि नहीं व्यथाकरते हैं अर्थात् नित्यजो आत्मा तिसके दर्शनसे नहीं चलायमान करते हैं सो नित्यानित्य स्वरूपज्ञानमें स्थितसुख दुःखादिकोंका सहनेवाला पुरुष मोक्षकेअर्थ समर्थ होताहै ॥ १५ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

इतश्च शोकमोहावकृत्वा शीतोष्णादिसहनं युक्तं यस्मात् नासत इतिनासतोऽविद्यमानस्यशीतोष्णादेः सकारणस्य न विद्यते नास्ति भावो भवनमस्तिता नहि शीतोष्णादिसकारणं प्रमाणै र्निरूप्यमाणं वस्तु सद्भवति विकारो हि सः विकारस्य व्यभिचरति यथा घटादिसंस्थानं चक्षुषा निरूप्यमाणं मृद्व्यतिरेकेणानुपलब्धेरसत्तथा सर्वो विकारः कारणव्यतिरेकेणानुपलब्धेरसज्जन्मप्रध्वंसाभ्यां प्रागूर्ध्वंचानुपलब्धेः कार्य्यस्य घटादेर्मृदादिकारणस्य तत्कारणस्य च तत्कारणव्यतिरेकेणानुपलब्धेरसत्त्वं तदसत्त्वे सर्वाभावप्रसंग इतिचेन्न सर्वत्र बुद्धिद्वयोपलब्धेः सद्बुद्धिरसद्बुद्धिरिति यद्विषया बुद्धिर्न व्यभिचरति तत्सत्यद्विषया व्यभिचरति तदसत् इति सद सद्विभागेबुद्धितन्त्रेस्थिते सर्वत्र द्वे बुद्धी सर्वैरुपलभ्येते सामानाधिकरणेननीलोत्पलवत् सन् घटः सन् पटः सन् हस्तीत्येवं सर्वत्र तयोर्बुद्ध्योर्घटादिबुद्धिर्व्यभिचरति तथा च दर्शितं नतु सद्बुद्धिः तस्मात् घटादिबुद्धिविषये सन् व्यभिचारात् सद्बुद्धिविषयोऽव्यभिचारात् पटे विनष्टे घटबुद्धौ व्यभिचरन्त्यां सद्बुद्धिरपि व्यभिचरतीतिचेत् न पटादावपि सद्बुद्धिदर्शनात् विशेषणविषयैवमसद्बुद्धिरपि न विनश्यति अथ तद्बुद्धिवत् घटबुद्धिरपि घटान्तरे दृश्यते इतिचेन्न पटादावदर्शनात् सद्बुद्धिरपि नष्टे घटे न दृश्यत इतिचेत् न विशेष्याभावात् सद्बुद्धिः विशेषणविषया सती विशेष्याभावे विशेषणानुपपत्तौ किं विषया स्यान्नतु पुनः सद्बुद्धिर्विषयाभावात् एकाधिकरणत्वं घटादि विशेष्याभावेन युक्तम् इतिचेत् न सदिदमुदकमिति मरीच्यादावन्यतराभावेऽपि सामानाधिकरण्यदर्शनात् तस्माद्देहादेर्द्वन्द्वस्य च सकारणस्यासतो न विद्यते भाव इति तथा सतश्च आत्मनः अभावोऽविद्यमानता न विद्यते सर्वत्राव्यभिचारादित्यवोचाम एवमात्मानात्मनोः सदसतोरुभयोरपि दृष्टः उपलब्धोऽन्तो निर्णयः सत्सदेवासदसदेवेति तु अनयोर्यथोक्तयोस्तत्त्वदर्शिभिः तदिति सर्वनाम सर्वञ्च ब्रह्म तस्य नाम तदिति तद्भावस्तत्त्वं ब्रह्मणो याथात्म्यं तद्द्रष्टुं शीलं येषान्ते तत्त्वदर्शिनस्तैस्तत्त्वदर्शिभिस्त्वमपितत्त्वदर्शिनां दृष्टिमाश्रित्य शोकं मोहञ्च शीतोष्णादीनि नियतानि यतरूपाणि द्वन्द्वानि विकारोयमसन्नेव मरीचिजलवन्मिथ्यावभासतेति मनसिव्यवस्य तितिक्षस्वेत्यभिप्रायः ॥ १६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

अधिकारिविशेषणोक्ति तितिक्षुत्वे हेत्वन्तरपरत्वे नोत्तरश्लोकमवतारयति इतश्चेति इतः शब्दार्थमेव स्फुटयति यस्मादिति यतःशीतादेः क्लेशादिहेतोरनात्मनो नास्ति वस्तुत्वं वस्तुतश्चात्मनो निर्विकारत्वेनैकरूपत्वम् अतो मुमुक्षोर्विशेषणं तितिक्षुत्वं युक्तमित्याह नेत्यादिना कार्य्यस्यासत्त्वेऽपि कारणस्य सत्त्वेनात्यन्तसत्त्वासिद्धिरित्या

शङ्कां विशिनष्टि सत्कारणस्येति नासत इत्युपादाय पुनर्नकारानुकर्षणमन्वयार्थं असतःशून्य स्यास्तित्वप्रसंगाभावादप्रसक्तप्रतिषेधप्रसक्तिरित्याशङ्क्याह न हीति विमतमतात्त्विकम-प्रामाणिकत्वात् रज्जुसर्पवत् नहि धर्मिग्राहकस्य प्रत्यक्षादेस्तत्त्वावेदकं प्रामाण्यं क-ल्प्यते विषयस्य दुर्निरूपत्वादतोऽनिर्वाच्यं द्वैतमित्यर्थः कथं पुनरध्याक्ष्यादिविपयस्य शीतोष्णादिद्वैतस्य दुर्निरूपत्वेनानिर्वाच्यत्वं तत्राह विकारोहीति ततश्च विमतं मिथ्या आगमापायित्वात् सम्प्रतिपन्नवदिति फलितमाह विकारश्चेति वाचारम्भण श्रुतेः द्वैतमि थ्यात्वे अनुग्राहकत्वं दर्शयितुं चकारः किञ्च कार्यं कारणाद्भिन्नमभिन्नंवेति विक-ल्प्याद्यं दूषयति यथेति निरूप्यमाणमन्तर्बहिश्चेति शेषः विमतं कारणान्न तत्त्वतोऽभि द्यते कार्य्यत्वाद्घटवदित्यर्थः इतोऽपि कारणाद्भेदेन नास्ति कार्य्यं आदावन्ते च य-न्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथेति न्यायादित्याह जन्मेति यदि कार्य्यं कारणादभिन्नं तदा तस्य भेदेनासत्त्वे पूर्वस्मादविशेषः तादात्म्येनावस्थानन्तु न युक्तं तस्यापि कारणव्यति रेकेणाभावात् कार्य्यकारणविभागविधुरे वस्तुनि कार्य्यकारणपरम्परया विभ्रमत्वादि त्यभिप्रेत्याह मृदादिति कार्य्यकारणविभागहीनं वस्त्वेव नास्तीति मन्वानश्चोदयति तदसत्त्व इति अनुवृत्तव्यावृत्तबुद्धिद्वयदर्शनादनुवृत्ते च व्यावृत्तानां कल्पितं सर्वं भेदक-ल्पनाधिष्ठानमकार्य्यकारणं वस्तु सिध्यतीति परिहरति न सर्वत्रेति सम्प्रति सतोवस्तुत्वे प्रमाणमनुमानमुपन्यस्यति यद्विषयेति यद्व्यावृत्तेष्वनुवृत्तं तत्तदर्थं सत् यथा सर्पधारादि ष्वनुगतो रज्ज्वादेरिदमंशः विमतं सत्यमव्यभिचारित्वात् सम्प्रतिपन्नवदित्यर्थः व्यावृत्त स्य कल्पितत्वे प्रमाणमाह यद्विषयेत्यादिना यद्व्यावृत्तं तन्मिथ्या यथा सर्पधारादिवि-मतं मिथ्याव्यभिचारित्वात् सम्प्रतिपन्नवदित्यर्थ इत्यनुमानद्वयमनुसृत्य सतो कल्पित-त्वम् स्थितमिति शेषः ननु नेदमनुमानद्वयमुपपद्यते समस्तद्वैतवैतथ्यवादिनो विभा गाभावादनुमानादिव्यवहारानुपपत्तेस्तत्राह सदसदिति उक्ते विभागे बुद्धिद्वयाधीने स्थिते सत्यमनुमानादिव्यवहारो निर्वहति प्रातिभासिकविभागेन वियोगात् परमार्थस्यैव तद्धे-तुत्वेकेवलव्यतिरेकाभावादित्यर्थः कुतः सदसद्विभागस्य बुद्धिद्वयाधीनत्वं बुद्धिविभागस्या पि तथाभावात् तत्राह सर्वत्रेति व्यवहारभूमिः सप्तम्यर्थः बुद्धिभागस्यापि कल्पितस्यैव बोध्यविभागप्रतिभासहेतुतेति भावः बुद्धिद्वयमनुरुध्य सदसद्विभागे सतः सामान्यरूपतया विशेषाकाङ्क्षायां सामान्यविशेषे द्वे वस्तुनो वस्तुभूते स्यातामिति चेत् तत्राह समा नाधिकरणइतिपदयोःसामानाधिकरण्यं बुद्ध्योरुपचर्य्यतेसोऽयमिति सामानाधिकर-ण्यवद्घटःसन् इत्यादि सामानाधिकरण्य मेकवस्तुनिष्ठं वस्तुभेदे घटपटयोरिवत द्योगादित्यर्थः नीलमुत्पलमितिवद्धर्मधर्मिविषयतया सामानाधिकरण्यस्य सुवचत्वा न्नवस्त्वैक्यविषयत्वमितिचेन्नेत्याह न नीलेति नहि सामान्यविशेषयोर्भेदेच तदभावो भेदाभेदौ च विरुद्धावतो जातिव्यक्त्योः सामानाधिकरण्यं नीलोत्पलयोरिव नगौणं किन्तु व्यावृत मनुवृत्ते कल्पितमित्येकनिष्ठमित्यर्थः सामान्यविशेषयोरुक्तन्यायं गुणगुण्या दावतिदिशत्येवमिति तुल्यौ हि तत्रापि विकल्पदोषाविति भावः सामानाधिकरण्यानु पपत्त्या द्वे वस्तुनी सामान्यविशेषाविति पक्षं प्रतिक्षिप्य विशेषावेव वस्तुनीति पक्षं प्रतिक्षिपति तयोरिति बुद्धिव्यभिचाराद्बोध्यव्यभिचारेऽपि कथं व्यावृत्तानां विशेषाणाम वस्तुत्वमित्याशङ्क्याह तथाचेति विकारोहि स इत्यादाविति शेषः नचैकं वस्तु सामान्य विशेषात्मकमेकस्य द्वैरूप्य विरोधादित्यभिप्रेत्य सामान्यमेकमेव वस्तु तद्बुद्धेरव्यभि चारात् बोध्यस्यापि सतस्तथात्वादित्याह नत्विति व्यभिचरतीति पूर्वेण सम्बन्धः वि-

शेषाणां व्यभिचारित्वे फलितमुपसंहरति तस्मादिति असत्त्वं कल्पितत्वं तच्छब्दार्थमेव स्फोरयति व्यभिचारादिति सद्बुद्धिविषयस्य सतोऽकल्पितत्वे तच्छब्दोपात्तमेव हेतुमाह अव्यभिचारादिति सद्बुद्धिव्यभिचारद्वारा बोध्यस्यापि व्यभिचारात्तदव्यभिचारित्वहेतोरसिद्धिरिति शङ्कते घटे विनष्ट इति सद्बुद्धेर्घटमात्रबुद्धिवद्घटविषयत्वाभावान्न घटनाशे व्यभिचारोऽस्ति इतिपरिहरति न पटादाविति सद्बुद्धेरघटविषयत्वे निरालम्बत्वा योगात् विषयान्तरं वक्तव्यमित्याशङ्क्याह विशेषणेति सतोऽकल्पितत्वहेतोरव्यभिचारित्वस्यासिद्धिमुद्धृत्य विशेषाणां कल्पितत्वहेतोर्व्यभिचारित्वस्यासिद्धिं शङ्कते सदिति यथा सद्बुद्धिर्घटे नष्टे पटादौ दृष्टत्वात् अव्यभिचारिणी अव्यभिचारः सतोदर्शितस्तथा घटबुद्धिरपि घटे नष्टे घटान्तरे दृष्टे व्यभिचारात् घटे व्यभिचारासिद्धौ विशेषान्तरेष्वपि कल्पितत्वहेतोः व्यभिचारो न सिध्यतीत्यर्थः घटबुद्धेर्घटान्तरे दृष्टत्वेऽपि पटादावदृष्टत्वेन व्यभिचारात् पटादिविशेषेष्वपि व्यभिचारित्वसिद्धिरित्युत्तरमाह न पटादाविति विशेषाणामेवं व्यभिचारित्वे सतोऽपि तदुपपत्तेरव्यभिचारित्वहेत्वसिद्धिस्तादवस्थ्यमिति शंकते सद्बुद्धिरिति घटादिनाशदेशे तदुपरक्ताकारेण सत्त्वाभानेऽपि नासत्त्वं घटाद्यभावाधिष्ठानतया भानादित्याह न विशेष्येति यथा सर्वगता जातिरित्यत्र खण्डमुण्डादिव्यक्तभावदेशे गोत्वं व्यञ्जकाभावान्न व्यज्यते न गोत्वाभावात् तथा सत्त्वमपि घटादिनाशे व्यञ्जकाभावान्नभाति न स्वरूपाभावादित्युक्तमेव प्रपञ्चयति सदित्यादिना सप्रतियोगिकविशेषणत्वव्यभिचारेऽपि स्वरूपाव्यभिचाराद्युक्तं सतः सत्यत्वमिति भावः द्वयोः सतोरेव विशेष्यत्वदर्शनात् घट सतोरपि विशेषणविशेष्यत्वे द्वयोः सत्त्वध्रौव्यात् घटादिविकल्पितत्वानुमानं सामानाधिकरण्यधीबाधितमिति चोदयति एकेति अनुभवमनुसृत्य बाधितविषयत्वमुक्तानुमानस्य निरस्यति नेत्यादिना घटादेःसति कल्पितत्वानुमानस्य दोषराहित्ये फलितमुपसंहरति तस्मादिति प्रथमपादव्याख्यानपरिसमाप्ताविति शब्दः ननु नेदं व्याख्यानं भाष्यकाराभिप्रेतं सर्वद्वैतशून्यत्वविवक्षायां शास्त्र तद्भाष्यविरोधात् केनापि पुनर्दुर्विदग्धेन स्वमनीषकयोत्प्रेक्षितमेतदिति चेत् मैवं किमिदं द्वैतप्रपञ्चस्य शून्यत्वं किन्तुच्छत्वं किं सद्विलक्षणत्वं नाद्योऽनभ्युपगमात् द्वितीयानभ्युपगमे तु तवैव शास्त्रविरोधो भाष्यविरोधश्च सर्वं हि शास्त्रं तद्भाष्यं च द्वैतस्य सत्यत्वानधिकरणत्वसाधनेनाद्वैतसत्यत्वे पर्य्यवसितमिति त्रैविद्यवृद्धैस्तत्र तत्र प्रतिष्ठापितं तथाच प्रक्षेपाशङ्का संप्रदायपरिचयाभावादिति द्रष्टव्यम् अनात्मजातस्य कल्पितत्वेना वस्तुत्वप्रतिपादनपरतया प्रथमपादव्याख्याय द्वितीयपादमात्मनः सर्वकल्पनाधिष्ठानस्याकल्पितत्वेन वस्तुत्वप्रसाधनपरतया व्याकरोति तथेति नन्वात्मनः सदात्मनो विशेषेषु विनाशिषु तदुपरक्तस्य विनाशः स्यादित्याशङ्क्य विशिष्टनाशेऽपि स्वरूपनाशस्योक्तत्वान्मैवमित्याह सर्वत्रेति ननु कदाचिदसदेव पुनः सत्त्वमापद्यते प्रागसतो घटस्य जन्मना सत्त्वाभ्युपगमात् तच्च कदाचिदसत्त्वं प्रतिपद्यते स्थितिकाले सतो घटस्य पुनर्नाशेनासत्त्वांगीकारादेवं सदसतोरव्यवस्थितत्वाविशेषादुभयोरपि हेयत्वमुपादेयत्वं वा तुल्यं स्यादिति तत्राह एवमिति तुशब्दो दृष्टशब्देन सम्बन्ध्यमानो दृष्टिमवधारयति नहि प्रागसतो घटस्य सत्त्वमसत्त्वे स्थिते सत्त्वप्राप्तिविरोधादसत्त्वनिवृत्तिश्च सत्त्वप्राप्त्या चेत् प्राप्तिमितरेतराश्रयत्वमन्तरेणैव सत्त्वापत्तिमसत्त्वनिवृत्तावसत्त्वमनवकाशि भवेत् एतेन सतोऽसत्त्वापत्तिरपि प्रतिजानीतेतिभावः कथं तर्हि सतोऽसत्त्वमसतश्च सत्त्वं प्रतिभाति इत्याशङ्क्य तत् तद्दर्शनाभावादित्या

ह तत्त्वमिति तस्य भावस्तत्वं नच तच्छब्देन परामर्शयोग्यं किञ्चिदस्ति प्रकृतं प्रतिनियतमित्याशङ्क्य व्याचष्टे तदित्यादिना ननु सदसतोरन्ययात्व केचित् प्रतिपद्यन्ते केचित्तु तयोरुक्तनिर्णय मनुसृत्य तथात्वमेवाभिगच्छन्ति तत्र केषां मतमेषितव्यमिति तत्राह त्वमपीति ॥ १६ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ननु तथापि शीतोष्णादिकमतिदुःसहं कथं सोढव्यम् अत्यन्तं तत्सहने च कदाचिदात्मनो नाशः स्यादित्याशङ्क्य तत्त्वविचारतः सर्वं सोढुं शक्यमित्याशयेनाह नासतो विद्यत इति असतोऽनात्मधर्मत्वादविद्यमानस्य शीतोष्णादेरात्मनि भावः सत्ता नविद्यते तथा सतः सत्स्वभावस्यात्मनोऽभावो विनाशो न विद्यते एवमुभयोः सदसतोरन्तो निर्णयो दृष्टः कैःतत्त्वदर्शिभिर्वस्तु याथार्थ्यवेदिभिः एवम्भूतविवेकेन सहस्वेत्यर्थः ॥१६॥

नवलभाष्य ।

और जिससे शीतोष्णादिकोंको मिथ्यात्वहै अर्थात् झूंठापनाहै इस हेतुसेभी शोकमोहादिकोंको त्यागिके शीतोष्णादिकोंका सहनयुक्तहीहै अर्थात् झूंठेपदार्थोंके मिलनेमें और वियोगमें हर्ष शोक नहींकरना ठीकहीहै इस आशयसे भगवान् कहते हैं कि हेअर्जुन असत् अविद्यमान अत्यन्तझूंठाजो कारणसहित शीतोष्णादि विकार तिसकी सत्ता अर्थात् होना नहीं सम्भव होता क्योंकि जब प्रमाणोंकरके वह कारणसहित शीतोष्णादि निरूपण कियाजाताहै तौ कोईवस्तु नहींठहरताहै अर्थात् मिथ्याही विदित होताहै क्योंकि जिससे वहविकारहै और जो विकारहोताहै सो सदा एकसानहीं रहता जैसे घटआदि रूपको कोई नेत्रोंसे देखके विचारकरै तौ सिवायमृत्तिकाके उसमें और कोईवस्तु सत्य नहीं दिखाईपड़ती ऐसेही सबविकार अपने अपने कारणरूपहीसे प्रतीतहोरहेहैं और अपनी न्यारी कुछसत्तानहीं जैसे पटमें तन्तुओंको छोड़ औरकोईवस्तु निरूपणमें नहींआती और यहभी एकहेतुहै कि जो विकाररूपवस्तु है सो अपनी उत्पत्तिके पहिले और नाशकेअनन्तर नहीं दिखाईपड़ता एक बीचमें प्रतीतहोताहै सोभी मिथ्याहीहै क्योंकि जो आदि अन्तमें मिथ्याहै वह मध्यमें कैसे सत्यहोसक्ता है कदाचित् कहौ घटआदि विकार अपने अपने कारणरूपही करके सत्यरहो तौभी विकारकी सत्यता सिद्धहुई फिर मिथ्यात्व कैसेकहतेहौ तिसपैकहते हैं कि ऐसे माननेमें अनवस्थादोषका प्रसंगहोगा जैसे घट मृत्तिकारूपकरके सत्यहै तौ मृत्तिकाभी अपनाकारण गन्धरूपसे सत्यहै फिरगंधको जलरूप करके इसप्रकार अन्त्यमें सबको मायारूपमानने पड़ैगा सोमाया तत्त्वरहित औमिथ्याहै तौसबका अभावप्राप्तहुआ सोऐसा नहीं कहना चाहिये सबजगह दोप्रकारकी बुद्धिहै इससे कहीं दोषनहीं आवैगा एकसद्बुद्धिहै एकअसद्बुद्धिहै तहां जिसपदार्थको विषयकरनेवाली बुद्धि अर्थात् जिसपदार्थमें जानेवाली बुद्धिकभी व्यभिचार को प्राप्त न होय अर्थात् सदाएकाकारही रहै

जिसका अभावजानिकै अन्यत्र नजावै उसको सत्कहतेहैं औजिसपदार्थमें जानेवाली बुद्धि व्यभिचार को प्राप्तहोय अर्थात् एकाकारनहीं होनेसे अन्यत्रजावै उसको असत् कहतेहैं इसप्रकारसत् औ असत् वस्तुका विभागजब बुद्धिके आधीन स्थितहुआ तौ समानाधिकरण अर्थात् एकपदार्थ को विषयकरनेवाली दोबुद्धी सबजगह सबकिसी को प्रतीत होती हैं परन्तु इनदोनोंबुद्धियों को विचारवान् विवेकी पुरुष अच्छीतरह जानसक्तेहैं जैसे (सन्घटः सन्पटः सन्हस्ती) घटहै पटहै हाथीहै इसको आदिलेकै सबजगह पै दोदोबुद्धी प्रतीतहोतीहैं क्योंकि घटहै यहकहनेसे सद्बुद्धि औ घटबुद्धिप्रतीतहोतीहैं अर्थात् घटकाहोना औघट रूप इनदोनोंका ज्ञानहोताहै तहांनीलोत्पलके तुल्य विशेष्य विशेषण भावकरके समानाधिकरण नहीं होता क्योंकि दोनों सद्रूपहोयं तब ऐसासामानाधिकरण्य संभवहोसक्ताहै यहां तो घटकल्पितहै औसत् पदार्थसत्यहै औनील औउत्पलमें धर्मधर्मिभाव भी प्रतीत होताहै औनीलमें विशेष धर्म प्रतीत होताहै औ उत्पलमें सामान्य अर्थप्रतीत होताहै औयहांतौ उससे विपरीत प्रतीत होताहै अर्थात् विशेषण वाचक सत्पदार्थमें सामान्य अर्थकी प्रतीति और विशेष्य घटमें विशेष अर्थकी प्रतीतिहै इससे (सोयंदेवदत्तः इदंरजतम्) सो यह देवदत्त है यहरजतहै इत्यादि स्थलमें जैसे सामान्य रूप तद्शब्दके अर्थ के साथ औ इदम् शब्दके अर्थके साथ सामानाधिकरण्य होता है तैसेही [सन्घटः] इत्यादि प्रयोगोंमें सामान्य विशेष भावसे सामानाधिकरण्य होताहै औ दो अर्थों वा बहुत अर्थोंके एक जगह रहनेको सामानाधिकरण्य कहते हैं जैसे सन्घटः यहांसत् अर्थहोना औघटका अर्थआकार विशेष येदोनोंघटव्यक्तिमें भासमान होतेहैं तौयहां सद्बुद्धि औघटबुद्धि येदोनों रहतीहैं तिसमें सद्बुद्धितौ कभीव्यभिचार कारको प्राप्त नहींहोती सदाएकाकाररहती है क्योंकि जोई पदार्थ विद्यमान होगा उसीको सद्बुद्धि विषय करैगी अर्थात् उसीमें स्वभावही से जावैगी कुछ घटहीमेंरहै यहानियम नहीं औघटादि पदार्थके आकार जो बुद्धिहै सो सदाव्यभिचारको प्राप्तहुआही करतीहै एकतौ घटादिपदार्थ एकतरहके नहीं रहते सब परिणामी हैं इनकेरूप बदलतेही रहतेहैं फिरनश्वरहैं जिसी घटका नाशहुआ तौ उसकी बुद्धिभी नष्टहोजाती है तौयही बुद्धीका व्यभिचारहुआ जो सदाएकसा न रहना औव्यभिचार को प्राप्तहोनेही वाली बुद्धि असबुद्धिकहातीहै औउस असद्बुद्धिका विषय जो घटादि पदार्थ वहभी असत्है क्योंकि व्यभिचारको प्राप्तहोता है सदा एकसा नहीं रहता तिसकारण से औसद्बुद्धि तौ कभी व्यभिचारको प्राप्त नहीं होती इससे उससद्बुद्धिका विषयकार्य कारणभाव रहित सबका अवधिभूत आत्मासत् है क्योंकि व्यभिचार राहितहै अर्थात् एकसा है तिससे औघटके नाशमें घटबुद्धिके नाशहोनेसे सद्बुद्धीकाभी व्यभिचारहै यहआशंका तौनहीं संभव होतीहै क्योंकि पटादिकोंमें सद्बुद्धिका दर्शनहै इससे

औसत्पदार्थहीमें सद्बुद्धि रहतीहै इससे कभी नहीं नाशको प्राप्तहोती और जो कहौ सद्बुद्धिके तुल्यघट बुद्धिभी एकघटके नाशके अनन्तर और घटमें देखपड़ती है इससे व्यभिचार नहींहै सोतौ कथनठीक नहीं है क्योंकि पट आदि पदार्थोंमें नहीं देखतेहैं इससे व्यभिचारही है कदाचित् कहौ सद्बुद्धिभी जबघट नष्टहोगया तौ नहीं प्रतीतहोती तौ व्यभिचारहीरहा तिसपै कहतेहैं कि घटरूप विशेष्यहीका अभावहै इससे वहां नहीं प्रतीतहोती है औसत्रूप में तौस्थित हैहीहै न कहौ जब कोई विशेष्य नहीं है तौ विशेषण मात्रसत्पदार्थमें सद्बुद्धि स्थितहै यह कथन कैसे बनसक्ताहै क्योंकि बिना विशेष्यके विशेषण नहीं सिद्धहोताहै और विना विशेष्यके सामानाधिकरण्यभी नहीं संभवहोता और जो सामानाधिकरण्यकेलिये विशेष्य घटादि पदार्थ को मानैतौ घटादि पदार्थभी सत्यहोजायगा जो कल्पितत्व करके असत्रूप मानाहै सो नहीं सिद्धहोगा तौ कहतेहैं कि लोकमें मृगतृष्णाके जलमें [सदिदमिदमुदकम्] यहजल सत्य है ऐसे झूंठेकाभी सामानाधिकरण्य सत्पदार्थ के संगदेखते हैं तैसे यहांभी दोषनहीं है तिससे अविद्या सहित देहादि द्वन्द्वरूप असत्पदार्थ का भावनाम सत्तानहीं विद्यमान है तैसेही सद्रूप जो आत्मा तिसका अभाव अर्थात् अविद्यमानता नहीं है क्योंकि सब जगह आत्माका अव्यभिचार है अर्थात् कहीं नहीं होय सो बात नहींहै इसकारण से इसप्रकार आत्म अनात्मरूप जोसत् असत् दोनों पदार्थ तिनका अन्त अर्थात् निर्णय सो तत्त्वदर्शियोंने अर्थात् ब्रह्मका यथार्थ स्वरूप देखने वालोंने जानाहै औ हे अर्जुन तिससे तू भी तत्त्वदर्शियोंकी दृष्टिके आश्रय से शोकमोहको त्यागके नियत अनियत रूप जेशीत उष्णादि द्वन्द्व तिनको यहमृगतृष्णा के जलके सदृश मिथ्याही विकारभासिरहाहै ऐसा मनमें निश्चय करके सहौ यहअभिप्राय है ॥ १६ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किं पुनस्तत् यत् सदैव सर्वदास्तीत्युच्यते अविनाशीति अविनाशि न विनशनंशीलं यस्येति तुशब्दः सतो विशेषणार्थः तद्विद्धि विजानीहि किं येन सर्वमिदं जगत्ततं व्याप्तं सदाख्येन ब्रह्मणा साकाशमाकाशेनेव घटादयः विनाशमदर्शनमभावमव्ययस्य न व्येति उपचयापचयौ न याति इत्यव्ययं तस्याव्ययस्य नैतत् सदाख्यं ब्रह्म स्वेन रूपेण व्येति न व्यभिचरति निरवयवत्वाद्देहादिवत् नाप्यात्मीयेनात्मीयाभावात् यथा देवदत्तो धनहान्या व्येति नत्वेवं ब्रह्म व्येत्यतोऽव्ययस्यास्य ब्रह्मणो विनाशं कश्चित् कर्तुमर्हति न कश्चित् आत्मानं विनाशयितुं शक्नोति ईश्वरोप्यात्मा हि ब्रह्म स्वात्मनि च क्रियाविरोधात् ॥ १७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

ननु सदिति सामान्यं स्वरूपं वा प्रथमे तस्य विशेषसापेक्षतया प्रलयदशायामशेष

विशेषविनाशे विनाशः स्यान्नचारमादयो विशेषास्तदापि सन्तीति वाच्यम् आत्मातिरिक्तानां विशेषाणां कार्य्यत्वांगीकारात् प्रलयावस्थायामनवस्थानादात्मनस्तु सामान्यात्मनो धर्मित्वादुक्तदोषात् द्वितीये तु स्वरूपस्य व्यावृतत्वे कल्पितत्वाद्विनाशित्वमनुवृत्तत्वेन तस्यैव सामान्यतया प्रागुक्तदोषानुशक्तिरिति मन्वानश्चोदयति किं पुनरिति सामान्यविशेषभावशून्यमखण्डैकरसं सदेवेत्यादिश्रुतिप्रमितं सर्वविक्रियारहितं वस्तु प्रकृतं सद्विवक्षितमित्युत्तरमाह उच्यत इति आत्मनः सदात्मनो विनाशराहित्यविज्ञाने सर्वजनाद्व्यापकत्वं हेतुमाह येनेतिआत्मनो विनाशाभावे युक्तिमाह विनाशमिति आत्मनो विनाशमिच्छता स्वतो वा परतो वा नाशस्तस्यैष्यते नाद्य इत्याह अविनाशीति देहादिद्वैतमसदुच्यते ततः सतो विशेषणं स्वतो नाशराहित्यं तस्य द्योतको निपात इत्याह तुशब्द इति आकांक्षापूर्वकं विशेष्यं दर्शयति किमित्यादिना विमतमविनाशि व्यापकत्वादाकाशवत् नहि प्रमितमेवोदाहरणं किन्तु प्रसिद्धमपीति भावः न द्वितीय इत्याह विनाशमिति न खल्वस्य विनाशं कर्तुं कश्चिदर्हतीति सम्बन्धः विनाशस्य सावशेषत्वनिरवशेषत्वाभ्यां द्वैराश्यमाश्रित्य व्याकरोति अदर्शनमिति न कश्चिदस्याभावं कर्तुं शक्नोतीत्यत्र हेतुमाह अव्ययस्येति ब्रह्म हि स्वरूपेण व्येति स्वसम्बन्धिना वेति विकल्प्याद्यं दूषयति नैतदिति नहि निरवयवस्य सावयववापचयरूपव्ययः सम्भवतीत्यत्र वैधर्म्यं दृष्टान्तमाह देहादिवदिति द्वितीयं निरस्यति नापीति तदेव व्यतिरेकदृष्टान्तेन स्पष्टयति यथेति द्विविधेऽपि व्ययायोगे फलितमाह अत इति किञ्च ब्रह्म परतो न नश्यत्यात्मत्वाद्घटवदित्याह न कश्चिदिति आत्मत्वहेतोरसिद्धिमुद्धरति आत्माहीति तदात्म्यश्रुतिरत्रहीति हेतू क्रियते अस्तु तर्हि स्वयमेव ब्रह्म स्वात्मनो नाशकमुद्बन्धनादि दर्शनान्नेत्याह स्वात्मनीति॥ १७॥

स्वामिकृतटीका।

तत्र सत्स्वभावमविनाशि वस्तु सामान्येनोक्तं विशेषतो दर्शयत्यविनाशित्विति येन सर्वमिदमागमापायधर्मात्मकं देहादि ततं साक्षित्वेन व्याप्तं तत्त्वात्मस्वरूपमविनाशि विनाशशून्यं विद्धि जानीहि तत्र हेतुमाह विनाशमिति॥ १७॥

नवलभाष्य।

अब यह कदाचित् अर्जुन कहै कि कौन वहवस्तुहै जो सदासत्रूपही रहताहै इसआशयसे भगवान्कहते हैं कि हे अर्जुन नहीं विनाशहोने का स्वभाव जिसका ऐसाजोब्रह्म तिसको तू सद्रूपजान फिर कैसावहब्रह्महै जिसकरके सबजगत् व्याप्तहोरहाहै जैसेमहाकाशकरके आकाशसहित सबघटादिक व्याप्तहोरहे हैं और अव्यय जो वहब्रह्म तिसकाविनाशकरनेको कोई समर्थनहीं अर्थात् जो वृद्धिह्रासरूप विकारको प्राप्तनहोय उसको अव्यय कहते हैं तो वह सद्रूपब्रह्म अपनेस्वरूपसे तौकभी विकारको प्राप्तनहीं होता क्योंकि वह अवयव रहितहै इससे जो कि अवयव सहित देहादिक है वही घटता बढ़ता है तैसे यहनहीं किसीविकारको प्राप्तहोताहै और जो किसी आत्मीयके घटने बढ़नेसे ब्रह्म घटै बढ़ै जैसे धनादिक आत्मीय पदार्थों के घटने बढ़नेसे देवदत्तभी घटबढ़जाताहै सो भी सम्भवनहीं होता कि ब्रह्मके

आत्मीयके अभावसे और कोई दूसराभी ब्रह्मका नाशनाम अभावकोनहीं करसक्ताहै क्योंकि ब्रह्मसबका ईश्वरहै औ आत्माहै और अपने आत्मा का कोई नाशकरनेको उत्साहनहीं करता और न उसमें हननक्रिया सम्भव होती है ॥ १७ ॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्वभारत ॥ १८ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

किं पुनस्तदसत् यत् स्वात्मसत्तां व्यभिचरतीत्युच्यते अन्तवन्त इति अन्तो विनाशो विद्यते येषान्ते अन्तवन्तो यथा मृगतृष्णिकादौ सद्बुद्धिरनुवृत्ता प्रमाणनिरूपणान्ते विच्छिद्यते स तस्या अन्तस्तथेमे देहाः स्वप्नमायादिवच्चान्तवन्तो नित्यस्य शरीरिणः शरीरवतोऽनाशिनोऽप्रमेयस्यात्मनोऽन्तवन्त इत्युक्ता विवेकिभिरित्यर्थः नित्यास्यानाशिन इति न पुनरुक्तं नित्यस्य द्विविधत्वाल्लोके नाशस्य च यथा देहोभस्मीभूतोऽदर्शनं गतो नष्टउच्यते विद्यमानोऽपि यथा अन्यथा परिणतो व्याध्यादियुक्तोजातो नष्टउच्यते तत्रानाशिनो नित्यस्येति द्विविधेनापि नाशेनासम्बंधोऽस्येत्यर्थः अन्यथा पृथिव्यादिवदपि नित्यत्वं स्यादात्मनस्तन्माभूदिति नित्यस्यानाशिनो नेत्याहअप्रमेयस्य न प्रमेयस्य प्रत्यक्षादिप्रमाणैरपरिच्छेद्यस्येत्यर्थः नन्वागमेनात्मापरिच्छिद्यते प्रत्यक्षादिना च पूर्वं नात्मनः स्वतः सिद्धत्वात् सिद्धे ह्यात्मनिप्रमातरि प्रमित्सोः प्रमाणान्वेषणा भवति नहि पूर्वमित्थमहमित्यात्मानम् अप्रमाय पश्चात् प्रमेयपरिच्छेदाय प्रवर्त्तते न ह्यात्मानाम कस्यचिदप्रसिद्धो भवति शास्त्रं त्वन्त्यंप्रमाणम् अतद्धर्माध्यारोपणमात्रनिवर्त्तकत्वेन प्रमाणत्वमात्मनः प्रतिपद्यते नत्वज्ञातार्थज्ञापकत्वेन तथा च श्रुतिः यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म य आत्मा सर्वान्तर इति यस्मादेवं नित्योऽविक्रियश्च आत्मा तस्मात् युद्धयस्व युद्धादुपरमं माकार्षीरित्यर्थः न ह्यत्र युद्धकर्त्तव्यता विधीयते युद्धे प्रवृत्त एव ह्यसौ शोकमोहप्रतिबद्धस्तूष्णीमास्तेऽतस्तस्य कर्त्तव्यप्रतिबन्धापनयनमात्रं भगवता क्रियते तस्माद् युद्धयस्वेत्यनुवादमात्रं न विधिः ॥ १८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

सदसतोरनन्तरप्रकृतयोः स्वरूपाव्यभिचारत्वेन परमार्थतया सन्निर्धारितमिदानीमसन्निर्दिधारयिषया पृच्छति किं पुनरिति असदेवेति निर्द्धारितत्वात् प्रश्नस्य निरवकाशत्वमाशङ्क्य शून्यं व्यावर्त्त्य विवक्षितमसन्निर्धारयितुं तस्य सावकाशत्वमाह यत्स्वात्मेति देहाद्यस्यानात्मवर्गस्य प्रकृतासच्छब्दविषयतेत्याह उच्यत इति तेषां स्वातंत्र्यं व्युदस्यति नित्यति आकाशादि व्यावृत्त्यर्थं विशिनष्टि शरीरिण इति परिणामिनित्यत्वं व्यवच्छिनत्ति अनाशिन इति तस्य प्रत्यक्षाद्यविषयत्वमाह अप्रमेयस्येति देहादेरवस्तुत्वादात्मनश्चैकरूपत्वाद् युद्धे स्वधर्मे प्रवृत्तस्यापि तव न हिंसादिदोषसम्भावनेत्याह तस्मादिति ननु देहादिषु सद्बुद्धेरनुवृत्तेस्तस्याविच्छेदाभावात् कथमन्तवत्त्वं तेषामिष्यते तत्राह यथेति तथेमे देहाः सद्बुद्धिभाजोऽपि प्रमाणतो निरूपणायामवसाने विच्छेदादन्तवन्तो भवन्तीति शेषः देहत्वादिना च जाग्रद्देहादेरन्तवत्त्वं सम्प्रतिपन्नवदनुमातुं शक्यमित्याह स्वप्नेति शरीरादेरन्तवन्तत्वेऽपि प्रवाहरूपेणात्मनस्तत् सम्बन्धस्यानन्तमाशङ्क्याह नित्यस्येति प्रवाहस्य प्रवाहि व्यतिरेकेणानिरूपणान्न तदात्मना देहाद्यभावे सम्बन्धसिद्धिरित्यभिसन्धायोक्तं विवेकिभिरिति पदद्वयस्यैकार्थत्वमाशङ्क्य निरस्यति नित्यस्येत्यादिना नित्यत्वस्य द्वैविध्यसिद्ध्यर्थं नाशद्वैविध्यं प्रतिज्ञातं प्रकटयति य

थेत्यादिना नाशस्य निरवशेषत्वेन सावशेषत्वेन च सिद्धे द्वैविध्ये फलितमाह तत्रेति विशेषणाभ्यां कूटस्थनित्यत्वमात्मनो विवक्षितमित्यर्थः अन्यतरविशेषमात्रोपादाने परिणामि नित्यत्वमात्मनः शङ्क्येतेत्य निष्टापत्तिमाशङ्क्याह अन्यथेति औपनिषदत्वविशेषणमाश्रित्याप्रमेयत्वमाचिपति नन्विति इतश्चात्मनोनाप्रमेयत्वमित्याह प्रत्यक्षादिनेति तेन चागममप्रवृत्त्यपेक्षया पूर्वावस्थायामात्मैव परिच्छिद्यते तस्मिन्नेवाज्ञानत्वसम्भवादज्ञातज्ञापकं प्रमाणमिति च प्रमाणलक्षणादित्यर्थः एतदप्रमेयमित्यादि श्रुति मनुसृत्य परिहरति नेत्यादिना कथं मानमनपेक्ष्यात्मनः सिद्धत्वमित्याशङ्क्योक्तं विवृणोति सिद्धेहीति प्रमित्सोः प्रमेयमिति शेषः तदेव व्यतिरेकमुखेन विशदयति नहीति आत्मनः सर्वलोकप्रसिद्धत्वाच्च तस्मिन्नप्रमाणमन्वेषणीयमित्याह नह्यात्मेति प्रत्यक्षादेरनात्मविषयत्वात् तत्र चाज्ञातज्ञाततया व्यवहारसम्भवात् तत्प्रामाण्यस्य च व्यावहारिकत्वाद्विशिष्टे तत्प्रवृत्तावपि केवलेतदप्रवृत्तेर्यद्यपि नात्मनि तत्प्रामाण्यं तथापि तद्धितश्रुत्या शास्त्रस्य तत्र प्रवृत्तिरवश्यम्भाविनीत्याशङ्क्याह शास्त्रन्त्विति शास्त्रेण प्रत्यनुभूते ब्रह्मणि प्रतिपादिते प्रमात्रादि विभागस्य व्यावृत्तत्वादुक्तमस्यान्तत्वमपौरुषेयतया निर्दोषत्वाच्चागमस्य प्रामाण्यमित्यर्थः तथापि कथमस्य प्रत्यगात्मनि प्रामाण्यं तस्य स्वतः सिद्धत्वेनाविषयत्वादज्ञातज्ञापनायोगादित्याशङ्क्य स्वतो भासमानोऽपि प्रतीची मनुष्योऽहं कर्ताहमित्यादिना मनुष्यत्वकर्तृत्वादीनामतद्धर्माणामध्यारोपणेनात्मनि प्रतीयमानत्वात् तन्मात्र निवर्तकत्वेनात्मनो विषयत्वमनापाद्यैव शास्त्रं प्रामाण्यं प्रतिपद्यते सिद्धन्तु निवर्तकत्वादिति न्यायादित्याह अतद्धर्मेति घटादाविव स्फुरणातिशयजनकत्वेन किमित्यात्मनि शास्त्रप्रामाण्यं नेष्टमित्याशङ्क्य जडत्वाजडत्वाभ्यां विशेषादितिमत्वाह नत्विति ब्रह्मात्मनो रनपेक्षामन्तरेण स्वतः स्फुरणे प्रमाणमाह तथाचेति साक्षादन्यापेक्षामन्तरेणापरोक्षादपरोक्षस्फुरणात्मकं यद्ब्रह्म नच तस्यात्मनोरर्थान्तरत्वेन सर्ववस्तु सारत्वात्तमात्मानं चाचक्षीति योजना अप्रमेयत्वम विनाशित्वप्रतिपाद्य फलितं निगमयति यस्मादिति स्वधर्मनिवृत्तिहेतुनिषेधे तात्पर्यं दर्शयति युद्धादिति आत्मनो नित्यत्वादिस्वरूपमुपपाद्य युद्धकर्तव्यत्वविधानात् ज्ञानकर्मसमुच्चयोत्र भातीत्याशङ्क्याह नहीति युद्धस्वेति वचनात् तत्प्रवर्तकत्वविधिरस्तीत्याशङ्क्याह युद्ध इति कथंतर्हि कथं भीष्ममहमित्याद्यर्जुनस्य युद्धोपरमपरंवचनमिति शोकेति यदि स्वतो युद्धे प्रवृत्तिः तर्हि भगवद्वचनस्य कागतिरित्याशङ्क्याह तस्येति भगवद्वचनस्य प्रतिबन्धनिवर्तकत्वे सत्यर्जुनप्रवृत्तः स्वाभाविकत्वे फलितमाह तस्मादिति ॥ १८॥

स्वामिकृतटीका।

आगमापायधर्मकं सन्दर्शयति अन्तवन्तइति। नित्यस्य सर्वदैकरूपस्यात् एवाऽनाशिनोऽप्रमेयस्यापरिच्छिन्नस्यात्मन इमे सुखदुःखादिधर्मकादेहा उक्तास्तत्वदर्शिभिः यस्मादेवात्मनोनविनाशोनच सुखदुःखादिसम्बन्धस्तस्मान्मोहजंशोकंत्यक्त्वा युद्धस्वस्वधर्ममात्याक्षीरित्यर्थः ॥ १८ ॥

नवलभाष्य।

अब कौनवह असतहै जो सद्रूपआत्मासे व्यभिचारको प्राप्तहोता है इसआकांक्षामें कहते हैं कि हेअर्जुन जैसे मृगतृष्णामें प्रथम सद्बुद्धि उत्प-

न्न होतीहै फिर जब विचारसे प्रमाणोंकरकेदेखा तौ उससद्बुद्धिका विच्छेद होजाताहै वही उसका अन्तकहाताहै अर्थात् सद्बुद्धिके अन्तमें फिर असद्बुद्धिका निश्चयहोताहै तैसे स्वप्नमाया देहोंकेसदृश अन्तयुक्तजेदेह ते नित्य औ नाशरहित औ प्रमाणकरने को अशक्य जो शरीरीआत्मा तिसके विवेकियोंने अन्तवन्त ऐसे कहेहैं अर्थात् नाशधर्मयुक्त ये देहहैं ऐसाकहाहै अब यहां नित्य और अनाशी जे दो विशेषण जो आत्माकेकहे तिसमें पुनरुक्त दोष आताहै क्योंकि जब अनाशी अर्थात् नाशरहित ऐसाकहा तौ नित्य कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं जो नाशरहित पदार्थ है सो आपहीनित्य है ऐसे जब नित्यकहा तौ भी नाशरहितही का ग्रहणहुआ क्योंकि नाशवान् पदार्थ कभी नित्य होही नहीं सक्ता अब इसपुनरुक्तदोषके दूरकरनेको उत्तरकहतेहैं कि दोप्रकारका नित्य औ दोप्रकारका नाशलोकमें देखते हैं एकतौ जैसे देहभस्महोके फिर नहीं दिखाईदिया तौ उसको नष्टकहते हैं और दूसरे विद्यमानभी देहहै परन्तु रोगादि युक्त होनेसे अथवा धनपुत्रादिके नाशहोनेसे कुछ औरसे औरही चिन्ता शोकादि ग्रस्त और दुर्बल कान्तिरहित जब होताहै तौभी लोकमें उसको कहतेहैं कि यहनष्टहोगया इससे दोनों प्रकारके नाशके वारणकरनेको नित्य यह विशेषण दिया और जैसे रूपान्तरकरके पृथिवी नित्यहै ऐसी आत्माकी नित्यता नहीं है यह बोधन करनेको अनाशीकहा अब जो कहाथा आत्मा प्रमाणकरनेको शक्यनहीं है इससे अप्रमेय है तिसमें यह शंकाहोतीहै कि आत्माभी शास्त्रकरके जाना जाताहै और तिससेभी पूर्व अर्थात् पहिले प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे जानाजाताहै फिर अप्रमेय कैसे तिसकाउत्तरयहहै कि आत्मास्वतः सिद्धहै अर्थात् आपहीसिद्धहै इससे आत्माकी सिद्धिमें कुछ प्रमाणकी जरूरतनहींहैक्योंकि प्रमाणकरनेवाले आत्माको पहिले सिद्धहोनेहीके अनन्तर औरपदार्थों को प्रमाणद्वारा जाननेकी इच्छाकरनेवाले पुरुषको प्रमाणोंका ढूंढ़ना बन सक्ताहै नहीं कोई पहिले अपनाको यहमैंहूं एसे बिनाजाने औरवस्तु को प्रमाणयुक्त करनेमें प्रवृत्तहोताहै अर्थात् जब प्रमाणकरनेही वाला कोई प्रमाणोंसे पहिले न होय तौ प्रमाणकरनाही कैसे सम्भवहोताहै इससे सिद्ध हुआ कि आत्मा स्वतःसिद्धहै और अन्तमें प्रमाणभूत जो शास्त्र सो तौ जब अविद्याकरके आत्मामें मैं मनुष्यहों मैं करताहूं इसप्रकारसे मनुष्यपना कर्त्तापना आदि अनात्मधर्मोंका आरोपणहुआ तौ तिसअनात्मधर्म की निवृत्ति करताहुआ आत्माकी भी प्रमाणताको प्राप्तहोताहै कुछ अपूर्व आत्माको नहीं बोधनकर्ता है और श्रुतिभी इसमें प्रमाणहै कि (यस्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्मयआत्मासर्वान्तर इति) जो आत्मा साक्षात् अपरोक्षहोने से ब्रह्महै और जो आत्मा सबके भीतर है और हे अर्जुन जिस हेतुसे पूर्वोक्त प्रकारकरके नित्य औ विकाररहितआत्माहै तिससे युद्धकर अर्थात् युद्ध से निवृत्त मतहो अब यहांअयुद्ध की कर्त्तव्यता का विधान नहीं है क्योंकि

युद्धमें तौ अर्जुन प्रथमही प्रवृत्तथा केवलशोक मोहादि कारणसे प्रतिबन्ध को प्राप्तहो मौनहो रहाहै इससे उसक्रियाके प्रतिबन्धका दूरकरना मात्रभगवान् कृष्णकरके कियाजाता है तिससे युद्धकर यह अनुवाद है विधि नहीं है ॥ १८ ॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

शोकमोहादिसंसारकारणनिवृत्त्यर्थं गीताशास्त्रं न प्रवर्त्तकमित्येतत् पार्थस्य साक्षीभूते ऋचावानिनाय भगवान् यत्तु मन्यसे युद्धे भीष्मादयो मया हन्यन्ते अहमेव तेषां हन्तेत्येषाबुद्धिर्मृषैव ते कथं य एनमिति य एनं प्रकृतं देहिनं वेत्ति विजानाति हन्तारं हननक्रियायाः कर्त्तारं यश्चैनमन्योमन्यते हतं देहहननेन हतोऽहमिति हननक्रियायाः कर्मभूतं तावुभौ न विजानीतो न ज्ञातवन्तौ अविवेकेनात्मानमहं प्रत्ययविषयं हन्ताऽहं हतोस्म्यहमिति देहहननेन आत्मानं यौविजानीतस्तावात्मस्वरूपानभिज्ञावित्यर्थः यस्मादयमात्मा नहन्ति न हननक्रियाः कर्त्ता भवति नच हन्यते नच कर्म भवतीत्यर्थ अविक्रियत्वात् ॥ १९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

अविनाशि तु तद्विद्धीत्यत्र पूर्वार्द्धेन तत्पदार्थसमर्थनमुत्तरार्द्धेननिरीश्वरवादस्य परिणामवादस्य वा निराकरणमात्मनि जन्मादिप्रतिभानस्यौपचारिकत्वप्रदर्श्यमन्तवन्त इत्यादि वचनमिति केचित् अस्तुनामायमपि पन्थाः पूर्वोक्तस्य गीताशास्त्रार्थस्योत्प्रेक्षामात्रमूलत्वं निराकर्तुं मन्त्रद्वयं भगवानानीतवानिति श्लोकद्वयस्य सङ्गतिं दर्शयति शोकमोहादीति तत्र प्रथममन्त्रस्य सङ्गतिमाह यत्त्विति प्रत्यक्षनिबन्धनत्वादमुष्याबुद्धेर्मृषात्वमयुक्तमित्याक्षिपतिकथमिति प्रत्यक्षस्याज्ञानप्रसूतत्वेनाभासत्वात् तत्कृताबुद्धिर्नप्रमेति परिहरति य एनमितिहन्ता चेन्मन्यते हन्तुम् इत्याद्यामृचमर्थतो दर्शयित्वा व्याचष्टे य एनमिति हन्तारंहतश्चानं मन्यमानस्य कथमज्ञानमित्याशङ्क्याह हन्ताहमिति हन्तृत्वादिज्ञानमज्ञानमित्यत्रहेतुमाह यस्मादिति आत्मनो हननं प्रतिकर्तृत्वकर्मत्वयोरभावेहेतुं दर्शयतिअविक्रियत्वादिति ॥ १९ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं भीष्मादि मृत्युनिमित्तः शोको निवारितो यच्चात्मनो हन्तृत्वनिमित्तं दुःखमुक्तम् एतान्न हन्तुमिच्छामीत्यादिना तदपि तद्वदेव निर्निमित्तमित्याह य एनमिति एनमात्मानमात्मनो हननक्रियायां कर्मत्ववत् कर्तृत्वमपि नास्तीत्यर्थः तत्रहेतुर्नायमिति ॥१९॥

नवलभाष्य।

अब संसारके कारण भूत जो शोकमोह तिनकी निवृत्तिहीकेलिये गीताशास्त्रहै कुछयुद्धमें प्रवृत्तिकेलिये नहींहै इस अर्थमें साक्षिभूत दोऋचाओंको भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि हेअर्जुन यह जोतूमान रहाहै कियेभीष्मादि मुझकरके मारेजाते हैं औमैं इनका मारनेवाला हूं सोयह तेरीबुद्धि झूंठीहीहै इसका प्रकारसुन कि जो पुरुष इस उक्तप्रकार आत्माको मारनेवाला

मानता है अर्थात् हननक्रिया का कर्त्तामानता है और जो दूसरा इसआत्माको और करके मैं माराजाता हूं ऐसा मानताहै अर्थात् हननक्रियाका कर्म अपनाको मानताहै सोये दोनों नहीं जानतेहैं अर्थात् अविवेकसे अहं प्रत्यय विषय जो देहविशिष्ट आत्मा अर्थात् जिसमें मैंजाताहूं मैं आउता हूं मैं खाताहूं मैं पीताहूं ऐसीझूंठी प्रतीति होरहीहै तिसको देहके मरनेसे मैं मारने वालाहौं औमैं माराजाताहूं ऐसा जेजानते हैं ते आत्मस्वरूपके जाननेवाले नहींहै क्योंकि जिससे यह आत्मा किसीके मारनेवाला नहीं है अर्थात् हननक्रिया का कर्त्तानहीं है और न माराजाता है हनन क्रिया का कर्मभी नहींहै विकार रहितहै इस कारणसे ॥ १९ ॥

न जायतेम्रियतेवाकदाचिन्नायं भूत्वाभविता वा नभूयः।
अजोनित्यःशाश्वतोऽयंपुराणो न हन्यतेहन्यमानेशरीरे॥२०॥

शङ्करभाष्यम्।

कथमविक्रियःआत्मेति द्वितीयो मन्त्रः न जायते नोत्पद्यते जनिलक्षणा तु वस्तु विक्रिया नात्मनो विद्यत इत्यर्थः तथा न म्रियते वा तत्र वा शब्दश्चार्थे न म्रियते चेत्यन्त्या विनाशलक्षणा विक्रिया प्रतिषिध्यते कदाचिच्छब्दः सर्वविक्रियाप्रतिषेधैः सम्बध्यते न कदाचिज्जायते न कदाचिन्म्रियतइत्येवं यस्मादयमात्मा भूत्वा भवनक्रियामनुभूय पश्चादभविता अभावं गन्तानभूयः पुनस्तस्मान्नम्रियते यो हि भूत्वा न भविता स म्रियत इत्युच्यते लोके वा सद्धान्न शद्धाच्चायमात्मा भूत्वा वा भविता देहवन्नभूयः पुनस्तस्मान्नजायते यस्मादेवं तस्मादजो यस्मान्न म्रियते तस्मान्नित्यश्च यद्यप्याद्यन्तयोर्विक्रिययोः प्रतिषेधे सर्वा विक्रियाः प्रतिषिद्धा भवन्ति तथापि मध्यभाविनीनां विक्रियाणां तदर्थैः स्वशब्दैरेव प्रतिषेधः कर्तव्य इत्यनुक्तानामपि यौवनादि समस्तविक्रियाणां प्रतिषेधो यथा स्यादित्याह शाश्वत इत्यादिना शाश्वत इत्यपक्षयलक्षणा विक्रिया प्रतिषिद्ध्यते शश्वद्भवः शाश्वतोनापक्षीयते स्वरूपेण निरवयत्वान्निर्गुणत्वाच्च नापि गुणक्षयेनापक्षयः अपक्षयविपरीतावपि वृद्धिलक्षणा विक्रिया प्रतिषिध्यते पुराण इति यो ह्यवयवागमेनोपचीयते सवर्द्धतेऽभिनव इति चोच्यते अयं त्वात्मा निरवयवत्वात् पुरापि नवएवेति न पुराणो न वर्द्धत इत्यर्थः तथा न हन्यते न विपरिणम्यते हन्यमाने विपरिणम्यमानेऽपि शरीरे हन्तिरत्र विपरिणामार्थे द्रष्टव्योऽपुनरुक्ततायै न विपरिणमत इत्यर्थः अस्मिन् मन्त्रे षड्भावविकारालौकिकवस्तुविक्रिया आत्मनि प्रतिषिध्यन्ते सर्वप्रकारविक्रियारहित आत्मेति वाक्यार्थः यस्मादेवं तस्माद्भौ तौ न विजानीत इति पूर्वेण मन्त्रेणास्य सम्बन्धः ॥ २० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तदेव साधयितुं न जायते म्रियते वा विपश्चिदित्यादि मन्त्रान्तरमवतारयति कथमिति स विक्रियाराहित्यप्रदर्शनेन हेतुं विशदयन् मन्त्रमेव पठति न जायत इति जन्ममरणविक्रियाद्वयप्रतिषेधं साधयति नायमिति अयमात्मा भूत्वाऽन भविता नचाभूत्वा भूयोऽभवितेति योजना न केवलं विक्रियाद्वयमेवात्र निषिध्यते किन्तु सर्वमेव विक्रियाजातमित्याह अज इति वाच्यमर्थमुक्त्वा विवक्षितमर्थमाह जनिलक्षणेति विकल्पार्थत्वं व्यावर्त्तयति ेति निष्पन्नमर्थं निर्दिशति नेत्यादिना सम्बन्धमेवाभिनयति न कदाचिदिति अन्त्यविक्रियाभावे हेतुत्वेन नायमित्यादि व्याचष्टे यस्मादिति उक्तमेव व्यनक्ति योहीति आत्मनि तु भूत्वा पुनरभवनाभावान्नास्ति मृत्युरित्यर्थः आत्मनो जन्मा

भावेऽपि हेतुरिहैव विवक्षित इत्याह वा शब्दादिति अभूत्वेति छेदः देहवदिति व्यतिरेकोदाहरणम् उक्तमेवार्थं साधयति योहीति जन्माभावे तत्पूर्विकास्तित्वविक्रियापि नात्मनाऽस्तीत्याह यस्मादिति प्राणवियोगादात्मनो मृतेरभावे सावशेषनाशाभाववन्निरवशेषनाशाभावोऽपि सिध्यतीत्याह यस्मादिति ननु जन्मनाशयोर्निषेधे तदन्तर्गतानां विक्रियान्तराणामपि निषेधसिद्धेस्तन्निषेधार्थं न पृथक् यतितव्यमिति तत्राह यद्यपीति स्वशब्दैर्मध्यवर्तिविक्रिया निषेधवाचकैरिति यावत् आर्थिकेऽपि निषेधे निषेधस्य सिद्धतया शाब्दो निषेधो न पृथगर्थवानित्याशङ्क्याह अनुक्तानामिति नित्य शब्देन शाश्वत शब्दस्य पौनरुक्त्यं परिहरन् व्याकरोति शाश्वत इत्यादिना अपचयो हि स्वरूपेण वा स्याद्गुणापचयतो वेति विकल्पक्रमेण दूषयति नेत्यादिना पुराणपदस्यागतार्थत्वं कथयति अपचयेति तदेव स्फुटयति योहीति न म्रियते वेत्यनेन चतुर्थपादस्य पौनरुक्त्यमाशङ्क्य व्याचष्टे यथेत्यादिना ननु हिंसार्थो हन्तिः श्रूयते तत्कथं विपरिणामो निषिध्यते तत्राह हन्तिरिति हिंसार्थत्वसम्भवे किमित्यर्थान्तरं हन्तेरिष्यते तत्राह अपुनरुक्तताया इति हिंसार्थत्वे मृति निषेधे न पौनरुक्त्यं स्यात् तन्निषेधार्थं विपरिणामार्थत्वमेष्टव्यमित्यर्थः पूर्वावस्थात्यागेनावस्थान्तरापत्तिर्विपरिणामः तदर्थश्चेदत्र हन्तिरिष्यते तदा निष्पन्नमर्थमाह नेति न जायते इत्यादि मन्त्रार्थमुपसंहरति अस्मिन्निति षण्णां विकाराणामात्मनि प्रतिषेधे फलितमाह सर्वेति आत्मनः सर्वविक्रियाराहित्येऽपि किमायातमित्याशङ्क्याह यस्मादिति ॥ २० ॥

स्वामिकृतटीका।

न हन्यत इत्येतदेव षड्भावविकारशून्यत्वेन दृढ़यति नेति न जायत इति जन्मप्रतिषधः न म्रियत इति विनाशप्रतिषेधः वा शब्दो चार्थे नचायं भूत्वा उत्पद्य भविता भवति अस्तित्वं भजते किन्तु प्रागेव स्वतः तद्रूप इति जन्मान्तरास्तित्वलक्षणद्वितीयविकारप्रतिषेधस्तत्र हेतुः यस्मादजः यो हि जायते स जन्मानन्तरमस्तित्वं भजते नतु यः स्वत एवास्ति स भूयोऽप्यन्यदस्तित्वं भजत इत्यर्थः नित्यः सर्वदैकरूपइति वृद्धिप्रतिषेधः शाश्वतः शश्वद्भव इत्यपचयप्रतिषेधः पुराण इति विपरिणामप्रतिषेधः पुरापि नव एव नतु परिणामतोरूपान्तरं प्राप्य नवो भवतीत्यर्थः यद्वा भवितेत्यस्यानुषङ्गं कृत्वा भूयोऽधिकं यथा भवति तथा न भवितेति वृद्धिप्रतिषेधः अजो नित्य इति चोभयं वृद्ध्याद्यभाव हेतुरिति न पौनरुक्त्यं तदेवं जायते अस्ति वर्द्धते विपरिणमते अपक्षीयते नश्यतीत्येव सांख्यादिभिरुक्ताः षड्भावविकारा निरस्ताः यदर्थमेते विकारा निरस्तास्तं प्रस्तुतं विनाशाभावमुपसंहरति न हन्यते हन्यमाने शरीर इति ॥ २० ॥

नवलभाष्य।

कैसे विकार रहित आत्माहै इस आकांक्षामें दूसरामंत्र कहते हैं कि हे अर्जुन यहआत्मा कभी नहीं उत्पन्नहोता है इससे कभी मरताभी नहीं उत्पत्तिरूप वस्तुविक्रिया अर्थात् विकारके अभावसे विनाशरूप अन्त्यविक्रियाभी नहींहोती है और जिसकारण से यहआत्मा (भूत्वा) होकरके अर्थात् भवनक्रिया का आश्रयहोके (अभवितान) नाशको प्राप्तनहीं होता इससे फिरमरताभी नहींहै जो होकरके होताहै अस्तिक्रिया का भजन

करताहै वोही मरताहै ऐसा लोकमें कहाजाताहै अथवा यहआत्मा घटादि के सदृश होकरके नहीं होताहै इससे जन्मता मरताभी नहींहै इन दोनों अर्थोंकरके होकरके होना जो अस्तित्वरूप विकार तिसका निषेधकिया औ जिससे नहीं उत्पन्न होताहै इसीसे अज कहाताहै और जिससे नहीं मरताहै इससे नित्यहै यद्यपि आदिअन्त के उत्पत्ति विकाररूप दोनों विकारोंके प्रतिषेधसे सब विकारोंका प्रतिषेध सिद्धहोता है तौभी मध्यमेंहोने वाले जे विकार तिनका निषेध अपने २ विकारके*बाचक शब्दोंही करके निषेध करना योग्यहै इससे अनुक्त जे यौवनादि विकार तिनकाभी निषेध जैसे होय इसआशय से कहते हैं [शाश्वतः] जो शश्वत् अर्थात् निरन्तर होय कभीक्षय को प्राप्तनहोय इससे शाश्वत आत्मा कहाताहै इसप्रकार शाश्वत यह कहनेसे अपक्षयरूप+विकारका निषेधहुआ औनिर्गुण आत्मा है इससे गुणोंके क्षयसे भी अपक्षय नहींहै औपुराण इस कहनेसे अपक्षय से विपरीत वृद्धिरूप×विकारका भी प्रतिषेध कियाजाता है जो अंगोंकी पुष्टता करके युक्तहोता है वह वृद्धिको प्राप्तही नवीन ऐसा लोकमें कहा जाताहै और यहआत्मा तौ अवयव रहितहोने से पहिलेभी नवाहीहै इस से पुराण कहाताहै अर्थात् बढ़ता नहींहै औतैसेही शरीरके विपरिणामको प्राप्त होनेमेंभी अर्थात् और तरहरूपके होजानेमेंभी आत्मा [नहन्यते] विपरिणाम को प्राप्तनहीं होता अर्थात् रूपान्तरको प्राप्त नहीं होताहै और यहां हन्धातुका विपरिणाम अर्थहै इससे पुनरुक्तिदोपकी प्रसक्ति नहींहुई और जोहिंसा अर्थहोता तौ [नम्रियते नहन्यते] इन दोनों पदोंका नहीं मरताहै नहीं माराजाता है इसप्रकार एकही अर्थहोनेसे पुनरुक्त दोषस्पष्ट हीथा अब न जायते इत्यादि वेदके मन्त्रसे यह जानागया कि लौकिक देहादि पदार्थोंमें जैसे उत्पत्ति १ औउत्पन्नहोके रहना २ औरूपका बदलना ३ औबढ़ना ४ औघटना ५ औनाशहोना ६ येछःविकार होते हैं तैसे आत्मामें नहीं हैं अर्थात् सबप्रकारसे विकाररहित आत्मा है यहमन्त्र का

* अपने अपने बिकारोंके वाचकशब्दोंहीकरके इसका आशययहहै कि जैसेवृक्ष उत्पन्नहुआ और नाशको प्राप्तहुआ तौ पहिला बिकार उत्पत्ति और सबसे अन्तका बिकार नाशहुआ फिर इनदोनों बिकारोंके बीचमें औरभी बिकारहुआ करते हैं जैसे तरुणहोना वृद्धहोना फलयुक्तहोना तैसेही इसदेहके भी बिकारहुआ करतेहैं तो जो ऐसाही कहाजावे कि आत्माकी उत्पत्ति नहीं होतीहै और बिनाशनहीं होताहै तो यह आशंकाहोय कि आत्मा जवानहै और फिरबूढ़ा भी होताहोगा चाहै बालक होजाताहोगा और ऐसेही घटता बढ़ताभी होगा इससे अपने अपने बिकारों के बाचकशब्द अर्थात् अपने अपने बिकारोंके कहनेवाले शब्दसे कौनहुये जैसे जवानबूढ़ा घटाहुआ बढ़ाहुआ इनशब्दों से निषेध क्याहुआ कि आत्मा जवानहीहै बूढ़ानहींहै बालनहीं है ऐसे शब्दोंसे निषेधकर नेमें सबके मनमें आत्माकी निर्विकारता आसक्तहै इससे ऐसा भगवान् निषेध करतेहैं ॥

+ घटना × बढ़ना ॥

खुलासा अर्थहै जिससे इसप्रकार आत्मा विकार रहितहै इससे जो कोई आत्माको मारने वाला जानताहै और जो आत्मा माराजाता है ऐसा मानरहाहै ये दोनों नहीं जानतेहैं इसप्रकार पूर्वमन्त्रके साथ इसमन्त्रका भी संबन्धहै अर्थात् इनदोनों मन्त्रोंका मिलाही हुआ अर्थ है ॥ २० ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ २१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

य एनं वेत्ति हन्तारमित्यनेन मन्त्रेण हननक्रियायाः कर्त्ता कर्मच नभवतीति प्रतिज्ञायत इत्यनेनाविक्रियत्वे हेतुमुक्त्वा प्रतिज्ञातार्थमुपसंहरति वेदाविनाशिनमिति वेद विजानाति अविनाशिनमन्त्यभावविकाररहितं नित्यं विपरिणामरहितं यो वेदेति सम्बन्धः एनं पूर्वेण मन्त्रेणोक्तलक्षणमजम् अव्ययम् उपचयापक्षयरहितं कथं केन प्रकारेण स विद्वान् पुरुषोऽधिकृतो हन्ति हननक्रियां करोति कथं वा घातयति हंतारं प्रयोजयति न कथञ्चित् कञ्चित् हन्ति न कथञ्चित् कंचित् घातयतीत्युभयत्राक्षेप एवार्थः प्रश्नार्थासम्भवात् हेत्वर्थस्य अविक्रियत्वस्य च तुल्यत्वाद्विदुषः सर्वकर्मप्रतिषेध एव प्रकरणार्थोऽभिप्रेतो भगवता हन्तेस्त्वाक्षेप उपाहरणार्थत्वेन विदुषः किञ्चित् कर्मासम्भवे हेतुविशेषं पश्यन् कर्माण्याक्षिपति भगवान् कथं स पुरुष इति ननूक्तमेव आत्मनोऽविक्रियत्वं सर्वकर्मासम्भवकारणविशेषः सत्यमुक्तो नतु सकारणविशेषेऽन्यत्वाद्विदुषोऽविक्रियत्वादात्मन इति नन्वविक्रियं स्थाणुं विदितवतः कर्म न सम्भवतीतिचेन्न विदुषआत्मत्वान्नदेहादिसंघातस्य विद्वत्ता अतः पारिशेष्यादसंहद आत्मा विद्वानविक्रय इति तस्य विदुषः कर्मासम्भवादाक्षेपो युक्तः कथं स पुरुष इति यथा बुद्ध्याद्याहृतस्य शब्दाद्यर्थस्याविक्रिय एव सन् बुद्धिवृत्त्यविवेकविज्ञानेनाविद्ययोपलब्ध आत्मा कल्प्यते एवमेवात्मानात्मविवेकज्ञानेन बुद्धिवृत्त्या विद्यया असत्यरूपयैव परमार्थतोऽविक्रिय एवात्मा विद्वानुच्यते विदुषः कर्मासम्भाववचनाद्यानि कर्माणि शास्त्रेण विधीयन्ते तान्यविदुषो विहितानीति भगवता निश्चयोऽवगम्यते ननु विद्याप्यविदुष एव विधीयते विदितविद्यस्य पिष्टपेषणवद्विद्याविधानानर्थक्यात् तत्राविदुषः कर्माणिविधीयन्ते न विदुष इति विशेषोनोपपद्यत इति चेन्नानुष्ठेयस्य भावाभावविशेषोपपत्तेरग्निहोत्रादि विध्यर्थज्ञानोत्तरकालमग्निहोत्रादिकर्मानेकसाधनोपसंहारपूर्वकमनुष्ठेयकर्त्ताहं ममकर्तव्यमित्येवं प्रकारविज्ञानवतोऽविदुषो यथा नुष्ठेयं भवति नतु तथा न जायत इत्यात्मस्वरूपविध्यर्थज्ञानोत्तरकालभाविकिञ्चिदनुष्ठेयं भवति किन्तु नाहं कर्त्ता न भोक्तेत्याद्यात्मैकत्वाकर्तृत्वादिविषयज्ञानादन्यत् नोत्पद्यत इत्येष विशेष उपपद्यते यः पुनः कर्त्ताहमिति वेत्त्यात्मानं तस्य ममेदं कर्त्तव्यमिति अवश्यम्भाविनी बुद्धिः स्यात् तदपेक्षया सोऽधिक्रियत इति तं प्रति कर्माणि सम्भवन्ति सचाविद्वान् उभौ तौ न विजानीत इति वचनात् विशेषितस्य च विदुषः कर्माक्षेपवचनात् कथं स पुरुष इति तस्माद्विशेषितस्य अविक्रियात्मदर्शिनो विदुषो मुमुक्षोश्च सर्वकर्मसंन्यास एवाधिकारोऽतएव भगवान्नारायणः सांख्यान् विदुषोऽविदुषश्च कार्मिणः प्रविभज्य द्वे निष्ठे ग्राहयति ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनामिति तथा च पुत्रायाह भगवान् व्यासो द्वाविमावथ पन्थानावित्यादि तथा चक्रिया पथश्चैव पुरस्तात् पश्चात् संन्यासश्चेत्येतमेव विभागं पुनः पुनर्दर्शयिष्यति भगवान् अतत्त्वविदहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते तत्त्ववित्तु नाहंकरोमीति तथा च सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्त इत्यादि तत्र केचित् पण्डितमन्या वदन्ति जन्मादिषड्भावविक्रियारहितोऽविक्रियोऽकर्त्तैकोहमात्मेति न कस्यचित् ज्ञानमुत्पद्यते यस्मिन् सति सर्वकर्मसन्न्यास उपदिश्यते तन्न न जायत इत्यादि शास्त्रोपदेशानर्थक्यप्रसंगात् तथा च शास्त्रा

पदेशसामर्थ्याद्धर्मोस्तित्वविज्ञानं कर्तुश्च देहादिसम्बन्धिज्ञानञ्चोत्पद्यते तथा च शास्त्रात् तस्यैवात्मनोऽविक्रियत्वा कर्तृत्वैकत्वादिविज्ञानं कस्मान्नोपपद्यते इति प्रष्टव्यास्ते करणगोचरत्वादिति चेन्न मनसैवानुद्रष्टव्यमिति श्रुतेः शास्त्राचार्य्योपदेशजनित शमदमादिसंस्कृतं मन आत्मदर्शने करणं तथा च तदधिगमायानुमाने आगमे च सति ज्ञानं नोत्पद्यते इति साहसमात्रमेतत् ज्ञानञ्चोत्पद्यमानं तद्विपरीतमज्ञानम् अवश्यं बाधत इत्यभ्युपगन्तव्य तच्चाज्ञानं दर्शित हन्ताह हतोऽस्मीत्युभौ तौ न विजानीत इत्यत्र चात्मनो हननक्रियायाः कर्तृत्वं कर्मत्वं हेतुकर्तृत्वञ्चाज्ञानकृतं दर्शितं तच्च सर्वक्रियास्वपि समानकर्तृत्वादेरविद्याकृतत्वमविक्रियत्वादात्मनः विक्रियावान् हि कर्त्तात्मनः कर्मभूतमन्यं प्रयोजयति कुर्विति तदेतदविशेषेण विदुषः सर्वक्रियासु कर्तृत्वं हेतुकर्तृत्वञ्च प्रतिषेधयति भगवान् विदुषः कर्माधिकाराभावप्रदर्शनार्थं वेदाविनाशिनं कथं स पुरुष इत्यादिना क्व पुनर्विदुषोऽधिकार इत्येतदुक्तं पूर्वमेव ज्ञानयोगेन सांख्यानामिति तथा च सर्वकर्म सन्न्यासं वक्ष्यति सर्वकर्माणि मनसेत्यादिना ननु मनसेति वचनान्नवाचिकानां कायिकानाञ्च सन्न्यास इतिचेत् न सर्वकर्माणीति विशेषितत्वात् मानसानामेव सर्वकर्मणामितिचेन्न मनोव्यापारपूर्वकत्वाद्वाक्कायव्यापाराणां मनोव्यापाराभावे कर्मानुपपत्तेः शास्त्रीयाणां वाक्कायकर्मणां कारणानि मानसानि मनोव्यापाराणि वर्जयित्वान्यानि सर्वकर्माणि मानसासन्न्यस्यास्त इतिचेन्न नैव कुर्वन्नकारयन् इति विशेषणात् सर्वकर्मसन्न्यासोऽयं भगवतोक्तमरिष्यतो न जीवत इतिचेन्न नवद्वारे पुरे देही आस्ते इति विशेषणानुपपत्तेःनहि सर्वकर्मसन्न्यास न मृतस्य तद्देहे आसनं सम्भवत्यकुर्वतोऽकारयतश्च देहे सन्न्यस्येति सम्बन्धो न देहे आस्त इतिचेन्न सर्वत्रात्मनोऽविक्रियत्वावधारणात् शासनक्रियायाश्चाधिकरणापेक्षत्वात् तदनपेक्षत्वाच्च सन्न्यासस्य संपूर्वस्तु न्यासशब्दोत्र त्यागार्थो न निक्षेपार्थः तस्माद्गीताशास्त्रे आत्मज्ञानवतः सन्न्यास एवाधिकारो न कर्मणीति तत्र तत्रोपरिष्टादात्मज्ञानप्रकरणे दर्शयिष्यामः॥ २१॥

आनंदगिरिकृतटीका।

पूर्वश्लोकार्थस्यैवोत्तरत्रापि प्रतिभानात् पौनरुक्त्यमाशङ्क्य वृत्तानुवादपूर्वकमुत्तरश्लोकमवतारयति य एनमित्यादिना कर्तृत्वाद्यभिमानविरोधाद्द्वैतकूटस्थात्मनिश्चयसामर्थ्यात् प्राप्तं विदुषः संन्यासं विद्यापरिपाकार्थमभ्यनुजानाति वेदेति पदद्वयस्य पूर्ववदेव पौनरुक्त्यमाह अविनाशिनमित्यादिना प्रश्नेऽपि सम्भवति किमिति तत्र उल्लेखेन व्याख्यायते तत्राह उभयत्रेति उत्तरत्राप्रतिवचनादर्शनाच्चात्र प्रश्नः सम्भवतीत्यर्थः विवक्षितं प्रकरणार्थंनिगमयति हेत्वर्थस्येति अविक्रियत्वं हेत्वर्थस्तस्य विदुषःसर्वकर्म निषेधे समानत्वादिति यावत् यदि विदुषः सर्वकर्मनिषेधोऽभिमतस्तर्हि किमिति हन्त्यर्थएवाक्षिप्यते तत्राह हन्तेरिति उक्तं हेतुमाक्षेप्तुं पृच्छति विदुष इति अभिप्रायमप्रतिपद्यमानो हेतुविशेषं पूर्वोक्तं स्मारयति नन्विति उक्तमंगीकृत्याक्षिपति सत्यमिति विदुषो विज्ञानात्मनो ब्रह्मणश्च वेद्यस्य विरुद्धधर्मत्वेन दहनतुहिनवद्भिन्नत्वाद्विदुषः सर्वकर्मत्यागेन असौ कारणविशेषः स्यादित्याहअन्यत्वाद विक्रियत्वादितिच्छेदः तथापि कूटस्थमविक्रियं न ब्रह्मप्रतिपद्यमानस्यकुतोऽविक्रियासम्भवेत् ब्रह्मप्रतिपत्तिविरोधादित्याशङ्क्याहनन्विति अयमात्मा ब्रह्मेत्यादि श्रुत्या समाधत्ते न विदुष इति किञ्च विद्वत्ताविशिष्टस्य वा केवलस्य वा नाद्यो विशिष्टस्य विद्वत्तायां विशेषणस्यापि तद्ब्रह्मसंगान्तच विशेषणभूतसङ्घातस्या चेतनत्वाद्विद्वत्ता युक्तेत्याह न देहादीति द्वितीये तु जीव ब्रह्मविभागासिद्धिरित्याह अत इति किञ्च प्रामाणिकविरुद्धधर्मवत्त्वस्यासिद्धत्वात् प्रातिभासिकस्य च बिम्बप्रतिबिम्बयोरनैकान्त्याद्भेदानुमानायोगात् जीवब्रह्मणोरभेदसिद्धिरित्यभिप्रेत्य फलितमाह इति तस्येति नन्वविक्रियस्य ब्रह्मरूपतया सर्वकर्मासम्भवे विदुषो विद्वत्तापि कथं

सम्भवति नहि ब्रह्मणोऽविक्रियस्य विद्यालक्षणा विक्रिया स्वक्रिया भवितुमर्हति तत्रा ह यथेति अदृष्टेन्द्रियादि सह कृतमन्तःकरणं प्रदीपप्रभावद्विषयपर्यस्तं परिगतं बुद्धिवृत्तिरुच्यते तत्र प्रतिबिम्बितं चैतन्यम् अभिव्यञ्जकबुद्धिवृत्त्यविवेकाद्विषयज्ञानमिति व्यवह्रियते तेनात्मोपलब्ध्या कल्प्यते तच्चाविद्याप्रयुक्तमिथ्यासम्बन्धनिबन्धनं तथैवाध्यासिकसम्बन्धेन ब्रह्मात्मैक्याभिव्यञ्जकवाक्योत्थबुद्धिवृत्तिद्वारा विद्वानात्माव्यपदिश्यते नच मिथ्यासम्बन्धेन पारमार्थिकाविक्रियत्वविहतिरस्तीत्यर्थः अहं ब्रह्मेति बुद्धिवृत्तेर्मोक्षावस्थायामपि भावादात्मनः सविशेषत्वमाशङ्क्य तस्य यावदुपाधिसत्त्वमित्याह असत्येति ननु कूटस्थस्यात्मनो मिथ्याविद्यावत्त्वेऽपि तस्य कर्माधिकारनिवृत्तौ कस्य कर्माणि विधीयन्ते नहि निरधिकाराणां तेषां विधिरित्याशङ्क्याह विदुष इति कर्माण्यविदुषो विहितानीति विशेषमाक्षिपति नन्विति कर्मविधानमविदुषो विदुषोश्च विद्याविधानमिति विभागे का हानिरित्याशङ्क्याह विदितेति विद्याया विदितत्वं लब्धत्वं कर्मविधिः अविदुषो विद्याविधिरिति विभागासम्भवे फलितमाह तत्रेति धर्मज्ञानानन्तरमनुष्ठेयस्य भावात् ब्रह्मज्ञानोत्तरकालञ्च तदभावात् ब्रह्मज्ञानहीनस्यैव कर्मविधिरिति समाधत्ते नानुष्ठेयस्येति विशेषोपपत्तिमेव प्रपञ्चयति अग्निहोत्रादीति ननु देहादिव्यतिरिक्तात्मज्ञानं विना पारलौकिकेषु कर्मसु प्रवृत्तेरनुपपत्तेस्तथाविधज्ञानवता कर्मानुष्ठेयमिति चेत् तत्राह कर्ताहमिति आत्मनि कर्ता भोक्तेत्येवं विज्ञानयत्त्वेऽपि ब्रह्मज्ञानविहीनत्वेनाविदुषोऽनुष्ठेयं कर्मेत्यर्थः देहादिव्यतिरिक्तात्मज्ञानवद्ब्रह्मज्ञानमपि ज्ञानत्वाविशेषात् कर्मप्रवृत्तावुपकरिष्यतीत्याशङ्क्याह नत्विति अनुष्ठेयविरोधित्वादविक्रियात्मज्ञानस्येति शेषः ननु ब्रह्मात्मैकत्वज्ञानादुत्तरकालमपि कर्ताहमित्यादिज्ञानोत्पत्तौ कर्मविधिःसावकाशः स्यादिति नेत्याह नाहमिति कारणाभावादिति शेषः कर्तृत्वादिज्ञानमन्यदित्युक्तम् अनुष्ठानाननुष्ठानयोरुक्तविशेषादविदुषोऽनुष्ठानं विदुषो नेत्युपसंहरति इत्येष इति नन्वात्मविदो नचेदनुष्ठेयं किञ्चिदस्ति कथं तर्हि विद्वान् यजेतेत्यादि शास्त्रात्तं प्रतिकर्माणि विधीयन्ते तत्राह यः पुनरिति आत्मनि कर्तृत्वादिज्ञानापेक्षया कर्मस्वधिकृतत्वज्ञाते तथाविधं पुरुषं प्रतिकर्माणि विधीयन्ते सच प्राचीनवचनाद्विद्वानेवेति निश्चीयते न खल्वकर्तृत्वादिज्ञानवतस्तद्विपरीतकर्तृत्वादिज्ञानद्वारा कर्मसु प्रवृत्तिरित्यर्थः कर्मासम्भवे ब्रह्मविदो हेत्वन्तरमाह विशेषितस्येति वेदाविनाशिनमित्यादिनेति शेषः यद्यपि विदुषोनास्ति कर्म तथापि विविदिषोः स्यादित्याशङ्क्याह तस्मादिति विद्यया विरुद्धत्वादिप्यमाणमोक्षप्रतिपक्षत्वाच्च कर्मणामित्यर्थः यद्यपि मुमुक्षोराश्रमकर्माण्यपेक्षितानि तथापि विद्या तत्फलाभ्यामविरुद्धान्येव तान्यभ्युपगतान्यन्यथा विविदिषा संन्यासविधिविरोधादित्यभिप्रेत्योक्तेर्थे भगवतोऽनुमतिमाह अतएवेति विदुषो विविदिषोश्च संन्यासेऽधिकारो विदुषस्तु कर्मणीति विभागस्येष्टत्वादित्यर्थः अधिकारिभेदेन निष्ठाद्वयं भगवता वेदव्यासेनापि दर्शितमित्याह तथाचेति अध्ययनविधिना स्वाध्यायपाठे त्रैवर्णिकस्य प्रवृत्तत्यनन्तरत्र क्रियामार्गो ज्ञानमार्गश्चेति द्वौमार्गावधिकारिभेदेनावेदिताविन्त्यर्थः आदिशब्दाद् यत्र वेदाः प्रतिष्ठिता इत्यादि गृह्यते उक्तयोर्मार्गयोस्तुल्यतां परिहर्तुमुदाहरणान्तरमाह तथेति बुद्धिशुद्धिद्वारा कर्म तत्फलयोर्वैराग्योदयात् पूर्वं कर्ममार्गो विहितो विरक्तस्य पुनः संन्यासपूर्वको ज्ञानमार्गो दर्शितः स चेतरस्मादतिशयशालीति श्रुतमित्यर्थः उक्त विभागेन पुनरपि वाक्यशेषानुकूल्यमादर्शयति एनमेवेति अहंकारविमूढात्मेत्यस्य व्याख्यानम् अतत्त्वविदिति तत्त्ववित्त्विति श्लोकमवतार्य तात्पर्यम

र्थं संगृह्णाति नाहमिति पूर्वेण क्रियापदेनेतिशब्दः संबध्यते विरक्तमधिकृत्यवाक्यान्तरं पठति तथाचेति आदिशब्दस्तस्यैव श्लोकस्य शेषसंग्रहार्थः अविक्रियात्मज्ञानात् कर्मसंन्यासे दर्शिते मीमांसकमतमुत्थापयति तत्रेति आत्मनो ज्ञानक्रियाशक्त्याधारत्वेनाक्रियत्वाभावादक्रियात्मज्ञानं संन्यासकारणीभूतं न सम्भवतीत्यर्थः यथोक्तज्ञानाभावो विषयाभावाद्वा मानाभावाद्वेति विकल्प्याद्यं दूषयति नेत्यादिना न तावदविक्रियात्माभावो न जायते म्रियते वेत्यादि शास्त्रस्याप्रवाक्यतया प्रमाणस्यान्तरेण कारणमानर्थक्यायोगादित्यर्थः द्वितीयं प्रत्याह यथाचेति पारलौकिककर्मविधिसामर्थ्यसिद्धं विज्ञानमुदाहरति कर्तुश्चेति कर्मकाण्डादज्ञाते धर्मादौ विज्ञानोत्पत्तिवत् ज्ञानकाण्डादज्ञाते ब्रह्मात्मनि विज्ञानोत्पत्तिरविरुद्धा प्रमात्वाविशेषादित्यर्थः ज्ञानस्य मनःसंयोगजन्यत्वादात्मनश्च श्रुत्या मनोऽगोचरत्वनिरासान्नात्मज्ञाने साधनमस्तीति शंकते करणेति श्रुतिमाश्रित्य परिहरति न मनसेति तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थमनोवृत्त्यैव शास्त्राचार्योपदेशमनुसृत्य द्रष्टव्यं तत्त्वमिति श्रूयते स्वरूपेण स्वप्रकाशमपि ब्रह्मात्मवस्तुवाक्योत्थबुद्धिवृत्त्यभिव्यक्तं सविकल्पकव्यवहारावलम्बनं भवतीति मनोगोचरत्वोपचारादसिद्धं करणागोचरत्वमित्यर्थः कथं तर्हि ब्रह्मात्मनो मनोविषयत्वनिषेधश्रुतिरित्याशङ्क्याऽसंस्कृतमनोवृत्त्यविषयासेति मन्वानः सन्नाह शास्त्रेति सत्यपि श्रुत्यादौ तदनुग्राहकाभावान्नास्माकमविक्रियात्मकज्ञानमुत्पन्नमर्हतीत्याशङ्क्याह तथेति तस्याविक्रियस्यात्मनोऽधिगत्यर्थं विमतो विकारोऽनात्मधर्मो विकारत्वादुभयाभिमतविकारवदित्यनुमाने पूर्वोति श्रुतिस्मृतिरूपागमे च सत्येव तस्मिन्नोत्पद्यते ज्ञानमिति वचः साहसमात्रं सत्येव मानेमेयं न भातीतिवदित्यर्थः ननु यथोक्तं ज्ञानमुत्पन्नमपि हानायोपदानाय वा न भवतीक्ता कुतोऽस्य फलवत्त्वं तत्राह ज्ञानञ्चेति अवश्यमिति प्रकाशप्रवृत्तेस्तमोनिवृत्तिव्यतिरेकेणानुपपत्तिवदात्मा ज्ञाननिवृत्तिमन्तरेणात्मज्ञानोत्पत्तेरनुपपत्तेरित्यर्थः नन्वज्ञानस्य ज्ञानप्रागभावत्वात्तन्निवृत्तिरेव ज्ञानं ननु तन्निवर्त्तकमिति तत्राह तच्चेति कथं पुनर्भगवतापि ज्ञानाभावातिरिक्तमज्ञानं दर्शितमित्याशङ्क्याह अत्र चेति विमतं ज्ञानाभावो न भवत्युपादानत्वान्मृदादिवदिति भावः ननु हननक्रियायाश्च न हिंस्यादिति निषिद्धत्वात् तत्कर्तृत्वात् तत्कर्तृत्वादेरज्ञानकृतत्वेऽपि विहितक्रियाकर्तृत्वादेर्न तथात्वमिति नेत्याह तच्चेति न तावदात्मनि कर्तृत्वादि नित्यत्वम् अमुक्तिप्रसंगान्नचानित्यमपि निरुपादानं भावकार्यस्योपादाननियमान्नचानात्मा तदुपादानमात्मनि तत्प्रतिमानान्नचात्मैव तदुपादानं कूटस्थस्य तस्याविद्यां विना तदयोगादित्याह अविक्रियत्वादिति कर्तृत्वाभावेऽपि कारयितृत्वं स्यादित्याशङ्क्याह विक्रियावानिति आत्मनि कर्तृत्वादिप्रतिभानान्यानाद्यनिर्वाच्यमज्ञानमुपादानं तन्निवृत्तिश्च तत्त्वज्ञानादित्युक्तमिदानीं कर्तृत्वकारयितृत्वयोरविद्याकृतत्वे भगवतोमतिं दर्शयति तदेतदिति विदुषो यदि कर्माधिकाराभावो भगवतोऽभिमतः तर्हि कुत्र तस्य जीवतोऽधिकारः स्यादिति पृच्छति क्व पुनरिति ज्ञाननिष्ठायामित्युक्तं स्मारयति उक्तमिति तदंगभूते सर्वकर्मसंन्यासे च तस्याधिकारोऽस्तीत्याह तथेति वक्ष्यमाणे वाक्ये सर्वकर्मसंन्यासो न प्रतिभातिमानसानामिवकर्मणां विशेषणवशात् त्यागावगमादितिशंकते नन्विति विशेषणान्तरमाश्रित्य दूषयति न सर्वेति मनसेति विशेषणान्मानमेष्वेव कर्मसु सर्वशब्दः संकुचितः स्यादिति शंकतेमानसानामितिसर्वात्मनामनो व्यापारत्यागे व्यापारान्तराणामनुपपत्तेः सर्वकर्मसंन्यासः सिध्यतीति परिहरति नेत्यादिना मानसेष्वपि कर्मसु संन्यासे संकोचान्नवागादिव्यापारानुपपत्तिरिति शंकते शा

स्त्रीयाणीमिति अन्यानीत्यशास्त्रीयावाङ्क्षायकर्मकारणान्यशास्त्रीयाणि मानसानि तानिच सर्वाणि कर्माणीत्यर्थः वाक्यशेषमादाय दूषयति नैवेति न हि विवेकबुद्ध्या सर्वाणि कर्माणि अशास्त्रीयाणि संन्यस्य तिष्ठतीति युक्तं नैव कुर्वन्नित्यादि विशेषणस्य विवेकबुद्धेश्च सर्वत्यागहेतोस्तुल्यत्वादित्यर्थः भगवदभिमतसर्वकर्मसंन्यासस्यावस्थाविशेषे संकोचं दर्शयन्नाशङ्कते मरिष्यत इति संन्यासो जीवदवस्थायामेवात्र विवक्षित इत्यत्र लिंगं दर्शयन्नुत्तरमाह न नवेति अनुपपत्तिमेव स्फोरयति नहीति अन्वयविशेषाव्याख्यानेन लिंगासिद्धिं चोदयति अकुर्वत इति विवेकवशाद्विशेषाण्यपि कर्माणि देहे यथोचितं निःक्रियाकुर्वन्नकारयंश्च विद्वानवतिष्ठते तथा च देहे कर्माणि संन्यस्याकुर्वतोऽकारयतश्च सुखमासनमिति सम्बन्धसम्भवात् विशेषणस्य सति देहे कर्मत्यागविषयत्वाभावाज्जीवतः सर्वकर्मत्यागो नास्तीत्यर्थः अथवा कुर्वत इत्यादि पूर्वत्रैव सम्बन्धनीयं लिंगासिद्धि चोद्यन्तु देहे संन्यासेत्यारभ्योन्नेयम् आत्मनः सर्वत्राविक्रियत्वनिर्द्धारणाद्देहसम्बन्धमन्तरेण कर्तृत्वकारयितृत्वाप्राप्तेरप्राप्तप्रतिषेधप्रसंगपरिहारार्थमस्मदुक्त एव सम्बन्धः साधीयानिति समाधत्ते न सर्वत्रेति श्रुतिषु स्मृतिषु चेत्यर्थः किंच सम्बन्धस्याकांक्षा सन्निधियोग्यताधीनत्वाकांक्षावशादस्मदभिमतसम्बन्धसिद्धिरित्याह आसनेति भवदिष्टस्तु सम्बन्धो न सिध्यद्व्याकांक्षाभावादित्याह तदनपेक्षत्वाच्चेति संन्यासशब्दस्य विक्षेपार्थत्वात् तस्य चाधिकरणसापेक्षत्वादस्मदिष्टसम्बन्धसिद्धिरित्याशङ्क्याह संपूर्वन्त्विति अन्यथोपसर्गवैयर्थ्यादित्यर्थः मनसा विवेकविज्ञानेन सर्वकर्मपरित्यज्यास्ते देहे विद्वानित्यस्यैव सम्बन्धस्य साधुत्वं मत्वोपसंहरति तस्मादिति सर्वव्यापारोपरमात्मनः सर्वकर्मसंन्यासस्याविक्रियात्मज्ञानां विरोधित्वात् प्रयोजकज्ञानवतो वैधे संन्यासेऽधिकारः सम्यग्ज्ञानवतस्त्ववैधे स्वाभाविके फलात्मनीति विभागमभ्युपेत्योक्तेऽर्थे वाक्यशेषमनुगुणयं दर्शयति इति तत्र तत्रेति ॥ २१ ॥

स्वामिकृतटीका।

अतएव हन्तृत्वाभावोऽपि पूर्वोक्तः सिद्ध इत्याह वेदाविनाशिनमिति नित्यं वृद्धिशून्यम् अव्ययमपक्षयशून्यम् अजम् अविनाशिनञ्च यो वेद स पुरुषः कं हन्ति एवम्भूतस्य वधे साधनाभावात् तथा स्वयं प्रयोजको भूत्वाऽन्येन कं घातयति कथं वा घातयति न कथञ्चिदपीत्यर्थः अनेन मय्यपि प्रयोजकत्वदोषदृष्टिं माकार्षीरित्युक्तं भवति ॥२१॥

नवलभाष्य।

अब यहां (यएनंवेत्तिहन्तारम्) इस पूर्वोक्तमन्त्रकरके आत्मा हनन क्रियाका कर्त्ता औ कर्मनहीं होसक्ता यहप्रतिज्ञाकरके फिर (नजायते)इसमन्त्रकरके आत्माके विकार नहींहोनेमें कारण कहिके प्रथममन्त्रमें निश्चितकिये हुये अर्थको तात्पर्य्यरूपकरके निरूपणकरते हैं कि हे अर्जुन जो पुरुष इस आत्माको अविनाशी अर्थात् नाशरूप अन्त्यविकारकरके रहित और नित्य अर्थात् विपरिणामरहित औ अज अव्यय अर्थात् उत्पत्ति औ अपक्षयकरके रहित जानताहै सो वह विद्वान् विवेकी पुरुष कैसे मारता है और कैसे मारनेवालेको प्रेरणाकरताहै अर्थात् तू मार ऐसा कहता है अर्थात् कैसे भी किसीको न मारताहै और न कैसभी किसीको मरवासक्ताहै इसप्रकार आ-

क्षेप अर्थमें यहां किं शब्दहै क्योंकि प्रश्न अर्थका असम्भवहै इससे जो प्रश्न अर्थमें यहां किं शब्दहोता तौ उत्तरकाभी लेखहोता इससे यहां प्रश्नअर्थ का असम्भवहै न कहौ जब आक्षेप अर्थहै तौ इसमें कुछहेतु कहनाचाहिये तौ कहतेहैं कि अविकाररूपहेतु आत्माके नहीं कर्ताहोनेमें कहिआयेहैं उसकी तुल्यतासे यहांभी सम्बन्ध होजायगा इससे कुछहेतुवाचकशब्दके कहनेकी आवश्यकता नहीं है इससे ज्ञानीको सर्वकर्मोंका प्रतिषेधही इसप्रकरणका अर्थ कृष्णभगवान्को अभिप्रेतहै अर्थात् ज्ञानीको कर्मकरने के निषेधही में भगवान्का तात्पर्य्य है और [कंघातयतिहन्ति] यहां हनधातुका जो प्रयोग है तिसकाकथन तौ आक्षेपअर्थमें उदाहरणके लियेहै इससे विद्वान्को अर्थात् ज्ञानीको कुछभी कर्म नहीं सम्भवहोता इसमें हेतु विशेष देखते हुए भगवान् कृष्ण कर्मोंका आक्षेप+करतेहैं [कथंसपुरुषइति] न कहौ आत्मामें जो विकारका अभावहै सो सबकर्मोंके असम्भवमें कारण विशेष कहाहीहै परन्तु वहकारणविशेष आत्मा ही में संघटित होताहै अर्थात् बनसक्ता है क्योंकि आत्मा विकाररहितहै औरविद्वान्ज्ञानी तौ उससे भिन्नहै फिरउसमें वहकारण विशेष कैसे आसक्ताहै और विकार रहित कूटस्थआत्माका जाननेवाला विद्वान्है इससे उसमें कर्म नहीं सम्भवहोता है ऐसाहीरहो तौ यहकथन तौ ठीकनहीं क्योंकि विद्वान् आत्मस्वरूपसेशास्त्रमेंकहाहै औरजो देह आदि संघातविशिष्टमें अर्थात्देहयुक्तआत्मामें कर्मका अभाव नहींहोना मानके विशिष्टमें कर्माभावमानके विद्वान्पनामानै तौ जड़देहादि संघातमें अर्थात् समूहमें भी विद्वान्पना का प्रसंग होजायगा सो तौ सर्वथाभययुक्त है क्योंकि ऐसे माननेमें जड़ चेतन ज्ञान अज्ञान इत्यादिपदार्थोंका विभाग ही नष्टहोजायगा इससे परिशेष से अर्थात् देहादि जड़वर्ग्गके निषेधसे आत्माके अवशेष रहनेसे सबकेअन्त्यमें सत्यआत्माकारवृत्तिकी स्थिरतासे देहादि संघातरहित आत्माही विद्वान्है औ विकाररहितहै तिसीविद्वान्को लक्ष्यकरके श्रीकृष्णभगवान् ने कर्मोंके असंभवसे जो आक्षेप किया कि ऐसा विद्वान् किसको मरवाताहै और किसको मारताहै सोयुक्तहीहै न कहौ जबआत्मामें सबकर्मों का अभावहै तौ विद्वानपनाभी कैसे संभवहोता है तौ इसका यह उत्तरहै कि जैसे दृष्टसहित अर्थात्प्रारब्ध कर्मसहित बुद्धि वृत्तियों करके प्राप्तकिये जे शब्दादि विषय तिनका भोक्ता विकाररहितही जीवात्मा अविद्या करके कल्पना किया जाताहै तैसेही आत्म और अनात्मइनके विवेक ज्ञानकरके असत्य विद्यारूप बुद्धि वृत्तिकरके परमार्थ में विकार रहितही आत्मा विद्वान् कहाता है अबयहां विद्वान्को कर्मोंके असंभवके कहनेसे शास्त्रद्वारा जे कर्म विधानकिये जाते हैं ते अविद्वान्हीं को

+ आक्षेपका स्वरूप यहहै कि जो ज्ञानी कुछभी कर्म नहीं करताहै तौ क्या मारैगा अर्थात् हिंसाही कर्म करैगा ॥

अर्थात् अज्ञानीही को विधानकिये हैं यह भगवान्का निश्चय प्रतीतहोता है अर्थात् जानाजाताहै नकहौ विद्याभी अज्ञानीही केलिये विधानकी जातीहै क्योंकि जिसकी जानीहै उसको तो पिसेहुए को पीसनेकी तरह विद्याके विधानका अर्थात् ज्ञानके विधानका आनर्थक्य है अर्थात् निष्फलताहै तब जबऐसाहुआ तो अज्ञानीहीको कर्मविधान कियेजाते हैं ज्ञानीको नहीं इसमें कुछ विशेषता नहींहुई सो यहदोष नहीं आसक्ताहै क्योंकि अनुष्ठेय अर्थात् करनेकेयोग्य जो कर्मादि तिनकाभाव और अभावरूप विशेषताके दर्शनसे अर्थात् कर्मज्ञानके अनन्तर तो जोकुछ करनेयोग्यहै उसकाभाव दिखाईपड़ताहै और आत्मज्ञानके अनन्तर करनेकेयोग्यका अभाव होताहै यहही कर्म और विद्या इनके विधानमें विशेषताहै जब कि अग्निहोत्रादि यज्ञोंकीविधि का ज्ञानहोता है तब अनेक साधनोंके इकट्ठे करनेकी आवश्यकता होती है और इस अग्निहोत्रादि कर्मका करनेवालाहूं और यह कर्त्तव्य है अर्थात् करनेके योग्यहै इसप्रकारके भेद ज्ञानयुक्त अज्ञको जैसे अग्निहोत्रादि कर्म करनेहोताहै तैसे आत्मा न उत्पन्न होताहै न मरता है इत्यादि प्रकार के आत्मस्वरूप विधिके अर्थ ज्ञानके अनन्तर कालमें होनेवाला कुछ करनेके योग्य नहींहोता किन्तु न मैं करनेवाला,न भोगनेवालाहौं इसको आदिलेके आत्माका अकर्तृत्व एकत्वादि विषयज्ञानसे और किसीतरहकाज्ञानउत्पन्नही नहींहोताहै इसप्रकारकी विशेषता अज्ञसे ज्ञानीमें दिखाईपड़तीहै और जो फिर कर्त्ता मैं हूं ऐसे आत्माको मानताहै तिसको मुझको तो यहकरना है ऐसीबुद्धि अवश्यहोगी उसीबुद्धिकी अपेक्षासे कर्ममें वहपुरुष अधिकारको प्राप्तहोताहै और उसीको कर्मसम्भव होतेहैं सो तो मूर्खही है क्योंकि जो कोई आत्माको मारनेवाला मानताहै और जो कोई मैं माराजाता हूं ऐसा मानताहै ये दोनों नहीं जानते हैं ऐसे साक्षात् भगवान् कृष्ण कहिआये हैं तिसप्रमाणते और इसश्लोकमें भी कैसे वहपुरुष मारता है इसकहने से विशेष से ज्ञानीही को कर्मका आक्षेपकिया इससे भी आत्मा में कर्तृत्वादिबुद्धि करनेवाला मूर्खहै तिससे पूर्वोक्त विशेषणयुक्त विकाररहित आत्मा का देखनेवाला जो ज्ञानी तिसको और मुमुक्षुको अर्थात् मोक्षकी इच्छा करनेवालेको सर्वकर्म त्यागरूप संन्यासही में अधिकारहै इसीसे भगवान् नारायण श्रीकृष्ण (ज्ञानयोगेनसांख्यानाम्) इत्यादि कथनसे ज्ञानी और कर्म्मी इनको न्यारा २ करके दो निष्ठा ग्रहणकरातेहैं और भगवान् व्यास भी अपनापुत्र जो शुक तिसके अर्थ (द्वाविमावथपन्थानौ) इत्यादि श्लोक करके भारतके मोक्षधर्म में दो मार्ग्ग उपदेश करतेहुए ॥ और श्रीकृष्णभगवान्भी आगे (अहंकारविमूढात्माकर्त्ताहमितिमन्यते) और (तत्त्ववित्तुमहाबाहो नाहंकरोमीति सर्वकर्माणिमनसासंन्यस्यास्ते) इनको आदि लेकर श्लोकोंसे कर्ममार्ग और संन्यासमार्गके विभागको न्यारा २ करके दिखावेंगे तहां कोई अपनाको पण्डित माननेवाले ऐसाकहते हैं कि जन्मादि छः

विकाररहित एक अकर्त्ता आत्मा मैं हूं ऐसाज्ञान किसीको उत्पन्नही नहीं होता जिसज्ञानके होनेसे सब कर्मोंके संन्यासका उपदेश कियाजावै सो उनका कहना असंगतहै क्योंकि जबविकाररहित आत्माका ज्ञानही न हुआ तौ [न जायते] इत्यादि मन्त्रकरके जो आत्माजन्मादि विकाररहित है ऐसा उपदेश किया सो अनर्थक होजायगा जैसे शास्त्रके उपदेश से यह धर्म यह अधर्महै और धर्म अधर्म करनेवाले का जन्मभी अवश्यहोता है तहां धर्म करने वालेको सुखहोता है और अधर्म करनेसे दुःख ऐसाज्ञान उत्पन्न होताहै तैसे शास्त्रसे तिसी आत्माको अविक्रियत्व औअकर्तृत्वका ज्ञान अर्थात् आत्मा अकर्ताहै औ विकाररहितहै ऐसाज्ञान क्योंनहीं उत्पन्न होता यह उनपंडित मानियोंसे पूछा चाहिये न कहौ जैसे राज्यस्वर्गादि इन्द्रियोंके प्रत्यक्ष होताहै ऐसे आत्मानहीं है इससे हमनिर्गुण आत्माको नहीं मानते सोभी ठीकनहीं क्योंकि (मनसैवानुद्रष्टम्) मनहीकरके देख ने योग्यहै इसश्रुतिके प्रमाणसे शास्त्रऔर आचार्यके उपदेशसे उत्पन्नहुए जे शमदमादि साधन तिन्होंकरके संस्कार युक्त जोमन सो आत्माके दर्शन में साधनहै इससे आत्माके जाननेमें शास्त्र औअनुमान रूप प्रमाणोंके विद्यमानता में भी अर्थात् इनके होनेमेंभी ज्ञाननहीं होताहै यह कथनके वल साहस मात्रही है और जोज्ञान उत्पन्नहोता है सो अपनेसे विपरीत अज्ञानको बाधताही है यह सिद्धान्त सबोंको मानने योग्यहै सो अज्ञान पहिले दिखलायाहीहै किजो आत्माकोमारनेवालामानताहै औरजोआत्मा माराजाता है ऐसामानता है और जोआत्मा मरवादेता है ऐसामानता है ये सब मूर्खहैं ऐसा पहिलेके श्लोकोंमें कहनेसे भगवान्ने अज्ञानका स्वरूप दिखाया औरयह भी सूचनकिया कि हनक्रियामें आत्माको कर्तृत्व औकर्म-त्व औप्रयोजकत्व ये सब अज्ञान कल्पित हैं अर्थात् आत्मामें कर्तापना औकर्मपना और प्रयोजक कर्त्तापना ये सबअज्ञान करके कल्पितहैं ऐसेही सबक्रियाओं में आत्माको कर्त्तापना इत्यादि धर्म अज्ञान कल्पितही है अ-विक्रियत्व होनेसे अर्थात् विकाररहित होनेसे जो विकारयुक्त कर्त्ता है वह अपनी क्रिया का कर्मभूत जोअन्य कोई तिसको प्ररणा करताहै कि तूकर इससे सब क्रियाबिषे भगवान् कर्तृत्व और प्रयोजकत्व का अर्थात् करनेका और करानेका प्रतिषेधकरते हैं जिससे ज्ञानीको कर्मके अधिकारका अभाव सिद्धहोय सो [वेदाविनाशिनं नित्यम्] इत्यादि कथनसे अभिप्राय प्रकट किया कदाचित् कहौ फिरज्ञानीका अधिकार किसमें है सो यह प्रथमही कहि आये हैं कि [ज्ञानयोगेन सांख्यानाम्] आत्मानात्म विवेक ज्ञानयुक्त पुरुषोंको ज्ञानयोगकरके मैंनेनिष्ठा कहीहै इसकथनसे और सर्व कर्माणिमन-सा इत्यादि श्लोककरके अगाड़ीभी कर्मसंन्यास कहेंगे नकहौ मनसा यह कहनेसे मनकरके जो कर्महोता है उसीका त्यागसूचित होताहै कुछकायिक वाचिकका संन्यास नहींहै अर्थात् त्यागनहींहै सो ऐसानहीं कहना चाहिये

क्योंकि (सर्वकर्माणि] यहां सर्व यह विशेष सामर्थ्यसे कायिक बाचिकों काभी ग्रहण इष्टहै इससे नकहौ सबमानसोंका ग्रहणहोय इसकेलिये सर्व शब्दका ग्रहणहै सो यहभी ठीकनहीं क्योंकि मनके व्यापारके विनाशरीर और बाणीका व्यापार होही नहीं सक्ता तो मनके व्यापार के बिना कोई प्रकारके कर्मका संभव नहीं होगा तैसेही त्यागभी बिनामनके व्यापार नहीं होसक्ता इसहेतुसे कहाकि मनके सबकर्मोंका त्यागकरके सुखपूर्वक रहताहै कुछमानस कर्मोंकाही जुदाकरके ग्रहणहोय इसकेलिये (मनसा)यहविशेषण नहीं है औसर्वशब्द इसलिये है कि कायिक बाचिकादि सब कर्मोंका ग्रहणहोय इससे सबकर्मोंके त्यागहीमें भगवान्का अभिप्राय प्रतीत होता है और कोई तौऐसा कहतेहैं कि मानस व्यापारके बिना कोई कायिक आदि कर्म नहीं होसक्ता है यह हमने माना परन्तु यहां शास्त्रविहित कायिक वाचिक कर्मोंके कारण भूत जे मानसकर्म अर्थात् मनके व्यापार तिनको छोड़िके और सब लौकिककर्मोंको मनसे त्यागकरके योगीरहता है यह अर्थ भगवान्को अभिमतहै सो यहभी कथन असंगत है क्योंकि वहां ऐसाभी कहाहै कि न तौ कर्मकर्त्ताहै और न किसीसे कराताहै और शास्त्रीय कर्मभी करनेसेही होतेहैं तो जब उसने शास्त्रीयकर्मकिया और लौकिक कर्म नहींकिया तो सर्वथा नहींकरना कैसे बनसक्ताहै इससे कर्मकेत्याग में संकोचके बल तुम्हारा अपने मनसे कल्पनाकियागयाहै कुछ भगवान् को अभिमत नहींहै और कोई तो ऐसाकहते हैं कि यह भगवान्करके कहाहुआ सब कर्मोंका त्याग जिससमयमें मरनेलगताहै उससमयकाहै क्योंकि बादमरनेके फिर कोईकर्म होतानहींहै सो यहभी कथन असंगतहै क्योंकि उसीश्लोक में यहभी कहा कि फिर नवद्वारपुर अर्थात् नवदरवाजे का पुर जो मनुष्यशरीर तिसमें बासकरताहै भला कहीं ऐसाभी सम्भव होता है मरजाइ और फिर उसीदेहमें कर्म नहींकरता कराता बासभी करै इससे तुम्हाराकथन सर्वथाअसंगतहै फिरवहअसंगतवादी कहाताहै देहमें(आस्ते) रहताहै इसक्रियाका सम्बन्धनहींहै किंतु (संन्यास) इसक्रियाका सम्बन्धहै अर्थात् देहमें सबकर्मों का त्यागकरके कहीं रहताहै ऐसाअर्थ है सो यह कथनभी असंगतहै क्योंकि सबजगह श्रुति और स्मृतियोंमें आत्मा विकाररहितहै ऐसा निश्चय कियागयाहै तो देहसम्बंधके बिना करना औ कराना आत्मामें सम्भव नहींहोता औ यहांकहाहै कि ज्ञानी न करता न कराता है तौ जब ज्ञानीके देहका त्यागहोगया तो आत्मामें करने करानेके असम्भव से निषेधही असंगत होजायगा दूसरे रहताहै यहांरहना यह क्रिया किसी आधारही में रहैगी क्योंकि बिनाआधार क्रियारहनहीं सक्ती और उसस्थिति क्रियाका आधार बिनादेहके औरकोई सम्भव नहींहोता क्योंकिआत्म तो विकाररहितहै उसमें क्रिया बननहींसक्ती और जो कहादेहमें कर्मोंका त्यागकेरक ऐसाअर्थ करैंगे तहां त्यागरूप क्रियाको सिवायकर्म के देहरूप

आधार की आकांक्षाही नहींहोती और विनाआकांक्षाके क्रियाका अन्वय नहीं सम्भवहोता इससे रहताहै इसी क्रियावाचकका देहमें सम्बंधहै त्याग रूपक्रियाका नहींहै इससे तुम्हारा कथन असंगतहीहै तिससे गीताशास्त्रमें आत्मज्ञानीको संन्यासही में अधिकारहै कर्ममें नहींहै इससिद्धांतको आगे भी आत्मज्ञानके प्रकरण में तहां तहां दिखलावेंगे ॥ २१ ॥

वासांसिजीर्णानियथा विहायनवानि गृह्णातिनरोऽपराणि।
तथाशरीराणिविहाय जीर्णान्यन्यानिसंयातिनवानिदेही॥२२॥

शङ्करभाष्यम्।

प्रकृतन्तु वक्ष्यामः तत्रात्मनोऽविनाशित्वं प्रतिज्ञातं तत किमिवेत्युच्यते वासांसीति वासांसि वस्त्राणि जीर्णानि दुर्बलतां गतानि यथा लोके विहाय परित्यज्य नवानि अन्यानि गृह्णात्यु पादत्ते नरः पुरुषोऽपराण्यन्यानि तथा तद्वदेव शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति सं गच्छति नवानि देह्यात्मा पुरुषवदविक्रिय एवेत्यर्थः ॥ २२ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

आत्मनोऽविक्रियत्वेन कर्मासम्भवं प्रतिपाद्याविक्रियत्वहेतुसमर्थनार्थमेवोत्तरग्रन्थम वतारयति प्रकृतं त्विति किं तत्प्रकृतं सति शङ्कमानं प्रत्याह तत्रेति अविनाशित्वमि त्युपलक्षणमविक्रियत्वमित्यर्थः तदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयितुमुत्तरश्लोकमुत्थापयति तदि त्यादिना आत्मनः स्वतोऽविक्रियाभावेऽपि पुरातनदेहत्यागे नूतनदेहोपादाने च वि क्रियावत्त्वध्रौव्याद्विक्रियत्वं सिद्धमिति चेत् तत्राह वासांसीति शरीराणि जीर्णानि वयोहानिं गतानि त्वग्वलीपलितादिसंगतानीत्यर्थः वाससां पुरातनानां परित्यागे नवा नाञ्चोपादाने त्यागोपादानकर्तृभूतलौकिकपुरुषस्यापि अविकारित्वेनैकरूपत्ववदात्मनो देहत्यागोपादानयोरविरुद्धमविक्रियत्वमिति वाक्यार्थमाह पुरुषवदिति ॥ २२ ॥

स्वामिकृतटीका।

नन्वात्मनोऽविनाशेऽपि तदीयशरीरनाशं पर्य्यालोच्य शोचामीतिचेत् तत्राह वासांसीति कर्मनिबन्धनानां देहानामवश्यम्भावित्वाज्जीर्णदेहनाशेन शोकावकाशइत्यर्थः॥२२॥

नवलभाष्य।

अब जो प्रकरणमें अर्थहै तिसको कहते हैं तहां आत्मा अविनाशी है कभी नाशको प्राप्तनहीं होताहै यहप्रतिज्ञाकर आयेहैं सोकिसके सदृशहैयह दिखाने को भगवान् कहतेहैं [वासांसीति] जैसे लोकमें ये वस्त्रजीर्णहो-जातेहैं अर्थात् पुराने होनेसे अथवा किसी कारणपाय गलजानेसे जबप-हिरनेके योग्यनहीं रहतेहैं तो पुरुषउन्होंको त्यागकर और नवीन वस्त्रोंको ग्रहण करताहै तैसेही देहीजो आत्मासो वृद्धावस्थासे वा रोगादिसे जोदे-हजीर्ण शिथिल होजाते हैं अर्थात् भोगके योग्यनहीं रहतेहैं तो उनकोत्या गके और नवीनदेहोंको ग्रहणकरताहै तो जैसे पुरानेवस्त्रोंके त्यागसे और

नवीनवस्त्रों के ग्रहणकरने से उसग्रहणत्यागकर्त्ता को कोई विकारनहीं होता किन्तु वस्त्रोंही में विकारहोताहै तैसे आत्मामें कोई विकारनहीं देह मेंही होताहै ॥ २२ ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
नचैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ २३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कस्मादविक्रिय एवेत्याह नैनं छिन्दन्तीति एनं प्रकृतं देहिनं न छिन्दन्ति शस्त्राणि निरवयवत्वान्नावयवविभागं कुर्वन्ति शस्त्राण्यस्त्रादीनि तथा नैनं दहति पावकोऽग्निरपि न भस्मीकरोति तथा नचैनं क्लेदयन्त्यापोऽपां हि सावयवस्य वस्तुनः आर्द्रीभावकरणेन अवयवविश्लेषापादने सामर्थ्यं तन्न निरवयव आत्मनि सम्भवति तथा स्नेहवत् द्रव्यं स्नेहशोषणेन नाशयति वायुरेनं त्वात्मानं न शोषयति मारुतोऽपि ॥ २३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

पृथिव्यादिभूतचतुष्टयप्रयुक्तं विक्रियाभाक्त्वादात्मनोऽसिद्धमविक्रियत्वमिति शंकते कस्मादिति यतो न भूतान्यात्मानं गोचरयितुमर्हन्त्यतो युक्तमाकाशवत् तस्याविक्रियत्वमित्याह आहेत्यादिना ॥ २३ ॥

स्वामिकृतटीका।

कथं हन्तीत्यनेनोक्तं बधसाधनाभावं दर्शयन् विनाशित्वमात्मनः स्फुटीकरोति नैनमिति आपो न क्लेदयन्ति मृदुकरणेन शिथिलं न कुर्वन्ति ॥ २३ ॥

नवलभाष्य।

काहेसे आत्मा विकाररहितहीहै इसहेतुसे भगवान्कहतेहैं[नैनंछिन्दन्तीति] यह इसप्रकरणमें कहा जो आत्मा तिसको अंगोंके नहींहोनेसे शस्त्र जो खड्गादि ते नहीं छेदनकरते हैं अर्थात् अवयवों का विभाग टुकड़ेनहीं करतेहैं तैसेही इसआत्माको पावक जो अग्नि सोभी भस्मनहीं करसक्ताहै तैसे जल भी इसआत्माको गीलानहीं करसक्ते हैं क्योंकि जो अवयववान् अर्थात् अंगोंकरके युक्त वस्तुहोतीहै उसको आर्द्रकरके अर्थात् गीलाकरके अवयवोंके पृथक् पृथक् करनेमें जलोंकी सामर्थ्य होतीहै सो सामर्थ्य निरवयव अंगरहितआत्मामें नहीं सम्भवहोतीहै तैसेही जो द्रव्य चिकनाईकरके युक्तहै उसको उसचिकनाईके सुखानेसे पवन नाशकराताहै औरआत्मा तो चिकनाई करके युक्तहै नहीं इससे इसआत्माको पवन नहीं सुखायसक्ताहै ॥ २३ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ २४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

एतम् आत्मानं नाशयितुं नोत्सहन्ते तस्मात् नित्यत्वात् सर्वगतः सर्वगतत्वात्स्थाणुरित्येतद्

स्थिरत्वादचलोऽयमात्माऽतः सनातनश्चिरन्तनो न कारणात् कुतश्चिन्निष्पन्नोऽनिलावादित्यर्थः न तेषां श्लोकानां पौनरुक्त्यं चोदनीयं यत एकेनैव श्लोकेनात्मनो नित्यत्वमविक्रियत्वं चोक्तं न जायते म्रियते वा इत्यादिना तत्र यदेवाविक्रियं किञ्चिदुच्यते तदेतस्मात् श्लोकार्थान्नातिरिच्यते किञ्चिच्छब्दातः पुनरुक्तं किञ्चिदर्थं त इति दुर्बोधत्वादात्मवस्तुनः पुनः पुनः प्रसंगमापाद्य शब्दान्तरेण तदेव वस्तु निरूपयति भगवान् वासुदेवः कथं तु नाम संसारिणाम् असंसारित्वं बुद्धिगोचरतामापन्नं सदव्यक्तं तत्त्वं संसारानिवृत्तये स्यादिति किञ्च अव्यक्तोयमिति अव्यक्तः सर्वकरणाविषयत्वान्न व्यज्यते इति अव्यक्तोयमात्मा अतएवाचिन्त्योऽयं यद्धींद्रियगोचरं वस्तु तच्चिन्ताविषयत्वमापद्यते अयं त्वात्माऽनिंद्रियगोचरत्वादचिन्त्योऽतएवाविकार्य्यो यथा क्षीरं दध्यादिना विकारि न तथा अयमात्मा निरवयवत्वाच्चाविक्रियो नाहि निरवयवं किञ्चिद्विक्रियात्मकं दृष्टमविक्रियत्वादविकार्य्योयमात्मोच्यते ॥ २४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

पृथिव्यादि भूतप्रयुक्तच्छेदनाद्यविक्रियाऽभावे योग्यताऽभावं कारणमाह यतइतिपूर्वार्द्धमुत्तरार्द्धं हेतुत्वेन योजयति यस्मादिति नित्यत्वादीनामन्योऽन्यं हेतुहेतुमद्भाव सूचयति नित्यत्वादिना नच नित्यत्वं परमाणुषु व्यभिचारादसाधकं सर्वगतत्वस्येति वाच्यं तेषामेवाप्रमाणिकत्वेन व्यभिचारानवताराान्नच सर्वगतत्वेऽपि विक्रियाशक्तिमत्त्वमात्मनोऽस्तीति युक्तं विधुत्वेनाभिमते नभसि तदनुपलम्भान्न विक्रियाशक्तिमत्त्वे स्थैर्यमास्थातुंशक्यं तथाविधस्य मृदादेरस्थिरत्वदर्शनादित्याशयेनाह स्थिरत्वादिति स्वतो नित्यत्वेऽपि कारणान्नाशसम्भवादुत्पत्तिरपि सम्भवितेति कुतश्चिरन्तनत्वमित्याशङ्क्याह नकारणादिति आत्मनोऽविक्रियत्वस्य न जायते म्रियते वेत्यादिना साधितत्वात् तस्यैव पुनरभिधाने पुनरुक्तिरित्याशङ्क्याह न तेषामिति अनाशंकनीयस्य चोद्यस्य प्रसंगं दर्शयति यतइति अतो वेदाविनाशिनमित्यादौ न शङ्क्यते पौनरुक्त्यमिति शेषः कथं तत्र पौनरुक्त्या शङ्का समुन्मिषति तत्राह तत्रेति वेदाविनाशिनमित्यादि श्लोकः सप्तम्या परामृश्यते श्लोकशब्देन न जायते म्रियते वेत्यादिरुच्यते नन्विह श्लोके जन्ममरणाद्याभावोऽभिलष्यते वेदेत्यादौ पुनरपक्षयाद्यभावो विवक्ष्यते तत्र कथमर्थातिरेकाभावमादाय पौनरुक्त्यञ्चोद्यते तत्राह किञ्चिदिति कथं तर्हि पौनरुक्त्यं नचोदनीयमिति मन्यसे तत्राह दुर्बोधत्वादिति पुनः पुनर्विधानभेदेन वस्तु निरूपयतो भगवतोऽभिप्रायमाह कथं न्विति त्वं पदार्थपरिशोधनस्य प्रकृतत्वात् तत्रैव हेत्वन्तरमाह किञ्चेति आत्मन नित्यत्वादिलक्षणस्य तथैव प्रथा किमिति न भवति तत्राह अव्यक्त इति मा तर्हि प्रत्यक्षत्वमभूदनुमेयत्वं तस्य किं नस्यादित्याशङ्क्याह अतएवेति तदेव प्रपञ्चयति यद्धीति अतीन्द्रियत्वेऽपि सामान्यतो दृष्टविषयत्वं भविष्यतीत्याशङ्क्य कूटस्थेनात्मना व्याप्तिलिंगाभावान्नैवमित्याह अविकार्य इति अविकार्यत्वे व्यतिरेकदृष्टान्तमाह यथेति किञ्चात्मा न विक्रियते निरवयवद्रव्यत्वात् घटवदिति व्यतिरेकानुमानमाह निरवयवत्वाच्चेति निरवयवत्वेऽपि विक्रियावत्त्वे का क्षतिरित्याशङ्क्याह नहीति सावयवस्यैव विक्रियावत्त्वे निरवयवत्वानुपपत्तिरित्यर्थः यद्धि सावयवं सक्रियं क्षीरादि तद्दध्यादिना विकारमापद्यते नच आत्मनः श्रुतिप्रमितनिरवयवत्वस्य सावयवत्वमतोऽविक्रियत्वात् नायं विकार्यो भवितुमलमिति फलितमाह अविक्रियत्वादिति ॥ २४ ॥

स्वामिकृतटीका।

तत्र हेतुमाह अच्छेद्य इति सार्द्धेन निरवयवत्वादच्छेद्योऽक्लेद्यश्च अमूर्त्तत्वाददा

ह्यः द्रवत्वाभादशोष्य इति इतश्च छेदादियोग्यो न भवति यतो नित्योऽविनाशी सर्वगतः स्थाणुः स्थिरस्वभावो रूपान्तरापत्तिशून्यः अचलः पूर्वरूपापरित्यागी सनातनोऽनादिः अव्यक्तश्चक्षुराद्यविषयः अचिन्त्यो मनसोऽप्यविषयः अविकार्यः कर्मेन्द्रियाणामप्यगोचर इत्यर्थः उच्यत इति नित्यत्वादभियुक्तोक्तिं प्रमाणयति ॥ २४ ॥

नवलभाष्य।

और जिसकारणसे शस्त्रादिक इसका छेदनादिक नहींकरसक्ते हैं तिसीसे यहआत्मा अछेद्यहै अर्थात् नहीं छेदनकरनेको शक्यहै और भस्मकरनेको भी शक्यनहीं है और गीलाकरने को भी शक्यनहीं है औसुखानेको भी शक्यनहीं है अर्थात् समर्थ नहींहै औजिससे परस्पर नाशहेतु भूत अर्थात् आपुसमें नाशकरने वाले जे भूतते इसआत्माका नाशकरनेको नहीं उत्साहकरते हैं तिसीसे यह आत्मा नित्यहै औजिससे नित्यहै इसीसे सर्वगत है अर्थात् सर्वव्यापक है और जिससे सर्वव्यापक है इसीसे स्थिरस्वभाव है जिससे स्थिरहै इसीसे अचलहै और अचलहोनेही से यह आत्मा सनातनहै अर्थात् पुरानाहै किसी कारणसे पवनादिककीनाई उत्पन्ननहीं हुआ है अब इसप्रकरणमें यहशंका होतीहै कि बहुतसा पुनरुक्तदोष आता है क्योंकि प्रथमतौ [नजायते] इत्यादि श्लोककरके आत्मामें छःविकारनहीं हैं यहकहि आयेथे फिर [अविनाशितुतद्विद्धि] इसश्लोकसे यहकहा कि आत्मामें कोई कर्म नहीं संभवहोता और न कोई क्रिया औरतिसपै भी [नैनंछिन्दन्ति] इत्यादि श्लोकसे फिरक्रियाहीका निषेधकिया और तिसके आगे फिरभी [अच्छेद्योयमदाह्योयम्] इसश्लोकसे फिर उसी क्रियाका निषेधकिया इसप्रकार बहुत पुनरुक्तियां आतीहैं सो क्यासमुझके ऐसाकहा क्योंकि एक [नजायते] इसीश्लोककरके सब श्लोक गतार्थ हैं जब कि इस श्लोकमें छः विकारोंका निषेध करतेहैं तब जितनी छेदनादिक क्रिया हैं ते सब इनविकारोंही के अन्तर्गतहैं तौ इसकथनका यहआशय है कि आत्मवस्तु अत्यन्त दुर्बोधहै अर्थात् दुःखकरके भी किसीसंसारी को आत्मज्ञान नहींहोता इससे बारम्बार प्रसंगवशसे और और शब्दोंकरके भगवान्वासुदेव श्रीकृष्ण उसी आत्मवस्तुको निरूपण करतेहैं कि कैसे भी इनसंसारी पुरुषोंको संसाररहित आत्मतत्त्व बुद्धिमें प्रविष्टहुआ संसारकी निवृत्ति के अर्थ होय ॥ २४ ॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्य्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तस्मादेवं यथोक्तप्रकारेणैनमात्मानं विदित्वा त्वं नानुशोचितुमर्हसि हन्ताहमेषां मयैते हन्यन्ते इति ॥ २५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

आत्मयाथात्म्योपदेशमशोच्यानन्वशोचस्त्वमित्युपक्रम्य व्याख्यानमुपसंहरति तस्मादिति अव्यक्तत्वाचिन्त्यत्वाविकार्यत्व नित्यत्वसर्वगतत्वादिरूपो यस्मादात्मा निर्द्धारितस्तस्मात् तथैव ज्ञातुमुचितस्तज्ज्ञानस्य भलवत्त्वादित्यर्थः प्रतिषेध्यमनुशोकमेवाभिनयति हन्ताहमिति ॥ २५ ॥

स्वामिकृतटीका ।

उपसंहरतितस्मादेवमितितदेवमात्मनोजन्मविनाशाभावान्नशोकःकार्यइत्युक्तम् ॥२५॥

नवलभाष्य ।

औ हे अर्जुन फिर यहआत्मा अव्यक्त है सबकारणोंके अविषयहोने से किसीकरके नहींप्रकटहोय सो अव्यक्तकहाताहै अर्थात् शब्दकेअर्थके जानने में कारण प्रत्यक्षादि प्रमाणहैं तिन्होंकरके आत्मानहींजानाजाताहै इससे अव्यक्तहै और इसीसे अचिन्त्यहै जो इंद्रियगोचरवस्तु अर्थात् इंद्रियोंकर के जो वस्तु जानीजातीहै उसका मनसे चिन्तनहोताहै तौ उसको चिन्त्य कहतेहैं और यहआत्मा तौ इंद्रियगोचरहै नहीं इससे यहअचिन्त्यहै और इसीसे अविकार्य्यहै अर्थात् विकाररहितहै जैसे दुग्ध दधि आदि रूपकरके विकारयुक्तहोताहै तैसे यहआत्मा निरवयव अंगरहितहोने से विकारयुक्त नहीं होता क्योंकि कोई अवयवरहित अर्थात् अंगरहित वस्तु कभी विकार को प्राप्त नहींदेखी इससे विकाररहितहोनेसे आत्माअविकार्य कहाजाताहै इससे हे अर्जुन इसआत्माको पूर्वोक्तप्रकार करके जानके मैं इनका मारने वालाहूं येमुझकरकेमारेजातेहैं इसप्रकारसे शोचकरनेकेयोग्यतूनहींहै २५ ॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

आत्मनोऽनित्यत्वमभ्युपगम्येदमुच्यते अथ चैनमिति अथ चेत्यभ्युपगमार्थः एनं प्रकृतमात्मानं नित्यजातं लोकप्रसिद्ध्या प्रत्यनेकशरीरोत्पत्तिं जातोजात इति वा मन्यसे तथा प्रतितत् तद्विनाशं नित्यं वा मन्यसे मृतं मृतोऽमृत इति तथापि भाविन्यपि आत्मनि त्वं महाबाहो नैवंशोचितुमर्हसि जन्मवतो नाशो नाशवतो जन्म चेत्येताववश्यम्भाविनाविति ॥ २६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

आत्मनो नित्यत्वस्य प्रागेव सिद्धत्वादुत्तरश्लोकानुपपत्तिरित्याशङ्क्याह आत्मन इति अनित्यत्वमिच्छतीतिच्छेदः शक्यानां लोकायतानां वा मतमिदमापरामृष्यते श्रोतुरर्जुनस्य पूर्वोक्तमात्मयाथात्म्यं श्रुत्वापि तस्मिन्निर्द्धारणासिद्धेर्द्वयोर्मतयोरन्यतरमताभ्युपगमः शङ्कितस्तदर्थौ निपातद्वयप्रयोग इत्याह अथचेति प्रकृतस्यात्मनो नित्यत्वादिलक्षणस्य पुनः पुनर्जातत्वाभिमानामानाभावादसम्भावीत्याह लोकेति नित्यजातत्वाभिनिवेशे पौनःपुन्येन मृतत्वाभिनिवेशो व्याहतः स्यादित्याशङ्क्याह तथेति परकीयमतमनु

भाषितमभ्युपेत्याहोवत महत्पापं कर्तुं व्यवसितावयमित्यादेस्तदीयशोकस्य निरवकाश त्वमित्याह तथापीति एवमर्जुनस्य दृश्यमानमनुशोकप्रकारं दर्शयित्वा तस्य कर्तुमयोग्यत्वे हेतुमाह जन्मवत इति जन्मवतो नाशो नाशवतश्च जन्मेत्येतावावश्यंभाविनौ मिथो व्याप्ताविति योजना॥ २६॥

स्वामिकृतटीका।

इदानीं देहेन सहात्मनो जन्म तद्विनाशे च विनाशमंगीकृत्यापि शोको न कार्य्य इत्याह अथ चैनमिति अथ यद्यप्येनमात्मानं अनित्यं सर्वदा तत्तद्देहे जाते जातं मन्यसे तथा तत्तद्देहे मृते मृतञ्च मन्यसे पुण्यपापयोस्तत्फलभूतयो अजन्ममरणयोरात्मगामित्वात् तथापि त्वं शोचितुं मार्हसि॥ २६॥

नवलभाष्य।

और हेअर्जुन इसप्रकार युक्तिप्रमाण द्वाराआत्माके नित्यपनाकी सिद्धी में भी जो कदाचित् लोकायत मतवादियों के मतको आश्रयण करके देहके संग आत्माभी उत्पन्न होताहै और देहनष्ट होता है तौ आत्माभी उसके संगही नष्टहोता है इसप्रकार लोकप्रसिद्धि से नित्यदेह देहप्रति आत्माको उत्पन्न मानताहोवै और नित्य प्रतिदेह आत्माको मराहुआ मानता तौभी तू शोचकरने योग्य नहींहै॥ २६॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ २७॥

शङ्करभाष्यम्।

तथा च सति जातस्येति जातस्य हि लब्धजन्मनो ध्रुवोऽव्यभिचारी मृत्युर्मरणं ध्रुवं जन्म मृतस्य च तस्मादपरिहार्य्योऽयं जन्ममरणलक्षणोर्थ स्तस्मिन्नपरिहार्य्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ २७॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तयोरवश्यकतावित्वे सत्यनुशोकस्याकर्त्तव्यत्वे हेत्वन्तरमाह तथाचेति॥ २७॥

स्वामिकृतटीका।

सम्भाविनि जन्ममरणलक्षणेऽर्थे त्वं विद्वान् शोचितुं योग्यो न भवसि॥ २७॥

नवलभाष्य।

क्योंकि जो उत्पन्न हुआ है उसकी निश्चय करके मृत्युहोनेही वाली है और जोमरता है उसका जन्मभी अवश्य होगाही तब यहजन्म मरणरूप अर्थ अपरिहार्य्य है किसीको दूरकरने को शक्यनहीं अर्थात् यह किसीकी सामर्थ्य नहीं जो जिसका जन्महै उसकी मृत्यु न होय और जिसकी मृत्यु है उसका जन्म न होय इससे तू शोचकरने योग्य नहीं है॥ २७॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कार्य्यकारणसंघातात्मकान्यपि भूतान्युद्दिश्य शोको न युक्तः कर्त्तुं यतअव्यक्तादीनीति अव्यक्तादीन्यव्यक्तमदर्शनमनुपलब्धिरादिर्येषां भूतानां पुत्रमित्रादिकार्य्यकारणसंघातात्मकानां तानि अव्यक्तादीनि भूतानि प्रागुत्पत्तेः उत्पन्नानि च प्राक् मरणात् व्यक्तमध्यान्यव्यक्तनिधनान्येव पुनरव्यक्तमदर्शनं निधनं मरणं येषां तानि अव्यक्तनिधनानि मरणादूर्ध्वमव्यक्ततामेवप्रतिपद्यन्ते इत्यर्थः तथाचोक्तम् अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः नासौ तव न तस्यत्वं वृथा का परिदेवनेति तत्र का परिदेवना को वा प्रलापः अदृष्टदृष्टप्रनष्टभ्रांतिभूतेष्वित्यर्थः २८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

कुत इत्यतआह जातस्य हीति हि यस्माज्जातस्य स्वारम्भककर्मक्षये मृत्युर्ध्रुवो निश्चितः मृतस्य च तद्देहकृतेन कर्मणा जन्मापि ध्रुवमेव तस्मादेवमपरिहार्येऽर्थे आत्मानमुद्दिश्यानुशोकस्य कर्त्तुमयोग्यत्वेऽपि भूतसङ्घातात्मकानि भूतान्युद्दिश्य तस्य कर्त्तव्यत्वमाशङ्क्याह कार्येति समनन्तरश्लोकस्तत्र हेतुरित्याह यतइति चाक्षुपदर्शनमात्रनिवृत्तिं व्यावर्त्तयति अनुपलब्धिरिति नहि यथोक्ति सङ्घातरूपाणि भूतानि पूर्वमुत्पत्तेरुपलभ्यन्ते तेनतानि तथा व्यपदेशभाञ्जि भवन्तीत्यर्थः किं तन्मध्यं यदेषां व्यक्तमिष्यते तदाह उत्पन्नानीति उत्पत्तेरूर्ध्वं मरणाच्च पूर्वं व्यावहारिकं सत्वं मध्यमेषां व्यक्तमिति तथोच्यतेजन्मानुसारित्वविलयस्य युक्तमितिमत्वा तात्पर्य्यार्थमाह मरणादिति उक्तेर्थे पौराणिकसम्मतिमाह तथाचेति तत्रत्यस्यार्थमाह अदृष्टेति पूर्वमदृष्टानि सन्ति पुनर्दृष्टानि तान्येव पुनर्नष्टानितदेवं भ्रान्तिविषयतया घटिकायन्त्रवच्चक्रीभूतेषु भूतेषु शोकनिमित्तस्य प्रलापस्य नावकाशोऽस्तीत्यर्थः ॥ २८ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च देहादीनां स्वभावं पर्य्यालोच्य तदुपाधिके आत्मानो जन्ममरणे शोको न कार्य्य इत्याह अव्यक्तादीनीति अव्यक्तं प्रधानं तदेवादि उत्पत्तेः पूर्वरूपं येषां तानि अव्यक्तादीनि भूतानि शरीराणि कारणात्मनास्थितानामेवोत्पत्तेः तथा व्यक्तमभिव्यक्तमध्यं जन्ममरणान्तरालं स्थितिलक्षणं येषां तानिव्यक्तमध्यानि अव्यक्तेनिधनं लयोयेषांतानीमान्येवम्भूतान्येव तत्र तेषु का परिदेवना कःशोकनिमित्तो विलापः प्रतिबुद्धस्य स्वप्नदृष्टवस्तुष्विव शोको न युज्यत इत्यर्थः ॥ २८ ॥

नवलभाष्य।

कदाचित् अर्जुन कहै आत्मा नित्यहै इससे शोच करनेयोग्य नहीं है यहरहो परन्तु आकाशादि भूतात्मक जे भीष्मादिकों के सुन्दरदेहहैं तेतो शोचनीयहैंही इसपै कहतेहैं भूतभी कार्यकारण+संघातरूप होनेसे अत्यन्त

+जैसे घटकार्यहुआ और मृत्तिका उसका कारणहै और मृत्तिकाभी कारणगन्धहै फिर उसकाभी कारण जलादिक ऐसे मायापर्यन्त सब कार्य कारण भावमूठाहो है तैसे देहभी शब्दादि तन्मात्रा और आकाशादि भूत और महदहंकारादि रूपकार्य कारण समुदायसेही होताहै कोई इनमें कारणहै कोई किसीकार्य है ॥

मिथ्याहै यह जानकेभी शोककरना युक्तनहीं है क्योंकि हेअर्जुन ये सबभूत अव्यक्त जो अदर्शन अर्थात् न दिखाई पड़ना सो आदिमें जिनपुत्र मित्रादिकोंके अथवा पृथिव्यादिकोंके ऐसे हैं अर्थात् उत्पत्ति के पहिले इनपुत्र मित्रादिकों का कुछनाम रेखनथा और ऐसेही पृथिव्यादिकभी हैं और मरणके उपरान्त भी इनका नामरूप न रहैगा एकमध्यमें सहावेकी तरहनाम रूप दिखाई पड़ताहै वहभी मिथ्याही है तौ ऐसेभूतोंमें क्याविलाप करना चाहिये अर्थात् ऐसे स्वप्नवत् मिथ्यापुत्र मित्रादिकोंके वियोगकी संभावना से अपने मनमें क्लेशकरना व्यर्थ है सो पुराणों में कहाभी है (अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनंगतः। नासौतत्रन तस्यत्वं वृथाका परिदेवनेति) इस का अर्थ अत्यन्त+स्पष्टइससे नहीं लिखा ॥ २८॥

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनंवेदनचैवकश्चित्॥२९॥

शङ्करभाष्यम्।

दुर्विज्ञेयोऽयं प्रकृत आत्मा किंत्वात्मेवैकम् उपालभेत् साधारणे भ्रांति निमित्ते कथं दुर्विज्ञेयमात्मेसत आह आश्चर्य्यवदिति आश्चर्य्यवदाश्चर्य्यम् अदृष्टपूर्वमद्भुतमकस्माद्दृश्यमानं तेनतुल्यमाश्चर्य वदाश्चर्यमिवैनमात्मानं पश्यति कश्चिदाश्चर्य्यवदेनं वदति तथैवचान्य आश्चर्य्य वच्चैनमन्यःशृणोतिदृष्टोक्त्वा श्रुत्वाप्यात्मानंवेद नचैव कश्चिदथवायोयमात्मानंपश्यति स आश्चर्य्यतुल्योयो वदतियश्च शृणोतिसोऽनेकसहस्रेषुकश्चिदेव भवसतो दुर्बोध आत्मेत्यभिप्रायः २९॥

आनंदगिरिकृतटीका।

अर्जुनं प्रत्युपालम्भं दर्शयित्वा प्रकृतस्यात्मनो दुर्विज्ञेयत्वात् तं प्रत्युपालम्भो न सम्भवतीतिमन्वानः सन्नाह दुर्विज्ञेय इति तथाचात्माज्ञाननिमित्तविप्रलम्भस्य साधारणत्वादसाधारणोपालम्भस्य निरवकाशतेत्याह किं त्वामेवेति अहं प्रत्ययवेद्यत्वादात्मनो दुर्विज्ञेयत्वमसिद्धमितिशङ्कते कथमिति विशिष्टस्यात्मनोऽहं प्रत्ययस्य दृष्टत्वेऽपि केवलस्य तदभावादस्ति दुर्विज्ञेयतेति श्लोकमवतारयति आहेति आश्चर्यवदिति आद्येन पादेनात्मविषयदर्शनस्य दुर्लभत्वं दर्शयता द्रष्टुर्दौर्लभ्यमुच्यते द्वितीये नच तद्विषयवदन्यस्य दुर्लभत्वोक्तेस्तदुपदेष्टुस्तथात्वं कथ्यते तृतीयेन तदीयश्रवणस्य दुर्लभत्वद्वारा श्रोतुर्विरलता विवक्षिता श्रवणदर्शनोक्तीनां भावेपि तद्विषयसाक्षात्कारस्यात्यन्तायासलभ्यत्वं चतुर्थेनाभिमतमिति विभागः आत्मगोचरदर्शनादि दुर्लभत्वद्वारा दुर्बोधत्वमात्मनः साधयति आश्चर्यवदिति सम्प्रत्यात्मनि द्रष्टुर्वक्तुः श्रोतुः साक्षात् कर्तुश्च दुर्लभत्वाभिधानेन तदीयं दुर्बोधत्वं कथयति अथवेति व्याख्यानद्वयेऽपि फलितमाह अत इति ॥ २९ ॥

+दर्शनके अभावही से अर्थात् नहींदिखलाई आकस्मात् आके प्राप्तहुआ और फिर भी अदर्शनको प्राप्तहुआ नहीं देखनेहो को प्राप्तहुआ अर्थात् पहिले भी नहीं दिखाई देताथा अबभी नहीं दिखाई देताहै एकबीचमें दिखाईपड़ा सोभीभूठाहीथा इसीसे नतो वहतेरे मेंहै और न तू तिसकाहै तो फिर इसका विलाप करनाभी मिथ्याहै अर्थात् निष्फल है, यह उस श्लोकका अर्थ गीताके श्लोकके अर्थके तुल्यथा इससे स्पष्टके अनुवाद में लिखा ॥

स्वामिकृतटीका।

कुतस्तर्हि विद्वांसोऽपि लोके शोचन्ति आत्माज्ञानादेवेत्याशयेनात्मनो दुर्ज्ञेयतामाह आश्चर्यवदिति कश्चिदेनमात्मानं शास्त्राचार्योपदेशाभ्यां पश्यन्नाश्चर्यवत् पश्यति सर्वगतस्य नित्यज्ञानानन्दस्वभावस्यात्मनोऽलौकिकत्वादैन्द्रजालिकवदघटमानं पश्यन्निव विस्मयेन पश्यति असम्भावनाभिभूतत्वात् तथाश्चर्यवदेवान्योवदति शृणोति चान्यः कश्चित् पुनर्विपरीतभावनाभिभूतः श्रुत्वापि न वेद च शब्दादुक्त्वापि दृष्ट्वापि न सम्यग्वेदेति द्रष्टव्यम् ॥ २९ ॥

नवलभाष्य।

अब भगवान् यह कहते हैं कि यह आत्मा अत्यन्त दुर्ज्ञेयहै इससे एक अर्जुनही को क्या उलहना देना चाहिये सभी भ्रांतिमें पड़रहे हैं कैसे दुर्ज्ञेय आत्मा है इस आशयसे कहते हैं कि (आश्चर्यवदिति) जो अद्भुत वस्तु कभी नहीं देखीहै और वह अकस्मात् दिखाईपड़े उसको आश्चर्य कहते हैं उस आश्चर्यके तुल्य अर्थात् आश्चर्यकी नाईं इस आत्माको कोई देखताहै और आश्चर्यहीके सदृश कोई इस आत्माको कहता है और तैसेही आश्चर्यहीके सदृश कोई इसआत्माको सुनताहै फिर इस आत्माको सुन के और देखके और कहिकैभी कोईनहीं जानसक्ताहै अथवा जोइसआत्माको देखता है वह आश्चर्य तुल्यहै अर्थात् विरला कोई है और जो कहता सुनता है वहभी अनेक हज़ारों में कोही एकहै और कोई तो सुनकरके भी नहीं जानता है ऐसा दुर्बोध आत्माहै यह भगवान्का अभिप्रायहै ॥ २९॥

देही नित्यमबध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि नत्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

शङ्करभाष्यम्।

अथेदानीं प्रकरणार्थमुपसंहरन् ब्रूते देहीति यस्माद्देही शरीरी नित्यं सर्व्वावस्थासवध्यो निरवयवत्वान्नित्यत्वाच्च तत्रावध्योऽयं देहे शरीरे सर्वस्य सर्वगतत्वात् स्थावरादिषु स्थितोऽपि सर्वस्य प्राणिजातस्य देहे बध्यमानेऽपि अयं देही न बध्यो यस्मात् तस्माद्भीष्मादीनि सर्वाणि भूतान्युद्दिश्य न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

श्लोकान्तरमुत्थापयति अथेति आत्मनो दुर्ज्ञानत्वप्रदर्शनानन्तरमिति यावत् वस्तुवृत्त्यापेक्षया शोकमोहयोरकर्तव्यत्वं प्रकरणार्थः देहे बध्यमानेऽपि देहिनो बध्यत्वाभावे फलितमाह यस्मादिति हेतुभागं विभजते सर्वस्येति फलितप्रदर्शनपरं श्लोकार्द्धं व्याचष्टे तस्माद्भीष्मादीनीति॥ ३० ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवमवध्यत्वमात्मनः संक्षेपेणोपदिशन्नशोच्यत्वमुपसंहरति देहीति स्पष्टार्थम् ॥३०॥

नवलभाष्य।

अब भगवान् इस प्रकरणके अर्थको उपसंहार करतेहुए अर्थात् समाप्त करतेहुए कहते हैं कि (देहीति) जिससे देही जोआत्मा सो नित्य अर्थात् सबकाल में औसब अवस्थामें अवध्य है किसीसे मारानहीं जाताहै क्योंकि अवयव अर्थात् अंग उसके कोई नहीं हैं इससे और नित्यपनासे औ सब के देहमें सर्वव्यापकता से स्थितभी है औसव प्राणिमात्रका देहमाराभी जाताहै परन्तु जिससे यहदेही आत्मा किसीको मारने को शक्यनहीं है तिससे भीष्मादिकजे प्राणी हैं तिनको शोचकरनेयोग्य तुम नहीं हो ॥३०॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

शङ्करभाष्यम्।

इह परमार्थतत्त्वापेक्षायां शोको वा मोहो वा न सम्भवतीत्युक्तं न केवलं परमार्थतत्त्वापेक्षायामेव किन्तु स्वधर्म्ममिति स्वधर्म्ममपि स्वो धर्म्मः क्षत्रियस्य धर्मः युद्धं तमप्यवेक्ष्य त्वं न विकम्पितुं प्रचलितुम् अर्हसि क्षत्रियस्य स्वाभाविकाद्धर्मादात्मस्वाभाव्यादिसभिप्रायः तच्चयुद्धं पृथिवीजयद्वारेण धर्मार्थं प्रजारक्षणार्थंचेति धर्म्मादनपेतं परं धर्म्यं तस्मात् धर्मात् युद्धात् श्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते हि यस्मात् ॥ ३१ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

श्लोकान्तरमवतारयन् वृत्तं कीर्तयति इहेति पूर्वश्लोकः सप्तम्यर्थः यत्पारमार्थिकं तत्त्वं तदपेक्षायामेव केवलं शोकमोहयोरसम्भवो न भवति किन्तु स्वधर्ममपि चावेक्षेति सम्बन्धः स्वकीयं क्षात्रधर्ममनुसन्धाय ततश्चलनं परिहर्त्तव्यमित्यर्थः यद्धि क्षत्रियस्य धर्मादनपेतं श्रेयः साधनं तदेव मयानुवर्तितव्यमित्याशङ्क्याह धर्म्यादिति जातिप्रयुक्तं स्वाभाविकं स्वधर्ममेव विशिनष्टि क्षत्रियस्येति पुनर्नकारोपादानमन्वयार्थं प्रचलितुमयोग्यत्वे प्रतियोगिनं दर्शयति स्वाभाविकादिति स्वाभाविकत्वमशास्त्रीयत्वमिति शङ्कां वारयितुं तात्पर्यमाह आत्मेति आत्मनः स्वस्यार्जुनस्य स्वाभाव्यं क्षत्रियस्वभावप्रयुक्तं वर्णाश्रमोचितं कर्म तस्मादित्यर्थः धर्मार्थं प्रजापरिपालनार्थञ्च प्रयतमानस्य युद्धादुपरिरंसा श्रद्धातव्येत्याशङ्क्याह तच्चेति ततोऽपि श्रेयस्करं किञ्चिदनुष्ठातुं युद्धादुपरतिरुचितेत्याशङ्क्याह तस्मादिति तस्माद्युद्धात् प्रचलनमुचितमिति शेषः ॥ ३१ ॥

स्वामिकृतटीका।

यच्चोक्तमर्जुनेन वेपथुश्च शरीरेम इत्यादि तदप्ययुक्तमित्याह स्वधर्ममपीति आत्मनो नाशाभावादेवैतेषां हननेऽपि विकम्पितुं नार्हसि किञ्च स्वधर्ममप्यवेक्ष्य विकम्पितुं नार्हसीति सम्बन्धः यच्चोक्तं नच श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहव इति तत्राह धर्म्यादिति धर्मादनपेतादन्याद्युद्धादन्यत् ॥ ३१ ॥

नवलभाष्य।

अब यहां परमार्थ तत्त्वकी अपेक्षामें अर्थात् परमार्थ तत्त्व विचारमें तौ

शोकवामोह ये कोई संभव नहीं होतेहैं यहबात तो कहिआये अब यहकहतेहैं कि केवल परमार्थ तत्त्व विचारहीमें शोकनहीं कर्त्तव्यहै यह नहींकिंतु अपना क्षत्रिय धर्म जो युद्ध तिसको देखकरके भी हे अर्जुन तूचलायमान होनेको योग्यनहीं है क्योंकि क्षात्रियपना के स्वभावसे सिद्ध जोयुद्ध है सो पृथिवी जयद्वारा धर्म सेवनके अर्थ है और प्रजाकी रक्षाके अर्थहै इससे धर्मयुक्तहुआ तिसधर्मयुक्त युद्धसे और कल्याण कोईक्षात्रियको नहींहै ३१॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

कुतश्च तद्युक्तं कर्त्तव्यम् इत्युच्यते यदृच्छयेति यदृच्छया चाप्रार्थितमागतमुपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतमुद्घाटितं ये एतदीदृशं युद्धं लभन्ते क्षत्रियाः हे पार्थ किन्न सुखिनस्ते ॥ ३२ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

युद्धस्य गुर्वाद्यनेकप्राणिहिंसात्मकस्याहिंसा शास्त्रविरोधान्नास्ति कर्तव्यतेति शङ्कते कुतश्चेति अग्नीषोमीयहिंसावद्यमपि क्षत्रियस्य विहितत्वादनुष्ठेयं सामान्यशास्त्रतो विशेषशास्त्रस्य बलीयस्त्वादित्याह उच्यतइति तथापियुद्धे प्रवृत्तानामैहिकामुष्मिकस्यापि सुखस्याभावादुपरतिरेव ततो युक्ता प्रतिभातीत्याशङ्क्याह यदृच्छयेति चिरेण चिरतरेण कालेन च यागाद्यनुष्ठायिनः स्वर्गादिभाजो भवन्ति युद्धमानास्तु क्षत्रिया वहिर्मुखताविहीनाः सहसैव स्वर्गादिसुखभोक्तारस्तेन तव कर्तव्यमेव युद्धमिति व्याख्यानेन स्फुटयति यदृच्छयेत्यादिना इहामुत्र च भावि सुखवतामेव क्षत्रियाणां स्वधर्मभूतयुद्धसिद्धेस्तादर्थ्येनोत्थानं शोकमोहौ हित्वा कर्तव्यमित्यर्थः ॥ ३२ ॥

स्वामिकृतटीका ।

किञ्च महति श्रेयसि स्वयमेवोपस्थिते सति कुतो विकम्पसे इत्याह यदृच्छयेति यदृच्छया अप्रार्थितमेवोपपन्नं प्राप्तमीदृशं युद्धं सुखिनः सुभाग्या एव लभन्ते यतोऽनिवारणं स्वर्गद्वारमेवैतत् यद्वा य एवंविधं युद्धं लभ्यन्ते त एव सुखिन इत्यर्थः एतेन स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधवेति यदुक्तं तन्निरस्तम् ॥ ३२ ॥

नवलभाष्य ।

औ काहेसे युद्धकरना चाहिये इससे कहते हैं (यदृच्छयेति) हे पार्थ हे कुन्तीके पुत्र यदृच्छाकरके प्राप्त अर्थात् बिना प्रार्थनाकिये प्राप्त जोयुद्ध सो खुलाहुआ स्वर्गका द्वारहै ऐसे युद्धको जे क्षत्रीप्राप्त होतेहैं तेक्या सुखीनहीं होतेहैं किन्तु अवश्य सुखी होतेही हैं ॥ ३२ ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिञ्च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

एवं कर्तव्यताप्राप्तमपि अथेति अथ त्वमिमं धर्म्यं धर्मादनपेतं विहितं संग्रामं युद्धं न करिष्यसि चेत् ततस्तदकरणात् स्वधर्मं कीर्तिञ्च महादेवादिसमागमनिमित्तां हित्वा केवलं पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

स्वधर्मस्य युद्धस्य श्रद्धयाकरणे स्वर्गादिमहाफलप्राप्तिं प्रदर्श्य तदकरणे प्रत्यवायप्राप्तिं प्रदर्शयन्नुत्तरश्लोकगतार्थशब्दार्थं कथयति एवमिति विहितत्वं फलवत्त्वमित्यनेन प्रकारेणेत्यर्थः अन्वयार्थं पुनश्चेदित्यनूद्यते महादेवादीत्यादिशब्देन महेन्द्रादयो गृह्यन्ते ॥ ३३ ॥

स्वामिकृतटीका।

विपक्षे दोषमाह अथ चेदिति ॥ ३३ ॥

नवलभाष्य।

औ हेअर्जन इसप्रकार करनेकी योग्यता को प्राप्त जो धर्मयुक्त संग्राम तिसको तू जो न करैगा तौ अपना क्षत्रियोंका धर्म और महादेवादि देवताओंके समागमसे प्राप्तहुई जो कीर्ति तिसको त्यागके केवल स्वधर्म त्यागसे उत्पन्नहुआ जो पापतिसको प्राप्तहोगा ॥ ३३ ॥

अकीर्त्तिञ्चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

न केवलं स्वधर्मकीर्त्तिपरित्यागः अकीर्त्तिमिति अकीर्त्तिञ्चापि युद्धे भूतानि कथयिष्यन्ति ते तवाव्ययां दीर्घकालां धर्मात्मा शूर इत्येवमादिभिर्गुणैः सम्भावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते सम्भावितस्य चाकीर्त्तेर्वरं मरणमित्यर्थः ॥ ३४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

युद्धाकरणे क्षत्रियस्य प्रत्यवायमामुष्मिकमापाद्य शिष्टगर्हालक्षणं दीर्घकालभाविनमैहिकमपि प्रत्यवायं प्रतिलम्भयति न केवलमिति युद्धे स्वमरणसन्देहात् तत्परिहारार्थमकीर्तिरपि सोढव्या स्वात्मसंरक्षणस्य श्रेयस्करत्वादित्याशङ्क्याह धर्मात्मेति मान्यानामकीर्तिर्भवति मरणादपि दुःसहेति तात्पर्यार्थमाह सम्भावितस्येति ॥ ३४ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च अकीर्त्तिमिति अव्ययां शाश्वतीं सम्भावितस्य बहुमतस्य अतिरिच्यतेऽधिका भवति ॥ ३४ ॥

नवलभाष्य।

और युद्धनहीं करनेमें केवल स्वधर्म और कीर्ति इनका परित्याग नहीं है किन्तु भूत जेप्राणी हैं ते बहुतकाल तक तुम्हारी अकीर्तिकहैंगे और यह

धर्मात्माहै यहशूरहै इत्यादि गुणोंकरके संभावित अर्थात् प्रसिद्ध जो पुरुष तिसकी जो अकीर्ति सो मरणसे भी अधिकहै अर्थात् संभावित पुरुषको अकीर्ति होनेसे मरणही श्रेष्ठहै ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषाञ्च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

किञ्च भयादिति भयात् कर्णादिभ्यो रणात् युद्धादुपरतं निवृत्तं मंस्यन्ते चिन्तयिष्यन्ति न कृपयेति त्वां महारथा दुर्य्योधनप्रभृतयः के मंस्यन्ते इत्याह येषाञ्च त्वं दुर्य्योधनादीनां बहुमतो बहुभिर्गुणैर्युक्त इत्येवं बहुमतो भूत्वा पुनस्त्वं यास्यसि लाघवं लघुभावम् ॥ ३५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

इतश्च त्वया युद्धं कर्त्तव्यमित्याह किञ्चेति प्राणिषु कृपयानाहं युद्धं करिष्यामीत्याशङ्क्याह भयादिति महारथानेव विशिनष्टि येषाञ्चेति दुर्य्योधनादिभिस्तवोपहासस्य तन्निरसनार्थं संग्रामे प्रवृत्तिरवश्यम्भाविनीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

स्वामिकृतटीका ।

किञ्च भयादिति येषां बहुगुणत्वेन त्वं पूर्वं संमतोभूस्त एव भयात् संग्रामान्निवृत्तं त्वां मन्येरन् ततश्च पूर्वं बहुमतो भूत्वा लाघवं लघुतां यास्यसि ॥ ३५ ॥

नवलभाष्य ।

और हेअर्जुन युद्धसे निवृत्त होनेमें केवल अकीर्तिही होय यहनहीं है किन्तु औरभी दोषहै कि महारथी जे दुर्योधनादिक ते यह अपने मनमें मानेंगे विचारकरेंगे कि अर्जुन कर्णादिकों की भयसे अर्थात् कर्णादिकों से डरके संग्रामसे निवृत्त होगया और दयाके कारणसे अर्जुन युद्धसे निवृत्तहुआ ऐसा कोई नहीं निश्चयकरेंगे कौनऐसा मानेंगे तिससे कहते हैं कि हे अर्जुन जिन दुर्योधनादिकोंको तू बहुमत होरहा है अर्थात् अर्जुन सबसे अधिक बहुतसे शूरताआदि गुणों करकेयुक्तहै ऐसा हृदयमें समारहा है तो तू ऐसा होकर फिरउन्हीं दुर्योधनादिकों की दृष्टिमें लाघव जो लघुता तिसको प्राप्तहोगा अर्थात् अर्जुन छिछोड़ाथा ऐसा मानेंगे ॥ ३५ ॥

अवाच्यवादांश्चबहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

किञ्च अवाच्यवादानिति अवाच्यवादान् अव्यक्तवादान् च बहूननेकप्रकारान् वदिष्यन्ति तवाहिताः शत्रवः निन्दंतः कुत्सयन्तस्तव त्वदीयं सामर्थ्यं निभृतकवचादियुद्धनिमित्तं तस्मात् ततो निन्दाप्राप्तेर्दुःखाद्दुःखतरं नु किं ततः कष्टतरदुःखं नास्तीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

इतश्च त्वं युद्धादुपरमं माकार्षीरित्याह किञ्चेति ननु भीष्मद्रोणादिवधप्रयुक्तं कष्टतरं दुःखमसहमानो युद्धान्निवृत्तः स्वसामर्थ्यनिन्दादिशत्रुकृतं सोढुं शक्ष्यामीत्याशङ्क्याह तत इति॥ ३६॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्चावाच्यवादानिति अवाच्यान् वादान् वचनानर्हान् शब्दांस्तवाहितास्त्वच्छत्रवो वदिष्यन्ति॥ ३६॥

नवलभाष्य।

और तेरे अहित जेशत्रुहैं तेतेरी सामर्थ्य को निन्दाकरते हुये नहीं कहनेके योग्य जेवाद वचनतिनको कहैंगे तौ तिससे अधिक दुःखतुझ को क्या होगा अर्थात् तू तौ कृपादृष्टिसे युद्धसे निवृत्त होरहाहै और तेरे वैरी लोग यह कहैंगे कि कर्णसे युद्धकरने की अर्जुनमें सामर्थ्य नहींथी इसीसे अर्जुन उपस्थित युद्धको अर्थात् तैयार युद्धको त्यागि भागगया॥ ३६॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥ ३७॥

शङ्करभाष्यम्।

युद्धे पुनः क्रियमाणे कर्णादिभिः किं हतो वेति हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं हतः सन् स्वर्गं प्राप्स्यासि जित्वा कर्णादीन् शूरान् भोक्ष्यसे महीम् उभयथापि तव लाभ एवेत्यभिप्रायः यतएवं तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः जेष्यामि शत्रून् मरिष्यामि वेति निश्चयंकृत्वेत्यर्थः॥३७॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तर्हि युद्धे गुर्वादिवधवशान्मध्यस्था निन्दा ततो निवृत्तौ शत्रुनिन्देत्युभयतः पाशरज्जुरित्याशङ्क्याह युद्धे पुनरिति जये पराजये च लाभध्रौव्याद्युद्धार्थमुत्थानमावश्यकमित्याह तस्मादिति नहि परिशुद्धकुलस्य क्षत्रियस्य युद्धायोद्युक्तस्य तस्मादुपरमः साधीयानित्याह कौन्तेयेति जये पराजये चेत्येतदुभयमेत्युच्यते जयादिनियमाभावेऽपि लाभनियमे फलितमाह यत इति कृतनिश्चयत्वमेव विषदयति जेष्यामीति॥ ३७॥

स्वामिकृतटीका।

यच्चोक्तं नचैतद्विद्म इति तत्राह हतो वेति पक्षद्वयेऽपि तव लाभ एवेत्यर्थः॥ ३७॥

नवलभाष्य।

और युद्धकरैगा तौ दोनोंप्रकारसे तुझको लाभहै सोकैसे इससे भगवान् कहते हैं कि हेअर्जुन जो तू युद्धमें कर्णादिकों करके मारा जायगा तौ स्वर्गको प्राप्तहोगा और जो कर्णादि शूरोंको संग्राममें जीतलेगा तौ जीतके फिर पृथिवीके राज्यको भोगैगा तिससे हेकुन्ती के पुत्र कैतौ मैं शत्रुओंको जीतताही हूं कैफिर संग्राम में मरही जाऊंगा ऐसा निश्चयकरके युद्धके लिये उठ उद्यतहो॥ ३७॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तत्र युद्धं स्वधर्म इत्येवं युध्यमानस्य उपदेशमिमं शृणु सुखदुःखे इति सुखदुःखे समे तुल्ये कृत्वा रागद्वेषावप्यकृत्वे तत् तथा च लाभालाभौ जयाजयौ च समौ कृत्वा ततो युद्धाय युज्यस्व घटस्व नैवं युद्धं कुर्वन् पापफलमवाप्स्यसि इत्येष उपदेशः प्रासंगिकः ॥ ३८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

पापभीरुतया युद्धाय निश्चयं कृत्वा नोत्थातुं शक्नोमीत्याशङ्क्याह तत्रेति युद्धस्यस्व धर्मतया कर्तव्यत्वेसतीति यावत् मुहूर्जीवनमरणादिनिमित्तयोःसुखदुःखयोः समताकरणं कथमिति तत्राह रागद्वेषाविति लाभः तत्तु कोपादिप्राप्तिः अलाभस्तद्विपर्ययः न्यायेन युद्धेनापरिभूतेन परस्य परिभवो जयस्तद्विपर्ययस्त्वजयः तयोः लाभालाभयोर्जयाजययोश्च समताकरणं समानमेव रागद्वेषावकृत्येत्येतद्दर्शयितुं तथेत्युक्तं यथोक्तोपदेशवशात् परमार्थदर्शनप्रकरणे युद्धकर्तव्यतोक्तिः समुच्चयपरत्वं शास्त्रस्य प्राप्तमित्याशङ्क्याह एष इति क्षत्रियस्य तव ,धर्मभूतयुद्धकर्तव्यतानुवादप्रसंगागतत्वादस्योपदेशस्य नानेन मिथो समुच्चयः सिध्यतीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

स्वामिकृतटीका।

यदप्युक्तं पापमेवाश्रयेदस्मानिति तत्राह सुखदुःखे इति सुखदुःखे समे कृत्वा तथा तयोश्च कारणभूतौ लाभालाभावपि तयोरपि कारणभूतौ जयाजयावपि समौ कृत्वा एतेषां समत्वे कारणं हर्षविषादराहित्यं युज्यस्व सन्नद्धो भव सुखदुःखाद्यभिलाषं हित्वा स्वधर्मबुद्ध्या युध्यमानः पापं न प्राप्स्यसीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

नवलभाष्य।

और हेअर्जुन युद्धमेराधर्महै ऐसीबुद्धिसे युद्धकरताहुआ जो तू तिसको जो उपदेश तिसको सुन लाभ अलाभके फल जो सुख और दुःख इनको समानकरके अर्थात् सुखमें रागको त्यागकरके औ दुःखमें द्वेषको त्यागकरके तैसेही सुखदुःखके कारणभूत जो लाभ औ अलाभ इनको समानकरके अर्थात् इनमें सुखदुःखोंको नहींमानके औ लाभ अलाभके भी कारण जो जय औ पराजय अर्थात् जीत हारि इनकोभी समानकरके अर्थात् जय में हर्षकात्यागकरके और पराजयमें विषादको नहींकरके केवल मेराधर्म है इससे करनाही उचितहै इसरीतिसे तू युद्धकरनेके लिये यत्नकर तौ इस रीतिसे युद्धकरताहुआ तू पापको नहींप्राप्तहोगा इससे जो अर्जुननेकहाथा कि इन दुर्योधनादिकोंको मारके मुझको पापही होगा तिसकाभी उत्तर इस उपदेश से हुआ ॥ ३८ ॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

शोकमोहापनयनाय लौकिको न्यायः स्वधर्ममपि चावेक्ष्येत्याद्यैः श्लोकैरुक्तो नतु तात्पर्य्येण परमार्थदर्शनं त्विह तच्चोक्तमुपसंह्रियते एषा तेऽभिहितेति शास्त्रविषयविभागप्रदर्शनाय इह हि दर्शिते पुनः शास्त्रविषयविभागे उपरिष्टात् ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्म्मयोगेन योगिनामिति निष्ठाद्वयविषयं शास्त्रंसुखं प्रवर्त्तिष्यति श्रोतारश्च विषयविभागेन सुखं ग्रहिष्यन्तीत्यत आह एषा ते इति एषा ते तुभ्यमभिहितोक्ता सांख्ये परमार्थवस्तु विवेकविषये बुद्धिः ज्ञानं साक्षात् शोकमोहादि संसारहेतुदोषनिवृत्तिकारणं योगे तु तत् प्राप्त्युपाये निःसंगतया द्वन्द्वप्रहरणपूर्वकमीश्वराराधनार्थे कर्मयोगे कर्मानुष्ठाने समाधियोगे च इमामनन्तरमेवोच्यमानां बुद्धिं शृणु ताञ्च बुद्धिं स्तौति प्ररोचनार्थं बुद्ध्या यया योगविषयया युक्तो हे पार्थ कर्मबन्धं कर्मैव धर्माधर्माख्यो बंधः कर्मबन्धः तं प्रहास्यसीश्वरप्रसादनिमित्तज्ञानप्राप्ते रित्यभिप्रायः॥ ३९॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ननु स्वधर्ममपि चावेक्ष्येत्यादि श्लोकैर्न्यायावष्टम्भेण शोकमोहापनयस्य तात्पर्य्येणोक्तत्वात् तस्मिन्नुपसंहर्त्तव्ये किमिति परमार्थदर्शनमुपसंह्रियते तत्राह शोकेति स्वधर्ममपीत्यादिभिरतीतश्लोकैः शोकमोहयोः स्वजनमरणगुर्वादिबधशङ्कानिमित्तयोः सम्यग्ज्ञानप्रतिबन्धकयोरपनयार्थं वर्णाश्रमवतं धर्ममनुतिष्ठतः स्वर्गादि सिध्यति नान्यथेत्यन्वयव्यतिरेकात्मको लोकप्रसिद्धो न्यायो यद्यपि दर्शितस्तथापि नासौ तात्पर्येणोक्त इत्यर्थः किं तर्हि तात्पर्येणोक्तं तदाह परमार्थेति नत्वेवाहं जातुनासमित्यादि सप्तम्या परामृश्यते उक्तं न जायते म्रियते वा कदाचिन्नेत्यादिनोपपादितमित्यर्थः उपसंहारप्रयोजनमाह शास्त्रेति तस्य वस्तुद्वारा विषयो निष्ठाद्वयं तस्य विभक्तस्य तेनैव विभागेन प्रदर्शनार्थं परमार्थदर्शनोपसंहार इत्यर्थः ननु किमित्यत्र शास्त्रस्य विषयविभागः प्रदर्श्यते उत्तरत्रैव तद्विभागप्रवृत्तिप्रतिपत्त्योः सम्भवादिति तत्राह इहहीति शास्त्रप्रवृत्तेःश्रोतृप्रतिपत्तेश्च सौकर्य्यार्थमादौ विषयविभागसूचनमित्यर्थः उपसंहारस्य फलवत्त्वमेवमुक्त्वा तमेवोपसंहारमवतारयति अत आहेति परमार्थात्मतत्वविषयां ज्ञाननिष्ठामुक्तामुपसंहृत्य वक्ष्यमाणां संगृह्णाति योगे त्विति तामेवबुद्धिं विशिष्टफलवत्त्वेनाभिष्टौति बुद्ध्येतितत्रोपसंहारभागं विभजते एषेत्यादिना बुद्धिशब्दस्यान्तःकरणविषयत्वं व्यावर्त्तयति ज्ञानमिति तस्यसहकारि निरपेक्षस्य विशिष्टफलवत्त्वमाचष्टे साक्षादिति शोकमोहौ रागद्वेषौ कर्तृत्वंभोक्तृत्वमित्यादिरनर्थः संसारस्तस्य हेतुर्दोषः स्वाज्ञानं तस्यनिवृत्तौ निरपेक्षंकारणं ज्ञानमज्ञाननिवृत्तौ ज्ञानस्यान्वयव्यतिरेक समधिगतसाधनत्वादित्यर्थः योगेत्विमामित्यादिव्याकुर्वन् योगशब्दस्यप्रकृते चित्तवृत्तिनिरोधविषयत्वं व्यवच्छिनत्तितत्प्राप्तीति प्रकृतमुक्तमुपयुक्तं ज्ञानं तत्पदेन परामृश्यते ज्ञानोदयोपायमेव प्रकटयति निःसंगतयेति फलाभिसन्धिवैधुर्य्यं निःसंगत्वं बुद्धिस्तुतिप्रयोजनमाह प्ररोचनार्थमिति अभिष्टुता हि बुद्धिः श्रद्धातव्या सत्यनुष्ठातार मधिकरोति तेनस्तुतिरर्थवतीत्यर्थः कर्मानुष्ठानविषयबुद्ध्या कर्मबन्धस्य कुतो निवृत्तिर्नहि तत्त्वज्ञानमन्तरेण समूलं कर्म हातुं शक्यमित्याशङ्क्याह ईश्वर इति॥ ३९॥

स्वामिकृतटीका।

उपदिष्टं ज्ञानयोगमुपसंहरंस्तत्साधनंकर्मयोगं प्रस्तौतिएषेति सम्यक्ख्यायतेप्रकाश्यते वस्तु तत्त्वमनयेति संख्या सम्यग्ज्ञानं तस्यां प्रकाशमानमात्मतत्त्वं सांख्यं तस्मिन् करणीयाबुद्धिरेषा तवाभिहिता एवमभिहितायामपि तव चेदात्मतत्त्वमपरोक्षं नभवति

तद्धन्तःकरणशुद्धिद्वारात्मतत्त्वापरोक्षार्थं कर्मयोगेत्विमां बुद्धिं शृणु यया बुद्ध्या युक्तः परमेश्वरार्पितकर्मयोगेन शुद्धान्तःकरणः संतत्प्रसादलब्धापरोक्षज्ञानेन कर्मात्मकंबन्धं प्रकर्षेण हास्यसि त्यक्ष्यसि ॥ ३९ ॥

नवलभाष्य।

अब यहां शोक मोहके दूरकरनेके लियेलौकिकभी युक्ति [स्वधर्ममपिचावेक्ष्य] इसश्लोकसे लेकरके [सुखदुःखेसमेकृत्वा] यहांतक आठश्लोकोंकरके कहीहै कुछतात्पर्य्यकरके परमार्थदर्शन अर्थात् परमार्थवस्तुज्ञान इन श्लोकोंमें नहींकहाहै और इनसेपूर्व जो कहा आत्मज्ञान तिसीका उपसंहार अर्थात् समाप्तिदेखाते हुए भगवान् कहते हैं कि [एषातेभिहिता] ज्ञान और कर्मयोग इनदोशास्त्रोंके विषयके विभागको दिखानेके लिये यहश्लोक है क्योंकि जब दोनों शास्त्रोंका विषय विभाग दिखायागया तो आगे कहा जायगा जो[ज्ञानयोग और कर्मयोगके विषयकी अपेक्षाकरनेवालाजो][ज्ञानयोगेनसांख्यानांकर्मयोगेनयोगिनां]इत्यादि श्लोकरूपशास्त्र सो सुखपूर्वक प्रवृत्तहोगा और श्रोतालोगभी विषयविभागपूर्वक सुखसे उसके अर्थको ग्रहण करेंगे इसहेतुसे कहते हैं कि [एषातेइति] हे अर्जुन सांख्य के विषय में अर्थात् परमार्थतत्त्वविवेकके विषयमें यहबुद्धि अर्थात् शोकमोहादिसंसारहेतु दोषोंकी निवृत्तिमें कारणभूत जोज्ञान सोमैंने तुम्हारेअर्थकहा औरअबइसके अनन्तर योगके विषयमें कहीजाती जो बुद्धि तिसको सुनिये अर्थात् उस ज्ञानकीप्राप्तिमें उपायभूत जो निस्संगताकरके नामफलकी इच्छाका त्याग करके और शीत उष्ण सुखदुःखादि द्वन्द्वोंका सहनहै प्रथम जिसमें ऐसा जो ईश्वरके आराधन बुद्धिकरके अपना अपनाको विहितकर्मों का अनुष्ठान उसको योगकहते हैं अथवा समाधिको योगकहते हैं इसदोनोंप्रकारके योग के विषयमें यह मुझकरके कहीजाती जो बुद्धि तिसकोसुनो और हे अर्जुन जिसबुद्धिकरके युक्त तुम कर्मरूपबन्धनको त्यागकरदेवोगे अर्थात् ऐसेकर्मानुष्ठानके करनेसे ईश्वरप्रसादसे प्राप्तहुआ जो ज्ञान तिसकरकेकर्मबन्धनको त्यागदेवोगे ॥ ३९ ॥

नेहाऽभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्चान्यत् नेहाभीति नेह मोक्षमार्गे कर्मयोगे अभिक्रमनाशोऽभिक्रमणमभिक्रमः प्रारम्भः तस्य नाशो नास्ति यथा कृष्यादेर्योगविषये प्रारम्भस्य नानैकान्तिकफलत्वमित्यर्थः किञ्च नापि चिकित्सावत् प्रत्यवायो विद्यते किन्तु भवति स्वल्पमप्यस्य योगधर्मस्यानुष्ठितं त्रायते रक्षति महतः संसारभयात् जन्ममरणादिलक्षणात् ॥ ४० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

ननु कर्मानुष्ठानस्यानैकान्तिकफलत्वेनाकिञ्चित्करत्वादनेकानर्थकलुषितत्वेन दोष

वत्वाच्च योगबुद्धिरपि न श्रद्धेयेति तत्राह किञ्चेति अन्यच्च किञ्चिदुच्यते कर्मानुष्ठान स्यावश्यकत्व तत् कारणमिति यावत् कर्मणा सह समाधेरनुष्ठातुमशक्यत्वादनैकान्तरा य सम्भवात् तत्फलस्य दीर्घकालाभ्याससाध्यस्यैकस्मिन् जन्मन्यसम्भवादर्थाद्योगीभ्रंश्ये तानर्थे च निपतेदित्याशङ्क्याह नेहेति प्रतीकत्वेनोपात्तस्य नकारस्य पुनरन्वयानुगुणत्वेन नास्तीत्यनुवाद: यत्तु कर्मानुष्ठानस्यानैकान्तिकफलत्वेनाकिञ्चित् करत्वमुक्तं तत् दूषय ति यथेति कृषिवाणिज्यादेरारंभस्यानियतफलं संभावनामात्रोपनीतत्वात्तथाकर्मणा वै दिके प्रारंभस्य फलमनियतं युज्यते शास्त्रविरोधादित्यर्थ: यत्तूक्तमनेकानर्थकलुषितत्वेन दोषवदनुष्ठानमिति तत्राह किञ्चेति इतोऽपि कर्मानुष्ठानमावश्यकमिति प्रतिज्ञाय हेत्व न्तरमेव स्फुटयति नाप्नोति चिकित्सायां हि क्रियमाणायां व्याध्यतिरेको वा मरणं वा प्रत्यवायोऽप संभाव्यते कर्मपरिपाकस्य दुर्विवेकत्वात्न तथा कर्मानुष्ठाने दोषोऽस्ति वि हितत्वादित्यर्थ: संप्रति कर्मानुष्ठानस्य फलं पृच्छति किंत्विति उत्तरार्द्धं व्याकुर्वन्विव चितं फलं कथयति स्वल्पमपीति सम्यग् ज्ञानोत्पादनद्वारेण रक्षणं विवक्षितं सर्वपाप प्रसक्तोऽपि ध्यायन्निमिषच्युतं भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावन इति स्मृतेरित्यर्थ: ॥ ४० ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु कृष्यादिवत् कर्मणां कदाचिद्विघ्नबाहुल्येन फले व्यभिचारान्मंत्राद्यंगवैगुण्ये च प्रत्यवाय संभवात् कुत: कर्मबन्धप्रहाणं तत्राह नेहेति इह निष्काम कर्मयोगेऽभिक्रम स्य प्रारंभस्य नाशो निष्फलत्वं नास्ति प्रत्यवायश्च न विद्यते ईश्वरोद्देश्येनैव विघ्नवै गुण्याद्यसंभवात् किञ्चास्य धर्मस्य ईश्वराराधनार्थकर्मयोगस्य स्वल्पमपि कृतं महतो भयात् संसारलक्षणात् त्रायते रक्षति न तु काम्य कर्मवत् किञ्चिदंगवैगुण्यादिना नैष्फ ल्यमस्येत्यर्थ: ॥ ४० ॥

नवलभाष्य।

और सकामकर्मानुष्ठान की अपेक्षासे इस निष्कामकर्मयोगमें विशेषता भीहै तिसको भगवान् कहतेहैं कि हे अर्जुन इसमोक्षमार्ग्गके निष्कामकर्म योगमें अभिक्रम जोप्रारम्भ तिसकानाश नहींहोताहै अर्थात् जैसेकृषीआदि खेती आदि लौकिककर्मोंका वृष्ट्यादिकके नहींहोनेसे जो कुछप्रारम्भकिया उसका नाशहोजाताहै तैसे इस निष्कामकर्मयोगके प्रारम्भका नाशनहीं और जैसे औषध दवाई के कर्मसे आजीविकाकरने से शास्त्रमें दोषकहा है तैसे इसनिष्कामकर्ममें दोषनहीं और इसईश्वराराधन लक्षणनिष्कामकर्म का थोड़ाभी अंश बड़ाभारी जो जन्ममरणरूप संसार की भय तिससे रक्षा करताहै ४०

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखाह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

येऽयं सांख्ये बुद्धिरुक्ता योगे च वक्ष्यमाणलक्षणा सा व्यवसायेति व्यवसायात्मिका निश्च यस्वभावा एकैव बुद्धिरितरविपरीतबुद्धिशाखाभेदस्यबाधिका सम्यक् प्रमाणजनितत्वादिह श्रे-

यो मार्गे हे कुरुनन्दन याः पुनरितरा बुद्धयो यासां शाखाभेदप्रचारवशादनन्तोऽपरोऽनुपरतः संसारोऽपि नित्यप्रततो विस्तीर्णो भवति प्रमाणजनितविवेकबुद्धिनिमित्तवशाच्चोपरतास्वनन्तभेदबुद्धिषु संसारोऽप्युपरमते ता बुद्धयो बहुशाखा बह्वः शाखा यासां ता बहुशाखा बहुभेदा इत्येतत् प्रतिशाखाभेदेन ह्यनन्ताश्च बुद्धयः केषामव्यवसायिनां प्रमाणजनितविवेकबुद्धिरहितानाम् इत्यर्थः ॥ ४१ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

ननु बुद्धिद्वयातिरिक्तानि बुद्ध्यन्तराण्यपि कणादादि शास्त्रप्रसिद्धानि विद्यन्ते तथा च कथं बुद्धिद्वयमेव भगवतोपदिष्टमिति तत्राह येयमिति सैवैका प्रमाणभूता बुद्धिरित्याह व्यवसायात्मिकेति बुद्ध्यन्तराण्यविवेकमूलान्यप्रमाणानीत्याह बहुशाखा ह्येति व्यवसायात्मिकाया बुद्धेः श्रेयोमार्गे प्रवृत्ताया विवक्षितं फलमाह इतरेति प्रकृतबुद्धिद्वयापेक्षया इतरा विपरीताश्चाप्रमाणजनिताः स्वकपोलकल्पिता या बुद्धयस्तासां शाखाभेदः संसारहेतुस्तस्य बाधिकेति यावत् तत्र हेतुः सम्यगिति निर्दोषवेदवाक्यसमुत्थत्वादुक्तमुपायोपेयभूतं बुद्धिद्वयं साक्षात् पारम्पर्याभ्यां संसारहेतुबाधकमित्यर्थः उत्तरार्द्धं व्याचष्टे याः पुनरिति प्रकृतबुद्धिद्वयापेक्षयार्थान्तरत्वमितरत्वं तासामनर्थहेतुत्वं दर्शयति यासामिति अप्रमाणिकबुद्धीनां प्रसक्तानुपसक्त्या जायमानानामतीव बुद्धिपरिणामविशेषाः शाखाभेदास्तेषां प्रचारः प्रवृत्तिः तद्वशादित्येतत् अनन्तत्वं सम्यग्ज्ञानमन्तरेण निवृत्तिविरहितत्वम् अपरत्वंकार्यस्यैव सतावस्तुभूतकारणविरहितत्वम्अनुपरतत्वंस्फोरयतिनित्येति कथं तर्हि तन्निवृत्त्या पुरुषार्थपरिसमाप्तिस्तत्राह प्रमाणेति अन्वय व्यतिरेकाख्येनानुमानेनागमेन च पदार्थपरिशोधनपरेण परिनिष्पन्ना विवेकात्मिका या बुद्धिस्तां निमित्तीकृत्य समुत्पन्नसम्यग्बोधानुरोधात् प्रकृताविपरीतबुद्धयो व्यावर्त्तन्ते तास्वसंख्यातासु व्यावृत्तासुसतीषु निरालम्बनतया संसारोऽपि स्यातुसशक्नुवन्नुपरतो भवतीत्यर्थः या पुनरित्यपक्रान्ता तत्त्वज्ञानापनोद्या संसारास्पदीभूता विपरीतबुद्धिरनुक्रामति ता बुद्धय इति बुद्धीनां वृक्षस्येव कुतो बहुशाखित्वं तत्राह बहुभेदा इत्येतदिति एकैकां बुद्धिं प्रतिशाखाभेदोऽवान्तरविशेषस्तेन बुद्धीनामसंख्यत्वं प्रख्यातमित्याह प्रतिशाखेति बुद्धीनामानन्त्यप्रसिद्धं प्रद्योतनार्थो हि शब्दः सम्यग्ज्ञानवतां यथोक्त बुद्धिभेदभाक्त्वमप्रसिद्धमित्याशङ्क्य प्रत्याह केषामित्यादिना ॥ ४१ ॥

स्वामिकृतटीका।

कुत इत्यपेक्षायामुभयोर्वैषम्यमाह व्यवसायात्मिकेति इह ईश्वराराधनलक्षणे कर्मयोगे व्यवसायात्मिका परमेश्वरभक्त्यैव ध्रुवं तरिष्यामीति निश्चयात्मिका एकैव एकनिष्ठैव बुद्धिर्भवति अव्यवसायिनान्तु ईश्वराराधनबहिर्मुखाणां कामिनां कामानामानन्त्यादनन्तास्तत्रापि कर्मफलगुणफलत्वादि प्रकारभेदाद् बहुशाखाश्च बुद्धयो भवन्ति ईश्वराराधनार्थे हि नित्यं नैमित्तिकञ्च कर्म किञ्चिदवैगुण्येऽपि न नश्यतियथा शक्नुयात् तथा कुर्यादिति हि तद्विधीयते नच वैगुण्यमपीश्वरोद्देश्यनैव वैगुण्योपशमात् नतु तथा काम्यं कर्म अतो महद्वैषम्यमिति भावः ॥ ४१ ॥

नवलभाष्य ।

और हे अर्जुन जो यहां मोक्षमार्गमें सांख्य जो आत्मानात्मविवेक तिसके विषयमें जो बुद्धिकही और ईश्वराराधनरूप निष्कामकर्म योगमें वा

समाधिरूपयोगमेंजोबुद्धि कहीजावैगी सोऽव्यवसायात्मिकाबुद्धि अर्थात् निश्चयस्वभावा बुद्धि एकही है अर्थात् एकही प्रकारकी है और वह विपरीत बुद्धिके जो शाखाभेद तिनकेबाधकरनेवाली है क्योंकि जिससे वह व्यवसायात्मिकाबुद्धिप्रमाणो से प्रकटहुईहै इससे नहींबदलसक्ती है सदा एकहीप्रकारकी रहतीहै और जे पुरुष अव्यवसायी हैं अर्थात् प्रमाणसे उत्पन्नहुई जो विवेकयुक्त बुद्धि तिसकरके रहितहैं तिनपुरुषोंकी बुद्धि बहुशाखहोती हैं अर्थात् शाखाओंमेंसे शाखा जैसे वृक्षकी निकलती हैं तैसेही उस निश्चय रहित बुद्धिमेंसे बहुततरहकी तर्क कुतर्क युक्त बुद्धियां निकलाहीकरती हैं इसीसे वे अनन्त हैं कुछ ठौरठीकनहीं अर्थात् इतनीही हो चुकीहैं औरन होवैं यहकुछ नियमनहीं फिर उनबुद्धियोंके कारणसे संसारभी अनन्तहोताहै कभी निवृत्तनहींहोता है और जैसे उनडालियोंके बहुतहोनेसे वृक्षका विस्तार बड़ाहोजाताहै तैसे संसारभी विस्तारको प्राप्तहोताहै और प्रमाण से उत्पन्न जो निश्चयात्मिका विवेकवती बुद्धि तिसके वशसे जबवे बहुत प्रकारकी बुद्धियां निवृत्त होजातीहैं तौ संसारभी उसविवेकी पुरुषका निवृत्तहोजाताहै ॥ ४१ ॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्य विपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥

शङ्करभाष्यम्।

येषां व्यवसायात्मिका बुद्धिर्नास्ति तेषां यामिमामिति यामिमां वक्ष्यमाणां पुष्पितां पुष्पित इववृक्षः शोभमानां श्रूयमाणरमणीयां वाचं वाक्यलक्षणां प्रवदन्ति के अविपश्चितः अल्पमेधसोऽविवेकिन इत्यर्थः वेदवादरता इति वेदवादरताः बह्वर्थवादफलसाधनप्रकाशकेषु वेदवाक्येषु रताः हे पार्थ नान्यत् स्वर्गपश्वादिफलसाधनेभ्यः कर्मभ्योऽस्तीत्येवं वादिनो वदनशीलाः ॥ ४२ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यदिसांख्ययोगरूपैकैव प्रमाणभूता बुद्धिस्तर्हि सैव चित्ते किमिति स्थिरा न भवति तत्राह येषामिति तेषामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्ति तयापहृतचेतसां कामिनां कामवशान्निश्चयात्मिका बुद्धिर्न प्रायः स्थिरा भवतीत्याह यामिति इमामित्यध्यनविध्युपात्तत्वेन प्रसिद्धत्वं कर्मकाण्डरूपा या वाचो विवक्ष्यते वक्ष्यमाणत्वं क्रियाविशेषबहुलामित्यादौ द्रष्टव्यं किंशुको हि पुष्पशाली शोभमानोऽनुभूयते न पुनः रूपभोग्यफलभागीलक्ष्यते तथेयमपि कर्मकाण्डात्मिका श्रूयमाणदशायां रमणीया वागुपलभ्यते साध्यसाधनसंबंधप्रतिभानान्नत्वेषां निरतिशयफलभागिनी भवतिकर्मानुष्ठानफलस्यानित्यत्वादितिमत्वाह पुष्पितामिति वाक्यत्वेन लक्ष्यते अर्थवत्वप्रतिभानाद्वस्तुतस्तु न वाक्यमर्थाभासत्वादित्याह वाक्यलक्षणामिति प्रवक्तृणां वेदवाक्यतात्पर्यपरिज्ञानाभावं सूचयति अविपश्चित इति वेदवादो वेदवाक्यानि तानि च बहूनामर्थवादानां फलानां साधनानाञ्च विधिशेषाणां प्रकाशकानि तेषु रतिराशक्तिस्तन्निष्ठत्वं तद्वत्त्वमपि तेषां विशेषणमित्याह वेद

वादेति कर्मकाण्डनिष्ठत्वं फलं कथयन्ति नान्यदिति ईश्वरो वा मोक्षो वा नास्तीत्येवं वदन्तो नास्तिकाः सम्यग्ज्ञानवन्तो न भवन्तीत्यर्थः ॥ ४२ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ननु कामिनोऽपि कष्टान् कामान् विहाय व्यवसायात्मिकामेव बुद्धिं किमिति न कुर्वन्ति तत्राह यामिमामिति यामिमां पुष्पितां विषलतावदापाततो रमणीयां प्रकृष्टां परमार्थफलपरामेव वदन्ति वाचं स्वर्गादिफलश्रुतिं तेषां तया वाचापहृतचेतसां व्यवसायात्मिका बुद्धिर्न समाधौ विधीयत इति तृतीयेनान्वयः किमिति तथा वदन्ति यतोऽविपश्चितो मूढाः तत्र हेतुर्वेदवादरता इति वेदे ये वादा अर्थवादाः अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति तथा अपामसोममृता अभूमेत्याद्यास्तेष्वेवरताः प्रीतास्त एवातः परमन्यदीश्वरतत्त्वं प्राप्यं नास्तीति वदनशीलाः ॥ ४२ ॥

नवलभाष्य ।

और हे अर्जुन जिनपुरुषोंकी निश्चयात्मिका बुद्धि नहींहै और वेदमें ये वादहैं अर्थात् स्वर्गादिफल और पशुआदि साधनोंकरके प्रकाशित ये वेदोंके वाक्य तिनमें प्रीतियुक्तहोरहे हैं इसीसे अविपश्चित् अविवेकी हैं ऐसे जे पुरुष ते पुष्पोंकरके युक्त वृक्षकेसदृश प्रकाशमानजो कर्मकाण्ड के प्रतिपादनकरनेवाली वेदकीवाणी उसीको सत्यकहते हैं उससेपरे और वेदान्तकी वाणीको मानतेही नहीं हैं ॥ ४२ ॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्य्यगतिम्प्रति ॥ ४३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

ते च कामात्मेति कामात्मानः कामस्वभावाः कामपरा इत्यर्थः स्वर्गेति स्वर्गपराः स्वर्गः परः पुरुषार्थो येषां ते स्वर्गपराः स्वर्गप्रधानाः जन्मकर्मफलप्रदां कर्मणः फलं कर्मफलं जन्मैव कर्मणः फलं तत् प्रददातीति जन्मकर्मफलप्रदा तां वाचं प्रवदन्तीत्यनुषज्यते क्रियाविशेष बहुलां क्रियाणां विशेषाः क्रियाविशेषास्ते बहुला यस्यां वाचि तां स्वर्गपशुपुत्राद्यर्थाः यया वाचा बाहुल्येन प्रकाश्यन्ते भोगैश्वर्य्यगतिं प्रतिभोगश्च ऐश्वर्य्यञ्च भोगैश्वर्य्ये तयोर्गतिः प्राप्तिः भोगैश्वर्य्यगतिः तां प्रतिसाधनभूतास्ते क्रियाविशेषाः तद्बहुलां तां वाचं प्रवदन्तो मूढाः संसारे परिवर्त्तन्त इत्यभिप्रायः ॥ ४३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

प्रकृतान् प्रवक्तॄनविवेकिनो व्यवसायात्मिका बुद्धिभाक्त्वासम्भवसिद्ध्यर्थं विध्यन्तरेण विशिनष्टि ते चेति तेषां संसारपरिवर्तमानपरिदर्शनार्थं प्रस्तुतां वाचमेव विशिनष्टिजन्मेति ननु पुंसां कामस्वभावत्वमयुक्तं चेतनस्येच्छावतस्तदात्मत्वानुपपत्तेरिति तत्राहकामपरा इति तत्परत्वं तत्तत्फलार्थित्वेन तत् तदुपायेषु कर्मस्वेव प्रवृत्तया कर्मसन्यासपूर्वकात् ज्ञानाद्बहिर्मुखत्वं ननु कर्मनिष्ठानामपि परमपुरुषार्थापेक्षया मोक्षोपाये ज्ञाने भवत्याभिमुख्यमिति नेत्याह स्वर्गेति तत्परत्वं तस्मिन्नेवासक्ततया तदतिरिक्तपुरुषार्थराहित्यनिश्चयवत्त्वम् उच्चावचमध्यमदेहप्रभेदग्रहणं जन्मवाचो यथोक्तं फलप्रदत्वमप्रमाणिकमित्य

शङ्कानुष्ठानद्वारा तदुपपत्तिरित्याह क्रियेति क्रियाणामनुष्ठानानां यागदानादीनां विशेषादेशकालाधिकारप्रयुक्ताः सप्राद्यानेकाङ्गलक्षणास्तखल्वस्यां वाचिप्राचुर्य्येण प्रतिभान्तीत्यर्थः कथं यथोक्तायां वाचि क्रियाविशेषाणां बाहुल्येनावस्थानमित्याशङ्क्य प्रकाश्यत्वेनैतद्दर्शयति स्वर्गेति तथापितेषां मोक्षोपायत्वोपपत्तेस्तन्निष्ठानां मोक्षाभिमुख्यं भविष्यति नेत्याह भोगेति यथोक्तां वाचमभिवदतां पर्य्यवसानं दर्शयति तद्बहुलामिति ॥४३॥

स्वामिकृतटीका।

अतएव कामात्मन इति कामात्मानः कामाकुलितचित्ता अतः स्वर्ग एव पराः पुरुषार्थोयेषां ते जन्म च तत्र कर्माणि च तत्फलानि च प्रददातीति तथा तां भोगैश्वर्य्ययोर्गतिं प्राप्तिं प्रति साधनभूता ये क्रिया विशेषास्ते बहुलायस्यां वा प्रवदन्तीत्यनुषङ्गः॥४३॥

नवलभाष्य।

और फिर वे पुरुष कामात्माहैं अर्थात् नानाप्रकारकेविषयोंहीमें जिनका मनरमरहाहै और स्वर्गही है परमपुरुषार्थ जिनको अर्थात् सिवायस्वर्गके उससे अधिक उत्तमपदार्थ को नहीं जानते हैं और जन्मकरके कर्म फल के देनेवाली उसवेदकी बाणीको कहते हैं औरभोग और ऐश्वर्य इनकी प्राप्ति में साधन भूत जो नाना प्रारकी क्रिया तेई हैं बहुत जिस बाणीमें ऐसीवेदकी बाणीको कहते हैं अर्थात् सारेवेद भरेमें भोग ऐश्वर्यके देने वाली क्रियाही तरह तरहकी कही हैं और कुछ नहीं वेदने कहाहै ऐसा निश्चय करके वे मूढ़ संसारही में परिभ्रमण कियाकरते हैं ॥ ४३ ॥

भोगैश्वर्य्य प्रसक्तानां तयाऽपहृत चेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिःसमाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तेषाञ्च भोगेति भोगैश्वर्य्यप्रसक्तानां भोगः कर्त्तव्यमैश्वर्य्यञ्चेति भोगैश्वर्य्ययोरेव प्रवणर्तां तदात्मभूतानां तया क्रियाविशेषबहुलया वाचा अपहृतचेतसामाच्छादितविवेकप्रज्ञानां व्यवसायात्मिका सांख्ये योगे वा या बुद्धिः समाधौ समाधीयतेऽस्मिन् पुरुषोपभोगाय सर्वमिति समाधिरन्तः करणं बुद्धिः तास्मिन् समाधौ न विधीयते न स्थितिर्भवतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ननुकर्मकाण्डनिष्ठानां कर्मानुष्ठायिनामपि बुद्धिसुद्धिद्वारेणान्तःकरणे साध्यसाधनभूतबुद्धिद्वयसमुदायसम्भवादतो मोक्षो भविष्यति नेत्याह तेषाञ्चेति तदात्मभूतानां तयोरेवभोगैश्वर्य्ययोरात्मकर्तव्यत्वेनारोऽपितयोरभिनिविष्टे चेतसि तदात्म्याध्यासवतां बहिर्मुखाणामित्यर्थः तथापि शास्त्रानुसारिण्या विवेकप्रज्ञया व्यवसायात्मिका बुद्धिस्तेषामुदेष्यतीत्याशङ्क्याह तयेति ननु समाधिःसम्प्रज्ञाता सम्प्रज्ञातभेदेन द्विधोच्यते तत्र बुद्धिद्वयविधिरप्रसक्ता सन् कथं निषिध्यते तत्राह समाधीयत इति ॥ ४४ ॥

स्वामिकृतटीका।

ततश्चभोगैश्वर्य्येति भोगैश्वर्य्ययोः प्रसक्तानामभिनिविष्टानांतया पुष्पितया वाचापहृत

मावृष्टचेतो येषां समाधिश्चित्तैकाग्र्यं परमेश्वराभिमुखत्वमिति यावत् तस्मिन्निश्चयात्मिकाबुद्धिर्न विधीयते कर्मकर्त्तरि प्रयोगः सा नोत्पद्यत इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

नवलभाष्य ।

इसप्रकार भोग और ऐश्वर्य्य इनमें प्रसक्त अर्थात् प्रीतियुक्त और उस क्रियाविशेषके प्रतिपादनकरनेवाली वाणीकरके आच्छादित होगई है विवेकबुद्धि जिन्होंकी ऐसे जे पुरुष हैं तिन्होंकी निश्चयात्मिकाबुद्धि अन्तःकरणमें स्थिरनहीं होती है ॥ ४४ ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

ये एवं वेकबुद्धिरहिताः तेषां कामात्मनां यत् फलं तदाह त्रैगुण्येति त्रैगुण्यविषयाः त्रैगुण्यं संसारो विषयः प्रकाशयितव्यो येषां ते वेदास्त्रैगुण्यविषयास्त्वन्तु निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन निष्कामो भवस्वर्थः निर्द्वन्द्वः सुखदुःखहेतुःसप्रतिपक्षौ पदार्थौ द्वन्द्वशब्दवाच्यौ ततो निर्गतो निर्द्वन्द्वो भवत्वं निससत्त्वस्थः सत्त्वगुणाश्रितो भव तथा निर्योगक्षेमोऽनुपात्तस्योपार्जनं योग उपात्तस्य रक्षणं क्षेमः योगक्षेमप्रधानस्य श्रेयसि प्रवृत्तिर्दुष्करा इसतो निर्योगक्षेमो भवात्मवानप्रमत्तश्च भव एष तवोपदेशः स्वधर्ममनुतिष्ठतः ॥ ४५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

अविवेकिनामपि वेदाभ्यासवतां विवेकबुद्धिरुदेष्यतीत्याशङ्क्याह यएवमिति तर्हि वेदार्थतया कामात्मता प्रशस्तेत्याशङ्क्याह निस्त्रैगुण्य इति भवेति पदं निर्द्वन्द्वादि विशेषणेष्वपि प्रत्येकं संबध्यते त्रयाणां सत्वादीनां गुणानां पुण्यपापव्यामिश्रकर्म तत्फलसम्बन्धलक्षणः समाहारस्त्रैगुण्यमित्यंगीकृत्य व्याचष्टे संसार इति वेदशब्देनात्र कर्मकाण्डमेवगृह्यते तदभ्यासवतां तदर्थानुष्ठानद्वारा संसारध्रौव्यान्नविवेकावसरोऽस्तीत्यर्थः तर्हि संसारपरिवर्जनार्थं विवेकसिद्धये किं कर्तव्यमित्याशङ्क्याह त्वंत्विति कथं निस्त्रैगुण्यो भवेतिगुणत्रयस्य राहित्यं विधीयते नित्यसत्वस्थो भवति वाक्यशेषविरोधादित्याशङ्क्याह निष्काम इति सम्प्रतिपक्षत्वं परस्परविरोधित्वं पदार्थौ शीतोष्णादिलक्षणौ निष्कामत्वे द्वन्द्वान्निर्गतत्वंशीतोष्णादिसहिष्णुत्वंहेतुमुक्त्वातत्रापि हेत्वपेक्षायांसदासद्गुणाश्रितत्वं हेतुमाहनित्येति योगक्षेमव्यावृत्तचेतसो रजस्तमोभ्यामसंस्पृष्टे सत्वमात्रे समाश्रितत्वमाशङ्कामित्याशङ्क्याह तथेति योगक्षेमयोर्जीवनहेतुतया पुरुषार्थसाधनत्वान्निर्योगक्षेमो भवेति कुतोविधिरित्याह योगेति योगक्षेमप्रधानत्वं सर्वस्य स्वारसिकमिति ततो निर्गमनमशक्यमित्याह आत्मवानिति अप्रमादो मनसो विषयपारवश्यशून्यत्वं अथ यथोक्तोपदेशस्यमुमुक्षुविषयत्वादर्जुनस्य मुमुक्षुत्वमिह विवक्षितमिति नेत्याह एष इति ॥ ४५ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ननु स्वर्गादिकं परमं फलं यदि न भवति तर्हि किमिति वेदैस्तत्साधनतया कर्माणि विधीयन्ते तत्राह त्रैगुण्यविषया इति त्रिगुणात्मिकाः सकामा येऽधिकारिणस्तद्विषयाः कर्मफलसम्बन्धप्रतिपादका वेदाः त्वन्तु निस्त्रैगुण्यो निष्कामो भवतत्रोपायमाह निर्द्वन्द्वः

सुखदुःखशीतोष्णादि युगलानि द्वन्द्वानि तद्रहितो भवतानिसहस्वेत्यर्थः कथमित्यत आह नित्य सत्वस्थः सन् धैर्य्यमवलंब्येत्यर्थः तथा निर्योगक्षेमः अप्राप्तस्वीकारो योगः प्राप्तपालनं क्षेमस्तद्रहितः आत्मवानप्रमतः नहि द्वन्द्वाकुलस्य योगक्षेमव्यापृतस्य च प्रमादिनस्त्रैगुण्यातिक्रमः सम्भवतीति ॥ ४५ ॥

नवलभाष्य।

जे पुरुष ऐसी निश्चयात्मिकाबुद्धिसे रहित हैं तिनसकामपुरुषोंको जो फलप्राप्तहोताहै तिसकोकहते हैं (त्रैगुण्याविषयाइति) हे अर्जुन कर्मकाण्डके प्रतिपादन करनेवाले जे वेदहैं ते सब त्रैगुण्यविषय हैं अर्थात् त्रैगुण्य जो सत्त्वरजस्तमोगुण मयसंसारवोही है षिषय प्रतिपादन करिबेयोग्य जिन्हों को ऐसे हैं अर्थात् संसारिक जे विषय सुख तिनके प्रकाशकहैं औरहेअर्जुन तूतौ त्रैगुण्यजे संसारिकविषय तिनसे रहितहौ अर्थात् उनकी कामनासे रहितहौ न कहौ अनादिकालसे इससंसारके विषयकी कामनाकरताहुआ जो मनहै सो कैसे उससे निवृत्तहोसक्ताहै इससे उसका उपाय भगवान् कहतेहैं कि हे अर्जुन तू निर्द्वन्द्वहौ द्वन्द्वपदार्थोंसे रहितहो द्वन्द्वउससेकहतेहैं कि जो सुख दुःखके हेतु परस्पर विरोधी दो दो पदार्थ संसारमें प्रसिद्ध हैं जैसे पुण्यपाप रागद्वेष शीतउष्ण इत्यादिकहैं तिन्होंसे रहितहौ अर्थात् कामनामें कारण रागद्वेष पुण्यपापादि द्वन्द्वही हैं क्योंकि कामना दो तरहकी होतीहैं एक तो जिसमें प्रीतिहोवै उसपदार्थ के प्राप्तिकी कामना और एक जिसमें द्वेषहोय उससे पृथक् होनेकी कामना तौ जबक्या अपने स्वरूप ज्ञानसे कामनाके कारण भूतराग द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहितहोगा तौ आपही त्रैगुण्य विषयोंकी चाहसे रहितहोगा और हेअर्जुन तू नित्यसत्व×गुणका आ-

---

× अब यहां प्रथमतो भगवान्ने अर्जुनसे कहा कि हेअर्जुन तू निस्त्रैगुण्यहो अर्थात् तू तीनों गुणोंके धर्मसे रहितहो और फिर कहा तू नित्यसत्वस्थ हो अर्थात् सत्वगुणका आश्रयकर सो यह कथन परम बिरुद्धहै क्योंकि तीनगुणों में सत्वगुण भीहै तो जब निस्त्रैगुण्य कहनेसे सत्वगुणका भी निषेध सिद्धहुआ तो फिर सत्वगुणका आश्रयण करना कैसे संभव होसक्ताहै तो इसका यह उत्तरहै कि इसीदोष के दूर करनेको नित्यपद यहां कहा तिसका आशय यहहै कि तीनगुण में जो सत्व है सोरज और तमकरके मिलाहै और कभी आताहै उसका सामान्य कथनसे निषेधभी रहो यहां तो नित्यसत्व गुणमें स्थितहो इस विशेष विधानसेरज औरतम इनकी निवृत्तिमें तात्पर्य है इसी आशयसे भाष्यकरने निस्त्रैगुण्य इसका निष्काम यह अर्थ किया अथवा नित्यसत्वस्थ का यह अर्थहै कि नित्यसत्व गुण रहताहै जिसमें ऐसा जो विशुद्ध सत्वमूर्त्ति भगवान् विष्णुरूप मैं तिसमें स्थितहो अर्थात् मेरे आश्रयकरने से संसारके दोषों से अनायास से छूठजायगा अथवा यहां सत् शब्द परमात्मा का बाचकहै और नित्यपद भी उसीको कहता और त्वप्रत्ययसे सत्तारूप अर्थका ग्रहणहै तो नित्यपरमात्मा की जो सत्ता तिसमें तू स्थितहो अर्थात् परमात्मरूप रूपही अपना जान तौ तू संसार से छूटजायगा और जोत्व प्रत्यय स्वार्थमें है तो स्पष्टही अर्थ है ॥

श्रयण करनेवाला हो क्योंकि विना सत्त्वगुण के आश्रयकिये शीतउष्णराग द्वेषादि द्वन्द्वोंकी निवृत्ति अशक्य है और हेअर्जुन तैसेही तू नियोंग क्षेमहो अर्थात् योगक्षेम से रहितहो तहां जो वस्तुअपने पास नहीं है उसका उपार्जन करना अर्थात् संग्रह करना उसको योग कहते हैं और जिस वस्तु का संचयकिया उसका जो रक्षण उसको क्षेमकहते हैं तिनदोनोंसे रहितहो क्योंकि जो पुरुष द्रव्यादिकके उपार्जनमें और उसकी रक्षामें आकुलचित्त है उसकी श्रेयमें प्रवृत्तहोना अतिदुर्लभ है और हे अर्जुन तू आत्मवान्हो अर्थात् प्रमादसे रहितहो नित्यउद्योगयुक्तरह अपनेधर्ममें तत्पर जो तूहै तिसकेलिये यह मेरा उपदेशहै ॥ ४५ ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

सर्वेषु वेददोक्तेषु कर्मसु यान्युक्तान्यनन्तानि फलानि तानि नापेक्षन्ते चेत् किमर्थं तानीश्वरायेत्यनुष्ठीयन्त इत्युच्यते शृणु यावानिति यथा लोके कूपतडागाद्यनेकस्मिन् उदपाने परिच्छिन्नोदके यावान् यावत् परिमाणः स्नानपानादिरर्थः फलं प्रयोजनं स सर्वोऽर्थः सर्वतः संप्लुतोदकेऽपि योऽर्थः तावानेव संपद्यते तत्रान्तर्भवतीत्यर्थः एवं तावांस्तावत् परिमाण एव संपद्यते सर्वेषु वेदेषु वेदोक्तेषु कर्मसुयोऽर्थो यत् कर्मफल सोऽर्थो ब्राह्मणस्य सन्यासिनः परमार्थतत्वं विजानतो योऽर्थो यत् विज्ञानफलं सर्वतः संप्लुतोदकस्थानीयं तस्मिंस्तावानेव सम्पद्यते तत्रैवान्तर्भवतीत्यर्थः यथा कृतायविजितायाधरेया संयन्त्येव मेन सर्वं तदभिसमेति यत् किञ्चित प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत् स वेदेति श्रुतेः सर्वं कर्माखिलमिति च वक्ष्यति तस्मात् प्राक् ज्ञाननिष्ठाधिकारप्राप्तेः कर्मण्यधिकृतेन कूपतडागाद्यर्थस्थानीयमपि कर्म कर्त्तव्यम् ॥ ४६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ईश्वरार्पणधिया निस्वधर्मानुष्ठानेऽपि फलकामनाभावाद्वैफल्यं योगमार्गस्येति मन्वानः शङ्कते सर्वेष्विति कर्ममार्गस्य फलवत्वं प्रतिजानीते उच्यत इति किंतत्फलमित्युक्ते तद्विषयं श्लोकमवतारयति शृण्विति यथोदपाने कूपादौ परिच्छिन्नोदकेस्नानचमनाद्यर्थो यावानुत्पद्यतेसतावानपरिच्छिन्ने सर्वतः संप्लुतोदके समुद्रेऽन्तर्भवतिपरिच्छिन्नोदकानां परिच्छिन्नोदकांशत्वात् तथा सर्वेषु वेदोक्तेषु कर्मसुयावानर्थोविषयविशेषोपरक्तःसुखविशेषो जायतेसतावानात्मविदः स्वरूपभूत सुखेन्तर्भवतिपरिच्छिन्नानन्दानामपरिच्छिन्नानन्दान्तर्भावाभ्युपगमादेतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीतिश्रुतेः तथाचापरिच्छिन्नात्मानन्दप्राप्तिपर्यवसायिनो योगस्यमार्गस्य नास्तिवैफल्यमित्याह यावानिति उक्तमर्थमक्षरयोजनया प्रकटयति यथेतिउदकं पीयतेऽस्मिन्निति व्युत्पत्याकूपादि परिच्छिन्नोदकविषयत्वमुदपानशब्दस्य दर्शयतिकूपेति कूपादिगतस्याभिधेयस्यसमुद्रेऽन्तर्भावा[illegible]भावात् कथमिदमित्यमित्याशङ्क्यार्थशब्दस्य प्रयोजनविषयत्वं व्युत्पादयति फलमिति यत्फलत्वेन लीयते तत् फलमित्युच्यते तत् कृतं तडागादिकृत्तं स्नानपानादि तथेत्याशङ्क्य तस्याल्पीयसो नाशोपपत्तेरित्याह प्रयोजनमिति तडागादिप्रयुक्तप्रयोजनस्य समुद्रनिमित्तप्रयोजनमात्रत्वमयुक्तमन्यस्यान्यात्मत्वानुपपत्तेरित्याशङ्क्याह तत्रेति घटाकाशादेरिवमहा

कार्ये परिच्छिन्नोदककार्य्यस्यापरिच्छिन्नोदककार्य्योन्तर्भावः सम्भवति तत्प्राप्ताविवतरापेक्षा भावादित्यर्थः पूर्वार्द्धं दृष्टान्तभूतमेवं व्याख्याय दार्ष्टान्तिकमुत्तरार्द्धं व्याकरोति एवमित्यादिना कर्मसु योऽर्थ इत्युक्तं व्यनक्ति यत् कर्मफलमितिसोऽर्थो विजानतो ब्राह्मणस्य योऽर्थस्तावानेव सम्पद्यत इति सम्बन्धः तदेव स्पष्टयतिविज्ञानेति तस्मिन्नन्तर्भवतीतिशेषः कथं कर्मफलं ज्ञानफलेऽन्तर्भवतीत्यत्रप्रमाणमाह सर्वमिति यत् किमपि प्रजाःसाधु कर्म कुर्वन्ति तत् सर्वं स पुरुषोऽभिसमेति प्राप्नोति यःपुरुषस्तद्वेद विजानाति यद्वस्तु सरैक्यो वेद तद्वेद्यमिति श्रुतेरर्थः कर्मफलस्य स गुणज्ञानफलेऽन्तर्भावः सम्भवतीत्याशङ्क्याह सर्वमिति तर्हि ज्ञाननिष्ठैव कर्तव्या तावतैव कर्मफलस्य लब्धतया कर्मानुष्ठानानपेक्षणादिशङ्क्याह तस्मादिति योगमार्गस्य निष्फलत्वाभावस्तच्छब्दार्थः ॥ ४६ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु वेदोक्त नानाफलत्यागेन निष्कामतयेश्वराराधनविषया व्यवसायात्मिका बुद्धिः कुबुद्धिरेवेत्याशङ्क्याह यावानिति उदकं पीयते यस्मिंस्तदुदपानं वापीकूप तड़ागादितस्मिन् स्वल्पोदके एकत्र कृत्स्नार्थस्यासम्भवात् तत्र परिभ्रमणेन विभागशो यावान् स्नानपानादिरर्थः प्रयोजनं भवति तावान् सर्वोऽप्यर्थः सर्वतःसंप्लुतोदके महाहृदे एकत्रैव यथा भवति एवं यावान् सर्वेषु वेदेषु तत्तत् कर्मफलरूपोऽर्थस्तावान् सर्वोऽपि विजानतो व्यवसायात्मिका बुद्धियुक्तस्य ब्राह्मणस्य ब्रह्म निष्ठस्य भवत्येव ब्रह्मानन्दे क्षुद्रानन्दामन्तर्भावात् एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति श्रुतेः तस्मादियमेव बुद्धिः सुबुद्धिरित्यर्थः ॥४६ ॥

नवलभाष्य।

अब कदाचित् सम्पूर्ण वेदोक्तजे कर्म तिन्होंमें जे अनन्तफलकहेहैं तिनकी जो अपेक्षानकीजाय अर्थात् तिनको जो न मानों तौ ईश्वरके समर्पण के लिये जे कर्मफल हैं यहकैसे सम्भवहोताहै हे अर्जुन ऐसाजो तू कहै तौ इसकासमाधान सुन इसआशयसे कहते हैं कि (यावानिति) जैसे लोकमें वापीकूप तड़ागादि अनेक छोटे छोटे जलाशयोंमें जितने परिमाणका स्नान पानादि अर्थ नाम प्रयोजन न्यारा न्यारा सिद्धहोता है उतनासबप्रयोजन चारोंतरफसे जलसेभराहुआ जो बड़ाभारी सैकड़ोंकोशका गंगादिरूप जलाशय अथवा समुद्र तिसमें एकहीजगह सिद्धहोताहै ऐसेही सबवेदोक्त कर्मोंमें न्यारा न्यारा अनेकप्रकारका फल कर्मकरनेवाले पुरुषोंको अनेकजगहसे जो सिद्धहोताहै तितनेही प्रमाणका वह सबकर्मोंका फल परमार्थतत्त्वजाननेवाले ब्राह्मणको अर्थात् संन्यासीको होताहै अर्थात् वेदोक्त और धर्मशास्त्रोक्त कर्मोंके जितनेफलहैं उनसबोंका एकज्ञानमें अन्तर्भाव होता है और यहीअर्थ सामवेदके छान्दोग्य+ उपनिदमेंसम्वर्ग्गविद्या के प्रकरणमें श्रुतिने कहाहै कि जैसे लोकमें द्यूतकेविषयमें यहप्रसिद्ध है कि पांसेमें जो चारका

+ यथा कृताय विजितायाधरेयाः संयान्त्येवमेनं सर्वंतदभिसमेतियत्किंचप्रजाः साधुकुर्वन्ति यस्तद्वेदयत्सवेदस मयैतदुक्त इति ॥ छां० उ० प्र० ४।४ ॥ इस श्रुतिका अर्थ उपरिभागमें लिख आयेहैं ॥

अंकहोताहै उसकानाम कृतहै अर्थात् सत्ययुग उसको कहतेहैं और उसके नीचेकेभागमें जो क्रमसे तीन दो एकके अंकहोतेहैं उनकानाम त्रेता द्वापर कलियुग क्रमसे होताहै सो जब द्यूतमें जब चारिका अंक कृतयुगजीतता है तब नीचेके त्रेतायुगादिकों के अंक सब उसके बीचमें आजाते हैं तैसे ही रैक्वनामऋषि जिसतत्त्वको जानताहै उसीतत्त्वको जो कोई औरभी पुरुष जो जानताहै तौ जितनी सबप्रजापुण्यकरती हैं उनसबपुण्योंका फल उस एक तत्त्ववेत्ताके पुण्यफलमें अन्तर्गत होजाताहै अर्थात् उसतत्त्ववेत्ता का पुण्यफल सबप्रजाओंके पुण्यफलोंसेअधिकहै और चतुर्थाध्यायके ३३ तेंतीसवें श्लोकमें आगे भगवान्भी कहेंगे कि हे अर्जुन सबकर्मफल एकज्ञानमें समाप्तहोजाताहै तिससे जबतक ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिका अधिकार न होय तबतक वापी कूप तड़ाग तुल्यकर्म कर्माधिकारी पुरुषको करनाही चाहिये अर्थात् ज्ञानके माहात्म्यको श्रवणकरके बिना अन्तःकरणशुद्धिके कर्मको न त्यागदेवे जिसमें अधःपातहोय ॥ ४६ ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
माकर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्माणि ॥ ४७ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

तव च कर्मणीति कर्मण्येवाधिकारो न ज्ञाननिष्ठायां तेन तव तत्र च कर्म कुर्वतो मा फलेऽधिकारोऽस्तु कर्मफलतृष्णा माभूत्कदाचनकस्याञ्चिदप्यवस्थायामित्यर्थः यदा कर्मफले तृष्णते स्यात् तदा कर्मफलप्राप्तेर्हेतुः स्याः एवं माकर्मफलहेतुर्भूः यदा हि कर्मफलतृष्णाप्रयुक्तः कर्मणिप्रवर्त्तते तदा कर्मफलस्यैव जन्मनो हेतुर्भवेत् यदि कर्मफलं नेष्यते किंकर्मणा दुःखरूपेणेति मा ते तव संगोस्त्वकर्मण्य करणे प्रीतिर्माभूत् ॥ ४७

आनंदगिरिकृतटीका ।

तर्हि परम्परया पुरुषार्थसाधनं योगमार्गं परित्यज्य साक्षादेव पुरुषार्थकारणमात्मज्ञानं तदर्थमुपदेष्टव्यं तस्मै हि स्पृहयति मनो मदीयमित्याशङ्क्याह तवचेति तर्हि तत्फलाभिलाषोऽपि स्यादिति नेत्याह माफलेष्विति पूर्वोक्तमेवार्थं प्रपञ्चयति माकर्मेति फलाभिसन्ध्यसम्भवे कर्माकरणमेव श्रद्दधामीत्याशङ्क्याह मात इति ज्ञानानधिकारिणोऽपिकर्मत्यागप्रसक्तिं निवारयति कर्मण्य वेति कर्मण्येवेत्यर्थमाह न ज्ञानेति नहि तत्राब्राह्मणस्यापरिपक्वकषायस्य मुख्योऽधिकारः सिद्ध्यतीत्यर्थः फलैस्तर्हि संबन्धो दुर्वारः स्यादित्याह तत्रेति कर्मण्य वाधिकारे सतीति सप्तम्यर्थः फलेष्वधिकाराभावं स्फोरयति कर्मेतिकर्मानुष्ठानात् प्रागूर्द्ध्वं तत्काले चेत्येतत् कदाचनेति विवक्षितमित्याह कस्याञ्चिदितिफलाभिसन्धाने दोषमाह यदेति एवं कर्मफलतृष्णाद्वारेणेत्यर्थः कर्मफलहेतुत्वं विवृणोतियदा हीति तर्हि विफलक्लेशात्मकं कर्म न कर्तव्यमिति शङ्कामनुभाव्य दूषयति यदीत्यादिना अकर्मणि ते संगोमाभूदित्युक्तमेव स्पष्टयति अकरण इति ॥ ४७ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तर्हि सर्वाणि कर्मफलानि परमेश्वराराधनादेव भविष्यन्तीत्यभिसन्धाय प्रवर्त्तेत किं

कर्मणीत्यशङ्क्य तद्वारयन्नाह कर्मण्येवाधिकारस्तत् फलेषु बन्धहेतुषु अधिकार: कामो मास्तुननु कर्माणि कृते तत्फलं स्यादेव भोजने कृते तृप्तिवदित्याशङ्क्याह मेति माकर्म फलहेतुर्भू:कर्मफलं प्रवृत्तिहेतुर्यस्य स तथाभूतो माभू: काम्यमानस्यैव स्वर्गादेर्नियोज्य विशेषणत्वेनफलत्वादकामितं फलं न स्यादिति भाव: अतएव फलं बन्धकं भविष्यतीत तस्मात् भयादकर्मणि कर्माकरणेऽपि तव संगो दिष्ठा मास्तु ॥ ४७ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन तेरा तौ अभी कर्महीके विषे अधिकारहै अर्थात् कर्मकरनेही का अधिकारहै ज्ञाननिष्ठाका अधिकारनहींहै तिसकरके तहां तहां कर्म करताहुआ जो तूहै तिसकाफलोंमें अधिकार कभी न होय अर्थात् कर्मफल की तृष्णा तुझको किसी अवस्थामें न होय और जब तेरीकर्मफलमें तृष्णा होगी तौ तू कर्मफलकी प्राप्तिकाहेतु भी होगा सो इसप्रकार कर्मफल का हेतु तू मत हो क्योंकि जो कोई पुरुष कर्मफलकी तृष्णाकरके प्रेराहुआकर्म में प्रवृत्तहोताहै तौ वहपुरुष कर्मफलहीके उत्पत्तिका कारणहोताहै औरजो कर्मफल इष्टनहींहै अर्थात् जो कर्मफलकी चाहही नहींहै तौ फिर दुःखरूप कर्मही करके क्याप्रयोजन है इसबुद्धी से कर्म के नहीं करनेमें भी तेरे प्रीति न होय ॥ ४७ ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योगउच्यते ॥ ४८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यदि कर्मफलप्रयुक्तेन न कर्त्तव्यं कर्म कथं तर्हि कर्त्तव्यमित्युच्यते योगस्थेति योगस्थाः सन् कुरु कर्माणि केवलमीश्वरार्थं तत्रापीश्वरो मे तुष्यत्विति संगं त्यक्त्वा धनञ्जय फलतृष्णाशून्येन क्रियमाणे कर्मणि सत्त्वशुद्धिजज्ञानप्राप्तिलक्षणा सिद्धिः यद्विपर्य्ययजा असिद्धिस्तयोः सिद्ध्यसिद्ध्योरपि समस्तुल्यो भूत्वा कुरुकर्माणि कोऽसौ योगोयत्रस्थ: कुर्वित्युक्तमिदमेव तत् सिद्ध्यसिद्ध्योः समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

आसक्तिकरणेन युक्ता चेत् तर्हि क्लेशात्मकं कर्म किमुद्दिश्य कर्त्तव्यमित्याशङ्कामनूद्यश्लोकान्तरमवतारयति यदीत्यादिना वक्ष्यमाणयोगमुद्दिश्य तन्निष्ठो भूत्वा कर्माणि क्लेशात्मकान्यपि विहितत्वादनुष्ठेयानीत्याह योगस्थ: सन्निति कर्मानुष्ठास्योद्दिश्यं दर्शयतिकेवलमिति फलान्तरापेक्षामन्तरेणेश्वरार्थं तत्प्रसादनार्थमनुष्ठानमित्यर्थ: तर्हि ईश्वरसन्तोषोऽभिलाषगोचरीभूतो भविष्यति नेत्याह तत्रापीति ईश्वरप्रसादनार्थे कर्मानुष्ठाने स्थितेऽपीत्यर्थ: संगं त्यक्त्वा कुर्वीति पूर्वेण सम्बन्ध: आकांक्षितं पूरयित्वा सिद्धिशब्दार्थमाहफलेति तद्विपर्य्ययजा सत्वाशुद्धिजन्या ज्ञानाप्राप्तिलक्षणेति यावत् कर्माननुतिष्ठतो योगमुद्दिश्य शेषतया प्रकृतमाकांक्षापूर्वकं प्रकटयतिकोसावित्यादिना ४८॥

स्वामिकृतटीका।

किं तर्हि योगस्थ इति योग: परमेश्वरैकपरता तत्रस्थित: कर्माणि कुरु तथासंगं

कर्तृत्वाभिनिवेशं त्यक्त्वा केवलमीश्वराश्रयेणैव कुरु तत्फलस्य ज्ञानस्यापि सिद्ध्य सिद्ध्योःसमो भूत्वा केवलमीश्वरार्पणेनैव कुरु यत एवम्भूतं समत्वमेव योगउच्यते सद्भिश्चित्तसमाधानरूपत्वात् ॥ ४८ ॥

नवलभाष्य ।

जो फिर कर्मफलकी प्रेरणासे कर्म नहींकरनाचाहिये तौ फिर कौनरीति से करनाचाहिये इसआशंकामें भगवान्कहते हैं कि (योगस्थइति) हेअर्जुन योगमें स्थितहोकरअर्थात् केवल ईश्वरार्थ तिसमें भी ईश्वर मेरेऊपरप्रसन्न होउ इससंगको आशक्तीको त्यागकरके तू कर्मकर और जो फलकी तृष्णाको छोड़के कर्म कियाजाय तिसकरनेसे अन्तःकरणशुद्धिसे उत्पन्नहुई जो ज्ञानरूपासिद्धि और नहींअन्तःकरणशुद्धिहोनेसे जो ज्ञानकी असिद्धितिनदोनों सिद्धिअसिद्धियों में हे अर्जुन समहोके अर्थात् हर्षविषाद रहितहोके कर्मकर न,कहो कौनसा वहयोगहै जिसमें स्थितहुएमुझको कर्मकरनेकी ञाज्ञादीजातीहैं इसआशंकामें कहतेहैं कि हे अर्जुन यही वहयोग कहाजाताहै जो सिद्धि असिद्धिमें समत्त्वहोनाहै अर्थात् एकसी चित्तवृत्तिकारहना ॥ ४८ ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद् धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यत् पुनः समत्वबुद्धियुक्तमीश्वराराधनार्थं कर्मोक्तं एतस्मात् कर्मणः दूरेणेति दूरेणातिविप्रकर्षेण अत्यन्तमेव ह्यवरमधमं निकृष्टं कर्मफलार्थिना क्रियमाणं बुद्धियोगात् समत्वबुद्धियुक्तात् कर्मणो जन्ममरणादिहेतुत्वात् हे धनञ्जय यत एवं ततः योगविषयायां बुद्धौ तत्परिपाकजायां वा सांख्यबुद्धौ शरणमाश्रयमभयप्राप्तिकारणमन्विच्छ प्रार्थयस्व परमार्थज्ञानशरणो भवेत्यर्थः यतोऽवरं कर्मकुर्वाणाः कृपणाः दीनाः फलहेतवः फलतृष्णा प्रयुक्ताः सन्तः यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात् प्रैति स कृपण इति श्रुतेः ॥ ४९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

किमिति योगस्थेन तत्वज्ञानमुद्दिश्य कर्म कर्तव्यं फलाभिलाषेऽपि तदनुष्ठानस्यसुलभत्वादिशङ्क्य यथोक्तयोगयुक्तं कर्मस्तुवन्ननन्तरश्लोकमुत्थापयति यत् पुनरिति अवरं कर्मबुद्धिसम्बन्धविरुद्धमिति शेषः बुद्धियुक्तस्य बुद्धियोगाधीनं प्रकर्षं सूचयति बुद्धौति बुद्धि सम्बन्धसम्बन्धाभ्यां कर्मणि प्रकर्षनिःकर्षयोर्भावे करणीयं नियच्छति बुद्धाविति यत्तु-फलेच्छयापि कर्मानुष्ठानं सुकरमिति तत्राह कृपणेति निकृष्टं कर्मैव विशिनष्टि फलार्थिनेति कस्मात् प्रतियोगिनः सकाशादिदं निकृष्टमित्याशङ्क्य प्रतीकमुपादाय व्याचष्टे बुद्धीत्यादिना फलाभिलाषेण क्रियमाणस्य कर्मणो निकृष्टत्वे हेतुमाह जन्मेति समत्वबुद्धियुक्तात् कर्मणः तद्धीनस्य कर्मणो जन्मादिहेतुत्वेन निकृष्टत्वे फलितमाह यत इति योगविषया बुद्धिः समत्वबुद्धिः बुद्धिशब्दस्यार्थान्तरमाह तत्परिपाकेति तच्छब्दे न समत्वबुद्धिसमन्वितं कर्म गृह्यते तस्य परिपाकस्तत् फलभूता बुद्धिशुद्धिः शरणशब्दस्य पर्य्यायगृहीत्वा विवक्षितमर्थमाह अभयेति सप्तमीमविवक्षित्वा द्वितीयं पक्षं गृहीत्वा

वाक्यार्थमाह परमार्थेति तथाविधज्ञानशरणत्वे हेतुमाह यत इति फलहेतुत्वं विवृणोति फलेति तेन परमार्थज्ञानशरणतैव युक्तेति शेषः परमार्थज्ञानबहिर्मुखानां कृपणत्वे श्रुतिं प्रमाणयति योवा इति अस्थलादिविशेषणमेतदित्युच्यते ॥ ४९ ॥

स्वामिकृतटीका।

काम्यन्तु कर्मेति निकृष्टमित्याह दूरेणेति बुद्ध्या व्यवसायात्मिकया कृतः कर्मयोगो बुद्धि साधनभूतो वा तस्मात् सकाशादन्यत् साधनभूतं काम्यं कर्म दूरेणावरमत्यन्तमपकृष्टंहि यस्मादेवं तस्माद्बुद्धौ ज्ञाने शरणमाश्रयं कर्मयोगमन्विच्छ अनुतिष्ठ यद्वा बुद्धौ शरणंत्रातारमीश्वरमाश्रयेत्यर्थः फलहेतवस्तु सकामाः नराः कृपणादीनाः यो वा एतदक्षरमविदित्वा गार्ग्यस्माल्लोकात् प्रैति स कृपण इति श्रुतेः ॥ ४९ ॥

नवलभाष्य।

औरहेधनंजय हेअर्जुन समत्वबुद्धियुक्तहै कर्त्ता जिसका ऐसा जो ईश्वरके आराधनके अर्थ मैंने कर्मकहा तिसकर्मकी अपेक्षासे जो औरफलकी इच्छासे सकामपुरुषकरके कर्म कियाजाताहै सो तौ उस बुद्धियुक्त कर्मसे दूरहीसे अवरहै नाम निकृष्टहै अर्थात् उसकाम्यकर्मको जन्ममरणके हेतुत्वहोने से अर्थात् कारणहोने से वहअत्यन्त निकृष्टहै जिससे ऐसाहै तिससे हे अर्जुन योगविषय जो बुद्धिहै तिसमें अथवा योगबुद्धिके परिपाकसे अर्थात् अन्तःकरणशुद्धिसे उत्पन्नहुई जो सांख्यबुद्धि तिसमें शरणआश्रय जो अभयप्राप्ति कारण जो परमार्थज्ञान तिसकी इच्छाकर अर्थात् परमात्मज्ञानरूपजो परमात्मा तिसका आश्रयणकर जिससे निकृष्टकाम्यकर्म के करनेवाले पुरुष फलहेतुहुए अर्थात् कालकी तृष्णाकरके प्रेरेहुए कृपण होतेहैं अर्थात् दीन होते हैं यही अर्थ यजुर्वेद के बृहदारण्य उपनिषद् में याज्ञवल्क्यऋषि ने अपनी भार्य्यासे कहा कि हे गार्गि जो पुरुष× इसपरमात्मा को बिनाजाने इसलोकसे मरके अन्यलोककोजाताहै सो कृपणअर्थात्दीनहीरहताहै ४९॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्मात् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

शङ्करभाष्यम्।

समत्वबुद्धियुक्तः सन् स्वधर्ममनुतिष्ठन् यत् फलं प्राप्नोति तच्छृणु बुद्धीति बुद्धियुक्तः समत्वकर्मविषयया बुद्ध्या युक्तो बुद्धियुक्तः स जहाति परित्यजाति इहास्मिन् लोके उभे सुकृतदुष्कृते पुण्यपापे सत्वशुद्धिज्ञानप्राप्तिद्वारेण यतः तस्मात् समत्वबुद्धियोगाय युजस्व घटस्व योगो हि कर्मसु कौशलं स्वधर्माख्येषु कर्मसु वर्तमानस्य या सिद्ध्यसिद्ध्योः समत्वबुद्धिरीश्वरार्पितचेतस्तया तत् कौशलं कुशल भावस्तद्धिकौशलंयद्बन्धनस्वभावन्यापि कर्माणि समत्वबुद्ध्या स्वभावात् निवर्तन्ते तस्मात् समत्वबुद्धियुक्तो भवत्वम् ॥ ५० ॥

× योवाएतदक्षरंगार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैतिसकृपण इतिबृहदारण्यकश्रुतिः एतदर्थःउपरितनभागे मनुजभाषयोक्तः ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

पूर्वोक्त समत्व बुद्धियुक्तस्य स्वधर्मानुष्ठाने प्रवृत्तस्य किं स्यादित्याशङ्क्याह समत्वेति बुद्धियुक्तः स्वधर्माख्यं कर्मानुतिष्ठन्निति शेषः बुद्धियोगस्य फलवत्वे फलितमाह तस्मादिति पूर्वार्द्धं व्याचष्टे बुद्धीत्यादिना ननु समत्वबुद्धिमात्रान्न पुण्यपापनिवृत्तियुक्ता परमार्थदर्शनवतस्तन्निवृत्तिप्रसिद्धेरिति तत्राह सत्वेति उत्तरार्द्धं व्याचष्टे तस्मादिति स्वधर्ममनुतिष्ठतो यथोक्तयोगार्थं किमर्थं मनो योजनीयमित्याशङ्क्याह योगोहीति तर्हि यथोक्त योगसामर्थ्यादेव दर्शितफलसिद्धेरनास्था स्वधर्मानुष्ठाने प्राप्तेत्याशङ्क्याह स्वधर्माख्येष्विति ईश्वरार्पितचेतस्तया कर्मसु वर्त्तमानस्यानुष्ठाननिष्ठस्य या यथोक्ता बुद्धिस्तत्तेषु कौशलमिति योजना कर्मणां बन्धस्वभावत्वात् तदनुष्ठाने बन्धावद्धः स्यादित्याशङ्क्य कौशलमेव विशदयति तद्धीति समत्वबुद्धेरेतं फलत्वे स्थिते फलितमुपसंहरति तस्मादिति॥५०॥

स्वामिकृतटीका।

बुद्धियोगयुक्तस्तु श्रेष्ठ इत्याह बुद्धियुक्त इति सुकृतं स्वर्गादिप्रापकं दुष्कृतं निरयादिप्रापकं ते उभे इहैव जन्मनि परमेश्वरप्रसादेन त्यजति तस्मात् तदर्थाय कर्मयोगाय युज्यस्व घटस्व यतः कर्मसु यत् कौशलं बन्धकानामपि तेषामीश्वराराधनेन मोक्षपरत्व सम्पादक चातुर्य्यं स एव योगः॥ ५०॥

नवलभाष्य।

और समत्वबुद्धियुक्त होकर अपनेधर्मको करताहुआ पुरुष जिसफलको प्राप्त होताहै तिसको सुन (बुद्धीति) हे अर्जुन समत्वरूपकर्म योग में रहने वाली जो बुद्धि तिसकरके युक्त जो पुरुषसो जिससे इसी लोकमें अन्तःकरण शुद्धि ज्ञानप्राप्तिद्वारा सुकृत व दुष्कृत अर्थात् पुण्य औरपाप इनकोत्याग करताहै तिससे समत्वबुद्धि योगकेअर्थ यत्नकर क्योंकि कर्मोंमें जो कौशल निपुणता उसीको योगकहते हैं अर्थात् स्वधर्मरूपकर्मोंके विषे प्रवृत्तहुआ जो पुरुष तिसकी ईश्वरार्पित चित्तसेहुई जो सिद्धि असिद्धिमें समत्वयुक्त बुद्धि सोईहुआ कौशल अर्थात् चतुराई वोहीकर्मकरनेकी चतुराई है योग है जिससे बन्धनस्वभावभी कर्म अपने स्वभावसे निवृत्तहोजाते हैं अर्थात् बन्धनसेछुड़ा देनेवालेहोजातेहैं तिससे हेअर्जुन तू समत्वबुद्धियुक्तहो ५०॥

कर्मजं बुद्धि युक्ताहि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥ ५१॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्मात् कर्मजमिति कर्मजं फलं त्यक्त्वेति व्यवहितेन सम्बन्धः इष्टानिष्ट देहप्राप्तिः कर्मजं फलं कर्मभ्यो जातं बुद्धियुक्ताः समत्वबुद्धियुक्ताः सन्तोहि यस्मात् फलं त्यक्त्वा परित्यज्य मनीषिणो ज्ञानिनो भूत्वा जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः जन्मैव बन्धो जन्मबन्धस्तेन विनिर्मुक्ताः जीवन्त एव जन्मबन्धात् विनिर्मुक्ताः सन्तः पदं परमं विष्णोर्मोक्षाख्यं गच्छन्त्यनामयं सर्वोपद्रवरहितमित्यर्थः अथवा बुद्धियोगाद्धनञ्जयेत्यारभ्यपरमार्थदर्शनलक्षणैव सर्वतः संप्लुतोदकस्थानीया कर्मयोगजा सत्वशुद्धिर्दर्शिता साक्षात् सुकृतदुष्कृतप्रहाणादिहेतुत्वश्रवणात्॥ ५१॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

समत्वबुद्धियुक्तस्य सुकृत दुष्कृत तत्फलपरित्यागेऽपि कथं मोक्षः स्यादित्या शङ्क्याह यस्मादिति समत्वबुद्धया यस्मात् कर्मानुष्ठीयमाणं दुरितादि त्याजयति तस्मात् परम्पर याऽसौ मुक्तिहेतुरित्यर्थः मनीषिणो हि ज्ञानातिशयवन्तो बुद्धियुक्ताः सन्तः स्वधर्माख्यं कर्मानुतिष्ठन्तस्ततो जातं फलं देहप्रदन्ते हित्वा जन्मलक्षणाद्बन्धाद्विनिर्मुक्ताः वैष्णवं पदं सर्वसंसारसंस्पर्शशून्यं प्राप्नुवन्तीति श्लोकोक्तमर्थं श्लोक योजनया दर्शयति कर्मज मित्यादिना इष्टो देहो देवादिलक्षणोऽनिष्टो देहस्तिर्य्यगादिलक्षणस्तत्प्राप्तिरेव कर्मणो जातं फलं तद्यथोक्तं बुद्धियुक्ता ज्ञानिनो भूत्वा तद्बलादेव परित्यज्य बन्धविनिर्मुक्तिपूर्वकं जीवन्मुक्ता सन्तो विदेह कैवल्यभाजो भवन्तीत्यर्थः बुद्धियोगादित्यादौ बुद्धिशब्दस्य समत्वबुद्धिरर्थो व्याख्यातः सम्प्रति परम्परां परिहृत्यसु कृतदुष्कृतप्रहाणहेतुत्वस्य समत्वबुद्धावसिद्धेः बुद्धिशब्दस्य योग्यमर्थान्तरं कथयति अथवेति अनवच्छिन्नवस्तु गोचरत्वेनानवच्छिन्नत्वं तस्याःसूचयन् बुद्ध्यन्तराद्विशेषं दर्शयति सर्वत इति असाधारणं निमित्तं तस्यानिर्दिशति कर्मेति यथोक्त बुद्धिशब्दार्थत्वे हेतुमाह साक्षादिति जन्मबन्धविनिर्मोकादिरादिशब्दार्थः ॥ ५१ ॥

स्वामिकृतटीका।

कर्मणां मोक्षसाधनत्वप्रकारमाह कर्मजमिति कर्मजं फलं त्यक्त्वा केवलमीश्वराराधनार्थं कर्मकुर्वाणा मनीषिणो ज्ञानिनो भूत्वा जन्मरूपेण बन्धेन विनिर्मुक्ताः सन्तोऽनामयं सर्वोपद्रवरहितं विष्णोः पदं मोक्षाख्यं गच्छन्ति ॥ ५१ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जिससे समत्वबुद्धियुक्त जे पुरुष हैं ते कर्म से उत्पन्न हुआजो इष्टानिष्टदेह प्राप्तिरूप फल तिसको त्यागके ज्ञानीहोके जीवतेई जन्मरूप बन्धनसे छूटेहुए सबउपद्रवोंसे रहित विष्णुके भौमनामसे प्रसिद्ध जो मोक्षपद तिसको प्राप्तहोते हैं अथवा (बुद्धियोगाद्धनञ्जय) इसश्लोकसेलेके परमार्थज्ञानरूपा सबजगह से भरेहुए समुद्रके तुल्य कर्मयोगसे उत्पन्नहुई अन्तःकरणशुद्धीदिखलाई क्योंकि उसको साक्षात् सुकृत दुष्कृतादिके त्यागमें कारणताका श्रवणहै इससे ॥ ५१ ॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥ ५२॥

शङ्करभाष्यम्।

योगानुष्ठानजनितसत्वशुद्धिजा बुद्धिः कदा प्राप्स्यत इत्युच्यते यदेति यदा यस्मिन् काले ते तव मोहकलिलं मोहात्मकमविवेकरूपं कालुष्यं येनात्मानात्मविवेक बोधं कलुषीकृत्य विषयं प्रत्यन्तःकरणं प्रवर्त्तते तत्ते तव बुद्धिर्व्यतितरिष्यति व्यतिक्रमिष्यति अतिशुद्धभावमापत्स्यत इत्यर्थः तदा तस्मिन् काले गन्तासि प्राप्स्यसि निर्वेदं वैराग्यं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च तदा श्रोतव्यं श्रुतञ्चते निष्फलं प्रतिपद्यत इत्यभिप्रायः ॥ ५२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

यस्मिन् कर्मणि क्रियमाणे परमार्थलक्षणा बुद्धिरुद्देश्यतया युज्यते तस्मात् कर्मणः सकाशादितरत् कर्म तथाविधोद्देश्यभूतबुद्धिसम्बन्धविधुरमतिशयेन निष्कृष्यते ततश्चपरमार्थबुद्धिमुद्देश्यत्वेनाश्रित्य कर्मानुष्ठातव्यं परिच्छिन्नफलान्तरमुद्दिश्य तदनुष्ठानेकार्पण्य प्रसंगात् किञ्च परमार्थबुद्धिमुद्देश्यतयामाश्रित्य कर्मानुतिष्ठतः करणशुद्धिद्वारा परमार्थदर्शनसिद्धौ जीवत्येव देहे सुकृतादिहित्वा मोक्षमधिगच्छति तथाच परमार्थदर्शनलक्षणयोगार्थं मनो नारयितव्यं योगशब्दितं परमार्थदर्शनमुद्देश्यतया कर्मस्वनुतिष्ठतो नैपुण्य मिष्यते यदि च परमार्थदर्शनमुद्दिश्य तद्युताः सन्तः समारभेरन् कर्माणि तदा तदनुष्ठानजंति न बुद्धिशुद्ध्या ज्ञानिनो भूत्वा कर्मजं फलं परित्यज्य निर्मुक्तबन्धनामुक्तिभाजो भवन्तोत्येवमस्मिन् पक्षे श्लोकत्रयाक्षराणि व्याख्यातव्यानि यथोक्तबुद्धिप्राप्तकालं प्रश्न पूर्वकं प्रकटयति योगेति श्रुतं श्रोतव्यं दृष्टं द्रष्टव्यमित्यादौ फलाभिलाषप्रतिबन्धमुक्त्वा बुद्धिरुदेष्यतीत्याशङ्क्याह यदेति विवेकपरिपाकावस्था कालशब्देनोच्यते कालुष्यस्यदोष पर्यवसायित्वंदर्शयन् विशिनष्टि येनेति तदनर्थरूपं कालुष्यं तवेत्यन्वयार्थं पुनर्वचनं बुद्धिशुद्धिफलस्यप्राप्त्वा वैराग्यप्राप्तिं दर्शयति तदेति अध्यात्मशास्त्रातिरिक्तं शास्त्रं श्रोतव्यादिशब्देन गृह्यतेउक्तं वैराग्यमेव स्फोरयति श्रोतव्यमिति यथोक्तविवेकसिद्धौ सर्वस्मिन्ननात्मविषये नैष्फल्यं प्रतिभातीत्यर्थः ॥ ५२॥

स्वामिकृतटीका।

कदाहं तत् पदं प्राप्स्यामीत्यपेक्षायामाह यदेति द्वाभ्यां मोहो देहादिष्वात्मबुद्धिस्तदेव कलिलं गहनं विदुरित्यभिधानकोषस्मृतेः ततश्चायमर्थः एवं परमेश्वराराधने क्रियमाणे यदा तत्प्रसादेन तव बुद्धिर्देहाभिमानलक्षणं मोहमयं गहनं दुर्गं विशेषेण तितरिष्यति तदा श्रोतव्यस्य श्रुतस्य चार्थस्य निर्वेदं वैराग्यं गन्तासि प्राप्स्यसि तयोरनुपादेयत्वेन जिज्ञासां न करिष्यसीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

नवलभाष्य।

और अब कर्मयोगके अनुष्ठानसे उत्पन्न हुई जो अन्तःकरण शुद्धि तिससे उत्पन्नहुई जो बुद्धि सो कबप्राप्तहोगी इसआकांक्षामें कहते हैं कि हे अर्जुन जिससमयमें तेरी मोहकलिल अर्थात् अविवेकरूप जो मालिन्य जिसमालिन्यकरके अन्तःकरण आत्मानात्म विवेकको मलिनकरके आप विषयमें प्रवृत्तहोरहाहै तिसमालिन्यको जब तेरी बुद्धिउल्लंघनकरके वर्त्तैगी अर्थात् अतिशुद्धभावको प्राप्तहोगी तिससमयमें सुनने के योग्य जो पदार्थ और सुनाहुआ जो पदार्थ तिसका जो वैराग्य तिसको प्राप्त तू होवैगा अर्थात् उससमयमें सुननेके योग्य और सुनाहुआ निष्फल होजायगा यह अभिप्रायहै ॥ ५२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचलाबुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३

शङ्करभाष्यम्।

मोहकालिलात्ययद्वारेण लब्धात्मविवेकजप्रज्ञः कदा कर्म्मयोगजं फलं परमार्थयोगमवाप्स्यामीति चेत् तच्छृणु श्रुतिविप्रतिपन्नेति श्रुतिविप्रतिपन्ना अनेकसाध्यसाधनसम्बन्धप्रकाशनश्रुतिभिः श्रवणैर्विप्रतिपन्ना नानात्वप्रतिपन्ना अध्यात्मशास्त्रातिरिक्तस्तस्येत्यर्थः श्रुतिविप्रतिपन्ना विक्षिप्तासती ते तव बुद्धिर्यदा यस्मिन् काले स्थास्यति स्थिरीभूता भविष्यति निश्चला विक्षेपचलन वर्जिता सती समाधौ समाधीयते चित्तमस्मिन्निति समाधिरात्मातस्मिन्नात्मनीत्येतदचला तत्रापि विकल्पवर्जितेतद्बुद्धिरन्तःकरणं तदातस्मिन् काले योगमवाप्स्यसि विवेकप्रज्ञां समाधिं प्राप्स्यसि ॥ ५३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

बुद्धिशुद्धिविवेकवैराग्यसिद्धावपि पूर्वोक्तबुद्धिप्राप्तिकालो दर्शितो न भवतीति शङ्कते मोहेति प्रागुक्तविवेकादियुक्त बुद्धेरात्मनि स्थैर्य्यावस्थायां प्रकृतबुद्धिशुद्धिरित्याह तत् शब्दार्थवतिपृष्टं कालविशेषाख्यं वस्तु तच्छब्दे न गृह्यते बुद्धेः श्रुतिविप्रतिपन्नत्वं विशदयति अनेकेति नानाश्रुतिविप्रतिपन्नत्वमेव संक्षिपति विक्षिप्तेति उक्तं हेतुद्वयमनुरुध्य वैराग्यपरिपाकावस्था कालशब्दार्थः नैश्चल्यं विक्षेपराहित्यं अचलत्वं विकल्पशून्यत्वं विक्षेपो विपर्य्ययो विकल्पः संशय इति विवेकः विवेकद्वारा जाता प्रज्ञा प्रागुक्ता बुद्धिः समाधिस्तत्रैवनिष्ठा ॥ ५३ ॥

स्वामिकृतटीका।

ततश्च श्रुतीति श्रुतिभिर्नानालौकिकवैदिकार्थश्रवणैर्विप्रतिपन्ना इतः पूर्वं विक्षिप्ता सती तव बुद्धिर्यदा समाधौ स्थास्यति समाधीयते चित्तमस्मिन्निति समाधिः परमेश्वरस्तस्मिन्निश्चला विषयान्तरैरनाकृष्टा अतएवाचला अभ्यासपाटवेन तत्रैव स्थिरा च सती तदायोगं योगफलं तत्त्वज्ञानमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

नवलभाष्य।

अब कदाचित् अर्जुनकहैं कि कब मैं मोहरूपबुद्धिकी मलिनताकेनाश से आत्मविवेकप्रज्ञाको प्राप्तहो कर्मयोगकाफल रूप जो परमार्थयोग तिसको प्राप्तहोऊंगा तो भगवान् कहते हैं कि तिसको सुन [श्रुतीति] कि हे अर्जुन जिसअवस्थामें अध्यात्मशास्त्रसे भिन्न और शास्त्रके साध्यसाधन सम्बन्धके प्रकाशक वचनोंके सुननेसे अनेकविरुद्ध कुतर्कोंको प्राप्तहुई जो तेरीबुद्धि सो निश्चलहुई अर्थात् चलनरहित स्थिरताको प्राप्तहुई आत्मामें अचलविकल्परहित स्थितहोइगी तिसमें योगको अर्थात् विवेकबुद्धिको तू प्राप्तहोगा ॥ ५३ ॥

अर्जुनउवाच स्थितप्रज्ञस्यकाभाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किंप्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ५४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

प्रश्नबीजं प्रतिलभ्यार्जुनउवाच लब्धसमाधिप्रज्ञस्य लक्षणबुभुत्सया स्थितप्रज्ञस्येति स्थितप्रज्ञस्य स्थिता प्रतिष्ठिताहमस्मि परं ब्रह्मेति प्रज्ञायस्य सस्थितप्रज्ञस्तस्य स्थितप्रज्ञस्य का भाषा

किं भाषणं वचनं कथमसौ परैर्भाष्यते समाधिस्थस्य समाधौ स्थितस्य केशव स्थितधीः स्थितप्रज्ञश्चस्वयं वा किं प्रभाषेत किमासीत् व्रजेत् किं किम्भाषणं व्रजनं वा तस्य किं कथमित्यर्थः ॥५४॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

संन्यासिनो ज्ञाननिष्ठा तत्प्राप्तिवचनं प्रश्नबीजं पृच्छतोऽर्जुनस्याभिप्रायमाह लब्धेति लब्धा समाधावात्मनि समाधानेन वा प्रज्ञा परमार्थदर्शनलक्षणा येन तस्येति यावत् ननुतस्य भाषा तत्कार्य्यानुरोधिनी भविष्यति किमित्यसौ विजिज्ञास्यते तत्राह कथमिति ज्ञाननिष्ठस्य लक्षणविवक्षया प्रश्नमवतारयन् तन्निष्ठा साधन बुभुत्सया विशिनष्टि समाधिस्थस्येति तस्यैवार्थक्रियां पृच्छति स्थितधीरिति ॥ ५४ ॥

स्वामिकृतटीका ।

पूर्वश्लोकोक्तस्यात्मतत्त्वज्ञस्य लक्षणं जिज्ञासुरर्जुनउवाच स्थितप्रज्ञस्य का भाषेति स्वाभाविके समाधौ स्थितस्य अतएव स्थिता निश्चला प्रज्ञा बुद्धिर्यस्य तस्य भाषा का भाष्यते अनयेति भाषालक्षणमिति यावत् स केन लक्षणेनस्थितप्रज्ञ उच्यतइत्यर्थः तथा स्थितधीः किं कथं भाषणमासनं व्रजनञ्च कुर्य्यादित्यर्थः ॥ ५४ ॥

नवलभाष्य ।

अब अर्जुन पहिले कहेहुए अर्थको सुनिके प्रश्न× के बीजको प्राप्तहो प्राप्तहुईहै समाधि प्रज्ञा जिसको ऐसेपुरुषके लक्षणके जाननेकी इच्छाकरके पूछताहै कि [स्थितप्रज्ञस्येति] हेभगवन् स्थितहुई है मैंही परब्रह्महूं ऐसी बुद्धि जिसकी ऐसा जो स्थितप्रज्ञ समाधिमें स्थितपुरुष तिसका क्यालक्षण है अर्थात् कौनचिह्नसे ऐसापुरुष जानाजाताहै और जिसपुरुषकी बुद्धि स्थिरहुईहै वह कैसे बोलताहै और कैसे स्थितहोताहै और कैसे गमनकरताहै अर्थात् वहज्ञानी पुरुष सम्भाषणादि लौकिकक्रियाओंमें कौन रीतिसे प्रवृत्त होताहै ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

स्थितप्रज्ञस्य लक्षणमनेन श्लोकेन पृच्छति यो ह्यादित एव संन्यस्य कर्माणि ज्ञानयोगनिष्ठा

× प्रश्नका बीज यहहै कि भगवान्ने जब कि यहकहा कि और शास्त्रोंके सुनने से विरोधको प्राप्त चंचलहुई तेरीबुद्धि जब समाधिमें अचल स्थितहोगी तब तू योग को प्राप्तहोगा तब अर्जुनने यह विचारकिया कि मेरी तो बुद्धि जब स्थिरहोगी तब होगी अभी तो जिनपुरुषोंकी समाधिमें बुद्धि स्थितहोईरहीहै तिनका लक्षण और आचरण पूछनाचाहिये जिसको सुनिके मेरी उत्कण्ठाहोय और यहभी जानाजाय कि मेरी शक्ति है कि नहीं ॥

थां प्रवृत्तो यश्च कर्मयोगेन तयोः स्थितप्रज्ञस्येतिप्रजहातीत्यारभ्याध्यायपरिसमाप्ति पर्य्यन्तं स्थितप्रज्ञलक्षणं साधनञ्चोपदिश्यते सर्वत्रैव ह्याध्यात्मशास्त्रे कृतार्थलक्षणानि यानि तान्येव साधनान्युपदिश्यन्ते यत्नसाध्यत्वात् यानि यत्नसाध्यानि साधनानि लक्षणानि भवन्तितानि श्रीभगवानुवाच प्रजहातीति प्रजहाति प्रकर्षेण जहाति परित्यजति यदा यस्मिन् काले सर्वान् समस्तान् कामान् इच्छाभेदान् हेपार्थ मनोगतान् मनसि प्रविष्टान् हृदि प्रविष्टान् सर्वकामपरित्यागे तुष्टिकारणाभावाच्छरीरधारणनिमित्तशेषे च सत्युन्मत्तप्रमत्तस्येव प्रवृत्तिः प्राप्तेत्यत उच्यते आत्मनि एव प्रत्यगात्मस्वरूप एवात्मना स्वेनैव वाह्यलाभनिरपेक्षस्तुष्टः परमार्थदर्शनामृतरसलाभेनान्यस्मादलं प्रत्ययवान् स्थितप्रज्ञः स्थिता प्रतिष्ठितात्मानात्मविवेकजा प्रज्ञा यस्य स स्थितप्रज्ञो विद्वांस्तदोच्यते सक्तपुत्रवित्तलोकेषणः संन्यासी आत्मारामः आत्मक्रीड़ः स्थितप्रज्ञ इत्यर्थः॥ ५५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

प्रश्नाक्षराणि व्याख्याय वाक्यार्थमाह स्थितप्रज्ञस्येति प्रतिवचनमवतारयितुं पातनिकां करोति यो हीति हि शब्देन कर्मसंन्यासकारणीभूतविरागता सम्पत्तिः सूच्यते आदितो ब्रह्मचर्य्यावस्थायामिति यावत् ज्ञानमेव योगो ब्रह्मात्मभावप्रापकत्वात् तस्मिन्निष्ठा परिसमाप्तिस्तस्यामित्यर्थः कर्मैव योगस्तेन कर्माण्यसंन्यस्य तन्निष्ठायामेव प्रवृत्त इतिशेषः ननु तत्कथमेकेन वाक्येनार्थद्वयमुपदिश्यते द्वैधार्थे वाक्यभेदान्नचलक्षणमेव साधनंकृतार्थलक्षणस्य स्वरूपत्वेन फलत्वे साधनत्वानुपपत्तेरिति तत्राह सर्वत्रैवेति यद्यपि प्रकृतार्थस्य ज्ञानिनो ज्ञानलक्षणं तद्रूपेण फलत्वन्नसाधनत्वमधिगच्छति तथापि जिज्ञासोस्तदेव प्रयत्नसाध्यतया साधनं सम्पद्यते लक्षणञ्चात्र ज्ञानसामर्थ्यलब्धमनूद्यते न विधीयतेविदुषोः विधिनिषेधागोचरत्वात्तेनजिज्ञासोः साधनानुष्ठानाय लक्षणानुवादादेकस्मिन्नेवसाधनानुष्ठाने तात्पर्य्यमित्यर्थः उक्तेर्थे भगवद्वाक्यमुत्थापयति यानीति लक्षणानिच ज्ञानसामर्थ्यलभ्यान्ययत्नसाध्यानीति शेषः स्थितप्रज्ञस्य का भाषेति प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाहप्रजहातीति कामत्यागस्य प्रकर्षो वासनाराहित्यं कामानामात्मनिष्ठत्वं केचिदिष्यते तदयुक्तं तेषां मनो निष्ठत्व श्रुतेरित्याशयवानाह मनोगतानिति आत्मन्येवात्मनेत्याद्युत्तरभागनिरस्यञ्चोद्यमनुवदति सर्वकामेति तर्हि प्रवर्त्तकाभावाद्विदुषः सर्वप्रवृत्तेरुपशांतिरिति नेत्याहशरीरेति उन्मादवानुन्मत्तो विवेकविरहितबुद्धिभ्रमभागी प्रकर्षेण मदमनुभवन् विद्यमानमपि विवेकं निरसयन् भ्रान्तवद्व्यवहरन् प्रमत्त इति विभागः उत्तरार्द्धमवतार्य्य व्याकरोतिउच्यत इति आत्मन्येवेत्येवकारस्यात्मनेत्यत्रापि सम्बन्धं द्योतयति स्वेनैवेति बाह्यलाभनिरपेक्षत्वेन तुष्टिमेव स्पष्टयति परमार्थेति स्थितप्रज्ञपदं विभजते स्थितेति प्रज्ञाप्रतिबन्धक सर्वकामविरामावस्था तदेति निर्दिश्यते उक्तमेव प्रपञ्चयति त्यक्तेति आत्मानं जिज्ञासमानो वैराग्यद्वारा सर्वैषणात्यागात्मकं संन्यासमासाद्य श्रवणाद्यावृत्त्या तज्ज्ञानं प्राप्यतस्मिन्न वासक्त्या विषयवैमुख्येन तत् फलभूतां परितुष्टिं तत्रैव प्रतिलभमानः स्थितप्रज्ञव्यपदेशभागीत्यर्थः॥ ५५ ॥

स्वामिकृतटीका।

अत्र च यानि साधकस्य ज्ञानसाधनानि तान्येव स्वाभाविकानि सिद्धस्य लक्षणानि अतः सिद्धस्य लक्षस्य लक्षणानि कथयन्नेवान्तरङ्गानि ज्ञानसाधनान्याह यावदध्यायसमाप्तितच प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह प्रजहातीति द्वाभ्यां मनसि स्थितान् कामान् यदा प्रक

र्षाञ्जहाति त्यागे हेतुमाह आत्मनीति आत्मन्येव स्वस्मिन्येव परमानन्दस्वरूप आत्मनास्वयमेव तुष्ट इत्यात्मारामः सन् यदा क्षुद्रविषयाभिलाषांस्त्यजति तदा तेन लक्षणेन मुनिः स्थितप्रज्ञ उच्यते ॥ ५५ ॥

नवलभाष्य।

जो [स्थितप्रज्ञस्य] इत्यादि श्लोककरके अर्जुन स्थितप्रज्ञका अर्थात् जिसकी बुद्धि स्थिरहुई है तिसकालक्षण पूछताहै तहां स्थितप्रज्ञ दोप्रकारकाहै एक तो ब्रह्मचर्य्यावस्थाहीसे तीव्रवैराग्यहोने से सबकर्मोंको त्यागकरके ज्ञानयोगनिष्ठामें प्रवृत्तहुआ स्थितप्रज्ञकहाताहै और एककर्मयोगकरके शुद्धान्तःकरणहुआ स्थितप्रज्ञहोनेवालाहै तिसमें [प्रजहाति] इसश्लोकसे लेकरके अध्यायकी समाप्तिपर्य्यन्त स्थितप्रज्ञका लक्षण औ साधन येदोनों कहेजाते हैं क्योंकि सबजगहही आत्मज्ञानशास्त्रमें जे कृतार्थ पुरुषके अर्थात् सिद्धावस्थाको प्राप्तहुएपुरुषके लक्षणहैं तेई मुमुक्षुकेलिये साधनरूप करके उपदेश कियेजाते हैं क्योंकि जे यत्नसाध्यहोयँ वे साधनकहातेहैं और जे ज्ञानीके स्वरूपहीमें स्थितहोयँ वे लक्षणकहाते हैं तिनको भगवान्कहते हैं [प्रजहातीति] हेअर्जुन जिससमयमें योगी हृदयमें प्रविष्टहुए जे सम्पूर्ण काम अर्थात् नानाप्रकारकी इच्छा तिन्होंको परित्यागकरताहै नकहौ कि जब सबकामोंका त्यागहोगया तौ कोई हर्षकाकारण तौ रहानहीं जिससे मनको सन्तोषहोय और शरीरधारणमें निमित्त प्रारब्धकर्म अभी शेषरहा हीहै तौ जबतक ज्ञानीजीवैगा तबतक उसकी सिद्धीकेतरह कर्मोंमें प्रवृत्ति प्राप्तहुई इससे कहते हैं (आत्मन्येवेति) वाह्यविषयोंकी अपेक्षा नहींकरता हुआ अपनेस्वरूपही में आपही सन्तुष्ट जो होरहा है अर्थात् परमार्थदर्शन अमृतरसलाभकरके नाम सत्यरूप आत्माका जो ज्ञान सो हुआ अमृतरस तिसके लाभकरके आत्मासे अन्यपदार्थमें सुख बुद्धिको त्यागकररहाहै सो स्थितप्रज्ञ उससमय में कहाजाता है अर्थात् स्थिरहुई है आत्म अनात्म विवेकसे प्रज्ञाबुद्धि जिसकी ऐसाजोज्ञानी सो तिससमयमें स्थितप्रज्ञ कहा जाताहै अर्थात् त्यागकरी हैं पुत्र और धन और लोक इन्होंकी एषणा इच्छा जिसने ऐसा जो आत्माराम आत्मक्रीड़ संन्यासी सो स्थितप्रज्ञहै यह निष्कृष्ट अर्थ है अर्थात् सिद्धान्त अर्थहै ॥ ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीत रागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च दुःखेष्विति दुःखेष्वाध्यात्मिकादिषु प्राप्तेषु नोद्विग्नं न प्रक्षुभितं दुःखप्राप्तौ मनो यस्य सोऽयमनुद्विग्नमनाः तथा सुखेषु प्राप्तेषु विगतास्पृहा तृष्णा यस्य नाग्निरिवेन्धनाद्याधाने सुखान्यनुवर्द्धते स विगतस्पृहःवीतरागभयक्रोधः रागश्च भयञ्च क्रोधश्च वीता विगता रागभयक्रोधा यस्मात् स वीतरागभयक्रोधः स्थितधीः स्थितप्रज्ञो मुनिः संन्यासी तदुच्यते ॥ ५६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

लक्षणभेदानुवादद्वारा विविदिषोरेव कर्तव्यान्तरमुपदिशति किञ्चेति ज्वरशिरोरोगादिकृतानि दुःखान्याध्यात्मिकानि आदिशब्दे नाधिभौतिकानि व्याघ्रसर्पादिप्रयुक्तान्याधिदैविकानि चातियातवर्षादिनिमित्तानि दुःखानि गृह्यन्ते तेषूपलब्धेष्वपि नोद्विग्नमनोयस्य स तथेति सम्बन्धः नोद्विग्नमित्येतद्व्याचष्टे न प्रक्षुभितमिति दुःखानामुक्तानां प्राप्तौपरिहारात्तमस्य तदनुभवपरिभावितं दुःखमुद्वेगस्तेन सहितं मनो यस्य न भवति स तथेत्याह दुःखप्राप्ताविति मनो यस्य नोद्विग्नमिति पूर्वेण सम्बन्धः सुखान्यपि दुःखवत्त्रिविधानीतिमत्वा तथेत्युक्तं तेषु प्राप्तेषु सत्सु तेभ्यो विगता स्पृहातृष्णा यस्य स विगतस्पृहइति योजना अज्ञस्य हि प्राप्तानि सुखान्यनुविवर्द्धते तृष्णाविदुषस्तु नैवमित्यत्रवैम्यदृष्टान्तमाह नाग्निरिवेति यथा हि दाह्यस्येन्धनादेरभ्याधाने वह्निर्विवर्द्धते तथाज्ञस्य सुखान्युपगतान्यनुविवर्द्धमानापि तृष्णा विदुषो न तान्यनुविवर्द्धते नहिं वह्निरदाह्यमुपगतमपि दग्धुंविवृद्धिमधिगच्छति तेन जिज्ञासुना सुखदुःखयोस्तृष्णोद्वेगौ न कर्तव्यावित्यर्थः रागादयस्तुतेन कर्तव्या न भवन्तीत्याह वीतेति अनुभूताभिनिवेशे विषयेषु रञ्जनात्मकस्तृष्णाभेदो रागः परेणापकृतस्य चात्र नेत्रादिविकारकारणं भयं क्रोधस्तु परवशीकृत्यात्मानं स्वपरापकारवृत्तिहेतुर्बुद्धिवृत्तिविशेषः ननु ते इति मुनिरात्मविदित्यंगीकृत्याह संन्यासीति सुखदुःखादिविषय तृष्णादेरागादेश्चाभावावस्था तदेत्युच्यते ॥ ५६ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च दुःखेष्विति दुःखेषु प्राप्तेष्वपि अनुद्विग्नं संक्षुभितं मनो यस्य सः सुखेषु विगतास्पृहा यस्य सः तत्र हेतुर्वीता अपगता रागभय क्रोधा यस्मात् तत्र रागः प्रीतिः समुनिःस्थितधीरुच्यते ॥ ५६ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जो आध्यात्मिक मनः सन्तापादि और आधि भौतिक ज्वरादि और आधिदैविक धन पुत्रादि नाश इनतीनोंप्रकारके दुःखोंके प्राप्त होतेभी नहीं उद्वेगयुक्त नहीं क्षोभकोप्राप्त अर्थात् नहीं आत्मध्यानसे चलायमान हुआहै मन जिसका और इंद्रियभोग रूपसुखोंकी प्राप्तिमें नहीं है स्पृहातृष्णा जिसको अर्थात् जैसे प्रज्वलितअग्निमें घृतइंधनादि डालाजावे तो वहअग्नि जैसे बृद्धिको प्राप्तहोय तैसे विषयभोगोंकी प्राप्तिमें अज्ञपुरुषों के सदृश जिसकी तृष्णा बृद्धिको प्राप्त न होय और विगत हुएहैं राग और भय और क्रोध जिससे ऐसाजो मननशीलज्ञानी सो स्थितधीअर्थात्स्थिर बुद्धि कहाजाता है ॥ ५६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत् प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति नद्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च यः सर्वत्रेति यो मुनिः सर्वत्र देहजीवितादिष्वप्यनभिस्नेहः स्नेहवर्जितः तत्तत्प्राप्य शु-

भासुभं तत्तच्छुभमशुभं वा लब्ध्वा नाभिनन्दति नद्वेष्टिशुभं प्राप्य न तुष्यति न हृष्यत्यशुभञ्च प्राप्य नद्वेष्टि इत्यर्थः तस्यैवं हर्षविषादवर्जितस्य विवेक जा प्रज्ञा प्रतिष्ठिता भवति ॥ ५७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

लक्षभेदानुवादद्वारा विविदिषोरेव कर्त्तव्यान्तरमुपदिशति किञ्चेति विवेकवतो विदुषोविवेकजन्या प्रज्ञा कथं प्रतिष्ठां प्रतिपद्यतामित्याशङ्क्याह यः सर्वत्रेति ननु देहजीवनादौ स्पृहा शुभाशुभप्राप्तौ हर्षविषादौ विदुषो विविदिषोश्चावर्जनीयो इति प्रज्ञा स्थैर्यासिद्धिस्तत्राह यो मुनिरिति तत्तदिति शोभनवत् नाशोभनवत्वेन वा प्रसिद्धत्वं प्रतिनिर्दिश्यतेतदेव विभजते शुभमिति विषयेष्वभिषंगाभावः शुभादिप्राप्तौ हर्षाद्यभावश्च प्रज्ञा स्थैर्य्यकारणमित्याह तस्येति ॥ ५७ ॥

स्वामिकृतटीका।

कथं भाषेतेत्यस्योत्तरमाह य इति यः सर्वत्र पुत्रमित्रादिष्वपि अनभिस्नेहः स्नेहशून्यः अतएवाधितानुवृत्या तत्तच्छुभमनुकूलं प्राप्य नाभिनन्दति न प्रशंसति अशुभं प्रतिकूलं प्राप्य नद्वेष्टि न निन्दति किन्तु केवलमुदासीन एव भाषते तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठितेत्यर्थः ॥ ५७ ॥

नवलभाष्य।

और जो पुरुष सबजगह अर्थात् देहके जीवनादिकोंमें भी स्नेह रहित है और तौन तौन शुभ और अशुभको प्राप्तहोके न हर्षकरता है और न द्वेष करताहै अर्थात् अनुकूल सुखदाईवस्तुको प्राप्तहोके नतौ हर्षको प्राप्तहोय और प्रतिकूल दुःखदवस्तुको प्राप्तहोके जो अप्रसन्न नहोय तिस हर्षविषाद रहित पुरुषकी विवेकसे उत्पन्नहुई जो बुद्धि सो स्वरूपमें प्रतिष्ठितहोती है अर्थात् स्थिरहोतीहै ॥ ५७ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽगानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च यदा संहरत इति यदा संहरते सम्यक् उपसंहरते चायं ज्ञाननिष्ठायां प्रवृत्तो यतिः कूर्मोऽगानीव सर्वशः यथा कूर्मोभयात् स्वान्यंगान्युपसंहरति सर्वतः एवं ज्ञाननिष्ठ इन्द्रियार्थेभ्यः सर्वविषयेभ्ये उपसंहरते तस्यप्रज्ञा प्रतिष्ठितेत्युक्तार्थं वाक्यम् ॥ ५८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

जिज्ञासोरेव कर्त्तव्यान्तरं सूचयति किञ्चेति इन्द्रियाणां विषयेभ्यो वैमुख्यस्य प्रज्ञा स्थैर्य्यकारणत्वादादौ जिज्ञासुना तदनुष्ठेयमित्याह यदेति मुमुक्षुणा मोक्षहेतुं प्रज्ञां प्रार्थयमानेन सर्वेभ्यो विषयेभ्यः सर्वाणीन्द्रियाणि विमुखानि कर्त्तव्यानीति श्लोकव्याख्यानेन कथयति यदेत्यादिना उपसंहारः स्ववशत्वापादनं तस्य च सम्यक्त्वमति दृढ़त्वम् अयमिति प्रकृतास्थितप्रज्ञग्रहणं व्यावर्त्तयति ज्ञाननिष्ठायामिति इन्द्रियोपसंहारस्य प्रलयरूपत्वं व्यावर्त्य सङ्कोचात्मकत्वं दृष्टान्तेन दर्शयति कूर्म इति दृष्टान्तं व्याकरोति यथेति

दार्ष्टान्तिके योजयन् ज्ञाननिष्ठापदं तत्र प्रवर्त्तयति एवमिति इन्द्रियाणां विषयेभ्यो वैमुख करणं प्रज्ञास्थैर्यहेतुरित्युक्तमुपसंहरति तस्येति ॥ ५८ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च यदेति यदा चायं योगी इन्द्रियार्थेभ्यः शब्दादिभ्यः सकाशादिन्द्रियाणि संहरते प्रत्याहरति अनायासेन संहारे दृष्टान्तमाह कूर्म इति अंगानि करचरणादीनि कूर्मो यथा स्वभावे नैवाकर्षति तद्वत् ॥ ५८ ॥

नवलभाष्य।

और हेअर्जुन ज्ञाननिष्ठामें प्रवृत्तजो संन्यासी सो जैसे कछुआ भयके कारणसे अपने अंगोंको समेट लेताहै ऐसे विषयों से इन्द्रियोंको उपसंहार करलेवै अर्थात् खैंचलेय तौ तिसकीबुद्धि स्थिरकहीजाती है ॥ ५८ ॥

विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परंदृष्ट्वा निवर्त्तते ॥ ५९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तत्र विषयमाननाहरत आतुरस्यापि इन्द्रियाणि निवर्त्तन्ते कूर्मोंगानीव संह्रियते नतु तद्विषयो रागः स कथं संह्रित इत्युच्यते विषया इति यद्यपि विषयोपलक्षितानि विषयशब्दवाच्यानीन्द्रियाण्यथवा विषया एव निराहारस्य अनाह्रियमाणविषयस्य देहिनः कष्टेन तपसि स्थितस्य मूर्खस्यापि निवर्त्तन्ते देहिनो देहवतः रसवर्जं रसोरागो विषयेषु यः तंवर्जयित्वा रसशब्दो रागे प्रसिद्धः स्वच्छन्दतः स्वरसेन प्रवृत्तौ रसिको रसज्ञ इत्यादि दर्शनात् सोऽपि रसो रञ्जनरूपसूक्ष्मोऽस्य यतः परं परमार्थतत्त्वं ब्रह्म दृष्ट्वोपलभ्याहमेव तदिति वर्त्तमानस्य निवर्त्तते निर्बीजं विषयविज्ञानं सम्पद्यते इत्यर्थः नासतिसम्यग्दर्शने रसस्य उच्छेदस्तस्मात् सम्यग्दर्शनात्मिकायाः स्थैर्य्यं कर्त्तव्यमित्यभिप्रायः ॥ ५९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

इन्द्रियाणां विषयेभ्यो वैमुख्येपि तद्विषयारागानुवृत्तौ कथं प्रज्ञालाभः स्यादिति शङ्कते तत्रेति व्यवहारभूमिः सप्तम्यर्थः विषयमाननाहवतस्तदुपभोगविमुखस्येत्यर्थः रागश्चेन्नो पसंह्रियते न तर्हि प्रज्ञालाभः सम्भवति रागस्य तत्परिपान्थत्वादिति मत्वाह स कथमितिरागानिवृत्त्युपायमुपदिशन्नुत्तरमाह उच्यत इति विषयोपभोगपराङ्मुखस्य कुतो विषयपरावृत्तिस्तत्परावृत्तिश्चाप्रस्तुतेत्याशङ्क्याह यद्यपीति निराहारस्येत्यस्य व्याख्यानमना ह्रियमाणविषयस्येति यो हि विषयप्रवणो न भवति तस्यात्यान्तिके तपसि क्लेशात्मके अवस्थितस्यविद्याहीनस्यापीन्द्रियाणि विषयेभ्यः सकाशाद्यद्यपि संह्रियन्ते तथापि रागोविशिष्यते स च तत्त्वज्ञानादुच्छिद्यत इत्यर्थः रसशब्दस्य माधुर्य्यादि षडविध रसविषयत्वं निषेधति रसशब्द इति वृद्धप्रयोगमन्तरेण कथं प्रसिद्धिरित्याशङ्क्याह स्वरसेनेति स्वेच्छयेति यावत्रसिकः स्वेच्छावांश्च वर्त्तो रसज्ञो विवक्षितापेक्षितज्ञातेत्यर्थः कथंतर्हि तस्य निवृत्तिस्तत्राह सोऽपीति दृष्टिमेवोपलब्धि पर्य्यायां स्पष्टयति अहमेवेति रागापगमे सिद्धमर्थमाहनिर्बीजमिति ननु सम्यग्ज्ञानमन्तरेण रागो नापगच्छति चेत् तदपगमात्तु ते रागवतः सम्यग्ज्ञानोदयायोगादितरेतराश्रयतेति नेत्याह नासतीति इन्द्रियाणां विषयपार

वश्ये विवेकद्वारा परिहृते स्थूलो रागो व्यावर्तते ततश्च सम्यग्ज्ञानोत्पत्त्या सूक्ष्मस्यापि रागस्य सर्वात्मना निवृत्त्युपपत्तेरितरेतराश्रयतेत्यर्थः प्रज्ञा स्थैर्य्यस्य सफलत्व स्थिते फलित माह तस्मादिति ॥ ५६ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु नेन्द्रियाणां विषये प्रवृत्तिः स्थितप्रज्ञस्य लक्षणं भवितुमिति जडानामातुराणा मुपवासपराणाञ्च विषयेष्वप्रवृत्तेरविशेषात्तत्राह विषया इति इन्द्रियैर्विषयाणामाहरणं ग्रहणमाहारः निराहारस्य इन्द्रियैर्विषयग्रहणमकुर्वतो देहिनो देहाभिमानिनोऽज्ञस्य विषयाः प्रायशो विनिवर्तन्ते तदनुभवो निवर्तत इत्यर्थः किन्तु रसो रागोऽभिलाषस्तद्वर्जम् अभिलाषश्च न निवर्तत इत्यर्थः रसोऽपि रागोऽपि परं परमात्मानं दृष्ट्वास्य स्थितप्रज्ञस्य स्वतो निवर्ततेनश्यतीत्यर्थः यद्वा निराहारस्य उपवास परस्य विषयाः प्रायशो निवर्तन्ते क्षुधासन्तप्तस्य शब्दस्पर्शाद्यपेक्षाभावात् किन्तु रसवर्जं रसापेक्षा तु न निवर्तत इत्यर्थः शेषं समानम् ॥ ५६ ॥

नवलभाष्य।

तहां यह आशंकाहोतीहै कि जैसे विषयोंका सेवन नहींकरताहुआ जो रोगी तिसकी भी इन्द्रियां विषयोंसे खिंचीहुईनिवृत्तहोती हैं जैसे कछुआ के अंग समिटजातेहैं और विषयोंकाराग नहीं निवृत्तहोता है तो वहभी स्थितप्रज्ञ होजायगा इसआशंकाको निवृत्तकरतेहुए कहते हैं कि [विषया- इति] हेअर्जुन इन्द्रियोंसे विषयोंका आहरणप्रापण नहीं करताहुआ जो पुरुष तिसके दर्शनस्पर्शनादिक विषय तौ निवृत्तहोजाते हैं परन्तु उनविषयोंमें रस जो राग अर्थात् अभिलाष तिसकोछोड़के जैसे कोई बड़ेकष्टसे इन्द्रियोंको बशकरके तपमें प्रवृत्तहुआ तौ उससमयके विषयों के भोग की इच्छा तौ शास्त्रमें श्रद्धाके आधिक्यसे निवृत्तहोजातीहै परन्तु उसतपकरके होनेवाला जो राज्यादिभोग तिसमें बासना बनीरहती है सो भी बासना अपनास्वरूप भूत जो परमात्मा परब्रह्म तिसको देखके अर्थात् सो मैं हीहूं ऐसा साक्षात्कारकरके निवृत्तहोजातीहै अर्थात् विषयका विज्ञान निर्वीज होजाताहै तिससे बिनासम्यग्दर्शनके रसशब्द वाच्य सूक्ष्मबासनाकी निवृत्ति नहीं है तिससे सम्यग्दर्शन अर्थात् परमात्मदर्शन के बुद्धिकी स्थिरता अवश्य कर्त्तव्य है जिसको आत्मदर्शन बुद्धिकी स्थिरतासे सूक्ष्मबासनाभी निवृत्तहोगई है वोही स्थितप्रज्ञहै यहअभिप्रायहै ५९ ॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

शङ्करभाष्यम्।

सम्यग्दर्शनलक्षणं प्रज्ञास्थैर्य्यं चिकीर्षता आदाविन्द्रियाणि स्ववशे स्थापयितव्यानि यस्मात् तदनवस्थापने दोषमाह यतत इति यततः प्रयत्नं कुर्वतोऽपि हि यस्मात् अपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितोमेधाविनोऽपीति व्यवहितेन सम्बन्धःइन्द्रियाणि प्रमाथीनि प्रमथनशीलानि विषया

भिमुखं हि पुरुषं विक्षोभयन्त्याकुलीकुर्वन्त्याकुलीकृत्य च हरन्ति प्रसभं प्रसह्यप्रकाशमेव पश्यतो विवेक विज्ञानयुक्तं मनो यतस्तस्मात् ॥ ६० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

श्लोकान्तरमवतारयति सम्यग्दर्शनेति मनसः स्ववशत्वादेव प्रज्ञस्थैर्य्यसम्भवे किमर्थमिन्द्रियाणां स्ववशत्वापादनमित्याशङ्क्याह ननु विवेकवतो विषयदोषदर्शिनो विषयेभ्यःस्वयमेवेन्द्रियाणि व्यावर्तन्ते किं तत्र प्रज्ञास्थैर्य्यचिकीर्षता कर्त्तव्यमिति तत्राह यततोहीतिविषयेषु भूयो दोषदर्शनमेव प्रयत्नः हि शब्दस्य यस्मादर्थस्य समाप्तौ सम्बन्धं दर्शयति अपिशब्दस्य प्रयत्नं कुर्वतोऽपीति सम्बन्धं गृहीत्वा सम्बन्धान्तरमाह पुरुषस्येति प्रमथनशीलत्वंप्रकटयति विषयेति विक्षोभस्याकुलीकरणस्य फलमाह आकुलीकृत्येति प्रकाशमेवेत्युक्तं विशदयति पश्यत इति विपश्चितो विदुषोऽपि प्रकाशमेव प्रकाशशब्दितविवेकाख्यविज्ञानयुक्तमेव मनो हरन्तीन्द्रियाणीति सम्बन्धः हि शब्दार्थं मनुद्यतस्मादिन्द्रियाणि स्ववशे स्थापयितव्यानीति पूर्वेणसम्बन्धमभिसन्धायाह यतस्तस्मादिति ॥६०॥

स्वामिकृतटीका।

इन्द्रियसंयमं विनास्थितप्रज्ञता न सम्भवति अतः साधकावस्थायां तत्र महान प्रयत्नः कर्तव्य इत्याह यततोऽपीति द्वाभ्यां यततो मोक्षार्थं प्रयतमानस्य विपश्चितो विवेकिनोऽपि मन इन्द्रियाणि प्रसभं बलाद्धरन्ति यतः प्रमाथीनि प्रमथनशीलानि क्षोभकाणीत्यर्थः ॥ ६० ॥

नवलभाष्य।

अब यहप्रतिपादन करतेहैं कि सम्यग्दर्शनहै अर्थात् परमार्थज्ञान है स्वरूप जिसका ऐसी बुद्धिकी स्थिरताकरनेकी इच्छाकरताहुआ जो पुरुष तिसको प्रथम इंद्रिय अपने बशमें स्थापनकरनाचाहिये जिससे इंद्रिनको बिना अपनेबशमें स्थापनकिये दोषहोताहै इसआशयसे कहते हैं [यततः इति] जिससे हे अर्जुन यत्नकरताहुआ और विवेकवती बुद्धिकरकेयुक्तभी जो पुरुष तिसके भी मनको मथनकरनेका स्वभाव जिन्होंका ऐसी जे इंद्रियां ते विषयोंके सेवनकरनेको उद्यत जो पुरुष तिसको व्याकुलकरके बलात्कारकरके उसपुरुषके देखते देखते विवेकज्ञान युक्तभी उसके मनको हरतीहैं अर्थात् विषयोंमें प्राप्तकरतीही हैं ॥ ६० ॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तानीति तानि सर्वाणि संयम्य संयमनं वशीकरणं कृत्वा युक्तः समाहितः संन्यासी मत्परोऽयं वासुदेवः सर्वप्रत्यगात्मापरो यस्य स मत्परः नान्योऽहं तस्मादित्यासीतेत्यर्थः एवमासीनस्य यतेर्वशे हि यस्येन्द्रियाणि वर्तन्ते अभ्यासवशात् तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

इन्द्रियाणां स्ववशत्वसम्पादनानन्तरं कर्तव्यमर्थमाह तानीति स्ववमासीनस्य किं

स्यादितितदा ह्यवशे हीति समाहितस्य विक्षेपविकलस्य कथमासनमित्यपेक्षायामाह मत्पर इति परापरभेदशङ्कामपाकृत्यासनमेव स्फोरयति नान्योऽहमिति उत्तरार्द्धं व्याकरोति एवमिति हि शब्दार्थं स्फुटयति अभ्यासेति परस्मादात्मनो नाहन्योऽस्मीति प्रागुक्तानुसन्धानस्यादरेण नैरन्तर्य्यदीर्घकालानुष्ठानसामर्थ्यादित्यर्थः अवशा विषयेषु दोषदर्शनाभ्यासवसामर्थ्यादिन्द्रियाणि संयतानीत्यर्थः ॥ ६१ ॥

स्वामिकृतटीका ।

यस्मादेवं तस्मात् तानीति युक्तो योगी तानीन्द्रियाणि संयम्य मत्परः संन्यासीत यस्य वशे वशवर्तिनीन्द्रियाणि एतेन च कथमासीतेति प्रश्नस्य वशीकृतेन्द्रियः संन्यासीतेत्युत्तरं भवति ॥ ६१ ॥

नवलभाष्य ।

तिससे तिनसब इंद्रियोंको बशकरके युक्त अर्थात् एकाग्रचित्त संन्यासी मत्परः मैंहीहूं आश्रयणीय जिसको अर्थात् वासुदेवही सर्व प्रत्यगात्मस्वरूपहै अर्थात् सबजीवरूपहै इससे मैं भी वासुदेव स्वरूपही हौं इसप्रकार करके जो संन्यासी अभ्यासबशसे स्थितरहताहै तिसकी प्रज्ञाबुद्धि प्रतिष्ठित अर्थात् स्थिर कहाती है ॥ ६१ ॥

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात् संजायतेकामःकामात् क्रोधोऽभि जायते॥६२॥

शङ्करभाष्यम् ।

अथेदानीं परा भविष्यत सर्वानर्थमूलमिदमुच्यते ध्यायत इति ध्यायतश्चिन्तयतो विषयान् शब्दादिविषयविशेषान् आलोचयतः पुंसः पुरुषस्यसंग आसक्तिः प्रीतिः तेषु विषयेषूपजायते उत्पद्यते संगात् प्रीतेः संजायते समुत्पद्यते कामः तृष्णा तस्मात् कामात् कुतश्चित् प्रतिहतात् क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

समनन्तरं श्लोकद्वयस्य तात्पर्य्यमाह अथेति पुरुषार्थोपायोपदेशानन्तर्य्यमथशब्दार्थस्तन्निष्ठत्वराहित्यावस्थां दर्शयति इदानीमिति पराभविष्यतो महान्तमनर्थं गमिष्यतो विवेकविज्ञानविहीनस्येति यावत् सर्वानर्थमूलं विषयाभिध्यानं तस्य तथात्वमनुभवसिद्धमिति वक्तुमिदमित्युक्तं विषयेषु विशेषत्वमारोपितरमणी यत्व प्रीतिरासक्तिरिति साधारणा सक्तिमात्रं गृह्यते तृष्णात्युद्रिक्ता शक्तिरुक्ता प्रतिबन्धेन प्रणाशेन वा प्रतिहतिः ॥६२॥

स्वामिकृतटीका ।

बाह्येन्द्रियसंयमाभावे दोषमुक्त्वा मनः संयमाभावे दोषमाह ध्यायतोति द्वाभ्यां गुणबुद्ध्या विषयान् ध्यायतः पुंसस्तेषु संगासक्तिर्भवति आसक्त्या च तेष्वधिकः कामो भवति कामाच्च केनचित् प्रतिहतात् क्रोधो भवति ॥ ६२ ॥

नवलभाष्य ।

अब इससमयमें अनर्थको प्राप्तहोनेवाला जो मनुष्य तिसको सम्पूर्ण

अनर्थका मूल जो विषयाभिध्यान तिसको कहते हैं (ध्यायतइति) हे अर्जुन विषयोंका ध्यानकरताहुआ अर्थात् शब्दादि विषयोंमें गुणोंका विचारकरताहुआ जो पुरुष तिसकी उनगुणोंमें संगनामआसक्ति अर्थात् प्रीति उत्पन्न होताहै और उसविषयप्रीतिसे फिर काम अर्थात् तृष्णाउत्पन्नहोती है और वहीकाम किसीकारणसे प्रतिहतहोय निवारण कियाजाय अर्थात् पूर्ण न होनेपावै तो क्रोधरूपहोके प्रकटहोताहै ॥ ६२ ॥

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहोऽविवेकः कार्य्याकार्य्यविषयविभ्रमो भवतीति संबध्यते क्रुद्धो हि संमूढः सन् गुरुमप्याक्रोशति संमोहात् स्मृतिविभ्रमः शास्त्राचार्य्योपदेशाहितसंस्कारजनितायाः स्मृतेः स्याद्विभ्रमो भ्रंशः स्मृत्युत्पत्तिनिमित्तप्राप्तौ अनुत्पत्तिस्ततः स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धेर्नाशः कार्य्याकार्य्यविषयाविवेकायोग्यता अन्तःकरणस्य बुद्धेर्नाश उच्यते बुद्धिनाशात् प्रणश्यति तावदेव हि पुरुषो यावदन्तःकरणं तदीयं कार्य्याकार्य्यविषयविवेकयोग्यं तदयोग्यत्वेन नष्ट एव पुरुषो भवत्यतः तस्यान्तःकरणस्य बुद्धेर्नाशात् प्रणश्यति पुरुषार्थायोग्यो भवतीत्यर्थः ॥ ६३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

क्रोधस्य संमोहहेतुमनुभवेन दृढयति क्रुद्धो हीति आक्रोशत्यविचिन्त्यति तदयोग्यत्वमपेरर्थः संमोहकार्य्यं कथयति संमोहादिति स्मृतेर्निमित्तनिवेदनद्वारा स्वरूपं निरूपयति शास्त्रेति क्षणिकत्वादेव तस्याः स्वतो नाशसम्भवात्संमोहाधीनत्वं तस्येत्याशङ्क्याह स्मृतीति स्मृतिभ्रंशेऽपि कथं बुद्धिनाशः स्वरूपतः सिध्यति तत्राह कार्येति ननु पुरुषस्य नित्यसिद्धस्य बुद्धिनाशेऽपि प्रणाशो न प्रकल्प्यते तत्राह तावदेवेति कार्य्याकार्य्यविवेचनयोग्यान्तःकरणाभावे सतोऽपि पुरुषस्यकरणाभावादपगततत्त्वविवेकविवक्षया नष्टत्वव्यपदेशः तदेतदाह पुरुषार्थेति ॥ ६३ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च क्रोधादिति क्रोधात्सम्मोहः कार्य्याकार्य्यविवेकाभावः ततः शास्त्राचार्य्योपदिष्टार्थस्मृतेर्विभ्रंशो विचलनं भ्रंशः ततो बुद्धेश्चेतनानाशः वृक्षादिष्विवाभिभवः ततः प्रणश्यति मृततुल्यो भवति ॥ ६३ ॥

नवलभाष्य।

और क्रोधसे फिर संमोहनाम अविवेक होताहै अर्थात् यहकरनाचाहिये यह नहीं करनाचाहिये ऐसा विवेक भ्रान्तिबशसे नष्टहोजाता है क्योंकि क्रुद्धपुरुष मोहको प्राप्तहो गुरूकोभी गाली दे उठताहै और संमोहसे स्मृति विभ्रमहोताहै अर्थात् शास्त्र और आचार्य्य इनके उपदेशसे प्राप्तहुआ जो संस्कार तिससे उत्पन्नहुई जो स्मृतिस्मरण तिसकाभ्रंश अर्थात् नाशहोजाताहै अर्थात् स्मृतिकी उत्पत्तिके निमित्तकी प्राप्तिमें भी स्मृतिकी उत्प-

त्ति नहींहोतीहै और स्मृतिभ्रंशसे फिर बुद्धिकानाशहोताहै यहकरनाचाहि-ये यह नहीं करनाचाहिये इसप्रकारके विवेकज्ञानकी अन्तःकरणकी योग्यताका नहींहोना जो उसीको बुद्धिनाश कहते हैं और फिर इसप्रकारके बुद्धिनाशसे तो पुरुष अपने मनुष्यपनासेही नाशको प्राप्तहोता है क्योंकि तभीतक पुरुषहै जबतक जिसका अन्तःकरण करनेके योग्य और नहींकरनेयोग्य पदार्थको जाननेको समर्थहै और कार्य्याकार्य्य विवेककी योग्यताके नहींहोनेमें तो पाषाणतुल्य पुरुष नष्टहोजाताहै इससे यहां बुद्धि रूपअंतःकरणके नाशसे पुरुष नाशको प्राप्तहोताहै इसका यहतात्पर्य्यहै कि पुरुषार्थ योग्य नहीं रहताहै ॥ ६३ ॥

रागद्वेषविमुक्तैस्तु बिषयानीन्द्रियैश्चरन् ॥
आत्मवश्यैर्विधेयात्म प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

सर्वानर्थस्य मूलमुक्तं विषयाभिध्यानमथेदानीं मोक्षकारणमिदमुच्यते रागद्वेषेति रागद्वेषवि मुक्तैः रागश्चद्वेषश्च रागद्वेषौ तत्पुरःसराहीन्द्रियाणां प्रवृत्तिः स्वभाविकी तत्र यो मुमुक्षुर्भवति स ताभ्यां विमुक्तैः श्रोत्रादिभिरिन्द्रियैर्विषया न वर्जनीयांश्चरन्नुपलभमानः आत्मवश्यैरात्मनो व श्यानि वशीभूतानि तैरात्मवश्यैर्विधेयात्सेच्छातो विधेय आत्मान्तःकरणं यस्य सोऽयं प्रसादम धिगच्छति प्रसादः प्रसन्नता स्वास्थ्यम् ॥ ६४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

विषयाणां स्मरणमपि चेदनर्थकारणं सुतरां तर्हि भोगस्तेन जीवनार्थं भुञ्जानोवि षयाननर्थं कथं न प्रतिपद्यत इत्याशङ्क्य वृत्तानुवादपूर्वकमुत्तरश्लोकतात्पर्य्यमाह सर्वा नर्थस्येति अनर्थमूलकथनानन्तर्य्यमथशब्दार्थः परिहर्तव्ये निर्णीते सति तत्परिहारोपा यजिज्ञासां दर्शयति इदानीमिति रागद्वेषपूर्विका प्रवृत्तिरित्यत्रानुभवदर्शनार्थो हिशब्दः शास्त्रीयप्रवृत्ति व्यासेधार्थं स्वाभाविकीत्युक्त तत्रेत्यधिकृतानधिकृत्य प्रयोगो वर्जनीयानश नपानादीन् देहस्थितिहेतूनिति यावत् इन्द्रियाणां विषयेषु प्रवृत्तिश्चेन्नियमानुपपत्या वर्ज नीयेष्वपि सा स्यादित्याशङ्क्याह आत्मेति अन्तःकरणाधीनत्वेपीन्द्रियाणां तदनियमात् तेषामपि नियमानुपपत्तिरित्याशङ्क्याह विधेयात्मेति ॥ ६४ ॥

स्वामिकृतटीका ।

नन्विन्द्रियाणां विषयप्रवणस्वभावानां निरोद्धुमशक्यत्वादयं दोषो दुष्परिहर इति स्थितप्रज्ञत्वं कथं स्यादित्याशङ्क्याह रागद्वेष इति द्वाभ्यां रागद्वेषरहितैर्विगतदर्पैरिन्द्र यैर्विषयांश्चरन्नुपभुञ्जानोऽपि प्रसादं शान्तिं प्राप्नोति रागद्वेषराहित्यमेवाह आत्मेतिआ त्मनो मनसो वश्यैरिन्द्रियैर्विधेयो वशवर्ती आत्मा मनो यस्येति अनेनैव कथं व्रजेतेत्य स्यचतुर्थप्रश्नस्य स्वाधीनैरिन्द्रियैर्विषयान् गच्छतीत्युत्तरमुक्तं भवति ॥ ६४ ॥

नवलभाष्य ।

सब अनर्थोंकामूल कारण जो विषयोंकाध्यान अर्थात् चिन्तन सो तौ कहा अब इससमयमें जो मोक्षकारण यहहै सो कहाजाता है [रागद्वेषेति]

हे अर्जुन रागद्वेषपूर्व्वकही सबकिसीकी इंद्रियोंकी प्रवृत्ति स्वाभाविकी नाम स्वभावहीसे हुआकरती हैं अर्थात् रागनाम प्रीतिकाहै और द्वेष अप्रीतिसे कहते हैं तहां इष्टमित्रादिकों में तौ संसारी मनुष्यकी प्रीतिपूर्वक मधुर भाषणादिव्यवहारमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति होती है और शत्रुओं में द्वेषपूर्वक कटुक भाषणादिव्यवहारमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिहोती है यह लोक में प्रसिद्ध है तहां मुमुक्षुपुरुष को यह उपदेश कियाजाता है कि जिसपुरुष को मोक्ष की इच्छा होवै सो पुरुष राग और द्वेष इनकरके रहित जे इन्द्रियां और फिर अपने बशीभूत होयऐसी इन्द्रियों करके बिषयों को सेवन करताहुआ अर्थात् प्रीति और द्वेष रहित हो सब पुरुषों में दर्शन स्पर्शनादि इन्द्रियों का व्यवहार करताहुआ और अपने बश में मनको भी जिसने कियाहोय ऐसा जो पुरुष सो चित्तकी प्रसन्नता को प्राप्त होताहै ॥ ६४ ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्य्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

प्रसादे सति किं स्यादित्युच्यते प्रसाद इति प्रसादे सर्व दुःखानाम् अध्यात्मिकादीनां हानिर्विनाशोऽस्य यतेरुपजायते किञ्च प्रसन्न चेतसः स्वच्छान्तःकरणस्य हि यस्मादाशु शीघ्रं बुद्धिः पर्य्यवतिष्ठते आकाशमिव परिसमन्तात् अवतिष्ठते आत्मस्वरूपेणैव निश्चली भवतीत्यर्थः एवं प्रसन्नचेतसोऽवस्थितबुद्धेः कृतकृत्यता यतस्तस्माद्रागद्वेषविमुक्तैरिन्द्रियैः शास्त्राविरुद्धेष्ववर्जनीयेषु युक्तं समाचरेदिति वाक्यार्थः ॥ ६५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तथापि नानाविधदुःखाभिभूतत्वान्न स्वास्थ्यमास्थातुं शक्यमित्याशयेनपृच्छतिप्रसाद इति श्लोकार्द्धेनोत्तरमाह उच्यत इति सर्वदुःखहान्या बुद्धिस्वास्थ्येऽपि प्रकृतं प्रज्ञास्थैर्य्यंकथं सिद्धमित्याशङ्क्याह प्रसन्नेति बुद्धिप्रसादस्यैव फलान्तरमाह किञ्चेति तस्मात् बुद्धि प्रसादार्थं प्रयतितव्यमिति शेषः श्लोकद्वयस्याक्षरोत्थमर्थमुक्त्वा तात्पर्य्यार्थमुपसंहरति एवमिति युक्तः समाहितो विषयपारवश्यशून्यः सन्निति यावत् ॥ ६५ ॥

स्वामिकृतटीका।

प्रसादे सति किं स्यादित्यत्राह प्रसाद इति प्रसादे सति सर्वदुःखनाशस्ततश्च प्रसन्नचेतसो बुद्धिः प्रतिष्ठिता भवतीत्यर्थः ॥ ६५ ॥

नवलभाष्य।

फिर चित्तकी प्रसन्नता में क्याहोता है इस आकांक्षा में कहते हैं कि (प्रसादइति) हे अर्जुन जबचित्तकी प्रसन्नता होती है तौ तौ इस जितेन्द्रिय पुरुष के सब आध्यात्मकादिक दुःखोंका नाशहीहोताहै अर्थात् किसी तरहका दुःख इसके मनमें प्रवेश नहींकरता फिर प्रसन्नहुआ है चित्तजिसका ऐसे पुरुष की बुद्धि अर्थात् निर्मल अन्तःकरण पुरुष की बुद्धिआकाश के

सदृश सबजगह स्थितहोती है अर्थात् आत्म स्वरूप करके निश्चलहोजाती है इसप्रकार प्रसन्न चित्त स्थिर बुद्धि पुरुषकी जिससे कृत कृत्यता होजाती है तिससे राग द्वेष रहित इन्द्रियों करके शास्त्रसे अविरुद्ध और अनिषिद्ध अर्थात् शास्त्रसे जिनका विरोध न होय और शास्त्रमें जिनका निषेध भी न होय ऐसे कर्मों में युक्त होके आचरण करे अर्थात् प्रवृत्त होय यह संपूर्ण वाक्य का अर्थ है ॥ ६५ ॥

नाति बुद्धिरयुक्तस्य नचायुक्तस्य भावना।
नचाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

सेऽयं प्रसन्नता स्तूयते नास्तीति नास्ति न विद्यते न भवतीत्यर्थः बुद्धिरात्मस्वरूपविषया अयुक्तस्यासमाहितान्तःकरणस्य नचायुक्तस्येति नचास्यअयुक्तस्य भावना आत्मज्ञानाभिनिवेशः तथा च नास्य भावयतः आत्मज्ञानाभिनिवेशमकुर्वतः शान्तिरुपशमो न विद्यते अशान्तस्य कुतः सुखं इन्द्रियाणां हि विषयसेवा तृष्णातो निवृत्तिर्या तत् सुखं न विषयविषया तृष्णा दुःखमेव हि सा न तृष्णायां सत्यां सत्यां सुखस्य गन्धमात्रमति उत्पद्यत इत्यर्थः ॥ ६६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

किं पुनः सा विशुद्ध्यैव यथोक्त बुद्धिः सिध्यति नेत्याह सेयमिति असमाहितस्यापि बुद्धिमात्रमुत्पद्यमानं प्रतिभातीत्याशङ्क्य विशिनष्टि आत्मस्वरूपेति नहि विक्षिप्तचित्तस्यात्मस्वरूपविषया बुद्धिरुदेतुमर्हतीत्यत्र हेतुमाह नचेति आत्मज्ञाने शब्दादापाततो जाते स्मृतिसन्तानानुकरणं साक्षात्कारार्थमभिनिवेशो भावनेति चोच्यते नचासौ विक्षिप्तबुद्धेः सिध्यतीति हेत्वर्थं विवक्षित्वाह आत्मज्ञानेति भावना द्वारा साक्षात्काराभावेऽपि का क्षतिरित्याशङ्क्याह तथेति असमाहितस्य भावनाभावादिति यावत् आत्मन्यापाततो ज्ञाते श्रवणाद्यावृत्तरूपां स्मृतिमनातन्वानोऽस्यापरोक्षबुद्ध्यभावेनानर्थनिवृत्तिः सिद्ध्यतीत्याह उपशम इति अनिवृत्तानर्थस्य परमानन्दसागराद्विभक्तस्य संसारवारिधौ निमग्नस्य सुखाविर्भावोनसम्भवतीत्याह अशांतस्येति तस्यापि विषयसेविनो वैषिकं सुखं सम्भवतीत्याशङ्क्याह इन्द्रियाणां हीति तृष्णाक्षयस्य शास्त्रप्रसिद्धमानुभविकञ्च सुखत्वमिति वक्तुं हि शब्दः विषयसेवा तृष्णायापि विषयोपभोगद्वारा सुखमुपलब्धमित्याशङ्क्याह दुःखमेवेति तत्रापि हि शब्दोऽनुभवावद्योति तदेव स्पष्टयति नेत्यादिना ॥ ६६ ॥

स्वामिकृतटीका।

इन्द्रियनिग्रहस्य स्थितप्रज्ञता साधनत्वं व्यतिरेकमुखेनोपपादयति नास्तीति अयुक्तस्यावशीकृतेन्द्रियस्य नास्ति बुद्धिः शास्त्राचार्योपदेशाभ्यामात्मविषया बुद्धिः प्रज्ञैव नोत्पद्यते कुतस्तस्याः प्रतिष्ठावार्ता इत्यत्राह नचेति नचायुक्तस्य भावना ध्यानं भावनयाहि बुद्धेरात्मनि प्रतिष्ठा भवति सा चायुक्तस्य यतो नास्ति नचाभावयत आत्मध्यानमकुर्वतः शांतिरात्मनि चित्तोपरमः अशांतस्य कुतः सुखं मोक्षानन्दः इत्यर्थः ॥ ६६ ॥

नवलभाष्य।

अबाचिककी प्रसन्नता की स्तुति की जाती है (नास्तीति) हे अर्जुन

अयुक्त जो पुरुष अर्थात् जिसका चित्त एकाग्र नहीं हुआ ऐसा जो पुरुष तिसकी आत्म विषया बुद्धि नहीं उत्पन्न होती है और उस अयुक्त पुरुषको भावना भी अर्थात् आत्मज्ञानमें तत्परताभी नहीं होती है और बिना भावनाके आत्मज्ञान आश्रयणके बिना शान्तिरूप शमभी नहीं होताहै और अशान्त पुरुषको सुखकी आशा कहां क्योंकि विषय सेवाकी तृष्णासे निवृति जो है उसको सुख कहते हैं कुछ बिषयकी तृष्णामें सुख नहीं है किन्तु तृष्णा दुःख रूपाही है तृष्णाकी विद्यमानता में सुखका लेश मात्र भी नहीं उत्पन्न होता है ॥ ६६ ॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥ ६७॥

शङ्करभाष्यम्।

अयुक्तस्य कस्माद्बुद्धिर्नास्तीत्युच्यते इन्द्रियाणामिति इन्द्रियाणां हि यस्मात् चरतां स्वविषयेषु प्रवर्तमानानां यन्मनोनुविधीयते अनुप्रवर्त्तते तादिन्द्रियविषयाविकल्पनेन प्रवृत्तं मनोऽस्य यतेर्हरति प्रज्ञात्मानात्मविवेकजां नाशयाति कथं वायुर्नावामिवाम्भस्युदके जिगमिषतां मार्गादुद्धृत्योन्मार्गे यथा वायुर्नावं प्रवर्त्तयत्येवमात्मविषयां प्रज्ञां हृत्वा मनोविषयां कल्पनां करोति॥ ६७॥

आनंदगिरिकृतटीका।

आकांक्षाद्वारा श्लोकान्तरमुत्थापयति अयुक्तस्येति विक्षिप्तचेतसो भावनाभावे साक्षात्कारलक्षणा बुद्धिर्न भवतीति हेत्वन्तरेण साधयति इन्द्रियाणामिति यत्पदोपात्तं मनस्तत्पदेनापि इन्द्रियाणां विषयाः शब्दादयस्तेषां विकल्पनं मिथो विभज्य ग्रहणं तेनेति यावत् दृष्टान्तं व्याकरोति उदकइति यस्मात् तस्मादयुक्तस्य नोत्पद्यते बुद्धिरिति योजना॥ ६७॥

स्वामिकृतटीका।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्येत्यत्र हेतुमाह इन्द्रियाणामवशीकृतानां स्वैरं विषयेषु चरतांमध्ये यदैवैकमिन्द्रियं मनोऽनुविधीयते अवशीकृतं सदिन्द्रियेण सह गच्छति तदैवैकमिन्द्रियमस्य मनसः पुरुषस्य वा प्रज्ञां हरति विषयविक्षिप्तां करोति किमुवक्तव्यंबहूनिप्रज्ञांहरन्तीति यथा प्रमत्तस्य कर्णधारस्य नावं वायुः समुद्रे सर्वतः परिभ्रामयतितद्वदिति॥ ६७॥

नवलभाष्य।

अयुक्त पुरुषको काहेसे बुद्धिउत्पन्न नहींहोतीहै इसआशंकामें कहते हैं [इन्द्रियाणामिति] हे अर्जुन जिससे अपने अपने विषयोंमें प्रवृत्तहोरहीं जे इन्द्रियां तिनमें जिसइन्द्रियके पश्चात् अर्थात् पीछे मन प्रवृत्तहोताहै वह मन इसपुरुषकी बुद्धिको हरताहै अर्थात् तिसइन्द्रियके विषयको विकल्पन करके अर्थात्उसकेगुणदोषको चिन्तनकरके इसपुरुषकी आत्मानात्मविवेकसे उत्पन्नहुई जो बुद्धि तिसकोहरताहै अर्थात् नाशकरताहै जैसे वायु जो पवन सो जलमें नौकाको अन्यत्र प्राप्तकरताहै अर्थात् चलनेकी इच्छाकर-

नेवालेपुरुषोंके मार्गसे और कुमार्गमें नौकाको डालके प्रवृत्तकरताहै ऐसेही मनआत्मविषय बुद्धिको नाशकरके विषयकल्पनाको करता है ६७ ॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यतोहीत्युपन्यस्तस्यार्थस्यानेकविधोपपत्तिमुक्त्वा तञ्चार्थमुपपाद्योपसंहरति तस्मादिति इन्द्रियाणां प्रवृत्तौ दोष उपपादितोयस्मात् तस्मात्यतेःयस्य यतेः हेमहाबाहो निगृहीतानि सर्वशः सर्वप्रकारैर्मानसादिभेदैरिन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः शब्दादिभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

यततोहीत्यादि श्लोकाभ्यामुक्तस्यैवार्थस्य प्रकृत श्लोकाभ्यामपि कथ्यमानत्वादस्ति पुनरुक्तिरित्याशङ्क्य परिहरति यततो हीत्यादीना ध्यायतो विषयानित्यादीनामुपपत्तिवचनमुन्नेयं तच्छब्दापेक्षितार्थोक्तिद्वारा श्लोकमवतारयति इन्द्रियाणामिति असमाहितेनमनसा यस्मादनुविधीयमानानीन्द्रियाणि प्रसह्य प्रज्ञामपहरन्ति तस्मादिति योजना ॥ ६८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

इन्द्रिय संयमस्य स्थितप्रज्ञत्वे साधनत्वं लक्षणत्वञ्चोक्तमुपसंहरति तस्मादिति साधनत्वोपसंहारे तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता भवतीत्यर्थः लक्षणत्वोपसंहारे तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ज्ञातव्येत्यर्थः महाबाहु इति सम्बोधयन् वैरिनिग्रहे समर्थस्य तवात्रापि सामर्थ्यं भवेदिति सूचयति ॥ ६८ ॥

नवलभाष्य ।

इसप्रकारसे [यततोह्यपि] इसश्लोककरके कहेहुए अर्थहीअनेकप्रकारसे सिद्धकरके उसकेव्याख्यानको उपसंहार अर्थात् समाप्तकरतेहुए भगवान् तात्पर्य्यको कहते हैं [तस्मादिति] हे महाबाहो हे अर्जुन जिससे इन्द्रियों की प्रवृत्तिमें दोषकहागयाहै तिससे जिस संयमीपुरुषकी इन्द्रियां सबप्रकार से अर्थात् मानसादि भेदकरके शब्दादि विषयोंसे निग्रहकरीगई हैं अर्थात् बशकीगई हैं तिसीकी प्रज्ञाबुद्धि प्रतिष्ठित है अर्थात् स्थिरहै ॥ ६८ ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

योऽयं लौकिको वैदिकश्च व्यवहारः समुत्पन्नविवेकज्ञानस्यस्थितप्रज्ञस्याविद्याकार्य्यत्वादविद्यानिवृत्तौ निवर्त्ततेऽविद्यायाश्च विद्याविरोधान्निवृत्तिरित्येतमर्थं स्फुटीकुर्वन्नाह यानिशेति या निशा रात्रिःसर्वपदार्थानामविवेककरी तमःस्वभावत्वात् निशा सर्वेषां भूतानां सर्वभूतानां किं तत्परमार्थतत्त्वं स्थितप्रज्ञस्य विषयो यथा नक्तञ्चराणामहरेव सदन्येषां निशा भवति तद्वन्नक्तञ्चरस्थानीयानाम् अज्ञानिनां सर्वभूतानां निशेव निशा परमार्थतत्त्वागोचरत्वादतद्बुद्धीनां तस्यांपरमार्थतत्त्वलक्षणायाम् अज्ञाननिद्रायां प्रबुद्धो जागर्ति संयमी संयमवान् जितेन्द्रियो योगीत्यर्थः यस्यां ग्राह्य

ग्राहकभेदलक्षणायामविद्यानिद्रायां प्रसुप्तान्येव भूतानि ग्राग्रतीत्युच्यते यस्यां निशायां प्रसुप्ता इव स्वप्न दृशः सा निशा अविद्यारूपत्वात् परमार्थतत्त्वं पश्यतो मुनेरतः कर्माण्यविद्यावस्थायामेव चोद्यन्ते न विद्यावस्थायां विद्यायां हि सत्यामुदिते सवितरि शार्वरमिव तमः प्रणाशमुपगच्छत्य विद्याप्राग्विद्योत्पत्तेरविद्या प्रमाणबुद्ध्या गृह्यमाणा क्रियाकारकफलभेदरूपासती सर्वकर्म हे तुत्वं प्रतिपद्यते नाप्रमाणबुद्ध्या गृह्यमाणायाः कर्म्महेतुत्वोपपत्तिः प्रमाणभूतेन वेदेन मम चोदि तं कर्त्तव्यं कर्मेति हि कर्मणि कर्त्ता प्रवर्ततेनाविद्यामात्रमिदं सर्वं निशेवेति यस्य तु पुनर्निसेवावि द्यामात्रमिदं सर्वभेदजातमिति ज्ञानं तस्यात्मज्ञस्य सर्वकर्मसंन्यास एवाधिकारो न प्रवृत्तौ तथा च दर्शयिष्यति तद्बुद्धयस्तदात्मान इत्यादिना ज्ञाननिष्ठायामेव तस्याधिकारः तत्रापि प्रवर्तक प्रमाणाभावे प्रवृत्तेरनुपपत्तिरिति चेत न स्वात्मविषयत्वादात्मविज्ञानस्य नह्यात्मनः स्वात्मनि प्र वर्तकप्रमाणापेक्षता आत्मत्वादेव तदन्तत्वाच्च सर्वप्रमाणानां प्रमाणत्वस्य नह्यात्मस्वरूपाधिगमे सतिपुनः प्रमाणप्रमेयव्यवहारः सम्भवति प्रमातृत्वं ह्यात्मनो निवर्तयत्सर्न्त्यप्रमाणं निवर्तयदेव चा प्रमाणीभवति स्वप्नकालप्रमाणमिव प्रबोधे लोकेच वस्त्वधिगमे प्रवृत्तिहेतुत्वादर्शनात् प्रमाणस्य तस्मात् नात्मविदः कर्मण्य धिकार इति सिद्धम् ॥ ६९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

आत्मविदः स्थितप्रज्ञस्य सर्वकर्म परित्यागेऽधिकारस्तद्विपरीतस्याज्ञस्य कर्मणीत्येत स्मिन्नर्थे समनन्तरश्लोकमवतारयति योऽयमिति अविद्या निवृत्तौ सर्वकर्म निवृत्तिश्चेत् तन्निवृत्तिरेव कथमित्याशङ्क्याह अविद्यायाश्चेति स्फुटी कुर्वन् वाह्याभ्यन्तरकरणानां पराक् प्रत्यक् प्रवृत्तिवत् तथाविधे दर्शने च मिथो विरुध्यते पराग्दर्शनस्यानाद्यात्मावर णाविद्याकार्य्यत्वादात्मदर्शनस्य च तन्निवर्त्तकत्वात् तत् ततश्चात्मदर्शनार्थमिन्द्रियाण्य र्थेभ्योनिगृह्णीयादित्याहेति योजनासर्वप्राणिनां निशापदार्थाविवेककरीत्यत्रहेतुमाहत मः स्वभावत्वादिति सर्वप्राणिसाधारणीं प्रसिद्धां निशां दर्शयित्वा तामेवप्रकृतानुगुणत्वेन प्रश्नपूर्वकंविषदयतिकिं तदित्यादिनास्थितप्रज्ञविषयस्यपरमार्थतत्वस्यप्रकाशैकस्वभावस्य कथमज्ञानं प्रति निशात्वमित्याशङ्क्याह यथेति तत्रहेतुमाहअगोचरत्वादिति अतद्बुद्धीनां परमार्थतत्वातिरिक्तद्वैतप्रपञ्चे प्रवृत्तबुद्धीनामप्रतिपन्नत्वात्परमार्थतत्वंनिशेवाविदुषामि त्यर्थः तस्यामित्यादि व्याचष्टे तस्यामिति निशावदुक्तायामवस्थायामिति यावत् योगीति ज्ञानी कथ्यते द्वितीयार्द्धं विभजते यस्यामिति प्रसुप्तानां जागरणं विरुद्धमित्याशङ्क्याह प्रसुप्ता इवेति परमार्थतत्त्वमनुभवतो निवृत्ताविद्यस्य संन्यासिनो द्वैतावस्थानिशेत्यत्र हेतुमाह अविद्यारूपत्वादिति परमार्थावस्था निशेत्यविदुषां विदुषान्तु द्वैतावस्था तथेति स्थिते फलितमाह अत इति अविद्यावस्थायामेव क्रियाकारकफलभेदप्रतिभानादित्यर्थः विद्योदयेऽपि तत्प्रतिभानाविशेषात् पूर्वमिवकर्माणि विधीयेरन्नित्याशङ्क्याह विद्यायामिति अविद्या निवृत्तौ बाधितानुवृत्त्या विभागमानेऽपि नास्तिकर्मविधिर्विभागाभिनिवेशाभावा दित्यर्थः अविद्यावस्थायामेव कर्माणीत्युक्तं व्यक्तीकरोतिप्रागिति विद्योदयात् पूर्वं बाध काभावादवाधिता विद्या क्रियादिभेदमापाद्य प्रमाणरूपयाबुद्ध्या ग्राह्यतां प्राप्य कर्महेतु र्भवति क्रियादिभेदाभिमानस्य तद्धेतुत्वादित्यर्थ न विद्यावस्थायामित्युक्तं प्रपञ्चयति नाप्रमाणेति उत्पन्नायाञ्च विद्यायां अविद्यायाः निवृत्तत्वात् क्रियादिभेदभानमप्रमाण मिति बुद्धिरुत्पद्यते तया गृह्यमाणा यथोक्तविभागभागिन्यप्यविद्या न कर्महेतुत्वं प्रतिप द्यते बाधितत्वेनाभासतया तद्धेतुत्वायोगादित्यर्थः विद्या विद्याविभागेनोक्तमेव विशेषं विवृणोति प्रमाणभूतेनेति यथोक्तेन वेदेन कामनाजीवनादिमतो मम कर्मविहितं तेन मया

तत् कर्त्तव्यमिति मन्वानः सन् कर्मण्यज्ञोऽधिक्रियते तं प्रतिसाधनविशेषवादिनो वेदस्य प्रवर्तकत्वादित्यर्थः सर्वमेवेदमविद्यामात्रं द्वैतं निशेवेति मन्वानस्तु न प्रवर्तते कर्मणीति व्यावर्त्यमाह नाविद्येति विदुषो न कर्मण्यधिकारश्चेत्तस्याधिकारस्तर्हि कुत्रेत्याशङ्क्याह यस्येति तस्य आत्मज्ञस्य फलभूतसंन्यासाधिकारे वाक्यशेषं प्रमाणयति तथाचेति प्रवर्तकं प्रमाणं विधिस्तदभावे कर्मस्विव विदुषोज्ञाननिष्ठायामपि प्रवृत्तेरनुपपत्तेराश्रयणीयो ज्ञानवतोऽपि विधिरिति शंकते तत्रापीति किमात्मज्ञानं विधिमपेक्षते किम्वात्मा नाद्यः तस्य स्वरूपविषयस्य यथा प्रमाणप्रमेयमुत् पत्तेर्विध्यनपेक्षत्वादित्याह नस्वात्मेति नद्वितीय इत्याह नहीति प्रवर्तकप्रमाणशब्दि तस्य विधेः साध्यविषयत्वादात्मनश्चासाध्यत्वादिति हेतुमाह आत्मत्वादेवेति आत्मतज्ज्ञानयोर्विध्यनपेक्षत्वेऽपि ज्ञानिनो मानमेयव्यवहारं प्रतिनियमार्थं विध्यपेक्षा स्यादित्याशङ्क्याह तदन्तत्वाच्चेति सर्वेषां प्रमाणानां प्रमाणस्यात्मज्ञानोदयावसानत्वात् तस्मिन्नुत्पन्ने व्यवहारस्य निरवकाशत्वान्नतत्प्रतिनियमाय ज्ञानिनो विधिरित्यर्थः उक्तमेव व्यक्तीकरोति नहीति धर्माधिगमवदात्माधिगमेऽपि किमिति यथोक्तो व्यवहारो न भवतीत्याशङ्क्याह प्रमातृत्वं हीति तन्निवृत्तौ कथमद्वैतज्ञानस्य प्रमाण्यमित्याशङ्क्याह निवर्त्तयदेवेति निवर्त्तयदद्वैतज्ञानं स्वयं निवृत्तेर्न प्रमाणमित्यत्र दृष्टान्तमाह स्वप्नेति आत्मज्ञानस्य विध्यनपेक्षत्वे हेत्वन्तरमाह लोके चेति व्यवहारभूमौ हि प्रमाणस्य वस्तु निश्चयफलपर्य्यन्तत्वे सति प्रवर्तकविधिसापेक्षत्वानुपलम्भादद्वैतज्ञानमपि प्रमाणत्वान्नविधिमपेक्षते रज्वादिज्ञानवदित्यर्थः आत्मज्ञानवतस्तन्निष्ठाविधिमन्तरेण ज्ञानमाहात्म्येनैव सिद्धत्वात् तस्य कर्म संन्यासेऽधिकारो न कर्मणीत्युपसंहरति तस्मादिति ॥ ६९ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ननु न कश्चिदपि प्रसुप्त इव दर्शनादिव्यापारशून्यः सर्वात्मना निगृहीतेन्द्रियोलोके दृश्यते अतोऽसम्भावितमिदं लक्षणमित्याशङ्क्याह या निशेति सर्वेषां भूतानां या निशा निशेवनिशा आत्मनिष्ठा अज्ञानध्वान्तावृतमतीनां तस्यां दर्शनादिव्यापाराभात् तस्यामात्मनिष्ठायां संयमी निगृहीतेन्द्रियो जागर्ति प्रबुध्यते यस्यान्तु विषयनिष्ठायां भूतानि जाग्रति प्रबुध्यन्तेसा आत्मतत्त्वं पश्यतो मुनेर्निशा तस्यां दर्शनादिव्यापारस्तस्य नास्तीत्यर्थः एतदुक्तं भवति यथा दिवान्धामुलूकादीनां रात्रावेवदर्शनं नतु दिवसे एवं ब्रह्मज्ञस्योन्मीलिताक्षस्यापि ब्रह्मण्येव दृष्टिर्नतु विषयेषु अतो नासम्भावितमिदं लक्षणमिति ॥ ६९ ॥

नवलभाष्य ।

अब यह लौकिक वैदिक जितनाव्यवहारहै सो सब अविद्याकार्य्यहै इस हेतुसे उत्पन्नहुआहै विवेकज्ञान जिसको ऐसाजो स्थितप्रज्ञपुरुष तिसकी अविद्याकी निवृत्तिहोनेसे वह व्यवहारभी निवृत्तहोजाताहै और अविद्या की तौ विद्याके विरोधसे अपनेआपही निवृत्तिहोतीहै अर्थात् विद्याके उदय में फिर अविद्याकी स्थितिनहींसम्भवहोतीहै इसअर्थको प्रकटकरतेहुए भगवान् कहतेहैं [यानिशेति] तमस्वभाव अर्थात् अन्धकारस्वभाव होनेसे सब पदार्थोंके अविवेक करनेवाली जो निशारात्रि प्रसिद्धहै तिसीके तुल्य जो परमार्थ तत्त्व स्थितप्रज्ञ पुरुषका विषय अर्थात् जिसमें स्थितप्रज्ञ पुरुष व्य-

वहारकरताहै सो सब प्राणियोंकी निशा रात्रिहै क्योंकि उसप्रकाशरूप भी परमार्थतत्त्वमें उनपुरुषोंका दर्शनादिव्यवहार होतानहीं इससे वह उनकी दृष्टिमें रात्रिहीहै जैसे नक्तंचर अर्थात् रात्रिके विचरनेवाले उलूकराक्षसादिकोंको जो औरोंका दिनहै सोई रात्रिहोतीहै तैसे ही नक्तंचरोंके अर्थात् रात्रिमें विचरनेवाले प्राणियोंके तुल्य जे अज्ञानी सम्पूर्ण प्राणी तिन्हों को परमार्थतत्त्वके अगोचरहोनेसे उसआत्मतत्त्वमें कभी बुद्धि जातीनहीं इससे वह परमार्थतत्त्वलक्षणाविद्या रात्रिकेतुल्य होरहीहै उसमें वे अज्ञानी जीव अज्ञाननिद्रामें शयनकरतेहैं और उसअज्ञानियोंकी ज्ञानरूपरात्रिमें संयमी अर्थात् जितेन्द्रिय जो योगी सो जगता है अर्थात् उसआत्मतत्त्वमें सावधानहो दर्शनादिव्यवहार कररहाहै इससे वह ज्ञानीका दिवसहै और जिस ग्राह्य ग्राहकलक्षणाअविद्यामें अर्थात् यह धन पुत्र कलत्रादि पदार्थ ग्रहणकरनेयोग्यहै और हम इसके ग्रहणकरनेवालेहैं ऐसाहै भेद जिसमें ऐसीअविद्यामें सोवतेके सदृश सबप्राणी जगतेहैं अर्थात् उसअविद्यामें दर्शनादि व्यवहार होनेसे वह अज्ञानियोंका दिनहै सो वहअविद्या ब्रह्मको देखताहुआ जो ज्ञानी तिसकीरात्रिहै क्योंकि जैसे रात्रिमें मनुष्य सोते हैं और स्वप्नदेखते हैं तैसेही ज्ञानीपुरुष भी अविद्याकार्य्य धन पुत्रादिकोंको स्वप्नकेतुल्य देखताहै और अविद्यामें दृष्टिनहींकरता है यही उसका सोनाहै इससे कर्म अविद्यावस्थाहीमें विधान कियेजाते हैं विद्यावस्थामें ज्ञानदशामें नहीं विधान करेजातेहैं क्योंकि जब ज्ञानप्राप्तहुआ तौ तौ जैसे सूर्य्यके उदयमें रात्रिकाअन्धकार नाशको प्राप्तहोताहै तैसे अविद्याभी विद्याके उदयमें नाशको प्राप्तहोती है और विद्याकी अर्थात् ज्ञानकी उत्पत्तिके प्रथम तौ प्रमाणकरके अर्थात् [स्वर्ग्गकामोयजेत्] जिसको स्वर्गकी इच्छाहोय सो यज्ञकरै इत्यादि वैदिकप्रमाणोंकरके ग्रहणकरी जो अविद्यासो यज्ञादि कर्म कर्तृ मन्त्र देवता फलादि भेदरूपको प्राप्तहुई सबकर्मोंकी कारणताको प्राप्तहोती हैं अर्थात् सबकर्मोंका कारण होती है क्योंकि अप्रमाण बुद्धिकरके ग्रहणकरी अविद्या कभीनहीं कर्मकी प्रवृत्तिहेतु होसक्तीहै जबकि कर्मकर्त्ता ऐसाजानताहै कि प्रमाणभूत वेदने यहकर्मविधानकियाहै इससे अवश्य मुझको करनाचाहिये तभी कर्ममें प्रवृत्तहोता है और यहनहीं उस समयमें जानताहै कि जैसे अन्धकारकी रात्रिमें कुछनहीं सूझपड़ताहै तैसे अविद्यामात्र सबकर्मकाण्ड और इसका स्वर्गादिफलभी ऐसाहीहै क्योंकि किसिअंशमें जो उसको अविद्या कल्पितहोनेसे झूठपनाकीप्रतीतिहोय तौ बड़ाभारी आयासयुक्त लौकिक वैदिकादि कर्मोंमें क्यों प्रवृत्तहोय और इंद्रियादिसुख में झूंठीबुद्धि होय किसवास्ते धन पुत्रादिकोंमें आसक्तहोय और जिस आत्मज्ञपुरुष को तौ रात्रिकेतुल्य अविद्यामात्रही अर्थात् झूठाही सब भेद बुद्धि कल्पित वैदिक लौकिक कर्मकलापहै ऐसा निश्चयहुआ है उसको तौ कर्म संन्यासहीका अधिकारहै और प्रवृत्ति में अधिकारनहीं है

यहअर्थ भगवान् पञ्चमाध्यायके १७ सत्रहवेंश्लोकमें कहेंगे कि (तद्बुद्धय स्तदात्मानइति) उसीब्रह्ममें बुद्धि और मन जिन्होंके ऐसे ज्ञानी मोक्षको प्राप्तहोतेहैं इससे आत्मज्ञानीको ज्ञाननिष्ठाहीमें अधिकारहै न कहो जैसे कर्ममें प्रवृत्तिकराने में प्रत्यक्षादि प्रमाणहैं ऐसे आत्मामें प्रवर्त्तक कोई प्रमाणनहीं फिर कैसे प्रवृत्तहोसक्ताहै सो ऐसी आशंका नहीं करनेयोग्य है क्योंकि आत्मज्ञानको स्वात्मविषयत्वही है अर्थात् जिस आत्मस्वरूपज्ञान से सब जाने जातेहैं उसका जाननेवाला कोई नहीं है इसीरीतिसे आत्मा को अपने जाननेमें और प्रमाणकी अपेक्षानहीं क्योंकि जितनेप्रमाण लौकिक वैदिकहैं तिनके प्रमाणत्वधर्मका निश्चयकरनेवाला आत्माहीहै तो आत्मा सबप्रमाणोंका अन्तहुआ उसको अपनेमें प्रमाणकी अपेक्षा कैसे होतीहै इससे आत्माके सब विषयहैं अर्थात् दृश्यहैं और आत्माकोविषय करनेवाला कोईनहीं फिर जब आत्मज्ञानमें सब प्रमाणों की समाप्तिहुई तब आत्मज्ञान होतसन्ते यहप्रमाणहै यहप्रमेयहै यहभी व्यवहारसम्भव नहींहोता और आत्मज्ञान अपनामें प्रमाणका निवृत्तकरताहुआ प्रमातृत्व धर्म की भी निवृत्तिकरताहै फिर प्रमाणादि व्यवहार रहित होताहै अर्थात् जैसे कोई स्वप्नावस्थामें अनेकपदार्थोंको देखताहुआ उनपदार्थोंको स्वप्नही में अनेकप्रमाणोंसे निश्चयभी करताहै फिर जब स्वप्नदेख जगताहै तौ उन स्वप्नके निश्चयकरेहुए पदार्थोंको मिथ्याजानताहै और उनप्रमाणोंको भी मिथ्याजानताहै और अपनाको स्वप्नमेंप्रमाणकरनेवालाजोमानरहाथाउस धर्मकोभी मिथ्याहजिानताहै और जो मैं स्वप्नदेखनेवालाथा सो अब मैं हूं इससत्यज्ञानमें किसीप्रमाणकी भी अपेक्षा नहींकरताहै तैसे ही व्यवहार दशामें साध्यपदार्थोंके निश्चयकरनेको प्रमाणप्रमेयादि कल्पना कीगई है स्वयंप्रकाशआत्मा में प्रमाणकी अपेक्षा नहीं और लोकमें भी तभीतक प्रमाणकी आवश्यकता रहतीहै जबतक प्रमाणसे निश्चयकरनेयोग्य वस्तु नहीं जानीजातीहै जाननेके अनन्तर तौ कुछ प्रमाणकी अपेक्षा नहीं होती तैसेही अविद्याकी निवृत्तिके अनन्तर आत्मज्ञानमें भी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं नहींरज्जुज्ञानमें कोई प्रमाणकी अपेक्षाकरताहै तिससे ज्ञानीको कर्म के विषयमें अधिकारनहींहै यह सिद्धहुआ ॥ ६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठंसमुद्रमापः प्रविशन्तियद्वत् ।
तद्वत्कामायंप्रविशन्तिसर्वेसशान्तिमाप्नोतिनकामकामी ७० ॥

शङ्करभाष्यम् ।

विदुषस्त्यक्तैषणस्य स्थितप्रज्ञस्य यतेरेव मोक्षप्राप्तिर्नत्वसंन्यासिनः कामकामिन इत्येतमर्थं दृष्टान्तेन प्रतिपादयिष्यन्नाह आपूर्य्येति आपूर्य्यमाणं मद्भिरचलप्रतिष्ठम् अचलतया प्रतिष्ठा अवस्थितिर्यस्य तमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः सर्वतोगताः प्रविशन्ति स्वात्मस्थमविक्रियमेव सन्तं यद्वत् तद्वत् कामा विषयसन्निधावपि सर्वत इच्छाविशेषा यं मुनिं समुद्रमिवापोविकुर्वन्तः प्रविशन्ति सर्वे

आत्मन्येव प्रलीयन्ते न स्वात्मवशं कुर्वंति मोक्षंप्राप्नोति नेतरः कामकामी कामयन्त इतिकामाः विषयास्तान् कामयितुं शीलं यस्य स कामकामी नैव प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ७० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

नन्वसंन्यासिनापि विद्यावता विद्याफलस्य मोक्षस्य लब्धुंशक्यत्वात् किमितिविदुषः संन्यासो नियम्यते तत्राह विदुष इति आपातज्ञानवतो विवेकवैराग्यादिविशिष्टस्यैषणाभ्यः सर्वाभ्योभ्युत्थितस्य श्रवणादिद्वारा समुत्पन्नसाक्षात्कारवतो मुख्यस्य संन्यासिनो मोक्षो नान्यस्य विषयतृष्णा परिभूतस्य इत्येतत् दृष्टान्तेन प्रतिपादयितुमिच्छन् रागद्वेषविमुक्तैस्तु इति श्लोकोक्तमेवार्थं पुनराहेति योजना अद्भिः समुद्रस्य समन्तात् पूर्य्यमाणत्वे वृद्धिह्रासवतो तदीयास्थितिरापतेदित्याशङ्क्याह अचलेति नहि समुद्रस्योदकात्मकं प्रतिनियतं रूपं कदाचिद्विवर्द्धते ह्रसते वा तेन तदीयास्थितिरेकरूपैवेत्यर्थः तत्तन्नादेयाश्चेदापः समुद्रान्तर्गच्छन्ति तर्हि तस्य विक्रियावत्वादप्रतिष्ठा स्यादित्याशङ्क्याह स्वात्मस्थमिति इच्छाविशेषः विषयाणामसन्निधौ विदुषि निर्विकारे प्रविशन्तोऽपि सन्निधाने तस्मिन् प्रविशन्तो विकारमापादयेयुरित्याशङ्क्याह विषयेति प्रवेशं विषदयति सर्वत इति योःकाम इत्यादि श्रुतेर्विषयविमुखस्य निष्कामस्य मोक्षो न कामकामुकस्येत्याह स शान्तिमिति ॥ ७० ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु विषयेषुतृष्णाभावे कथमसौ तान् मुङ्क्त इत्यपेक्षायामाह आपूर्यमाणमिति नाना नदनदीभिरापूर्यमाणमत्यचलप्रतिष्ठमनतिक्रांतमर्य्यादमेव समुद्रं पुनरप्यन्या आपो यथा प्रविशन्ति तथा कामाविषयाः यं मुनिमन्तर्दृष्टिं भोगैरविक्रियमाणमेव प्रारब्धकर्मभिराक्षिप्ताः सन्तः प्रविशन्ति स शान्तिं कैवल्यं प्राप्नोति नतुकामकामी भोगकामनाशीलः॥७०॥

नवलभाष्य।

अब त्यागकरीहै पुत्रादि ऐषणा जिसने ऐसा जो स्थितप्रज्ञ अर्थात् त्यागदीहै पुत्रादिकामना जिसने ऐसा जोस्थिरबुद्धि आत्म वित्संन्यासी तिसी को मोक्षकी प्राप्ति होतीहै और कामनाओं से व्याकुल चित्तपुरुष को नहीं होतीहै इसअर्थको प्रतिपादन की इच्छाकरते हुए भगवान् कहते हैं कि (आपूर्यमाणमिति) हे अर्जुन जैसे जलसे परिपूर्ण और नहीं चलायमान हुई मर्यादा जिसकी ऐसा जो समुद्र तिसमें वर्षाऋतु में अनेक नदियों का जल चारोंतरफसे प्रवेशभी करताहै और वह समुद्र विकारको प्राप्त नहीं होता अर्थात् अपने मर्यादाको नहीं छोड़ताहै तैसेही जिसज्ञानीके चित्तमें विषयोंके समीप होनेमेंभी सबकाम अर्थात् इच्छा प्रवेशकरैं अर्थात् आत्माहीमें लयको प्राप्त होजायँ और अपने आधीन उसज्ञानीको न करके तौ वहपुरुष शान्तिको प्राप्त होताहै अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है और काम जे विषय तिनकी इच्छा करनेका स्वभाव जिसका ऐसा पुरुषकभी मोक्षको प्राप्त नहीं होताहै ॥ ७० ॥

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्ति मधिगच्छति ॥ ७१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्मादेवं तस्मात् विहायेति विहाय परित्यज्य कामान् यः संन्यासी सर्वानशेषतः कार्त्स्न्येन चरति जीवनमात्र चेष्टाशेषः पर्य्यटतीत्यर्थः निस्पृहः शरीरजीवनमात्रेऽपि निर्गता स्पृहा यस्य स निस्पृहः सन् निर्मम इति ममत्ववर्जितः शरीर जीवनमात्राक्षिप्त परिग्रहेऽपि ममेदमित्यभिनिवेशवर्जितः निरहंकारो विद्यावत्वादिनिमित्तात्मसम्भावनारहित इत्यर्थः स एवम्भूतः स्थितप्रज्ञो ब्रह्मविच्छान्तिं सर्वसंसारदुःखोपरमत्वलक्षणां निर्वाणाख्यामधिगच्छति प्राप्नोति ब्रह्मभूतो भवतीत्यर्थः ॥ ७१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

यदि गृहस्थेनापि मनसा समस्ताभिमानं हित्वा कूटस्थं ब्रह्मात्मानं परिभावयता ब्रह्म निर्वाणमप्यते प्राप्तं तर्हि मौढ्यादिविडम्बनमेवेत्याशङ्क्याह यस्मादिति शब्दादि विषयप्रवणस्य तत्तदिच्छाभेदभागिनो न मुक्तिरिति व्यतिरेकस्य सिद्धत्वात् पूर्वोक्तमन्वयं निगमयितुमनन्तरं वाक्यमित्यर्थः अशेषविषयत्यागे जीवनमपि कथमित्याशङ्क्याह जीवनेतिसम्भवद्रागद्वेषादिके देशे निवास व्यावृत्त्यर्थं चरतीत्येतद्व्याचष्टे पर्यटतीति विहायकामानित्यनेन पुनरुक्तिं परिहरति शरीरेति निस्पृहत्वमुक्त्वा निर्ममत्वात् पुनर्वदन् कथं पुनरुक्तिमार्थिकीं न पश्यसीत्याशङ्क्याह शरीरजीवनेति सत्यहंकारे मम कारस्यावश्यकत्वा न्निरहंकारत्वं व्याकरोति विद्यावत्वादीति स शांतिमाप्नोति इत्युक्तमुपसंहरतिसएवम्भूत इति संन्यासिनो मोक्षमपेक्ष्यमाणस्य सर्वकामपरित्यागादीनि श्लोकोक्तानि विशेषानि यत्नसाध्यानि तत् सम्पत्तिफलन्तु कैवल्यमित्यर्थः ॥ ७१ ॥

स्वामिकृतटीका।

यस्मादेवं तस्मात् विहायेति प्राप्तान् कामान् विहाय त्यक्त्वा उपेक्ष्य अप्राप्तेषु च निस्पृहः यतो निरहङ्कारः अतएव तद्भोगसाधनेषु निर्ममः सन्नन्तर्दृष्टिर्भूत्वा यश्चरति प्रारब्धवशेन भोगान् भुङ्क्ते यत्र कुत्रापि गच्छति वा स शान्तिं प्राप्नोति ॥ ७१ ॥

नवलभाष्य।

तिससे हे अर्जुन जो आत्मवेत्ता संन्यासी सब विषयों को त्यागकरके जीवनमात्र अर्थात् जिसमें शरीरका निर्वाहहोय उतनाही अन्नादि स्वीकारकरताहुआ जो विचरता है और उतनेमात्रमें भी नहीं है इच्छा जिसकी और प्राप्तहुये में भी नहीं है ममता जिसकी और अपने ज्ञानी पनाकाभी नहीं अहंकार जिसको ऐसा जो पुरुष सो शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

इतिश्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादे तत्त्वविवेकामृते द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

शङ्करभाष्यम्।

सैषा ज्ञाननिष्ठा स्तूयते एषा ब्राह्मीति एषा यथोक्ता ब्राह्मी ब्रह्मणि भवेयं स्थितिः सर्वं कर्मसंन्यस्य ब्रह्मरूपेणैवावस्थानमित्येतत् हे पार्थ नैनां स्थितिं प्राप्यलब्ध्वा विमुह्यति न मोहं प्राप्नोति स्थित्वास्यां स्थितौ ब्राह्मयां यथोक्तायामन्तकालेऽपि अन्ते वयस्यापि ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मनिर्वृतिं मोक्षमृच्छति किमु वक्तव्यं ब्रह्मचर्य्यादेव संन्यस्य यावज्जीवं यो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते स ब्रह्मनिर्वाणमृच्छतीति ॥ ७२ ॥

इति श्रीभगवद्गीता भाष्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तत्र तत्र संक्षेपविस्तराभ्यां प्रदर्शितां ज्ञाननिष्ठाम् अधिकारिप्रवृत्त्यर्थत्वेन स्तोतुमुत्तर-श्लोकमवतारयति सैषेति गृहस्थः संन्यासीत्युभावपि चेन्मुक्तिभागिनौ किं तर्हि कष्टेन सर्वथैव संन्यासेनेत्याशङ्क्य संन्यासिव्यतिरिक्तानामन्तरायसम्भवादपेक्षितः संन्यासो मुमुक्षोरित्याह एषेति स्थितिमेव व्याचष्टे सर्वमिति न विमुह्यतीति पुनर्नञोनुकर्षणमन्वयार्थं संन्यासिनो विमोहाभावेपि गृहस्थो धनहान्यादिनिमित्तं प्रायेण विमुह्यति विक्षिप्तः सन् परमार्थविवेकरहितो भवतीत्यर्थः यथोक्ता ब्राह्मीस्थितिःसर्वकर्म संन्यासपूर्विकाब्रह्मनिष्ठा तस्यांस्थित्वा तामिमामायुषश्चतुर्थेऽपि भागे कृत्वेत्यर्थः अपिशब्द सूचितं कैमुतिकन्यायमाह किमुवक्तव्यमिति तदेवंतत्त्वं पदार्थौ तदैक्यं वाक्यार्थस्तज्ज्ञानदेकाकिनोमुक्तिश्चतदुपायश्चेत्येतेषामेकैकत्र श्लोके प्राधान्येन प्रदर्शितमिति निष्ठाद्वयमुपायापेयभूतमध्यायेन सिद्धम् ॥ ७२ ॥

इति आनन्दगिरिकृतटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २

स्वामिकृतटीका।

उक्तां ज्ञाननिष्ठां स्तुवन्नुपसंहरति एषेति ब्राह्मी स्थिति ब्रह्मज्ञाने निष्ठा एषा एवम्बिधा एनां परमेश्वराराधनेन विशुद्धान्तःकरणः पुमान् प्राप्य न मुह्यति पुनः संसारमोहं न प्राप्नोति योऽन्तकाले मृत्युसमयेऽपि अस्यां क्षणमात्रं स्थित्वा ब्रह्म निर्वाणं ब्रह्मणि लयमृच्छति प्राप्नोति किं पुनर्वक्तव्यं बाल्यमारभ्य स्थित्वा प्राप्नोतीति शोकपंकनिमग्नं यः सांख्ययोगोपदेशतः उज्जहारार्जुनं भक्तं स कृष्णः शरणं मम ॥ ७२ ॥

इति श्रीधर स्वामिकृतटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

नवलभाष्य।

अब यह ज्ञाननिष्ठास्तुति करी जाती है (एषेति) हेपार्थ हे अर्जुन जो हमने पूर्वज्ञान वर्णनकिया इसको ब्राह्मी स्थिति कहतेहैं सो जो यहब्राह्मी

स्थितिहै अर्थात् सबकर्मोंका त्यागकरके ब्रह्मरूप करके अवस्थाननामरहना अर्थात् मैं ब्रह्महूं ऐसी भावना करते करते ब्रह्माकारवृत्ति का होना तिसको प्राप्तहोके फिर मोहको प्राप्त नहीं होताहै अर्थात् देहादिकों में आत्मबुद्धिरूप मोहको प्राप्त नहीं होताहै और इसब्राह्मी स्थितिमें वृद्धावस्थामें भी स्थितहोकरके ब्रह्मनिर्वाण पदवी जो मोक्ष तिसको प्राप्त होताहै और जो ब्रह्मचर्यावस्थासेही तीव्र वैराग्य होनेसे संन्यास धारणकर इस ज्ञानमें स्थितहुआ है वहब्रह्म निर्वाणपद को प्राप्तहोय इसका कहना ही क्या है ॥ ७२ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीता भगवच्छंकराचार्य्य भाष्यभाषानुवादेलिपाठिउमादत्तविरचिते तत्त्वविवेका मृतेद्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥





श्रीमद्भगवद्गीतासटीक॥

तृतीयोऽध्यायः।

अर्जुन उवाच।

ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता बुद्धि र्जनार्दन।
तत् किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥ १॥

शङ्करभाष्यम्।

शास्त्रस्य प्रवृत्तिनिवृत्तिविषयभूते द्वे बुद्धी भगवता निर्दिष्टे सांख्य बुद्धिर्योगबुद्धिश्च तत्र प्रजहाति यदा कामानित्यारभ्याध्यायपरिसमाप्तेः सांख्यबुद्ध्याश्रितानां संन्यासकर्तव्यतामुक्त्वा तेषां तन्निष्ठतयैव च कृतार्थतोक्तैषा ब्राह्मी स्थितिरित्यर्जुनाय च कर्मण्येवाधिकारस्ते मा ते संगोऽस्त्वकर्मणीति कर्मैव कर्तव्यमुक्तवान् योगबुद्धिमाश्रित्य न तत एव श्रेयः प्राप्तिमुक्तवान् तदेतदालक्ष्य पर्य्याकुलीभूतबुद्धिरर्जुन उवाच कथं भक्ताय श्रेयोऽर्थिने यत् साक्षात् श्रेयः प्राप्तिसाधनं सांख्यबुद्धिनिष्ठां श्रावयित्वा मां कर्मणि दृष्टानेकानर्थयुक्ते पारम्पर्येणाप्यनैकान्तिकश्रेयःप्राप्तिफले नियुञ्ज्या दिति युक्तः पर्याकुलीभावोऽर्जुनस्य तदनुरूपश्च प्रश्नो ज्यायसीचेदित्यादि प्रश्नापाकरणवाक्यञ्च भगवतो युक्तं यथोक्तं विभागविषये शास्त्रे केचित्त्वर्जुनस्य प्रश्नार्थमन्यथा कल्पयित्वा तत् प्रतिकूलं भगवतः प्रतिवचनं वर्णयन्ति यथा चात्मना सम्बन्धग्रन्थे गीतार्थो निरूपितः तत् प्रतिकूलञ्चेह पुनः प्रश्न प्रतिवचनयोरर्थं निरूपयन्ति कथं तत्र सम्बन्धग्रन्थे तावत् सर्वेषामाश्रमिणां ज्ञानकर्मणोः समुच्चयो गीताशास्त्रे निरूपितोर्थ इत्युक्तः पुनर्विशेषितञ्च यावज्जीवं श्रुति चोदितानि कर्माणि परित्यज्य केवलादेव ज्ञानान्मोक्षः प्राप्यते इत्येतदेकान्तेनैव प्रतिषिद्धमितीह त्वाश्रमविकल्पं दर्शयता यावज्जीवं श्रुतिचोदितानामेव कर्मणां परित्याग उक्तः तत् कथमीदृशं विरुद्धमर्थमर्जुनाय ब्रूयाद्भगवान् श्रोता वा कथं विरुद्धमर्थमवधारयेत् तत्रैतत् स्यात् गृहस्थानामेव श्रौतकर्म परित्यागेन केवलादेव ज्ञानान्मोक्षः प्रतिषिध्यते नत्वाश्रमान्तराणामित्येतदपि पूर्वोत्तरविरुद्धमेव कथं सर्वाश्रमिणां ज्ञानकर्मणोः समुच्चयो गीताशास्त्रे निश्चितोऽर्थ इति प्रतिज्ञायेह कथं तद्विरुद्धं केवलादेव ज्ञानान्मोक्षं ब्रूयात् आश्रमान्तराणाम् अथमतं श्रौतकर्मापेक्षयैतद्वचनं केवलादेव ज्ञानात् श्रौतकर्मरहितात् गृहस्थानां मोक्षः पतिषिध्यत इतितत्र गृहस्थानां विद्यमानमपि स्मार्तं कर्माविद्यमानवदुपेक्ष्य ज्ञानादेव केवलादित्युच्यते इत्येतदपि विरुद्ध कथं गृहस्थस्यैवस्मार्त्तकर्मणा समुच्चितात् ज्ञानान्मोक्षः प्रतिषिध्यते नत्वाश्रमान्तराणामिति कथंविवेकिभिः शक्यमवधारयितुं किञ्च यदि मोक्षसाधनत्वेन स्मार्त्तानि कर्माण्युर्द्ध्वरेतसां समुच्चीयन्ते तथा गृहस्थस्यापि इष्यतां स्मार्तैरेव समुच्चयो न श्रौतैः अथ श्रौतैः स्मार्तैश्च गृहस्थ

स्यैव समुच्चयो मोक्षयोर्द्धरेतसां तु स्मार्तकर्ममात्र समुच्चितात् ज्ञानान्मोक्ष इतितत्रैवं सति गृहस्थस्यायासबाहुल्यात् श्रौतं स्मार्तञ्च बहुदुःखरूपं कर्म शिरस्यारोऽपितं स्यात् अथ गृहस्थस्यैवायासबाहुल्यात् तत् कारणान्मोक्षः स्यान्नाश्रमान्तराणां श्रौत नित्यानित्यकर्मराहितत्वादिति तदप्यसत् सर्वोपनिषत्स्वितिहासपुराण योगशास्त्रेषु च ज्ञानाङ्गत्वेन मुमुक्षोः सर्वकर्मसंन्यासविधानादाश्रमविकल्पसमुच्चयविधानाच्चश्रुतिस्मृत्योः सिद्धस्तर्हि सर्वाश्रमिणांज्ञानकर्मणोः समुच्चयो न मुमुक्षोः सर्वकर्मसंन्यासविधानात् पुत्रैषणाया वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति तस्मात् संन्यासमेषां तपसा मतिरिक्तमाहुः न्यास एवात्यरोचयदिति न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुरिति च ब्रह्मचर्य्यादेव प्रव्रजेदित्याद्याः श्रुतयः त्यज धर्ममधर्मञ्च उभे सत्यानृते त्यज येन त्यजसि तं त्यज संसारमेव निःसारं दृष्ट्वा सारादिदृक्षया प्रव्रजन्त्यकृतोद्वाहाः परं वैराग्यमाश्रिता इति बृहस्पतिः परमात्मनि योरक्तोऽपरमात्मनि सर्वैषणा विनिर्मुक्तः सभैक्ष्यं भोक्तुमर्हति कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिन इति शुकानुशासनं इहापि च सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्येत्यादि मोक्षस्य कार्य्यत्वान्मुमुक्षोः कर्मानर्थक्यं नित्यानि प्रत्यवायपरिहारार्थानीतिचेत् नानासंन्यासिविषयत्वात् प्रत्यवायप्राप्तेर्नह्यग्निकार्य्याद्यकरणात् संन्यासिनः प्रत्यवायः कल्पयितुं शक्योयथा ब्रह्मचारिणाम् असंन्यासिनामपि न तावन्नित्यानां कर्मणामभावादेव भावरूपस्योत्पत्तिःकल्पयितुं शक्या कथमसतः सज्जायेतेत्यसतः सज्जन्मासंभवश्रुतेः यदि विहिताकरणाद्यसम्भवाख्यमपि प्रत्यवायं ब्रूयाद्वेदस्तदानर्थकरो वेदोऽप्रमाणमित्युक्तं स्यात् विहितस्य करणयोः दुःखमात्र फलत्वात् तथा च कारकं शास्त्रं न ज्ञापकमित्यनुपपन्नार्थं कल्पितं स्यान्नात्रैतदिष्टं तस्मान्नसंन्यासिनां कर्माण्यतो ज्ञानकर्मणोः समुच्चयानुपपत्तिः ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता बुद्धिरित्यर्जुनस्य प्रश्नानुपत्तेश्च यदि हि भगवता द्वितीयेऽध्याये ज्ञानं कर्म च समुच्चयेन त्वया एकेनानुष्ठेयमित्युक्तं स्यात् ततोऽर्जुनस्य प्रश्नोऽनुपपन्नो ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता बुद्धिरित्यर्जुनाय चेत् बुद्धिकर्मणी त्वयानुष्ठेये इत्युक्ते याच कर्मणो ज्यासी बुद्धिः साप्युक्तैवेति तत् किं कर्माणि घोरे मां नियोजयसि केशवेति उपालम्भो वा प्रश्नो वा नकथञ्चनोपपद्यते नचार्जुनस्यैव ज्यायसी बुद्धिर्नानुष्ठेयेतिभगवतोक्तं पूर्वमिति कल्पयितुं युक्तं येन ज्यायसी चेदिति विवेकतः प्रश्नः स्यात् यदि पुनरेकस्य पुरुषस्य ज्ञानकर्मणोर्विरोधात् युगपदनुष्ठानं न सम्भवतीति भिन्नपुरुषानुष्ठेयत्वं भगवता पूर्वमुक्तं स्यात् ततोऽयं प्रश्न उपपन्नो ज्यायसी चेदित्यादिराविवेकतः प्रश्नकल्पनायामपि भिन्नपुरुषानुष्ठेयत्वेन भगवतः प्रतिवचनं नोपपद्यते नचाज्ञाननिमित्तं भगवत् प्रतिवचनं कल्पनीयम् अस्माच्च भिन्नपुरुषानुष्ठेयत्वेन ज्ञानकर्मनिष्ठयोर्भगवतः प्रतिवचनदर्शनात् ज्ञानकर्मणोः समुच्चयानुपपत्तिः तस्मात् केवलादेव ज्ञानान्मोक्ष इत्येषोऽर्थो निश्चितो गीतासु सर्वोपनिषत्सु च ज्ञानकर्मणोरेकं वद निश्चित्येति चैकविषयैव प्रार्थनानुपपन्नोभयोः समुच्चयसम्भवे कुरु कर्मैव तस्मात्त्वमिति च ज्ञाननिष्ठासम्भवमर्जुनस्यावधारणेन दर्शयिष्यति ज्यायसी चेदिति ज्यायसी श्रेयसी चेद् यदि कर्मणः सकाशात्ते तव मता अभिप्रेता बुद्धिर्ज्ञानं हे जनार्दन यदि बुद्धिकर्मणी समुच्चिते इष्टे तदैकं श्रेयःसाधनमिति कर्मणो ज्यायसी बुद्धिरिति कर्मणोऽतिरिक्तं करणं बुद्धेरनुपपन्नं अर्जुनेन कृतं स्यान्नहि तदेव तस्मात् फलतोऽतिरिक्तं स्यात् तथा च कर्मणः श्रेयस्करी भगवतोक्ता बुद्धिरश्रेयस्करञ्च कर्म कुर्विति मां प्रतिपादयति तत् किन्नुकारणमिति भगवत उपालम्भमिव कुर्वन् तत् किं कस्मात् कर्माणि घोरे क्रूरे हिंसालक्षणे मां नियोजयसि केशवेति च यदाह तच्च नोपपद्यते ॥ १ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

पूर्वोत्तराध्याययोः सम्बन्धं पूर्वस्मिन्नध्याये वृत्तमर्थं संक्षिप्यानुवदति शास्त्रस्येति गीताशास्त्रप्रारम्भापेक्षितं हेतुफलभूतं बुद्धिद्वयं भगवतोपदिष्टमित्यर्थः प्रष्टुरर्जुनस्याभिप्रायं

निर्दिष्टं वृत्तमर्थान्तरं कथयति तत्रेति अध्याययोर्बुद्धिद्वयनिर्धारणं वा सप्तम्यर्थः पारमार्थिके तत्वे तज्ज्ञानं तन्निष्ठानामशेषकामत्यागिनां काममूलानां कर्मणामपि प्रतिपत्तिकमेवत्यागं कर्तव्यत्वेन भगवानुक्तवानित्यर्थः तथापि मोक्षसाधने विकल्पसमुच्चयोरन्यतरस्य विवक्षितत्ववुद्ध्या समनन्तरप्रश्नप्रवृत्तिरित्याशङ्क्याह उक्तेति अर्जुनस्य मनसिव्याकुलत्वं प्रश्नबीजं दर्शयितुमुक्तमर्थान्तरमनुभाषते अर्जुनाय चेति सांख्यबुद्धिमाश्रित्य कर्मत्यागमुक्त्वा पुनस्तस्यैव कर्तव्यत्वं कथं मिथो विरुद्धं ब्रवीतीत्याशङ्क्याह योगेति यथा सांख्यबुद्धिमाश्रितानां संन्यासद्वारा तन्निष्ठानां कृतार्थतोक्ता तथा योगबुद्धिमाश्रित्य कर्म कुर्वतोऽपि कृतार्थत्वमुक्तमित्याशङ्क्याह न तत एवेति दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगादिति दर्शनादिति शेषः बुद्धिव्याकुलत्वं प्रश्नबीजं प्रतिलभ्य प्रश्नं करोतीत्याह तदेतदिति साक्षादेव श्रेयःसाधनं ज्ञानमन्येभ्यो दर्शितं तदित्युच्यते तद्विपरीतं कर्म स्वस्यानुष्ठेयत्वेनोक्तमेतदिति निर्दिश्यते भगवदुक्तेऽर्थे संदिह्यमानस्य निर्णयाकांक्षया प्रश्नप्रवृत्तेरस्ति पूर्वोत्तराध्याययोरुत्थाप्योत्थापकलक्षणासंगतिरित्यर्थःअर्जुनस्यप्रश्ननिमित्तं पर्याकुलत्वंप्रश्नपूर्वकं प्रपञ्चयति कथमित्यादिना यद्धि साक्षादेवश्रेयःसाधनंसांख्यबुद्धिंतंपरमार्थतत्वविषयबुद्धौ निष्ठारूपं तदन्यस्मै श्रेयोऽर्थिनेभक्ताय श्रावयित्वा मां पुनरभक्तमश्रेयोऽर्थिनमिव कर्मणि पूर्वोक्तविपरीते कथं भगवान्नियोक्तुमर्हति इत्यर्जुनस्य पर्याकुलीभावो युक्त इति सम्बन्धः ज्ञाननिष्ठातो वैपरीत्यं स्फोरयितुं कर्म विशिनष्टि दृष्टेति युद्धे हि क्षत्रकर्मणि दृष्टोऽनेकोऽनर्थो गुरुभ्रातृ सिंसादिस्तेन सम्बन्धेन बुद्धिशुद्धि द्वारापि वर्त्तमानेजन्मन्येव फलमित्यनियते मम भक्तस्य श्रेयोऽर्थिनो नियोगो भगवता युक्तो न भवतीतिशेषः यथोक्तं निमित्तं प्रश्नस्य युक्तं तदनुगुणत्वात् तस्येति द्योतकमाह तदनुरूपश्चेतिज्ञाननिष्ठानां कृतार्थता कर्मनिष्ठानान्तु न तथेत्युक्ते विभागभागिशास्त्रमित्यत्र लोकेऽस्मिन्नित्यादिवाक्यस्यापि द्योतकत्वं दर्शयति प्रश्नेति साक्षादेव श्रेयःसाधनमन्येभ्यो भगवतोक्तं नतु मह्यमिति मत्वा व्याकुलीभूतः सन् पृच्छतीति स्वाभिप्रायेण सम्बन्धमुक्त्वा वृत्तिकाराभिप्रायं दूषयति केचित्त्विति ज्ञान कर्मणोः समुच्चयमवधारयितुं प्रश्नांगीकारे समुच्चयावधारणेनैव प्रतिवचनमुचितं तथा भगवता प्रतिवचनमुक्तं तथा च प्रश्नस्य समुच्चयविषयत्वावगमात् प्रत्युक्तेश्चासमुच्चयविषयत्वात् तयोर्मिथो विरोधो वृत्तिकारमते स्यादित्यर्थः किंच केवलं प्रश्नप्रतिवचनयोरेव परमते परस्परविरोधो न भवत्यपितु परेषां स्वग्रन्थेऽपि पूर्वापरविरोधोऽस्तीत्याह यथा चेति आत्मना वृत्तिकारैरिति यावत् सम्बन्धग्रन्थोगीताशास्त्रारम्भोपोद्घातःइहेतितृतीयाध्यायारम्भं परामृशति तदेवविवृण्वन्नाकांक्षामाह कथमिति पूर्वापरविरोधं स्फोरयितुं सम्बन्धग्रन्थोक्तमर्थमनुवदति तत्रेति परकीया वृत्तिः सप्तम्या समुल्लिख्यते सम्बन्धग्रन्थे तावदयमर्थं उक्त इति सम्बन्धः तमेवार्थंविशदयति सर्वेषामिति सर्वकर्म संन्यासपूर्वकज्ञानादेव केवलात् कैवल्यमित्यस्मिन्नर्थे शास्त्रस्यपर्य्यवसानान्न समुच्चयो विवक्षितस्तत्रेत्याशंक्याह पुनरिति उक्तो गीतार्थो वृत्तिकारैरेवकर्मत्यागायोगेन विशेषितत्वान्नाविवक्षितो भवितुमुत्सहते तथा च श्रौतानि कर्माणित्यक्त्वा ज्ञानादेव केवलान्मुक्तिर्भवतीत्येतन्मतं नियमेनैव यावज्जीवश्रुतिभिर्विप्रतिषिद्धत्वान्नाभ्युपगन्तुमुचितमित्यर्थः तथापि कथं मिथो विरोधधीरित्याशङ्क्याह इहत्विति प्रथमतो हि सम्बन्धग्रन्थे समुच्चयो गीतार्थः प्रतिपाद्यत्वेन वृत्तिकृता प्रतिज्ञातः श्रौतकर्मपरित्यागश्च श्रुति विरोधादेव न सम्भवतीत्युक्तं तृतीयाध्यायारम्भे पुनः संन्यासिनां ज्ञाननिष्ठा कर्मिणां कर्मनिष्ठेत्याश्रमविभागमभिदधता पूर्वप्रतिषिद्धकर्मत्या।

गाभ्युपगमान्मिथो विरोधो दर्शितः स्यादित्यर्थः ननु यथा भगवता प्रतिपादितं तथैव वृत्तिकृता व्याख्यातमिति न तस्यापराधोऽस्तीत्याशङ्क्याह तत् कथमिति नहि इह भगवान् विरुद्धर्थमभिमते सर्वज्ञस्य परमाप्तस्य विरुद्धार्थवादित्वायोगात् किन्तु तदभिप्रायापरिज्ञानादेव व्याख्यातुर्विरुद्धार्थवादितेत्यर्थः भगवतो विरुद्धार्थवादित्वाभावेऽपि श्रोतुर्विरुद्धार्थप्रतिपत्तिं प्रतीत्य व्याचक्षाणो वृत्तिकारो नापराध्यतीत्याशङ्क्याह श्रुतावेति अर्जुनो हि श्रोतासोऽपि बुद्धिपूर्वकारी भगवदुक्तमेवावधारयन्नविरुद्धमर्थमवधारयितुमर्हति तथा च परस्यैव विरुद्धार्थवादितेत्यर्थः विरोधं परिहरन्नाशङ्कते तत्रेति सम्बन्धग्रन्थे हि वृत्तिकारस्तैतदभिप्रेतं गृहस्थानामेव सतां परिपक्वज्ञानमन्तरेण यावज्जीवश्रुतिचोदिताग्निहोत्रादित्यागेन केवलादेवापातिकादात्मज्ञानान्मोक्षमवेक्ष्यमाणानां यावज्जीवादिशास्त्रैरसौ निषिध्यते नतुस्वरूपेणैव कर्मत्यागी ज्ञानान्मोक्षो वा निषेद्धुमिष्यते तृतीये पुनरध्याये कर्मत्यागिनां गृहस्थेऽभ्यो व्यतिरिक्तानामेव केवलादात्मज्ञानान्मोक्षो विवक्षते अतो भिन्नविषयत्वान्निषेधाभ्यनुज्ञानयोर्न विरोधाशङ्केत्यर्थः विधान्तरेण विरोधं दर्शयन्नुत्तरमाह एतदपीति विरोधमेवाकांक्षाद्वारा साधयति कथमित्यादिना श्रौतं कर्म गृहस्थानामवश्यमनुष्ठेयमित्यनेनाभिप्रायेण तेषां केवलादात्माज्ञानान्मोक्षो निषिध्यते नतु गृहस्थानां ज्ञानमात्रायत्तं मोक्षं प्रतिषिद्धान्येषां केवलज्ञानाधीनो मोक्षो विवक्ष्यते आश्रमान्तराणामपि स्मार्त्तेन कर्मणा समुच्चयाभ्युपगमादिति चोदयति अथेति एतत् पदपरामृष्टं वचनमेवाभिनयति केवलादितिननु गृहस्थानां श्रौतकर्मराहित्येऽपि सति स्मार्त्ते कर्मणि कुतो ज्ञानस्य केवलत्वं लभ्यतेयेन निषेधोक्तिरर्थवती तत्राह प्रकृतवचनमेव सम्यगर्थः प्रधानं हि श्रौतं कर्म तद्राहित्येसति स्मार्त्तस्य कर्मणः सतोऽप्य सद्भावमभिप्रेत्य ज्ञानस्य केवलत्वमुक्तमिति युक्ता निषेधोक्तिरित्यर्थः गृहस्थानामेव श्रौतकर्मसमुच्चयो नान्येषाम् अन्येषान्तु स्मार्त्तेनेति पक्षपातेहेत्वभावं मन्वानः सन् परिहरति एतदपीति तमेव हेत्वभावं प्रश्नद्वारा विवृणोति कथमित्यादिना गृहस्थानां श्रौतं स्मार्तकर्म समुच्चितं ज्ञानं मुक्तिहेतुरित्यभ्युपगमात् केवलस्मार्तकर्म समुच्चितात् ततो न मुक्तिरिति निषेधो युज्यते ऊर्द्धरेतसान्तु स्मार्तकर्ममात्रसमुच्चितात् ज्ञानान्मुक्तिरिति विभागे नास्ति हेतुरित्यर्थः पक्षपाते कारणं नास्ति इत्युक्त्वापक्षपात परित्यागे कारणमस्तीत्याह किञ्चेतिगृहस्थानामपि ब्रह्मज्ञानं स्मार्त्तैरेव कर्मभिःसमुच्चितं मोक्षसाधनंब्रह्मज्ञानत्वादूर्द्धरेतःसु व्यवस्थित ब्रह्मज्ञानवदिति पक्षपातत्यागे हेतुंस्फुटयति यदीत्यादिना यदि गृहस्थानां ब्रह्मज्ञानं स्मार्त्तैरेव कर्मभिः समुच्चितं तदीयं ज्ञानंमोक्षस्य हेतुरिति विवक्षितं तदा तान् प्रति यावज्जीव श्रुतिर्विरुध्येत यदि स्मार्त्तैरपिकर्मभिः समुच्चितं तदीयं ज्ञानं मोक्षसाधनं विवक्षितं तदा सिद्धसाध्यतेति प्रागुक्तमभिप्रेत्य चोदयति अथेति आश्रमान्तराणां तर्हि केवलादेव ज्ञानान्मुक्तिरिति प्रागुक्तविरोधतादवस्थ्यमित्याशङ्क्याह ऊर्द्धरेतसां त्विति यथोक्तविभागे गार्हस्थ्यं क्लेशात्मकं कर्मबाहुल्यात् अनुपादेयमापद्यतेति दूषयति तत्रेति साधनभुयस्त्वमिति न्यायमाश्रित्य शङ्कतेअथेति क्लेशबाहुल्योपेतं श्रौतं स्मार्तञ्च बहु कर्म तस्यानुष्ठानात् गृहस्थस्य मोक्षः स्यादेवेत्यर्थः एव कारनिरस्यं दर्शयति नाश्रमान्तराणामिति तेषां नास्ति मुक्तिरित्यत्र यावज्जीवादिश्रुतिविहितावश्यानुष्ठेयकर्मराहित्यं हेतुं सूचयति श्रौतेति शास्त्रविरोधे न्यायस्यनिरवकाशत्वमभिप्रेत्य दूषयति तदपीति एकाश्रमपक्षस्मृत्या गार्हस्थ्यस्यैव प्राधान्यादनधिकृतान्धादिविषयं कर्मसंन्यासविधानमित्याशङ्क्याह ज्ञानांगत्वेनेति न खल्वनधिकृतानामन्धादीनां संन्यासः श्रवणाद्यावृत्तिद्वारा

ज्ञानांगं भवितुमलं तेषां श्रवणाद्यभ्याससामर्थ्यादतः श्रुत्यादीनां विरोधे नास्ति गार्हस्थ्य
स्य प्राधान्यमित्यर्थः तस्य प्राधान्याभावे हेत्वन्तरमाह आश्रमेति ब्रह्मचर्य्यं समाप्य
गृही भवेत् गृहाद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् यदिवेतरथाब्रह्मचर्य्यादेव प्रव्रजेत् गृहाद्वा वनाद्वेति
श्रुतौ तस्याश्रमविकल्पमेके ब्रुवते इति यमिच्छेत्तमावसेदित्यादि स्मृतौ चाश्रमाणां समु
च्चयेन विकल्पेन चाश्रमान्तरमिच्छन्तं प्रतिविधानाच्चगार्हस्थ्यस्य प्रधानत्वमित्यर्थः यदि
सर्वेषामाश्रमाणां श्रुतिस्मृति मूलत्वं तर्हि तत्तदाश्रमविहितकर्मणा ज्ञानेन समुच्चयःसिध्य
तीति शङ्कते सिद्धस्तर्हीति यद्यपि ज्ञानोत्पत्तावाश्रमकर्मणां साधनत्वं तथापि ज्ञानमुत्पन्नं
नैव फले सहकारित्वेन तान्यपेक्षते अन्यथा संन्यासविध्यनुपपत्तेरिति दूषयति न मुमु-
क्षोरिति संन्यासविधानमेवानुक्रामति व्युत्थायेत्यादिना एषणाभ्यो वैमुख्येनोत्थानं त
त्परित्यागः आश्रमसम्पत्यनन्तरं तत्र विहितकर्म कलापानुष्ठानमपि कर्तव्यमित्याह
अथेति प्रागुक्तानां सत्यादीनामल्पफलत्वान्न्यासस्य चज्ञानद्वारा मोक्षफलत्वादित्याह
तस्मादिति अतिरिक्तमशयत्वं महाफलमिति यावत् प्रकृतकर्मभ्यः सकाशान्न्यास एवा
तिशयवानासीदित्युक्तेऽर्थे वाक्यान्तरं पठति न्यास एवेतिलोक त्रयहेतु साधनत्रयं परि
त्यज्य संसाराद्विरक्तः संन्यासपूर्वकादात्मज्ञानादेव प्राप्नवन्तो मोक्षमित्याह न कर्मणेति
सति वैराग्येनास्ति कर्मापेक्षा सत्यां सामग्र्यां कार्य्यापेक्षानु पपत्तेरित्याह ब्रह्मचर्य्यादि
वेति इत्याद्याः सर्वकर्मसंन्यासविधायिन्यः श्रुतयो भवन्तीति शेषः आत्मानमेव लोक
मिच्छन्तः प्रव्रजन्तीत्यादिवाक्यसंग्रहार्थमादिपदं तत्रैवस्मृतिमुदाहरतित्यजेति धर्मा
धर्मयोः सत्यानृतयोश्च संसारारम्भकत्वान्मुमुक्षुणा तत्यागे प्रयतितव्यमित्यर्थः त्यक्तत्वा
भिमानस्यापि तत्त्वतः स्वरूपसम्बन्धाभावात्त्यज्यत्वमविशिष्टमित्याह येनेति अनुभ-
वानुसारेण प्रमातृताप्रमुखस्य संसारस्य दुःखफलत्वमालक्ष्य मोक्षहेतुसम्यक्ज्ञानसिद्ध्यै
ब्रह्मचर्य्यादेव पारिव्राज्यमनुष्ठेयमित्युत्पत्तिविधिमुपन्यस्यति संसारमिति तत्त्वज्ञानमु-
द्दिश्य ब्रह्मचर्य्यादेव कर्मसंन्यासे सामग्रीमभिदधानो विनियोगविधिं सूचयति परमिति
ज्ञानकर्मणोरसमुच्चयार्थं फलविभागं कथयति कर्मणेति उक्तं फलविभागमनूद्य ज्ञाननि
ष्ठानां कर्मसंन्यासस्य कर्त्तव्यत्वमाह तस्मादिति वाक्यशेषेऽपि सर्वकर्मसंन्यासो विवक्षि
तोऽस्तीत्याह इहापीति ज्ञानार्थिनो मुमुक्षोः संन्यासविध्यनुपपत्तिवाधितं समुच्चयविधि
वचनमित्युक्तमिदानींमोक्षस्वभावालोचनयापि समुच्चयवचनमनुचितमित्याह मोक्षस्य
चेति अकुर्वन्विहितं कर्मनिन्दितंच समाचरन् प्रसज्जश्चेन्द्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छतीति
स्मृतेः मुमुक्षूणामपि प्रत्यवायनिवृत्तये कर्त्तव्यं नित्यकर्मेति शंकते नित्यानीति यो यस्मि
न् कर्मण्यधिकृतस्तस्य तदकरणात् प्रत्यवायो भवति नतु कर्मानधिकारिणः संन्यासि
नस्तदकरणात् प्रत्यवायः सम्भवतीति दूषयति नासंन्यासीति तदेव स्पष्टयति नहीति
समिद्धो माध्ययनाद्यकरणात् प्रत्यवायः संन्यासिनो नास्तीत्यर्थः तत्र व्यतिरेकोदाहरण
माह यथेति अकरणात् प्रत्यवायोत पत्तिमभ्युपेत्योक्तं सम्प्रति प्रतिषिद्धकरणादेव प्रत्य
वायो नत्वकरणादभावात् भावोत्पत्तिर्लोक वेद विरुद्धत्वादित्याह न तावदिति ननु नि
त्यकर्मविधायी वेदस्तदकरणात् प्रत्यवायो भवतीति ब्रवीति तत् कथमकरणात् प्रत्य
वायो न भवतीति श्रुतिमाश्रित्योच्यते श्रुत्यन्तरविरोधादिति तत्राह यदीति विहितस्या
करणे सत्यनर्थप्राप्तेर्न नित्यकर्मविधायी वेदोऽनर्थकरत्वेनाप्रमाणमित्याशङ्क्याह विहि
तस्येति नहि विहितस्य करणे पितृलोकप्राप्तिलक्षणं फलं भवतेष्यते धूमादिना नयन
पीडादिदुःखं तु प्रत्यक्षमेवाकरणे च प्रत्यवायोत्पत्तिरुभययापि पुरुषस्यानर्थकरो वेदोऽ

प्रमाणमेव स्यादित्यर्थः नन्वभावस्यापि भावोत्पादनसामर्थ्यं वेदः सम्पादयिष्यतितथा च विहिताकरणप्रत्यवायपरिहारो विहितकरणे फलिष्यतीति नेत्याह तथा चेतिलोकप्रसिद्धपदार्थशक्त्याश्रयणेन शास्त्रप्रवृत्त्यंगीकारादपूर्वशक्त्याधानायोगात् ज्ञापकमेवशास्त्रमित्यर्थः कारकत्वे च तस्याप्रामाण्यमप्रत्याहं स्यादित्याह कारकमिति भवतु शास्त्रस्याप्रामाण्यमित्याशङ्क्यापौरुषेयतया अशेषदोषा नागन्धितत्वान्नैवमित्याहनचेति अनिर्वचयान्युपलम्भस्य सम्बेदनमभावज्ञाने कारण समीहितसाधनज्ञानं तु चरणन्यासादिप्रवृत्तिकारणमिप्यंगीकृत्वोपसंहरति तस्मादिति अकरणात् प्रत्यवायोत्पत्त्यसम्भवस्तच्छब्दार्थः संन्यासिनां ज्ञाननिष्ठानां कर्मसंन्यासित्वादेव कर्मासम्भवे फलितमाह अतइति समुच्चयानुपपत्तौ हेत्वन्तरमाह ज्यायसीति प्रश्नानुपपत्ति मेव प्रपंचयति यदि हीति समुच्चयोपदेशे प्रश्नै कदेशानुपपत्तेश्च न तदुपदेशोपपत्तिरित्याह अर्जुनायेति कर्मण्येवाधिकारस्तेमाफलेषु कदाचनेति अर्जुनं प्रत्युपदेशात्तं प्रति ज्यायसी बुद्धिर्नोक्तेति युक्तं तत् किमित्याद्युपालम्भवचनमित्याशङ्क्याह नचेति येन कल्पनेन ज्यायसी चेदित्यारभ्य तत् किं कर्मणीत्युपालम्भात्माप्रश्नः स्यात् तथा न युक्तं कल्पयितुं एषातेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिरिति वचनविरोधादितियोजना कस्मिन् पक्षे तर्हि प्रश्नस्योपपत्तिरित्याशङ्क्याह यदीति भगवक्तेऽर्थे प्रष्टुर्विवेकाभावात् प्रश्नः स्यादित्याशङ्क्य पूर्वोक्तमेवाधिकं विवक्षया स्मारयति अविवेकत इति भगवतोऽपि प्रतिवचनमज्ञाननिमित्तंप्रश्नाननुरूपत्वादित्याशङ्क्याधिकं दर्शयति नचेति भगवतः सर्वज्ञत्वप्रसिद्धिविरोधादज्ञानाधीनप्रतिवचनायोगादित्यर्थः इतश्च समुच्चयः शास्त्रार्थोन भवतीत्याह अस्माच्चेति कस्तर्हि शास्त्रार्थो विवक्षितस्तत्राह केवलादिति ज्ञानकर्मणोः समुच्चयानुपपत्तौ कारणान्तरमाह ज्ञानेति वाक्यशेषवशादपि समुच्चयस्याशास्त्रार्थतेत्याह कुरुकर्मैव तस्मात्प्राथमिकेन सम्बन्धग्रन्थेन समस्तशास्त्रार्थसंग्राहकेण तद्विवरणात्मनोस्य सन्दर्भस्य नास्ति पौनरुक्त्यामिति मत्वा प्रतिपदं व्याख्यातुं प्रश्नैकदेशं समुत्थापयति ज्यायसी चेदिति वेदश्चेत् प्रमाणमिति यच्चेदित्यस्यनिश्चयार्थत्वं व्यानर्तयति यदिति बुद्धिशब्दस्यान्तः करणविषयत्वं व्यवच्छिनत्ति ज्ञानमिति पूर्वार्द्धस्याक्षरयोजनां कृत्वा समुच्चयाभावे तात्पर्यमाह यदीति इष्टं भगवतेति शेषः एकज्ञानं कर्मासमुच्चितमिति यावत् ज्ञानकर्मणो रभीष्टे समुच्चये समुच्चितस्य श्रेयः साधनस्यैकत्वात् कर्मणः सकाशात् ज्ञानस्य पृथक्करणमयुक्तमित्यर्थः एकमपि साधनं फलतोऽतिरिक्तं किं नस्यादित्याशङ्क्याह न हीति केवलात् कर्मणो ज्ञानस्य केवलस्य फलतोऽतिरिक्तत्वं विवक्षित्वा पृथक्करणं समुच्चयपक्षे प्रत्येकं श्रेयःसाधनत्वानभ्युपगमादिति भावः पूर्वार्द्धस्ययोत्तरार्द्धस्यापि समुच्चयपक्षे तुल्यानुपपत्ति रित्याह तथेति दूरेणह्यवरं कर्मेत्यत्र कर्मणः सकाशात्बुद्धिः श्रेयस्करी भगवतोक्ता कर्म च बुद्धेः सकाशादश्रेयस्करमुक्तंतथापि तदेव कर्म कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेष्विति स्निग्धं शिष्यं भक्तंचमां प्रति कुर्विति भगवन् प्रतिपादयति तत्र कारणानुपलम्भादयुक्तमतिक्रूरे कर्मणि भगवतो मन्नियोजनमिति यदर्जुनो ब्रवीति तच्च समुच्चयपक्षेऽनुपपन्नं स्यादित्यर्थः ॥ १॥

स्वामिकृतटीका।

एवं तावदशोच्यानन्वशोचस्त्वमित्यादिना प्रथमं मोक्षसाधनत्वेन देहात्मविवेकबुद्धिरुक्ता तदनन्तरमेषा तेऽभिहितासांख्ये बुद्धिर्योगेत्विमां शृणु इत्यादिना कर्म चोक्तं नचतयोर्गुणप्रधानभावः स्पष्टं दर्शितःतत्र बुद्धियुक्तस्य स्थितप्रज्ञस्य निष्क्रियत्वनियतेन्द्रि

यत्व निरहङ्कारत्वाद्यभिधानादेषा ब्राह्मीस्थितिः पार्थेतिसप्रशंसमुपसंहाराच्च बुद्धिकर्मणोर्मध्ये बुद्धेःश्रेष्ठत्वं भगवतोऽभिप्रेतं मन्वानोऽर्जुन उवाच ज्यायसी चेदिति कर्मणःसकाशान्मोक्षंप्रत्यन्तरंगत्वेन बुद्धिर्ज्यायसी अधिकतरा श्रेष्ठा चेत् तव सम्मता तर्हि किमर्थं तस्माद् युद्ध्यस्वेति तस्मादुत्तिष्ठेति च वारं वरं वदन् घोरे हिंसात्मके कर्मणि मां प्रवर्त्तयसि ॥ १ ॥

नवलभाष्य ।

गीताशास्त्रके प्रारम्भकाप्रयोजन सूचनकराते हुए श्रीकृष्णभगवान्ने अर्जुनकेअर्थ प्रवृत्ति निवृत्ति विषय दो बुद्धीकहीं एकसांख्यबुद्धि एकयोगबुद्धि तहां [प्रजहातियदाकामान्] इसश्लोकसे लेकर अध्यायकी समाप्तिपर्य्यंत सांख्यबुद्धिको आश्रयण करनेवाले जे पुरुषहैं तिनको संन्यासकरनाचाहिये ऐसा प्रतिपादनकरके फिर उनकी ज्ञाननिष्ठाहीकरके कृतार्थता [एषाब्राह्मीस्थितिः]इस अन्त्यकेश्लोककरके कही और अर्जुनके अर्थ तौ योगबुद्धिको आश्रयकरके हेअर्जुन तेरा कर्महीमें अधिकार है यह [कर्मण्येवाधिकारस्ते] इत्यादि श्लोककरके कर्मही करनाचाहिये ऐसाकहा और फिर तिससेमोक्षकी प्राप्ति कहीं नहीं सो यहसब विचारिकै बड़ीव्याकुल बुद्धियुक्तहो अर्जुन बोलता हुआ और अर्जुनने अपनेमनमें यह विचारकिया कि भगवान् ने मोक्षार्थी भक्तकेलिये साक्षात् मुक्तिकी प्राप्तिमें साधनभूत सांख्यबुद्धिनिष्ठाको अर्थात् आत्मानात्म विवेकज्ञानको सुनाइकरके और मैंभीभक्तहौं तिस मुझको तौ अनेकाहिंसादि अनर्त्थयुक्त और परम्पराकरके भी इसीजन्म में मोक्षहोगा यहआशा जिसमें नहीं ऐसे युद्धकर्ममें प्रेरणाकरी तौ ऐसेविचारसे अर्जुनको चित्तकीव्याकुलताहोना ठीकहीहै और उसीचित्तकी व्याकुलताके अनुसार जो प्रश्नकरताहै कि[ज्यायसीचेत्] इत्यादि अर्त्थात् जो तुमको कर्मसे ज्ञानहीश्रेष्ठहै तौ मुझको घोरकर्ममें क्यों डालतेहौ यहप्रश्नभी ठीकहीहै और उसप्रश्नकाउत्तरवाक्य जो विभाग बिषयशास्त्रमें अर्थात्ज्ञान और कर्म इनको न्याराकरिकै कहनेवाला जो [लोकेस्मिन्द्विविधानिष्ठा] इत्यादि गीताशास्त्र तिसमें भगवान्ने कहाहै सोभी युक्तही है और कोई वृत्तिकारादिक तौ अर्जुनके प्रश्नके अर्थको अन्यथाही कल्पनाकरके उसप्रश्नके प्रतिकूल अर्थात् उलटाही भगवान् का उत्तर वर्णन करतेहैं अर्थात् जैसे सम्बन्धग्रन्थमें वृत्तिकारने गीताकाअर्थ कहाहै उससे प्रतिकूलही यहां अर्जुनकी प्रश्नका और भगवान्के उत्तरका अर्थ निरूपणकरते हैं उसीविरोधको दिखातेहैं प्रथमतौ वृत्तिकारने सम्बन्धग्रन्थमें अर्थात् सबगीताके तात्पर्य्यके कहनेवाले भूमिकाग्रन्थमें सब आश्रमियोंको ज्ञानकर्मका समुच्चयही सबगीताशास्त्र का अर्थ निरूपणकिया अर्थात् सब आश्रमियोंकी कर्मसहित ज्ञानहीसे मुक्तिहोतीहै केवल ज्ञानसे नहीं होती है इसीमें सब गीताका तात्पर्य्य है ऐसी वृत्तिकारने अपनी भूमिकामें पहिले प्रतिज्ञाकरी और फिर

तिसके अनन्तर विशेष अर्थके प्रसंगमें यहभी कहा कि जबतक जीवै तब तक वेदाविहित कर्मोंका त्यागकरके केवल ज्ञानहीसे मोक्षप्राप्त होताहै इस प्रकारसे कर्मका निषेधहीकिया और जब यहां तीसरेअध्यायका व्याख्यान करनेलगे तो यहकहा कि यहां भगवान्ने आश्रमियोंके भेदको दिखाकर जबतक जीवै तबतक श्रौतकर्मका त्यागही कहा तो ऐसे विरुद्धअर्थको भगवान् कैसे अर्जुनकेअर्थ उपदेशकरनेको योग्यहैं और श्रोता जोअर्जुन सोभी इसविरोधयुक्त अर्थको कैसे निश्चयकरसक्ताहै तहां ऐसी कल्पना करनाचाहिये कि गृहस्थोंके ही वैदिककर्मोंके त्यागकरके केवल ज्ञानसे मोक्षका निषेध कियाजाताहै और ब्रह्मचारी आदि आश्रमियों को नहीं अर्थात् और आश्रमियोंको केवलज्ञानसे मोक्षहोताहीहै सो यह वृत्तिकारकामतपूर्वापर अपने ग्रन्थके विरोधसे असंगतहै क्योंकि जब सबआश्रमियों को ज्ञान कर्मका समुच्चयही गीताशास्त्रमें निश्चित अर्थहै ऐसी पहिले प्रतिज्ञाकरके अब उससेविरुद्ध और आश्रमियोंको केवल ज्ञानहीसे मोक्षहोता है ऐसा वृत्तिकार कैसेकहसक्ताहै और जो कहै तो आपही पूर्वापर विरोधहुआ अब कदाचित् ऐसाकहो कि वृत्तिकारका यहमतहै कि केवल वैदिक कर्महीकी दृष्टिकरके यह कथनहै अर्थात् केवल वैदिककर्मरहित ज्ञानसे गृहस्थों को मोक्षकानिषेध कियाजाताहै तहां गृहस्थोंकास्मार्त्त अर्थात् धर्मशास्त्रोक्तकर्म विद्यमानभी है परन्तु उसको अविद्यमानकी उपेक्षाकरके केवल ज्ञानसे ऐसाकथन सिद्धहुआ सो यहभी कथन तुम्हारा विरुद्धहीहै क्योंकि गृहस्थ ही को स्मार्त्तकर्म सहित ज्ञानसे मोक्षका निषेधहोय और आश्रमियोंको न होय यहबात विवेकी पुरुषोंकरके कैसे निश्चयकरनेको शक्यहोसक्तीहै और जो ऊर्ध्वरेता जे संन्यासी तिन्हींको स्मार्त्तकर्म मोक्ष साधन रूपसे ज्ञानके साथ समुच्चय कियेजाते हैं तैसे गृहस्थको भी स्मार्त्तकर्मों के साथ समुच्चय इष्टरहो और वैदिककर्मों के साथ न रहो और जो वैदिककर्म और स्मार्त्त कर्म इन दोनोंप्रकारके कर्मोंकरके समुच्चय मोक्षकेलिये गृहस्थको है और ब्रह्मचारी आदि तीनआश्रमियोंको तो स्मार्त्तकर्ममात्र समुच्चययुक्त ज्ञानसे मोक्षहोतीहै ऐसे माननेमें तो श्रमकेबाहुल्यसे वैदिक और स्मार्त्तकर्म दोनों कर्मोंकाभार गृहस्थके शिरकेऊपर स्थापनकियाजावेगा अब कदाचित् ऐसा कहो कि गृहस्थको बहुतकष्टहीसे मोक्षहोनाचाहिये इससे दोनोंकर्मों की कारणता वहां मोक्षमें अपेक्षितहै और आश्रमियोंको तो केवल स्मार्त्तकर्म सहाययुक्त ज्ञानसे मोक्षहोजायगा क्योंकि वे नित्यवैदिककर्मोंसे रहित रहतेहैं इसकारणसे सो यह कथनभी असंगतहै क्योंकि सब उपनिषदोंमें और इतिहास पुराणोंमें और योगशास्त्रमें ज्ञानांगत्वकरके मुमुक्षुको अर्थात्मोक्ष की इच्छाकरनेवाले विरक्तको सबकर्मोंका त्यागरूप संन्यासका विधान है इससे और आश्रमोंके विकल्पका और समुच्चयका विधानहै इससे अर्थात् पहिले ब्रह्मचारीहोय फिर गृहस्थ होय फिर वानप्रस्थहोय फिर संन्यासी

होय इसप्रकार तौ आश्रमों के समुच्चयका विधान है और जो तीव्रवैराग्य होय तौ ब्रह्मचर्य्याश्रम हीसे संन्यास धारणकरै अथवा गृहस्थाश्रमही से युक्तहुये उस आश्रमको छोड़ संन्यास धारण करै इसप्रकार आश्रमकाविकल्प विधानकियाहै इन दोनोंप्रकारके विधानोंमें श्रुतिस्मृतियोंसे मुमुक्षुपुरुषको सब कर्मोंका त्यागही सिद्धहोताहै समुच्चय सिद्धनहींहोता और जिन श्रुतिस्मृतियोंसे संन्यास सिद्धहोताहै तिनको लिखतेहैं ॥ पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्चलोकैषणायाश्चव्युत्थाय भिक्षाचर्यं चरन्ति तस्मात्संन्यासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः न्यासएवातिरेचयदिति नकर्मणानप्रजयाधनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुरितिच ब्रह्मचर्यादेवप्रव्रजेदित्याद्याः श्रुतयः त्यजधर्ममधर्मञ्च उभेसत्यानृतेत्यज येनत्यजसितंत्यजसंसारमेवनिस्सारं दृष्ट्वासारदिदृक्षया ॥ प्रव्रजन्त्यकृतोद्वाहः परम्वैराग्यमाश्रिताइति बृहस्पतिः परमात्मनियोक्तोयोरक्तोऽपरमात्मनि सर्वैषणाविनिर्मुक्तः सभैक्ष्यंभोक्तुमर्हति कर्मणाबध्यतेजन्तु र्विद्ययाच विमुच्यते तस्मात्कर्मनकुर्वन्ति यतयःपारदर्शिन इति शुकानुशासनम् इहापिचसर्व्वकर्माणिमनसंन्यस्यास्त इत्यादि ॥ अर्थः तहांश्रुतियोंमें तौ ऐसाकहा है कि पुत्रकी एषणासे अर्थात् इच्छासे और धनकी एषणासे और स्वर्गादि लोकोंकी एषणासे ब्राह्मण चित्तको जुदाकर संन्यास धारणकरके भिक्षाचरण करते हैं तिससे संन्यास इनसंन्यासियों का सबतपोंसे अधिकतप है ऐसा ऋषिलोग कहते हैं१ और दूसरी श्रुतीमें यह कहा कि संन्यासही सबधर्मोंसे अधिकहै२ ॥ और तीसरीश्रुति यह कहतीहै कि न तौ कर्मकरके और न संतान करके और न धनकरके मोक्ष प्राप्त होताहै किन्तु एकत्यागहीसे मोक्षरूप अमृतपदवी को संन्यासी लोग प्राप्त होतेहैं ३ और ब्रह्मचर्यहीसे संन्यास धारणकरै यह चौथीश्रुति कहती है ४ ॥ और स्मृतियोंमें ऐसाकहाहै कि धर्मको और अधर्मको त्याग करौ और सत्यझूंठसे मिला जो व्यवहार तिसकोभी त्यागकरौ और सार वस्तुकी देखनेकी इच्छासे निस्सारअर्थात् साररहित संसारको त्यागके जिस ज्ञानसे इनसबोंका त्यागकिया है उसज्ञानको भी त्यागकरौ अर्थात् केवल आत्माराम होउ और परम वैराग्यको जिन्होंने आश्रयणकियाहै ऐसे पुरुष विवाहको विनाही किए संन्यासको धारण करते हैं यहबृहस्पति कहतेहैं और जो पुरुष परमात्मामें अनुरक्तहै और संसारसे विरक्तहै और सब एषणाओं से रहितहै अर्थात् पुत्रधनादि अभिलाष से रहितहै सो भिक्षाके अन्नको भोजन करनेके योग्यहै अर्थात् उसको संन्यासका अधिकारहै और कर्मकरके तौ प्राणी बंधनको प्राप्त होताहै और ज्ञानकरके बन्धनसे छूटि जाताहै तिससे संसारके पारको देखनेवाले जेसंन्यासीते कर्मको नहीं करतेहैं ऐसा महाभारतमें व्यासजीने अपनेपुत्र शुकसे कहाहै और इसगीता शास्त्रमेंभी सबकर्मोंको मनसे त्यागकर सुखपूर्वक रहता है ऐसा पञ्चमाध्यायमें कहाहै ॥ और मोक्षकिसी कर्मसे उत्पन्ननहीं होताहै इससे भी संन्या-

सीको कर्मकरना अनर्थ कहीहै कदाचित् कहो नित्यजे कर्महैं ते किसी फलको नहीं उत्पन्नकरते हैं किन्तु नहींकरनेसे जो प्रत्यवाय दोष तिसके दूरकरनेको ही होतेहैं इससे संन्यासीकोभी करनाचाहिये सो यह कथनभी सम्भव नहींहोता क्योंकि वह प्रत्यवाय दोष संन्यासी को छोड़के जिसको कर्मकरनेका अधिकारहै उसीको कर्मके नहीं करनेसे सम्भव होताहै और संन्यासीको तो अग्निहोत्रादि नित्यकर्मका अधिकार नहींहोनेसे प्रत्यवाय का सम्भव कैसे होसक्ताहै जैसे ब्रह्मचारी आदि असंन्यासियोंको होताहै और जो नहींकरनेसे ही भावरूप प्रत्यवाय उत्पन्नहोय तौ (कथमसतःस-ज्जायेत)इसश्रुतिसे भी बिरोधहोगा क्योंकि इसश्रुतिका यहअर्थहै कि अ-सत्से अर्थात् अभावसे भावरूपपदार्थ कैसे उत्पन्नहोसक्ताहै और विहित करनेको असम्भवहीको प्रत्यवाय वेद कहै तौ अनर्थकरनेवाला वेदही अ-प्रमाण होजाय क्योंकि विहितकरने और नहींकरनेका दुःखमात्रही फलहै और जो किसी कर्त्ताके बिनाकियेही सम्भवमात्रसे फलहोनेलगे तौशास्त्रही कर्त्ताहोजाय तौ बड़ा अनिष्टहोय और सिद्धान्तसे शास्त्रबोधकहीहै कारक नहीं है अर्थात् पुण्य पापका जतानेवालाही है आप करनेवाला नहीं है तिससे संन्यासियोंके कर्मनहींहै इसीसे ज्ञानकर्मका समुच्चयभी नहींसंभव होताहै और ज्ञानकर्मके समुच्चयमें हे कृष्ण जो तुमको कर्मसे ज्ञान श्रेष्ठ अभिमतहोय तौ मुझको घोरकर्ममें किसवास्ते प्रेरणाकरतेहो यहअर्जुनका प्रश्नही नहीं सम्भवहोगा क्योंकि जो कदाचित् दूसरेअध्यायमें भगवान्क-रके ज्ञान औरकर्म ये दोनों एक कालमें संग संग तुमको करनाचाहियेऐसा उपदेशकियाहोता तौ अर्जुनको ज्ञानकाउपदेश तौ होईचुकाथा तौ फिर अर्जुन ज्ञानके लिये ऐसाप्रश्न क्योंकरता कि जो आपको ज्ञानही श्रेष्ठहोय तौ मुझको घोरकर्म में किसवास्ते आज्ञाकरते हो इससे यह अर्जुन के प्रश्न हीसे निश्चितहोताहै कि भगवान्ने ज्ञानकर्मकेसमुच्चयका उपदेशनहीं किया और जो कदाचित् भगवान् अर्जुनसे यह कहाहोय कि ज्ञानश्रेष्ठतौहै परन्तु तुझको नहींकरनाचाहिये तौभी फिर अर्जुनकाप्रश्न नहींसम्भवहोगाक्योंकि जिसको मनाकरचुके उसका प्रश्न कैसे होसक्ताहै इससे एकपुरुषको एकका-लमें ज्ञान और कर्म इनदोनोंका करना नहीं बनसक्ता यह जानहीके भग-वान् ने न्यारे न्यारे अधिकारियोंकोही ज्ञानकर्मका उपदेश किया और अ-र्जुनने तौ अविवेकके होनेसे यह भगवान्का आशय नहीं जाना इसीसे प्रश्नकिया यहही यहां सम्भवहोताहै और जो उससमयमें अर्जुन को भी विवेकज्ञानहोय तौ भी फिर भगवान्का उत्तरवचन नहीं सम्भवहोय और भगवान्में अज्ञानकाकारण किसीतरहसे नहीं सम्भवहोता जिससे विवेक सेही भगवान्का उत्तरवचन दिखाईपड़ताहै इसकारणसे तिससे केवलज्ञा-नहीसे मोक्षहोताहै यही अर्थ सबगीतामें निश्चयकियागयाहै और सब उप-निषदोंमें भी यही अर्थ निश्चितहै और ज्ञानकर्मके समुच्चयके सम्भवहोने में

तौ ज्ञानकर्म के मध्यमें एक निश्चयकरके कहिये यह भगवान् के प्रति अर्जुनकी एक पदार्थविषय प्रार्थना अयुक्तहोजायगी और (कुरुकर्मैवतस्मात्त्वमिति) हे अर्जुन तिससे तू कर्महीकोकर यह कथनद्वारा भगवान् अर्जुनको ज्ञाननिष्ठाका असम्भव दिखलावैंगे सोभी असंगतहोजायगा तिससे समुच्चय नहींठीकहै ॥ अब श्लोकका अर्थ कहते हैं (ज्यायसीचेति) हेजनार्दन जो कर्मसे बुद्धि अर्थात् ज्ञान आपको श्रेष्ठअभिमतहै तौ घोर अर्थात् अति क्रूर जो हिंसारूप कर्म तिसमें मुझको किसवास्ते प्रेरणाकरतेहौ अब जो यहां ज्ञानकर्मका समुच्चय इष्टहोय तौ दोनोंके मध्यमें एक ज्ञानहीको श्रेष्ठ मानके जुदाकरना अर्जुनको नहीं सम्भवहोता क्योंकि समुच्चयपक्षमें दोनों में समानही श्रेयस्साधनत्वहै अर्थात् जैसे मोक्षमें साधनकर्म तैसेही ज्ञान इन दोनोंमें न्यूनाधिक्य समुच्चय पक्षमें नहीं बनसक्ता तौ समुच्चयपक्षमाननेमें अर्जुनकी प्रश्नही अयुक्त होजायगी और जो कहौ कि मोक्षकी साधनता तौ ज्ञानकर्म में तुल्यही है परन्तु फलमें ज्ञानविशेष है इससे ज्ञान को जुदाकरके कहा सो यहभी नहीं बनसक्ता क्योंकि समुच्चय पक्षमें एकही साधनत्वधर्म दोनों में रहता है और जुदा करके कहने में ज्ञानमें स्वतन्त्रताकरके मोक्षसाधनता प्रतीत होगी तौ समुच्चयपक्ष कैसे संभव होसक्ता है तिससे [दूरेणह्यवरंकर्म] इसश्लोकमें तौ भगवान्ने ज्ञानकी श्रेष्ठता और कर्मकी निकृष्टता वर्णनकरी और [कर्मण्ये वाधिकारस्ते] इसश्लोक में उसी निकृष्ट कर्म करने की आज्ञा भगवान्ने करीतौ अर्जुन इस भगवान् की आज्ञामें कारणको बिनाजाने अपने में यह बिचार करताहुआ कि अत्यन्तप्रियभक्त जो मैं तिसको परम कारुणिक भगवान् घोरकर्म में आज्ञा करते हैं यह अर्जुनकी प्रश्नका अभिप्राय है ॥ १ ॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीवमे ।
तदेकं वद निश्चित्य येनश्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

अथ स्मार्तेनैव कर्मणा समुच्चयः सर्वेषां भगवतोक्तः अर्जुनेन चावधारितश्चेत् तत् किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसीत्यादि कथं युक्तं वचनं किञ्च व्यामिश्रेणेति व्यामिश्रेणेव यद्यपि विविक्ताभिधायी भगवान् तथापि ममंमन्दबुद्धेर्व्यामिश्रमिव भगवद्वाक्यं प्रतिभाति तेन मम बुद्धिं मोहयसीवेति मम मन्दबुद्धेर्व्यामोहापनयाय हि प्रवृत्तस्त्वन्तु कथं मोहयस्यतो ब्रवीमि बुद्धिं मोहयसीवेति ममेति त्वं तु भिन्नकर्तृकयोर्ज्ञानकर्मणोरेक पुरुषानुष्ठानासम्भवं यदि मन्यसे तत्रैवं सति तत्तयोरेकं बुद्धिं कर्म वा इदमेवार्जुनस्य योग्यं बुद्धिशक्त्यवस्थानुरूपमिति निश्चित्य वद ब्रूहि येन ज्ञानेन कर्मणा वान्यतरेण श्रेयोऽहमाप्नुयाम् इति यदुक्तं तदपि नोपपद्यते यदि हि कर्मनिष्ठायां गुणभूतमपि ज्ञानं भगवतोक्तं स्यात् तत् कथं तयोरेकं वदेति एकविषयैवार्जुनस्य शुश्रूषास्यान्नहि भगवतोक्तमन्यतरदेव ज्ञानकर्मणोर्वक्ष्यामिनैव द्वयमिति येनोभयप्राप्त्यसम्भवमात्मनो मन्यमान एकमेव प्रार्थयेत् ॥ २॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यत् तु वृत्तिकारैरुक्तं श्रौतेन स्मार्तेन च कर्मणा समुच्चयो गृहस्थानां श्रेयः साधनमितरेषां स्मार्तेनैवेति भगवतोक्तमर्जुनेन च निर्द्धारितमिति तदेतदनुवदति अथेति। तत्रापि तत् किमित्याद्युपालम्भवचनमनुपपन्नं कर्ममात्र समुच्चय वादिनो भगवतो नियोजनाभावादिति दूषयतितत् किमितिइतश्च प्रश्नसमुच्चयानुसारी न भवतीत्याह किंचेति भगवतो विविक्तार्थवादित्वादयुक्तं व्यामिश्रेणेत्यादिवचनमित्याशङ्क्याह यद्यपीतियदिभगवद्वचनंसंकीर्णमिव ते भाति तर्हितेन त्वदीयबुद्धि व्यामोहनमेव तस्य विवक्षितमिति किमितिमोहयसीवेत्युच्यते तत्राह ममेति ज्ञानकर्मणो मिथो विरोधात् युगपदेकपुरुषाननुष्ठेयतया भिन्नकर्तृके कथ्येते तथा च तयोरन्यतरस्मिन्ने व त्वं नियुक्तो नतु ते बुद्धिव्यामोहनमभिमतमिति भगवतो मतमनुवदति त्वमिति तदेकमित्यादिश्लोकार्द्धनोत्तरमाह तत्रेतिउक्तं भागवतमतं सप्तम्या परामृश्यते एकमित्युक्तप्रकारोक्तिः एकमित्युक्तमेव स्पष्टयति बुद्धिमिति निश्चयप्रकारं प्रकटयति इदमिति योग्यत्वं स्पष्टयति बुद्धोतिअस्य हि क्षत्रियस्यसतोन्तःकरणस्यदेहसक्तेः समरसमारम्भावस्थायाश्चेदमेव ज्ञानंकर्मवानुगुणमितिनिर्द्धार्यब्रूहि इत्यर्थः निश्चित्यान्यतरोक्तौ तेन श्रोतुः श्रेयोवाप्तिफलमाह येनेतितदेकमित्यादिवाक्यस्याक्षरोत्थमर्थमुक्त्वा समुच्चयस्य शास्त्रार्थत्वाभावे तात्पर्य्यमाह यदि ह्येति गुणभूतमपि इत्यादिना प्रधानभूतमपि चेति विवक्षितं न तूभयप्राप्त्यसम्भवमात्मनो मन्यमानस्यार्जुनस्यान्तरविषयशुश्रूषा भविष्यति नेत्याह नहीति यथोक्तभगवद्वचनाभावे द्वयप्राप्त्यसम्भवबुद्ध्या नान्यतर प्रार्थना सम्भवतीत्याह येनेति नहि तथाविधंभगवद्वचनंभवतेऽष्टं भगवतः समुच्चय वादित्वांगी कारादतस्तदभावादुक्तबुद्ध्या न युक्तान्यतरप्रार्थनेत्यर्थः २ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननुधर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यत इत्यादिना कर्मणोऽपि श्रेष्ठत्वमुक्तमेवेत्याशङ्क्याह व्यामिश्रेणेति क्वचित् कर्म प्रशंसा क्वचित् ज्ञानप्रशंसेत्येवं व्यामिश्रं सन्देहोत्पानकमिव यद्वाक्यं तेनमे मतिमुभयत्र दोलायितां कुर्वन् मोहयसीवपरमकारुणिकस्यतवमोहकत्वं नास्त्येव तथापि भ्रान्त्या ममैवं भाति इतीवशब्देनोक्तम् अत उभयोर्मध्ये यद्भद्रंतदेकं निश्चित्य वदेति यद्वा अहं इदमेव श्रेयः साधनमिति निश्चित्य ये नानुष्ठितेन श्रेयोमोक्षमहमाप्नुयांप्राप्स्यामि तदेवैकंनिश्चित्य वदेत्यर्थः॥ २ ॥

नवलभाष्य।

अब जो वृत्तिकारने कहाथा किस्मार्त्त कर्मकेसाथ ज्ञानका समुच्चय सब आश्रमियों को है सो जो भगवान्ने कहा होता और उसीको अर्जुनने निश्चयसे धारण कियाहोता तौ [तत् किंकर्मणिघोरेमांनियोजयसीत्यादि] घोर कर्ममें मुझको किसवास्ते प्रेरणा करते हौ यह अर्जुन का वचन कैसे संभवहोताहै और समुच्चय वादियों के मतमें दूसरे श्लोकका अर्थभी नहीं बनता है इस आशयसे कहते हैं कि [व्यामिश्रेणेति] हे कृष्ण यद्यपि आप मेरी बुद्धिमें प्रवेशके लिये न्यारेन्यारेही वाक्यको कहतेहौ तौभी मन्द बुद्धि जो मैं हूं तिसको ऐसाजानपड़ताहै कि आप मिलाहीहुआ वाक्य कहते हैं

और उस वाक्यकरके मेरीबुद्धिको मानो मोह करातेहो ऐसा जानपड़ताहै और वास्तवमें तौ आपमन्द बुद्धिजो मैं तिसके मोहकेदूरकरनेको प्रवृत्तहुये कैसे मोह करातेहो इससे मैं यह कहता हूं कि जैसे कोई अन्यपुरुष मोह करावै तिसके सदृश आपप्रतीत होतेहो और आपतो भिन्नहैं अर्थात् न्यारा न्यारा है कर्त्ता जिन्होंका ऐसेजे ज्ञान और कर्म तिन्होंका एक पुरुष करके करनेका असंभव जो मानतेहो तौ तिनदोनों से एकज्ञान वा कर्म यही अर्जुनके योग्यहै अर्थात् यह अर्जुन के बुद्धिकी शक्तिके योग्यहै ऐसा निश्चय करके कहिये जिसज्ञान वा कर्म करके श्रेय जो मोक्ष तिसको मैं प्राप्तहोउँ और जोतौ कर्मनिष्ठामें ज्ञानगुण भूतहै अर्थात् अंग है अथवा ज्ञाननिष्ठामें कर्मअंग है ऐसा भगवान्ने कहाहोता तौ दोनोंके मध्यमें एकनिश्चय करके कहौ यहअर्जुन के वचनसे सब पदार्थ के श्रवणकरनेकी इच्छानहीं संभव होगी और भगवान्ने यहभी कहीं नहीं कहाहै कि दोनों ज्ञानकर्मों के मध्य में एकही मैं तुझसे कहौंगा और दोनों को नहीं कहौंगा जिससे दोनोंकी प्राप्ति का असंभव अपनाको मानके एककी प्रार्थनाकरैं ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ ३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

प्रश्नानुरूपमेव प्रतिवचनं श्रीभगवानुवाच लोकेऽलोकेऽस्मिन स्थितिति शास्त्रार्थानुष्ठानाधिकृतानां त्रैवर्णिकानां द्विविधा द्विप्रकारा निष्ठा स्थितिरनुष्ठेयतात्पर्य्यं पुरा पूर्वं सर्गादौ प्रजाः सृष्ट्वा तासामभ्युदयनिश्रेयसप्राप्तिसाधनं वेदार्थसम्प्रदायं आविः कुर्वता प्रोक्ता मया सर्वज्ञेन ईश्वरेण हे अनघ अपाप तत्रका सा द्विधा निष्ठेत्याह ज्ञानेति तत्र ज्ञानयोगेन ज्ञानमेव योगस्ते न सांख्यानामात्मानात्मविषयविवेकज्ञानवतां ब्रह्मचर्य्याश्रमादेव कृतसंन्यासानां वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थानां परमहंसपरिव्राजकानां ब्रह्मण्येवावस्थितानां निष्ठा प्रोक्ता कर्म्मयोगेन कर्मैव योगः कर्मयोगस्तेन कर्मयोगेनयोगिनां कर्मिणां निष्ठाप्रोक्तेत्यर्थः यदि चैकेन पुरुषेणैकस्मै पुरुषार्थाय ज्ञानं कर्म च समुच्चित्यानुष्ठेयं भगवतेऽष्टमुक्तं वक्ष्यमाणं वा गीतासु वेदेषु चोक्तं कथमिहार्जुनायोपसन्नाय प्रियाय विशिष्टभिन्नपुरुषकर्तृके एव ज्ञानकर्म निष्ठे ब्रूयात् यदि पुनरर्जुनो ज्ञानं कर्म च द्वयं श्रुत्वा स्वयमेवानुष्ठास्यतिअन्येषां तु भिन्नपुरुषानुष्ठे यतां वक्ष्यामीति मतं भगवतः कल्प्येत् तदा राग द्वेषवानप्रमाणभूतो भगवान् कल्पितः स्यात् तच्चायुक्तं तस्मात् कयापि युक्त्यान समुच्चयो ज्ञानकर्मणोः ॥ ३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

समुच्चय विरोधितया प्रश्नं व्याख्याय तद्विरोधित्वेनैव प्रतिवचनमुत्थापयति प्रश्नेति योऽयं व्यवहारभूमिरुपलभ्यते तत्र त्रै वर्णिकाः ज्ञानंकर्म वा शास्त्रीय मनुष्ठातुमधिक्रियन्ते तेषां द्विधास्थितिमया प्रोक्तेति पूर्वार्द्धं योजयति लोकेऽस्मिन्निति स्थितिमेवव्याकरोति अनुष्ठेयेति पूर्वं प्रवचन प्रसंगम् प्रदर्शयन् प्रवक्तारं विशिनष्टि सर्गादाविति प्रवचनस्यायथार्थत्वशङ्काम् वारयति सर्वज्ञेनेति अर्जुनस्य भगवदुपदेशश्रवणयोग्यत्वं सूचयति अनघेति

निर्द्धारणार्थेति तत्रेति सम्यग्ज्ञानं परमार्थ वस्तुविषयं तदेव योग शब्दितं युज्यते अनेन
ब्रह्मणेति व्युत्पत्तेस्तेन निष्ठेत्यनुवर्तते उक्त ज्ञानोपायमुपादित्सु: सांख्यशब्दार्थ माहआ-
त्मेति तेषामेव कर्मनिष्ठत्व व्यावर्तयति ब्रह्मचर्य्येति तेषां जपादि पारवश्येन श्रवणादि
परङ्मुखत्वं पराकरोति वेदान्तेति उक्तविशेषणवतां मुख्यसंन्यासित्वेन फलावस्थत्वं
दर्शयति परमहंसेति कर्मवर्णाश्रम विहितं धर्माख्यं तदेव युज्यते तेनाभ्युदयेनेतियोग
स्तेन निष्ठाकर्मिणां प्रोक्तेत्यनुषंगं दर्शयन्नाह कर्मैवेत्यादिना एवं प्रतिवचनवाक्यस्यान्ये
वाक्षराणि व्याख्याय तस्यैव तात्पर्य्यार्थं कथयतियदि चेतिइष्टस्यापि दुर्बोधत्वमाशङ्क्याह
उक्तमिति ज्ञानस्यापि मूलविकलतया विभ्रत्वमाशङ्क्याह वेदेष्विति तस्याशिष्यत्वबुद्ध्या
न्यथाकथनमित्याशङ्क्याह उपसन्नायेति तथापि तस्मिन्नौदासीन्यादन्यथोक्तिरित्याशङ्क्याह
प्रियायेति ब्रवीति च भिन्नपुरुषकर्तृकं निष्ठाद्वयं तेन समुच्चयो भगवदभीष्ट: शास्त्रार्थो न
भवतीति शेष: नन्वर्जुनस्य प्रेक्षां पूर्वकारित्वाज्ज्ञानकर्मश्रवणानन्तरमुभयनिर्देशानुपप
त्या समुच्चयानुष्ठानं सम्पत्स्यते तद्व्यतिरिक्तानान्तु ज्ञानकर्मणो भिन्नपुरुषानुष्ठेयत्वं
श्रुत्वाप्रत्येकंतदनुष्ठानं भविष्यतीति भगवतोमतंकल्पते तस्यार्जुनेऽनुरागातिरेकादितरेषु
च तदभावादितितत्राह यदि पुनरिति अप्रमाणभूतत्वमनाप्तत्वं नच भगवतो रागादिम
त्वेनानाप्तत्वं युक्तं समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तमित्यादिविरोधादित्याह तच्चेतिनिष्ठान्यस्य भि
न्नपुरुषानुष्ठेयत्वनिर्देशफलमुपसंहरति तस्मादिति ॥ ३ ॥

स्वामिकृतटीका ।

अत्रोत्तरं श्रीभगवानुवाच लोकेऽस्मिन्निति अयमर्थ: यदि मया परस्पर निरपेक्षं मोक्ष
साधनत्वेन कर्मज्ञानयोगरूपं निष्ठाद्वयमुक्तं स्यात् तर्हि द्वयोर्मध्ये यद्भद्रं स्यात् तदेकं
वदेति तदीय: प्रश्न: संगच्छते नतु मया तथोक्तं किन्तु द्वाभ्यामेकैव ब्रह्मनिष्ठोक्ता गुण
प्रधानभूतयोस्तयो: स्वातन्त्र्यानुपपत्ते: एकस्या एवतु प्रकारभेदमात्रमधिकारिभेदेनोक्तमि
तिअस्मिन् शुद्धाशुद्धान्त:करणतया द्विविधे लोकेऽधिकारि जने द्वे विधे: प्रकारौ यस्या:
साद्विविधा निष्ठा मोक्षपरता पुरा पूर्वाध्याये मया सर्वज्ञेन प्रोक्ता स्पष्टयमेवोक्ता प्रकार
द्वयमेवनिर्दिशति सांख्यानांशुद्धान्त:करणानां ज्ञानभूमिकामारूढानां ज्ञानपरिपाकार्थं ज्ञान
योगेन ध्यानादिना निष्ठा ब्रह्मपरतोक्ता तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्पर इत्या
दिनासांख्यभूमिकामारूढानान्तु अन्त:करणशुद्धिद्वारा तदारोहार्थं तदुपायभूतं कर्मयो
गाधिकारिणां योगिनां कर्मयोगेन निष्ठोक्ता धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यत
इत्यादिना अतएव तव चित्तशुद्ध्यशुद्धिरूपावस्थाभेदेन द्विविधापि निष्ठोक्ता एषा तेऽभि
हितासांख्ये बुद्धिर्योगेत्विव मां शृणवति ॥ ३ ॥

नवलभाष्य ।

अब प्रश्न के योग्यही उत्तर श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं [लोकेस्मि
न्निति] हे अनघ अर्थात् हे निष्पाप अर्जुन इसलोक में शास्त्र विहितज्ञान
कर्मादि उपायों के करनेवाले जे त्रैवर्णिक अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वर्ण
के अधिकारी तिन्हों को दो प्रकार की निष्ठा अर्थात् अनुष्ठान करनेके योग्य
ज्ञानादि उपायका निश्चय सृष्टिकी आदिमें सब प्रजाओं को रचिके तिनके
ऐश्वर्य्य और मोक्षप्राप्तिका साधन जो वेदोंके अर्थका संप्रदाय तिसको प्रकट

करताहुआ जो सर्वज्ञ ईश्वर तिसने कहा न कहौ कौनसी वह दो प्रकारकी निष्ठा है जो आपने कही तिसपै कहते हैं कि हे अर्जुन तहांजे कोई सांख्य हैं अर्थात् आत्मानात्म विषयक विवेक ज्ञानयुक्तनाम आत्माजो जीव वा ईश्वर और अनात्मा संसार इनदोनों के न्यारे न्यारे ज्ञानकरके युक्त और ब्रह्मचर्यहीसे लेकर जिन्होंने संन्यास धारण कियाहै और वेदान्त विज्ञान करके अच्छीतरह निश्चयकियाहै सत्यअर्थ जिन्होंने और जेब्रह्महींमें स्थित होरहेहैं ऐसे जे परमहंस संन्यासी ते यहां सांख्य कहतेहैं तिन्होंको तौ ज्ञान योग करके अर्थात् ज्ञानरूप उपाय करके मैंने निष्ठाकही और जे कोई कर्म करनेवाले हैं तिन्होंको कर्मयोगकरके अर्थात् ईश्वराराधन लक्षण कर्मरूप उपायकरके निष्ठा अर्थात् निश्चय करके रहना मैंने कहा अब जो कदाचित् किसी एकपुरुषकरके एककोई ऐश्वर्य मोक्षादि पुरुषार्थ की सिद्धि के लिये ज्ञान और कर्म जे दोनों समुच्चय कियेहुये अर्थात् दोनों मिलेहुये भगवान्ने इष्ट जानके गीतामें कहे होय अथवा कहने को विचार किये होते अथवा कहीं वेद में कहेहोते तौ किसवास्तेयहां शरणागत और प्रिय ऐसे अर्जुनके अर्थ विशेषकरके न्यारे न्यारे हैं करनेवाले जिन्होंके ऐसी ज्ञान निष्ठा और कर्मनिष्ठाओंको कहते औरजो कदाचित् अर्जुनतौ ज्ञानऔर कर्म इनको सुनके आपही इनका अनुष्ठान करलेवैगा और पुरुषोंको तौ जो जिसकाअधिकारी उसीको करनाचाहिये यह मैं कहताहूं ऐसा भगवानका अभिप्राय जो कल्पनाकियाजावै तौ तौ रागद्वेषयुक्त अप्रमाण भूतभगवान् भी कल्पितहोजायँ क्योंकि ऐसीकल्पनामें अर्जुनको तौ दोनोंका उपदेश सिद्धहुआ और अन्यपुरुषोंको तौ एकही एकका उपदेशहोनेमें भगवान् भी प्राकृत पुरुषके सदृश विषमदृष्टि होजायँ सो ऐसाहोना तौ परमकारुणिक भगवान् को युक्तनहीं है तिससे कोई युक्तिसे ज्ञान और कर्म का समुच्चय नहीं होसक्ताहै ॥ ३ ॥

न कर्मणा मनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
नच संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यदर्जुनेनोक्तं कर्मणो ज्यायस्त्वं बुद्धेः तच्च स्थितमनोराकरणात्तस्याश्चज्ञाननिष्ठायाः संन्यासिनामेवानुष्ठे यत्वं भिन्नपुरुषानुष्ठेयत्ववचनाच्च भगवत एवमेवानुमतमिति गम्यते माञ्चव न्धकारणे कर्मण्ये व नियोजयसीति विषण्णमनसम् अर्जुनं कर्मणामनारम्भे इत्येवंमन्वानमालक्ष्याह भगवान् न कर्मणामनारम्भादिति अथवा ज्ञानकर्मनिष्ठयोः परस्परविरोधादेकेन पुरुषेण युगपदनुष्ठातुमशक्यत्वे सतीतरेतरानपेक्षयो रेव पुरुषार्थहेतुत्वे प्राप्ते कर्म्म निष्ठायाः ज्ञाननिष्ठाप्राप्तिहेतुत्वेन पुरुषार्थहेतुत्वं नस्वातन्त्र्येण ज्ञाननिष्ठातु कर्मनिष्ठोपयालब्धात्मिका सती स्वातन्त्र्येण पुरुषार्थहेतुरन्यानपेक्षेत्येतमर्थं दर्शयिष्यन्नाह भगवान् नकर्मणेति न कर्मणामनारम्भादप्रारम्भात् कर्मणा क्रियाणां यज्ञादीनामिह जन्मनि जन्मान्तरेवानुष्ठितानामुपात्तदुरितक्षयहेतुत्वेन सत्त्वशु

द्धिकारणानां तत्कारणत्वेन च ज्ञानोत्पत्तिद्वारेण ज्ञाननिष्ठाहेतूनां ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः यथा दर्शतल प्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनेत्यादि स्मरणादनाररम्भादनुष्ठानात् नैष्कर्म्यं निःकर्मभावं कर्मशून्यतां ज्ञानयोगेन निष्ठां निष्क्रियात्मस्वरूपेणैवावस्थानामिति यावत् पुरुषो नाश्नुते न प्राप्नोतीत्यर्थः कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं नाश्नुतइति वचनात् तद्विपर्य्ययात् तेषामारम्भात् नैष्कर्म्यमश्नुत इतिगम्यते कस्मात् पुनः कारणात् कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं नाश्नुत इत्युच्यते कर्म्मारम्भस्यैव नैष्कर्म्योपायत्वात् नह्युपायमन्तरेणोपेयोत्पत्तिरस्ति कर्मयोगोपायत्वञ्च नैष्कर्म्यलक्षणस्य ज्ञानयोगस्य श्रुताविह च प्रतिपादनात् श्रुतौ तावत्प्रकृतस्यात्मलोकस्य वेद्यस्य वेदनोपायत्वेन तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेनेत्यादिना कर्मयोगस्य ज्ञानयोगोपायत्वं प्रतिपादितमिहापि संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः योगिनः कर्मकुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणामित्यादि प्रतिपादयिष्यति ननु चोभयं सर्वभूतेऽभ्योदत्वा नैष्कर्म्यमाचरेदित्यादौकर्तव्य कर्मसंन्यासादपि नैष्कर्म्यप्राप्तिं दर्शयति लोके च कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यमिति प्रसिद्धतरमतश्च नैष्कर्म्यार्थिनः किं कर्मारम्भेनेति प्राप्तमत आह नच संन्यासनादेवेति नापि संन्यासनादेव केवलात् कर्म्मपरित्यागमात्रादेव ज्ञानराहितात् सिद्धिं नैष्कर्म्यलक्षणां ज्ञानयोगेननिष्ठां समधिगच्छति न प्राप्नोति ॥ ४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

किमिति भगवता बुद्धेर्ज्यायस्त्वं ज्यायसो वेदित्यत्रोक्तमुपेक्षितमिति तत्राह यदर्जुनेनेति किञ्च ज्ञाननिष्ठायां संन्यासिनामेवाधिकारो भगवतोऽभिप्रेतोऽन्यथा तदीयविभागवचनविरोधादिति विभागवचनसामर्थ्यसिद्धमर्थमाह तस्याश्चेति तर्हि विभागवचनानुरोधादर्जुनस्यापि संन्यासपूर्विकायां ज्ञाननिष्ठायामेवाधिकारो भविष्यति नेत्याह माञ्चेति बुद्धेर्ज्यायस्त्वमुपेत्यापीति चकारार्थः अर्जुनमालक्ष्य भगवानाहेति सम्बन्धः अन्तरेणापि कर्माणिश्रवणादिभिर्ज्ञानावाप्तिर्न भविष्यतीति परबुद्धिमनुरुध्य विशिनष्टि कर्मेति विभागवचनवशादसमुच्चयश्चेदुभयोरपि ज्ञानकर्मणोः स्वातन्त्र्येण पुरुषार्थहेतुत्वमन्यथा कर्मवत् ज्ञानमपि न स्वातन्त्र्येण पुरुषार्थं साधयेदित्याशङ्क्य सम्बन्धान्तरमाह अथवेति तर्हि ज्ञाननिष्ठापि कर्मनिष्ठावत् निष्ठात्वाविशेषान्न स्वातन्त्र्येण पुरुषार्थहेतुरिति समुच्चयसिद्धिरित्याशङ्क्याहज्ञाननिष्ठात्विति नहि रज्जुतत्त्वज्ञानमुत्पन्नं फलसिद्धौ सहकारि सापेक्ष्यमालक्ष्यतेतथेदमपि चोत्पन्नं मोक्षाय नान्यदपेक्ष्यते तदाह अन्येति यस्य चैतत् कर्मेति श्रुताविव कर्मशब्दस्य क्रियमाणवस्तु विषयत्वमाशङ्क्य व्याचष्टे क्रियाणामिति ताश्च नित्यनैमित्तिकत्वेन विभजते यज्ञादीनामिति अस्मिन्नेव जन्मन्यनुष्ठितानां कर्मणां बुद्धिशुद्धिद्वारा ज्ञानकारणत्वे ब्रह्मचारिणां कुतो ज्ञानोत्पत्तिर्जन्मान्तरकृतानां कर्मणां वा तथात्वे गृहस्थादीनामैहिकानिकर्माणि न ज्ञानहेतवः स्युरित्याशङ्क्यानियमं दर्शयति इहेति नेमानि सत्त्वशुद्धिकारणान्युपात्ततदुरितप्रतिबन्धादित्याशङ्क्याह उपात्तेति तर्हि तावतैव कृतार्थानांकुतो ज्ञाननिष्ठाहेतुत्वं तत्राह तत्कारणत्वेनेति कर्मणां चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानहेतुत्वे मानमाह ज्ञानमिति अनारम्भशब्दस्योपक्रमविपरीतविषयत्वं व्यावर्त्तयति अननुष्ठानादिति निष्कर्मणः संन्यासिनःकर्मज्ञानं नैष्कर्म्यमिति व्याचष्टे नैष्कर्म्यमिति कर्माभावावस्थां व्यवच्छिनत्ति ज्ञानयोगेनेतितस्याः साधनपक्षपातित्वं व्यावर्त्तयति निष्क्रियेति कर्मानुष्ठानोपायलब्धा ज्ञाननिष्ठास्वतन्त्रा पुमर्थहेतुरिति प्रकृतार्थसमर्थव्यतिरेकवचनस्यान्वये पर्य्यवसानं मत्वा व्याचष्टे कर्मणामिति उक्तेऽर्थे हेतुं पृच्छति कस्मादिति जिज्ञासितं हेतुमाहउच्यत इति उपायत्वेऽपितदभावे कुतो न नैष्कर्म्यासिद्धिरित्याशंक्याह नहीति ज्ञानं

योगं प्रतिकर्मयोगस्य उपायत्वे श्रुतिस्मृतीप्रमाणयति कर्मयोगेति श्रौतमुपायोपेयत्वप्रतिपादनं प्रकटयति श्रुताविति यतुगीताशास्त्रे कर्मयोगस्य ज्ञानयोगं प्रत्युपायत्वोषपादनं तदिदानीमुदाहरति इहापि चेति न कर्मणामित्यादिना पूर्वार्द्धं व्याख्यायोत्तरार्द्धं व्याख्यातुमाशङ्कयति नन्विति आदिशब्देनशान्तोदान्त उपरतास्तितिक्षुः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्वा इत्यादि गृह्यते तच्चैवलोकप्रसिद्धिमनुकूलयति लोकेचेति प्रसिद्धतरं यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यतेनिवर्तनाद्धि सर्वतो न वेति दुःखमणुमवपीत्यादि दर्शनादिति शेषः लौकिकवैदिकप्रसिद्धिभ्यांसिद्धमर्थमाह अतश्चेति तत्रोत्तरत्वेनोत्तरार्द्धमवतार्य व्याकरोति अत आहेत्यादिना एवकारार्थमाह केवलादिति तदेव स्पष्टयति कर्मेति उक्तमेव नञ् मनुकृष्य क्रियापदेन संगतिंदर्शयति न प्राप्नोतीति॥ ४॥

स्वामिकृतटीका।

अतः सम्यक् चित्तशुद्ध्यर्थं ज्ञानोत्पत्ति पर्य्यन्तं वर्णाश्रमोचितानि कर्माणि कर्तव्यानि अन्यथा चित्तशुद्ध्यभावेन ज्ञानानुत्पत्तेरित्याह न कर्मणामिति कर्मणाम् अनारम्भात् अननुष्ठानान्नैष्कर्म्यं ज्ञानं नाश्नुते न प्राप्नोति ननु चैतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्तीतिश्रुत्या संन्यासस्य मोक्षांगत्वश्रुतेः संन्यासादेव मोक्षो भविष्यति किं कर्मभिरित्याशंक्योक्तं नचेति नच चित्तशुद्धिं विनाकृतात् संन्यसनादेव ज्ञानशून्यात् सिद्धिं मोक्षंसमधिगच्छति प्राप्नोति॥ ४॥

नवलभाष्य।

अब जो अर्जुनने कर्मके सकाशते बुद्धिको श्रेष्ठत्वकहा सो ठीकही है क्योंकि ज्ञानका नाश कभी हो नहींसक्ता और ज्ञाननिष्ठाका अनुष्ठान संन्यासियोंको ही कहाहै अन्यपुरुषोंको नहीं और भगवान् को भी यही अभिमतहै ऐसा प्रतीतहोताहै तो अर्जुनने यह विचाराकिया कि मुझको भगवान् बन्धनकरनेवाले कर्महीमें प्रेरणाकरतेहैं इसप्रकार विषादयुक्त है मन जिसका और कर्मोंके नहीं करनेका है विचार जिसका ऐसे अर्जुन को भगवान् जानके कहतेहैं कि [नकर्मणामनारम्भादिति] हे अर्जुन कर्मोंके नहींकरनेसे कोई ज्ञानकोप्राप्तनहींहोता अथवा ज्ञाननिष्ठा औरकर्मनिष्ठाइन दोनोंका परस्परविरोधहोनेसे एक किसीपुरुषको करनेको समर्थनहींहोनेसे परस्पर अनपेक्ष अर्थात् परस्पर आकांक्षाको नहींकरतीहुई स्वतन्त्रही जो ज्ञाननिष्ठाऔरकर्मनिष्ठा इनको जुदी जुदी मोक्षमें कारणताप्राप्तहुईइतिसदोष केवारणकरनेको कर्मनिष्ठाको ज्ञाननिष्ठाकी प्राप्तिमें,कारणद्वारा मोक्षमें कारणताहै कुछ स्वतन्त्रताकरके नहीं है और ज्ञाननिष्ठा तो कर्मनिष्ठारूप उपाय करके प्राप्तहुआहै स्वरूप जिसको ऐसीहुई स्वतन्त्रता करके और किसीकी अपेक्षा नहींकरती मोक्षरूपपुरुषार्थमें कारणहै इसअर्थको दिखातेहुए भगवान् कहतेहैं कि [नकर्मणेति] हे अर्जुन कर्मोंके अनारम्भसे अर्थात् नहीं प्रारम्भकरनेसे अर्थात् इसजन्ममें अथवा जन्मान्तरमें कियेहुए और ग्रहण

किये पापोंके क्षयमें हेतुहोनेसे +अन्तःकरणके शुद्धिकी कारणताकी प्राप्ति से ज्ञानोत्पत्तिद्वारा ज्ञाननिष्ठामें कारणभूत यज्ञादिकर्म अनारम्भसे अर्थात् नहीं अनुष्ठानकेकरनेसे नैष्कर्म्य जो निष्कर्मभाव नाम कर्मोंकी शून्यता अर्थात् ज्ञानयोगकरके ज्ञाननिष्ठारूप निष्क्रिय आत्मस्वरूपकरके अवस्थित नाम रहना तिसको पुरुषनहीं प्राप्तहोता है और कर्मोंके अनारम्भसे नहीं करनेसे पुरुष नैष्कर्म्यको नहीं प्राप्तहोता है इस कथनसे यह सूचितहुआ कि इससे विपरीत जो कर्मोंका आरम्भ तिससे नैष्कर्म्यको प्राप्तहोता है फिरकौन कारणसे कर्मोंके अनारम्भसे अर्थात् नहींकरनेसे नैष्कर्म्यको नहीं प्राप्तहोता है ऐसा जो कोई कहै तो इसका यह उत्तरहै कि कर्मोंका आरम्भ ही नैष्कर्म्य जो आत्मस्वरूप प्राप्ति तिसका उपायहै और उपायके विना किसी अभीष्ट पदार्थकी उत्पत्तिनहीं होतीहै और नैष्कर्म्य लक्षण जोज्ञानयोगतिस का कर्मयोगही उपायहै यहबातश्रुतिमें और गीतामें प्रतिपादन कीगईहै तहां प्रथम श्रुतिमें जानिबेयोग्य जो आत्मलोक तिसके जानने में उपायरूपकरके कर्मयोगका प्रतिपादन कियाहै कि (तमेतं वेदानुवचने नब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेनेत्यादि) तिसइस आत्माको ब्राह्मणवेदके पठन पाठन करके और यज्ञादिकर्मोंकरके जाननेकी इच्छा करते हैं ऐसा श्रुतिमें कर्मयोग को ज्ञानयोगके उपायरूप करके प्रतिपादन कियाहै और इस गीताशास्त्रमें भी (संन्यासस्तुमहाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः । योगिनः कर्मकुर्वन्ति संगंत्यक्त्वात्म शुद्धये ॥ यज्ञोदानंतपश्चैव पावनानिमनीषिणामित्यादि) पञ्चमाध्यायमें यह कहाहै कि हेअर्जुन कर्मयोग के विना संन्यास प्राप्तहोनेको दुःखरूपहीहै और योगिजन आसक्तिको त्यागकरके अन्तःकरणकी शुद्धिकेलिये कर्मकरते हैं और अठारहवें अध्यायमें यहकहेंगे कि यज्ञ और दान और तपयेकर्म विद्वानोंको पवित्र करनेवाले हैं न कहो (अभयंसर्वभूतेभ्योदत्त्वानैष्कर्म्यमाचरेत्) सबप्राणियों को कर्मों के त्यागकरके अभयदानदेकै मोक्षधर्म का आचरण करै इसस्मृति वचन से करनेके योग्यजेकर्म तिनके संन्याससे भी नैष्कर्म्यकी प्राप्ति दिखाई जातीहै और लोकमें भी कर्मोंके नहीं करनेसे कर्मकीशून्यता प्रसिद्धही है इससे जिसको नैष्कर्म्यकी इच्छाहोय उसको कर्मोंके आरम्भसे क्या प्रयोजन है ऐसा प्राप्तहुआ इससे कहतेहैं कि [नचसंन्यसनादेवेति] हे अर्जुन संन्यासमात्रही से अर्थात् ज्ञानरहितकेवलकर्मोंके त्यागमात्रही से नैष्कर्म्य है लक्षणस्वरूप जिसका ऐसी जो सिद्धिअर्थात् ज्ञानयोग करके निष्ठा तिसको नहीं प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥

+और सुकृतकर्म करनेसे पापक्षयके अनन्तर आत्मज्ञान होताहै इसमें स्मृतीभी प्रमाणहै ज्ञानमुत्पद्यतेपुंसां क्षयात्पापस्यकर्मणः । यथादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि॥अर्थ ॥ पापकर्मके क्षयसे पुरुषोंको ज्ञान उत्पन्न होताहै जैसे निर्मल दर्पणमें मुखदिखलाई देताहै तैसेही निर्मल अन्तःकरणमें आत्माका दर्शनभी होताहै ॥

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्य्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कस्मात् पुनः कारणात् कर्मसंन्यासमात्रादेव केवलात् ज्ञानरहितात् सिद्धिं नैष्कर्म्यलक्षणां पुरुषो नाधिगच्छतीति हेत्वाकाङ्क्षायामाह नहीति नहि यस्मात् क्षणमपि किञ्चित् कालं जातु कदाचिदपि कश्चित्तिष्ठत्यकर्मकृत् सन् कस्मात् कार्य्यते हि यस्मादवश एव कर्म सर्वप्राणी प्रकृतितो जातैः सत्त्वरजस्तमोभिर्गुणैः अज्ञ इति वाक्यशेषो यतो वक्ष्यति गुणैर्यो न विचाल्यत इति सांख्यानां पृथक् करणादज्ञानामेव हि कर्मयोगो न ज्ञानिनां ज्ञानिनांतु गुणैरचाल्यमानानां स्वतश्चलनाभावात् कर्मयोगोनोपपद्यते तथा च व्याख्यातं वेदाविनाशिनमिति ॥ ५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

उक्तेऽर्थे बुभुत्सितं हेतुं वक्तुमुत्तरश्लोकमुत्थापयति कस्मादिति कस्मान्न कर्मसंन्यासादेव सिद्धिमधिगच्छतीति पूर्वेण सम्बन्धः कदाचित् क्षणमात्रमपि न कश्चिदकर्मकृत्तिष्ठतीत्यत्र हेतुत्वेनोत्तरार्द्धं व्याचष्टे कस्मादिति सर्वशब्दात् ज्ञानवानपि गुणैरवशः सन् कर्म कार्य्यते ततश्च ज्ञानवतः संन्यासवचनमनवकाशं स्यादित्याशङ्क्याह अज्ञ इतीति तमेव वाक्यशेषं वाक्यशेषावष्टम्भेन स्पष्टयति यत इति आत्मज्ञानवतो गुणैरविचाल्यतया गुणातीतत्ववचनादज्ञस्यैव सत्त्वादिगुणैरिच्छाभेदेन कार्य्यकरणसंघातं प्रवर्त्तयितुमशक्तस्याजितकार्यकरणसंघातस्य क्रियासु प्रवर्त्तमानत्वमित्यर्थः ज्ञानयोगेनेत्यादिना उक्तन्यायाच्च वाक्यशेषोपपत्तिरित्याह सांख्यानामिति ज्ञानिनो गुणप्रयुक्तचलनाभावेऽपि स्वाभाविकचलनबलात् कर्मयोगो भविष्यतीत्याशङ्क्याह ज्ञानिनां त्विति प्रत्यगात्मनि स्वारसिकचलनासम्भवे प्रागुक्तं न्यायं स्मारयति तथा चेति ॥ ५ ॥

स्वामिकृतटीका।

कर्मणांच संन्यासस्ते ज्ञानासक्तिमात्रं नतु स्वरूपेणाशक्यत्वादित्याह नहि कश्चिदिति कश्चिदपि जातु कस्यांचिदप्यवस्थायां क्षणमात्रमपि ज्ञानी अज्ञानी वा अकर्मकृत् कर्माण्यकुर्वाणो न तिष्ठति अत्र हेतुः प्रकृतिजैः स्वभावप्रभवैरागद्वेषादिभिर्गुणैः सर्वोऽपि जनः कर्म कार्यते कर्मणि प्रवर्तते अवशोऽस्वतन्त्रः सन् ॥ ५ ॥

नवलभाष्य।

फिर कौनकारणसे ज्ञानरहित केवल कर्मसंन्यासमात्रसे नैष्कर्म्य लक्षणा सिद्धिको पुरुषनहींप्राप्तहोताहै इसप्रकार कारणकी आकांक्षामें कहते हैं [नहीति]हेअर्जुन जिसकारणसे क्षणमात्रभी अर्थात् कुछकालभी किसी समयमें कोई पुरुष विनाकर्मकरेसंते नहीं स्थितहोताहै क्योंकि जिसकारणसे अवशही सबप्राणी प्रकृतिसे उत्पन्नहुए जे सत्त्व रज तम तीन गुण तिन्होंने कर्मकराने को प्रेरितकियाहै परन्तु प्रकृतिके गुणोंकरके अज्ञ पुरुषही कर्मकी प्रेरणाको प्राप्तहोताहै जिसकारणसे चौदहे अध्यायमें भगवान्ही यह कहैंगे कि [गुणैर्योनविचाल्यतइति] जो पुरुष प्रकृतिके गुणों करके चलायमान नहीं कियाजाताहै सो गुणातीतअवस्थाको प्राप्तहोता

है तौ इसवचनसे आत्मानात्मविवेक ज्ञानयुक्त पुरुषोंको पृथक्करके कहा है अर्थात् न्याराकरके कहाहै इससे अज्ञानी पुरुषोंकोही कर्मयोगका विधानहै ज्ञानियोंको नहीं है और गुणोंकरके नहीं चलायमानहोते जे ज्ञानी पुरुष तिनका अपनेआप तौ चलन सम्भव होतानहीं इससे कर्मयोग उनमें नहीं बनसक्ता यहसिद्धान्त सब [वेदाविनाशिनंनित्यम्] इसश्लोकके व्याख्यानमें विस्तारपूर्वक कहिआये हैं ॥ ५ ॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यस्त्वनात्मज्ञश्चोदितं कर्म नारभत इति तदसदेवेत्याह कर्मेन्द्रियाणीति कर्मेन्द्रियाणि हस्तादीनि संयम्य संहृत्य य आस्ते तिष्ठति मनसा स्मरन्निन्द्रियार्थान् विषयान् विमूढात्मा विमूढान्तःकरणो ॥ मिथ्याचारो मृषाचारः पापाचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

आत्मज्ञवदनात्मज्ञस्यापि तर्हि कर्माकुर्वतो न प्रत्यवायः शरीरेन्द्रियसंघातं नियन्तुमसमर्थस्य मूर्खस्यापि संन्यासमम्भवादित्याशंक्याह यस्त्विति तस्यचोदिताकरणं तच्छब्देन परामृश्यते तदसदिति मिथ्याचारत्वादिति भावः मिथ्याचरतामेव वर्णयति कर्मेन्द्रियाणीति ॥ ६ ॥

स्वामिकृतटीका ।

अतोऽज्ञकर्मत्यागिनं निन्दति कर्मेन्द्रियाणीति वाक्पाण्यादीनि कर्मेन्द्रियाणि संयम्य निगृह्य यो मनसा भगवद्ध्यानच्छलेन इन्द्रियार्थान् विषयान् स्मरन्नास्तेऽविशुद्धतया मनसा आत्मनि स्थैर्याभावात् स मिथ्याचारः कपटाचारो दाम्भिक उच्यतइत्यर्थः॥६॥

नवलभाष्य।

जो तौ अनात्मज्ञ पुरुष विहितकर्मको नहींकरताहै तिसका कृत्य तौ सब मिथ्याहीहै इसआशयसे कहते हैं [कर्मेन्द्रियाणीति] हे अर्जुन जो पुरुष हस्तपादादि कर्मेन्द्रियोंको संयमकरके अर्थात् समेटके स्थितहोता है और भीतरसे मनकरके विषयोंको स्मरण करतारहता है सो विमूढात्मा अर्थात् मूढ़है अन्तःकरण जिसका ऐसा वहपुरुष मिथ्याचार अर्थात् पापाचार कहाताहै ॥ ६ ॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमशक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यस्त्विति यस्तु पुनः कर्मण्यधिकृतोऽज्ञो बुद्धीन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन कर्मेन्द्रियैर्वाक् पाण्यादिभिः किमारभते इत्याह कर्म्मयोगमसक्तः सन् फलाभिसन्धिवर्जितः स विशिष्यते इतरस्मान्मिथ्याचारात् ॥ ७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अनात्मज्ञस्य चोदितमकुर्वतो जाग्रतो विषयान्तरदर्शनप्रौव्यात् मिथ्याचारस्तेन प्रत्यवायित्वमुक्त्वा विहितमनुतिष्ठतस्तस्यैव फलाभिलाषविकलस्य सदाचारत्वेन वैशिष्ट्यमाचष्टे यस्त्विन्द्रियाणीति विहितमनुतिष्ठतो मौर्ख्यात्कर्म त्यजतो वैशिष्ट्यमचरयो जनया स्पष्टयति यस्तु पुनरिति ॥ ७ ॥

स्वामिकृतटीका।

एतद्विपरीतः कर्मकर्ता तु श्रेष्ठ इत्याह यस्त्विन्द्रियाणीति यस्तु ज्ञानेन्द्रियाणि मनसानियम्य ईश्वरपराणि कृत्वा कर्मेन्द्रियैः कर्मरूपं योगमुपायमारभतेऽनुतिष्ठति अशक्तः फलाभिलाषरहितः स विशिष्यते विशिष्टो भवति चित्तशुद्ध्या ज्ञानवान् भवतीत्यर्थः ॥ ७ ॥

नवलभाष्य।

और जो तौ कर्ममें अधिकारको प्राप्त अज्ञपुरुष ज्ञानेन्द्रियोंको मनकरके वशमें करके और कर्मेन्द्रियोंकरके अर्थात् वाक्पाणि आदि इन्द्रियोंकरके हे अर्जुन फलकी इच्छासे रहितहो कर्मयोगको आरम्भकरता है सो प्रथमसे श्रेष्ठहै ॥ ७ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यत एवमतो नियतं नित्यं शास्त्रोपदिष्टं यो यस्मिन् कर्मण्यधिकृतः फलाय चाश्रुतं तन्नियतं कर्म तत् कुरुत्वं हे अर्जुन यतः कर्मज्यायोऽधिकतरं फलतो हि यस्मादकर्मणोऽकरणादनारम्भात् कथं शरीरयात्रा शरीरस्थितिरपि च ते तव न प्रसिध्येत् प्रसिद्धिं न गच्छेदकर्म्मणोऽकरणात् अतोदृष्टः कर्माकर्मणोरर्थविशेषो लोके ॥ ८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

कर्मानुष्ठायिनो वैशिष्ट्यमुपदिष्टमनूद्य तदनुष्ठानमधिकृतेन कर्तव्यमिति निगमयति यत इति उक्तमेव हेतुं भगवदनुमतिकथनेन स्फुटयति कर्मेति इतश्च त्वया कर्तव्यं कर्मेत्याह शरीरेति तन्नियतं तस्याधिकृतस्येति सम्बन्धः स्वर्गादिफले दर्शपौर्णमासादावधिकृतस्य तस्य तदपि नित्यं स्यादित्याशंक्य विशिनष्टि फलायेति नित्यं कर्मेति नियमेन कर्तव्यमित्यत्र हेतुमाह यत इति हि शब्दोपात्तमुक्तमेव हेतुमनुवदति यस्मादिति करणस्याकरणाज्ज्यायस्त्वं प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति कथमित्यादिना सत्येव कर्मणि देहादिचेष्टाद्वारा शरीरं स्थातुं पारयति तदभावे जीवनमेव दुर्लभं भवेदिति फलितमाह अत इति ॥ ८ ॥

स्वामिकृतटीका।

नियतमिति यस्मादेवं तस्मान्नियतं नित्यं कर्म सन्ध्योपासनादि कुरु हि यस्मादकर्मणः सर्वकर्मणोऽकरणात् सकाशात् कर्मकरणं ज्यायोऽधिकतरं अन्यथा अकर्मणः सर्वकर्मशून्यस्य तव शरीरनिर्वाहोऽपि न भवेत् ॥ ८ ॥

नवलभाष्य।

जिसकारण से ऐसाहै इससे नियत नाम शास्त्रविहित नित्यकर्म अर्थात् जो जिसकर्ममें अधिकारको प्राप्तहै वही कर्मफल रहितहोय तौ नित्यकहाताहै तिसको तू कर और हे अर्जुन जिससे कर्मके नहीं करनेसे कर्म का करनाही श्रेष्ठहै अर्थात् अधिकहै और कर्मकरके रहित जो तू है तिसके शरीर की स्थितिभी नहीं सिद्धिको प्राप्तहोगी इससे कर्म अकर्म इनकाअर्थ विशेष लोकमें देखाही है ॥ ८ ॥

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥ ९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यच्च मन्यसे बन्धार्थत्वात् कर्म न कर्तव्यमिति तदप्यसत् कथं यज्ञार्थादिति यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेर्यज्ञ ईश्वरस्तदर्थं यत् क्रियते तद्यज्ञार्थं कर्मतस्मात् कर्मणोऽन्यत्रान्येन कर्म्मणा लोकोयमधिकृतः कर्म्मकृत् कर्म्मबन्धनः कर्म्मबन्धनं यस्य सोऽयं कर्म्मबन्धनो लोको नतु यज्ञार्थादतस्तादर्थं यज्ञार्थं कर्म्म कौन्तेय मुक्तसंगः कर्म्मफलसंगवर्जितः सन् समाचर निर्वर्तय ॥ ९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

कर्मणा बध्यते जन्तुरिति स्मृतेर्बन्धार्थं कर्म तत् न श्रेयोऽर्थिना कर्तव्यमित्याशंकामनूद्य दूषयति यच्चेत्यादिना कर्माधिकृतस्य तदकरणमयुक्तमिति प्रतिज्ञातं प्रश्नपूर्वकं विवृणोति कथमित्यादिना फलाभिसन्धिमन्तरेण यज्ञार्थं कर्मकुर्वाणस्य बन्धाभावात् तादर्थ्येन कर्मकर्तव्यमित्याह तदर्थमिति यज्ञार्थं कर्मेत्ययुक्तं नहि कर्मार्थमेव कर्मेत्याशंक्य व्याचष्टे यज्ञो वै विष्णुरिति कथं तर्हि कर्मणा बध्यते जन्तुरिति स्मृतिस्तत्राह तस्मादिति ईश्वरार्पणबुद्ध्या कृतस्य कर्मणो बन्धार्थत्वाभावे फलितमाह अत इति ॥ ९ ॥

स्वामिकृतटीका।

सांख्यास्तु सर्वमपि कर्मबन्धकत्वान्नकार्यमित्याहुस्तन्निराकुर्वन्नाह यज्ञार्थादिति यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः तदाराधनार्थात् कर्मणोऽन्यत्र तदेकं विना लोकोऽयं कर्मबन्धनः कर्मभिर्बध्यते नत्वीश्वराराधनार्थेन कर्मणा अतस्तदर्थं विष्णुप्रीत्यर्थं मुक्तसंगो निष्कामः सन् कर्म सम्यगाचर ॥ ९ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जो तू मानरहाहै कि कर्म बन्धन करनेवाला है इससे नहीं करनाचाहिये सो यह माननाभी तेरा असत्है अर्थात् मिथ्याहै इस आशयसे कहते हैं कि [यज्ञार्थादिति] यज्ञनाम विष्णुकाहै यह [यज्ञोवैविष्णुरितिश्रुतिः] इसश्रुतिमें कहाहै इससे यज्ञ जो परमेश्वर तिसकी प्राप्तिके अर्थ जो कर्म कियाजाय उसको यज्ञार्थ कहते हैं तिस यज्ञार्थ कर्मसे और जगह और कर्मकरके यह कर्माधिकारी मनुष्य लोक कर्मबन्धन है अर्थात् कर्मकरके बन्धनको प्राप्तहोताहै इससे कर्मबन्धन यहलोक कहाताहै और

जो आज्ञार्थकर्म है अर्थात् परमेश्वर प्रीत्यर्थकर्महै तिससे बन्धन नहीं होता है इससे हे कौन्तेय अर्जुन उसपरमेश्वरकी प्रीतिके अर्थ मुक्तसंग अर्थात् फलके संगसे रहित होकर तू कर्मकोकर ॥ ९ ॥

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

शङ्करभाष्यम्।

इतश्चाधिकृतेन कर्म कर्तव्यं सहेति सह यज्ञाय यज्ञसहिताः प्रजास्त्रयोवर्णास्ताः सृष्ट्वोत्पाद्य पुरा पूर्वं सर्गादावुवाचोक्तवान् प्रजापतिः प्रजानांस्रष्टा अनेन यज्ञेन प्रसविष्यध्वं प्रसवो वृद्धिरुत्पत्तिस्तां कुरुध्वमेषवो यज्ञः युष्माकमस्तु भवतु इष्टकामधुक् इष्टानभिप्रेतान् कामान् फलविशेषान्दोग्धीतीष्टकामधुक् ॥ १० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

नित्यस्य कर्मणो नैमित्तिकसहितस्याधिकृतेन कर्तव्यत्वे हेत्वन्तरपरत्वेनानन्तरश्लोकमवतारयति इतश्चेति कथं पुनरनेन यज्ञेन वृद्धिरस्माभिः शक्या कर्तुमित्याशंक्याह एष इति ॥ १० ॥

स्वामिकृतटीका।

प्रजापतिवचनादपि कर्मकर्तैव श्रेष्ठ इत्याह सह यज्ञा इति चतुर्भिः यज्ञेन सह वर्तन्त इति सह यज्ञा यज्ञाधिकृता ब्राह्मणाद्याः प्रजाः पुरा सर्गादौ सृष्ट्वेदमुवाच ब्रह्मा अनेन यज्ञेन प्रसविष्यध्वं प्रसवो वृद्धिस्तरोत्तरामतिवृद्धिं लभध्वमित्यर्थः तत्र हेतुः एष यज्ञः वो युष्माकमिष्टकामधुक् इष्टान् कामान् दोग्धीति तथा अभीष्टभोगप्रदोऽस्त्वीत्यर्थः अत्र च यज्ञग्रहणमावश्यककर्मोपलक्षणार्थं काम्यकर्म प्रशंसातु प्रकरणेऽसंगतापि सामान्यतोऽकर्मणः कर्मश्रेष्ठमित्येतदर्थमित्यदोषः ॥ १० ॥

नवलभाष्य।

और इसहेतुसे भी अधिकारी पुरुषको करनाचाहिये इसआशयसे भगवान् कहते हैं कि (सहेति) हे अर्जुन पहिले सृष्टिकी आदिमें प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा यज्ञोंकरके सहित ब्राह्मणादि प्रजाओंको रचिके उनप्रजाओं से बोलताहुआ कि इसयज्ञकरके तुमसब वृद्धिको करौ और यहयज्ञ तुमसबोंको नानाप्रकारकी कामनाका देनेवाला होउ ॥ १० ॥

देवान् भावयताऽनेन ते देवाभावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कथं देवानीति देवानिन्द्रादीन् भावयता वर्द्धयतानेन यज्ञेन ते देवाभावयन्तु आप्याययन्तु वृष्ट्यादिना वो युष्मानेवं परस्परमन्योन्यं भावयन्तः श्रेयः परमपि मोक्षलक्षणं ज्ञानप्राप्तिं क्रमेणावाप्स्यथ स्वर्गं वा परं श्रेयो वा वाप्स्यथ ॥ ११ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

कथं पुनरभीष्टफलविशेषहेतुत्वं यज्ञेऽस्य विज्ञायते नहि देवताप्रसादादृते स्वर्गादिरभ्युदयो लभ्यते नापि सम्यग्दर्शनमन्तरेण निःश्रेयससेद्धुं पारयतीति शंकते कथमिति ततःश्लोकेनोत्तरमाह देवानिति मुमुक्षुत्वबुभुक्षुत्वविभागेन श्रेयसि विकल्पः ॥ ११ ॥

स्वामिकृतटीका।

कथमिष्टकामदोग्धा यज्ञो भवेदित्यत्राह देवानिति अनेन यज्ञेन यूयं देवान् भावयत हविर्भागैः संवर्द्धयत ते च देवा वो युष्मान् संवर्द्धयन्तु वृष्ट्यादिनाऽन्नोत्पत्तिद्वारेण एवमन्योन्यं संवर्द्धयन्तो देवाश्च यूयंच परस्परं श्रेयोऽभीष्टमर्थं प्राप्स्यथ ॥ ११ ॥

नवलभाष्य।

कैसे कामनाओंका देनेवाला योग्यहोगा इसआकांक्षासे कहतेहैं कि[देवानिति]अब ब्रह्माजी प्रजाओंसे कहतेहैं कि हे प्रजालोगोवृद्धिकोप्राप्तहुआ जो यह यज्ञ तिसकरके अर्थात् तिसयज्ञके भागोंकरके देवताओंको वृद्धिको प्राप्तकरौ और ते वृद्धिको प्राप्तहुए जे देवता ते तुमलोगोंको जलवृष्टि पुत्रपौत्रादि समृद्धियों करके वृद्धिको प्राप्तकरैं इसप्रकार परस्पर वृद्धिको प्राप्तहुए परममोक्षलक्षण श्रेयको ज्ञानप्राप्तिद्वारा प्राप्तहोउगे अथवा स्वर्गको अथवा धन पुत्र राज्यादि रूप परमश्रेयको प्राप्तहोउगे ॥ ११ ॥

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्ता न प्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेनएवसः ॥ १२॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च इष्टान् भोगानिति इष्टानभिप्रेतान् भोगान् हि वो युष्मभ्यं देवादास्यन्तीति वितरिष्यन्ति स्त्रीपशुपुत्रादीन् यज्ञभाविता यज्ञैर्वर्द्धितास्तोषिताइत्यर्थः तैर्देवैर्दत्तान् भोगानप्रदायादत्वा आनृण्यमकृत्वेत्यर्थः एभ्यो देवेभ्यो यो भुंक्ते स्वदेहेन्द्रियाण्येव तर्पयति स्तेन एव तस्कर एव स देवादिस्वापहारीत्यर्थः ॥ १२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

इतश्चाधिकृतेन कर्मकर्तव्यमित्याह किंचेति कथमस्माभिर्भाविताः सन्तो देवा भावयिष्यन्ति अस्मानिति तदाह इष्टानिति यज्ञानुष्ठानेन पूर्वोक्तरीत्या स्वर्गापवर्गयोर्भावेऽपि कथं स्त्रीपशुपुत्रादिसिद्धिरित्याशंक्य पूर्वार्द्धं व्याकरोति इष्टानभिप्रेतानिति पश्वादिभिश्च यज्ञानुष्ठानद्वारा भोगो निवर्तनीयोऽन्यथा प्रत्यवायसंगादित्युत्तरार्द्धं व्याचष्टे तैरिति आनृण्यमकृत्वेत्ययमर्थः देवानामृषीणां पितृणांच यज्ञेन ब्रह्मचर्येण प्रजया च सन्तोषमनापाद्य स्वकीयं कार्यकारणसंघातमेव पोष्टुं भुंजानस्तस्करो भवतीति ॥ १२ ॥

स्वामिकृतटीका।

एतदेव स्पष्टी कुर्वन् कर्माकरणे दोषमाह इष्टानिति यज्ञैर्भाविता देवा वृष्ट्यादिद्वारेण वो युष्मभ्यं भोगान् दास्यन्ते हि अतो देवैर्दत्तानन्नादीन् तेभ्यो देवेभ्यः पंचयज्ञादिभिरदत्वा यो भुङ्क्ते सतु चौर एव ज्ञेयः ॥ १२ ॥

और भी यज्ञादिका प्रयोजनहै इसआशयसे कहते हैं कि [इष्टानिति] और यज्ञोंकरके वृद्धिको प्राप्तकरेहुए अर्थात् प्रसन्नकरायेहुए देवता तुम सबोंको बांछित स्त्री पशु पुत्रादि भोगोंको दियाकरेंगे और उनदेवताओं करके दियेहुए जे धनादिभोग तिन्होंको यज्ञादि द्वारा इनदेवताओंको बिना दिये जो आपही भोगता है सो इन देवताओं के धन के चुरानेवाला चोर है ॥ १२ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुंजते तेत्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

ये पुनः देवयज्ञादीन्निर्वर्त्य तच्छिष्टमशनममृताख्यमशितुं शीलं येषां ते यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः सर्वैः पापैश्चुल्ल्यादि पञ्चशूनाकृतैः प्रमादकृतहिंसादिजनितैश्चान्यैर्ये त्वात्मम्भरयो भुञ्जते ते त्वघं पापंस्वयमपि पापाः ये पचन्ति पाकं निर्वर्तयन्ति आत्मकारणा-दात्महेतोः ॥ १३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

देवादिभ्यः संविभागमकृत्वा भुंजानानां प्रत्यवायित्वमुक्त्वा तदन्येषां सर्वदोषरा हित्यं दर्शयति ये पुनरिति यज्ञशिष्टाशिनो ये पुनस्ते तादृशाः सन्तः सर्वकिल्बिषैर्मुच्य न्त इति योजना तैर्दत्ता नित्यादिनोक्तं निगमयति भुंजत इति देवयज्ञादीनित्यादिश ब्देन पितृयज्ञो मनुष्ययज्ञो भूतयज्ञो ब्रह्मयज्ञश्चेति चत्वारो यज्ञाः गृह्यन्ते चुल्लीशब्देन पिठरधारणाद्यर्थक्रियां कुर्वतो विन्यासविशेषवन्तस्त्रयोग्रावाणो विवक्ष्यन्ते आदिशब्देन कण्डनी पेषणी मार्जन्युदककुम्भश्चेत्येते हिंसाहेतवो गृहीतास्तान्येतानि पंच प्राणिनां शूनास्थानानि हिंसाकारणानि तत्प्रयुक्तैः सर्वैरपि बुद्धिपूर्वकैर्दुरितैर्मुच्यन्त इति सम्बंधः प्रमादो विचारव्यतिरेकेणाबुद्धिपूर्वकमुपनतं पादपातादिकार्यं तेन प्राणिनां हिंसा संभा व्यते आदिशब्देनाशुचिसंस्पर्शादिगृहीतं तदुत्थैश्च पापैर्महायज्ञकारिणोमुच्यन्ते उक्तं हि॥ कण्डनं पेषणं चुल्ली उदकुम्भश्च मार्जनम्। पंचशूना गृहस्थस्य पंचयज्ञात् प्रणश्य तीति॥पंचशूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः। कण्डनी चैव कुम्भश्च बध्यते यास्तु वाह यन्निति च ॥ अस्यायमर्थः या यथोक्ताः पंचसंख्यका गृहस्य शूनास्ता यो वाहयन्नापाद यन् वर्तते तेन प्राणिनो बुद्धिपूर्वकंच बध्यन्ते तत् प्रयुक्तं सर्वमपि पापं महायज्ञानुष्ठाना त् प्रणश्यतीति महायज्ञानुष्ठानस्तुत्यर्थं तदनुष्ठानविमुखान् निन्दति येत्विति आत्मम्भ रित्वमेव स्फोरयति ये पचन्तीति स्वदेहेन्द्रियपोषणार्थमेव पाकं कुर्वतां देवयज्ञादिपरा ङ्मुखानां पापभूयस्त्वं दर्शयति भुंजत इति पाठक्रमस्त्वर्थक्रमादपवाधनीयः ॥ १३ ॥

स्वामिकृतटीका।

इतश्च यजन्त एव श्रेष्ठानेतर इत्याह यज्ञशिष्टाशिन इति वैश्वदेवादियज्ञावशिष्टं येऽश्नन्ति ते पंचशूनादिकृतैः सर्वैः किल्बिषैर्मुच्यन्ते पंचशूनाश्च स्मृतावुक्ताः ॥ कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भी च मार्जनी। पंचशूना गृहस्थस्य ताभिः स्वर्गं न गच्छति॥ये त्वा त्मनो भोजनार्थमेव पचन्ति नतु वैश्वदेवाद्यर्थं ते पापादुराचारा अघमेव भुञ्जते॥१३॥

नवलभाष्य।

और फिर जे देवयज्ञादिकों को करके तिससे बचेहुए अमृतरूप अन्नादिक को जे भोजनकरते हैं तेपञ्चशूनादि+ पापोंसे और प्रमादसे किये अर्थात् भूलसे किये जे हिंसादि दोषोंसे उत्पन्नहुएपाप तिन्होंसे छूटजाते हैं और जे पापी अपनेही खानेके लिये रसोई बनाते हैं और न उसमें से फिर अतिथि ब्राह्मणादिकों को भोजन करायाजाताहै तौ उस पापरूप अन्नहीको वे गृहस्थ भोजन करते हैं॥ १३॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥ १४॥

शङ्करभाष्यम्।

इतश्चाधिकृतेन कर्म्म कर्तव्यं जगच्चक्रप्रवृत्तिहेतुर्हि कर्म्म कथमित्युच्यते अन्नाद्भवन्तीति अन्नाद्भुक्ताल्लोहितरेतः परिणतात् प्रत्यक्षं भवन्ति जायन्तेभूतानि पर्जन्याद्वृष्टेरन्नस्य सम्भवः यज्ञाद्भवति पर्जन्यः॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा इतियज्ञोऽपूर्वं स च यज्ञः कर्म्म समुद्भवः ऋत्विग् यजमानयोश्च व्यापारः कर्म्म ततः समुद्भवो यस्य यज्ञस्यापूर्वस्य स यज्ञः कर्म्म समुद्भवः॥ १४॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

देवयज्ञादिकं कर्माधिकृतेन कर्तव्यमित्यत्र हेत्वन्तरमितः शब्दोपात्तमेव दर्शयति जगदिति मनु भुक्तमन्नं रेतो लोहितपरिणतिक्रमेण प्रजारूपेण जायते तच्चान्नं वृष्टिसंभवं प्रत्यक्षदृष्टं तत् कथं कर्मणो जगच्चक्रप्रवर्तकत्वमिति शंकते कथमिति पारम्पर्येण कर्मणस्तद्धेतुत्वं साधयति उच्यत इति उक्तेऽर्थे स्मृत्यन्तरं संवादयति अग्नाविति तत्र हि देवताभिध्यानपूर्वकं तदुद्देशेन प्रहिताहुतिरपूर्वतां गता रश्मिद्वारेणादित्यमारुह्य वृष्ट्यात्मना पृथिवीं प्राप्य व्रीहियवाद्यन्नभावमापद्य संस्कृतो भूत्वा शुक्रशोणितरूपेण परिणता प्रजाभावं प्राप्नोतीत्यर्थः यज्ञः कर्मसमुद्भव इत्ययुक्तं स्वस्यैव स्वोद्भवे कारणत्वायोगादित्याशंक्याह ऋत्विगिति द्रव्यदेवतयोः संग्राहकश्चकारः॥ १४॥

स्वामिकृतटीका।

जगच्चक्रप्रवृत्तिहेतुत्वादपि कर्मकर्तव्यमित्याह अन्नादिति त्रिभिः अन्नाच्छुक्रशोणित

+ पंचशूना दोष धर्मशास्त्रोंमें कहेहैं यथा॥ कण्डनीपेषणी चुल्ली उदकुम्भी चमार्जनी पंचशूना गृहस्थस्यताभिः स्वर्गनविन्दति॥ १॥ अर्थः॥ कण्डे और चक्की और चूल्हा। और पानीका घड़ा और बुहारी इतनी जगह छोटे छोटे जीवोंको रोजगृहस्थोंसे हिंसाहुआ करतीहै सो ये पंचशूना अर्थात् पांचहिंसादोष कहातेहैं इन्होंकरके गृहस्थस्वर्ग को नहीं प्राप्त होता सोइनदोषोंके दूरकरनेको शास्त्रमें पंचमहायज्ञ कहेहैं तिसमें जोरसोई बनीहै उसमें से पहिले निकालके जो नित्यहोम होताहै वहदेव यज्ञहै १ औरउसीमेंसे जो बलीदईजाती है वह भूतयज्ञ २ और जो बलिवैश्वदेव कर्मके समयमें जो अतिथि आजाय उसको जो भोजन कराताहै सो तीसरा ३ नृयज्ञहै और जो नित्यतर्पण करनाहै सो ४ चौथा पितृयज्ञहै और जो नित्यवेदादि विद्याका पढ़ाना वा संहिताका पाठकरना सो ५ पांच ब्रह्मयज्ञहै॥

रूपेण परिणता भूतान्युत्पद्यन्ते अन्नस्य च सम्भवः पर्जन्यात्वृष्टेः स च पर्जन्यो यज्ञाद्भवति स च यज्ञः कर्मसमुद्भवः कर्मणा यजमानादिव्यापारेण सम्यक सम्पद्यत इत्यर्थः ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा इति श्रुतेः ॥ १४ ॥

नवलभाष्य।

और इससे भी अधिकारी पुरुषको कर्म करनाचाहिये जिससे कर्म जगत्रूप चक्रमें हेतुभूत है सो कैसेहै इसआशयसे कहते हैं [अन्नादिति] अन्नसे भूतनाम प्राणी उत्पन्नहोते हैं अर्थात् भोजनकिया जो अन्न वही जब रुधिर वीर्य्यादि परिणामको अर्थात् जब रूपान्तरको प्राप्तहोता है तिस से जरायुजादिक प्राणी उत्पन्नहोते हैं और पर्जन्य जो वृष्टि तिससे अन्न उत्पन्नहोता है और यज्ञसे पर्जन्य अर्थात् मेघ उत्पन्नहोता है सो स्मृतियों में कहाहै कि [अग्नौप्रास्ताहुतिःसम्यगादित्यमुपतिष्ठते।आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततःप्रजाः] अर्थः संस्कारयुक्त कुण्डादिककी अग्निमें मन्त्रपूर्वक समर्प्पण कीहुई जो घृतादि द्रव्यकी आहुति सो सूर्य्यको प्राप्तहोतीहै और सूर्य्यसे फिर वृष्टिहोतीहै और वृष्टिसे अन्न उत्पन्नहोताहै और अन्नसे फिर प्रजाउत्पन्न होतीहैं और जो कहा कि यज्ञसे मेघ उत्पन्नहोता है तहां यज्ञकरके अपूर्वका ग्रहणहै तहां मीमांसाशास्त्रमें ऐसा कहा है कि यज्ञकरने से एक अपूर्वनाम करके संस्कार उत्पन्न होताहै उसी अपूर्व से स्वर्गकी प्राप्तिहोती है उसी अपूर्व का यहांभी यज्ञशब्द करके ग्रहणहै और सो यज्ञरूप अपूर्वकर्मसे उत्पन्नहोता है अर्थात् ऋत्विक्यजमानों का जो व्यापार तिससे होता है और होता आदि अर्थात् होमकरानेवाले आदि यज्ञकरानेवाले ब्राह्मणोंका नाम ऋत्विक् है ॥ १४ ॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

तच्च एवंविधं कर्म्म कुतो जातमित्याह कर्मेति तच्च कर्म्म ब्रह्मोद्भवं ब्रह्मवेदः स उद्भवो यस्य तत् कर्म्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि विजानीहि ब्रह्म पुनर्वेदाख्यमक्षरसमुद्भवं अक्षरं ब्रह्म परमात्मा समुद्भवो यस्य तदक्षरसमुद्भवं ब्रह्म वेदइत्यर्थः यस्मात् साक्षात्परमात्माख्यादक्षरात् तत् पुरुषनिश्वासवत् समुद्भवं ब्रह्म तस्मात् सर्वार्थप्रकाशकत्वात् सर्वगतमपि सत् नित्यं सदा यज्ञविधिप्रधानत्वाद्यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

यदपूर्वहेतुत्वेन कर्मोक्तं तत् किं चैत्यवन्दनादि किंवाग्निहोत्रादि इति सन्दिहानं प्रत्याह कर्मेति किमिति कर्मणो ब्रह्मोद्भवत्वमुच्यते सर्वस्य तदुद्भवत्वाविशेषादित्याशंक्याह ब्रह्म वेद इति ब्रह्म तर्हि वेदाख्यमनादिनिधनमिति तत्राह ब्रह्म पुनरिति अशंक्याह ... अक्षरात्मनो वेदस्य पुनरक्षरेभ्यः सकाशादेव समुद्भवो न सम्भवतीत्याशंक्याह अक्षर

मिति ब्रह्मेत्यक्षरमेवोक्तं तत् कथं तस्मादेवोङ्गयतीत्याशंक्य ब्रह्मशब्दार्थमुक्तमेव स्मरति ब्रह्मवेद इति ननु ब्रह्मशब्दितस्य वेदस्यापि पौरुषेयत्वात् प्रामाण्यसन्देहात् कथं तदुक्तमग्निहोत्रादिकं कर्मनिर्द्धारयितुं शक्यते तत्राह यस्मादिति कथं तर्हि तस्य यज्ञे प्रतिष्ठितत्वं सर्वगतत्वे विशेषायोगादित्याशंक्याह सर्वगतमपीति ॥ १५ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तथा कर्मेति तच्च यजमानादिव्यापाररूपकर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्मवेदस्तस्मात् प्रवृत्तं जानीहि तच्च वेदाख्यं ब्रह्म अक्षरात् परब्रह्मणः समुद्भूतं जानीहि अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतादृग् वेदो यजुर्वेदः सामवेद इति श्रुतेः यत एवमक्षरादेव यज्ञप्रवृत्तेरत्यन्तमभिप्रेतो यज्ञस्तस्मात् सर्वगतमप्यक्षरं ब्रह्म नित्यं सर्वदा यज्ञे प्रतिष्ठितं यज्ञेनोपायभूतेन प्राप्यत इति यज्ञे प्रतिष्ठितमुच्यत इति उद्यमस्था सदा लक्ष्मीरितिवत् यद्वा यस्माज्जगच्चक्रस्य मूलं कर्म तस्मात् सर्वगतमन्त्रार्थवादैः सर्वेषु भूतार्थाख्यानादिषु गतंस्थितमपि वेदाख्यं ब्रह्म सर्वदा यज्ञे तात्पर्येण प्रतिष्ठितम् अतो यज्ञादिकर्मकर्तव्यमित्यर्थः ॥१५॥

नवलभाष्य ।

और वह ऋत्विक् यजमानव्यापाररूप कर्म किससे उत्पन्नहुआ है इस आकांक्षामें कहते हैं कि (कर्मेति) हे अर्जुन वह कर्म ब्रह्म जो वेद तिससे उत्पन्नहोता है ऐसा तुम जानौ और वह वेदअक्षर नाशरहित जो परमात्मा तिससे उत्पन्नहै अर्थात् तिसका श्वासरूपही है किसी मनुष्य निर्मित नहीं है तिससे सब अर्थके प्रकाशक होनेसे सर्वव्यापक भी सद्रूपब्रह्म है परन्तु विधिवाक्य विषय यज्ञमें सबकालमें स्थितहै ॥ १५ ॥

एवं निवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

एवमिति एवमीश्वरेण देवयज्ञपूर्वकं जगच्चक्रं प्रवर्तितं नानुवर्तयतीह लोकेयः कर्मण्यधिकृतः सन्नघायुरघं पापमायुर्जीवनं यस्य सोऽघायुः पापजीवन इति यावत् इन्द्रियाराम इन्द्रियैरारमणमाक्रीड़ाविषयेषु यस्य स इन्द्रियारामो मोघं वृथा हे पार्थ स जीवति तस्मादज्ञेनाधिकृतेन कर्तव्यमेव कर्मेति प्रकरणार्थः प्रागात्मज्ञाननिष्ठायोग्यता प्राप्तेस्तादर्थ्येन कर्मयोगानुष्ठानमधिकृतेनानात्मज्ञेन कर्तव्यमित्येतत् न कर्मणामनारम्भादित्यत आरभ्य शरीरयात्रापिच ते न प्रसिद्धेदकर्मण इत्येवमन्तेन प्रतिपाद्य यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्रेत्यादिना मोघं पार्थ स जीवतीत्येवमन्तेनापि ग्रन्थेन प्रासङ्गिकमधिकृतस्यानात्मविदः कर्मानुष्ठाने बहुकारणमुक्तं तदकरणे च दोषसंकीर्तनं कृतम् ॥ १६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

अधिकृतेनाध्ययनादिद्वारा जगच्चक्रमनुवर्तनीयमन्यथेश्वराज्ञातिलंघिनस्तस्य प्रत्यवायः स्यादित्याह एवमिति न कर्मणामनारम्भादित्यादिनोक्तमुपसंहरति तस्मादिति जगच्चक्रस्य प्रागुक्तप्रकारेणाननुवर्तने वृथा जीवनमघसाधनं यस्मात् तस्माज्जीवता नियतं कर्म कर्तव्यमित्यर्थः यद्यधिकृतेन कर्तव्यमेव कर्म तर्हि किमित्यज्ञेनेति विशिष्यते ज्ञान

निष्ठेनापि तत् कर्तव्यमेवाधिकृतत्वाविशेषादित्याशंक्य पूर्वोक्तमनुवदति प्रागिति नहि ज्ञानकर्मणोर्विरोधात् ज्ञाननिष्ठेन कर्म कर्तुं शक्यते तथाचानात्मज्ञेनैव चित्तशुद्ध्यादि परम्परया ज्ञानार्थं कर्मानुष्ठेयमिति प्रतिपादितमित्यर्थः तर्हि यज्ञार्थादित्यादि किमर्थं नहि तत्र ज्ञाननिष्ठा प्रतिपाद्यते कर्मनिष्ठातु पूर्वमेवोक्तत्वान्नात्र वक्तव्येत्याशंक्य वृत्तम र्थान्तरमनुवदति प्रतिपाद्येति प्रासंगिकमज्ञस्य कर्म कर्तव्यतोक्तिप्रसंगागतमिति यावत् ब हुकारणमीश्वरप्रसादो देवताप्रीतिश्चैत्यादिदोषसंकीर्तनं तैरदत्वा न प्रदायेत्यादि ॥१६॥

स्वामिकृतटीका।

यस्मादेवं परमेश्वरेणैव भूतानां पुरुषार्थसिद्धये कर्मादिचक्रं प्रवर्तितं तस्मात् तदकुर्वतो वृथैव जीवितमित्याह एवमिति परमेश्वरवाक्यभूताद्वेदाख्यब्राह्मणः पुरुषाणां कर्मणि प्रवृत्तिस्ततः कर्मनिष्पत्तिस्ततः पर्जन्यस्ततोऽन्नं ततो भूतानि भूतानां पुनस्तथैव कर्म प्रवृत्तिरित्येवं प्रवर्तितं चक्रं यो नानुवर्तयति नानुतिष्ठति अघं पापरूपमायुर्यस्य सः यत इन्द्रियैर्विषयेष्वेवारमति नत्वीश्वराराधनार्थं कर्मणि अतो मोघं व्यर्थं स जीवति ॥ १६ ॥

नवलभाष्य।

इसप्रकार ईश्वरने देवयज्ञपूर्वक प्रवृत्तकिया जो जगत्रूप चक्र तिसको इसलोकमें कर्ममें अधिकारको प्राप्त जो पुरुष नहीं अनुवर्त्तन करता है अर्थात् नहीं सेवनकरता है सो केवल अघायुहै अर्थात् अघ जो पाप सोई है आयु नाम जीवन जिसका ऐसाहै नाम पाप जीवन है और इंद्रियोंके विषयमेंही है आरामक्रीड़ा जिसकी ऐसाहुआ वहपुरुष हेअर्जुन वृथाही जीवताहै अर्थात् आत्मस्वरूपका नहीं जाननेवाला पुरुष जोआलस्यादि कारणसे वेदोक्त कर्मोका त्यागकरके केवल विषयोंमें रमै उसका निष्फलजीवनहै तिससे कर्ममार्गमें अधिकारको प्राप्त जो अज्ञपुरुष तिसको स्वविहित कर्म अवश्यकर्त्तव्य है अर्थात् जो अपनेवर्ण आश्रममें धर्म शास्त्र विहितहै सोअवश्यकरनेकेयोग्यहै यह इसप्रकरणका अर्थहै अबइसप्रकार आत्मज्ञाननिष्ठाकी योग्यताके पूर्वकालमें उसयोग्यता की प्राप्तिके अर्थ अधिकारी जो अनात्मज्ञ पुरुष अर्थात् आत्मस्वरूप का नहीं जाननेवाला पुरुष उसको कर्मयोग का अनुष्ठान करना चाहिये यह सिद्धान्त तिसको (नकर्मणामनारम्भात्) इस श्लोकसे लेकर और (शरीरयात्रापिचतेनप्रसिद्ध्येद कर्मणः) इस श्लोकके समाप्ति पर्यन्त ग्रन्थकरके प्रतिवादन करके फिर (यज्ञार्थात्कर्मणोन्यत्र) इस श्लोकसे लेकर (मोघंपार्थसजीवति) इस श्लोकके अन्ततक जो ग्रन्थतिस करके अधिकारयुक्त जो अनात्मवित्पुरुषतिसको प्रसंग वशसे कर्मानुष्ठानमें बहुत कारणकहे और फिरतिसके नहीं करनेमें दोषभी कहा ॥ १६ ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्य्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

एवं स्थिते किमेवं प्रवर्तितं चक्रं सर्वेणानुवर्तनीयमाहोस्वित् पूर्वोक्तकर्मयोगानुष्ठानोपायमप्राप्या त्मविदो ज्ञानयोगेनैव निष्ठामात्मविधिः सांख्यैरनुष्ठेयामप्राप्तेनैवेत्येवमर्थमर्जुनस्य प्रश्नमाशङ्क्य स्वयमेव वा शास्त्रार्थस्य विवेकप्रतिपत्त्यर्थमेव चैतमात्मानं विदित्वा निवृत्तमिथ्याज्ञानाः सन्तो ब्राह्मणा मिथ्याज्ञानवद्भिरवश्यं कर्तव्येभ्यः पुत्रेषणादिभ्यो व्युत्थायाथ भिक्षाचर्य्यं शरीरस्थितिमात्रप्रयुक्तं चरन्ति न तेषामात्मज्ञाननिष्ठा व्यतिरेकेणान्यकार्य्यमस्ति इत्येवं श्रुत्यर्थमिह गीताशास्त्रे प्रतिपादयिषितमाविष्कुर्वन्नाह भगवान् यस्त्विति यस्तु सांख्य आत्मज्ञाननिष्ठ आत्मरतिः आत्मनि एव रतिर्न विषयेषु यस्य स आत्मरतिरेव स्याद्भवेत् आत्मतृप्तश्च आत्मनैव तृप्तोनान्नरसादिना स मानवो मनुष्यः संन्यासी आत्मन्येव च सन्तुष्टः सन्तोषो हि बाह्यार्थलाभेन सर्वस्य भवति तमनपेक्ष्यात्मन्येव च सन्तुष्टः सर्वतो विगततृष्ण इत्येतत् य ईदृश आत्मवित्तस्य कार्य्यं करणीयं न विद्यते नास्तीत्यर्थः॥ १७॥

आनंदगिरिकृतटीका।

वृत्तमर्थमेवं विभज्यानुद्यानन्तरश्लोकमाशंक्योत्तरत्वेनावतारयति एवमिति अर्जुनस्य प्रश्नमित्येवमर्थमाशंक्याह भगवानिति सम्बन्धः नःवेषा शंका नावकाशमासादयत्यनात्मज्ञेन कर्तव्यं कर्मेति बहुशो विशेषितत्वादित्याशंक्याह स्वयमेवेति किमर्थं श्रुत्यर्थं स्वयमेव भगवानत्र प्रतिपादयति इत्याशंक्याह शास्त्रार्थस्येति गीताशास्त्रस्य ससंन्यासज्ञानमेव मुक्तिसाधनमर्थो नार्थान्तरमिति विवेकार्थमिह श्रुत्यर्थं संचिपति कीर्तयतीत्यर्थः तमेव श्रुत्यर्थं संचिपति एतमिति सिद्धञ्चेदात्मवेदनमनर्थकं तर्हि व्युत्थानादीत्याशंक्यापातिकविज्ञानफलमाह निवृत्तेति ब्राह्मणग्रहणं तेषामेव व्युत्थाने मुख्यमधिकारित्वमितिज्ञापनार्थं क्लेशात्मकत्वादेषणानांताभ्यो व्युत्थानं सर्वेषां स्वाभाविकत्वादविधित्सितमित्याशंक्याह मिथ्येति भिक्षार्थं चरन्तीति वचनं व्युत्थानविरुद्धमित्याशंक्याह शरीरेति तर्हि तद्वदेव तेषामग्निहोत्राद्यपिकर्तव्यमापद्येतेत्याशङ्क्य व्युत्थायिनामाश्रमधर्मवदग्निहोत्रादेरनुष्ठापकाभावान्नैवमित्याहन तेषामिति यथोक्तं श्रुत्यर्थमस्मिन् गीताशास्त्रे पौर्वापर्येणापर्यालोच्यमाने प्रतिपादयितुमिष्टं प्रकटीकुर्वन् कर्तव्यमेव कर्म जीवतेति नियमे ज्ञानयोगेन सांख्यानामिति चोद्यपरिहारमुपदर्शयति इत्येवमिति आत्मनिष्ठस्य विषयसंगराहित्यंतदनात्मज्ञेन जिज्ञासुनाकर्तव्यमितिमत्वाह यस्तु सांख्य इति किंच आत्मज्ञस्य ज्ञानेनात्मनैव परितृप्तत्वाचान्नपानादिना साध्या तृप्तिरिष्टा तेनविद्यार्थिना संन्यासिनापि नान्नरसादावासक्तिर्युक्ताकर्तुमित्याह आत्मातृप्त इति किंच आत्मविदः सर्वतो वैतृष्ण्यंदृष्टं तदनात्मविदा विद्यार्थिना कर्तव्यमित्याह आत्मन्येवेति रतितृप्तिसन्तोषाणां मोदप्रमोदानन्दवदवान्तरभेदः अथवा रतिर्विषयासक्तिः तृप्तिर्विषयविशेषसम्पर्कजं सुखं सन्तोषोऽभीष्टविषयमात्रलाभाधीनंसुखसामान्यमितिभेदः नन्वात्मरतेरात्मतृप्तस्यात्मन्येव सन्तुष्टस्यापि किंचित् कर्तव्यं मुक्तये भविष्यतीति नेत्याह य ईदृश इति॥ १७॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं कर्मणामनारम्भादित्यादिनाऽज्ञस्यान्तःकरणशुद्ध्यर्थं कर्मयोगमुक्त्वा ज्ञानिनःकर्मानुपयोगमाह यस्त्विति द्वाभ्याम् आत्मन्येव रतिः प्रीतिर्यस्य स ततश्चात्मन्येव तृप्तः स्वानन्दानुभवेन निर्वृतः अत एवात्मन्येव सन्तुष्टो भोगापेक्षारहितो यस्तस्य कर्तव्यं कर्म नास्तीति॥ १७॥

नवलभाष्य।

इस प्रकार जब सिद्धान्त स्थितहुआ तब यह प्रवृत्तहुआ जोपूर्वोक्तजगच्चक्रउसका अनुवर्त्तन अर्थात् सेवनसबी को करना चाहिये किंवापूर्वोक्त कर्मानुष्ठान उपायकरके प्राप्त होनेको योग्य और आत्मवित् पुरुष कोज्ञान योगही करके प्राप्त होनेको योग्य औ आत्मानात्माविवेकज्ञानवान् आत्मवित् पुरुषों करके अनुष्ठानकरने योग्य एसी जो ज्ञाननिष्ठा तिसको नहीं प्राप्तहुआ जो पुरुष तिसीको जगच्चक्रअनुवर्त्तन करने योग्यहै इसके लिये अर्जुनकी प्रश्नकी आशंकाकरके अथवा आपही शास्त्रकेअर्थका विवेककरके जिसमें ज्ञानहोय इसकेलिये इसआत्माको जानके निवृत्तहुआहै झूंठाज्ञानजिन्होंका ऐसे जेज्ञानी पुरुषते झूंठे ज्ञानयुक्त पुरुषों करके अवश्यकरने के योग्य जो पुत्रधनलोक आदिपदार्थों की कामना तिनसे जुदाहोकरशरीर स्थिति मात्रही प्रयोजन जिसका ऐसा भिक्षान्नजीवन तिसको करते विचरते हैं ऐसेज्ञानी ब्राह्मणोंको ज्ञाननिष्ठासे अन्यकुछ कर्त्तव्य नहीं है यह गीताशास्त्रमें प्रतिपादन करनेको इष्ट जो श्रुतियोंका अर्थ तिसको प्रकटकरते हुए भगवान् कहते हैं (यस्त्विति) हेअर्जुन जो सांख्य अर्थात् आत्मज्ञाननिष्ठपुरुष आत्मरतिहीहोय अर्थात् आत्माहीमें है रति प्रीति जिसकी और विषयोंमें नहींहै सो ऐसाआत्मरतिहोय और जो मनुष्यआत्मतृप्तहै अर्थात् आत्माही करके तृप्तियुक्त होरहाहै वाह्यरसादिक करके नहीं और जो आत्माहीमें संतुष्टहै क्योंकि सब किसीको संतोष वाह्यधनादि पदार्थों करके होताहै तिनधनादि पदार्थोंमें तृष्णाको त्यागिके जो ज्ञानयुक्त संन्यासी आत्माहीमें संतोष युक्तहै और सब जगहसे विगततृष्णा होरहाहै ऐसे आत्मवित्पुरुष को कुछकरनेके योग्य कर्मनहीं है ॥ १७ ॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च नैवेति नैव तस्य परमात्मरतेः कृतेन कर्मणार्थः प्रयोजनमस्तिअस्तु तर्ह्यकृतेन अकरणेन प्रत्यवायाख्योऽनर्थो नाकृतेनेहलोके कश्चन कश्चिदपि प्रत्यवायप्राप्तिरूपः आत्महानिलक्षणो वा नैवास्ति नचास्य सर्वभूतेषु ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः प्रयोजननिमित्त क्रिया साध्योव्यपाश्रयः व्यपाश्रयणम् आलम्बनं कञ्चिद्भूतविशेषमाश्रित्य न साध्यःकश्चिदर्थोऽस्ति येन तदर्थाक्रियानुष्ठेया स्यान्नत्वम् एतस्मिन् सर्वतः संप्लुतोदकस्थानीये सम्यग्दर्शने वर्त्तसे ॥ १८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

इतश्चात्मविदो न किञ्चित् कर्तव्यमित्याह किञ्चेति अभ्युदयनिःश्रेयसयोरन्यतरत् प्रयोजनं सुकृतेनात्मविदो भविष्यतीत्याशंक्याह नैवेति प्रत्यवायनिवृत्तये स्वरूपप्रच्युतिप्रत्याख्यानाय वा कर्मस्यादित्याशंक्याह नेत्यादिना ब्रह्मादिषु स्थावरान्तेषु भूते

षु कश्चिद्भूतविशेषमाश्रित्य कश्चिदर्थो विदुषः साध्यो भविष्यति तदर्थं तेन कर्तव्यं कर्मेत्याशंक्याह नचेति तत्राद्यं पदमादत्ते नैवेति तं व्याचष्टे तस्येति आत्मविदः स्वर्गाद्यभ्युदयानर्थित्वं निःश्रेयसस्य च प्राप्तत्वान्नकृतं कर्मार्थवदित्यर्थः आत्मविदा चेत् कर्म न क्रियते तर्हि तेनाकृतेन तस्यानर्थो भविष्यतीति तत् प्रत्याख्यानार्थं तस्य कर्तव्यं कर्मेति शंकते तर्हीति द्वितीयपादेनोत्तरमाह नेत्यादिना अतो न तन्निवृत्त्यर्थं कृतमर्थवदिति शेषः द्वितीयं भागं विभजते नचास्येति व्यपाश्रयमाणमालम्बनं नेति सम्बन्धः पदार्थमुक्त्वा वाक्यार्थमाह भूतेषु किञ्चिदिति स विशेषस्याश्रितस्यापि क्रियाद्वारा प्रयोजनप्रसवहेतुत्वमिति तर्हि मयापि यथोक्तं तत्त्वमाश्रित्य त्याज्यमेव कर्मेत्यर्जुनस्य मतमाशङ्क्याह नत्वमिति ॥ १८ ॥

स्वामिकृतटीका।

तत्र हेतुमाह नैवेति कृतेन कर्मणा तस्यार्थः पुण्यं नैवास्ति नचाकृतेन कश्चनकोऽपि प्रत्यवायोऽस्ति निरहंकारत्वेन विधिनिषेधातीतत्वात् तथापि तद्ध्येषां न प्रियं यदेतन्मनुष्याविदुरिति श्रुतेर्मोक्षे देवकृतविघ्नसम्भवात् तत्परिहारार्थं कर्मभिर्देवाः सेव्या इत्याशङ्क्योक्तं सर्वभूतेषु ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु कश्चिदप्यर्थव्यपाश्रयः आश्रय एव व्यपाश्रयः अर्थे मोक्षे आश्रयणीयोऽस्य नास्तीत्यर्थः विघ्नभावस्य श्रुत्यैवोक्तत्वात् तथा च श्रुतिः तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशते आत्मा ह्येषां सम्भवतीति ह नैत्यव्ययमध्यर्थेदेवा अपि तस्यात्मतत्त्वज्ञस्य अभूत्यै ब्रह्मभावप्रतिबन्धाय नेशते न शक्नुवन्तीति श्रुतेरर्थः देवकृतास्तु विघ्नाः सम्यग्ज्ञानोत्पत्तेः प्रागेव यदेतद् ब्रह्म मनुष्याविदुस्तदेवैषां देवानां न प्रियमिति श्रुत्या ब्रह्मज्ञानस्यैवाप्रियत्वोक्त्या तत्रैव विघ्नकर्तृत्वस्य सूचितत्वात् ॥ १८ ॥

नवलभाष्य।

और तिस परमात्मरतपुरुषको कर्मकरके कुछप्रयोजन नहींहै और न कुछ नहीं करनेसे प्रत्यवायादि दोष उसज्ञानीको होताहै और न कुछआत्महानिरूप दोष संभव होताहै और इसज्ञानीको ब्रह्माको आदिलेके तृण पर्यन्त सब प्राणियोंमें ऐसाकोई नहींहै जिसका आश्रय किसीकार्यके लिये करे और हे अर्जुनतूतौ चारोतरफ से भरेहुये समुद्रके तुल्य जो सम्यग्दर्शन अर्थात् तिसमें नहींवर्त्तताहै जिससे तुझको कुछ कर्तव्य न होय ॥ १८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यत एवं तस्मादिति तस्मादसक्तः संसर्गवर्जितः सततं सर्वदा कार्यं कर्तव्यं नित्यं कर्म समाचर निर्वर्तय असक्तो हि यस्मात् समाचरन्नीश्वरार्थं कर्मकुर्वन् परमाप्नोति पुरुषः मोक्षमाप्नोति पुरुषः सत्त्वशुद्धिद्वारेणेत्यर्थः ॥ १९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

सम्यग्ज्ञाननिष्ठत्वाभावे कर्मानुष्ठानमावश्यकमित्याह यत इति तस्मात् ज्ञाननिष्ठा

राहित्यादिति यावत् मोक्षमेवापेक्षमाणस्य कथं कर्मणि फलान्तरवति नियोगः स्यादि त्याशङ्क्याह असक्तो हीति ॥ १९ ॥

स्वामिकृतटीका।

यस्मादेवं भूतस्य ज्ञानिन एव कर्मानुपयोगो नान्यस्य तस्मात्त्वं कर्म कुर्वित्याह त स्मादिति असक्तः फलसंगरहितः सन् कार्य्यमवश्यकर्तव्यतया विहितं नित्य नैमित्तिकं कर्म सम्यगाचरहि यस्मादसक्तः कर्माचरन् पुरुषः परं मोक्षं चित्तशुद्धिद्वारा प्राप्नोति १९॥

नवलभाष्य।

जिससे ऐसेहै तिससे असक्तहो अर्थात् फलके संगसे रहित होकर निरन्तर अपने करनेके योग्य जोकर्म तिसकोकर जिससे फलाभिसन्धि रहित केवल ईश्वरके अर्थ कर्मको करताहुआ पुरुष अन्तःकरण शुद्धिद्वारा मोक्ष को प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्माच्च कर्मणैवेति कर्मणैव हि तस्मात् पूर्वे क्षत्रियाः विद्वांसः संसिद्धिं मोक्षं गन्तुमास्थिताः प्रवृत्ता जनकादयो जनकाश्वपतिप्रभृतयो यदि ते प्राप्तसम्यग्दर्शनास्ततो लोकसंग्रहार्थप्रारब्धकर्मत्वात् कर्मणा सहैवासंन्यस्यैव कर्म संसिद्धिमास्थिता इत्यर्थः अथाप्राप्तसम्यग्दर्शना जनकादयस्तदा कर्मणा सत्त्वशुद्धिसाधनभूतेन क्रमेण संसिद्धिमास्थिता इति व्याख्येयः श्लोकोऽयं मन्यते पूर्वैरपि जनकादिभिरप्यजानद्भिरेव कर्तव्यं कृतं कर्म तावता नावश्यमन्येन कर्तव्यं सम्यग्दर्शनवता कृतार्थेनेति तथापि प्रारब्धकर्मा यत्तस्त्वं लोकसंग्रहमेवापि लोकस्योन्मार्गप्रवृत्तिनिवारणं लोकसंग्रहस्तमेवापि प्रयोजनं सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यद्यपि जितेन्द्रियोऽपि विवेकी श्रवणादिभिरजस्रं ब्रह्मनिष्ठातुं शक्नोति तथापि क्षत्रियेण त्वया विहितं कर्म न त्याज्यमित्याह यस्माच्चेति तस्मात्त्वमपि कर्म कर्तुं मर्हसीति सम्बन्धः इतोऽपि त्वया विहितं कर्म कर्तव्यमित्याह लोकेति पूर्वार्द्धं विभजते कर्मणैवेति कथं जनकादीनां कर्मणा संसिद्धिप्राप्तिरुच्यते कर्मव्यजां हि सम्यग्दर्शनवतांप्रसिद्धा संसिद्धिरिति तत् किं जनकादयोऽपि प्राप्तसम्यग्दर्शनाः स्युः उत अप्राप्तसम्यग्दर्शना भवेयुरिति विकल्प्य प्रथमं प्रत्याह यदीति लोकसंग्रहार्थकर्मणा सहैव संसिद्धिमास्थिता इति सम्बन्धः कर्मणा सहैवेत्येतत् व्याकरोति असन्न्यस्यैव कर्मेति तत्र हेतुमाह प्रारब्धेति जनकादीनां सत्यपि ज्ञानित्वे प्रारब्धकर्मवशात् कर्मापरित्यज्यैव लोकसंग्रहार्थप्रवर्तमानानां ज्ञानमाहात्म्यादुपपन्ना संसिद्धिरित्यर्थः द्वितीयमनूद्य पूर्वार्द्धं नीतरमाह अथेत्यादिना द्वितीयार्द्धव्यावर्त्यांशङ्कामुत्थापयति अथेति अज्ञेनाऽकृतार्थेन कृतं कर्मत्येतावता ज्ञानवता कृतकृत्येन नतत्कर्तव्यमित्युक्तमंगीकरोति तथापीति तर्हिमयापि ज्ञानवता कृतार्थेन कर्मन कर्तव्यमित्याशङ्क्यार्जुनस्य कर्तव्यमेव कर्मेत्युत्तरार्द्धव्याख्याने न कथयति प्रारब्धेति ॥ २० ॥

स्वा...कृतटीका।

अत्र सदाचारं प्रमाणयति कर्मणैवेति कर्मणैव शुद्धसत्त्वाः सन्तः संसिद्धिं सम्यग् ज्ञानं प्राप्ता इत्यर्थः यद्यपि त्वं सम्यग्ज्ञानिनमेवात्मानं मन्यसे तथापि कर्माचरणं भद्रमेवेत्याह लोकसंग्रहमित्यादि लोकस्य संग्रहः स्वधर्मे प्रवर्तनं मया कर्मणि कृते जनः सर्वोऽपि करिष्यति अन्यथा ज्ञानिदृष्टान्तेनाज्ञो निजधर्मं नित्यं कर्म त्यजन् पतेदित्येवं लोकरक्षणमपि तावत् प्रयोजनंपश्यन् कर्म कर्तुमेवार्हसि न त्यक्तुमित्यर्थः ॥ २० ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जनक अश्वपतिको आदिलेके राजर्षिलोग कर्महीकरके मोक्षको प्राप्तहोतेहुए यद्यपि कर्मसे मोक्ष अतिदुर्लभ और वेदविरुद्धहै तौ भी इसश्लोक का ऐसा अर्थहै ते जनकादिक पहिलेके विद्वान्राजा जो प्राप्त सम्यग्दर्शनथे तौ तौ लोकसंग्रह के अर्थ प्रारब्धकर्मके कारणसे कर्म करके सहितही अर्थात् स्वरूपसे कर्मकेसंन्यासको विनाहीकिये मोक्षको प्राप्त होतेहुए अर्थात् मोक्षको ज्ञानहीकरके प्राप्तहुए कर्मतो केवल लोकसंग्रहार्थ हीथा कुछ मोक्षमें साधन न होताहुआ और जो जनकादिक प्राप्ततत्त्वनहींथे ऐसा कोई कहै तौ वेजनकादि राजा निष्काम कर्मकरके अन्तःकरण शुद्धिद्वारा प्राप्तहुआ जो ज्ञान तिसकरके संसिद्धि जो मोक्ष तिसको प्राप्त होतेहुये ऐसा अर्थ जानना अबकदाचित् अर्जुन ऐसामानताहोय कि अज्ञानीजे जनकादिक तिनको कर्मकरना उचितहीथा इससे उन्होंने किया कुछ जनकादिकों के दृष्टान्तसे सम्यग्दर्शनवान् अर्थात् मेरेसदृश ज्ञानीभी कर्म करै यह थोडेही सिद्धहुआ तिसपै भगवान् कहतेहैं कि हेअर्जुन तू अपना को ज्ञानी समुझताहोय तौ भी लोक संग्रहरूप कार्यको देखताहुआ अर्थात् लोककी कुमार्गमें प्रवृत्तिसे जो निवारणहै उसको लोकसंग्रह कहतेहैं तिस सबलोकों की कुमार्गसे निवृत्तिरूप प्रयोजनको देखताहुआ जो तू है सो कर्म करने को योग्यहै ॥ २० ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥ २१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

लोकसंग्रहः किमर्थं उच्यते यद्यदिति यद्यत् कर्म आचरति श्रेष्ठः प्रधान स्तत्तदेव कर्माचरति इतरो जनस्तदनुगतः किञ्च श्रेष्ठो यत् प्रमाणं कुरुते लौकिकं वैदिकं वा लोकस्तदनुवर्तते तदेव प्रमाणीकरोतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ज्ञानवता कृतार्थेन लोकसंग्रहार्थमपि न प्रवर्तितव्यमित्याशंकामुत्थाप्य परिहरति लोकेत्यादिना श्रुताध्ययनसम्पन्नत्वेनाभिमतो यद्यद्विहितं प्रतिषिद्धं वा कर्मानुतिष्ठति तत्तदेव प्राकृतो जनोऽनुवर्तते तेन विद्यावतापि लोकमर्यादास्थापनार्थंविहितं कर्तव्य

मित्यर्थः श्रेष्ठानुसारित्व मितरेषामाचारे दर्शयित्वा प्रतिपत्तावपि दर्शयति किंचेति २१ ॥

स्वामिकृतटीका।

कर्मकरणे लोकसंग्रहो यथा स्यात् तदाह यद्यदिति इतरः प्राकृतोऽपि जनस्तत्तदे- वाचरति स श्रेष्ठो जनः कर्म शास्त्रं तन्निवृत्ति शास्त्रं वा यत् प्रमाणं मन्यते तदेव लोकोऽप्यनुसरति ॥ २१ ॥

नवलभाष्य।

किसलिये लोकसंग्रहहै इस आकांक्षामें कहतेहैं (यद्यदिति) हे अर्जुन श्रेष्ठ जो प्रधान पुरुष सो जिसजिस धर्मको आचरण करताहै तिसतिस कर्मको कोई इतरजो उसका अनुगामी सामान्य पुरुष सो भी करताहै और श्रेष्ठ पुरुष जिस लौकिक वा वैदिक अर्थको प्रमाण करताहै और लोकभी उसी का अनुवर्त्तन करताहै अर्थात् प्रमाण करताहै ॥ २१ ॥

नमे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्च न।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यद्यत्र लोकसंग्रहकर्तव्यतायां विप्रतिपत्तिस्तर्हि मां किं न पश्यसि नेति न मे मम पार्थ नास्तिन विद्यते कर्तव्यं त्रिष्वपि लोकेषु किञ्चन किञ्चिदपि कस्मान्न् अनवाप्तमप्राप्तमवाप्तव्यं प्रापणीयं तथापि वर्त्ते एव च कर्मण्यहम् ॥ २२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

कृतार्थस्यापि लोकसंग्रहार्थं विहितं कर्म कर्तव्यमित्युक्त्वा तत्रैव भागवतमतमुदाहरणत्वेनोपन्यस्यति यदित्यादिना अप्राप्तस्य प्राप्तये तवापि कर्तृत्वसम्भवात् न किंचिदपि विद्यते कर्त्तव्यमिति कथमुक्तमित्याशङ्क्याह नानवाप्तमिति प्रतीकमुपादाय व्याख्यान द्वारा विद्यावतोऽपि कर्मप्रवृत्तिं सम्भावयति नेत्यादिना अन्वयार्थं पुनर्नञोऽनुवादः भगवतो मे नास्ति कर्तव्यमित्येतदाकांक्षाद्वारा स्फोरयति कस्मादित्यादिना प्रयोजनाभावे त्वयापि नानुष्ठेयं कर्मेत्याशङ्क्य लोकसंग्रहार्थं ममापि कर्मानुष्ठानमिति मत्वाह तथापीति ॥ २२ ॥

स्वामिकृतटीका।

अत्र चाहमेव दृष्टान्त इत्याह नमे इति त्रिभिः हे पार्थ मे कर्त्तव्यं नास्ति यतस्त्रि- ष्वपि लोकेष्वनवाप्तमवाप्तम् अवाप्तव्यं प्राप्यं नास्ति तथापि कर्मणि वर्त एव कर्म करोम्येवेत्यर्थः ॥ २२ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जो कदाचित् तू इसलोक संग्रहार्थ कर्मके करनेमें किसी प्रकारका विवाद जानताहोय तौ मुझकोही क्यों नहीं देखता जो मैंही केवल लोकसंग्रहार्थही कर्मको कररहाहौं इसआशयसे भगवान् कहतेहैं (नमे इति] और अर्जुन तीनलोक में जो कुछकरने के योग्य कर्महोय ऐसामुझ

को नहींहै क्योंकि जो कोई कर्मकरताहै सो किसीवस्तुके प्राप्तिहीके लिये करताहै सो मुझको ऐसी कोई वस्तुनहीं जो प्राप्तनहोय और जिसके प्राप्ति केलिये कुछकर्तव्यहोय तौ भी मैंकर्ममें प्रवृत्तहोरहा हौं ॥ २२ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातुकर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यदि हि पुनरहं न वर्तेयं जातु कदाचित् कर्मण्यतन्द्रितोऽनलसः सन् मम श्रेष्ठस्य सतो वर्त्म मार्गमनुवर्तन्ते मनुष्याः हे पार्थ सर्वशः सर्वप्रकारैः ॥ २३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

लोकसंग्रहोऽपि न ते कर्तव्यो विफलत्वादित्याशङ्क्याह यदि हीति ॥ २३ ॥

स्वामिकृतटीका।

अकरणे लोकस्य नाशं दर्शयति यदि ह्यहमिति जातु कदाचिदतन्द्रितोऽनलसःसन् यदि कर्मणि न वर्तेयं कर्म नानुतिष्ठेयं तर्हि ममैव वर्त्म मार्गं मनुष्या अनुवर्तंतेऽनुवर्तेरन्नित्यर्थः ॥ २३ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जो कदाचित् मैं आलस्य रहितहोके कर्ममें प्रवृत्तनहोउं तौमनुष्य सबप्रकार करके मेरेही मार्गको अनुवर्त्तन करैं अर्थात् फिरकर्म करैंहीं नहीं ॥ २३ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्य्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्तास्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तथाच कोदोष इत्याह उत्सीदेयुर्विनश्येयुरिमे सर्वेलोका लोकस्थितिनिमित्तस्य कर्मणोऽभावात् न कुर्य्यां कर्म चेदहं किञ्च सङ्करस्य च कर्त्तास्यां तेन कारणेनोपहन्यामिमाः प्रजाः प्रजानामनुग्रहाय प्रवृत्तस्तदुपहतिं उपहननं कुर्य्यामित्यर्थः ममेश्वरस्याननुरूपमापद्येत यदि पुनरहमिवत्वं कृतार्थबुद्धिरात्मविदन्यो वा तस्याप्यात्मनः कर्तव्याभावेऽपि परानुग्रह एव कर्तव्य इति ॥ २४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

श्रेष्ठस्य तव मार्गानुवर्तित्वं मनुष्याणामुचितमेवेत्याशङ्क्य दूषयति तथाचेत्यादिना ईश्वरस्य कर्मण्यप्रवृत्तौ तदनुवर्तिनामपि कर्मानुपपत्तिरिति हेतुमाह लोकस्थितेति इतश्चेश्वरेण कर्म कर्तव्यमित्याह किञ्चेति यदि कर्म न कुर्यामितिशेषः संकरकरणस्यकार्यं कथयति तेनेति प्रजोपहतिरपि प्राप्यते चेत् किं तया तव स्यादिति तत्राह प्रजानामिति त्वामनाचरन्तमनुवर्ततां सर्वेषां को दोषः स्यादित्यपेक्षायामीश्वरस्य कृतार्थतया कर्मानुष्ठानाभावेतदनुवर्तिनामपि तदभावाद्वेस्थितिहेत्वभावात् पृथिव्यादिभूतानां वि

नाशप्रसंगाद्वर्णाश्रमधर्मव्यवस्थानुपपत्तेश्चाधिकृतानां प्राणभृतां पापोपहतत्वप्रसंगात् परानुग्रहार्थप्रवृत्तिरीश्वरस्येत्युक्त्वं संप्रति लोकसंग्रहाय कर्म कुर्वाणस्य कर्तृत्वाभिमानेन ज्ञानाभिभवे प्राप्ते प्रत्याह यदि पुनरिति कृतार्थबुद्धित्वे हेतुमाह आत्मविदिति यथावद्वात्मानमवगच्छन् कर्तृत्वाद्यभिमानाभावात् कृतार्थो भवत्येवेत्यर्थः अर्जुनादन्यत्रापि ज्ञानवति कृतार्थबुद्धित्वकर्तव्यत्वाद्यभिमानहीने तुल्यमित्याह अन्योवेति तस्य तर्हि कर्मानुष्ठानमफलत्वादनवकाश मित्याशङ्क्याह तस्यापीति कर्तव्य इत्यात्मविदापि परानुग्रहाय कर्तव्यमेव कर्मेत्याहेति शेषः ॥ २४ ॥

स्वामिकृतटीका।

ततः किमत आह उत्सीदेयुरिति उत्सीदेयुः धर्मलोपेन नश्येयुः ततश्च यो वर्णसंकरो भवेत् तस्याप्यहमेव कर्ता स्यां भवेयम् एवमहमेव प्रजा उपहन्यां मलिनी कुर्य्यामिति ॥ २४ ॥

नवलभाष्य।

तौ फिर क्यादोष होगा इससे कहते हैं [उत्सीदेयुरिति] और हेअर्जुन जो मैं कर्मनकरौं तौ और अज्ञपुरुषभी मुझको देखके कर्मनहीं करैं तौजगत् की स्थितिहेतु कर्मके अभावसे सबलोक नाशको प्राप्तहोजायं और फिर उनपुरुषोंकी स्त्रियां अन्यपुरुषोंके प्रसंगसे वर्णसंकर पुत्रोंको उत्पन्नकरने लगें तौ उस वर्णसंकरदोष का उत्पन्नकरनेवाला मैंहीहोउं फिर इसप्रकार सब प्रजाओंका नाशमैंहीकरौं तौ प्रजाके अनुग्रहकेलिये प्रवृत्तहुआ जोमैं सोई फिर उपहननकरौं तौ ईश्वर जोमैंहूं तिसके अयोग्य यह आपातित होजाय अर्थात् प्राप्तहोय और हे अर्जुन जातूभी मेरेसदृश अपनाको कृतार्थ बुद्धि और आत्मवित् मानताहोय और जो और भीकोई ऐसाहोय तौतिस कोभी अपनाको कुछकरनेके योग्यनहीं होनेमेंभी परायाअनुग्रह करनाही चाहिये अर्थात् औरोंके शिक्षाके अर्थसत्कर्म अवश्यकरना चाहिये ॥ २४॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्य्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

सक्ता इतिसक्ताः कर्मण्यकर्मणः फलं मम भविष्यतीति केचिदविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत कुर्य्याद्विद्वानात्मवित्तथा असक्तः सन् तद्वत् किमर्थं करोति तच्छृणु चिकीर्षुर्यथा कर्तुमिच्छुः लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकरूपं श्लोकं व्याकरोति सक्ता इत्यादिना असक्तः सन् कर्तृत्वाभिमानं फलाभिसन्धिं वाऽकुर्वन्निति यावत् ॥ २५ ॥

स्वामिकृतटीका।

तस्मादात्मविदापि लोकसंग्रहार्थं तत्क्रियया कर्म कार्य्यमेवेत्युपसंहरति सक्ता इति

कर्मणि सक्ताः अभिनिविष्टाः सन्तो यथाऽज्ञाः कर्माणि कुर्वन्ति असक्तः सन् विद्वानपि तथैव कुर्य्याल्लोकसंग्रहं कर्तुमिच्छुः ॥ २५ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन कर्ममें सक्तनाम प्रीतियुक्त पुरुष अर्थात् इसकर्मका फल मुझको होगा ऐसे आग्रहकरके युक्तमूर्ख अज्ञानी पुरुष जैसे कर्म करते हैं तैसे विद्वान् जो ज्ञानी सोभी केवल लोकसंग्रहकी इच्छाकरता हुआ अर्थात्मेरे कर्मकरनेसे और भी मनुष्य कर्मकरैं ऐसी इच्छा करताहुआ और आपभीतरसे आसक्त होकर अर्थात् कर्तृत्वका अभिनिवेश नाममैं करनेवालाहूं इसआग्रहको त्यागकरके अथवा फलकी चाहना को नहीं करता हुआ ज्ञानीभी कर्मकरै ॥ २५ ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
योजयेत् सर्व कर्माणि विद्वान् युक्तःसमाचरन्॥ २६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

एवं लोकसंग्रहं चिकीर्षोर्मेमात्मविदः कर्तव्यमस्त्वन्यस्य वा लोकसंग्रहमुक्त्वा ततस्तस्यात्मविदिदमुपादिश्यते नेति बुद्धेर्भेदो बुद्धिभेदः मया इदं कर्तव्यं भोक्तव्यञ्चास्य कर्मणः फलमिति निश्चयरूपायां बुद्धेर्भेदनं चालनं बुद्धिभेदस्तन्नजनयेन्नोत्पादयेदज्ञानामविवेकिनां कर्मसंगिनां कर्मण्यासक्तानाम् आसङ्गवतां किन्तु कुर्य्याद्योजयेत् कारयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् स्वयं तदेवाविदुषां कर्मयुक्तोऽभियुक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

वृत्तमनूद्योत्तरश्लोकमवतारयति एवमिति कर्तव्यं कर्मेति शेषः पूर्वार्द्धमेवं व्याख्याय उत्तरार्द्धं प्रश्नपूर्वकम् अवतार्य व्याचष्टे किन्तु कुर्य्यादिति सर्वकर्माणि कारयेत्तेषुप्रीतिं कुर्वन्निति शेषः कथं कारयेदित्याकांक्षायामाह तदेवेति ॥ २६ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु कृपया तत्त्वज्ञानमेवोपदेष्टुं युक्तं नेत्याह न बुद्धिभेदमिति अज्ञात एव कर्मसंगिनां कर्मासक्तानां कर्त्रात्मोपदेशेन बुद्धेर्भेदमन्यथा त्वं जनयेत् कर्मणः सकाशाद्बुद्धिविचालनं न कुर्य्यात् अपि तु योजयेत् सेवयेत् अज्ञानकर्माणि कारयेदित्यर्थः कथंयुक्तोऽवहितो भूत्वा स्वयमाचरन् सन् बुद्धिविचालने कृते सति कर्मसु श्रद्धानिवृत्ते ज्ञानस्य चानुत्पत्तेस्तेषामुभयभ्रंशः स्यादिति भावः ॥ २६ ॥

नवलभाष्य।

अबइस पूर्वोक्त प्रकार करके लोकसंग्रह करनेकी इच्छा करताहुआ जो आत्मवेत्ता सो यहविचारकरै जो मैं कर्मकरताहूं सो और हीकेलिये है इसप्रकार के लोकसंग्रहको भगवान् कहिके फिर उसआत्मवेत्ता को और भी जो कुछ करनेके योग्यहै उसका उपदेशकरते हैं कि [नेति] हेअर्जुन वह ज्ञानीपुरुष कर्ममें संगप्रीति जिन्होंकी ऐसे अज्ञानी पुरुषोंका असंगआ-

त्माहै इत्यादि उपदेशों करके उनकी बुद्धिका भेदनकरै अर्थात् यहकर्ममुझ को अवश्यकरने के योग्यहै औइसका फलभी मुझको अवश्य भोक्तव्य है नामइसकर्म के फलको मैं अवश्य भोगौंगा ऐसाजो निश्चय मूर्खोंकी बुद्धि में होरहाहै उसको किसी उपदेशसे चलायमान न करै किन्तुआप युक्तहोकै अर्थात् अपने आत्मज्ञानमें सावधानहोकै कर्मकरताहुआ विवेकी पुरुष उनमूर्खोंसे शास्त्रोक्त कर्मका सेवनही करावै ॥ २६ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

अविद्वान् अज्ञः कथं कर्मसु सज्जत इत्याह प्रकृतेरिति प्रकृतेः प्रकृतिः प्रधानं सत्त्वरजस्तमसां गुणानां साम्यावस्था तस्याः प्रकृतेर्गुणैर्विकारैः कार्य्यकरणरूपैः क्रियमाणानि कर्माणि लौकिकानि शास्त्रीयाणि च सर्वशः सर्वप्रकारैरहङ्कारविमूढात्मा कार्य्यकरणसंघातात्मप्रत्ययोऽहङ्कार स्तेन विविधं नानाविधं मूढः आत्मान्तकरणं यस्य सोऽयं कार्य्यकरणधर्माकार्य्यकरणाभिमान्यविद्यया कर्माण्यात्मनि मन्यमानस्तत् तत् कर्मणामहं कर्तेति मन्यते ॥ २७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

अज्ञानां कर्मसंगिनामित्युक्तं तेनोत्तरश्लोकस्य संगतिमाह अविद्वानिति कर्तृत्वमात्मनोवास्तवमित्यभ्युपगमाद्विद्वान् कथं कुर्वन्नेव तस्याभावं पश्यतीत्याशंक्याह प्रकृतेरिति कर्मस्वविदुषः शक्तिप्रकारं प्रकटयन् व्याकरोति प्रकृतेरित्यादिना प्रधानशब्देन माया शक्तिरुच्यते अविद्ययेत्युभयतः संबध्यते ॥ २७ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ननु विदुषापि चेत् कर्म कर्तव्यं तर्हि विद्वदविदुषोः को विशेष इत्याशंक्योभयोर्विशेषं दर्शयति प्रकृतेरिति द्वाभ्यां प्रकृतेर्गुणैः प्रकृतिकार्यैरिन्द्रियैः सर्वप्रकारेण क्रियमाणानि कर्माणि तान्यहमेव कर्ता करोमीति मन्यते तत्र हेतुः अहमिति अहंकारेणेन्द्रियादिष्वात्माध्यासेन विमूढबुद्धिः सन् ॥ २७ ॥

नवलभाष्य ।

और अविद्वान् जो अज्ञपुरुष सो कौन प्रकारकरके कर्मोंमें आसक्तहोता है इसआकांक्षामें कहते हैं (प्रकृतेरिति) प्रकृतिजोहै प्रधानअर्थात् सत्त्वरजतम इनगुणोंकी जो साम्यावस्था जिसअवस्थामें ये तीनों गुण समानरहैं कोई कमती बढ़तीनहोवै उसको प्रकृति कहतेहैं तिसप्रकृतिकेजेगुण अर्थात् कार्य करणरूप विकार तहांकार्य शब्दादिक और करण अन्तःकरण इन्द्रियादिक तिन्होंकरके सब प्रकारसे लौकिक और वैदिक कर्मकिये जातेहैं तहां लौकिक कर्मदर्शनस्पर्शनादिक और वैदिककर्म अग्निहोत्रादिक येसब प्रकृतिके विकारजे इन्द्रियादिक तिन्होंकरकेही कियेजाते हैं तिनकर्मोंमें जो अहंकार विमूढात्मा पुरुषहै सो मैं इनकर्मोंका करनेवाला हौं ऐसामानता

है अर्थात् कार्य जेदेहादिक करणजे बुद्धिआदि इन्द्रियसमूह इनसबोंमें जो आत्माकी प्रतीतिहोना ये मैंहीहूं ऐसामानना जिसबुद्धि वृत्तिकरके होताहै उसको अहंकार कहतेहैं तिसअहंकार करके मोहको प्राप्तहै नानाप्रकारका अन्तःकरण जिसका ऐसा जो कार्यकरण धर्मयुक्त नामस्थूलकृश सुखदुःखादिधर्मयुक्त और देहादि संघातमें अभिमान युक्त नामदेहादि संघातहीको अपनारूप मानरहाहै इनसबसे परे अपनेस्वरूप को नहीं जानता ऐसाजो पुरुष सो अविद्याकरके कर्मोंको अपना मानताहुआ इनकर्मोंका मैंहींकरनेवालाहूं ऐसामानता है ॥ २७ ॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणागुणेषु वर्तन्त इतिमत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यः पुनर्मन्यते विद्वान् तत्त्वविदिति तत्त्ववित्तु महाबाहो कस्य तत्त्ववित् गुणकर्मविभागयोर्गुणविभागस्य कर्म्मविभागस्य च तत्त्वविदित्यर्थः गुणाः करणात्मकाः गुणेषु विषयात्मकेषु वर्त्तन्ते नात्मेति मत्वा न सज्जते सक्तिं न करोति ॥ २८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

अज्ञस्य कर्मसु शक्तिमुक्त्वा विदुषस्तदभावमभिदधाति यः पुनरिति तत्त्वं याथात्म्यं वेत्त्यीति व्युत्पत्त्या तत्त्वविदिति तुशब्देनाज्ञाद्विशिष्टो निर्दिष्टःप्रश्नपूर्वकं द्वितीयपादमवतार्य व्याचष्टे कस्येत्यादिना गुणानामेव गुणेषु वर्तमानत्वमयुक्तं निर्गुणत्वात् तेषामित्याशंक्य विभजते गुणा इति कार्यकरणानामेव विषयेषु प्रवृत्तिरात्मनस्तु कूटस्थत्वान्नैवमिति ज्ञात्वा तत्त्ववित् कर्मसु दृढतरं कर्तव्याभिमानं न करोतीत्यर्थः ॥ २८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

विद्वांस्तु तथा न मन्यत इत्याह तत्त्वविदिति नाहं गुणात्मक इति गुणेभ्यः आत्मनो विभागः नमे कर्माणीति कर्मभ्योऽप्यात्मनो विभागः तयोर्गुणकर्मविभागयोर्यस्तत्त्वं वेत्ति स तु न सज्जते कर्तृत्वाभिनिवेशं न करोति तत्र हेतुः गुणा इति गुणा इन्द्रियाणि गुणेषु विषयेषु वर्त्तन्ते नाहमिति मत्वा ॥ २८ ॥

नवलभाष्य ।

और जो फिरतत्त्ववेत्ता विद्वानहै सो तो ऐसेनहीं मानताहै इसआशयसे कहतेहैं कि [तत्त्वविदिति] हे महाबाहोनाम बड़ीहैं भुजाजिसकी ऐसा हे अर्जुन जो विवेकी पुरुषगुण और कर्मइन्होंके विभागका स्वरूप जाननेवालाहै अर्थात् गुणऔर कर्म इनको न्यारा न्यारा करके जाननेवाला है सो तो गुण जेइन्द्रियां हैं तेगुणोंके बिषे अर्थात् अपने अपने विषयोंमें प्रवृत्तहोतीहैं आत्मानहीं प्रवृत्तहोता है अर्थात् मैंतो केवल इनसबोंका साक्षीमात्रद्रष्टा हौं मैं इनमें प्रवृत्तहोने वाला नहींहौं यहजानके न कर्मोंमें आसक्तहोताहै और न किसीकर्म फलमें आसक्त होताहै अर्थात् प्रीति नहीं करता है ॥ २८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन्नविचालयेत् २९ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

ये पुनः प्रकृतेरिति प्रकृतेर्गुणैः सम्यक् मूढाः संमोहिताः सन्तः सज्जन्ते गुणानां कर्म्मसु गुणकर्म्मसु वयं कर्म्म कुर्म्मः फलायेति तान् कर्म्मसङ्गिनोऽकृत्स्नविदः कर्मफलमात्रदर्शिनो मंदान् मन्दप्रज्ञान् कृत्स्नविदात्मावित् स्वयं न विचालयेत् बुद्धिभेदकरणमेव चालनं तन्न कुर्य्यादित्यर्थः ॥ २९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

विद्वानविद्वानित्युभावपि प्रकृत्य विद्वानाविदुषोबुद्धिभेदं कुर्यादित्युपसंहरति ये पुनरिति प्रकृते रुक्ताया गुणैर्देहादिभिर्विकारैः संमूढास्तानेवात्मत्वेन मन्यमाना येते गुणानां तेषामेव देहादीनां कर्मसु व्यापारेषु सज्जन्ते सक्तिं दृढतरामात्मीयबुद्धिं कुर्वन्तीत्याह प्रकृतेरित्यादिना तेषामनात्मविदां स्वयमात्मविद् बुद्धिभेदं नापादयेदित्याह तानित्यादिना ॥ २९ ॥

स्वामिकृतटीका ।

न बुद्धिभेदमित्युपसंहरति प्रकृतेरिति यैः प्रकृतेर्गुणैः सत्वादिभिः संमूढाः सन्तोगुणेषु इन्द्रियेषु तत्कर्मसु च सज्जन्ते तानकृत्स्नविदो मन्दमतीन् कृत्स्नवित् सर्वज्ञो न विचालयेत् ॥ २९ ॥

नवलभाष्य ।

और हे अर्जुन जेफिर प्रकृतिगुणों करके अर्थात् इन्द्रियादिकों करकेसंमूढसम्यक् प्रकारकरके मोहको प्राप्तहुए बुद्धीन्द्रियादिकोंके कर्मोंमें आसक्तहोरहे हैं अर्थात् हमफलकेलिये कर्मकरते हैं ऐसे अभिमान युक्तहोरहे हैं तेजे अकृत्स्नवित् नाम नहीं संपूर्णपदार्थोंके जाननेवाले अर्थात् फलमात्र हीमेंहै दृष्टिजिन्होंकी ऐसे जेकर्मसंगीमन्दबुद्धि पुरुष तिनको कृत्स्नवित् जो आत्मज्ञानी पुरुष सो आप न विचालनकरै अर्थात् अकर्ता आत्मा है ऐसे उपदेश करके उनकी बुद्धिको कर्मसे चलायमान न करै ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यास्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

शङ्करभाष्यम् ।

कथं पुनः कर्म्मण्यधिकृतेनाज्ञेन मुमुक्षुणा कर्म्म कर्त्तव्यमित्युच्यते मयीति मयि वासुदेवे परमेश्वरे सर्वज्ञे सर्वात्मनि सर्वाणि कर्म्माणि संन्यस्य निक्षिप्याध्यात्मचेतसा विवेकबुद्ध्याहंकर्तेश्वराय भृत्यवत् करोमीत्यनया बुद्ध्या किञ्च निराशीः त्यक्ताशीः निर्ममो मम भावश्च निर्गतो यस्य तव स त्वं निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरो विगतसन्तापो विगतशोकः सन्नित्यर्थः ३०॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

यद्यपि कर्मण्यज्ञोऽधिक्रियते तथापि मोक्ष्यमाणेन तेन कर्म त्यक्तव्यं मोक्षस्य कर्मा

साध्यत्वात्तु तेन कर्म कर्तुं शक्यं कर्मणः सापेक्षितविरोधित्वादिति शंकते कथमिति श्लोकेनोत्तरमाह उच्यत इति यथोक्ते परस्मिन्नात्मनि सर्वकर्मणां समर्पणे कारणमाह अध्यात्मेति विवेकबुद्धिमेव व्याकरोति अहमिति दर्शितरीत्या कर्मसु प्रवृत्तस्य कर्तव्यान्तरमाह किञ्चेति त्यक्ताशीः फलप्रार्थनाहीनः सन्नित्यर्थः निर्ममोभूत्वा पुत्रभ्रात्रादिष्विवेति शेषः ननु युद्धे नियोगो नोपपद्यते पुत्रभ्रात्रादिहिंसात्मनस्तस्य सन्तापहेतोः नियोगविषयत्वायोगादिति तत्राह विगतेति ॥ ३० ॥

स्वामिकृतटीका ।

तदेवं तत्त्वविदापि कर्म कर्तव्यं त्वन्तु नाद्यापि तत्त्वविदतः कर्मैव कुर्वित्याह मयीति सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य समर्प्याध्यात्मचेतसान्तर्याम्यहं कर्म करोमीति दृष्ट्यानिराशीर्निष्कामोऽतएव मत्फलसाधनं मदर्थमिदं कर्मेत्येवं ममता शून्यश्च भूत्वा विगतज्वरस्त्यक्तशोकश्च भूत्वा युध्यस्व ॥ ३० ॥

नवलभाष्य ।

कैसे फिर अज्ञजो कर्माधिकारी मुमुक्षु पुरुष तिसको कर्मकरना चाहियेइस आकांक्षामें कहते हैं कि (मयीति) हे अर्जुन मैं जो वासुदेव परमेश्वर सर्वज्ञपरमात्मा तिसकेविषे सब कर्मोंको अध्यात्मचित्तकरके नामविवेक बुद्धिकरके अर्थात् मैं करनेवाला ईश्वरके अर्थ भृत्यके सदृश कर्मकरता हूं ऐसीबुद्धि करके समर्पणकरके और त्यागकरीहैं सबकामना जिसने और धनपुत्रादिकोंमें भी ममताकरके रहित ऐसा जो तूहै सो शोकादि संतापको छोड़के सावधानहोके युद्धकोकर ॥ ३० ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यदेतन्मम मतं कर्म्म कर्तव्यमिति सप्रमाणमुक्तं तत्तथा येम इति ये मदीयमिदं मत मनुतिष्ठन्ति अनुवर्तन्ते मानवा मनुष्याः श्रद्धावन्तः श्रद्दधानाः अनसूयवन्तोऽसूया मयि परमगुरौ वासुदेवेऽकुर्वन्तो मुच्यन्ते तेऽप्येवंभूताः कर्म्मभिर्धर्माधर्माख्यैः ॥ ३१ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

प्रकृतं भगवतो मतमुक्तप्रकारमनुष्ठत्यैवानुतिष्ठतां क्रममुक्तिफलं कथयति यदेतदिति शास्त्राचार्योपदिष्टे अदृष्टार्थे विश्वासवत्त्वं श्रद्धानत्वं गुणेषु दोषाविष्करणमसूया अपि यथोक्तायामुक्तेरमुख्यत्वद्योतनार्थः ॥ ३१ ॥

स्वामिकृतटीका ।

एवं कर्मानुष्ठाने गुणमाह ये मे इति मद्वाक्ये श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो दुःखात्मके कर्मणि प्रवर्तयतीति दोषदृष्टिमकुर्वन्तश्च ये मदीयमिदं मतमनुतिष्ठन्ति तेऽपि शनैः कर्म कुर्वाणाः सम्यग्ज्ञानिवत् कर्मभिर्मुच्यन्ते ॥ ३१ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जो मैंने कहाकि कर्मकरना चाहिये सो प्रमाणसहित कहा और मुझको भी यह अभिमत है सो जेकोई मनुष्य श्रद्धायुक्तहोके अर्थात् परमेश्वरने जो उपदेश कियाहै सो यथार्थहै और प्रमाणयुक्तहै ऐसेविश्वास-युक्तहोके और मैंजो वासुदेव तिसमें दोषदृष्टिको नहीं करतेहुए इसमेरे कहे हुएमतको अनुष्ठानकरतेहैं अनुवर्त्तन करतेहैं तेसब धर्म अधर्मरूप कर्मबंध-नोंसे छूटजाते हैं ॥ ३१ ॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः॥ ३२॥

शङ्करभाष्यम्।

येत्विति येतु तद्विपरीता एतत् मम मतं अभ्यसूयन्तो निन्दन्तो नानुतिष्ठंति नानुवर्तन्ते मे मतं सर्वेषु ज्ञानेषु विविधं मूढास्ते सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विनष्टान् नाशङ्गतानचेतसोऽविवेकिनः॥३२॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

भगवन्मताननुवर्तिनां प्रत्यवायित्वं प्रत्याययति येत्विति तद्विपरीतत्वं भगवन्मतानुवर्तिभ्यो वैपरीत्यं तदेव दर्शयति एतदित्यादिना अभ्यसूयन्तस्तत्रासन्तमपि दोषमुद्भावयन्त इत्यर्थः सर्वज्ञानानि सगुणनिर्गुणविषयाणि प्रमाणप्रमेयप्रयोजनविभागतो विविधत्वम्॥ ३२॥

स्वामिकृतटीका।

विपक्षे दोषमाह येत्वेतदिति ये तु नानुतिष्ठन्ति तानचेतसो विवेकशून्यान् अतएव सर्वस्मिन् कर्मणि ब्रह्मविषये च यज्ज्ञानं तत्र विमूढान्नष्टान् विद्धि॥ ३२॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जेपुरुष इनपूर्वोक्त पुरुषोंसे विपरीत हैं और इसपूर्वोक्त मेरेमतमें दोषदृष्टि करते हुए अर्थात् निन्दा करतेहुए नहीं अनुवर्तन करते हैं अर्थात् नहीं मानते हैं तिनको तुमसब ज्ञानोंमें मूढ़अर्थात् संदिग्धऔर नाशको प्राप्त और विवेक रहित जानो अर्थात् वेपुरुष अतिमूर्ख हैं ऐसाजानो॥ ३२॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥ ३३॥

शङ्करभाष्यम्।

कस्मात् पुनः कारणात् त्वदीयं मतं नानुतिष्ठन्तः परधर्माननुतिष्ठन्ति स्वधर्म्माननुतिष्ठंति स्वधर्मञ्च नानुवर्तन्ते तत् प्रतिकूलाः कथं न बिभ्यति तच्छासनातिक्रमदोषात् तत्राह सदृशमिति सदृशमनुरूपं चेष्टते चेष्टां करोति कस्याः स्वस्याः स्वकीयायाः प्रकृतेः प्रकृतिर्नाम पूर्वकृतधर्माधर्मादिसंस्कारो वर्तमानजन्मादावभिव्यक्तः सा प्रकृतिस्तस्याःसदृशमेव सर्वो जन्तुर्ज्ञानवानपिचेष्ट-

ते किं पुनर्मूर्खस्तस्मात् प्रकृतिं यान्ति अनुगच्छन्ति भूतानि निग्रहः निषेधरूपः किं करिष्यति मम चान्यस्य वा ॥ ३३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

भगवन्मतानुवर्तनमन्तरेण परधर्मानुष्ठानेस्वधर्मानुष्ठाने चकारणंपृच्छति कस्मादिति भगवत्प्रतिकूलत्वमेव तत्र कारणमित्याशङ्कयाह तत्प्रतिकूलाइति राजानुशासनातिक्रमे दोषदर्शनात् भगवदनुशासनातिक्रमेऽपि दोषसम्भवात् तत्प्रतिकूलत्वं भयकारणमित्यर्थः उत्तरत्वेन श्लोकमवतारयति सदृशमिति सर्वस्य प्राणिवर्गस्य प्रकृति वशवर्त्तित्वे कैमुतिकन्यायं सूचयति ज्ञानवानपीति सर्वाण्यपि भूतान्यनिच्छन्त्यपि प्रकृतिसदृशीं चेष्टां गच्छन्तीति निगमयति प्रकृतिमिति भूतानां प्रकृतेरधीनत्वेऽपि प्रकृतिर्भगवता निग्राह्येत्याशङ्क्याह निग्रहइति का पुनरियं प्रकृतिर्यदनुसारिणी भूतानां चेष्टेति पृच्छति प्रकृतिर्नामेति भगवदभिप्रेतां प्रकृतिं प्रकटयति पूर्वेति आदिशब्देन ज्ञानेच्छादिसंगृह्यते यथोक्तः संस्कारः स्वसत्त्वया प्रवर्तकश्चेत् प्रलयेऽपि प्रवृत्तिः स्यादित्याशङ्क्य विशिनष्टि वर्तमानेति सर्वो जन्तुरित्युक्तं विवेकिप्रवृत्तेरतथात्वादिभिश्च विशेषादिति न्यायमनुस्मरन्नाह ज्ञानवानिति ज्ञानवतामज्ञानवताञ्च प्रकृत्यधीनत्वाविशेषे फलितमाह तस्मादिति प्रकृतिं यान्ति प्रकृतिसदृशीं चेष्टां गच्छन्त्यनिच्छन्त्यपि सर्वाणि भूतानि इत्यर्थः प्रकृते भगवता तत्तुल्येन वा केनचित् निग्रहमाशङ्क्यावतारितचतुर्थपादस्यार्थापेक्षितं पूरयति मम चेति ॥३३॥

स्वामिकृतटीका ।

ननु तर्हि महाफलत्वादिन्द्रियाणि गृह्य निष्कामाः सन्तः सर्वेऽपि स्वधर्ममेव किं नानुतिष्ठन्ति तत्राह सदृशमिति प्रकृतिः प्राचीनकर्मसंस्काराधीनस्वभावः स्वस्याः स्वकीयायाः प्रकृतेः स्वभावस्य सदृशमनुरूपमेव गुणदोषज्ञानवानपि चेष्टते किं पुनर्वक्तव्यमज्ञश्चेष्टत इति यस्माद्भूतानि सर्वेऽपि प्राणिनः प्रकृतिं यान्ति अनुवर्तन्ते एवञ्च सतीन्द्रियनिग्रहः किं करिष्यति प्रकृतेर्बलीयस्त्वादित्यर्थः ॥ ३३ ॥

नवलभाष्य ।

अबकदाचित् अर्जुनकहै कि हे भगवन् कौन कारणसे फिर सबमनुष्य आपके मतका नहीं अनुवर्त्तन करतेहैं और और धर्मका तो सेवन करतेहैं और अपने धर्मका त्यागकरते हैं और वे विपरीताचरण करनेवाले पुरुष धर्मशास्त्रकी आज्ञाकेउल्लंघन रूपदोषसे भयभीनहीं करतेहैं तो इसमेंकौन ऐसाप्रबल हेतुहै इसआकांक्षामें कहते हैं कि (सदृशमिति) हेअर्जुन ज्ञानवान्भी प्राणी अपनी प्रकृतिके सदृशही चेष्टाकरता है अर्थात् प्रकृति जो इसजन्म में प्रकटहुआ पूर्वजन्मका कियाहुआ धर्माधर्मादि संस्कार तिसके सदृशनाम योग्यही ज्ञानवान्गुण दोषका जाननेवाला भी चेष्टाकरता है और मूर्खपुरुष वैसी चेष्टाकरताहै इसकाकहनाही क्याहै तिससे संपूर्णप्राणी अपने अपने पूर्वजन्म संस्काराधीन स्वभावको प्राप्त होते हैं तहां मेरा वाऔर किसीका निषेधरूप निग्रह क्याकरताहै ॥ ३३ ॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यदि सर्वो जन्तुरात्मनः प्रकृतिसदृशमेव चेष्टते न च प्रकृतिशून्यः कश्चिदस्ति ततः पुरुषकारस्य विषयानुपपत्तेः शास्त्रानर्थक्यप्राप्ताविदमुच्यते इन्द्रियस्येति इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे सर्वेन्द्रियाणामर्थे शब्दादिविषये इष्टे शब्दादौ रागोऽनिष्टे द्वेष इत्येवं प्रतीन्द्रियार्थे रागद्वेषाववश्यम्भाविनौ तत्रायं पुरुषकारस्य शास्त्रार्थस्य विषय उच्यते शास्त्रार्थेप्रवृत्तः पूर्वमेव रागद्वेषयोर्वशं नागच्छेत् या हि पुरुषस्य प्रकृतिः सा रागद्वेषपुरःसरैव स्वकार्ये पुरुषं प्रवर्तयति यदा तदा स्वधर्मपरित्यागः परधर्मानुष्ठानञ्च भवति यदा पुनः रागद्वेषौ तत् प्रतिपक्षेण नियमयति तदा शास्त्रदृष्टिरेव पुरुषो भवति न प्रकृतिवशस्तस्मात्तयो रागद्वेषयो र्वशं नागच्छेद्यतस्तौ ह्यस्य पुरुषस्य परिपन्थिनौ श्रेयो मार्गस्य विघ्नकर्त्तारौ तस्कराविवेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

सर्वस्य भूतवर्गस्य प्रकृतिवशवर्त्तित्वे लौकिकवैदिकपुरुषकारविषयाभावाद्विधिनिषेधानर्थक्यमिति शंकते यदीति ननु यस्य न प्रकृतिरस्ति तस्य पुरुषकारसम्भवादर्थवत्त्वं तद्विषये विधिनिषेधयोर्भविष्यति नेत्याह नचेति शंकितदोषं श्लोकेन परिहरति इदमित्यादिना वीप्सायाः सर्वकरणगोचरत्वं दर्शयति सर्वेति प्रत्यर्थं रागद्वेषयोरव्यवस्थायां प्राप्तौ प्रत्यादिशति इष्ट इति प्रतिविषयं विभागेन तयोरन्यतरस्यावश्यकत्वेऽपि पुरुषकारविषयाभावप्रयुक्त्या प्रागुक्तं दूषणं कथं समाधेयमित्याशङ्क्याह तत्रेति यतोरित्याद्यवतारितं भागं विभजते शास्त्रार्थस्येति प्रकृतिवशत्वादन्तोनैव नियोज्यत्वमित्याशङ्क्याह या हीति रागद्वेषद्वारा प्रकृतिवशवर्त्तित्वे स्वधर्मत्यागादिदुर्वारमित्युक्तमिदानीं विवेकविज्ञाने न रागादिनिवारणे शास्त्रीयदृष्ट्या प्रकृतिपारवश्यं परिहर्तुं शक्यमित्याह यदेति मिथ्याज्ञाननिबन्धनौ हि रागद्वेषौ तत्प्रतिपक्षत्वं विवेकविज्ञानस्य मिथ्याज्ञानविरोधित्वादवधेयं रागद्वेषयोर्मूलनिवृत्त्या निवृत्तौ प्रतिबन्धध्वंसे कार्यसिद्धिमभिसन्धायोक्तं तदेति एवकारस्यान्ययोगव्यवच्छेदकत्वं दर्शयति नेति पूर्वोक्तं नियोगमुपसंहरति तस्मादिति तत्र हेतुमाह यत इति हि शब्दोपात्तो हेतुर्यत इति प्रकटितः स च पूर्वेण तच्छब्देन सम्बन्धनीयः पुरुषपरिपन्थित्वमेव तयोः सोदाहरणं स्फोरयति श्रेयोमार्गस्येति ॥ ३४ ॥

स्वामिकृतटीका ।

नन्वेवं प्रकृत्यधीनैव चेत् पुरुषस्य प्रवृत्तिस्तर्हि विधिनिषेधशास्त्रस्य वैयर्थ्यं प्राप्तमित्याशङ्क्याह इन्द्रियस्येन्द्रियस्येति वीप्सया सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रत्येकमित्युक्तम् अर्थे स्वस्वविषये अनुकूले रागः प्रतिकूले द्वेष इत्येवं रागद्वेषौ व्यवस्थितौ अवश्यम्भाविनौ ततश्च तदनुरूपाप्रवृत्तिरिति भूतानां प्रकृतिः तथापि तयोर्वशवर्त्ती नभवेदिति शास्त्रेण नियम्यते हि यस्मादस्य मुमुक्षोस्तौ परिपन्थिनौ प्रतिपक्षौ अयं भावः विषयस्मरणादिना रागद्वेषानुत्पाद्यानवहितं पुरुषमनर्थेऽतिगम्भीरे स्रोतसीव प्रकृतिर्बलात् प्रवर्तयति शास्त्रं तु ततः प्रागेव विषयेषु रागद्वेषप्रतिबन्धके परमेश्वरभजनादौ तं प्रवर्तयति ततश्च गम्भीरे स्रोतः पातात् पूर्वमेव नावमाश्रित इव नानर्थं प्राप्नोति तदेवं स्वाभाविकीं पश्वादिसदृशीं प्रवृत्तिं त्यक्त्वा धर्मे प्रवर्तितव्यमित्युक्तम् ॥ ३४ ॥

नवलभाष्य।

तौ जो संपूर्ण प्राणी प्रकृतिके सदृशही कर्मकी चेष्टाकरता है और प्रकृतिरहित कोई जगत्में हैही नहीं तिससे शास्त्रोक्त पुरुषार्थसे कुछनहीं होने से शास्त्रहीको आनर्थक्य प्राप्तहुआ अर्थात् किसीका स्वभाव जबअन्यथा होही नहींसक्ता तौ शास्त्रका पढ़नासुनना निष्फलहुआ ऐसाप्राप्तहुआतिससेकहते हैं कि [इन्द्रियस्येति] हे अर्जुन इन्द्रियइन्द्रिय के विषय में अर्थात् सब इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंमें जो शब्दादि विषय अपना को प्रियहोने से अभीष्टहै उसमें तौ रागहोता है नाम प्रीतिहोतीहै और जो अनिष्ट अर्थात् अप्रियहै उसमें द्वेषहुआ करताहै इसप्रकार सबइन्द्रियोंके विषयोंमें रागद्वेष अवश्य होनेवालेहैं तहांशास्त्रोक्त पुरुषार्थका यहकृत्य है कि जो शास्त्रोक्त अर्थमें श्रद्धाकरके प्रवृत्तजो पुरुषसो पहिलेही रागद्वेषोंके बशीभूतनहीं होताहै और जो पुरुषकी प्रकृति है सो तौराग द्वेषपूर्वकही अपने कार्य्यमें पुरुषको प्रवृत्तकरती है जिससमयमें तौ अपने धर्मकात्याग और परधर्मका अनुष्ठान होताहै और जिससमयमें धर्मकीप्रवृत्तिमें प्रतिबन्धजे रागद्वेष तिनको शत्रुजानकै पुरुष इनका नियमन करताहै अर्थात् अपने वशमें करताहै उससमयमें वहपुरुष शास्त्रदृष्टिही होताहै और प्रकृतिके वशनहींहोता अर्थात् प्रकृतिने तौ अपनाकाम इतनाही किया जो राग और द्वेषइनकी उत्पत्तिकिया और शास्त्र और सत्संगका यहफलहुआ जो रागद्वेषके वेगको बढ़ते देखकै उसको रोककैउन्होंको अपनेवशमेंकरलेना तिससे हेअर्जुन विवेकी पुरुषराग और द्वेषइनके वशप्राप्तनहोय क्योंकि जिसकारणसे तेरागद्वेष इसपुरुषके मोक्षमार्गमें विघ्नकरनेवाले चोरहैं॥३४॥

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ ३५॥

शङ्करभाष्यम्।

तत्र रागद्वेषप्रयुक्तो मन्यते शास्त्रार्थमप्यन्यथा परधर्मोऽपि धर्मत्वादनुष्ठेय एवेति तदसत् श्रेयानिति श्रेयान् प्रशस्यतरः स्वधर्मः स्वकीयधर्मो विगुणोऽपि विगतगुणोऽपि अनुष्ठीयमानः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् साद्गुण्येन सम्पादितादपि स्वधर्मे स्थितस्य निधनं मरणमपि श्रेयः परधर्मे स्थितस्य जीवितात् कस्मात् परधर्मो भयावहः नरकादिलक्षणं भयमावहति यतः॥ ३५॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

रागद्वेषयोः श्रेयो मार्गप्रतिपक्षत्वं प्रकटयितुं परमतोपन्यासद्वारा समनन्तरश्लोकमवतारयति तत्रेत्यादिना व्यवहारभूमिः सप्तम्यर्थः शास्त्रार्थस्यान्यथा प्रतिपत्तिमेव प्रत्याययति परधर्मोऽपीति स्वधर्मादित्यपेरर्थः अनुमानं दूषयन्नुत्तरत्वेन श्लोकमुत्थापयति तदसदिति क्षत्रधर्माद्युद्धाद्दुरनुष्ठानात् परिव्राट् धर्मस्य भिक्षाशनादिलक्षणस्य स्वनुष्ठितया मयाऽपि कर्तव्यत्वं प्राप्तमित्याशङ्क्य व्याचष्टे श्रेयानिति उक्तेऽर्थे प्रश्नपूर्वकं हेतुमाह

कस्मादित्यादिना स्वधर्ममवधूय परधर्ममनुतिष्ठतः स्वधर्मातिक्रमकृतदोषस्यदुष्परिहरत्वा न्नतत्त्यागः साधीयानित्यर्थः ॥ ३५ ॥

स्वामिकृतटीका।

तर्हि स्वधर्मस्य युद्धादेर्दुःखरूपस्य यथावत् कर्तुमशक्यत्वात् परधर्मस्य चाहिंसादेः सुकरत्वाद्धर्मत्वाविशेषाच्च तत्र प्रवर्तितुमिच्छन्तं प्रत्याह श्रेयानिति किञ्चिदंगहीनोऽपि स्वधर्मः श्रेयान् प्रशस्यतरः स्वनुष्ठितात् सकलांगसंपूर्त्या कृतादपि परधर्मात् सकाशात् तत्र हेतुः स्वधर्मे युद्धादौ प्रवर्तमानस्य निधनं मरणमपि श्रेष्ठं स्वर्गादिप्रापकत्वात् परधर्मस्तु परस्य भयावह निषिद्धत्वेन नरकप्रापकत्वात् ॥ ३५ ॥

नवलभाष्य।

तहां रागद्वेष करके प्रेराहुआ मनुष्य ऐसामानताहै कि शास्त्रका अर्थ भी विपरीतहै अर्थात् कुछठौर ठीकनहीं और परधर्म औरका धर्मभी आखरधर्महीं है इससे उसको करनाही चाहिये सो सबरागद्वेषी पुरुषका कथनमिथ्या है इसआशयसे भगवान् कहतेहैं कि [श्रेयानिति] हे अर्जुन अपना धर्म अनुष्ठान कियागया कुछविगुण भी होय अर्थात् अंगहीनहोने से गुणों करकेहीन भी होय और बिरानाधर्म अच्छीतरह से अनुष्ठानकिया गुणयुक्तभी हो तौभी अपना विगुण धर्मही उसपरधर्म से श्रेष्ठहै क्योंकि अपनाधर्म सेवन करते करते मरणभी होजाय तौ वहश्रेष्ठहीहै जिससे वह मृत्युभी स्वर्गकी देनेवालीहै और बिराने धर्ममें राज्यादि लाभयुक्त जीवनभी होय तौभी वहभय कादेनेवालाहै अर्थात् अन्त्यमें नरकका देनेवालाहै ३५॥

अर्जुन उवाच। अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापञ्चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यद्यप्यनर्थमूलं ध्यायतो विषयान् पुंसो रागद्वेषौ ह्यस्य परिपन्थिनाविति चोक्तं विक्षिप्तमनव धारितं च यदुक्तं तत् संक्षिप्तं निश्चितञ्चेदमेवेति ज्ञातुमिच्छन्नर्जुनउवाच ज्ञाने हि तस्मिन् तदुच्छे दाय यत्नं कुर्य्यामिति अथेति अथ केन हेतुभूतेन प्रयुक्तः सन् राज्ञेव भृत्योऽयं पापं कर्म्म चर त्याचरति पुरुषः स्वयमनिच्छन्नपि हे वार्ष्णेय वृष्णिकुलप्रसूत बलादिव नियोजितो राज्ञेवेत्यु क्तो दृष्टान्तः ॥ ३६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

प्रागेवानर्थमूलस्योक्तत्वात् पुनस्तज्जिज्ञासया प्रश्नस्यानुपपत्तिरित्याशङ्क्याह यद्यपीति विक्षिप्तं विविधेषु क्षिप्तं दर्शितमिति यावत् अनवधारितमनेकत्रोक्तत्वादनेकधावाविवेक कामादिभिर्विकल्पितत्वात्त्र्यादित्यर्थः नन्वनर्थमूलं परिहर्तव्यं तत् किमिति ज्ञातुमिष्यते तत्राह ज्ञाते हीति कुर्यामिति तज्ज्ञानमर्थवदिति शेषः वाक्यारम्भार्थत्वमथशब्दस्य गृ हीत्वा प्रश्नवाक्यं व्याकरोति अथेत्यादिना अनिच्छतोऽपि बलादेव दुश्चरिते प्रेरितत्वे दृष्टान्तमाचष्टे राज्ञेवेति विनियोज्यत्वस्येच्छासापेक्षत्वात् तदभावे तदसिद्धिमाशङ्क्य प्रागु क्तं स्मारयति राज्ञेवेत्युक्त इति ॥ ३६ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तयोर्न वशमागच्छेदित्युक्तं तदेतदशक्यं मन्वानोऽर्जुन उवाच अथेति वृष्णिवंशेऽवतीर्णो वार्ष्णेयः हे वार्ष्णेय अनर्थरूपं पापं कर्तुमनिच्छन्नपि केन प्रयुक्तः प्रेरितोऽयं पुरुषः पापं चरति कामक्रोधौ विवेकबलेन निरुन्धतोऽपि पुरुषस्य पुनः पापे प्रवृत्तिदर्शनात् अन्योऽपि तयोर्मूलभूतः कश्चित् प्रवर्तको भवेदिति सम्भावनायाः प्रश्नः ॥ ३६ ॥

नवलभाष्य ।

यद्यपि भगवान् ने दूसरे अध्यायमें [ध्यायतोविषयान्पुंसः] इसश्लोकमें सब अनर्थोका मूलविषयों का ध्यानकहाही है और इस अध्याय में भी [रागद्वेषौह्यस्यपरिपन्थिनौ] इस पीछेके श्लोकमें सकल अनर्थ के कारण रागद्वेषोंकोकहा तौफिर अबअर्जुनकोअनर्थके विषयमें प्रश्नकरनेका अवकाशनथा तौभी भगवान्ने अनेकजगह उस वार्त्ताको कहा और बीचमें प्रसंग वशसे और भी कहा इससे अर्जुनने अच्छीतरह उसकानिश्चय नहीं करपाया और जो कहा सोभी संक्षेपकरके कहा इससे यहीनिश्चय करके है ऐसा जानने को इच्छाकरताहुआ अर्जुन बोलताहुआ क्योंकि जब अनर्थ मूल अच्छीतरह जानाजाय तब उसके नाशकेलिये मैं यत्नकरौं इस आशयसे पूछताहै कि [अथेति] हे भगवन् जैसे राजा किसी भृत्यको किसी कार्य्यके लिये प्रेरणाकरै तौ वह भृत्य अपनी इच्छाके विनाभी अवशहुआ राजाके कर्मको करताहै तैसे किसकारण करके प्रेराहुआ यहपुरुष भीतर से इच्छा नहींभी होयतौभी जबरदस्ती कोई करावै तैसे पापको करता है अर्थात् यहजानताभी है कि यहपाप कर्महै मेरे करनेके योग्यनहीं तौभी उस पापकर्म से छूटने नहींपाता करनेही परताहै जैसे राजाका बेगारीकैसेभी नहीं बचनेपाता चाहे राजीसे करौ चाहे बेराजी से परंतु राजाका कर्म करताहीहै तैसे वहकौन अनर्थ कारण है जिसका प्रेराहुआ पाप कर्मसे यह पुरुष नहीं बचसक्ता ॥ ३६ ॥

भगवानुवाच काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिहवैरिणम् ॥ ३७ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

शृणु त्वं तं वैरिणं सर्व्वानर्थकरं यं त्वं पृच्छसि भगवानुवाच "ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसःश्रियः। वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णाम्भग इतीङ्गना" ऐश्वर्य्यादि षट्कं यस्मिन् वासुदेवे नित्यमप्रतिबन्धत्वेन साम्यस्तेन च वर्त्तते" उत्पत्तिंप्रलयञ्चैव भूतानामागतिं गतिं। वेत्तिविद्यामाविद्यांच स वाच्यो भगवानिति"उत्पत्त्यादि विषयञ्च विज्ञानं यस्य स वासुदेवोवाच्यो भगवानिति काम इति काम एष सर्वलोकवशं कुर्वन् शत्रुर्यन्निमित्ता सर्वानर्थप्राप्तिः प्राणिनां स एष कामः प्रतिहतः केनचित् क्रोधत्वेनपरिणमतेऽतः क्रोधोऽप्येष एव रजोगुणसमुद्भवो रजश्च तद्गुणश्च रजोगुणः समुद्भवो यस्य सः कामो रजोगुणसमुद्भवो रजोगुणस्य वा समुद्भवः कामोद्भूतो रजः प्रवर्त्तयन् पुरुषं प्रवर्त्तयति तृष्णया ह्यहङ्कारितः इति गुणदुःखिनां रजःकार्य्ये से

वादौ प्रवृत्तान् प्रलापः श्रूयते महाशनो महदशनमस्येति महाशनोऽतएव महापाप्मा कामेन प्रेरितो जन्तुः पापं करोति अतो विद्धयेनं काममिह संसारे वैरिणम् ॥ ३७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

सम्प्रतिपत्तिवचनं प्रस्तौति श्रीभगवानिति तस्य वैपरीत्यं स्फोरयति सर्वेति अप्रस्तुतं किमिति प्रस्तूयते तत्राह यं त्वमिति भगवच्छब्दार्थं निर्द्धारयितुं पौराणिकं वचनमुदाहरति ऐश्वर्यस्येति समग्रस्येत्येतत् प्रत्येकं विशेषणैः संबध्यते अथ शब्दस्तथा शब्दपर्यायः समुच्चयार्थः मोक्षशब्देन तदुपायो ज्ञानं विवक्ष्यते उदाहृतवचसस्तात्पर्यमाह ऐश्वर्यादीति स वाच्यो भगवानिति सम्बन्धः तत्रैव पौराणिकं वाक्यान्तरं पठति उत्पत्तिमिति भूतानामिति प्रत्येकमुत्पत्त्यादिभिः सम्बध्यते कारणाभ्यां चोत्पत्तिप्रलयशब्दौ क्रियामात्रस्य पुरुषान्तरगोचरत्वसम्भवादगतिर्गतिश्चेत्यागामिन्यौ सम्पदापदौ सूच्येते वाक्यान्तरस्यापि तात्पर्यमाह उत्पत्त्यादीति वेत्तीत्युक्तःसाक्षात्कारो विज्ञानमित्युच्यते समग्रैश्वर्यादिसम्पत्ति समुच्चयार्थश्चकारः उक्तलक्षणो भगवान् किमुक्तवानिति तदाह काम इति कामस्य सर्वलोकशत्रुत्वं विषदयति यन्निमित्तेति तथापि कथं तस्यैव क्रोधत्वं तदाह स एष इति कामक्रोधयोरेव हेयत्वद्योतनार्थं कारणंकथयति रजोगुण इति कारणद्वारा कामादेरेव हेयत्वमुक्त्वा कार्यद्वारापि तस्य हेयत्वं सूचयति रजोगुणस्येति कामस्य पुरुषप्रवर्तकत्वमेव न रजोगुणजनकत्वमित्याशङ्क्याह कामो हीति तत्रैवानुभवानुसारिणीं लोकप्रसिद्धिं प्रमाणयति तृष्णया हीति तस्य योग्यायोग्यविभागमन्तरेण बहुविषत्वं दर्शयति महाशन इति बहुविषयत्वप्रयुक्तं कर्म निर्दिशति अत इति सर्वविषयत्वेऽपि कुतोऽस्य पापत्वमित्याशङ्क्याहकामेनेति कामस्योक्तविशेषणवत्त्वे फलितमाहअतइति॥३७॥

स्वामिकृतटीका।

अत्रोत्तरं श्रीभगवानुवाच काम एष क्रोध एष इत्यादि यस्त्वया पृष्टो हेतुरेव काम एव ननु क्रोधोऽपि पूर्वं त्वयोक्त इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे इत्यत्र सत्यं नासौ ततः पृथक् किन्तु क्रोधोऽप्येष काम एव हि केनचित् प्रतिहतः क्रोधात्मना परिणमते पूर्वं पृथक्त्वेनोक्तोऽपि क्रोधः कामज एवेत्यभिप्रायेणैकीकृत्योच्यते रजोगुणात् समुद्भवतीति तथा अनेन सत्त्ववृद्ध्या रजसि क्षयं नीते सति कामो न जायत इति सूचितम् एनं काममिह मोक्षमार्गे वैरिणं विद्धि अयंच वक्ष्यमाणक्रमेण हन्तव्य एव यतो नासौ दानेन सन्धातुं शक्य इत्याह महाशनो महदशनं यस्य दुष्पूर इत्यर्थः नच साम्ना सन्धातुं शक्योयतो महापाप्मा अत्युग्रः ॥ ३७ ॥

नवलभाष्य।

अब श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि हे अर्जुन जिसको तू पूछता है उस सब अनर्थकरने वाले वैरीको सुन अब यहां व्यासजीने श्रीकृष्णमहाराजको भगवान् ऐसा कहाहै तिसका अर्थ प्रसंगवशसे भाष्यकार कहतेहैं तहां भगवान् शब्दके अर्थके कहनेवाले ऋषियोंके कहेहुए प्रमाणभूत दोश्लोकलिखते हैं [ऐश्वर्य्यस्यसमग्रस्य धर्मस्ययशसः श्रियः। वैराग्यस्याथ मोक्षस्यषण्णांभगइतींगना ॥ १ ॥ उत्पत्तिंप्रलयंचैवभूतानामागतिंगतिम्। वेत्तिविद्यामविद्यांच सवाच्योभगवानिति २] अर्थ ॥ संपूर्ण ऐश्वर्य्य १

औरधर्म २ औरयश ३ औरलक्ष्मी ४ और वैराग्य ५ औरमोक्ष ६ इनछः वस्तुओंको नामभगहै ॥ १ ॥ और जोसब भूतोंकी उत्पत्तिकोजाने और सबक प्रलयको जानताहोय और जो सबभूतोंके आगमनको जानताहोय अर्थात् पहिले इसयोनिमें और इसलोकमें यहप्राणीरहा और अबवहांसे इसयोनिमें और इसलोकमें प्राप्तहुआहै ऐसा जो जानताहोय और जो सबभूतों की गतिका जानताहोय अर्थात् अबइसलोकको यहजायगा ऐसा जो जानताहोय और जो विद्या और अविद्या इनको जानताहोय उसको भगवान् कहतेहैं तहां ऐश्वर्य्यादि छःपदार्थ जिसवासुदेवमें नित्य प्रतिबन्ध-रहित और संपूर्णभावकरके रहतेहैं और उत्पत्तिको आदि लेकैजे छःपदार्थ तिनकाज्ञान जिसको सदारहाकरताहै सो वासुदेव शब्दवाच्य अर्थात् शब्द से कहागया भगवान्है सो भगवान् अर्जुनसे कहतेहैं कि हे अर्जुन यहका-मसबलोंको अपनेवशमें करताहुआ परमशत्रु है जिसके कारणसे सब अनर्थोंकी प्राप्ति प्राणियोंको हुआ करतीहै और यहकामही किसी मनुष्या-दिकरके प्रतिहतहोजाय मनाकिया जाय तौ क्रोधरूपकरके विपरिणामको प्राप्तहोतीहै अर्थात् किसी पुरुषको किसी बातकी कामनाम इच्छा उत्पन्न हुई कि यह वस्तुहम भोजनकरेंगे वा किसीको देवैंगे और उसी समयमें किसीने उसइच्छा को वारण करदिया नामनहीं होने दिया तौ वहइच्छाही क्रोधरूप होजातीहै इस अभिप्रायसे भगवान्ने कहा कि यहकामही क्रोधहै क्रोधरूपको धारण करताहै और यहकाम रजोगुण समुद्भवहै अर्थात् रजो-गुणसे उत्पन्नहुआ है अथवारजोगुण इसकामसे उत्पन्नहोता है इससे यह कामही रजोगुणका समुद्भवहै अर्थात् उत्पत्ति कारणहै क्योंकि जिससमय में काम उत्पन्नहोता है अर्थात् किसी वस्तुकी प्राप्तिकी अभिलाष होतीहै तौ वह अभिलाष रजोगुणको प्रवृत्त करतीहुई पुरुषको कर्ममें प्रवृत्तकरती है फिर जबकर्ममें प्रवृत्तहुआ तब उसको तृष्णाबढ़ती है फिरजब तृष्णाकी वृद्धिहुई तौ अहंकारयुक्त रजोगुणके दुःखसे दीनहुआ धनादि लोभसे रजो-गुणका कार्य सेवादिधर्ममें प्रवृत्तहुए पुरुषोंको अनर्थक वचनसुनाई देताहै अर्थात् जबपुरुष को किसी वस्तुकी कामनानहोय तौ किसवास्ते उसवस्तु की प्राप्तिकेलिये दुःखरूपकर्ममें प्रवृत्तहोय इससे कामही रजोगुणकी उत्प-त्तिका करनेवालाहै और यहकाम महाशनहै अर्थात् बहुतभोजन करनेवा-लाहै तीनोंलोककी संपत्तिसेभी जिसकी तृप्ति नहीं और यहकाम बड़ापा-पीहै क्योंकि कामहीकरके प्रेरित प्राणी अनेक प्रकारके पापोंको करता है इससे हे अर्जुन इसकाम को तू इससंसारमें वैरीजान ॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

कथं वैरीति दृष्टान्तैः प्रत्याययति धूमेनेति धूमेन सहजेनाव्रियते वह्निः प्रकाशात्मकोऽप्रकाशात्मकेन यथा वादर्शो मलेन च यथोल्वेन गर्भवेष्टनेन जरायुना आवृत आच्छादितोगर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

उत्तरश्लोकमवतारयति कथमिति अनेकदृष्टान्तोपादानं प्रतिपत्तिसौकर्यार्थं सहजस्य धूमस्य प्रकाशात्मकवह्निंप्रति आवरणत्वसिद्ध्यर्थं विशिनष्टि अप्रकाशात्मकेनेति ॥ ३८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

कामस्य वैरित्वं दर्शयति धूमेनेति धूमेन सहजेन यथा वह्निराव्रियत आच्छाद्यते यथा चादर्शो मलेन आगन्तुकेन यथा चोल्वेन गर्भवेष्टनचर्मणागर्भः सर्वतोनिरुद्ध्य आवृतस्तथा तेन कामेनावृतमिदम् ॥ ३८ ॥

नवलभाष्य ।

कैसेकाम वैरीहै इसअर्थको अनेक दृष्टान्तों करके निश्चय करातेहैं (धूमेनेति) हे अर्जुन जैसेसंग उत्पन्नहुआ जो अप्रकाशरूप धूमतिसकरके प्रकाशस्वरूप अग्नि आवृत आच्छादित होताहै और जैसे आदर्श जो दर्पण सो आगन्तुक पीछेसे होनेवालेमल करके आवृत मलिनहुआ स्पष्टमुख को नहीं दिखलाइसक्ताहै और जैसे उल्व जो गर्भको चारोंतरफसे आच्छादनकरनेवाला चर्म तिसकरके गर्भस्थबालक लपिटाहुआ अन्यथाही और तरहसेही प्रतीतहोताहै तैसेही कामकरके यहआच्छादित होरहाहै ॥ ३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

किं पुनस्तदिदं शब्दवाच्यं यत् कामेनावृतमित्युच्यते आवृतमिति आवृतमेतेन ज्ञानं ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ज्ञानी हि जानात्यनेन अहमनर्थेप्रयुक्तः पूर्वमेवातः दुःखी च भवति नित्यमेव अतोऽसौ ज्ञानिनो नित्यवैरी नतु मूर्खस्य स हि कामं तृष्णाकाले मित्रमिव पश्यंस्तत्कार्ये दुःखे प्राप्ते जानाति तृष्णयाहं दुःखित्वमापादित इति न पूर्वमेवातो ज्ञानिनो एव नित्यवैरी किं रूपेण काम इच्छैव रूपमस्येति कामरूपस्तेन दुष्पूरेण दुःखेन पूरणमस्येति दुष्पूरेण दुःखेन पूरणमस्येति दुःपूरोऽतस्तेनानलेन नास्यालं पर्याप्तिर्विद्यत इत्यनलस्तेन ॥ ३९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

सामान्यतो निर्दिष्टं विशेषतो निर्देष्टुंआकांक्षापूर्वकमनन्तरश्लोकमवतारयति किं पुनरिति कामस्य ज्ञानं प्रत्यावरणसिद्ध्यर्थं ज्ञानिनो नित्यवैरिणेत्यादि विशेषणं प्रतीकमादाय व्याचष्टे आवृतमित्यादिना ज्ञानिनां प्रति वैरित्वं कामस्य कथमित्याह ज्ञानीहीति अनर्थप्राप्तिमन्तरेण कामस्य प्रसंगावस्था पूर्वमेवेत्युच्यते अतः शब्देन कामप्रसक्तिर्व परामृश्यते नित्यमेवेत्युत्पत्त्यवस्था कार्यावस्था च कामस्य कथ्यते ननु सर्वस्यापि काम

त्मता न प्रशस्तेति कामो नित्यवैरी भवति ततः कुतो ज्ञानिविशेषणमित्याशङ्क्याह न त्विति अज्ञस्य नासौ नित्यवैरीत्येतदुपपादयति सहेति कार्यप्राप्तिप्रागवस्था पूर्वमित्युक्ता अज्ञंप्रति वैरित्वे सत्यपि कामस्य नित्यवैरित्वाभावे फलितमाह अत इति स्वरूपतो नित्यवैरित्वाविशेषेऽपि ज्ञानाज्ञानाभ्यामवान्तरभेदसिद्धिरित्यर्थः आकांक्षाद्वारा प्रकृतं वैरिणमेव स्फोरयति किं रूप्येणेत्यादिना ॥ ३९ ॥

स्वामिकृतटीका ।

इदं शब्दनिर्दिष्टं दर्शयन् वैरित्वं स्फुटयति आवृतमिति इदं विवेकज्ञानं एतेनावृतम् अज्ञस्य खलु भोगसमये कामःसुखहेतुरेव परिणामे तु वैरित्वं प्रतिपद्यते ज्ञानिनः पुनस्तत्कालमप्यनर्थानुसन्धानाद् दुःखहेतुरेवेति नित्यवैरिणेत्युक्तं किञ्च विषयैः पूर्यमाणोऽपि यो दुष्पूरः अपूर्यमाणस्तु शोकसन्तापहेतुत्वादनलतुल्यः अनेन सर्वान् प्रतिवैरित्वमुक्तम् ॥ ३९ ॥

नवलभाष्य ।

न कहो कामकरके यहआच्छादित होरहाहै यहां स्पष्टनहीं कहा वहकौनपदार्थ है जो आच्छादित होरहाहै इसआकांक्षामें कहते हैं (आवृतमिति) हे अर्जुन ज्ञानीका नित्यवैरी जो यहकाम तिसकरके ज्ञान आवृत होरहा है अर्थात् आच्छादित होरहाहै नामढकिरहा है काहेसे यहज्ञानीका नित्य वैरीहै जिससे ज्ञानीपुरुष पहिलेही यहजानताहै कि मुझको यहकाम अनर्थमें प्रेरणा करताहै इसीसे दुःखित होताहै इसकारणसे यहकाम ज्ञानीका नित्यवैरी है और मूर्खका नहीं है क्योंकि वह मूर्खपुरुष तृष्णाहोने के समय में कामको मित्ररूप करके देखताहै और पीछे जब दुःखप्राप्त होताहै तौ जानता है कि इसतृष्णाहीने मुझको दुःखितकिया है और पहिले वहमूर्ख नहीं जानसक्ता है कि कामही मेरावैरीहै इससे ज्ञानीहीका नित्यवैरीकाम है और यहकौनरूप का कामहै कि कामजो इच्छा सोईहै स्वरूप जिसका ऐसाहै और फिर यहकामदुष्पूरहै अर्थात् दुःखकरके इसकी पूर्तिहोती है इससे यहदुष्पूर कहाताहै और फिरयहकाम अनलहै अर्थात् नहीं कभीपरिपूर्णता इसकी होती है इससे यहअनल है ऐसे कामकरके ज्ञानआच्छादित होरहा है ॥ ३९ ॥

इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

शङ्करभाष्यम् ।

किमधिष्ठानः पुनः कामो ज्ञानस्यावरणत्वेन वैरी सर्वस्येत्यपेक्षायामाह ज्ञाते हि शत्रोरधिष्ठाने सुखेन निबर्हणं कर्तुं शक्य इति इन्द्रियाणीति इन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्चास्य कामस्याधिष्ठानमुच्यते एतैरिन्द्रियादिभिराश्रयैर्विमोहयति विविधं मोहयत्येषकामो ज्ञानमावृत्याच्छाद्य देहिनं शरीरिणम् ॥ ४० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

कामस्य निराश्रयस्य कार्यकरत्वाभावं मत्वा प्रश्नपूर्वकमाश्रयं दर्शयति किमधिष्ठान इति कामस्य नित्यवैरित्वेन परिजिहीर्षितस्य किमित्यधिष्ठानं ज्ञाप्यते तत्राह ज्ञातेहीति इन्द्रियादीनां कामाधिष्ठानत्वं प्रकटयति एतैरिति नन्वेताभिरिति वक्तव्ये कथमेतैरित्युच्यते तत्राह इन्द्रियादिभिरिति ॥ ४० ॥

स्वामिकृतटीका।

इदानीं तस्याधिष्ठानं कथयन् जयोपायमाह इन्द्रियाणीति द्वाभ्यां विषयदर्शनश्रवणादिभिः संकल्पेनाध्यवसायेन च कामस्याविर्भावादिन्द्रियाणि च मनश्च बुद्धिश्चयत्रचित्तप्रणिधानेन्द्रियाणि नियन्तुं शक्यन्ते तदात्मस्वरूपं देहादिभ्यो विविच्यदर्शयति इन्द्रियाणीति इन्द्रियाणि देहादिभ्यो ग्राह्येभ्यः पराणिश्रेष्ठान्याहुः सूक्ष्मत्वात् प्रकाशकत्वाच्च अतएव तद्व्यतिरिक्तत्वमत्यर्थादुक्तं भवति इन्द्रियेभ्यश्च संकल्पात्मकं मनः परं तत् प्रवर्तकत्वात् मनसस्तु निश्चयात्मिका बुद्धिःपरानिश्चयपूर्वकत्वात् संकल्पस्य यस्तु बुद्धेः स्वाधिष्ठा नमुच्यते एतैरिन्द्रियादिभिर्दर्शनादि व्यापारवद्भिराश्रयभूतैर्विवेकज्ञानमावृत्य देहिनं विमोहयति ॥ ४० ॥

नवलभाष्य।

और कौनस्थानमें रहिकरके यहकाम ज्ञानका आवरण करके सबीका शत्रुहोता है और जो शत्रुकास्थान जानलिया जावै तौ यहशत्रु सुखसेनाशकरने को शक्यहोता है इसआशयसे कहतेहैं कि (इन्द्रियाणीति) हे अर्जुन इन्द्रिय औरमन औरबुद्धि ये इसकामके अधिष्ठान हैं अर्थात् रहने के स्थानहैं इन्द्रियादिक स्थानोंकी द्वारायह काम सबजीवोंके ज्ञानको आवरणके अर्थात् ढकिकरके अनेक प्रकारसे मोह करताहै ॥ ४० ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यत एवं तस्मादिति तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ पूर्वं नियम्य वशीकृत्य भरतर्षभ पाप्मानं पापाचारं कामं प्रजहि परित्यज हि यस्मात् एनं प्रकृतं वैरिणं ज्ञानविज्ञाननाशनं ज्ञानं शास्त्रत आचार्य्यतश्च आत्मादीनामवरोधः विज्ञानं विशेषतस्तदनुभवस्तयोर्ज्ञानविज्ञानयोः श्रेयःप्राप्तिहेत्वोर्नाशस्तन्नाशनं प्रजहि आत्मनः परित्यजेत्यर्थः ॥ ४१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तेषां कामाश्रयत्वे सिद्धे साश्रयस्य तस्य परिहर्तव्यत्वमाह यत इति तस्मादिति इन्द्रियादीनामाश्रयत्वादिति यावत् पूर्वं कामनिरोधात् प्रागवस्थायामित्यर्थः तेषु नियमितेषु मनोबुद्ध्योर्नियमः सिध्यति तत् प्रवृत्तेरितरप्रवृत्तिव्यतिरेकेणाफलत्वादिति भावः पाप्मूलतया कामस्य तच्छब्दवाच्यत्वमुन्नेयं कामस्य परित्यज्यत्वं वैरित्वं हेतुस्तमेव हेतुं साधयति ज्ञानेति विज्ञानज्ञानशब्दयोरर्थभेदमावेदयति ज्ञानमित्यादिना ॥ ४१ ॥

स्वामिकृतटीका।

यस्मादेवं तस्मादितितस्मादादौ विमोहात् पूर्वमेवेन्द्रियाणि मनो बुद्धिञ्च नियम्य पाप्मानं पापरूपमेनं कामं हि स्फुटं प्रजहि घातय यद्वा प्रजहि परित्यज ज्ञानमात्म विषयं विज्ञानं शास्त्रीयं तयोर्नाशनं यद्वा ज्ञानं शास्त्राचार्योपदेशजं विज्ञानं निदिध्या सजं तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीतेति श्रुतेः॥ ४१॥

नवलभाष्य।

जिससे ऐसाहै तिसकारणसे हे अर्जुन तुमप्रथम इन्द्रियोंको नियमनकर के अर्थात् वशमें करके पापका आचरणकरानेवाला जो यहकामहै तिसको त्यागदेउ जिससे यहकाम वैरीहै और ज्ञानविज्ञानका नाशनहै अर्थात् शास्त्रद्वारा और गुरूकी द्वाराजो आत्मादि पदार्थोंका जानना हैं उसको ज्ञान कहतेहैं और विशेषकरके अपने हृदयमें उसका अनुभव होनाहै उसको विज्ञान कहतेहैं तिनदोनों का यहनाशरूपही है इससे इसकामका परित्याग करो॥ ४१॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेर्यः परतस्तु सः॥ ४२॥

शङ्करभाष्यम्।

इन्द्रियाणि आदौ नियम्य कामं शत्रुं जहि इत्युक्तं तत्र किमाश्रयः कामं जह्यादित्युच्यते इन्द्रियाणीति इन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि पञ्च देहं स्थूलं वाह्यं परिच्छिन्नं चापेक्ष्य सौक्ष्म्यान्तरस्थत्वव्यापित्वाद्यपेक्ष्य पराणि प्रकृष्टान्याहुःपण्डितास्तथेन्द्रियेभ्यः परं मनः सङ्कल्पात्मकं तथा मनसस्तु परा बुद्धिर्निश्चयात्मिका तथा यः सर्वदृश्येभ्यो बुद्ध्यन्तेभ्योऽभ्यन्तरोऽयं देहिनं इन्द्रियादिभिराश्रयैर्युक्तः कामो ज्ञानावरणद्वारेण मोहयतीत्युक्तं बुद्धेः परतस्तु सः स बुद्धेर्द्रष्टा परमात्मा॥ ४२॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

पूर्वोक्तमनूद्य कामत्यागस्य दुष्करत्वं मन्वानोऽप्यस्येत्यत्रोक्तमेव स्पष्टीकर्तुं प्रश्नपूर्वकं श्लोकान्तरमवतारयति इन्द्रियाणीत्यादिना पञ्चेति ज्ञानेन्द्रियवत् कर्मेन्द्रियाण्यपि वागादीनि गृह्यन्ते किमपेक्षया तेषां परत्वं तत्राह देहमिति तथापि केनप्रकारेण परत्वं तदाह सौक्ष्म्येति आदिशब्देन कारणत्वादि गृह्यते इन्द्रियापेक्षया सूक्ष्मत्वादिना मनसः स्वरूपोक्तिपूर्वकं परत्वं कथयति तथेति मनसि दर्शितं न्यायं बुद्धावतिदिशतितथा मनसस्त्विति यो बुद्धेरित्यादि व्याचष्टे तथेत्यादिना आत्मनो यथोक्तविशेषणस्याप्रकृतत्वमाशङ्क्याह यं देहिनमिति॥ ४२॥

स्वामिकृतटीका।

परतस्तत्साक्षित्वेनावस्थितः सर्वान्तरः स आत्मा तं विमोहयति देहिनमिति देहिशब्दोक्त आत्मा स इति परामृष्यते॥ ४२॥

नवलभाष्य ।

प्रथम इन्द्रियादिकों को वशकरके कामरूप शत्रुका त्यागकरौ यह कहा तहां किसके आश्रयसे कामको त्यागकरै इसआकांक्षामें कहते हैं कि [इन्द्रियाणीति] हे अर्जुन परिच्छिन्नजो अर्थात् इतनाहै ऐसे प्रमाणमें आनेवाला जो वाह्यस्थूल देहतिसकी अपेक्षा करके श्रोत्रादिकजे इन्द्रियांते श्रेष्ठहैं क्योंकि इन्द्रीसूक्ष्म हैं और भीतर रहनेवाली हैं इससे और इन्द्रियोंसे भी मनश्रेष्ठहै जिससे इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिमनके आधीनहै और संकल्प विकल्प करने वालेमनसे भी बुद्धिश्रेष्ठहै क्योंकि बुद्धिनिश्चय करानेवाली है और विना निश्चयकोई कार्यबनतानहीं इससे श्रेष्ठहै और बुद्धिपर्यन्त जितनेदृश्य पदार्थ हैं तिनसबोंके भीतर जोहै और जिसको इन्द्रियादि आश्रयकरके युक्तकाम ज्ञानकेआवरण द्वारा मोहकराता है ऐसा कहिआये हैं और जो बुद्धिसे भी परेहै और बुद्धिका देखने वालाहै सो परमात्माहै ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महावाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीभगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

ततः किं एवमिति एवं बुद्धेः परमात्मानं बुध्वा ज्ञात्वा संस्तभ्य सम्यक् संस्तम्भनं कृत्वा स्वेनैवात्मना संस्कृतेन मनसा सम्यक् समाधायेत्यर्थः जह्येनं शत्रुं महावाहो कामरूपं दुरासदं दुःखेनासदः आसादनं प्राप्तिर्यस्य तं दुरासदं दुर्विज्ञेयानेकविशेषमिति ॥ ४३ ॥

इति भाष्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

इन्द्रियादि समाधानपूर्वकमात्मज्ञानात् कामजयो भवतीत्युपसंहरति एवमित्यादिना संस्कृतं मनो मनःसमाधाने हेतुरिति सूचयति संस्तभ्येति प्रकृतं शत्रुमेव विशिनष्टि कामरूपमिति तस्य दुरासदत्वे हेतुमाह दुर्विज्ञेयेति अनेको विशेषस्तादृशो महाशनत्वादिस्तदनेनोपायभूता कर्मनिष्ठा प्राधान्येनोक्ता उपेयात् तु ज्ञाननिष्ठा गुणत्वेनेति विवेक्तव्यम् ॥ ४३ ॥

इति आनन्दगिरिकृतटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

स्वामिकृतटीका।

उपसंहरति एवमिति बुद्धेरेव विषयेन्द्रियादिजन्याः कामादिविक्रियाः आत्मा तु निर्विकारस्तत्साक्षीत्येव बुद्धेः परमात्मानं बुद्ध्वा आत्मना एवंभूतया निश्चयात्मिकया बुद्ध्या आत्मानं मनः संस्तभ्य निश्चलं कृत्वा कामरूपिणं शत्रुं जहि मारय दुरासदं दुःखेनासादनीयं दुर्विज्ञेयमित्यर्थः॥ स्वधर्मेण यमाराध्य भक्त्या मुक्तिमिता बुधाः। तंकृष्णं परमानन्दं तोषयेत् सर्वकर्मभिः॥ ४३॥

इति श्रीधरस्वामिकृतटीकायां तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

नवलभाष्य।

तिसके अनन्तर फिरक्या करना चाहिये इस अपेक्षामें कहते हैं कि (एवमिति) हे अर्जुन इसप्रकार बुद्धिसे परे इसआत्माको जानके और संस्कारयुक्त जोमन तिसकरके आपही संस्तंभनकरके अर्थात् समाधानकर के हे महाबाहो हे लम्बायमानभुज यह जो दुरासदनाम दुष्प्राप अर्थात् दुःखसे जाननेयोग्य ऐसाजो कामरूप शत्रुतिसको नाशकरो॥ ४३॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेकर्मयोगाख्यतृतीयाध्याये श्रीस्वर्गवास्युमादत्तकृत नवलभाष्ये तत्त्वविवेकामृतेतृतीयोध्यायःसमाप्तः॥ ३॥



श्रीमद्भगवद्गीतासटीक ॥

चतुर्थाध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच ।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

श्रीभगवानुवाच योऽयं योगोऽध्यायद्वयेनोक्तो ज्ञाननिष्ठालक्षणः स सन्न्यासः स कर्म्मयोगोपायः यस्मिन् वेदार्थः परिसमाप्तः प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च गीतासु च सर्वास्वयमेव योगो विवक्षितो भगवता अतः परिसमाप्तं वेदार्थं मन्वानस्तं वंशकथनेन स्तौति भगवान् इमम् अध्यायद्वयेनोक्तं योगं विवस्वते आदित्याय सर्गादौ प्रोक्तवान् अहं जगत्परिपालयितॄणां क्षत्रियाणां बलाधानाय तेन योगबलेन युक्तास्ते समर्था भवन्ति ब्रह्म परिरक्षितुं ब्रह्मक्षत्रे परिपालिते जगत्परिपालयितुमलम् अव्ययमव्ययफलत्वात्तस्य सम्यक् दर्शननिष्ठालक्षणस्य मोक्षाख्यं फलं व्येति स च विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवे स्वपुत्रायादिराजायाब्रवीत् ॥ १ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

पूर्वाभ्यामध्यायाभ्यां निष्ठाद्वयात्मनो योगस्य गीतत्वात् वेदार्थस्य च समाप्तत्वात् वक्तव्याशेषाभावात् उक्तयोगस्य कृतिमत्त्वशङ्कानिवृत्तये वंशकथनपूर्विकां स्तुतिं भगवानुक्तवानित्याह श्रीभगवानिति तदेतद्भगवद्वचनं वृत्तानुवादद्वारेण प्रस्तौति योऽयमिति ज्ञानेति संन्यासेनेति कर्तव्यतया सहितस्य ज्ञानात्मनो योगस्य कर्माख्यो योगो हेतुरतश्चोपायोऽपेयभूतं निष्ठाद्वयं प्रतिष्ठापितमित्यर्थः उक्ते योगद्वये प्रमाणमुपन्यस्यति यस्मिन्निति अथवा ज्ञानयोगस्य कर्मयोगोपायत्वमेव स्फुटयति यस्मिन्निति प्रवृत्त्या लक्ष्यते ज्ञायते कर्मयोगो निवृत्त्या च शक्यते ज्ञानयोग इति विभागः यद्यपि पूर्वस्मिन्नध्यायद्वये यथोक्त निष्ठाद्वयव्याख्यातं तथापि वक्ष्यमाणाध्यायेषु वक्तव्यान्तरमस्तीत्याशङ्क्याह गीतासु चेति कथं तर्हि समनन्तराध्यायस्य प्रवृत्तिरत आह अत इति वंशकथनं सम्प्रदायोपन्यासः सम्प्रदायोपदेशश्च अकृत्रिमत्वाशङ्कानिवृत्त्या योगस्तुतौ पर्यवस्यति गुरुशिष्यपरम्परोपन्यासमेवानुक्रामति इममिति इममित्यस्य सन्निहितं विषयं दर्शयति अध्यायेति योगं ज्ञाननिष्ठालक्षणं कर्मयोगोपायलभ्यमित्यर्थः स्वयमकृतार्थानां प्रयोजनव्यग्राणां परार्थप्रवृ

त्त्यसम्भवाद्भगवतस्तथाविधप्रवृत्तिदर्शनात् कृतार्थता कल्पनीयेत्याह विवस्वत इति अव्ययवेदमूलत्वादव्ययत्वं योगस्य गमयितव्यं किमिति भगवता कृतार्थेनापि योगप्रवचनं कृतमिति तदाह जगदिति कथं यथोक्तेन योगेन चत्रियाणां बलाधानं तदाह तेनेति युक्ताः चत्रिया इति शेषः ब्रह्मशब्देन ब्रह्मणत्वजातिरुच्यते यद्यपि योगप्रवचनेन हतं रचितं तेन च ब्राह्मणत्वं तथापि कथं रत्नणीयं जगदखिलं रक्षितमित्याशङ्क्याह ब्रह्मेति ताभ्यां हि कर्मफलभूतं जगदनुष्ठानद्वारा रक्षितुं शक्यमित्यर्थः योगस्याव्ययत्वे हेत्वन्तरमाह अव्ययफलत्वादिति ननुकर्मफलवदुक्तयोगफलस्यापि साध्यत्वेन चयिष्णुत्वमनुमीयते नेत्याह नहीति अपुनरावृत्ति श्रुतिप्रतिहतमनुमानं न प्रमाणीभवतीति भावः भगवता विवस्वते प्रोक्तो योगस्तत्रैव पर्यवस्यतीत्याशङ्क्याह स चेति स्वपुत्रायेत्युभयत्र सम्बध्यते आदि राजायेतीक्ष्वाकोः सूर्यवंशप्रवर्तकत्वेन वैशिष्ट्यमुच्यते ॥ १ ॥

स्वामिकृतटीका।

आविर्भावतिरभावाविष्कर्त्तुं स्वयं हरिः तत्त्वम्पदविवेकार्थं कर्मयोगं प्रशंसति एवं तावदध्यायद्वयेन कर्मयोगोपायकज्ञानयोगो मोक्षसाधनत्वेनोक्तस्तमेव ब्रह्मार्पणादिगुणविधानेन तत्त्वं पदार्थविवेकादिना च प्रपञ्चयिष्यन् प्रथमं तावत् परम्पराप्राप्तत्वेन स्तुवन् श्रीभगवानुवाच इममिति त्रिभिः अव्ययफलत्वादव्ययं इमं योगं पुराहं विवस्वते आदित्याय कथितवान् स च स्वपुत्राय मनवे श्राद्धदेवाय प्राह स च मनुः स्वपुत्रायेक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

नवलभाष्य।

अब यहदो अध्यायकरके कहागया जो संन्याससहित ज्ञानलक्षणयोग तिसकाकर्म योगउपाय है अर्थात् साधनहै जिसमें संपूर्णवेदार्थ समाप्तहै सो वहदो प्रकारकाहै एक प्रवृत्तिलक्षण एक निवृत्तिलक्षण और यहीयोग भगवान्‌को सबगीतामें कहनेको इष्टहै इससे सबवेदोंका अर्थभगवान् इसमें समाप्तमानके इसकी वंशपरंपरा कथनद्वारा स्तुतिकरतेहुए अर्जुनसे कहते हैं कि [इममिति] हे अर्जुन यह जो दोअध्यायकरके कहा जो योगतिसको सृष्टिकी आदिमें मैंविवस्वान् जो सूर्य तिनकेअर्थ कहताहुआ सो जगत्‌की रक्षाकरनेवाले जे क्षत्रिय तिनमें बलके धारण करनेको कहा तिसयोगबलकरके युक्तहुए वे क्षत्रिय ब्राह्मणों की रक्षाकरनेको सामर्थ्य युक्तहोतेहुए और ब्राह्मणक्षत्रियों की रक्षाहोनेसे सबजगत्‌की रक्षाकरने को समर्थ हुए फिर यह कैसायोगहै कि अव्ययहै नाशरहितहै अर्थात् इसकाफलनाशरहितहै इससे योगभी नाशरहितहै क्योंकि नहीं कभी सम्यग्दर्शन निष्ठारूप योगका मोक्षरूप फलनाशको प्राप्तहोताहै और सूर्यअपना पुत्रजो वैवस्वतमनु तिससे इसयोगको कहतेहुए और मनुभी अपनापुत्रजो सबराजाओंमें प्रथमराजा इक्ष्वाकु तिसके अर्थकहतेहुये ॥ १ ॥

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

शङ्करभाष्यम्।

एवमिति एवं क्षत्रियपरम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो राजानश्च ते ऋषयश्च राजर्षयो विदुरिमं योगं स योगः कालेनेह महता दीर्घेण नष्टोविच्छिन्नसम्प्रदायः सम्भूतो हे परन्तप आत्मनो विपक्षभूताः परे उच्यन्ते तान् शौर्यतेजोगभस्तिभिर्भानुरिव तापयतीति परन्तपः शत्रुतापनइत्यर्थः २॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यथोक्ते योगे परम्परागते विशिष्टजनसम्मतिमुदाहरति एवमिति तस्य कथं सम्प्रति वक्तव्यत्वं तदाह सकालेनेति पूर्वार्द्धं व्याकरोति एवमित्यादिना ऐश्वर्यसम्पत्तिमत्त्वं राजत्वं तेषामेव सूक्ष्मार्थनिरीक्षणक्षमत्वमृषित्वमिहेति भगवतोऽर्जुनेन सह संव्यवहारकालौ गृह्येते परन्तपेति सम्बोधनं विभजते आत्मन इति ॥ २॥

स्वामिकृतटीका।

एवमिति एवं राजानश्च ते ऋषयश्चेति अन्येऽपि राजर्षयो निमिप्रमुखाः स्वपितादिभिरिक्ष्वाकुप्रमुखैः प्रोक्तमिमं योगं विदुर्जानन्ति स्म अद्यतनानामज्ञाने कारणमाह हे परन्तप शत्रुतापन स योगः कालवशादिह लोके नष्टो विच्छिन्नः ॥ २ ॥

नवलभाष्य।

फिर हेअर्जुन इसप्रकारक्षत्रियोंकी परंपराकरकेइसयोगको राजर्षिजानतेहुये अर्थात् प्रथमराजाहोयं और फिरतपकरने से जे ऋषिहोजावैं उनको राजर्षिकहतेहैं वेलोग इसयोगको जानतेहुए और हे परन्तप अर्थात् हेशत्रुओंको संतापकारक सो योगबहुत कालहोनेसे जबनष्टहोगया अर्थात् इसका संप्रदाय जब छूटगया ॥ २ ॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ ३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

दुर्बलान् अजितेन्द्रियान् प्राप्य नष्टं योगमिममुपलभ्य लोकञ्चापुरुषसम्बन्धिनं स एवायमिति स एवायं मया ते तुभ्यमद्येदानीं योगः प्रोक्तः पुरातनः भक्तोसिमे सखा चासीति रहस्यं हि यस्मादेतदुत्तमं योगं ज्ञानमित्यर्थः ॥ ३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

किमिति वर्त्तमाने काले प्रकृतो योगः सम्प्रदायरहितोभूदित्याशंक्याधिकार्यभावादित्याह दुर्बलानिति तदेव दौर्बल्यम् प्रकृतोपयोगित्वेन व्याकरोति अजितेन्द्रियानिति यद्यपि कामक्रोधादिप्रधानान् पुरुषान् प्रतिलभ्य कामक्रोधादिभिरभिभूय मनोयोगोनष्टोविच्छिन्नसम्प्रदायः सञ्जातस्तथापि योगादृते पुरुषार्थोलोकस्य लभ्यते चेत् किमनेन योगोपदेशेनेत्याशंक्य यथोक्तयोगाभावेपरमपुरुषार्थाप्राप्तेर्नैवमित्याह लोकञ्चेति पूर्वोयोगोविच्छिन्नसम्प्रदायोऽधुना त्वन्ययोगोमदर्थमुच्यते भगवतेत्याशंक्याह स एवेति कस्मादन्यस्मै कस्मैचित् पुरातनोयोगोनोक्तोभगवतेत्याशंक्याह भक्तोसीति उक्तमधिकारिणं प्रतियोगस्य वक्तव्यत्वे हेतुमाह रहस्यं हीति अनादिवेदमूलत्वात् योगस्य पुरातनत्वं भक्तिः शरणा

बुद्ध्या प्रीतिस्तया युक्तोनिजरूपमवेत्य भक्तो विवक्षितः समानवयः स्निग्धः सखेत्युच्य ते एतदिति कथं योगोविशेष्यते तत्राह ज्ञानमिति ॥ ३ ॥

स्वामिकृतटीका।

स एवायमिति स एवायंयोगोयोगविच्छिन्ने सम्प्रदायेसति पुनश्च मयाते तुभ्यमुक्तं यतस्त्वं मम भक्तोऽसि सखा च अन्यस्मै मया नोच्यते हि यस्मादेतदुत्तमं रहस्यम् ॥ ३ ॥

नवलभाष्य।

तौ हे अर्जुन इसप्रकार अजितेन्द्री और दुर्बलपुरुषों को प्राप्तहोके इस योगको नष्टदेखके और परमेश्वरके भजनसे विमुख इसमनुष्य लोककोभी देखके सोई प्राचीन अर्थात् पहिलेका योगमैंने तेरे अर्थकहा और तूमेरा भक्तहै और सखाहै यहजानके रहस्यनामगुप्त और उत्तमश्रेष्ठ ज्ञानरूपही जो यह योग सो कहा ॥ ३ ॥

अर्जुनउवाच। अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

भगवता विप्रतिषिद्धमुक्तमिति माभूत् कस्यचित् बुद्धिरिति परिहारार्थं चोद्यमिव कुर्वन् अ र्जुन उवाच अपरमिति अपरमर्वाक् वसुदेवगृहे भगवतो जन्म परं पूर्वं सर्गादौ जन्मोत्पत्तिर्वि वस्वत आदित्यस्य तत् कथमेतद्विजानीयामविरुद्धार्थतया यस्त्वमेवादौ प्रोक्तवानिमं योगं स एव त्वमिदानीं मह्यं प्रोक्तवानसीति ॥ ४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

भगवति लोकस्यानीश्वरत्वशंकां निवर्त्तयितुम् चोद्यमुद्भावयति भगवतेति) परिहा रार्थं भगवतो मनुष्यवदवस्थितस्यानीश्वरत्वमुपेत्य तद्वचने शंकितविप्रतिषेधस्येतिशेषः भगवतोनिजरूपमुपेत्य वेदंचोद्यं किन्तु लीलाविग्रहं गृहीत्वेति वक्तुम् चोद्यमिवेत्युक्तम् एत च्छब्दार्थमेव स्फुटयति यस्त्वमिति ॥ ४ ॥

स्वामिकृतटीका।

भगवतो विवस्वन्तं प्रति योगोपदेशासम्भवं पश्यन्नर्जुन उवाच अपरमिति अपरं अ र्वाचीनं तव जन्म परं प्राक्कालीनं विवस्वतोजन्म तस्मात्तवाधुनातनत्वाच्चिरन्तनाय वि वस्वते त्वमादौ योगं प्रोक्तवानित्येतत् कथमहं जानीयां ज्ञातुंशक्नुयाम् ॥ ४ ॥

नवलभाष्य।

अब भगवान् का यहकथन विरुद्धहै क्योंकि इसशरीरसे देवताओं को उपदेश सृष्टिकी आदिमेंकैसे संभवहोता है ऐसीबुद्धि किसी मनुष्यकी कहीं भगवान्में न होय इसकारण से अर्जुन प्रश्नकरताहै कि [अपरमिति] हे कृष्ण आपका जन्म तो वसुदेवके गृहमें अबहुआ और सूर्यका जन्मसृष्टि के आदिमेंहुआ तो विरोध रहित यहमैं कैसे जानों कि जो तुमपहिले सूर्य के अर्थ इसयोगको कहतेहुएहौ सोई अबमुझसे कहतेहुए ॥ ४ ॥

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥ ५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

या वासुदेवे अनीश्वरा सर्वज्ञा शङ्का मूर्खाणां तां परिहरन् श्रीभगवानुवाच यदर्थो ह्यर्जुनस्य प्रश्नः बहूनीति बहूनि मे मम व्यतीतानि अतिक्रान्तानि जन्मानि तव च हे अर्जुन तान्यहं वेद जाने सर्वाणि नत्वं वेत्थ न जानीषे परन्तप धर्माधर्मादिप्रतिबद्धज्ञानशक्तित्वादहं पुनर्नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वभावत्वादनावरणज्ञानशक्तिरिति वेदाहं हे परन्तप ॥ ५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

भगवत्यज्ञानां मनुष्यत्वशंकां वारयितुं प्रतिवचनमवतारयति या वासुदेव इति अन्यथा प्रश्ने कथमाशंकान्तरं परिहर्तुं भगवद्वचनमित्याशंक्य प्रतिवचनयोरेकार्थत्वमाह यदर्थोहीति यस्य शंकितस्य विरोधस्य परिहारार्थः तस्य प्रशस्तमेव परिहारं वक्तुम् भगवद्वचनमित्यर्थः अतीतानेकजन्मवत्त्वम् ममैव नासाधारणं किन्तु सर्वप्राणिसाधारणमित्याह तवचेति तानि प्रमाणाभावान्नप्रतिभान्तीत्याशंक्याह तानीति ईश्वरस्यानावृतज्ञानत्वादित्यर्थः किमिति तर्हि तानि मम न प्रतीयन्ते तयावृतज्ञानत्वादित्याह नत्वमिति परान् परिकल्प्य तत्परिभवार्थं प्रवृत्तत्वात् तवज्ञानावरणं विज्ञेयमित्याह परन्तपेति अर्जुनस्य भगवता सहातीतानेकजन्मवत्त्वे तुल्येऽपि ज्ञानवैषम्ये हेतुमाह धर्मेति आदिशब्देन रागलोभादयो गृह्यन्ते ईश्वरस्यातीतानागतवर्त्तमानसर्वार्थविषयज्ञानत्वे हेतुमाह अहमिति ॥ ५ ॥

स्वामिकृतटीका।

रूपान्तरेणोपदिष्टवानित्यभिप्रायेणोत्तरम् श्रीभगवानुवाच बहूनीति तान्यहंवेद वेद्मि शक्तित्वात् त्वन्तु न वेत्थ वेत्सि अविद्यावृतत्वात् ॥ ५ ॥

नवलभाष्य।

अब वसुदेवके पुत्र जो कृष्ण तिसमें अनीश्वर और असर्वज्ञत्वकी शंका जो मूर्खोंको अर्थात् कृष्ण ईश्वरनहीं और सर्वज्ञभी नहीं हैं किन्तु जैसे और मनुष्य होते हैं तैसेही हैं यहशंका जो कृष्णभगवान् में मूर्खोंको होरही है तिसको दूरकरतेहुए श्रीभगवान् कहते हैं कि [बहूनीति] हे अर्जुन मेरे जन्म बहुत व्यतीतहुए और तेरे भी जन्म बहुत व्यतीतहुए तिनसबजन्मोंको मैं जानताहूं और हे परन्तप शत्रुतापन तू नहींजानताहै अर्थात् अधर्म और धर्म इत्यादिकर्मों करके प्रतिबद्ध अर्थात् रुकी हुई ज्ञानशक्ति जिसकी ऐसा तू है इसकारणसे नहींजानसक्ताहै और मैं तो फिर नित्य शुद्धबुद्धमुक्त सत्यस्वभाव होनेसे नहीं आच्छादित नहीं ढकीहुई ज्ञानशक्ति जिसकी ऐसाहूं इसकारणसे जानताहूं ॥ ५ ॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कथं तर्हि तव नित्येश्वरस्य धर्माधर्माभावेपि जन्मेत्युच्यते अजोपीति अजोपि जन्मरहितोऽपि संस्तथाव्ययात्मा अक्षीणज्ञानशक्तिस्वभावोऽपि सन् तथाभूतानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तानाम् ईश्वरईशनशीलोपिसन् प्रकृतिम् मायां मम वैष्णवीं त्रिगुणात्मिकां यस्यावशे सर्वं जगत् वर्त्तते यया मोहितः सन् स्वमात्मानं वासुदेवं न जानाति तां प्रकृतिं स्वामधिष्ठायवशीकृत्य सम्भवामि देहवानिव भवामि जात इवात्ममायया न परमार्थतो लोकवत् ॥ ६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ईश्वरस्य कारणाभावात् जन्मैवायुक्तमतीतानेकजन्मवत्वन्तु दूरोत्सारितमिति शंकते कथमिति वस्तुतो जन्माभावेऽपि मायावशाज्जन्मसम्भवतीत्युत्तरमाह उच्यत इति पारमार्थिकजन्मायोगे कारणं पूर्वार्द्धेनानूद्य प्रातिभासिकजन्मसम्भवेकारणमाह प्रकृतिमिति प्रकृतिशब्दस्य स्वरूपविषयत्वं प्रत्यादिष्टुमात्ममाययेत्युक्तं वस्तुतो जन्माभावे कारणानुवादभागं विवृणोति अजोऽपीत्यादिना प्रातिभासिकजन्मसम्भवे कारणकथनं परमुत्तरार्द्धं विभजते प्रकृतिमित्यादिना प्रकृतिशब्दस्य स्वरूपशब्दपर्य्यायत्वं वारयति मायामिति तस्याः स्वातन्त्र्यं निराकृत्य भगवदधीनत्वमाह ममेति तस्याश्च अधिकरणद्वारेणावच्छिन्नत्वं सूचयति वैष्णवीमिति मायाशब्दस्यापि प्रज्ञानाम सुपाठाद्विज्ञानशक्तिविषयत्वमाशङ्क्याह त्रिगुणात्मिकामिति तस्याः कार्यलिंगकमनुमानं सूचयति यस्या इति जगतो मायावशवर्तित्वमेव स्फुटयति ययेति यथा लोके कश्चिज्जातो देहवानालक्ष्यते एवमहमपि मायामाश्रित्यतया स्ववशया सम्भवामि तेन मायामयमीश्वरस्य जन्मेत्याह तां प्रकृतिमित्यादिना सम्भवामि इत्युक्तमेव विभजते देहवानिति अस्मदादेरिव तत्रापि परमार्थिकत्वाभिमानो जन्मादिविषये स्यादित्याशङ्क्य प्रागुक्तस्वरूपपरिज्ञानत्वादीश्वरस्य मैवमित्याह न परमार्थत इति आवृत ज्ञानवतो लोकस्य जन्मादिविषये परमार्थत्वाभिमानः सम्भवतीत्याह लोकवदिति ॥ ६ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु अनादेस्तव कुतोजन्म अविनाशिनश्च कथं पुनः पुनर्जन्म येन बहूनि मे व्यतीतानीत्युच्यते ईश्वरस्य तव पुण्यपापविहीनस्य कथं वा जीववज्जन्मेत्यत आह अजोऽपीति सत्यमेवं तथापि अजोऽपि जन्मशून्योऽपि सन्नहं तथाऽव्ययात्मापि अनश्वरस्वभावोऽपिसन् तथा ईश्वरोऽपि कर्मपारतन्त्र्यरहितोऽपि सन् स्वमायया सम्भवामि सम्यक् प्रच्युतज्ञानबलवीर्यादिशक्त्यैव भवामि ननु तथापि षोड़शकलात्मकलिंगदेहशून्यस्यच तव कुतो जन्म इत्यत उक्तम् स्वां शुद्धसत्त्वात्मिकां प्रकृतिमधिष्ठाय स्वीकृत्य विशुद्धोर्जितसत्त्वमूर्त्या स्वेच्छयावतरामीत्यर्थः ॥ ६ ॥

नवलभाष्य।

अबअर्जुन कदाचित्कहे कि जब नित्यईश्वर आपहैं तौ धर्माधर्मादिकोंके नहींहोने से जन्मही कैसे तुम्हाराहुआ इसआशंकामें कहते हैं [अजोपीति] हे अर्जुन मैं अजहूं अर्थात् जन्मरहित भी हूं और अव्ययात्मा और नहीं क्षीणहुआहै ज्ञानशक्तिस्वभाव जिसका ऐसा भी हूं और तैसेही ब्रह्मादिस्तंबपर्य्यंत प्राणियोंका ईश्वरभीहूं तौ भी प्रकृति जो अपनी त्रिगुणात्मिका

वैष्णवीमाया जिसके बशमें सबजगत् वर्त्तिरहाहै और जिसकरके मोहित जीव अपनाको वासुदेवस्वरूप नहींजानताहै तिस अपनी मायाको आश्रयणकरके अर्थात् वशमें करके देहवान् के सदृश और उत्पन्नहुएकेसदृश प्रकट होताहूं सोभी मायाहीकरके कुछपरमार्थमें नहीं जैसे लोकउत्पन्नहोताहै ६॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७॥

शङ्करभाष्यम्।

तच्च जन्म कदा किमर्थं वेत्युच्यते यदेति यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्हानिर्वर्णाश्रमादिलक्षणस्य प्राणिनामभ्युदयनिश्रेयससाधनस्य अभावो भवति भारत अभ्युत्थानम् समुद्भवोऽधर्मस्य तदा तदात्मानं सृजाम्यहं मायया ॥ ७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यदीश्वरस्य माया निबन्धनं जन्मेत्युक्तं तस्य प्रश्नपूर्वकं कालं कथयति तच्चेत्यादिना चातुर्वर्ण्ये चातुराश्रम्ये च यथावदनुष्ठीयमाने नास्ति धर्महानिरिति मन्वानो विशिनष्टि वर्णेति वर्णैराश्रमैस्तदाचारैश्च लक्ष्यते ज्ञायते धर्मः तस्येति यावत् धर्महानौ समस्तपुरुषार्थभंगो भवतीत्यभिप्रेत्याह प्राणिनामिति नच यथोक्तसर्वधर्मस्य हानिं सोढुं शक्तो भवानित्याह भारतेति न केवलं प्राणिनां धर्महानिरेव भगवतो मायाविग्रहस्य परिग्रहे हेतुरपि तु तेषामधर्मप्रवृत्तिरपीत्याह अभ्युत्थानमितियदायदेति पूर्वेणसम्बन्धः॥७॥

स्वामिकृतटीका।

कदासम्भवसीत्यपेक्षयामाह यदा यदेति ग्लानिर्हानिः अभ्युत्थानमाधिक्यम् ॥ ७ ॥

नवलभाष्य।

फिर वह जन्मकब होताहै और किसवास्ते होताहै इसआकांक्षामें कहतेहैं कि [यदेति]हेभारत हेभरतवंशोद्भव अर्जुन जबजब भोग और मोक्षको साधनभूतप्राणियोंके वर्णाश्रम धर्मकी ग्लानिहोती है अर्थात् हानि होतीहै नामनाश होताहै और अधर्मकी उत्पत्तिहोतीहै तबतब मायाकरके अपने आत्माको मनुष्यादि रूपकरके उत्पन्नकरताहूं ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किमर्थं परित्राणायेति परित्राणाय परिरक्षणाय साधूनां सन्मार्गस्थानां विनाशायच दुष्कृताम् पापकारिणाम् किञ्च धर्म्मस्य संस्थापनार्थाय सम्यक् स्थापनं तदर्थम् सम्भवामि युगे युगे प्रतियुगम् ॥ ८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यथोक्ते काले कृतकृत्यस्य भगवतो माया कृते जन्मनि प्रश्नपूर्वकं प्रयोजनमाह कि

मर्थमित्यादिना यथा साधूनां रक्षणमसाधूनां निग्रहश्च भगवदवतारफलं तथा फलान्तरमपि तस्यास्तीत्याह किञ्चेति धर्मे हि स्थापिते जगदेव स्थापितं भवत्यन्यथा भिन्नमर्यादं जगदसंगतमापद्यतेत्यर्थः ॥ ८ ॥

स्वामिकृतटीका।

किमर्थमित्यपेक्षामाह परित्राणायेति साधूनां स्वधर्मवर्त्तिनां रक्षणाय दुष्टं कर्मकुर्वन्तीति दुष्कृतस्तेषां वधाय च एवं धर्मसंस्थापनार्थाय साधुरक्षणेन दुष्टवधेन च धर्मं स्थिरीकर्तुं युगे युगे तत्तदवसरे सम्भवामीत्यर्थः नचैवं दुष्टनिग्रहं कुर्वतोऽपि नैर्घृण्यं शंकनीयमथाहुः लालने ताड़ने मातुर्नाकारुण्यं यथार्भके तद्वदेव महेशस्य नियन्तुर्गुणदोषयोरिति ॥ ८॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन साधुजे सन्मार्गमें स्थितपुरुष तिनके रक्षणकेलिये और पापीजे पुरुषहैं तिनके विनाशके अर्थ और धर्मका जो सम्यक् प्रकारकरके स्थापन तिसके अर्थ युगयुगमें मैं अवतार धारण करताहूं ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

जन्मेति तत् जन्म मायारूपम् कर्म च साधूनां परित्राणादि मे मम दिव्यम् अप्राकृतमैश्वरमेव यथोक्तम् यो वेत्ति तत्त्वतः तत्त्वेन यथावस्यक्त्वा देहमिमं पुनर्जन्म पुनरुत्पत्तिम् नैति न प्राप्नोति मामेवागच्छति स मुच्यते अर्जुन ॥ ९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

मायामयमीश्वरस्य जन्म नवास्तवं तस्यैव च जगत्परिपालनं कर्म नान्यस्येति जानतः श्रेयोवाप्तिं दर्शयन्विपक्षे प्रत्यवायं सूचयति तज्जन्मेत्यादिना यथोक्तं मायामयं कल्पितमिति यावत् वेदनस्य यथावत्त्वं वेद्यस्य जन्मादेरुक्तरूपानतिवर्त्तित्वं यदि पुनर्भगवतोवास्तवं जन्मसाधुजनपरिपालनादि चान्यस्यैव कर्म क्षत्रियस्येति विवक्ष्यते तदात्वापरिज्ञानप्रयुक्तो जन्मादिः संसारोदुर्वारः स्यादिति भावः ॥ ९ ॥

स्वामिकृतटीका।

एवंविधानामीश्वरजन्म कर्मणां ज्ञाने फलमाह जन्मेति स्वेच्छया कृतं मम जन्म कर्म च धर्मपालनरूपं दिव्यमलौकिकं तत्त्वतः परानुग्रहार्थमेवेति यो वेत्ति सदेहाभिमानं त्यक्त्वा पुनर्जन्म संसारं नैति न प्राप्नोति किन्तु मामेव प्राप्नोति ॥ ९ ॥

नवलभाष्य।

और हेअर्जुन इसप्रकार मायारूप जो मेराजन्म और साधुओंका रक्षणादिरूप जो दिव्य अलौकिक मेराकर्म तिसको जो पुरुष तत्त्वकरके अर्थात् संदेह रहित यथावत् जानताहै सो इसदेहको त्यागकरके फिरजन्मको नहींप्राप्त होता और मुझको प्राप्तहोताहै अर्थात् मुक्तहोता है ॥ ९ ॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥ १०॥

शङ्करभाष्यम्।

नैष मोक्षमार्गमिदानीम् प्रवृत्तः किं तर्हि पूर्वमपि वीतरागभयक्रोधा रागश्च भयञ्च क्रोधश्च रागभयक्रोधाः वीता विगता येभ्यस्ते वीतरागभयक्रोधा मन्मया ब्रह्मविद ईश्वराभेददर्शिनो मामेव च परमेश्वरमुपाश्रिताः केवल ज्ञाननिष्ठा इत्यर्थः बहवोऽनेके ज्ञानतपसा ज्ञानमेव च परमात्मविषयम् तत्तपस्तेन ज्ञानतपसा पूताः परां शुद्धिम् गताः सन्तोमद्भावमीश्वरभावं मोक्षमागताः समनुप्राप्ताः इतरतपोनिरपेक्षा ज्ञाननिष्ठा इत्यस्य लिंगम् ज्ञानतपसेति विशेषणम् १०॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

सम्प्रति प्रस्तुतमोक्षमार्गस्य नूतनत्वेनाव्यवस्थितत्वमाशङ्क्य परिहरति नैषइति मन्मयत्वस्य मद्भावगमनेनापौनरुक्त्यं दर्शयति ब्रह्मविद् इति आत्मनो भिन्नत्वेन वा ब्रह्मणोवेदनं व्यावर्त्तयति ईश्वरेति अभेददर्शनेन समुच्चित्य कर्म्मानुष्ठानां प्रत्याचष्टे मामेवेति तदुपाश्रयत्वमेव विषदयति केवलेति मामुपाश्रिता इति केवलं ज्ञाननिष्ठत्वमुक्त्वा ज्ञानतपसा पूता इति किमर्थं पुनरुच्यते तत्राह इतरेति॥ १०॥

स्वामिकृतटीका।

कथं जन्म कर्म ज्ञानेत्वत्प्राप्तिः स्यादित्यतआह वीतरागेति अहं शुद्धसत्वावतारैर्धर्मपालनं करोमीति मदीयं परमकारुणिकत्वं ज्ञात्वा वीता विगता रागभयक्रोधा येभ्यस्तेचित्तविक्षेपाभावान्मन्मया मदेकचित्ता भूत्वा मामेवोपाश्रिताः सन्तो मत्प्रसादलब्धं यदात्मज्ञानञ्च तपश्च तत्परिपाकहेतुः स्वधर्मः द्वन्द्वैकवद्भावः तेन ज्ञानतपसा पूताः शुद्धा निरस्ताज्ञानतत्कार्यमला मद्भावं मत्सायुज्यं प्राप्ता बहवः नत्वधुनैव प्रवृत्तोऽयं मद्भक्तिमार्ग इत्यर्थः तदेवं तान्यहं वेद सर्वाणीत्यादिना विद्याविद्योपाधिभ्यां तत्वं पदार्थावीश्वरजीवौ प्रदर्श्य ईश्वरस्य चाविद्याभावेन नित्यशुद्धतत्वाज्जीवस्य चेश्वरप्रसादलब्धज्ञानेनाज्ञाननिवृतेः शुद्धस्य स्वतश्चिदंशेन तदैक्यमुक्तमिति द्रष्टव्यम्॥ १०॥

नवलभाष्य।

और यहमोक्षमार्ग इसीसमय में प्रवृत्तहुआ होय सो नहीं है किन्तुपहिलेभीथा इसआशयसे कहतेहैं [वीतरागेति] और हेअर्जुन विगतहुए हैं राग नामाविषय प्रीति औरभय औरक्रोध जिन्होंसे औरजे मन्मयहुए नामब्रह्मवित् अर्थात् अपनासे अभेदकरके ईश्वरको देखनेवाले औरमैं जो परमेश्वर तिसीको आश्रयण करनेवाले अर्थात् ज्ञाननिष्ठ ऐसेबहुत से ज्ञानरूपजो परमात्मविषयक तप तिसकरके पूतनाम परमशुद्धिको प्राप्तहुए मेराभाव जो ईश्वरभाव अर्थात् मोक्ष तिसको प्राप्तहोतेहुए और यहांज्ञान तपसा यहकहनेसे ज्ञानसे औरभिन्न जो कृच्छ्रचान्द्रायणादिरूपतप तिसकी अपेक्षा नहीं करतेहुए केवल ज्ञानरूपही तपसे मोक्षको प्राप्तहुए यह सूचन किया॥ १०॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

तव तर्हि रागद्वेषौस्तः येन केभ्यश्चिदेवात्मभावं प्रयच्छसि न सर्वेभ्य इत्युच्यते ये यथेति ये यथा येनप्रकारेण येन प्रयोजनेन यत् फलार्थितया मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव तत् फलदानेन भजाम्यहमनुगृह्णाम्यहम् इत्यतः तेषां मोक्षं प्रत्यक्षं प्रत्यनर्थित्वात् तान् ह्येकस्य मुमुक्षुत्वं फलार्थित्वञ्च युगपत् सम्भवति अतो ये यत् फलार्थिनः तान् तत् फलप्रदानेन ये यथोक्तकारिणस्तत् फलार्थिनो मुमुक्षवश्च तान् ज्ञानप्रदानेन ये ज्ञानिनः संन्यासिनो मुमुक्षवश्च तान् मोक्षप्रदानेन तथा आर्त्तानार्त्तिहरणेत्येवं यथा येन प्रकारेण मां प्रपद्यन्ते ये तां स्तथैव भजामीत्यर्थः न पुनः रागद्वेषनिमित्तंमोहनिमित्तंवा किञ्चिद् भजामि सर्वथापि सर्वावस्थस्य ममेश्वरस्य वर्त्ममार्गमनुवर्त्तन्तेये मनुष्याःयत् फलार्थितया यस्मिन् कर्मण्यधिकृताः ये प्रयतन्ते ते मनुष्या अत्र उच्यन्ते हे पार्थ सर्वशःसर्वप्रकारैः ॥ ११ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

ईश्वरः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो मोक्षं प्रयच्छति चेत् प्रागुक्तविशेषणवैयर्थ्यं यदि तु केभ्यश्चिदेव मोक्षं प्रयच्छेत्तर्हि तस्य रागादिमत्त्वादनीश्वरत्वापत्तिरिति शंकते तव तर्हीति ये मुमुक्षवस्तेभ्यो मोक्षमीश्वरोज्ञानसम्पादनद्वारा प्रयच्छति फलान्तरार्थिभ्यस्तु तत्तदुपायानुष्ठापनेन तत्तदेव ददातीति नास्य रागद्वेषाविति परिहरति उच्यतइति मुमुक्षूणामीश्वरानुसारित्वेपि फलान्तरार्थिनां कुतस्तदनुसारित्वमित्याशंक्य फलमत उपपत्तेरितिन्यायेन तत्फलस्येश्वरायत्त्वात्तदनुवर्तित्वमावश्यकमित्याह ममेति भगवद्वचनभागिनां सर्वेषामेव कैवल्यमेकरूपं किमिति नानुगृह्यते तत्राह तेषामिति अभ्युदयनिःश्रेयसार्थित्वं प्रार्थनावैचित्र्यादेकस्यैव किं न स्यादित्याशंक्य पर्यायेण तदनुपपत्तिं साधयति न हीति मुमुक्षूणां फलार्थिनाञ्च विभागे स्थिते सत्यनुग्रहविभागं फलितमाह अत इति फलप्रदानेनानुगृह्णामीतिसम्बन्धः नित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठायिनामेव फलार्थित्वाभावे सति मुमुक्षुत्वे कथन्तेष्वनुग्रहः स्यादिति तत्राह ये यथोक्तेति ज्ञानप्रदानेन भजामीत्युत्तरत्र सम्बध्यः सन्ति केचित्त्यक्तसर्वकर्माणोज्ञानिनो मोक्षमेवापेक्ष्यमाणास्तेष्वनुग्रहप्रकारं प्रकटयति ये ज्ञानिन इति केचिदार्त्ताः सन्तो ज्ञानादिसाधनान्तररहिता भगवन्तमेवार्त्तिमत्प्रहर्तुमनुवर्तन्ते तेषु भगवतोऽनुग्रहविशेषं दर्शयति तथेति पूर्वार्द्धव्याख्यानमुपसंहरति इत्येवमिति भगवतोऽनुग्रहे निमित्तान्तरं निवारयति न पुनरिति फलार्थित्वे मुमुक्षुत्वे च यततां भगवदनुसरणमावश्यकमित्युत्तरार्द्धं विभजते सर्वथापीति सर्वावस्थत्वं तेन तेनात्मना परस्यैवेश्वरस्यावस्थानं मार्गो ज्ञानकर्मलक्षणः मनुष्यग्रहणादितरेषामीश्वरमार्गानुवर्तित्वमप्युदासः स्यादित्याशंक्याह यत् फलेति सर्वप्रकारैर्मम मार्गमनुवर्तन्ते इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ११ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ननु तर्हि किं त्वय्यपि वैषम्यमस्ति यस्मादेवं त्वदेकशरणानामेवात्मभावं ददासि नान्येषां सकामानामित्यत आह ये इति यथा येन प्रकारेण सकामतया निःकामतया वा ये मां भजन्ति तानहं तथैव तदपेक्षितफलदानेनभजामि अनुगृह्णामि न तु सकामानां विहायेन्द्रादीनेव ये भजन्ते तानहमुपेक्ष इति मन्तव्यं यतः सर्वशः सर्वप्रकारैरिन्द्रादिसे

वक्ता अपि ममैव वर्त्म भजनमार्गमनुवर्तन्त इन्द्रादिरूपेणापि ममैव सेव्यत्वात् ॥ ११ ॥

नवलभाष्य।

अब कदाचित् अर्जुनकहै क्याआपको भी रागद्वेषहै जिससे किं कोईआत्मभावदेते हौ और सबको नहीं इसदोषको दूरकरतेहुए कहतेहैं कि (यथेति) हेअर्जुन जेपुरुष जिसप्रकार करके और जिसप्रयोजन से औरजिस फलकी इच्छाकरके मेरेशरण प्राप्तहोते हैं तिनको तैसेही तिसफलके दान करके मैं उनका भजन करताहूं अर्थात् अनुग्रहकरताहूं इससे उनपुरुषों को मोक्षके प्रतिअर्थित्व नहीं होनेसे अर्थात् वेपुरुषमोक्ष चाहतेही नहीं हैं इसकारणसे और दूसरे एकपुरुष को एकहीकालमें मोक्षकी इच्छा और कर्मफलकी इच्छा ये दोनों विरुद्धहोनेसे संभवही नहींहोतीहैं इससेजेपुरुष जिसफलकी इच्छाकरके मेरा भजन करतेहैं तिनको तिसफलके दानकरके और जेमुमुक्षुफल की तो इच्छाकरते नहीं और जैसाकहा है तैसाकर्म करतेहैं तिनको ज्ञानके दानकरके और जेज्ञानी संन्यासी हैं अथवा मुमुक्षुही संन्यासी हैं तिनको मोक्षप्रदान करके और जेआर्त्त रोगशत्रु आदि करके दुःखितहो रहेहैं और उसदुःखकी निवृत्तिकेलिये मेराभजन करतेहैं तिनको उस दुःखके हरणकरके इसप्रकार जैसे जैसेभावकरके और जिस जिसकामनासे मेराभजन करतेहैं तिनको तैसे तैसे भावसे और तिस तिसफलके देनेकरके मैंभी उनका भजन करताहूं औरनतो रागद्वेषके कारणसे औरन मोहके कारणसे मैं किसी प्राणीका भजन करताहूं और सबप्रकार करके सबअवस्थामें स्थितईश्वर जो मैंहूं तिसीका मार्ग सब अनुवर्त्तन करते हैं तिनमें जेमनुष्यहैं तेजिसकर्ममें अधिकारयुक्त हैं और जिसफलकी इच्छा करतेहुएहैं उसीकर्म में उसफलके लिये इच्छा करतेहुये यत्नमें तत्परहोते हैं वेमनुष्य कहातेहैं अर्थात् कर्मश्रद्धा परायणोंकी मनुष्यसंज्ञाहै इसप्रकार सबमेरे मार्गको अनुसरण करते हैं ॥ ११ ॥

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रंहि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यदि तवेश्वरस्य रागादिदोषाभावः तदा सर्वप्राणिषु अनुजिघृक्षायां तुल्यायां सर्वफलप्रदानसमर्थे च त्वयि सति वासुदेवः सर्वमिति ज्ञानेनैव मुमुक्षवः सन्तः कस्मात्त्वामेव सर्वे न प्रतिपद्यन्ते इति शृणु तत्र कारणं काङ्क्षन्त इति अभिलषन्तः कर्मणां सिद्धिं फलनिष्पत्तिं प्रार्थयन्तो यजन्ते इहास्मिन् लोके देवता इन्द्राग्न्याद्याः अथ योन्यां देवतामुपास्तेऽन्यो सावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानामितिश्रुतेः तेषां हि भिन्नदेवतायाजिनां फलाकाङ्क्षिणां क्षिप्रं शीघ्रं हि यस्मात् मानुषे लोके मनुष्यलोके हि शास्त्राधिकारः क्षिप्रं हि मानुषे लोके इति विशेषणादन्येष्वपि कर्मफलसिद्धिं दर्शयति भगवान् मानुषे लोके वर्णाश्रमादिकर्माणीति विशेषः तेषाञ्च वर्णाश्रमाद्यधिकारिणां कर्मणां फलसिद्धिः क्षिप्रं भवतिकर्मजा कर्मणो जाता ॥१२॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

अनुग्राह्याणां ज्ञानकर्मानुरोधेन भगवता तेष्वनुग्रहविधानात्तस्य रागद्वेषौ यदि न भवतस्तर्हि तस्य रागाद्यभावादेव सर्वेषु प्राणिष्वनुग्रहेच्छा तुल्या प्राप्ता नच तस्यां सत्यामेव फलस्याल्पीयसः संपादने सामर्थ्यं नतु भगवतोमहतोमोक्षाख्यस्य फलस्य प्रदानेऽशक्तिरिति युक्तमप्रतिहतज्ञानेच्छा क्रियाशक्तिमतस्तव सर्वफलप्रदानसामर्थ्यात्तथाच यथोक्तानुजिघृक्षायां सत्यां त्वयि च यथोक्तसामर्थ्यवति सति सर्वेफलगुफलादभ्युदयात् विमुखामोक्षमेवापेक्षमाणा ज्ञानेन त्वामेव किमिति न प्रतिपद्येरन्निति चोदयति यदीति मोक्षापेक्षाभावात्तदुपायभूतज्ञानादपि वैमुख्याद्भगवत्प्राप्त्यभावे हेतुमभिदधानः समाधत्ते श्रृणिवति कर्मफल सिद्धिमिच्छता किमिति मानुषे लोके देवतापूजनमिष्यते तत्राह क्षिप्रंहीति कर्मफलसंप्रत्यर्थिनां यष्टृयष्टव्यविभागदर्शिनां तद्दर्शने कारणमात्माज्ञानमित्यत्र बृहदारण्यकश्रुतिमुदाहरति अथेति अविद्याप्रकरणोपक्रमार्थमथेत्युक्तं उपायनं भेददर्शनमित्यनूद्य कारणमात्माज्ञानं न तत्रेति दर्शयति नेति यथास्मदादीनां हलवहनादिना पशुरुपकरोत्येवमज्ञोदेवादीनां यागादिभिरुपकरोतीत्याह यथेति किमिति ते फलाकाङ्क्षिणोभिन्नदेवतायाजिनोज्ञानमार्गं नापेक्षन्ते तत्रोत्तरार्द्धमुत्तरत्वेन योजयति तेषामित्यादिना यस्मादयथोक्तानामधिकारिणां कर्मप्रयुक्तं फलं लोकविशेषे झटिति सिध्यति तस्मात्तेषां मोक्षमार्गादस्ति वैमुख्यमित्यर्थः । मानुषलोकविशेषणं किमर्थमित्याशंक्याह मनुष्यलोके हीति लोकान्तरेषु तर्हि कर्मफलसिद्धिर्नास्तीत्याशंक्य क्षिप्रविशेषणस्यतात्पर्यमाह क्षिप्रमिति क्वचित् कर्मफलसिद्धिरविलम्बेन भवत्यन्यत्र तु विलम्बेनेति विभागे को हेतुरित्याशंक्य सामग्रीभावाभावाभ्यामित्याह मानुष इति मनुष्यलोके कर्मफलसिद्धेः शैघ्र्यात्तदभिमुखानां ज्ञानमार्गवैमुख्यं प्रायिकमित्युपसंहरति तेषामिति ॥ १२ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तर्हि मोक्षार्थमेव किमिति सर्वे त्वां न भजन्तीत्यत आह कांक्षंत इति कर्मणां सिद्धिं कर्मफलं कांक्षन्तः प्रायेणेह मनुष्यलोके इन्द्रादिदेवता एव यजन्ते नतु साक्षान् मामेव हि यस्मात् कर्मजा सिद्धिः कर्मजं फलं शीघ्रं भवति नतु ज्ञानफलं कैवल्यं दुष्प्राप्यत्वात् ज्ञानस्य ॥ १२ ॥

नवलभाष्य ।

अब कदाचित् अर्जुन कहै कि ईश्वर जो आप तिनको रागद्वेषका अभाव है और अनुग्रहकी इच्छाभी सबप्राणियोंमें तुल्यहै तौ सबफलके देनेमें समर्थ तुम्हारे विद्यमानहुए सन्ते सब वासुदेवस्वरूपही है एसेज्ञान करके मुमुक्षुहुएसन्ते काहेसे सबप्राणी तुम्हारे ही शरणमें नहीं प्राप्तहोते हैं तौ इसका कारण सुनौ कि [काङ्क्षन्तइति] हे अर्जुन कर्मोंके फलों की प्रार्थना करतेहुए जे पुरुष ते इसलोकमें इन्द्र अग्नि आदिलेके जे देवता तिन्हींका यजनकरते हैं इसीअर्थको वेदकीश्रुतिभी कहतीहै [अथयोन्यांदेवतामुपास्तेऽन्योसावन्योहमस्मीतिनसवेदयथापशुरेवंसदेवानामिति बृहदारण्यश्रुतिः] अर्थः जो पुरुष परमात्माको बिनाजाने और देवताकी उपासनाकरता है अर्थात् इन्द्रवरुण अग्निआदि देवताकी उपासना करता है

और यहमानताहै कि यह देवतामेरास्वामी अन्यहै+और मैंइसका सेवकअ-न्यहीहौं ऐसीदृष्टिसे उपासना करनेवाला जो वहपुरुष सो नहीं आत्मस्व रूपको जानताहै जैसपशु नहीं जानता ऐसे वहदेवताओं का पशुहै यहवृ-हदारण्यके श्रुतिके प्रमाणसे न्यारेन्यारे देवताओं का यजन करतेहुए और नानाफलों की इच्छा करतेहुए जेवेकर्मी पुरुषतिनकी क्षिप्रअर्थात् शीघ्रही जिससे इसमनुष्यलाक में वर्णाश्रम कर्मोंसे उत्पन्नहुई सिद्धिहोतीहै और यहां मानुषेलोके यह विशेषण सामर्थ्यसे कर्मफलकी सिद्धिऔर लोकोंमें भी होतीहै यह भगवान् सूचनकरते हैं परन्तु वर्णाश्रम कर्म मनुष्यलोक हीमें होतेहैं इतनाही विशेषहै क्योंकिवर्णाश्रम दृष्टिकरके शास्त्रका अधिका रमनुष्यलोकहीमें है ॥ १२ ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

मानुष एव लोके वर्णाश्रमादि कर्म्माधिकारोनान्येषु लोकेष्विति नियमः किं निमित्त इति अथवा वर्णाश्रमादिप्रविभागोपेता मनुष्या मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते सर्वश इत्युक्तं कस्मात् पुनः कारणा त् नियमेन तवैव वर्त्मानुवर्त्तन्ते नान्यस्येत्युच्यते चातुर्वर्ण्यमिति चातुर्वर्ण्यं चत्वार एववर्णाश्चा तुर्वर्ण्यं मयेश्वरेण सृष्टमुत्पादितं ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदित्यादि श्रुतेः गुणकर्मविभागशः गुण विभागशः कर्म्म विभागशश्च गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि तत्र सात्त्विकस्य सत्त्वप्रधानस्य ब्राह्मण स्य शमोदमस्तप इत्यादीनि कर्म्माणि सत्त्वोपसर्ज्जनरजःप्रधानस्य क्षत्रियस्य शौर्य्यतेजः प्रभृ तीनि कर्माणि तम उपसर्जनरजः प्रधानस्य वैश्यस्य कृष्यादीनि कर्माणि रजउपसर्ज्जन तमः प्रधानस्य शूद्रस्य शुश्रूषैव कर्मेत्येवं गुणकर्मविभागशः चातुर्वर्ण्यंमया सृष्टमित्यर्थः तच्चेदं चातुर्वर्ण्यं नान्येषुलोकेषु अतोमानुषेलोकेइति विशेषणं हन्ततर्हि चातुर्वर्ण्यस्य सर्गादेः कर्म्मणः क र्तृत्वात् तत्फलेषु युज्यसे अतो नत्वं नित्यमुक्तो नित्येश्वर इत्युच्यते यद्यपि मायासंव्यवहारेण

+ इस प्रकरणका अभिप्राय यहहै कि यद्यपिभगवान्को रागद्वेषनहीं और सबप्राणि-योंके ऊपर अनुग्रहकी इच्छाभीतुल्यहै तौभी इसमनुष्य लोकमें कर्मफलकी सिद्धिशीघ्रहो तीहै इसकारण से कोईज्ञानकी इच्छासे भगवान्की प्रार्थनाही नहीं करता जैसे कल्पवृक्ष के समीपजाके जोपदार्थकी इच्छाकरै वहीपदार्थ मिलताहै और कल्पवृक्षको किसीसे राग द्वेषनहीं जो अपनाहोयतिसको अच्छापदार्थदेवै और जो शत्रु होय तिसको बुरापदार्थदेवै तैसेही परमेश्वर काभीस्वभावहै जो जिसपदार्थकी इच्छा करके परमेश्वरका भजन करता है वह उसीपदार्थको प्राप्तहोताहै कदाचित् कोई कहै कि परमेश्वर सबकी बुद्धि का प्रेरकहै तो ऐसीबुद्धि क्योंनहीं प्रेरता जिसमें सबको सुखही होय तो इसका यह उत्तरहै कि पर-मेश्वरकोई सबका प्रेरकहै यहजानके हे परमेश्वर मेरीबुद्धिको ऐसा प्रेरणा कीजिये जि-समें दुःखसों निवृतहोउं ऐसीइच्छासे परमेश्वर का भजनकोई करै और दुःखसे निवृत न होय तो परमेश्वर को उलहना भी देनाठीकहै और जो आपही कर्तृत्व के अभिमानसे जिसफलकी इच्छासे कर्ममें प्रवृत्तहोवै तौतो उसी कर्मफलकी प्राप्ति उसकोहोगी परमेश्वर की क्याविषमता है ॥

तस्य कर्म्मणः कर्त्तारमपि सन्तं तथापिमां परमार्थतो विद्ध्यकर्त्तारमत एवाव्ययमसंसारिण ञ्च मां विद्धि ॥ १३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

मनुष्यलोके चातुर्वर्ण्यं चातुराश्रम्यमित्यनेनद्वारेण कर्माधिकारनियमे कारणं पृच्छति मानुष एवेति आदिशब्देनावस्थाविशेषा विवक्ष्यन्ते प्रकारान्तरेण वृत्तानुवादपूर्वकं चोद्य मुत्थापयति अथवेत्यादिना प्रश्नद्वयं परिहरति उच्यत इति तर्हि तव कर्तृत्व भोक्तृत्व सम्भवादस्मदादि तुल्यत्वेनानीश्वरत्वमित्याशङ्क्याह तस्येति ईश्वरस्य विश्वसृष्टि विदधा नस्य सृष्टि वैषम्यनिर्वाहकं कथयति गुणेति गुणविभागेन कर्मविभागस्तेन चातुर्वर्ण्यस्य सृष्टिमेवोपदिष्टां स्पष्टयति तत्रेत्यादिना प्रश्नद्वयं प्रतिविधानं प्रकृतमुपसंहरति तच्चेदमिति मनुष्यलोके परं वर्णाश्रमादिपूर्वके कर्मण्यधिकारस्तत्रैव वर्णादेरीश्वरेण सृष्टत्वान्नलोका न्तरेषु तत्र वर्णाद्यभावादीश्वरमेव चातुर्वर्ण्याश्रमादिविभागभागिनोऽधिकारिणोऽनुवर्त न्ते तेनैव वर्णादेस्तद्व्यापारस्य च सृष्टत्वात्तदनुवर्तनस्य युक्तत्वादित्यर्थः तस्येत्यादि द्वितीयभागापोद्यचोद्यमनुद्रवति हन्तेति यदि चातुर्वर्ण्यादिकर्तृत्वादीश्वरस्य प्रागुक्तो नियमोऽभिमतस्तर्हि तद्विषयसत्वादेस्तन्निष्ठव्यापारस्य च धर्मादेर्निवर्तकत्वात्तत् फलस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वयोस्त्वयि प्रसंगात् नित्यमुक्तत्वादि तेन स्यादित्यर्थः मायया कर्तृत्वं पर मार्थतस्त्वकर्तृत्वमित्यभ्युपगमान्नित्यमुक्तत्वादि सिध्यतीत्युत्तरमाह उच्यत इति माया प्रवृत्तेन संव्यवहारेण चातुर्वर्ण्यादेस्तत् कर्मणश्च यद्यपि कर्ताहं तथापि तथाविधं मां परमार्थतोऽकर्तारं विद्धीति योजना अकर्तृत्वादेवाभोक्तृत्वसिद्धिरित्याह अतएवेति ॥ १३ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु केचित् सकामतया प्रवर्त्तन्ते केचिन्निष्कामतयेति कर्म वैचित्र्यं तत्कर्तृणांच ब्रा ह्मणादीनामुत्तममध्यमादिवैचित्र्यं कुर्वतस्तव कथं वैषम्यं नास्तीत्याशंक्याह चातुर्वर्ण्य मिति चत्वारो वर्णा एवेति चातुर्वर्ण्यं स्वार्थे ष्यञ्प्रत्ययः अयमर्थः सत्त्वप्रधाना ब्राह्म णास्तेषां शमदमादीनि कर्माणि सत्त्वरजःप्रधानाःक्षत्रियास्तेषां शौर्ययुद्धादीनि कर्माणि रजस्तमःप्रधाना वैश्यास्तेषांच कृषिवाणिज्यादीनि कर्माणि तमःप्रधानाः शूद्रास्तेषांच त्रै वर्णिक शुश्रूषादीनि कर्माणीत्येवं गुणानां कर्मणांच विभागैश्चातुर्वर्ण्यं मयैव सृष्टमिति सत्यं तथाप्येवं तस्य कर्तारमपि फलतोऽकर्तारमेव मां विद्धि तत्र हेतुरव्ययम् आसक्ति राहित्येन श्रमरहितम् ॥ १३ ॥

नवलभाष्य।

अब यहविचारकरते हैं कि मनुष्यलोकही में वर्णाश्रम कर्मोंका अधिकारहै और लोकोंमें नहींहै इसमें क्याकारणहै अथवा वर्णाश्रमादि विभागयुक्त सबमनुष्य मेरेमार्गका अनुसरण करतेहैं अर्थात् मेरेकहेहुए कर्ममार्ग में चलतेहैं यहतुमने कहा तहांयह आशंका होतीहै नियमकरके तुम्हारेमार्गकाही आश्रयणकरतेहैं औरका नहीं इसमें क्याहेतु है इसका समाधान करतेहैं कि (चातुर्वर्ण्यमिति) हे अर्जुन (ब्राह्मणोस्यमुखमासीत्) ब्राह्मणइस परमेश्वरके मुखसे होताहुआ इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे गुणविभागकरके और कर्मोंके विभागकरके ब्राह्मण और क्षत्रिय औरवैश्य और

शूद्रयेचारि वर्णमैंनेरचे तहांगुणकौनहुए सत्त्वरजतम तिसमें सत्त्वगुणप्रधानजो ब्राह्मण तिसके शमदमादि कर्मरचे और सत्त्वगुण जिसमें अप्रधान होय और रजोगुण जिसमें प्रधानहोवै ऐसा जो क्षत्रिय तिसके शौर्यतेजआदिकर्मरचे और तमोगुण जिसमें अप्रधान होय और रजोगुण जिसमें प्रधानहोय उसको वैश्यकहते हैं उसके कृष्यादि कर्मरचे और रजोगुण है अप्रधान जिसमें और तमोगुण जिसमें प्रधान होय उसको शूद्रकहते हैं उसको शुश्रूषाही कर्मरचा इसप्रकारकरके गुणकर्म विभागों करके सहित ब्राह्मणादि चारवर्ण मैंनेरचे सो यह चारिवर्णोंका विभाग और लोकोंमें नहींहै इससे मानुषेलोके यहविशेषणकहा है तो फिर चातुर्वर्ण्यादिसृष्टि के करनेसे आपभी उसके फलकरके युक्तहुए इससे तुम नित्य मुक्त नित्य ईश्वर नहींहो ऐसा दोषप्राप्त हुआ तिससे कहतेहैं कि हे अर्जुन यद्यपिमायाके व्यवहारकरके जगत्कर्त्ताभी मैंहौं तोभी परमार्थ अकर्त्ताही मैंहूं इसीसे अव्यय विकाररहित असंसारी मैंहूं ऐसातू मुझकोजान ॥ १३ ॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न्न स बध्यते ॥ १४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

येषान्तु कर्मणां कर्त्तारं मां मन्यसे परमार्थतस्तेषामकर्त्तैवाहं यतः नेति न मां तानि कर्माणि लिम्पन्ति देहाद्यारम्भकत्वेनाहङ्काराभावान्नचतेषां कर्मणां फलेषु मे स्पृहा तृष्णा तेषान्तु संसारिणमहं कर्तेत्यभिमानः कर्मसु स्पृहा तत्फलेषु च तान् कर्माणि लिम्पन्तीति युक्तं तदभावान्न मां कर्माणि लिम्पंतीत्येवं योऽन्योऽपि मामात्मत्वेनाभिजानाति नाहं कर्त्ता न मे कर्म फले स्पृहेति स कर्मभिर्न बध्यते तस्यापि न देहाद्यारम्भकाणि कर्माणि भवन्तीत्यर्थः ॥ १४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ईश्वरस्य कर्तृत्व भोक्तृत्वयोर्वस्तुतोऽभावे कर्म तत्फलसम्बन्धवैधुर्य्यं फलतीत्याह येषान्त्विति कर्म तत्फल संस्पर्श शून्यमीश्वरं मां पश्यतो दर्शनानुरूपं फलं दर्शयति न मामिति तानि कर्माणीति येषां कर्मणामहं कर्त्ता तवाभिमतस्तानीति यावत् देहेन्द्रियाद्यारम्भकत्वेन तेषां कर्मणामीश्वरे संस्पर्शाभावे तस्य तत्कारणावस्थायामहंकाराभावं हेतुं करोति अहंकाराभावादिति कर्मफलतृष्णाभावाच्चेश्वरं कर्माणि न लिंपन्तीत्याह नचेति उक्तमेव प्रपंचयति येषांत्विति तदभावात् कर्मस्वहं कर्त्तत्यभिमानस्य तत्फलेषु स्पृहायाश्चाभावादित्यर्थः ईश्वरस्य कर्मनिर्लेपेऽपि चेत्रज्ञस्य किमायातमित्याशंक्योत्तरार्द्धं व्याचष्टे इत्येवमिति अभिज्ञान प्रकारमभिनयति नाहमिति ज्ञानफलं कथयति सकर्मभिरिति कर्मासम्बन्धं विदुषि विशदयति तस्यापीति ॥ १४ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेव दर्शयन्नाह नमामिति कर्माणि विश्वसृष्ट्यादीन्यपि मां न लिम्पन्ति आसक्तं न कुर्वन्ति निरहंकारत्वादाप्तकामत्वेन मम कर्मफले स्पृहा भावाच्च मां न लिम्पन्तीति किं वक्तव्यं यतः कर्मलेपराहित्येन मां योभिजानाति सोऽपि कर्मभिर्न बध्यते मम निर्लेप

त्वकारणं निरहंकारत्वनिस्पृहत्वादिकं जानतस्तस्याप्यहंकारादिशैथिल्यात् ॥ १४॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जिनसृष्ट्यादि कर्मोंका तूमुझको कर्तामानि रहा है तिन कर्मोंका वास्तवमें जिससे मैं अकर्त्ताहीहूं इसीसे जे सृष्ट्यादि कर्ममुझको लिप्त नहीं करते क्योंकि देहादिकोंके आरम्भकत्वरूप करके मुझको अहंकारका अभावहै इस हेतुसे अर्थात् जैसे प्राकृतअज्ञपुरुषकर्म करत हैं तो वे अविवेकसे इन्द्रियादिकों का कर्त्तापना आपनेमें मानिके अहंकारवशसे मैं इसकर्मका करनेवाला हूं ऐसामानते हैं तो उस अहंकारके कारणसे उस पुण्यपापरूप कर्मफलके भोगनेको उनको और देहधारण करनेपड़ताहै तो वहां वह अहंकारही उनअज्ञपुरुषों का देहादिकोंका आरम्भक नामरचने वाला कहाजाता है तैसे ईश्वर जबसृष्टिआदि कर्म करताहै तो उसकरने केही समयमें प्रकृतिसेन्यारा अपने असंगरूपके जाननेसे अपनामें ऐसाकर्त्तापनाका अहंकारनहीं होता जो ईश्वरको उसकर्मके फलभुगाने को और देहादिकोंका आरम्भक होय इसकारणसे ईश्वरको कोई कर्मलिपायमान नहींकरते और जीवोंको तो कर्मकरने के समयमें विवेकके नहीं होनेसे ऐसाज्ञान होता नहीं इससे कर्मउनको लिप्तकरतेही हैं और दूसरा कारण बन्धनका औरभी जो कर्मफलके भोगनेकी इच्छा होना सोभी परमेश्वर को आप्तकामहोने से नहींहोती इसआशयसे भगवान् कहतेहैं कि हेअर्जुनमुझको कर्मोंकेफलों में स्पृहा अर्थात् तृष्णा नहींहै इससेभी मुझको कर्म लिप्तनहीं करते और संसारी जीवोंको तो [अहंकर्त्ता] मैं करनेवालाहूं ऐसा अभिमान और कर्मफलके भोगनेकी इच्छा यदोनों होतेहैं इससे उनको कर्मलिप्तकरै यहयुक्तहीहै और मुझको अहंकारके और कर्मफलकी तृष्णाके नहीं होनेसे कर्मलिप्तनहीं करतेहैं इसप्रकार जो और भी कोई पुरुष आत्मत्वरूपकरके अर्थात् अपनाही वास्तवरूपमुझको जानताहै सो नमैं करताहूं और न मुझको कर्मफलकी इच्छाहै ऐसाजानके फिरकर्मोंकरके बन्धनको प्राप्तनहीं होताहै अर्थात् ऐसेज्ञानी पुरुषके भी कर्म मेरेतुल्य औरदेहोंके आरम्भक उत्पत्तिकराने वालेनहीं होते हैं किन्तु जीवन्मुक्तताको प्राप्तहोता है ॥ १४ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

शङ्करभाष्यम्।

नाहं कर्त्ता न मे कर्मफले स्पृहेति एवमिति एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरप्यतिक्रान्तैर्मुमुक्षुभिः कुरु तेन कर्मैव त्वं न तूष्णीमासनं नापि संन्यासः कर्त्तव्यस्तस्मात्त्वं पूर्वैरप्यनुष्ठितत्वाद् यद्य नात्मज्ञस्त्वं तदात्मशुद्ध्यर्थं तत्त्वविच्चेल्लोकसंग्रहार्थं पूर्वैर्जनकादिभिः पूर्वतरं कृतं नाधुनातनं कृतं निर्वर्तितम् ॥ १५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

तव कर्म तत्फलसम्बन्धाभावे तथा ज्ञानवतश्च तदसम्बन्धे ममापि किं कर्मणेत्याशंक्य कर्मणि कर्तृत्वाभिमानं तत् फले स्पृहांचाकृत्वा मुमुक्षुवत् त्वया कर्म कर्तव्यमेवेत्याह नाहमित्यादिना एवमिति नाहं कर्तेत्येवमादि परामृश्यते तेन पूर्वैर्मुमुक्षुभिरनुष्ठितत्वेन हेतुनेत्यर्थः कर्मैवेत्येवकारार्थमाह नेत्यादिना त्व शब्दस्य क्रियापदेन सम्बन्धः तस्मादित्युक्तमेव स्फुटयति पूर्वैरिति यदुक्तं किं मम कर्मणेति तत्र त्वमज्ञो वा तत्त्वविद्वान् यद्यज्ञस्तदा चित्तशुद्ध्यर्थं कुरु कर्मेत्याह यदीति द्वितीयं प्रत्याह तत्त्वविदिति कुरु कर्मेति सम्बन्धः पूर्वैमूढै राचरितमित्येतावता किमिति विवेकवता मया तत् कर्तव्यमित्याशंक्याह जनकादिभिरिति ते तदैव संपाद्य कर्म कृतवन्तो न तदिदानीमप्रमाणिकत्वादनुष्ठेयमित्याशंक्याह पूर्वतरमिति ॥ १५ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ये यथा मामित्यादि चतुर्भिः श्लोकैः प्रासंगिकमीश्वरस्य वैषम्यं परिहृत्य पूर्वोक्तमेव कर्मयोगं प्रपंचयितुमनुस्मारयति एवमिति अहंकारादिरहित्येन कृतं कर्म बन्धकं न भवतीत्येवं ज्ञात्वा पूर्वैर्जनकादिभिरपि मुमुक्षुभिः सत्वशुद्ध्यर्थं पूर्वतरं युगान्तरेष्वपि कृतं तस्मातत्वमपि कृतं तस्मातत्वमपि प्रथमं कर्मैव कुरु ॥ १५ ॥

नवलभाष्य ।

और हे अर्जुन न मैंकरताहूं औरन मेरेफलकी इच्छाहै इसीप्रकार जानके पहिलेके होगये जेमुमुक्षु अर्थात् मोक्षकी इच्छा करनेवाले तिन्होंने भी कर्मकिया है तिसीरीतिसे तूभी कर्महीकर और न तो तूमौन होके स्थितहो और नसंन्यासधारणकर और जिससे यहकर्म पूर्वोंकरके कियाहुआतिससे तूजो अपनाको आत्मवित् नजानताहोय तो अन्तःकरणकी शुद्धिकेलिये कर और जो तू अपनाको तत्त्ववेत्ता जानता होय तो लोकसंग्रहके अर्थ जैसे पहिलेके जनकादि ज्ञानियोंने कर्मकिया है तैसेही पूर्वतर अर्थात् पहिलेही का कियाहुआ कुछ अभी नहीं किया है ऐसा जो कर्म तिसको कर ॥ १५ ॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १६ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

तत्र कर्मचेत् कर्त्तव्यं त्वद्वचनादेव करोम्यहं किं विशेषितेन पूर्वैः पूर्वतरं कृतमित्युच्यते यस्मान् महद्वैषम्यं कर्माकर्मणि कथं किं कर्मेति किं कर्म किञ्चाकर्मेति कवयो मेधाविनोऽपि अत्रास्मिन् कर्मादि विषये मोहिताः मोहं गताः अतस्ते तुभ्यमहं कर्माऽकर्म च प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा विदित्वा कर्मादि मोक्ष्यसे अशुभात् संसारात् न चैवं त्वया मन्तव्यं कर्मनाम देहादिचेष्टा लोकप्रसिद्धमकर्मनाम तदक्रिया तूष्णींमासनं किं तत्र बोद्धव्य मिति ॥ १६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

कर्म विशेषणमाक्षिपति तत्रेति मनुष्यलोकः सप्तम्यर्थः कर्मणि महत् वैषम्यस्य वि द्यमानत्वात् तस्य पूर्वैरनुष्ठितत्वेन पूर्वतरत्वेन च विशेषितत्वे तस्मिन् प्रवृत्तिस्तव युक्तेति युक्तं विशेषणमिति परिहरति उच्यत इति कर्मणि देहादिचेष्टारूपे लोकप्रसिद्धे नास्ति वैषम्यमिति शंकते कथमिति विज्ञानवतामपि कर्मादिविषये व्यामोहोपपत्तः सुतरामेव तव तद्विषये व्यामोहसम्भवात्तदपोहार्थमाप्तवाक्यापेक्षणादस्ति कर्मणि वैषम्यमित्युत्तरमाह किं कर्मेति तत्ते कर्मेत्यत्राकारानुबन्धेनापि पदच्छेत्तव्यं कर्मादिप्रवचनस्य प्रयोजनमाह यज्ज्ञात्वेति तत्कर्माकर्मचेति सम्बन्धः अतो मेधाविनोऽपि यथोक्ते विषये व्यामोहस्य सत्वादित्यर्थः कर्मणोऽकर्मणश्च प्रसिद्धत्वात्तद्विषये न किञ्चिद्बोद्धव्यमितिचोद्यमनूद्य निरस्यति न चेति ॥ १६ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तच्च तत्वविद्भिः सह विचार्य कर्तव्यं न लोक परम्परामात्रेणेत्याह किं कर्मेति किं कर्म कीदृशं कर्मकरणं किमकर्म कीदृशं कर्माकरणं इत्यस्मिन्नर्थे विवेकिनोऽपि मोहिताः अतो यज्ज्ञात्वा यदनुष्ठायाशुभात् संसारान्मोक्ष्यसे मुक्तो भविष्यसि तत् कर्माकर्म च तुभ्यमहं प्रवक्ष्यामि तच्छृणु ॥ १६ ॥

नवलभाष्य ।

तहां अर्जुन कदाचित् यहकहै कि जो कर्मकरनाही है तो मैं आपहीके बचनसे कर्मकरताहूं फिरआप इतना बढ़ाइकै विशेषण किसवास्ते कहते हैं कि [पूर्वैःपूर्वतरंकृतम्] अर्थात् पहिले मुमुक्षुओं का कियाहुआ जो पाहिलेका कर्महै तिसीकोकर तो इसका उत्तर यहकहा जाताहै तिसको सुन कि हेअर्जुन कर्म और अकर्ममें बड़ाभारी वैषम्यहोरहा है अर्थात् बड़ीकठिनताहै सहजनहीं इसकाजाननाहै कैसे कि क्या तो कर्महै औरक्या अकर्महै इसप्रकार इसकर्माकर्मकेविषयमें बड़े२ बुद्धिमान्पुरुष मोहितहो-रहेहैं अर्थात् मोहकोप्राप्तहोरहे हैं इससे तेरेअर्थ कर्म और अकर्ममैंकहताहूं जिसकर्मादिक को तूजानके अशुभ संसारसे तूछूटजायगा और हेअर्जुन जो कदाचित् तू कहै कि इसमें कठिनताही क्याहै क्योंकि शरीरादिकका चेष्टा रूप जो व्यापारहै उसको कर्म कहतेहैं सो लोकमें प्रसिद्धही है और कुछ नहीं करना अर्थात् मौनहोके बैठना उसको अकर्म कहतेहैं तो यह कभी नहीं मानना चाहिये क्योंकि ऐसे कर्माकर्म के जाननेसे थोड़ेही अशुभसं-सारसे कोई छूटसक्ता है ॥ १६ ॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यंबोद्धव्यंच विकर्म्मणः ।
अकर्म्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणोगतिः ॥ १७ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

कस्मात् उच्यते कर्म्मणइति कर्म्मणः शास्त्रविहितस्य हि यस्मात् अप्यास्ति बोद्धव्य बोद्धव्यं

ञ्चास्त्येवविकर्म्मणः प्रतिसिद्धस्य तथा अकर्म्मणश्च तूष्णिम्भावस्य बोद्धव्यमस्तीति त्रिष्वप्य ध्याहारः कर्त्तव्यो यस्मात् गहनाविषमा दुर्ज्ञेया कर्म्मण इत्युपलक्षणार्थं कर्मादीनां कर्म्माकर्म विकर्मणांगतिर्याथात्म्यं तत्त्वमित्यर्थः ॥ १७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तत्र हेत्वाकाङ्क्षापूर्वकमनन्तरं श्लोकमवतारयति कस्मादिति त्रिष्वपि कर्माकर्म विकर्मसु बोद्धव्यमस्तीति यस्मादध्याहारस्तस्मान्मदीयं प्रवचनमर्थवदिति योजना बोद्धव्यसद्भावे हेतुमाह यस्मादिति त्रितयं प्रकृत्यान्यतमस्य गहनत्व वचन मयुक्त मित्याशङ्क्यान्यतमगहनस्योपलक्षणार्थत्वमुपेत्य विवक्षितमर्थमाह कर्मादीनामिति ॥ १७ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु लोकप्रसिद्धमेव कर्मदेहादि व्यापारात्मकं अकर्म च तद्व्यापारात्मकम् अतः कथमुच्यते कवयोऽप्यत्र मोहं प्राप्ता इति तत्राह कर्मण इति कर्मणो विहितव्यापारस्यापि तत्त्वं बोद्धव्यमस्तिनतुलोकप्रसिद्धमात्रमेव अकर्मणो विहितव्यापारस्यापितत्त्वं बोधव्यमस्ति विकर्मणो निषिद्धव्यापारस्यापि तत्त्वं बोद्धव्यमस्ति यतः कर्मणो गति र्गहना कर्म इत्युपलक्षणार्थं कर्माकर्मविकर्मणां तत्त्वं दुर्विज्ञेयमित्यर्थः ॥ १७ ॥

नवलभाष्य।

न कहौकि फिर क्यामानना चाहिये तिसआशयसे भगवान् कहते हैं कि [कर्मणइति] हे अर्जुन कर्म जो शास्त्रविहित तिसकास्वरूप जानने योग्यहै और विकर्म जो निषिद्ध कर्महै तिसकाभी स्वरूपजानने योग्यहै और अकर्म जो कुछ नहीं करना अर्थात् मौनहोके स्थितरहना तिसका भी स्वरूप जानने योग्यहै जिससे कर्मकी गतिगहन है बड़ी दुर्ज्ञेयहै यहां कर्म शब्द अकर्मादिकोंका भी उपलक्षण है अर्थात् जताने वालाहै तिससे यह अर्थहै कि कर्म और विकर्म और अकर्म इनकी जो गति अर्थात् ठीकठीक इनकेस्वरूपका जानना सो बड़ादुर्ज्ञेयहै दुःखकरके जानबेयोग्यहै ॥ १७ ॥

कर्म्मण्यकर्म यः पश्येदकर्माणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्न कर्मकृत् ॥ १८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किं पुनस्तत्त्वं कर्मादेर्यद्बोद्धव्यं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञातमुच्यते कर्म्मणीति कर्म्मणि कर्म्म क्रियत इति व्यापारमात्रं तस्मिन् कर्म्मणि अकर्म्म कर्म्माभावं यः पश्येदकर्म्मणि च कर्माभावे कर्त्तृतन्त्रत्वात् प्रवृत्तिनिवृत्त्योर्वस्त्वप्राप्यैव हि सर्व एव क्रियाकारकादिव्यवहारोऽविद्याभूमावेव कर्म्म यः पश्येत् यः पश्यति स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तो योगी च कृत्स्नकर्म्मकृत् समस्तकर्म्मकृच्च स इति स्तूयते कर्म्माकर्म्मणोरितरेतरदर्शी ननु किमिदं विरुद्धमुच्यते कर्म्मण्यकर्म्म यः पश्येदित्यकर्मणि च कर्मेति न हि कर्माकर्मस्यादकर्म वा कर्म तत्र विरुद्धं कथं पश्येत् द्रष्टा न्न्वकर्मैव परमार्थतः सत्कर्मवदवभासते मूढदृष्टेर्लोकस्य तथा कर्मैवाकर्मवत् तत्रयथाभूतदर्शनार्थमाह भगवान् कर्म्मण्यकर्म्म यः पश्येदित्यादि अतोन विरुद्धं बुद्धिमत्वाद्युपपत्तेश्च बोद्धव्यमिति च यथाभूतं दर्शनमुच्यतेनच विपरीतज्ञानादशुभान्मोक्षणं स्यात् यत् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशु

भादितिचोक्तं तस्मात् कर्म्माकर्म्मणी विपर्य्ययेण गृहीते प्राणिभिस्तद्विपर्य्ययग्रहणनिवृत्त्यर्थं भगवतोवचनं कर्म्मण्यकर्म्म य इत्यादि नचात्र कर्म्माधिकरणमकर्म्मास्ति कुण्डेवदराणीव नाप्यकर्माधिकरणं कर्मास्ति कर्माभावत्वादकर्म्मणोऽतो विपरीते गृहीते एव कर्माकर्मणी लौकिकैः यथा मृगतृष्णिकायामुदकं शुक्तिकायां वा रजतं ननु कर्म्म कर्मैव सर्वेषां न क्वचित् व्यभिचरतितत्र नौस्थस्य नावि गच्छन्त्यां तटस्थेष्वगतिकेषु नगेषु प्रतिकूलगतिदर्शनात् दूरेषु चक्षुषोऽसन्निकृष्टेषुगच्छत्सु गत्यभावदर्शनादेवमिहाप्यकर्म्मणि अहं करोमीति कर्मदर्शनं विपरीतदर्शनं कर्म्मणि चाकर्म्मदर्शनं येन तन्निराकरणार्थमुच्यते कर्म्मण्यकर्मयः पश्येदित्यादि तदेतदुक्तप्रतिवचनमप्यसकृदत्यन्तविपरीतदर्शनाभावितया मोमुह्यमानोलोकः श्रुतमप्यसकृत्तत्त्वं विस्मृत्य मिथ्याप्रसङ्गमवतार्य्यावतार्य्य चोदयतीति पुनः पुनरुत्तरमाह भगवान् दुर्विज्ञेयत्वञ्चालक्ष्य वस्तु नाव्यक्तोयमचिन्त्योयं न जायते म्रियते इत्यादिनात्मनि कर्म्माभावः श्रुतिस्मृतिन्यायप्रसिद्ध उक्तो वक्ष्यमाणश्च तस्मिन्नात्मनि कर्म्माभावे अकर्मणि कर्म्मविपरीतदर्शनमत्यन्तनिरूढं यतः किं कर्म्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता देहाद्याश्रयं कर्म्मात्मन्यध्यारोप्याहं कर्त्ता ममैतत् कर्म मयास्य कर्म्मणः फलम्भोक्तव्यमिति च तथाहं तूष्णीं भवामि येनाहं निरायासोऽकर्म्मा सुखीस्यामिति कार्य्यकरणाश्रयव्यापारो परमं कर्मैव तत् कृतञ्च सुखित्वमात्मन्यध्यारोप्य न करोमि किञ्च तूष्णीं सुखमासमित्याभिमन्यते लोकस्तत्रेदं लोकस्य विपरीतदर्शनापनयायाह भगवान् कर्म्मण्यकर्म यः पश्येदित्यादि अत्र च कर्म्म कर्मैव सत्कार्य्यकरणाश्रयं कर्मरहितेऽविक्रिये आत्मनि सर्वैरध्यस्तं यतः पण्डितोप्यहं करोमीति मन्यते अत आत्मसमवेततया सर्वलोकप्रसिद्धे कर्मणि नदी कूलस्थेष्विव वृक्षेषु गतिः प्रातिलोम्ये नातोऽकर्म कर्माभावं यथाभावमिव वृक्षेषु यः पश्येत् अकर्मणि च कार्य्यकरणव्यापारोपरमे कर्मवत् आत्मन्यध्यारोपिते तूष्णीमकुर्वन् सुखमासे इत्यहङ्काराभिसन्धिहेतुत्वात्तस्मिन् अकर्मणि च कर्म यः पश्येत् य एवं कर्माकर्मविभागज्ञःस बुद्धिमान् पण्डितो मनुष्येषु स युक्तो योगी कृत्स्नकर्मकृच्च सोऽशुभान्मोक्षितः कृतकृत्यो भवतीत्यर्थः ।

अयं श्लोकोन्यथा व्याख्यातः कैश्चित् कथं नित्यानां किल कर्मणामीश्वरार्थेऽनुष्ठीयमानानां तत्फलाभावादकर्माणि तान्युच्यन्ते गौण्यावृत्त्यातेषाञ्चाकरणमकर्म तच्च प्रत्यवायफलत्वात् कर्मोच्यते गौण्यैव वृत्त्या तत्रानित्ये कर्म्मणि अकर्म्म यः पश्येत् फलाभावाद् यथा धेनुरापि गौरगौरुच्यते क्षीराख्यं फलं न प्रयच्छतीति तद्वत् तथा नित्याकरणे कर्मणित्वकर्म्म यः पश्येत् नरकादि प्रत्यवायफलं प्रयच्छतीति नैतत् युक्तं व्याख्यानमेवं ज्ञानादशुभान्मोक्षानुपपत्तेर्यत् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभादितिभगवतोक्तं वचनंबाध्येतकथं नित्यानामनुष्ठानादशुभात्स्यान्नाम मोक्षणं नतुतेषांफलाभावज्ञानान्नहिनित्यानां फलाभावज्ञानमशुभमुक्तिफलत्वेन चोदितं नित्यकर्म ज्ञानंवानिच भगवतैवेहोक्तं एतेनाकर्म्मणिकर्म्मदर्शनं प्रत्युक्तं नह्यकर्म्मणिकर्म्मेति दर्शनं कर्त्तव्यतयेह चोद्यतेनित्यस्य तु कर्त्तव्यतामात्रं नचाकरणान्नित्यस्य प्रत्यवायो भवतीतिविज्ञानात् किञ्चित्फलंस्यान्नापि नित्याकरणं ज्ञेयत्वेन चोदितं नापि कर्म्माकर्म्मेति मिथ्यादर्शनादशुभान्मोक्षणं नच बुद्धिमत्त्वं युक्तता कृत्स्नकर्म्मकृत्त्वादि च फलमुपपद्यते स्तुतिर्वा मिथ्याज्ञानमेव हि साक्षादशुभरूपं कुतोऽन्यस्मादशुभान्मोक्षणं नहि तमस्तमसोनिवर्त्तकं भवति ननु कर्म्मणि चाकर्म्म दर्शनं अकर्मणि वा कर्म्मदर्शनं न तत् मिथ्याज्ञानं किं तर्हि गौणं फलभावाभावनिमित्तं न कर्म्माकर्म्मविज्ञानादपि गौणात् फलस्याश्रवणान्नापि श्रुतहान्यश्रुतपरिकल्पनया कश्चिद्विशेषोलभ्यते स्वशब्देनापि शक्यं वक्तुं नित्यकर्मणां फलं नास्त्यकरणाच्च तेषां नरकपातः स्यादिति तत्रव्याजेन परव्यामोहरूपेण कर्मण्यकर्म यः पश्येदित्यादिना किं तत्रैवं व्याचक्षणेन भगवतोक्तं वाक्यं लोकव्यामोहार्थमितिव्यक्तं कल्पितं स्यान्नचैतच्छद्मरूपेण वाक्येन रक्षणीयं वस्तु नापि शब्दान्तरेणपुनः पुनरुच्यमानंवस्तुत्व सुबोध्यंस्यादित्येवं वक्तुं युक्तं कर्मण्येवाधिकारस्त इत्यत्र हि स्फुटतर उक्तोऽर्थो न पुनर्वक्त

व्योभवति सर्वत्र च प्रशस्तं सुवोद्धव्यञ्च कर्त्तव्यमेव न निष्प्रयोजनं वोद्धव्यमित्युच्यते नच मिथ्याज्ञानं बोद्धव्यं भवति तत्प्रत्युपस्थापितञ्चावस्थाभासं नापि निरानामकरणादभावात् प्रत्यवायोत्पत्तिर्नासतो विद्यते भाव इति वचनात् कथमसतः सज्जायेतेति च दर्शितं असतः सज्जन्मप्रतिषेधात् असतः सदुत्पत्तिं ब्रुवता असदेव सद्भवेत् सच्चाप्यसद्भवेदित्युक्तं स्यात् तच्चाप्ययुक्तं सत्र प्रमाणविरोधान्नच निष्फलं विदध्यात् कर्मशास्त्रं दुःखस्य च बुद्धिपूर्वकतया कार्य्यत्वानुपपत्तेः तदकरणे च नरकपाताभ्युपगमे अनर्थायैवोभयथापि करणे अकरणे च शास्त्रं निष्फलं कल्पित स्यात् स्वभ्युपगमविरोधश्च नित्यं निष्फलं कर्मेत्यभ्युपगम्यते मोक्षफलायेति ब्रुवतः तस्माद्यथाश्रुत एवार्थः कर्मण्य कर्मइत्यादेस्तथाच व्याख्यातोऽस्माभिः श्लोकः ॥ १८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

उत्तरश्लोकमाकांक्षापूर्वकमुपादत्ते किं पुनरिति प्रथमपादस्याक्षरोत्थमर्थं कथयति कर्मणीत्यादिना द्वितीयपादस्यापि शब्दप्रकाशितमर्थं निर्दिशति अकर्मणि चेति कर्माभावे यः कर्मपश्यतीति सम्बन्धः प्रवृत्तेरेव कर्मत्वान्निवृत्तेस्तदभावत्वात्तत्र कथं कर्मदर्शनमित्याशङ्क्य द्वयोरपि कारकाधीनत्वेनाविशेषमभिप्रेत्याह कर्तृतन्त्रत्वादिति प्रवृत्ताविव निवृत्तावपि कर्मदर्शनमविरुद्धमिति शेषः ननु निवृत्तेर्वस्त्वधीनत्वात् कारकनिबन्धनाभावान्न तत्र कर्मदर्शनं युज्यते तत्राह वस्त्विति क्रियाकारकफलव्यवहारस्य सर्वस्याविद्यावस्थायामेव प्रवृत्तत्वाद्वस्तुसंस्पर्शशून्यत्वात् प्रवृत्ताविव निवृत्तावपि यः कर्म पश्यति स मनुष्येषु बुद्धिमानिति सम्बन्धः कर्मण्यकर्म अकर्मणि च कर्म पश्यतोबुद्धिमत्वं युक्तं समस्त कर्म कृतञ्च कथमित्याशङ्क्याह इति स्तूयत इति श्लोकस्य शब्दोत्थेर्थे दर्शिते तात्पर्य्यार्थापरिज्ञानान्मिथोऽविरोधं शङ्कते नन्विति कथमिदं विरुद्धमित्याशङ्क्याह कर्मणीति विषयसप्तमी वा स्यादधिकरणसप्तमी वेति विकल्प्याद्येऽन्याकारं ज्ञानमन्यावलम्बनमिति स्पष्टोविरोधः स्यादित्याह नहीति अन्यस्यान्यात्मतायोगात् कर्माकर्मणोरभेदासम्भवादकर्माकारं कर्मावलम्बनं ज्ञानमयुक्तमित्यर्थः द्वितीयं दूषयति तत्रेति कर्मण्यधिकरणे ततो विरुद्धमकर्म कथमाधेयं दृष्टादृष्टमोष्ट्रेन हि कर्माकर्मणोर्मिथोविरुद्धयोराधाराधेयभावः सम्भवतीत्यर्थः विषय सप्तमीमुपेत्य सिद्धान्ती परिहरति नन्वकर्मैवेतिलोकस्य मूढदृष्टेर्विवेकवर्जितस्य परमार्थतो ब्रह्माकर्माक्रियमेव सत् भ्रान्त्या कर्मसहितं क्रियावदिव प्रतिभातीत्यक्षरार्थः परस्पराध्यासमुपेत्योक्तं तथेति यथा खल्वकर्म ब्रह्मकर्मवदुपलभ्यते तथा कर्म सक्रियमेव द्वैतमक्रिये ब्रह्मण्यधिष्ठाने संसृष्टं तद्वद्भातीत्यक्षरयोजना कर्माकर्मणोरितरेतराध्यासे सिद्धे सम्यग्दर्शनसिद्ध्यर्थं भगवतोवचनमुचितमित्याह तत्रेति यथा यदिदं रजतमिति प्रतिपन्नं तदिदानीं शुक्तिसकलं पश्येत भ्रमसिद्धरजतरूपविषयानुवादेन तदधिष्ठानं शुक्तिमात्रमुपदिश्यते तथा भ्रमसिद्धकर्माद्यात्मकविषयानुवादेन तदधिष्ठानं कर्मादिरहितं कूटस्थं ब्रह्म भगवता व्यपदिश्यते तथा च भगवद्वचनमविरुद्धमित्याह अत इति इतश्चाध्यारोपितकर्माद्यनुवादपूर्वकं तदधिष्ठानस्य कर्मादिरहितस्य निर्विशेषस्य ब्रह्मणोभगवता बोध्यमानत्वान्न तत्र विरोधाशंकावकाशो भवतीत्याह बुद्धिमत्वादीति कूटस्थात् ब्रह्मणोन्यस्य सर्वस्य मायामात्रत्वात् अन्यज्ज्ञानाद्बुद्धिमत्त्वयुक्तत्व सर्वकर्मकृतानामनुपपत्तेश्च च बुद्धिमानित्यादिना बुद्धिमत्वादिनिर्देशात् ब्रह्मज्ञानादन्यत्रानुपपत्तेः सर्वविक्रियारहितं ब्रह्मज्ञानमेव विवक्षितमित्यर्थः बोधशब्दस्य सम्यग्ज्ञाने प्रसिद्धत्वात् कर्माकर्मविकर्मणां स्वरूपं बोद्धव्यमस्तीतिवदता सम्यग्ज्ञा

नोपदेशस्य विवक्षितत्वादपि कूटस्थं ब्रह्मात्राभिप्रेतमित्याह बोद्धव्यमिति फलवचनप र्यालोचनायामपि कूटस्थं ब्रह्मात्राभिप्रेतं प्रतिभातीत्याह न चेति सम्यग्ज्ञानाधीनफल मत्र न श्रुतमित्याशङ्क्याह यत् ज्ञात्वेति अध्यारोपापवादार्थं भगवद्वचनमविरुद्ध मत्युप पादितमुपसंहरति तस्मादिति तद्विपर्ययेत्यत्र तच्छब्देन प्राणिनो गृह्यन्ते विषयसप्तमो परिग्रहेण परिहारमभिधायाधिकरणसप्तमीपक्षे दर्शितं दूषणमंगीकारेण परिहरति न चेति व्यवहर्भूमरत्रेत्युच्यते योग्यत्वे सत्यनुपलब्धेरित्यर्थः अकर्माधिकरणं कर्म न सम्भवती त्यत्र हेत्वन्तरमाह कर्माभावत्वादिति न हि तुच्छस्याधिकरणत्वं क्वचिद्दृष्टमिष्टंवेत्यर्थः निरूप्यमाणे कर्माकर्मणोरविकरणाधिकर्तव्य भावासम्भवे फलितमाह अतइति शास्त्र परिचयविरहिणामध्यारोपमुदाहरति यथेति कर्माकर्मणोरारोपितत्वमुक्तमनूद्यमानः शं कते नावति कर्म कर्मैवेत्यत्राकर्मचाकर्मैवेति द्रष्टव्यं विमतं सत्यमव्यभिचारित्वात् ब्र ह्मवदित्यर्थः तत्र कर्म तत्त्वतो नाव्यभिचारि कर्मत्वान्नौस्थस्य तटस्थवृक्षगमनवदित्य व्यभिचारित्वं कर्मण्यसिद्धमिति परिहरति तत्रेति अकर्म च तत्त्वतो नाव्यभिचारि क र्माभावत्वात् दूरप्रदेशे चैत्रमैत्रादिषु गच्छत्स्वेव चक्षुषा सन्निधान विधुरेषु दृश्यमानग त्यभावादित्याह दूर इति दूरत्वादेव विशेषतः सन्निकर्षविरहितेषु तेषु स्वरूपेण चक्षुस न्निकृष्टेषु चक्षुषागत्यभावदर्शनादिति योजना गतिरहितेषु तरुषु गति दर्शनवत् प्रकृते ब्रह्मण्यविक्रिये कर्म दर्शनं सक्रिये च द्वैतप्रपञ्चे चितिमत्सु चैत्रादिषु गत्यभावदर्शनव त् कर्माभावस्य विपरीतदर्शनं येन हेतुना सम्भवति तेन तस्य विपरीतदर्शनस्य निरश नार्थं भगवद्वचनमिति दार्ष्टान्तिकं निगमयति एवमित्यादिना ननु कर्म तदभावयोरारो पितत्वादविक्रियस्य ब्रह्मणो ज्ञानमात्राभिप्रेतं चेदव्यक्तोयमचिन्त्योऽयं न जायते म्रिय ते वेत्यादिना पौनरुक्त्यं प्राप्तं तत्रैव ब्रह्मात्मनो निर्विकारत्वस्योक्तत्वादिति तत्राह त देतदिति तदेतदात्मनि शंकितं सक्रियत्वमसकृदुक्तं प्रतिवचनमपि निर्विकारात्मवस्त्व पेक्षयात्यन्तविपरीतदर्शनं मिथ्याज्ञानं तेन भावित्वं तत् संस्कारप्रचयवत्त्वं ततोऽति शयेन मोहमापाद्यमानो लोकः श्रुतेरपि तत्त्वं विस्मृत्य पुनर्यत् किंचित् प्रसंगमापाद्य सक्रियत्वमेवात्मनश्चेदयतीति पुनः पुनस्तत्त्वभूतमुत्तरं भगवानभिधत्ते वस्तुतश्चदुर्विज्ञे यत्वात् पुनःपुनः प्रतिपादनं तत्तद् भ्रमनिराकरणार्थमुपयुज्यते तथा च नास्ति पुनरु क्तिरित्यर्थः असदुकृक्तप्रतिवचनमेवानुवदति अव्यक्तोयमिति कर्माभाव उक्त इति सम्ब न्धः उक्तस्य न जायते म्रियते वा विपश्चिदित्यादि श्रुतौ प्रकृतस्मृतावसंगत्वादिन्या येन च प्रसिद्धत्वमस्तीत्याह श्रुतीति न केवलमुक्तः कर्माभावः किन्तु सर्वकर्माणि म नसा संन्यस्येत्यादौ वक्ष्यमाणश्चेत्याह वक्ष्यमाणश्चेति ननु कर्मणां देहादिनिर्वर्तकत्वे न तत् त्रैविध्यात् कूटस्थ स्वभावस्यात्मनोऽसंगत्वात्तद्व्यापाररूपस्य कर्मणोऽप्रसिद्धत्वात् न तस्मिन् कर्मणि विपरीतस्य कर्मणो दर्शनं सिध्यतीत्याशंक्याह तस्मिन्निति कर्मैव वि परीतं तस्य दर्शनमिति यावत् अहं कर्तेत्यात्मसमानाधिकरणस्य व्यापारस्यानुभवात् कर्मभ्रमस्तावदात्मन्यत्यन्तरूढोस्तीत्यर्थः आत्मनि कर्मविभ्रमोस्तीत्यत्र हेतुमाह यत इ ति आत्मनो निःक्रियत्वे कुतस्तस्मिन् यथोक्तो विभ्रमः सम्भवेदित्याशंक्याहदेहेति इ दानीमात्मन्यकर्मभ्रममुदाहरति तथेत्यादिना यथासुक्तौ स्वाभाविकमरूप्यत्वं रूप्यत्व मारोपितं तदभावोप्यारोपपक्षपाती तथात्मनोपि स्वाभाविकमविक्रियत्वं पुनरध्यस्तं तद भावत्वात् कर्माभावोप्यध्यस्त एवेति मन्वानः सन्नुपसंहरति तत्रेदमिति आत्मनि कर्मा दिविभ्रमे लौकिके सिद्धे सति एवं कर्मणीत्यादिवचनं तत्परिहारार्थं भगवानुक्तवानित्य

र्थः सम्प्रत्युक्तोऽर्थे श्लोकाक्षरसमन्वयं दर्शयितुं कर्मणीत्यादि व्याचिख्यासुः भूमिकां क
रोति अत्रचेति व्यवहारभूमौ कार्यकारणाधिकरणं कर्म स्वेनैव रूपेण व्यवस्थितं सदात्म
न्यविक्रिये कार्यकरणारोपणद्वारेण सर्वैरारोपितमित्यत्र हेतुमाह यत इति अविवेकिना
न्तु कर्तृत्वाभिमानः सुतरामिति वक्तुमपिशब्दः आत्मनि कर्मरहिते कर्मारोपे दृष्टान्त
माह नदीति एवमात्मनि कर्मारोपमुपपाद्य प्रथमपादं व्याचष्टे अतइति आरोपवशादा
त्मनिष्ठत्वेन कर्मणि सर्वलोकप्रसिद्धे कर्माभावं यः पश्येत् स बुद्धिमानिति सम्बन्धः अ
कर्मदर्शनस्य यथाभूतत्वं सम्यक्त्वं तत्र दृष्टान्तमाह गत्यभावमिवेति द्वितीयपादं व्या
करोति अकर्मणि चेति अध्यारोपमभिनयति तूष्णीमिति अकर्मणि कर्मदर्शने युक्तिमाह
अहंकारेति पूर्वार्द्धेनोक्तमनूद्योत्तरार्द्धं विभजते य एवमिति आत्मनि कार्यकरणसंघात
समारोपद्वारेण तद्व्यापारमात्रे कर्मणि शुक्तिकायामिव रजतमारोपिते विषये तदभाव
मकर्मवस्तुतोयोरजताभाववदनुभवति अकर्मणि च संघातव्यापारोपरमे तद्द्वारा स्वात्म
न्यहं तूष्णीमासे सुखमित्यारोपिते गोचरे कर्माहंकारहेतुकं यस्तत्वतोमन्यते सच यद
भावविभावहीनशुक्तिमात्रवदात्ममात्रं कर्म तदभावविभागशून्यं कूटस्थं परमार्थतोव
गच्छन् बुद्धिमानित्यादि स्तुतियोग्यताम् गच्छतीत्येवं स्वाभिप्रायेण श्लोकं व्याख्याय अ
त्र वृत्तिकारव्याख्यानमुत्थापयति अयमिति अन्यथा व्याख्यानमेव प्रश्नद्वारा प्रकटयति
कथमित्यादिना ईश्वरार्थेनानुष्ठाने फलाभाववचनं व्याहतमिति मत्वाह किलेति नित्या
नामकर्मत्वमप्रसिद्धमित्याशंक्य फलराहित्यगुणयोगात्तेष्वकर्मत्वव्यवहारः सिध्यतीत्याह
गौणेति नित्यानामकरणं मुख्यवृत्त्यैवाकर्मशब्दवाच्यमित्याह तेषांचेति तत्र कर्मशब्द
स्य प्रत्यवायाख्यफलहेतुत्वं गुणयोगात् गौण्येव वृत्त्या प्रवृत्तिरित्याह तच्चेति पातनि
कामेवं कृत्वा श्लोकाक्षराणि व्याचष्टे तत्रेत्यादिना अकर्मणिचेत्यादिव्याकरोति तथेति
स बुद्धिमानित्यादि पूर्ववत् परकीयं व्याख्यानं व्युदस्यति नैतदिति नित्यं कर्माकर्मनि
त्याकरणं कर्मेति ज्ञानात् दुरितनिवृत्त्यनुपपत्तेर्भगवद्वचनं वृत्तिकारमते बाधितं स्या
दित्यर्थः धर्मेण पापमपनुदतीति श्रुतेर्नित्यनुष्ठानात्। दुरितनिवर्हणप्रसिद्धेस्तदनुष्ठानस्य
फलान्तराभावात् तदकर्मेति ज्ञात्वानुष्ठाने क्रियमाणे कथमशुभक्षयो नेति शंकते कथ
मिति क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमामतेति स्मरणात् कर्मणात्यन्तिकाशुभक्षयाभावे
प्यंगीकृत्य परिहरतिनित्यानामिति नित्यानुष्ठानादशुभक्षयेऽपिनास्मिन् प्रकरणे तद्विवक्षि
तं यत् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभादिति ज्ञानादशुभक्षयस्य प्रतिज्ञानत्वान्नच तज्ज्ञानफलाभा
वविषयमेषितव्यमित्याह नत्विति अशुभस्य फलाभावाज्ञानकार्यत्वाभावात् न फलाभा
वज्ञानात्क्षयः सिध्यतीत्यर्थः किंचातीन्द्रियोर्थः शास्त्रान्निश्चीयते नच नित्यकर्मणां फला
भावज्ञानादशुभनिवृत्तिरित्यत्र शास्त्रमस्तीत्याह नहीति नित्याकरणं कर्मेतिज्ञानमपि ना
शुभनिवृत्तिफलत्वेन चोदितमस्तीत्याह नित्यकर्मेति भगवद्वचनमेवात्र प्रमाणमित्याश
ङ्क्याह नचेति साधारणमेव यत् ज्ञात्वेत्यादि भगवतो वचनं नतु नित्यानां फलाभावं ज्ञा
त्वेति विशेषविषयमित्यर्थः अशुभमोक्षणासम्भवप्रदर्शनेन कर्मण्यकर्मदर्शननिराकरणन्या
येनाकर्मणि कर्मदर्शनं निराकरोति एतेनेति नामादिषु फलाय ब्रह्मदृष्टिवदकर्मण्यपि फ
लार्थं कर्मदृष्टिविधानाच्चाशुभमोक्षणानुपपत्तिरित्याशङ्क्याह नहीति अत्र हि श्लोके नित्य
स्य कर्तव्यतामात्रं परमते विवक्षितमतश्चाकर्मणि कर्मणि कर्मदर्शनं विधीयते तत् फ
लायेति कल्पनापरस्य सिद्धान्तविरुद्धेत्याह नित्यस्यात्विति परमतेपि नित्यस्य कर्त्तव्यमा
त्रमत्र श्लोके न विवक्षितं किन्तु नित्यानुष्ठाने प्रवृत्तिसिद्ध्यर्थं नित्याकरणात् प्रत्यवा

यो भवतीति ज्ञानमपि कर्त्तव्यत्वेनात्र विवक्षितमेवेत्याशंक्याह नचेति न तावत् प्रवृत्ति रस्य विज्ञानस्य फलं नियोगादेव तदुपपत्तेर्नापि फलान्तरमनुपलम्भादतोऽफलत्वादकरणात् प्रत्यवायो भवतीति ज्ञानं नात्र कर्त्तव्यत्वेन विवक्षितमित्यर्थः किञ्चाकरणे कर्म दृष्टिविधावकरणस्यालम्बनत्वेन प्रधानत्वात् ज्ञेयत्वं वक्तव्यं तच्च तुच्छत्वादनुपपन्नमित्याह नापीति अकरणस्याऽसतो नामादिवदाश्रयत्वेन दर्शनासम्भवेपि सामानाधिकरण्येनेदं रजतमितिवद्दर्शनं भविष्यतीत्याशंक्याह नापि कर्मेति आदिशब्देन सर्व्वोत्कर्षादि गृह्यते फलवत्त्वं स्तुतिर्व्वा सम्यग् ज्ञानस्य युक्तं न मिथ्याज्ञानस्यानुपपत्तेरित्यर्थः स्वप्ने मिथ्याज्ञानमपि फलवदुपलब्धमित्याशङ्क्य मिथ्याज्ञानस्याशुभाविरोधित्वान्न तस्मात् तन्निवृत्तिरित्याह मिथ्याज्ञानमेवेति अशुभादेवाशुभनिवृत्तौ दृष्टान्तेनाह नहीति अविवेकपूर्वकमिदं रजतमिति सदसतोः सामानाधिकरण्यात् मिथ्याज्ञानं युक्तं कर्माकर्मणोस्तद्विवेकेन भासतो सामानाधिकरण्याधीनं ज्ञानं सिंहदेवदत्तयोरिव गौणं न मिथ्याज्ञानं इति शंकते नन्विति कर्माकर्मेति दर्शने फलाभावो गुणः अकर्म कर्मेति दर्शने तु फलाभावो गुणस्तन्निमित्तमिदं ज्ञानं गौणमित्याह फलेति यथोक्तज्ञानस्य गौणत्वेऽपि प्रामाणिकफलाभावापन्न तद्गौणतोचितेति दूषयति नेत्यादिना कर्माकर्मेति दर्शने फलाभावो गुणः अकर्मकर्मेति दर्शने तु फलाभावो गुणस्तन्निमित्तमिदं ज्ञानं गौणमित्याह फलेति यथोक्तज्ञानस्य गौणत्वेऽपि प्रामाणिकफलाभावापन्नतद्गौणतोचितेति दूषयति नेत्यादिना कर्माकर्मेत्यादि गौणविज्ञानोपन्यासव्याजेन नित्यकर्मकर्त्तव्यतया विवक्षितत्वाद्गौणज्ञानस्याफलत्वमदूषणमित्याशङ्क्याह नापीति ज्ञानादशुभमोक्षणस्य श्रुतस्य हानिरश्रुतस्य नित्यानुष्ठानस्य कल्पनेत्यनेन व्यापारगौरवेण न कश्चिद्विशेषः सिध्यतीत्यर्थः उक्तमेव प्रपञ्चयति स्वशब्देनेति नरकपातः स्यादतो विधेरेवानुष्ठेयानि तानीतिशेषः यथोक्तवाचकशब्दप्रयोगादेवापेक्षितार्थसिद्धिसम्भवे भगवतोव्याजवचनकल्पनमनुचितमित्याह तत्रेति प्रकृते श्लोके वृत्तिकृतां व्याख्यानेन परमाप्तस्यैवभगवतो विप्रलम्भकत्वमापादितमिति तदीयं व्याख्यानमुपेक्षितव्यमिति फलितमाह तत्रैवमिति नित्यकर्मानुष्ठानसिद्ध्यर्थं व्याजरूपमिति भगवद्वचनमुचितमित्याशङ्क्य स्वशब्देनापीत्यादि प्रागुक्तपरिपाट्यापि तदनुष्ठानबोधनसम्भवान्मैवमित्याह नचैतदिति वस्तुशब्देननित्यकर्मानुष्ठानमुच्यते यथात्म प्रतिपादनं सुबोधत्वसिद्ध्यर्थं पौनःपुन्येन क्रियते तथा नित्यानामपि कर्मणामनुष्ठानं कर्मण्यकर्मेत्यादि शब्दान्तरेणोच्यमानं सुबोधं स्यादिति भगवतः शब्दान्तरं युक्तमित्याशङ्क्य तस्य नित्यानुष्ठानवाचकत्वाभावान्मैवमित्याह नापीति किञ्च पूर्वमेव नित्यानुष्ठानस्य स्पष्टमुपदिष्टत्वान्न तस्य सुबोधनार्थं शब्दान्तरमपेक्षितमित्याह कर्मण्येवेति कर्माकर्मादिविज्ञानव्याजेन नित्यकर्मानुष्ठानकर्तव्यतायां तात्पर्य्यं मित्येतन्निराकृत्य कर्माकर्मादिदर्शनं गौणमिति पक्षे दूषणान्तरमाह सर्वत्र चेतिलोके वेदे च यथा प्रशस्तं देवतादि तत्त्वं यच्च कर्तव्यमनुष्ठानार्हमग्निहोत्रादि तदेव बोद्धव्यमित्युच्यते न निष्फलं काकदन्तादिकर्मण्यकर्मदर्शनम् अकर्मणि च कर्मदर्शनं गौणत्वादेवाप्रशस्तमकर्तव्यञ्च नातस्तद्बोद्धव्यमिति वचनमर्हतीत्यर्थः किञ्चकर्म देर्मायामात्रत्व द्गौणमपि तद्विषयं ज्ञानं मिथ्याज्ञानमिति न तस्य बोद्धव्यत्वसिद्धिरित्याह न चेति मिथ्याज्ञानस्य बोद्धव्यत्वाभावेऽपि तद्विषयस्य बोद्धव्यता सिध्येदित्याशङ्क्य वस्तुभासत्वान्मैवमित्याह तत्प्रत्युपस्थापितञ्चेतियत् पुनरकरणस्य प्रत्यवायहेतुत्वम् अकरणे गौण्यावृत्त्या कर्मशब्दप्रयोगे निमित्तमिति तद्दूषयति नापीति अकरणात् प्रत्यवायो भवतीत्यत्र श्रुतिस्मृतिविरोधमभिधाय युक्तिविरोध

मभिदधाति असत इति असतः सद्रूपेण भवनमभवनञ्च निःस्वरूपत्वादनुपपन्नं निरस्तसमस्ततत्त्वस्य किञ्चित् तत्त्वाभ्युपगमे सर्वप्रमाणानामप्रामाण्यप्रसंगादित्याह तच्चेतियत् नित्यानां फलराहित्यं तत्राकर्मशब्दप्रयोगे निमित्तमितितन्निरस्यति नचेतिनकेवलं विध्युद्देशेस्वफलाभावान्नित्यानां विध्यनुपपत्तिरपितु धात्वर्थस्य क्लेशात्मकत्वात् तत्र श्रुतफलभावे नैव विधिरवकाशमासादयेदित्याह दुःखेति दुःखरूपस्यापि धात्वर्थस्य साध्यत्वेन कार्यत्वात् तद्विषयो विधिः स्यादिति चेन्नेत्याह दुःखस्य चेति स्वर्गादिफलाभावेऽपि नित्यानामकरणनिमित्तनिरयनिवासार्थं दुःखरूपाणामपि स्यादनुष्ठेयत्वमित्याशङ्क्याह तदकरणे चेति फलान्तराभावेऽपि मोक्षसाधनत्वात् मुमुक्षुणा नित्यानि कर्माणि अनुष्ठेयानि इत्याशङ्क्याह स्वाभ्युपगमेति वृत्तिकारव्याख्यानासम्भवे फलितमुपसंहरति तस्मादिति कोऽसौ यथा श्रुतोऽर्थः श्लोकस्येत्याशङ्क्याह तथाचेति ॥ १८ ॥

स्वामिकृतटीका।

मनुष्येषु कर्मकुर्वाणेषु स एव बुद्धिमान् व्यवसायात्मकबुद्धिमत्त्वाच्छ्रेष्ठः तं प्रस्तौ ति स युक्तो योगी तेन कर्मणा ज्ञानयोगावाप्तेः स एव कृत्स्नकर्मकर्त्ता च सर्वतः संप्लुतोदकस्थानीये च तस्मिन् कर्मणि सर्वकर्मफलानामन्तर्भावात् तदेवमारुरुक्षोः कर्मयोगाधिकारावस्थायां न कर्मणामनारम्भादित्यादिनोक्तः एव कर्मयोगः स्पष्टीकृतस्तत्प्रपंचरूपत्वान्नास्य प्रकरणस्य न पौनरुक्त्यदोषः अनेनैव योगरूढावस्थायां यस्त्वात्मरतिरेवस्यादित्यादिना यः कर्मानुपयोगउक्तस्तस्याप्यर्थात् प्रपंचकृतोवेदित्यव्यः तदारुरुक्षोरपि कर्म बन्धकं न भवति तदारूढस्य कुतो बन्धकं स्यादित्यत्रापि श्लोकोयुज्यते यद्वा कर्मणि देहेन्द्रियादिव्यापारे वर्त्तमानेऽप्यात्मनो देहादिव्यतिरेकानुभवेन अकर्म स्वाभाविकं नैष्कर्म्यमेव यः पश्येत् तथा अकर्मणि च ज्ञानरहिते दुःखबुद्ध्या कर्मणांत्यागे कर्म यः पश्येत्तस्य प्रयत्नसाध्यत्वेन मिथ्याचारत्वात् तदुक्तं कर्मेन्द्रियाणि संयम्येत्यादिना य एवं भूतः स तु सर्वेषु मनुष्येषु बुद्धिमान् पण्डितः तत्र हेतुर्यतः कृत्स्नानि सर्वाणि यदृच्छया प्राप्तानि आहारादीनि कर्माणि कुर्वन्नपि स युक्त एव अकर्त्रात्मज्ञानेन समाधिस्थ एवेत्यर्थः अनेनैव ज्ञानिनः स्वभावादापन्नं फलंच भक्षणादिकं न दोषाय अज्ञस्य तु रागतः कृतं दोषायेति विकर्मणोऽपि तत्त्वं निरूपितं द्रष्टव्यम् ॥ १८ ॥

नवलभाष्य।

अब कौनसा कर्मादिकों का तत्त्वयथार्थ स्वरूपजानिबे योग्य है जिसकी भगवान्ने प्रतिज्ञा कीथी कि मैं कहताहूं तो इसआकांक्षा में कहते हैं कि [कर्मणीति] हे अर्जुन कर्मजो व्यापारमात्र देहेन्द्रियादिकों की चेष्टा तिसमें जो अकर्मको देखताहै अर्थात् कर्मके अभावको जो देखता है और अकर्मजो कर्मका नहीं करना अर्थात् मौनहोके स्थितरहना तिसमें जो प्रवृत्ति निवृत्तिको कर्त्ताके आधीन होनेसे और आत्मरूप वस्तुको बिनाही प्राप्तहुए सब क्रियाकारकादि व्यवहार अविद्यावस्थाहीमें है इस हेतुसे जो कर्म देखताहै अर्थात् देहेन्द्रियादिकों का व्यापाररूप जो कर्म तिसमें तो जो परमार्थ दृष्टिसे असंग आत्मस्वरूपमें कर्मके असंभवसे और देहेन्द्रियादिकोंका स्वरूप तो अविद्या कल्पितहोनेसे वास्तवमें है नहींतो उनका कर्म

कैसे संभवहोता है इसप्रकारसे जो अकर्म देखता है और जो अज्ञपुरुषों की दृष्टिमें अकर्म है कर्मका नहीं करना तिसमें निवृत्तिकोभी कर्त्ताके व्यापारहीसे उत्पन्नहोनेसे कर्म देखता है सो मनुष्योंमें बुद्धिमान् है और युक्त नामयोगी है और सबकर्मोंका करनेवालाहै अर्थात् कृतकृत्यहै सोइसप्रकारकर्ममें अकर्म देखनेवाला और अकर्ममें कर्म देखनेवाला स्तुतकियाजाताहै अबयहां यह आशंका होतीहै कि कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्मदेखताहै यह विरुद्धकथनकहा जाताहै क्योंकि कर्मकभी अकर्मनहीं होता और अकर्म कर्मनहीं होसक्ता फिर देखनेवाला कर्ममें अकर्म औरअकर्ममें कर्मको विरोध होनेसे कैसे देखसक्ताहै तहांसिद्धान्ती कहताहै किपरमार्थदशामें अकर्म जो ब्रह्महै सोई मूढ़ दृष्टि पुरुषको अध्यासवशसे अर्थात् भ्रान्तिसे कर्मवत् क्रिया युक्तसा प्रतीत होरहाहै तहां भगवान्भी जैसासिद्ध अर्थहै तैसाही कहतेहैं [कर्मण्यकर्मयः पश्येदित्यादि] कि कर्मके बिषे अर्थात् क्रियायुक्तमें क्रिया रहित जो ब्रह्मतिसको देखै यहभगवान्का कथन ऐसेहै जैसे किसीको प्रथमतो सीपी में भ्रान्तिकरके चांदीकी बुद्धिहुई फिर किसी जानने वालेने कहा कि यह सीपीही है चांदी नहीं है तैसे यहांभी प्रथमअज्ञपुरुष को ब्रह्महीमें भ्रान्तिवश से कर्मयुक्त जगत्की प्रतीतिहुई फिर उसीकर्म युक्त पदार्थमें भ्रमदूरकरने को भगवान्ने उपदेश किया कि कर्ममें क्रियायुक्तमें अकर्म जो क्रियारहित ब्रह्म तिसीको देखै तौ यह भगवान्का कहना यथार्थहीहुआ कुछ विरुद्धनहीं है और इसीसे बुद्धिमत्त्वादि फलभी सिद्धहुआ अर्थात् जो ऐसे दर्शनकाफल भगवान्ने कहाहै कि ऐसे देखनेवाला पुरुष मनुष्यों में बुद्धिमान् होताहै सो यथार्थ सत्य कथनमेंही सिद्धहोसक्ताहै विरुद्धकथनमें नहींबनसक्ता और जो भगवान् ने प्रतिज्ञाकी थी कि कर्मादिकोंका तत्त्व परमार्थस्वरूप बोद्धव्यहै जानबेयोग्य है यहभी यथार्थज्ञानके उपदेशको ही सूचनकरताहै और जो भगवान् ने कहा कि हे अर्जुन जिसको जानके अशुभसंसारसे छूटजायगा सोभी यथार्थज्ञानकेउपदेशही में सम्भवहोसक्ता और जो विपरीत विरुद्धज्ञानका भगवान् उपदेश करते तौ नहींबनसक्ताहै तिससे कर्म औ अकर्म ये उलटीतरहसे अज्ञमनुष्योंने प्रथम जानरक्खेथे तिसविपरीतताके दूरकरनेको और यथार्थज्ञानके लिये यह भगवान् का वचन है कि [कर्मण्यकर्मयःपश्येदित्यादि] क्रियायुक्त जगत्में निष्क्रिय अर्थात् क्रियारहित ब्रह्मकोदेखै और यहां जैसे कूंड़ेमेबेरहैं तैसे कर्ममें अकर्म औअकर्ममें कर्महै ऐसा अधिकरण आधेयभावकरके जो अर्थ सो तो ठीकनहीं है क्योंकि अकर्मको कर्माभावरूपत्वहै इससे अर्थात् भाव और अभावइनदोनों का जबपरस्पर विरोधहै तोजहां कर्मका अभावहै नामनहींहोना उसमें भावरूप कर्मकैसे रहिसक्ताहै ऐसेही भावरूप जो कर्महै उसके विद्यमान दशामें अभावरूप अकर्मकैसे रहिसक्ताहै औरजहां आधार आधेयभाव करके संबन्धहोताहै तहां दोनों पदार्थोंकी प्रतीतिहो-

र्ताहै जैसेकहा कि पात्रमें घृतहै तो यहांपात्र आधारहै और घृतआधेयहै परन्तुदोनों की भिन्नभिन्न प्रतीति होतीहै पात्रभी कोई वस्तुहै औरउसमें रहनेवाला घृतभी कोई पदार्थहै ऐसीप्रतीति होतीहै और जो घृतके आतेही पात्रनष्ट होजाय फिरपात्रमें घृतहै ऐसा कोई कहिसकाहै तैसेही कर्ममें जो उसके स्वरूपका नाशकरने वाला अकर्मआके स्थितहुआ तो अकर्मयही व्यवहाररहा और कर्मयह व्यवहारनष्ट होगया तो कर्ममें स्थित अकर्मको देखताहै यहअर्थ कैसेसंभव होताहै ऐसेही अभावरूप अकर्मउसमें भावरूप कर्मकी स्थिति कैसे संभव होतीहै और जो उसमें भावरूप कर्मस्थित है ऐसी प्रतीति होय तो अकर्म यहव्यवहारही नष्टहोजाय तिससे औपश्लेषिक अधिकरण दोनोंभावरूप पदार्थहोयं तहांही होताहै भावाभाव पदार्थोंका नहींहोता इससे विषयसप्तमीही करके जो अर्थ निर्दोषहै सो प्रतिपादन किया जाताहै कि लौकिक मनुष्योंने कर्म और अकर्म येबिपरीतही ग्रहणकियेथे जैसे मृग तृष्णामें जल और सीपी में चांदी भ्रान्तिही से सत्य कीनाईं प्रतीतहोवै तैसेही भ्रान्त पुरुषोंने कर्म अकर्मादि व्यवहारभी सत्य हीमानरक्खाथा नकहो कोई तो कर्मादियुक्त जगत्को सत्यमानके ऐसा कहतेहैं कि कर्म कर्महीं सदासबको प्रतीत होताहै कभीव्यभिचार को प्राप्तनहींहोता अर्थात् सबकी दृष्टिमें जैसा कुछकर्मका स्वरूप है वैसाही बनारहता है यहनहीं कि कर्मकभी अकर्मरूपसे प्रतीत होय और अकर्म कर्मरूपसे सो यह उनका कथन असंगतहै अर्थात् मिथ्याहै क्योंकि जबनौकामें कोई पुरुषबैठा और नौकाजबचलती है तबनदीके तटके वृक्षवास्तव में चलतेनहीं हैं और कितने मनुष्योंको यहप्रतीति होतीहै कि वृक्षभीचलतेहैं और चलनेवाले दूरस्थ मनुष्योंमें यहप्रतीत होताहै कि जेचलते नहीं हैं किन्तु खड़े हैं ऐसी प्रतीति होतीहै और वास्तवमें तो वे चलतेहीहैं तो फिरसबकी दृष्टिमें कर्मकास्वरूप एकसाकहांरहा कदाचित् कहो भ्रान्तिकर के ऐसाजाना तो भ्रान्तिभी बुद्धिहीका कर्महै उसमेंभी व्यभिचारहै किसी को भ्रान्ति होतीहै और किसीको नहीं ऐसे यहांभी परमार्थमें कर्मरहित हीआत्माहै तिसमें मैंकरताहूं यहमिथ्याही प्रतीति होरहीहै और कर्मयुक्त में भी नेत्रकी दृष्टिसे दूरस्थितमनुष्यमें अकर्म देखनाभी प्रसिद्धहै और आप हीजिस समयमें मौनहोके बैठताहै तो कहताहै किमैं इससमयमें कुछनहीं करताहूं सो भी झूंठही कहताहै क्योंकि बाहरकी इन्द्रियोंसे नहीं कियातो मनसे तो कुछबिचारादि करहीरहाहै तो कर्ममें अकर्मका देखना उसविपरीतदर्शीको सिद्ध हुआ तो जिसकारणसे ऐसा विपरीतदर्शन अर्थात् उलटा देखना इसअज्ञपुरुषको होरहा है तिस विपरीतदर्शनरूप दोषके दूरकरने को भगवान् कहतेहैं कि जो कर्ममें भी आत्माको अकर्म कर्मरहितही देखताहै यद्यपि यहआत्मज्ञान अर्जुनके प्रश्नके प्रसंगसे प्रत्युत्तर द्वाराभगवान् ने बारम्बार कहाभी है तोभी अत्यन्त विपरीतदर्शनकी भावनाकरके बारं

बार मोहकोप्राप्त होनेवाला जो मनुष्य सो बारम्बार कहाहुआ भी जो तत्त्वहै तिसको भूलकरके झूठेप्रसंगोंको डालके बारम्बार पूछता है इससे भगवान्भी कृपाकरके परमात्मरूप वस्तुकी दुर्ज्ञेयताको विचारके अर्थात् परमात्मस्वरूप का जानना बड़ामुशकिल है ऐसाजानके बारम्बार उत्तर कहतेहैं और दयालुताके वशसे यहनहीं अपने मनमें लाते कि इसप्रसंग को हमकईबार अर्जुनसे कहिचुके हैं और उसीको यह बारम्बार पूछता है तो उसकी उपेक्षाकरदेना चाहिये किन्तु प्रीतिपूर्वक उसको कहतेही हैं इसीसे [अव्यक्तोयमचिन्त्योयं नजायतेम्रियतेइत्यादि] यहआत्माअव्यक्तहै अर्थात् अप्रकटहै और अचिन्त्य है और नकभी उत्पन्नहोता है और नकभी मरताहै ऐसे पूर्वोक्तश्लोकों में श्रुतिस्मृति न्यायप्रसिद्ध आत्मा में विकारोंका अभावकहा और अगाड़ी कहेंगे भी फिर तिस आत्मामें कर्मका अभावहोत सन्ते कर्मरहित आत्मामें विपरीतदर्शन अत्यन्तास्थित होरहा है जिससे इसीसे कहा क्याकर्महै क्याअकर्म है इसमें पण्डितलोगभी मोहकोप्राप्त होरहेहैं और इसीसे यहमनुष्यलोक आत्मामें देहादिकोंमें होने वाला कर्मका आरोपण करके मैंकरताहूं मेरायह कर्महै मुझको इसकर्मका फल अवश्य भोगनाहै और कोई तो ऐसा कहताहै किमैं मौनहोताहूं सब क्लेशोंको त्यागकरके कर्मरहितहुआ सुखीहोउंगा इसप्रकार वाह्यकर्मेन्द्रियोंके व्यापाररूप कर्मकी निवृत्तिजोहै सोईहुआ कर्मतिसकर्मको आत्मामें आरोपण करके और सुखित्वधर्म आत्मामें आरोपण करके मैं कुछ नहीं करताहूं और मौनहोके सुखपूर्वक स्थितहूं ऐसा अभिमान करताहै तहां यहलोकके विपरीत दर्शनका दूरकरनेको भगवान् उपदेश करतेहैं कि [कर्मण्यकर्मयःपश्येदित्यादि] अबइस श्लोकका जो वास्तव निश्चित अर्थहै तिसको कहतेहैं कि यहां कर्मशब्द करके जो प्रसिद्धदेहेन्द्रियों का व्यापार उसीका ग्रहणहै जोकि कर्मरहित और विकाररहित आत्मामें सबअज्ञमनुष्योंने आरोपण कररक्खाहै जिस अध्यासरूप मिथ्या आरोपणसे पण्डित भी ऐसा अभिमान कररहाहै कि मैं कर्मकरताहूं इसप्रकार आत्माके संबन्धकरके अर्थात् आत्माहीमें प्रतीयमान जो सकललोकप्रसिद्ध देहेन्द्रियादिव्यापाररूप कर्मतिसके होनेमें भी जैसेकोई नौकाके ऊपर स्थितबुद्धिमानपुरुष नौकाके चलनेमें नदीके किनारेके वृक्षोंमें गतिका अभाव अपनी बुद्धिके निश्चयसे देखताहै अर्थात् और अज्ञपुरुषोंको नौकाके चलने में किनारे के वृक्षोंकाभी चलना प्रतीत होता है और वहबुद्धिमान् पुरुष तो अपनीबुद्धिसे यहनिश्चय करके जानताहै कि नौकाही चलतीहै वृक्षनहीं चलतेहैं तैसेही जो विवेकी पुरुषआत्मामें कर्मका अभावही देखताहै अर्थात् वह विवेकी पुरुषअपनी विवेकवती बुद्धिके निश्चयसे यहजाने कियहव्यापाररूप कर्म अन्तःकरण सहितदेह इन्द्रियोंकाही है आत्मा तो क्रियारहितअविक्रिय निर्मल असंग शुद्धज्ञान स्वरूपही है और कर्मके सदृशआत्मा

में आरोपण कीगई जो वाह्यकर्मेन्द्रियों के व्यापारकी निवृत्ति अर्थात् मैं इससमयमें मौनहुआ कुछनहीं करता सुखपूर्वक बैठाहूं ऐसा जो अहंकारकरके मानना वोहीहुआ अकर्म तिसअकर्ममें जो विवेकी पुरुष कर्म देखताहै क्योंकि जोयत्न विशेषसे देहेन्द्रियादि व्यापारका उपरमकिया है वहभी कारकाधीन होनेसे अर्थात् कारकजे इन्द्रियादिक तिनके आधीन होनेसे कर्महीहै जैसे अहंकारकरके कर्मका आरोप आत्मामेंथा वैसेही अब अहंकारकरके उपरमका आरोप आत्मामेंहुआ अहंकारका व्यापारदोनों जगहसमानही रहा जो कदाचित् अहंकारका त्यागहोता तो अवश्य अकर्म होजाता है सो तोहुआही नहीं इससे यहभी कर्महीहै इसप्रकार मौनहोके स्थित होनेमें जो कर्म अकर्म विभागका जाननेवाला पुरुष कर्मको देखता है सोमनुष्योंमें बुद्धिमानहै अर्थात् पण्डितहै और वहीयुक्तहै अर्थात् योगी है और सबकर्म करनेवाला है अर्थात् कृतकृत्य है और वहअशुभ संसारसे मुक्तहै ॥ और इसश्लोकका व्याख्यान और किसी पुरुषोंने तो अन्यथाही कियाहै अर्थात् जैसे अर्थ कहि आये हैं तिससे विपरीत औरही प्रकारसे कियाहै सो कैसे कियाहै उसीप्रकारको कहते हैं कि जे सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म ईश्वरके आराधनके लिये कियेजाते हैं उनकाफल विशेषनहीं होताहै इसकारणसे गौणीवृत्तिकरके वे अकर्मकहेजाते हैं और गौणीवृत्ति उसकोकहतेहैं जहां और अर्थको कहनेवाला शव्द गुणोंकेदर्शनसे औरही अर्थकोकहे जैसे (सिंहोमाणवकः) यह माणवक अर्थात् लड़का सिंहहै ऐसा जब किसीने कहा तो यद्यपि सिंहशव्द मुख्यवृत्तिकरके सिंहजातिमें उत्पन्नहुआ जो प्राणी तिसीको कहताहै तौ भी सिंहके क्रूरताआदि गुण जब किसीबालकमें दिखलाईपड़तेहैं तब उन क्रौर्यआदि गुणोंके देखने के कारणसे सिंहशव्द उसबालकको कहताहै इसको गौणी वृत्तिकहते हैं तैसे ही अकर्म में जैसे फल नहींहोता तैसेही उसईश्वराराधनार्थ नित्यकर्म में भी कुछफल नहींहुआ तौ वह अकर्मही कहाताहै तैसेही उसनित्यकर्मका नहींकरना जोहै अकर्म सोभी गौणवृत्तिकरके कर्मको कहताहै अर्थात् जैसे लोकमें कर्मबन्धकहोताहै तैसेही नित्यकर्मका नहींकरना जो है सो भी नरकादिकों का देनेवाला है इससे कर्महीकहाजाताहै तो अब वृत्तिकारादिकोंके मतमें इसश्लोकका यहअर्थ हुआ कि जो पुरुष कर्ममें अर्थात् सन्ध्योपासनादि रूप नित्यकर्म के बिषे अकर्म देखताहै अर्थात् फलकाअभाव देखताहै जैसे लोकमें है तो गौ और जो दूधनहींदेतीहोय तौ अगौ कहातीहै अर्थात् गौ नहींकहाती तैसे वह नित्यकर्म भी अकर्मकहाता है और अकर्म में जो कर्मदेखताहै अर्थात् नित्यकर्मके नहींकरने में जो कर्म देखताहै नामनरकादि प्रत्यवाय फलको यह देनेवालाहै ऐसादेखताहै ऐसा जो व्याख्यान उन वृत्तिकारादिकोंने कियाहै सो यहव्याख्यान युक्तनहीं है अर्थात् असंगतहै क्योंकि ऐसेज्ञानसे अशुभ संसारसे मोक्षनहींहो सक्ता है

और भगवान्ने कहाहै कि जिसको जानके तू अशुभसंसारबन्धनसे छूटजायगा तो यह भगवान् का वचनही इसव्याख्यानमें बाधितहोजायगा कैसे नित्यकर्मोंके अनुष्ठानसे और उनमें फल नहींहोताहै ऐसे ज्ञानसे मोक्ष होना सम्भवहोताहै और न कहीं वेदादिकों में ऐसाकहा कि नित्यकर्मों के फलोंका नहींजानना जो है सो मुक्तिफलको देता अथवा नित्यकर्मकाज्ञान जो है सो मोक्षको देइ ऐसाभी नहीं कहीं कहा और न भगवान् ने ऐसा यहां कहीं गीतामेंही कहा कि नित्यकर्मोंके ज्ञानसे मुक्ति होतीहै और इसी रीतिसे विहित नित्यकर्मोंके नहींकरने में कर्मके देखने से मुक्तिहोगी यह भी शंकादूरहुई और अकर्म में कर्मदेखाकरै ऐसाविधानभी कहीं नहींकिया है और नित्यकर्मकी तो कर्तव्यतामात्र की विधिहै और नित्यकर्मके नहीं करनेसे प्रत्यवाय होताहै अर्थात् दोषहोताहै इसज्ञानसे तो कुछ फलहोता नहीं और नित्यकर्मका नहीं करनाभी जाननाचाहिये ऐसा कहीं विधान नहींकिया और यहकर्म है और यह अकर्म ऐसे मिथ्याज्ञान से अशुभ से मोक्षभी नहीं सम्भवहोताहै और न ऐसेज्ञानसे बुद्धिमत्ता और न योगीहोना और न सम्पूर्ण कर्मकरचुकाहै यहफल सम्भवहोताहै और न स्तुति सम्भवहोतीहै और जो आपही मिथ्याज्ञान अशुभरूपहै तो वह और अशुभसे कैसे छुड़ासक्ता है और नहीं कहीं अन्धकार अन्धकारको दूरकरसक्ता ऐसे झूंठाज्ञानभी और झूंठेज्ञानको कैसे दूरकरसक्ता है न कहो कर्ममें जो अकर्मका देखना और अकर्ममें जो कर्मकादेखनाहै सो झूंठाज्ञाननहींहै क्या तो ईश्वराराधनरूप नित्यकर्म में फलाभावरूप गुणके दर्शनसे अकर्मकाजो देखनाहै सो गौणज्ञानहै और फलकेअभावका कारणहै ऐसेही नित्यकर्मके नहींकरनेमें बन्धनरूपगुणके दर्शनसे कर्मकाजो देखनाहै सोभी गौणज्ञानहै और बन्धनरूप फलमें निमित्तहै तो इसकथनमें भी गौण जो कर्माकर्मका ज्ञान तिससे मोक्षरूपफल कहीं नहीं सुननेमें आताहै तो फिर पूर्वोक्तदोष तो वैसाहीरहा कदाचित् कहो मोक्षरूपफल नहीं है तो नित्यकर्म प्रवृत्ति रूपही फलरहो तो फिर तुम्हारे अर्थमें जो साक्षात् मोक्षरूपफल भगवान्ने कहाथा तिसकी हानिकरके नित्यकर्मकी प्रवृत्ति कल्पनासे कौनविशेषफल प्राप्तहोता है और जो ऐसाही अर्थ भगवान्को अभीष्ट होता तो अपने मुखसे साक्षात् ऐसाहीशब्दकहते कि हेअर्जुन नित्यकर्मोंकाफल नहींहोता है और इनके नहींकरनेमें नरकहोताहै फिर औरोंकी बुद्धि व्यामोहकरने को छलकरके भगवान् ने क्यों कहा कि कर्ममें अकर्मको देखै औ अकर्ममें कर्मको देखै अर्थात् ऐसेकहने में नित्यकर्मोंका फल नहींहै और नित्यकर्मोंके नहींकरनेसे नरकपातहोगा यहअर्थ बड़ीकाठिनतासे निकलैगा तो औरोंको बुद्धिको मोहकराना और जिसमें औरभी अर्थसम्भवहोय ऐसे संदेहयुक्तवाक्यके कहनेमें छलभी भगवान्का प्रकटकल्पितहोगा और ऐसेछल के वचनकरके नित्यकर्मके अनुष्ठानकी रक्षाभी अनुचितहै और आत्मज्ञान

जैसे किसीकी बुद्धिमें सहजनहीं प्रवेशकरता इससे भगवान् अनेकशब्दों से अनेकप्रकारसे बारम्बार बोधनकरते हैं तैसे नित्यकर्ममें प्रवृत्तिभी दुर्बोधथी इससे ऐसाकहाहोय सो भी नहीं बनसक्ताहै क्योंकि [कर्मण्येवाधिकारस्ते] हे अर्जुन तेरानिष्कामकर्महीमें अधिकारहै यहप्रथम कहिआयेथे उसीसे सबको स्पष्टप्रतीत होगईथी फिर उसके कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं और अपना नित्यकर्म सभी जानसक्तेहैं कुछ आत्मज्ञानके तुल्य दुर्बोधनहीं जिसको अनेक शब्दोंसे बारम्बार बोधकराना उचितहोय औरएक यहभी कारण है कि वेदमें सबजगह जो श्रेष्ठता करके वस्तुनिरूपण कीगई है जैसे देवता औअग्निहोत्रादि वोही जाननेके योग्यहै और अनुष्ठान करने योग्यभीहै और निष्प्रयोजन वस्तुकहीं जानने योग्यनहीं होसक्ती है अर्थात् भगवान्ने यहतौ प्रतिज्ञाकी कि कर्मादिकोंका तत्त्वसत्यस्वरूप ऐसा कठिनहै किजिसमें पण्डितभी मोहको प्राप्तहोतेहैं और जिसकेजाननेसे सबबंधनसे छूटताहै ऐसीप्रतिज्ञा करके जो [कर्मण्यकर्म] इत्यादिश्लोकभगवान्ने कहा उसकाअर्थ जो नित्यकर्ममें फलको नहीं देखना इसरीतिका कियाजावै तौ भगवान् कीप्रतिज्ञासे विरुद्धहीहोय क्योंकि नित्यकर्ममें फलका नहींदेखना न तौ जाननेयोग्यहै और न अनुष्ठानकरनेयोग्य है और न इसकेजाननेसे संसारबन्धन से कोई छूटसक्ताहै और भगवान् प्रतिज्ञावाक्यमें यहकहते हैं कि हे अर्जुन जानबे योग्य तत्त्वको मैं कहताहूं नहीं कहीं झूंठाज्ञान जाननेयोग्य होसक्ताहै क्योंकि जबकर्मादिकोंको माया मात्रत्वहै तौ तिनका गौणज्ञानभी झूंठाहीहै और उसज्ञानकरके बोधित जो कर्मादिक सो भी आभासमात्र मिथ्याही हैं और जोकहा नित्यकर्मोंके नहींकरनेसे प्रत्यवाय अमितनरककी उत्पत्तिहोतीहै सोभीअसंगतहै क्योंकि असत् जो मिथ्याभूत तिसकाभावनहीं है ऐसा द्वितीयाध्यायमें कहिआये हैं और [कथमसतःसज्जायेत] कैसे असत्से सत्वस्तु उत्पन्नहोय यहश्रुति में कहाहै तौ नित्यकर्मोंका नहींकरना हुआ अभाव अर्थात् असत् तिससे नरकवासरूप भावपदार्थ कैसे उत्पन्नहोसक्ताहै क्योंकि असत्से सत्पदार्थ के जन्मका प्रतिषेध है और जो कदाचित् असत्से सत् होता है ऐसाकोई कहै तौ उसके मतमें असत् तौ सत् होजायगा और सत् असत् होजायगा सो तौ बड़ाअयुक्त है जिससे सर्व शास्त्रोक्तप्रमाणोंसे विरुद्ध और युक्तिसेभी विरुद्धहै और जो कहा कि नित्यकर्मोंसे कोई फलनहींहोता सोभी असंगतहै क्योंकि नित्यकर्मोंका भी शास्त्रहीसे विधानहै जो नित्यकर्म्म करनेसे किसीफलके सिद्धिनहोती तौ निष्प्रयोजन कर्मोंको शास्त्र किसवास्ते विधानकरता अर्थात् जिस जिस पदार्थका शास्त्रने विधानकिया है उसका किसीप्रयोजनही से विधानकियाहै और निरर्थक कोईनहीं विधानकियाहै और जो नित्यकर्मका कोईफल नहींमानोगे तौ निरवकाश जो विधिशास्त्र सो दुःखरूपही फलकी कल्पनाकरैगा और दुःखरूपफलको जानकरकेकोई

नहीं उत्पन्नकरनेमें यत्नकरैगा और जब क्या नित्यकर्मके नहींकरने में तुम्हारी नरकपातकी प्रतिज्ञाहै अर्थात् नित्यकर्मके न करनेमें नरकपात होताहीहै ऐसा तुम कहिचुकेहौ और करनेमें भी कुछ फल नहींमानते तौ फिर दुःखही गलेमें पतितहुआ इसप्रकार नित्यकर्मके करनेमें और नहीं करने में जब दुःख ही की प्राप्ति हुई तौ तुम्हारे मत में शास्त्रभी निरर्थकही होजायगा और तुम्हारी प्रतिज्ञासे भी विरोधहोगा क्योंकि यह तुम्हारीप्रतिज्ञाहै कि नित्यकर्म निष्फलहै और यहभीकहतेहौकि मोक्षफलके लियेहै तौ यह दोनोंतरहका कथनकैसे बनसक्ताहै क्योंकि जब नित्यकर्म का मोक्षरूपफल कहतेहौ तौ निष्फलकैसे होसक्ता है और जो निष्फल कहौ तौ मोक्षरूपफल नहीं सम्भवहोता यही परस्पर विरुद्ध कथनहुआ तिससे जैसा अर्थ हमने पूर्वकहाहै वही निर्दोषहै इसप्रकार [कर्मण्यकर्म] इत्यादि श्लोकका व्याख्यान समाप्तहुआ ॥ १८ ॥

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

तदेतत् कर्मण्यकर्मादि दर्शनं स्तूयते यस्येति यस्य यथोक्तदर्शिनः सर्वे यावन्तः समारम्भाः सर्वाणि कर्माणि समारभ्यन्ते इति समारंभाः कामसङ्कल्पवर्जिताः कामैस्तत्कारणैश्च सङ्कल्पैर्वर्जिताः मुधैव चेष्टमात्रा अनुष्ठीयन्ते प्रवृत्तेन चेल्लोकसंग्रहार्थंनिवृत्ते नचेत् जीवनमात्रार्थं तंज्ञानाग्निदग्धकर्माणं कर्मादावकर्मादिदर्शनं ज्ञानं तदेवाग्निस्तेन ज्ञानाग्निना दग्धानि शुभाशुभ लक्षणानि कर्माणि यस्य तमाहुः परमार्थतः पण्डितं बुधाः ब्रह्मविदः ॥ १९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

कर्मण्यकर्मदर्शनं पूर्वोक्तं स्तोतुमुत्तरश्लोकं प्रस्तौति तदेतदिति यथोक्तदर्शित्वं पूर्वोक्तदर्शनसम्पन्नत्वं समारम्भशब्दस्य कर्मविषयत्वं न रूढ्या किन्तु व्युत्पत्त्येत्याह समारभ्यन्त इतीति कामसंकल्पवर्जितत्वे कथं कर्मणामनुष्ठानमित्याशंक्याह मुधैवेति उद्दृश फलाभावे तेषामनुष्ठानं यादृच्छिकं स्यादित्याशंक्य प्रवृत्तेन निवृत्तेन वा तेषामनुष्ठानं यादृच्छिकं स्यादितिविकल्प्य क्रमेण निरस्यति प्रवृत्तेनेत्यादिना ज्ञानाग्नीत्यादि विभजते कर्मादाविति यथोक्तज्ञानं योग्यमेव दहति नायोग्यमिति विवक्षितत्वात्तस्मिन्नग्निपदं यथोक्तविज्ञानविरहिणामपि वैशेषिकादीनां पण्डितत्वाप्रसिद्धिमाशंक्य तेषां पण्डिताभासत्वं विवक्षित्वा विशिनष्टि परमार्थत इति ॥ १९ ॥

स्वामिकृतटीका ।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदित्यनेन श्रुत्यर्थार्थापत्तिभ्यां यदुक्तमर्थद्वयं तदेव स्पष्टयति यस्येति पंचभिः सम्यगारभ्यन्त इति समारम्भाः कर्माणि काम्यत इति कामः फलं तत्संकल्पेन वर्जिता यस्य भवन्ति तं पण्डितमाहुः अत्र हेतुर्यतस्तैः समारम्भैः शुद्धे चित्ते सति जातेन ज्ञानाग्निना दग्धानि अकर्मतां नीतानि कर्माणि यस्य तं आरूढ़ावस्थायां तु कामः फलहेतुविषयः तदर्थमिदं कर्तव्यमिति कर्तव्य विषयः संकल्पस्ताभ्यां वर्जिता शेषं स्पष्टम् ॥ १९ ॥

नवलभाष्य।

अब यह पूर्वोक्त जो कर्म के बिषे जो ब्रह्मदर्शन सो स्तुतिकियाजाता है [यस्येति] हे अर्जुन जिसपुरुषके अर्थात् जिस आत्मदर्शीपुरुषके सबकर्म्म काम संकल्पकरके वर्जितहोयं अर्थात् काम जो अभिलाष और तिसके कारणजे संकल्प तिन्हेंकरके वर्जितहोयँ अर्थात् रहितहोयँ अर्थात् न तौ जिसको कर्मकरनेकी कामनाहै और न इसकर्मको इसरीतिसे करनाचाहिये और इसरीतिसे नहीं ऐसा मनमें संकल्पहोताहै किन्तु वृथाही चेष्टामात्र नाम हस्तपादादि चालनमात्र कियेजातेहोयँ सोभी गृहस्थहोय तौ लोकसंग्रहके अर्थ और सन्न्यस्तहोय तौ केवल जीवनमात्रकेअर्थ और कर्म्म आदिकोंमें अकर्मादिकोंका देखनाही जो पूर्वोक्तज्ञान तिसकरके दग्धनाम भस्महुएहैंशुभ अशुभकर्म जिसके तिसको ब्रह्मवित् पुरुष परमार्थसे पंडित कहते हैं ॥ १९ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्म्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः ॥ २०॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्त्वकर्मादि दर्शी सोऽकर्मादि दर्शनादेव निःकर्मा संन्यासी जीवनमात्रार्थचेष्टः सन्कर्माणि न प्रवर्त्तते यद्यपि प्राग्विवेकतः प्रवृत्तः यस्तुप्रारब्धकर्मा सन् उत्तरकालमुत्पन्नात्मसम्यग्दर्शनः स्यात् स कर्मणिप्रयोजनमपश्यन् ससाधनं कर्म परित्यजत्येव स कुतश्चिन्निमित्तात् कर्मपरित्यागासम्भवे सति कर्मणि तत्फले च सङ्गरहिततया स्वप्रयोजनाभावाल्लोकसंग्रहार्थं पूर्ववत् कर्मणि प्रवृत्तोपि नैव किञ्चित् करोति ज्ञानाग्निदग्धकर्मत्वात् तदीयं कर्माकर्मैव सम्पद्यत इत्येतदर्थं दर्शयिष्यन्नाह त्यक्त्वेति त्यक्त्वा कर्मस्वभिमानं फलासंगञ्च यथोक्ते ज्ञाने नित्यतृप्तो निराकाङ्क्षो विषयेष्वित्यर्थो निराश्रय आश्रयरहित आश्रयो नाम यदाश्रित्य पुरुषार्थं सिसाधयिष्यति दृष्टादृष्ट फलसाधनाश्रयरहित इत्यर्थः तेनैवम्भूतेन स्वप्रयोजनाभावात् ससाधनं कर्मपरित्यक्तव्यमेवेति प्राप्ते ततो निर्गमासम्भावात् लोकसंग्रहचिकीर्षया शिष्टविगर्हणापरिजिहीर्षया वा पूर्ववत् कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि निःक्रियात्मदर्शन सम्पन्नत्वान्नैव किञ्चित्करोति सः ॥ २० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

विवेकात् पूर्वं कर्मणि प्रवृत्तावपि सति विवेके तत्र न प्रवृत्तिरित्याशंक्यांगीकरोति यस्त्विति विवेकात्पूर्वमभिनिवेशेन प्रवृत्तस्य विवेकानन्तरमभिनिवेशाभावात् प्रवृत्त्यसम्भवेऽपि जीवनमात्रमुद्दिश्य प्रवृत्त्याभासः सम्भवतीत्यर्थः सत्यपि विवेके तत् साक्षात्कारानुदयात् कर्मणि प्रवृत्तस्य कथं तत्त्यागः स्यादित्याशंक्याह यस्तु प्रारब्धेति त्यक्त्वेत्यादि समनन्तरश्लोकमवतारयितुम् भूमिकां कृत्वा तदवतारणप्रकारं दर्शयति स कुतश्चिदिति लोकसंग्रहादिनिमित्तं कर्मपरित्यागासम्भवे सति तस्मिन् प्रवृत्तोपि नैव करोति किञ्चिदिति सम्बन्धः कर्मणि प्रवृत्तो न करोति कर्मेति कथमुच्यते तत्राह स्वप्रयोजनाभावादिति कथं तर्हि कर्मणि प्रवर्तते तत्राह लोकेति प्रवृत्तेरर्थं क्रियाकारित्वाभावं पश्वादिभिश्चाविशेषादितिन्यायेन व्यावर्तयति पूर्ववदिति कथं तर्हि विवेकिनामवि

वेकिनांच विशेष: स्यादित्याशङ्क्य कर्मादौ संगासंगाभ्यामित्याह कर्मणीति उक्तेर्थे सम नन्तरश्लोकमवतारयति ज्ञानाग्नीति एतमर्थं दर्शयिष्यन्निमं श्लोकमाहेति योजना यथोक्तं ज्ञानं कूटस्थात्मदर्शनं तेन स्वरूपभूतं सुखं साक्षादनुभूय कर्मणि तत् फलेच संगमपास्य विषयपुनिरपेक्षश्चेति विद्वानित्याह त्यक्त्वेत्यादि इष्टसाधनमपेक्षस्य कुतो निरपेक्षत्वमित्याशङ्क्य विशिनष्टि निराश्रय इति यदाश्रित्येति यच्छब्देन फलसाधनमुच्यते आश्रयरहितं इत्यस्यार्थं स्पष्टयति दृष्टेतितेन ज्ञानवता पुरुषेणैवम्भूतेत्यक्त्वाकर्मफलासंगमित्यादिना विशेषितेनेत्यर्थ: तत: समाधानात् कर्मण: सकाशादिति यावत् निर्गमासंभवे हेतुमाह लोकेत्यादिना पूर्ववत् ज्ञानोदयात् प्रागवस्थायामिवेत्यर्थमभिप्रवृत्तोपि लोकदृष्ट्येति शेष: नैव करोति किञ्चिदिति स्वदृष्ट्येति द्रष्टव्यम् ॥ २० ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च त्यक्त्वेति कर्मणि तत्फलेच सक्तिं त्यक्त्वानिजानन्देन तृप्त: अतएव योगक्षेमार्थमाश्रयणीय रहित: एवंभूतो य: स्वाभाविके विहिते वा कर्मणि अभित: प्रवृत्तोऽपि किञ्चिदपि नैव करोति तस्य कर्म अकर्मतामापद्यत इत्यर्थ: ॥ २० ॥

नवलभाष्य।

अब जो अकर्मादिकोंका देखनेवाला ज्ञानीहै सो अकर्मादिकोंके देखनेहीसे सब कर्मोंको त्यागकरके संन्यासीहोके जीवनमात्रहीके अर्थ चेष्टाकरताहुआ यद्यपि विवेकके पूर्व प्रवृत्तभीथा परन्तु विवेकज्ञानके अनन्तर फिर नहीं प्रवृत्तहोता और जो तो प्रथमकर्मको करताहुआ और फिर उत्तरकालमें उत्पन्नहुआ है सम्यक् आत्मज्ञान जिसको ऐसाहोके फिरकर्ममें प्रयोजनको नहींदेखताहुआ साधनसहित कर्मको परित्यागकरके भी फिर किसी कारणसे कर्मके परित्यागका असम्भवहोनेमें कर्ममें और तिसकेफलमें संगरहितहोनेसे अपने प्रयोजनके अभावसे लोकसंग्रहके अर्थ पहिलेके नाईं कर्ममें प्रवृत्तभीहै परन्तु कुछनहीं करताहै क्योंकि ज्ञानरूपअग्निकरके उसका कर्म भस्महोगयाहै इसकारणसे तो उसकाकर्म अकर्मभावहीकोप्राप्त होताहै इसअर्थकोदिखातेहुए भगवान् कहतेहैं [त्यक्त्वेति] हे अर्जुन कर्म फलासंगको त्यागकरके अर्थात् कर्म में मैं करताहूं ऐसे अभिमानको त्याग करके और उसकेफलमें आसक्तिको त्यागकरके और ज्ञानमें नित्य तृप्त अर्थात् विषयोंमें आकांक्षारहितहुआ और निराश्रयनाम आश्रयरहित अर्थात् आश्रय उसको कहते हैं कि जिसका आश्रयकरके फलके सिद्धकरने की इच्छाकरै ऐसा जो दृष्टनाम देखनेमें जो आवै धनमित्रादि और अदृष्ट कहिये संस्कार देवाराधनादि फलोंका साधन तिसके आश्रयकरके रहित हुआ तबजब ऐसाहुआ तो अपना तो कुछकर्म करके प्रयोजनरहाहीनहीं तो सबकर्मोंका परित्यागकी योग्यताके प्राप्तहोनेमें किसीहेतुसे उससे निकलके असंभवसे लोकसंग्रहकी इच्छाकरके अथवा श्रेष्ठपुरुषोंकी निन्दाके परित्यागकी इच्छाकरके पहिलेकेनाईं कर्ममें प्रवृत्तभीहुआ है परन्तुनिष्क्रियआत्माके देखनेसे वहकुछ नहीं करताहै ॥ २० ॥

निराशी यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ २१॥

शङ्करभाष्यम्।

यः पुनः पूर्वोक्तविपरीतः प्रागेव कर्मारम्भाद् ब्रह्मणि सर्वान्तरे प्रत्यगात्मनि निष्क्रिये सञ्जातात्मदर्शनः स दृष्टादृष्टेष्टविषयाशीर्विवर्जिततया दृष्टादृष्टार्थे कर्मणि प्रयोजनमपश्यन् ससाधनं कर्म संन्यस्य शरीरयात्रामात्रचेष्टो यतिर्ज्ञाननिष्ठो मुच्यत इत्येतमर्थं दर्शयितुमाह निराशीरिति निराशी र्निर्गताः आशिषो यस्मात् स निराशीः यतचित्तात्मा चित्तमन्तः करणमात्मा बाह्यः कार्य्यकरणसंघातस्तावुभावपि यतौ संयतौ येन सयतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः त्यक्तः सर्वः परिग्रहो येन स त्यक्तसर्वपरिग्रहः शारीरं शरीरस्थितिमात्रप्रयोजनं केवलं कर्म तत्राप्यभिमानवर्जितं कर्म कुर्वन्नाप्नोति न प्राप्नोति किल्बिषमनिष्टरूपं पापं धर्मञ्च धर्मोऽपिमुमुक्षोरनिष्टरूपत्वात् किल्बिषमेवबन्धापादकत्वात् किञ्च शारीरं केवलं कर्मेत्यत्र किं शरीरनिर्वर्त्त्यं शारीरंकर्म्माभिप्रेतमाहोस्विच्छरीरस्थितिमात्रप्रयोजनं शारीरं कर्मेति किञ्चातो यदिशरीरनिर्वर्त्त्यं शारीरं कर्मयदिवा शरीरस्थितिमात्रप्रयोजनं शारीरमित्युच्यतेयदा शरीरनिर्वर्त्त्यं कर्मशारीरमभिप्रेतं स्यात्तदा दृष्टादृष्टप्रयोजनं कर्मप्रतिषिद्धमपि शरीरेण कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषमिति ब्रुवतो विरुद्धाभिधानं प्रसज्जेत शास्त्रीयञ्चकर्म दृष्टादृष्टप्रयोजनंशरीरेण कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषमित्यपि ब्रुवतोऽप्राप्तप्रतिषेधप्रसंगः शारीरं कर्मकुर्वन्निति विशेषणात् केवलशब्दप्रयोगाच्च वाङ्मनसनिर्वर्त्त्यंकर्म्मविधिप्रतिषेधविषयं धर्माधर्मशब्दवाच्यं कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषमित्युक्तं स्यात् तत्रापि वाङ्मनोभ्यां विहितानुष्ठानपक्षे किल्बिषप्राप्तिवचनं विरुद्धमापद्येत प्रतिषिद्धसेवापक्षेऽपि भूतार्थानुवादमात्रमनर्थकं स्यात् यदा तु शरीरस्थितिमात्रप्रयोजनं शारीरं कर्माभिप्रेतं भवेत्तदा दृष्टादृष्टप्रयोजनं कर्म विधिप्रतिषेधशास्त्रगम्यं शरीरवाङ्मनोनिर्वर्त्त्यं अन्यदकुर्वंस्तैरेव शरीरादिभिः शरीरस्थितिमात्रप्रयोजनं केवलशब्दप्रयोगादहं करोमीत्यभिमानवर्जितः शरीरादि चेष्टामात्रं लोकदृष्ट्या कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषमेवम्भूतस्य पापशब्दवाच्य किल्बिषप्राप्त्यसम्भवात् किल्बिषं संसारं नाप्नोति ज्ञानाग्निदग्धसर्वकर्मत्वादप्रतिबन्धेन मुच्यत एवेति पूर्वोक्तसम्यग्दर्शनफलानुवाद एवैषः एवं शारीरं केवलं कर्मेत्यस्यार्थस्य परिग्रहे निरवद्यं भवति॥ २१॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

बाह्य इति द्वयोः संयमने सत्यर्थसिद्धमर्थमाह त्यक्त्वेतिसर्वपरिग्रहपरित्यागे देहस्थितिरपि दुःस्थास्यादित्याशङ्क्याह शरीरमिति मात्रशब्देन पौनरुक्त्यादनर्थकं केवलं पदमित्याशङ्क्याह तत्रापीति शरीरं केवलमित्यादौ शरीरपदार्थं स्फुटीकर्त्तुमुभयथा सम्भावनया विकल्पयति शारीरमिति शरीरनिर्वर्त्यं शारीरमित्यस्मिन् पक्षे किं दूषणं शरीरस्थितिमात्रं शारीरमित्यस्मिन् वा पक्षे किं फलमिति पूर्ववादी पृच्छति किञ्चात इति शरीरनिर्वर्त्यं शारीरमित्यस्मिन् पक्षे सिद्धान्ती दूषणमाह उच्यत इति शरीरेण यन्निर्वर्त्यं विहितंवा प्रथमे विरोधः स्यादित्याह यदीति प्रतिषिद्धाचरणेऽपि नानिष्टप्राप्तिरित्युक्ते प्रतिषेधशास्त्रविरोधः स्यादित्यर्थः द्वितीये विहितकरणे सत्यनिष्टप्राप्त्यभावादप्राप्तप्रतिषेधः स्यादित्याह शास्त्रीयञ्चेति दृष्टप्रयोजनं शारीर्यादिकं कर्मादृष्टप्रयोजनं स्वर्गसाधनं ज्योतिष्टोमादिकं कर्मेतिविभागः शरीरनिर्वर्त्यं कर्म शारीरमभिमतमिति पक्षे दूषणान्तरमाह शारीरमिति वाचा मनसा चाकर्मणोऽनुष्ठाने संन्यासिनो भवत्येव किल्बिषप्राप्तिरित्याशंक्याह तत्रापीति वाङ्मनोभ्यां विहितानुष्ठाने वा प्रतिषिद्धकरणे वा किल्बि

षप्राप्तिः सन्न्यासिनः स्यादिति विकल्पाद्ये जपध्यानविधिविरोधः स्यादित्युक्ता द्वितीयं दूषयति प्रतिषिद्धेति शरीर निर्वर्त्यं कर्म शारीरमिति पक्षमेवं प्रतिक्षिप्य द्वितीयपक्षे लाभं दर्शयति यदा त्विति अन्यदेहस्थितिप्रयोजनात् कर्मणः सकाशादिति शेषः तत्रापि विदुषः स्वदृष्ट्या न प्रवृत्तिरिति सूचयति लोकेति विद्वानुक्तयारीत्या वर्तमानोनाप्नोति कि ल्बिषमित्यत्र विवक्षितमर्थमाह एवंभूतेति विधिनिषेधगम्यं कर्म देहस्थितिहेतुव्यतिरि क्तमकुर्वन इत्यर्थः शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषमित्यस्योक्तेन प्रकारेण परिग्र हेण शारीरं केवलमितिविशेषणद्वयं निर्दोषं सिध्यतीतिफलितमाह एवमिति ॥ २१ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च निराशीरिति निर्गता आशिषः कामना यस्मात् यतं नियतं चित्तमात्माशरीरं च यस्य त्यक्ताः सर्वे परिग्रहा येन सः शरीरं शरीरमात्रनिर्वर्त्यं कर्तृत्वाभिनिवेशरहितं कर्म कुर्वन्नपि किल्बिषं बन्धं न प्राप्नोति योगारूढपक्षे शरीरनिर्वाहमात्रोपयोगि स्वाभा विकं भिक्षाटनादि कुर्वन्नपि किल्बिषं विहिताकरणनिमित्तदोषं न प्राप्नोति ॥ २१ ॥

नवलभाष्य।

और जो फिरपाहिले से विपरीत है अर्थात् जिसको लोकसंग्रहादि प्रयोजनसेभी कुछकर्म करनेकी इच्छानहीं है और कर्मके आरम्भसे पहिलेही सर्वान्तर सबके भीतर और आत्मस्वरूप और निष्क्रिय अर्थात् क्रियारहित जो ब्रह्म तिसमें उत्पन्नहुआआत्मदर्शी जिसको सो दृष्ट देखेहुये इसलोकके और अदृष्ट बिनादेखे विषयोंमें कामनाके नहीं होनेसे दृष्ट और अदृष्ट कर्मों में प्रयोजनको नहीं देखताहुआ अर्थात् भीतर बाहरके कर्मोंमें अथवा इस लोकके और परलोकके कर्मोंमें प्रयोजनको नहीं देखताहुआ साधन सहित कर्मको त्यागिकै शरीर निर्वाहमात्र कर्मकी चेष्टा करताहुआ ज्ञाननिष्ठसंन्यासी मुक्तहोताहै इसअर्थकोदिखाते हुए भगवान् कहते हैं [निराशीरिति] हे अर्जुन दूरहुई हैं सम्पूर्णकामना जिससे और वशकराहै चित्त और स्थूलशरीर जिसने और त्यागकियाहै सबपरिग्रह अर्थात् धनपुत्रदारागृहादि ग्रहणविषयपदार्थ जिसने ऐसा जो संन्यासी सो शरीर स्थितिमात्र प्रयोजन अर्थात् जिसकर्मसे केवलशरीरकी स्थितिरहै ऐसाभिक्षासनादि करता हुआ तिसमें भी अभिमान रहित कर्मकरताहुआ किल्बिष जो पाप और पुण्यइनको नहीं प्राप्तहोता है क्योंकि पुण्यसंन्यासी को बन्धहेतुहोनेसे किल्बिषही है अबयहां यहआशंका होतीहै कि शरीरकर्म करताहुआ पापको नहीं प्राप्तहोता इसकथनमें शारीर शब्दके दोअर्थ व्याकरणकी रीतिसे प्रतीत होतेहैं एकतो जो शरीरसे कियाजाय कर्म उसको शारीर कहते हैं और दूसराशरीरके निर्वाहकेलिये जो कियाजाय उसकोभी शारीर कहतेहैं तबयहां कौनसाअर्थ ग्रहणकरने को अभीष्टहै ऐसेसंदेहमें जो कदाचित् शरीर करके कियाजाता जो कर्म तिसकाग्रहण होय तो देखनेमें और नहीं देखनेमें आताहै प्रयोजन जिसका ऐसा निषिद्ध कर्मभी शरीरहीसे किया

जाताहै तो तिसको करताहुआ पापको नहीं प्राप्त होताहै इस अर्थके कहनेमें विरुद्धकथनरूप दोषप्राप्त होगा अर्थात् जैसे कोई कहै कि मेरीमाताबन्ध्याहै तो जो बन्ध्याहोय तो कहनेवाला पुत्रही नहीं बनसक्ताहै और जो पुत्रसहीहो तो बन्ध्यानहीं होसक्ती ऐसेही प्रत्यक्ष तो निषिद्धकर्मकरने से पापकररहाहै और कहतेहैं कि पापको नहीं प्राप्तहोता तो यह विरुद्धकथन हुआ औरजो शास्त्रविहित शरीर करके कियाजाय ऐसेकर्मको करताहुआ किल्बिषजो पाप तिसको नहीं प्राप्तहोता है ऐसा कहाजायतो अप्राप्तप्रतिषेधरूपदोष प्राप्तहोगा अर्थात् जबशास्त्रविहितही कर्मकिया तो पापकी प्राप्तिहीनहींहुई तो उसको निषेधकैसे बनसक्ताहै यहदोष प्राप्तहोगा और जो तो केवल शारीर कर्म करताहुआ पापको प्राप्तनहोता है इसवाक्यमें शारीर इसविशेषण के कहनेसे और केवलशब्दके कहनेसे वाणी और मनइनके जो कर्मसिद्ध होताहै और विहित अविहित धर्मअधर्म विषय जोकर्म होता है तिसका यहांग्रहण नहीं होनेसे इनकर्मोंको करताहुआ पापको प्राप्तहोताहीहै ऐसाकहाजाय तो भी जबवाणी और मनकरके उसने शास्त्रविहित हीकर्म किया तिसपक्ष में पापको प्राप्तहोता है यहकथन तुम्हारा विरुद्धही होजायगा क्योंकि विहित करनेवाले को पापका प्रसंग कैसे बनसक्ता है और जो उसने वाणी और मनकरके निषिद्धहीकर्म किया तो इसपक्षमें पापकी प्राप्ति तो सिद्धही है फिर तुम्हारा अपूर्व कथन क्याहुआ यहतो केवल कहेहीहुए अर्थका अनुवाद हुआ तो वहवचनही अनर्थक होजायगा और जवतो शरीरस्थितिमात्रहीहै प्रयोजनजिसकाअर्थात्केवलशरीरकेनिर्वाहके अर्थजो कर्महोय उसको शारीर कर्म कहतेहैं ऐसे अर्थमें जो शारीरशब्दतिसका ग्रहण अभीष्टहै तबतो देखनेमें और नहीं देखनेमें अर्थात् गुप्त औरप्रकट है प्रयोजन जिसका और विधिनिषेध शास्त्रकरके प्रतिपादन किया ऐसा जो शरीर और वाणी औरमन इनकरके करनेके योग्यजो और कर्म तिसको नहींकरताहुआ और शरीरादिकोंही करके जिसे केवल शरीर बनारहै इतना मात्रही प्रयोजन जिसका ऐसा जोशरीरचेष्टामात्रकर्म अर्थात् अभिमान रहित होनेसे केवल हाथ पाउं नेत्र वाणी इनका चलानामात्र कर्म तिसको लोकदृष्टि करके करताहुआ किल्बिषजो पाप तिसको नहीं प्राप्त होताहै वास्तवमें तो ऐसे संन्यासीको पापके लेशकी वार्ताहीक्या है इससे किल्बिषशब्द वाच्यदुःखरूप जो संसार तिसको प्राप्त नहीं होताहै क्योंकि ज्ञानरूप अग्निकरके सबकर्मोंको भस्महोने से कोई प्रतिबन्धनहीं रहा इससे मुक्तहीहोता है इससे पूर्वोक्तजो सम्यग्दर्शनरूप ज्ञानतिसके फलका अनुवाद करनेवाला यहश्लोकहै इसप्रकार [शारीरंकेवलंकर्म] इसश्लोकके अर्थके स्वीकारमें कोई दोषनहीं आसक्ताहै ॥ २१ ॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समःसिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥ २२॥

शङ्करभाष्यम्।

त्यक्तसर्वपरिग्रहस्य यतेरन्नादेः शरीरस्थितिहेतोः परिग्रहस्याभावात् याचनादिना शरीरस्थितौ कर्त्तव्यतायां प्राप्तायामयाचितमसंक्लृप्तमुपपन्नं यदृच्छयेत्यादिना वचनेनानुज्ञातंयतेः शरीरस्थितिहेतोरन्नादेः प्राप्तिद्वारमाविष्कुर्वन्नाह यदृच्छेति यदृच्छालाभसन्तुष्टोऽप्रार्थितोऽयत्नतो लाभो यदृच्छालाभस्तेन सन्तुष्टः संजातालंप्रत्ययः द्वन्द्वातीतो द्वन्द्व इह शीतोष्णादिभिः हन्यमानोविषण्णचित्तो द्वन्द्वातीत उच्यते विमत्सरो विगतमत्सरो निर्वैरबुद्धिः समस्तुल्यो यदृच्छया लाभस्यापि सिद्धावसिद्धौच य एवम्भूतो यतिरन्नादेःशरीरस्थितिहेतोः लाभालाभयोः समोपि हर्षविषादवर्ज्जितः कर्मादौ अकर्मादिदर्शी यथाभूतात्मदर्शननिष्ठः शरीरस्थितिमात्रप्रयोजने भिक्षटनादि कर्म्मणि शरीरादिनिर्वर्त्ये नैव किञ्चित् करोम्यहं गुणागुणेषु वर्त्तन्ते इत्येवं सदा सम्परिचक्षाण आत्मकर्तृत्वाभावं पश्यन्नैव किञ्चिद्भिक्षाटनादिकं कर्म्मकरोति लोकव्यवहारसामान्यदर्शनेन तु लौकिकैरारोपितकर्तृत्वे भिक्षाटनादौ कर्म्मणि कर्त्ता भवति भिक्षाटनादिचेष्टास्वपि अकर्तृत्वाद्यनुसन्धानमेव विदुषः स्वानुभवेन तु शास्त्रप्रमाणादिजनितेनाकर्त्तैव स एवं पराध्यारोपितकर्तृत्वं शरीरस्थितिमात्रप्रयोजनं भिक्षाटनादिकं कर्म्म कृत्वापि न निबध्यते बन्धहेतोः कर्म्मणः सहेतुकस्य ज्ञानाग्निना दग्धत्वादित्यनुवाद एवैषः॥ २२॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

पूर्वश्लोकेन संगतिं दर्शयन्नुत्तरश्लोकमुत्थापयति त्यक्तेति अन्नादेरित्यादिशब्देन पादुकाच्छादनादि गृह्यते याचनादिनेत्यादिपदेन सेवा कृष्याद्युपादीयते भिक्षाटनार्थमुद्योगात् प्राक्काले केनापि योग्येन निवेदितं भैक्ष्यमयाचितम् अभिशप्तं पतितञ्च वर्जयित्वा संकल्पमन्तरेण पञ्चभ्यः सप्तभ्यो वा गृहेभ्यः समानीतं भैक्ष्यमसंक्लृप्तं सिद्धमन्नं भक्तजनैः स्वसमीपमुपानीतमुपपन्नं यदृच्छया स्वकीयप्रयत्नव्यतिरेकेणेति यावत् आदिशब्देन माधुकर्यमसंक्लृप्तं प्राक् प्रणीतमयाचितं तत्कालिकोपपन्नञ्च भैक्ष्यं पञ्चविधं स्मृतमित्यादि गृह्यते आविष्कुर्वन्निदं वाक्यमाहेति योजनीयं परोत्कर्षामर्षपूर्विकायस्योत्कर्षावांछा विगता यस्मा दति व्युत्पत्तिमाश्रित्यविवक्षितमर्थमाह निर्वैरेति संक्षेपतो दर्शितमर्थं विवृणोति य एवम्भूत इति तथापि प्रकृतस्य यतेर्भिक्षाटनादौ कर्तृत्वं प्रतिभाति तदभावे भिक्षाटनाद्यभावेन जीवनाभिभावप्रसंगादित्याशंक्याह लोकेति लौकिकैरविवेकिभिः सह व्यवहारस्य स्नानाचमनभोजनादिलक्षणस्य विदुष्यपि सामान्येन दर्शनात् तदनुसारेण लौकिकैरध्यारोपितकर्तृत्वभोक्तृत्वाद्विद्वानपि लोकदृष्ट्या भिक्षाटनादौ कर्तृत्वमनुभवतीत्यर्थः कथं तर्हि तस्याकर्तृत्वं तत्राह स्वानुभवेनेति यदृच्छेत्यादिपादत्रयं व्याख्याय कृत्वापीत्यादि चतुर्थपादं व्याचष्टे स एवमिति भिक्षाटनादिना प्रातिभासिकेन कर्मणा विदुषो बद्धत्वाभावेऽपि कर्मान्तरेण निबद्धत्वं भविष्यतीत्याशङ्क्याह बन्धेति ज्ञानाग्निदग्धत्वादित्येवं शारीरं केवलमित्यादावुक्तस्यायमनुवाद इति योजना यथोक्तस्य कर्मणो युक्त्या महाविरोधाभ्युपगमसूचनार्थोऽपि शब्दः॥ २२॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च यदृच्छालाभेति अप्रार्थितोपस्थितो लाभो यदृच्छालाभस्तेन सन्तुष्टः द्वन्द्वानि शीतोष्णादीनतीतोऽतिक्रान्तस्तत् सहनशील इत्यर्थ विमत्सरो निर्वैरः यदृच्छालाभस्या

पि सिद्धावसिद्धौ च समो हर्षविषादरहितः य एवम्भूतः स पूर्वोक्तरभूमिकयोर्यथा यथा विहितं स्वाभाविकं वा कर्म कृत्वा बन्धं न प्राप्नोति ॥ २२ ॥

नवलभाष्य।

अबत्याग कियाहै सबसंग्रह जिसने ऐसा जो संन्यासी तिसकी शरीर की स्थितिमें हेतुजो अनादि परिग्रह तिसके नहीं होनेसे याचनादि करके अर्थात् मांगनेसे शरीरकी स्थितिकरना चाहिये ऐसाप्राप्तहुआ तहां संन्यासीको ऐसाभिक्षा का अन्नग्रहण करना चाहिये कि जो अयाचितहोय अर्थात् भिक्षाटन के उद्योगके पहलेही किसी श्रद्धायुक्त योग्यपुरुषने निवेदन कियाहोय असंक्लृप्त होय अर्थात् आजुइसके यहां भिक्षाकरनीहै औरकल्हि इसके यहां करनीहोगी ऐसेसंकल्पकरके रहितहोय और पांचघरोंसे वासात घरोंसे ल्याके जो भिक्षाका अन्नप्राप्त कियागयाहोय उसको असंक्लृप्तकहतेहैं तिसमें भी जिनब्राह्मणादि तीनवर्णोंके कुटुम्बियों को कोईतरहका दोष लगाहोय अथवा पतितहोयँ तिनके घरोंकोछोड़के और अच्छेघरोंसे ग्रहण करै और अन्नपकायाहुआ किसी भक्तयोग्यपुरुषने समीप प्राप्तकियाहोय उस भिक्षाकेअन्नको उपपन्नकहते हैं ऐसाअन्न सन्न्यासीको शरीरकीस्थिति के लिये ग्रहणकरनेयोग्यहै इसअर्थको प्रकटकरतेहुए भगवान् कहते हैं कि [यदृच्छेति] विना प्रार्थनाकियाहुआ और विनाजाने पुरुषसे जो लाभ है उसको यदृच्छालाभ कहते हैं उसयदृच्छालाभकरके जो सन्तुष्टहोय अर्थात् सन्तोषयुक्तहोय फिर औरकी इच्छा न करै और शीत उष्णआदि जे द्वन्द्व तिन्होंकरके ताड़ित भी होय और जिसकाचित्त विषादयुक्त न होय सो द्वन्द्वातीत कहाताहै सो होय औविमत्सरहोययानीकिसीसे जिसकीबैरबुद्धि न होय और यदृच्छाके जो लाभ अर्थात् बिनाहीयत्न आकस्मात् हुआ जो अन्नादिलाभ तिसकी सिद्धि और असिद्धिमें जो समहोय हर्षविषाद रहित होय जो इसप्रकारका सन्न्यासी कर्मादिकोंमें अकर्मआत्माका देखनेवाला और जैसाहुआ जो आत्मज्ञान तिसमें स्थित औ शरीरकी स्थितिमात्रहीहै प्रयोजन जिसका ऐसे भिक्षाटनादि कर्ममें भी शरीरकरके जो कर्महोता है तिसको मैं नहींकरताहूं किन्तु इन्द्रियांही अपने अपने विषयोंमें प्रवृत्तहोतीहैं इसप्रकार आत्मामें सदाकर्तृत्वके अभावको अर्थात् कर्त्तापनाके अभावको देखताहुआ ही जो कुछ भिक्षाटनादिकर्म करताहै और लोकव्यवहार के सामान्यदर्शनकरके तौ अर्थात् जैसाकुछ लोकमें व्यवहार होताहै तिसके देखनेसे तौ लौकिकपुरुषों ने आरोपणकियाहै कर्तृत्वधर्म जिसमें ऐसे भिक्षाटनादि कर्म में कर्त्ता होरहाहै और जिससे भिक्षाटनादि चेष्टाओंमें अर्थात् भिक्षाके लिये जो चलना फिरना तिसमें मैं कर्त्ता नहींहौं ऐसाही स्मरण बनारहता इससे शास्त्रप्रमाणसे उत्पन्नहुआजो अपना अनुभवज्ञान तिसकरके तौ वह संन्यासी अकर्त्ताही है सो इसप्रकार और पुरुषोंने आरो-

पणाकियाहै अर्थात् झूठाहीमानाहै कर्त्तापना जिसमें और शरीरकी स्थिति मात्रही प्रयोजन जिसका ऐसे भिक्षाटनादि भिक्षाके अर्थ गमनादि कर्म्म को करके भी बन्धनको प्राप्त नहींहोता है बन्धनमें हेतु जो अविद्यासहित कर्म सो ज्ञानरूप अग्निकरके भस्महोगया है इसकारणसे इसप्रकार यहभी श्लोक पूर्वोक्त ज्ञानफलका अनुवाद है ॥ २२ ॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञाया ऽचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

सक्त्वा कर्मफलासङ्गं इत्यनेन श्लोकेनयः प्रारब्धकर्म्मा सन् यदा निःक्रियब्रह्मात्मदर्शन सम्पन्नः स्यात् तदास्यात्मनः कर्तृकर्मप्रयोजनाभावदर्शिनः कर्मपरित्यागे प्राप्ते कुतश्चिन्निमित्ता त्तदसम्भवे सति पूर्ववत्तस्मिन् कर्मण्यभिप्रवृत्तोपि नैवकिञ्चित् करोति स इति च कर्माभावःप्रद र्शितः यस्यैवं कर्माभावो दर्शितस्तस्यैव गतसंगस्येति गतसङ्गस्य सर्वतोनिवृत्तासक्तेर्मुक्तस्य नि वृत्तधर्मादिबन्धनस्य ज्ञानावस्थितचेतसोज्ञाने एव अवस्थितं चेतो यस्य सोऽयं ज्ञानावस्थितचेत स्तस्ययज्ञाय यज्ञनिर्वृत्त्यर्थमाचरतो निर्वर्त्तयतः कर्म्म समग्रं सहाग्रेण कर्म्मफलेन वर्त्तते इति समग्रं कर्म्मतत्समग्रं प्रविलीयते विनश्यतीत्यर्थः ॥ २३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

गतसंगस्येत्यादिश्लोकस्य व्यवहितेन सम्बन्धं वक्तुं वृत्तं कीर्तयति त्यक्तेति अनेन श्लोकेन नैव किंचित् करोति स इत्यत्र कर्माभावप्रदर्शित इति सम्बन्धः कस्य कर्माभा वप्रदर्शनमित्याशंकायामाह प्रारब्धेति यः प्रारब्धकर्मा सन् योऽवतिष्ठते तस्य कर्माभा वः प्रदर्शितश्चेद्विरोधः स्यादित्याशङ्क्यावस्थाविशेषे तत्प्रदर्शनान्मैवमित्याह यदेति ननु ज्ञानवतः क्रियाकारकफलभावदर्शिनः कर्म परित्यागध्रौव्यात् कर्माभाववचनमप्राप्तप्रति षेधः स्यादित्याशङ्क्याह आत्मन इति लोकसंग्रहादिनिमित्तं प्रागेवोक्तमविद्यावस्थायामि व पूर्ववदित्युक्तम् एवं वृत्तमनूद्योत्तरश्लोकमवतारयति यस्येति यथोक्तस्यापि विद्यावतो मुक्तस्य भगवत् प्रीत्यर्थं कर्मानुष्ठानोपलम्भात्ततो बन्धारम्भः सम्भाव्येतेत्याशंक्याह य ज्ञायेति धर्माधर्मादीत्यादिशब्देन रागद्वेषादिसंग्रहः तस्य बन्धनत्वं कारणत्वोपपत्त्या प्र तिपत्तव्यं यज्ञनिर्वर्त्यर्थं यज्ञशब्दितस्य भगवतो विष्णोर्नारायणस्य प्रीतिसम्पत्त्यर्थमि ति यावत् ज्ञानमेव वाञ्छतो ज्ञानस्य प्रतिबन्धकं कर्म परिशंकितं परिहरति कर्मेति सम ग्रेणेत्यंगीकृत्य व्याचष्टे सहेत्यादिना ॥ २३ ॥

स्वामिकृतटीका।

किंच गतेति गतसंगस्य निःकामस्य रागादिभिर्मुक्तस्य ज्ञानेऽवस्थितं चेतो यस्य य ज्ञाय परमेश्वराराधनार्थं कर्म चरतः सतः समग्रं सवासनं कर्म प्रविलीयते अकर्म भाव मापाद्यते आरूढ़ योगपक्षे यज्ञाय यज्ञरक्षणार्थं लोकसंग्रहार्थं कर्म कुर्वत इत्यर्थः ॥ २३ ॥

नवलभाष्य।

अब [त्यक्त्वाकर्मफलासंगम्] इस पूर्वोक्त श्लोककरके जो पुरुष प्रथम तो कर्मका प्रारम्भ करताहुआ और पीछे जब निष्क्रिया क्रियारहित ब्रह्म-

रूप आत्मज्ञानको प्राप्तहोगया तब अपनाको कर्त्ता और कर्मके प्रयोजन का अभावदेखनेलगा अर्थात् अबमैं झूंठाकर्त्ता बनके कर्म कियाकरों इसमें क्याप्रयोजन सिद्धहोना है ऐसा विचारकरनेलगा तो उसको कर्मकात्याग हीप्राप्तहुआ तो भी किसीकारण से कर्मके त्यागका असम्भवहुआ तो पहिलेकी तरहकर्ममें प्रवृत्तभीहुआ परन्तु वहकुछ नहीं करताहै इसप्रकार उसको कर्मका अभाव दिखाया जिसको इसप्रकार उसश्लोकमें कर्मका अभाव दिखायागया है उसीको अब इसश्लोकमें कहतेहैं कि [गतसंगस्येति] और हेअर्जुन जो पुरुष गतसंग है अर्थात् दूरहुआ है संगनाम जगहसे आसक्ति प्रीति जिसकी और मुक्तनाम निवृत्त होगयाहै धर्मादि बन्धन जिसको और ज्ञानही में है स्थितचित्त जिसका और अगाड़ी कहे जायंगे बारहप्रकारके यज्ञतिनकी सिद्धिकेलिये कर्मको करताहुआ जोपुरुष तिसका फलसहित कर्म लीनहोजाताहै अर्थात् नाशको प्राप्तहोताहै ॥२३॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

कस्मात् पुनः कारणात् क्रियमाणं कर्म्म स्वकार्य्यारम्भमकुर्वन् समग्रं प्रविलीयत इत्युच्यते यतः ब्रह्मेति ब्रह्मार्पणं येन करणेन प्रकारेण ब्रह्मविद्धविरग्नावर्पयति तद्ब्रह्मैवेति पश्यति तस्यात्मव्यतिरेकेणाभावं पश्यति यथाशुक्तिकायां रजताभावं पश्यति तद्वदुच्यते ब्रह्मैवार्पणमिति यथायद्रजतं तच्छुक्तिकैवेति ब्रह्मार्पणमित्यसमस्ते पदेयदर्पणबुद्ध्यागृह्यते लोके तदस्यब्रह्मविद्धे ब्रह्मैवेत्यर्थः ब्रह्महविस्तथा यद्धविर्बुद्ध्या गृह्यमाणं तद्ब्रह्मैवास्य तथा ब्रह्माग्नाविति समस्तं पदमग्निरपि ब्रह्मैव यत्र हूयते ब्रह्मणा कर्त्रा ब्रह्मैव कर्त्तेत्यर्थः यत्तेन हुतं हवनक्रियापि तत् ब्रह्मैव यत्तेन गन्तव्यं फलं तदपि ब्रह्मैव ब्रह्मकर्म्मसमाधिना ब्रह्मैव कर्म्म ब्रह्मकर्म्म तस्मिन् समाधिर्यस्य स ब्रह्मकर्म्मसमाधिस्तेन ब्रह्मकर्मसमाधिना ब्रह्मैव गन्तव्यं लोकसंग्रहचिकीर्षुणापि क्रियमाणं कर्म्म परमार्थतोऽकर्म्म ब्रह्मबुद्ध्युपमृदितत्वात्तदेवं सति निवृत्तकर्म्मणोऽपि सर्वकर्मसंन्यासिनः सम्यग्दर्शनस्तुत्यर्थं यज्ञत्वसम्पादनं ज्ञानस्य सुतरामुपपद्यते यदर्पणाद्यधियज्ञे प्रसिद्धं तदस्याध्यात्मब्रह्मैव परमार्थदर्शिन इति अन्यथा सर्वस्य ब्रह्मत्वेऽर्पणादीनामेव विशेषतो ब्रह्मत्वाभिधानमनर्थकं स्यात् तस्माद् ब्रह्मैवेदं सर्वमित्यभिजानतः विदुषः सर्वकर्म्माभावः कारकबुद्ध्यभावाच्च नहि कारकबुद्धिरहितं यज्ञाख्यं कर्म्म दृष्टं सर्वमेवाग्निहोत्रादिकं कर्म्मशब्दसमार्पितदेवता विशेषसम्प्रदानादि कारकबुद्धिमत्कर्त्रभिमानफलाभिसन्धिमच्चदृष्टं नोपमृदितक्रियाकारककर्म्मफलभेदबुद्धिमत्कर्तृत्वाभिमानफलाभिसन्धिरहितञ्च इदन्तु ब्रह्मबुद्ध्युपमृदितार्पणादिकारकक्रियाफलभेदबुद्धिमत्कर्म्मातोऽकर्मैव तत् तथाच दर्शितं कर्म्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः गुणागुणेषु वर्त्तन्ते नैव किञ्चित् करोमीति युक्तोमन्येत तत्त्ववित्यादिभिस्तथा च दर्शयन् तत्रतत्र क्रियाकारकफलभेदबुद्ध्युपमर्दं करोति दृष्ट्वा च कामाग्निहोत्रादौ कामोपमर्दनकाम्यादग्निहोत्रादिहानिस्तथामतिपूर्वकत्वादीनां एवंविधेन कारकात्मनां कर्म्मणां कार्य्यविशेषस्यारब्धत्वं दृष्टं तथेहापि ब्रह्मबुद्ध्युपमृदितार्पणादि कारकक्रियाफलभेदबुद्धेर्बाह्यचेष्टामात्रेण कर्मापिविदुषोऽकर्म्म सम्पद्यतेऽत उक्तं समग्रं प्रविलीयत इति अत्र केचिदाहुर्यद्ब्रह्म तदर्पणादीनि ब्रह्मैव किलार्पणादिना पञ्चविधेन कारकात्मना व्यवस्थितं सत्तदेव कर्म्म करोति

तत्र नार्पणादिबुद्धिर्निवर्त्तते किन्त्वर्पणादिषु ब्रह्मबुद्धिराधीयते यथा प्रतिमादौ विष्ण्वादिबुद्धिर्यथाच नामादौ ब्रह्मबुद्धिरेवं सत्यमेवमपि स्याद्यतिर्ज्ञानयज्ञस्तुत्यर्थं प्रकरणं न स्यात् अत्र तु सम्यग्दर्शनं ज्ञानयज्ञशब्दितमनेकान् यज्ञशब्दितान् क्रियाविशेषानुपन्यस्य श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानज्ञ इति ज्ञानं स्तौति अत्र च समर्थमिदं वचनं ब्रह्मार्पणमित्यादि ज्ञानस्य यज्ञत्वसम्पादने अन्यथा सर्वस्य ब्रह्मत्वेऽर्पणादीनामेव विशेषतोब्रह्मत्वाभिधानमनर्थकं स्यात् येत्वर्पणादिषु प्रतिमायां विष्णुदृष्टिवत् ब्रह्मदृष्टिः क्षिप्यतेनामादिष्विव चेतिब्रुवते न तेषां ब्रह्मविद्योक्तेहादिवक्षित स्यादर्पणादि विषयत्वात् ज्ञानस्य न च दृष्टिसम्पादनज्ञानेन मोक्षफलं प्राप्यते ब्रह्मैव तेनगन्तव्यमिति चोद्यते विरुद्धञ्च सम्यग्दर्शनमन्तरेण मोक्षफलं प्राप्यत इति प्रकृतविरोधञ्च सम्यग्दर्शनञ्च प्रकृतं कर्म्मण्यकर्म्म यः पश्येदित्यत्रान्ते च सम्यग्दर्शनं तस्यैवोपसंहारात् श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तपज्ञानं लब्ध्वा परं शान्तिमित्यादिना सम्यग्दर्शनस्तुतिमेव कुर्वन्नुपक्षीणोऽध्यायः तत्राकस्मादर्पणादौ ब्रह्मदृष्टिरप्रतिमायामिव विष्णुदृष्टिरुच्यत इत्यनुपपन्नं तस्माद् यथाव्याख्यातार्थ एवायं श्लोकः ॥ २४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

नाभुक्तं चीयते कर्मेति स्मृतिमाश्रित्य शंकते कस्मादिति समस्तस्य क्रियाकारकफलात्मकस्य द्वैतस्य ब्रह्ममात्रत्वेन बाधितत्वात् ब्रह्मविदो ब्रह्ममात्रस्य कर्म प्रविलीयते सर्वमिति युक्तमित्याह उच्यत इति ब्रह्मविदो ब्रह्मैव सर्वक्रियाकारकफलजातं द्वैतमित्यत्र हेतुत्वेनानन्तरश्लोकमवतारयति यत इति अर्पणशब्दस्य करणविषयत्वं दर्शयन्नर्पणं ब्रह्मेति पदद्वयपक्षे सामानाधिकरण्यं साधयति येनेति यद्रजतं सा शुक्तिरितिवत् बाधायमिदं सामानाधिकरण्यमित्याह तस्येति तत्र दृष्टान्तमाह यथेति उक्तेऽर्थे पदद्वयमवतारयति तदुच्यत इति उक्तमेवार्थं स्पष्टयति यथा यदिति समाससंख्यां व्यावर्त्तयति ब्रह्मेति पदद्वयपक्षे विवक्षितमर्थं कथयति यदर्पणेति ब्रह्महविरिति पदद्वयमवतार्य व्याचष्टे ब्रह्मेत्यादिना यदर्पणबुद्ध्या गृह्यते तद्ब्रह्मविदो ब्रह्मवेति यथोक्तं तथेहापीत्याह तथेति अस्येति षष्ठी ब्रह्मविदमधिकरोति पूर्ववदसमासमाशङ्क्य व्यावर्तयन् पदान्तरमवतार्यव्याकरोति तथेति प्रागुक्तसमासवदिति व्यतिरेकः तत्र विवक्षितमर्थमाह अग्निरपीति ब्रह्मणेतिपदस्याभिमतमर्थमाह ब्रह्मणेति कर्त्राहूयत इति सम्बन्धः कर्त्ता ब्रह्मणः सकाशाद् व्यतिरिक्तो नास्तीत्येतदभिमतमित्याह ब्रह्मैवेति हुतमित्यस्य विवक्षितमर्थमाह यत्तेनेति ब्रह्मैव तेनेत्यादिभागं विभजते ब्रह्मैवेत्यादिना ब्रह्मकर्मेत्याद्यवतार्य व्याकरोति ब्रह्मेति कर्मत्वं ब्रह्मणो ज्ञेयत्वात् प्राप्यत्वाच्च प्रतिपत्तव्यम् एवं ब्रह्मार्पणमन्तस्य अक्षरार्थमुक्त्वा तात्पर्यार्थमाह एवमिति निवृत्तकर्माणं संन्यासिनं प्रति कथमस्य प्रवृत्तिरित्याशङ्क्याह निवृत्तेति यथा बाह्ययज्ञानुष्ठानासमर्थस्याज्ञस्य संकल्पात्मकयज्ञदृष्टस्तथा ज्ञानस्य यज्ञत्वसम्पादनं स्तुत्यर्थं सुतरामुपपद्यते तेन स्तुतिलाभात् कल्पनायाः स्वाधीनत्वाद्धेत्यर्थः ज्ञानस्य यज्ञत्वसम्पादनमित्यभिनयति यदर्पणादीति केन प्रमाणेनात्र यज्ञत्वसम्पादनमवगतमित्याशङ्क्य अर्पणादीनां विशेषतो ब्रह्मत्वाभिधानानुपपत्त्येत्याह अन्यथेति ज्ञानस्य यज्ञत्वे सम्पादिते फलितमाह तस्मादिति आत्मैवेदं सर्वमित्यात्मव्यतिरेकेण सर्वस्यावस्तुत्वं प्रतिपद्यमानस्य कर्माभावे हेत्वन्तरमाह कारकेति कारकबुद्धेस्तेष्वभिमानस्याभावेऽपि किमिति कर्म नस्यादित्याशङ्क्याह नहीति उक्तमेवान्वयव्यतिरेकाभ्यां द्रढयति सर्वमेवेति इन्द्रायेत्यादिना शब्देन समर्पितो देवताविशेषः सम्प्रदानं कारकमादिशब्दाद् ब्रह्मादिकरणकारकं तद्विषय बुद्धिमत् कर्त्ताऽस्मो

त्वाभिमानपूर्वकं मोक्षफलमस्येति फलाभिसन्धिमच्च कर्म दृष्टमिति योजना अन्वयमुक्त्वा व्यतिरेकमाह नेत्यादिना उपमृदिता क्रियादिभेदविषया बुद्धिर्यस्य तत्कर्म तथा कर्तृत्वाभिमानपूर्वको मोक्षे फलमस्येति योऽभिसन्धिस्तेन रहितंच न कर्म दृष्टमित्यन्वयः तथापि ब्रह्मविदो भासमानकर्माभावे किमायातमित्याशंक्याह इदमिति यदिदं ब्रह्मविदो दृश्यमानं कर्म तदहमस्मि ब्रह्मेतिबुद्ध्या निराकृतकारकादिभेदविषयबुद्धिमदतश्च कर्मैव न भवति तत्त्वज्ञाने सति व्यापकं कारकादिव्यावर्त्तमानं व्याप्यं कर्मापि व्यावर्त्तयति तत्त्वविदः शरीरादिचेष्टा कर्माभावः कर्मव्यापकरहितत्वात् सुषुप्तिचेष्टावदित्यर्थः ज्ञानवतो दृश्यमानं कर्माकर्मैवेत्यत्र भगवदनुमतिमाह तथा चेति ब्रह्मविदो दृष्ट्वा कर्म नास्तीत्युक्तेऽपि तत् कारणानुपमर्दात् पुनर्भविष्यतीत्याशंक्याह तथा च दर्शयन्निति अविद्वानिव विद्वानपि कर्मणि प्रवर्त्तमानो दृश्यते तथापि तस्य कर्माकर्मैवेत्यत्र दृष्टान्तमाह दृष्ट्वा चेति विदुषः कर्मापि कर्मत्वाविशेषादितरकर्मवत् फलारम्भकमित्यपि शंका नयुक्तेत्याह तथेति इदं कर्मैव कर्त्तव्यमस्य च फलं भोक्तव्यमिति मतिस्तत् पूर्वकाण्य तत्पूर्वकाणि च कर्माणि तेषामवान्तरभेदसंग्रहार्थमादिपदं दार्ष्टान्तिकमाह तथेति सप्तम्या विद्वत् प्रकरणं परामृष्टं षष्ठ्यौ समानाधिकरणे उक्तेऽर्थे पूर्ववाक्यमनुकूलयति अत इति ब्रह्मार्पणमन्त्रस्य स्वव्याख्यानमुक्त्वा स्ववुद्धिव्याख्यानमनुवदति अत्रेति प्रसिद्धोद्देशेन अप्रसिद्धविधानस्य न्यायत्वादप्रसिद्धोद्देशेन प्रसिद्धविधानं कथमित्याशंक्याह ब्रह्मैवेति किलेत्यस्मिन् व्याख्याने सिद्धान्तिनोऽसंप्रतिपत्तिं सूचयति कर्तृकर्मकरणसंप्रदानाधिकरणरूपेण पंचविधे न ब्रह्मैव व्यवस्थितं कर्म करोतीत्यंगीकारात् तदप्रसिद्धाभावात् तदनुवादेनार्पणादिष्ववरुद्धस्तद्दृष्टिविधिरित्यर्थः दृष्टिविधिपक्षे सिद्धान्ताद्विशेषंदर्शयतितत्रेति अर्पणादिषु कर्त्तव्यां ब्रह्म बुद्धिं दृष्टान्ताभ्यां स्पष्टयति यथेत्यादिना दृष्टिविधाने विधेयदृष्टेर्मानसक्रियात्वेन सम्यग्ज्ञानत्वाभावात् प्रकरणभंगः स्यादित्यभिप्रेत्य परिहरति सत्यमेवमिति विधित्सितदृष्टिस्तुतिपरमेव प्रकरणं न ज्ञानस्तुतिपरमित्याशंक्य प्रकरण पर्यालोचनया ज्ञानस्तुतिरेवात्र प्रतिभातीति प्रतिपादयति अत्रत्विति किंच ब्रह्मार्पणमन्त्रस्यापि सम्यग्ज्ञानस्तुतौ सामर्थ्यं प्रतिभातीत्याह अत्रचेति नन्वर्पणादिषु ब्रह्मदृष्टिं कुर्वतामपि ब्रह्मविद्यैवात्र विवक्षितेति पक्षभेदासिद्धिरिति चेत् तत्राह यत्विति यथा ब्रह्मदृष्ट्या नामादिकमुपास्यं तथार्पणादिषु ब्रह्मदृष्टिकरणे सत्यर्पणादिकमेव प्राधान्येन ज्ञेयमिति ब्रह्मविद्या यथोक्तेन वाक्येन विवक्षिता न स्यादित्यर्थः किञ्च ब्रह्मैव तेन गन्तव्यमिति ब्रह्मप्राप्तिफलाभिधानादपि दृष्टिविधानमश्लिष्टमित्याह नचेति नचार्पणाद्यालम्बना दृष्टिर्ब्रह्म प्रापत्ययप्रतीकालम्बनान्नयतीति न्यायविरोधादिति भावः दृष्टिविधानेऽपि नियोगबलादेव स्वर्गवद्दृष्टौ मोक्षो भविष्यतीत्याशङ्क्याह विरुद्धञ्चेति ज्ञानादेव कैवल्यमुक्त्वा मार्गान्तरापवादिन्या श्रुत्याविरुद्धं मोक्षस्य अविद्यानिवृत्तिलक्षणस्य दृष्टस्य नैयोगिकत्ववचनमित्यर्थः दृष्टियोगान्मोक्षो भवति इत्येतत् करणाविरुद्धञ्चेत्याह प्रकृतेति तदेव प्रपञ्चयति सम्यग्दर्शनञ्चेति अन्ते च सम्यग्दर्शनं प्रकृतमिति सम्बन्धः तत्र हेतुः तस्यैवेति सम्यग्ज्ञानेनोपक्रम्यतेनैवोपसंहारेऽपि मध्ये किञ्चिदन्यदुक्तमिति प्रकरणस्यातद्विषयत्वमित्याशङ्क्याह श्रेयानिति प्रकरणे सम्यग्ज्ञानविषये सत्यनुपपन्नोदृष्टिविधिरिति फलितमाह तत्रेति ब्रह्मार्पणमन्त्रे परकीयव्याख्यानासम्भवे स्वकीयव्याख्यानं व्यवस्थितमित्युपसंहरति तस्मादिति ॥ २४ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं परमेश्वराराधनलक्षणं कर्म ज्ञानहेतुत्वेन बन्धकत्वाभावादकर्म्मैव आरूढाव स्थायान्तु अकर्त्रात्मज्ञानबाधितत्वात् स्वाभाविकमपि कर्म अकर्मैवेति कर्मण्यकर्म यः पश्येदित्यनेनोक्तः कर्मप्रविलयः प्रपञ्चितः इदानीं कर्माणि तदंगेषु च ब्रह्मैवानुस्यूतं प श्यतः कर्मप्रविलयमाह ब्रह्मार्पणमिति अर्प्यतेऽनेनेत्यर्पणं जुह्वादि तदपि ब्रह्मैव अ र्प्यमाणाहविरपि घृतादिकं ब्रह्मैव ब्रह्माग्निस्तस्मिन् ब्रह्मणा कर्त्रा हुतं होमोऽग्निश्च कर्त्ता च क्रिया च ब्रह्मैवेत्यर्थः एवं ब्रह्मण्येव कर्मात्मके समाधिश्चित्तैकाग्र्यं यस्य तेन ब्रह्मैवगन्तव्यं प्राप्यं न तु फलान्तरमित्यर्थः ॥ २४ ॥

नवलभाष्य।

कौनसे फिर कारणसे कियाहुआ जो कर्म सो अपने कार्यको नहीं करताहुआ अर्थात् बन्धनको नहीं करताहुआ आपफल सहित लीनहोजाता है अर्थात् नाशको प्राप्त होताहै इसआकांक्षामें कहतेहैं कि [ब्रह्मेति] हे अर्जुन पुरुष जिससाधन करके अर्थात् मन्त्रस्रुवाआदि हवनके साधनकरके अग्निमें घृतादि द्रव्यको अर्पणकरताहै उसको ब्रह्मवित् ब्रह्महीदेखताहै अर्थात् उसको आत्मासे भिन्नरूप करके नहीं देखताहै जैसे कोई निश्चित बुद्धिपुरुष सीपीमें रजतके अभावको देखताहै अथवा उसमें भ्रान्तिसे प्रतीयमान जो रजत अर्थात् चांदी तिसको सीपीहीरूपकरके निश्चयसे देखताहै तैसेही ब्रह्मवित् पुरुषभी अर्पण जो स्रुवाआदि साधन तिसको ब्रह्म हीदेखता है और लोकमें जो पदार्थ अर्पण बुद्धिकरके ग्रहणकिया जाताहै सो ब्रह्मवेत्ताको सबब्रह्महीहै और तैसेही जो यज्ञमें घृतादि बुद्धिसे पदार्थ ग्रहणकिया जाताहै सो भी उसज्ञानीको ब्रह्महीहै और जिसअग्निमें होम होताहै वहअग्निभी ब्रह्महीहै और जो हवनकर्त्ता अर्थात् हवनकरनेवालाजो ब्राह्मण सो भी ब्रह्महीहै और जो हवनरूपा जोक्रिया सो भी ब्रह्मही और जो उसयज्ञकर्ताको प्राप्तहोनेको योग्यफल स्वर्गादि सो भी ब्रह्महीहै इस प्रकार ब्रह्मरूप कर्ममें जिसकी समाधि अर्थात् चित्तकी एकाग्रता होरहीहै उसको ब्रह्मही प्राप्यहै अर्थात्प्राप्तहोनेकायोग्यहै और लोकसंग्रहकी इच्छा करके ज्ञानी पुरुषने किया जो कर्म सो परमार्थमें अकर्मही होजाता है अर्थात् नहीं सरीखा होजाताहै क्योंकि ब्रह्मबुद्धि करके कर्म बुद्धिका उपमर्दनहुआ अर्थात् भंगहुआ तो आपही कर्मनाशके भावको प्राप्त होताहै ऐसा जबसिद्धान्त स्थितहुआ तो कर्मोंसे निवृत्तहुआ जो संन्यासी तिसके सम्यग्दर्शनरूप ज्ञानकी स्तुतिकेलिये ज्ञानको यज्ञरूप करके वर्णन करना युक्तहीहै जैसे यज्ञमें स्रुवाघृतआदि पदार्थ प्रसिद्धहैं तैसेही इसपरमार्थदर्शी अर्थात् सत्यरूप ब्रह्महीको देखनेवाले संन्यासीको अध्यात्मरूप ब्रह्म ही भावनाकरके सकलयज्ञपदार्थ रूपहै जैसे प्रत्यक्षयज्ञकरने को असमर्थ जो अज्ञपुरुष तिसको ध्यानमार्ग में भावनाकरके यज्ञकरना उपासनाकांड

के वेदमें कहाहै तैसे संन्यासी को भी ज्ञानकाण्डकी रीति से यज्ञांगों में ब्रह्मभावना ज्ञानकी स्तुतिके अर्थ युक्तहीहै और जो कदाचित् यहतात्पर्य नहोय तो सबजगत्ही को ब्रह्मरूपत्व सिद्धहोने से विशेषकरके अर्पणादि हीको जो ब्रह्मरूपता करके भगवान्ने प्रतिपादन कियां सो अनर्थ कहा-जायगा तिसते ब्रह्महीसब है ऐसाजानताहुआ जो ज्ञानी तिसको सबक-र्मोका अभाव और कार बुद्धिका अभाव सिद्धहुआ अर्थात् क्रियाकी सिद्धि केलिये कर्ताआदिलेके जेछःन्यारे२कारकव्याकरणमें कहेहैं तिनकी बुद्धिका अभाव ज्ञानीको अद्वितीय ब्रह्माकारवृत्तिसे भेदबुद्धिके दूरहोनेसे सिद्धहुआ और कारकबुद्धि रहित यज्ञरूपकर्म नहींदेखाहै जिससे सब अग्निहोत्रादि कर्म इन्द्राय इत्यादि शब्दोंकरके बोधित अर्थात् जताएहुए इन्द्रादि देवता विशेषरूप जेसंप्रदानादि कारक तिन्होंकी बुद्धिकरकेयुक्त और कर्त्ताके अभि-मानकरके युक्त और स्वर्गादि फलोंकी प्रीतिकरके युक्तही देखागयाहै और ऐसा कर्म कोई नहीं देखनेमें आता जिसमें क्रिया और कारक और कर्म औरफल इन्होंकी न्यारी न्यारी बुद्धियां नष्टहोगयी होयँ और मैं करताहूं ऐसा अभिमान जिसमें न होय और स्वर्गादि फलकी जिसमें चाह नहोय अर्थात् क्रियादिकोंकी भेदबुद्धि और अपनामें कर्त्तापनेका अभिमान और स्वर्गादि फलोंमें प्रीति यह सबव्यवहार हरएक कर्म में लौकिक पुरुषोंको हुआही करताहै और ज्ञानीको तो ब्रह्म बुद्धिकरके नाशको प्राप्तहुई है अर्पणादिकारक कर्मफल क्रियादिकोंकी भेदबुद्धि जिसमें ऐसा जो कर्म सो अकर्मरूपही है सो भगवान्ने इसी अध्यायमें पीछे कहाभीहै कि (कर्म-ण्यभिप्रवृत्तोपि नैवकिंचित्परोतिसः) सो ज्ञानीकर्ममें प्रवृत्तभी है और कुछ नहीं करताहै और तीसरे अध्यायमें यहकहा कि [गुणागुणेषुवर्त्तन्ते नैव-किंचित्करोमीति युक्तोमन्येततत्त्ववित्इति] इन्द्रियां अपने विषयमें प्रवृत्त होतीहैं और मैं कुछभी नहीं करताहूं इसप्रकार तत्त्वका जाननेवाला ज्ञा-नीमानता है इसप्रकार तहांतहां सिद्धांतको दिखातेहुए भगवान् क्रियाकार फलभेद बुद्धिकानाश सूचनकरते हैं और यहभी देखतेहैं कि प्रथमतो पुरुष कामनाही करके अग्निहोत्रमें प्रवृत्तहुआ और पश्चात् किसी कारणसे काम के नाशमें उसकामनासे अग्निहोत्रकी भी हानिहोजाती है जैसे जानके वाबिना जानेकारक बुद्धिकरके किये जे कर्मतेही फलोंको उत्पन्नकरतेहैं यह देखाहै तैसे यहांभी ब्रह्मबुद्धि करके मर्दनकिईं गईहै अर्पणादि कारकक्रिया फलभेद बुद्धि जिसकी ऐसेज्ञानी की बाहरकी चेष्टामात्रकरके किया भी कर्महै परन्तु वहअकर्मही होजाताहै इसी हेतुसे कहिआये हैं कि ज्ञानीका कर्म संपूर्ण फलसहित लीनहोजाता है अर्थात् नाशको प्राप्तहोता है अब यहां कोई इसश्लोकका अर्थ ऐसा कहते हैं कि जो ब्रह्महै सोई अर्पणादि रूपहुआ अर्थात् ब्रह्मही अर्पणादि नामस्रुवाआदि पांचप्रकारके कारकरूप अर्थात् स्रुवाकर्मकरणकारक १ हविर्द्रव्यकर्मकारक २ अग्निअधिकरण

कारक ३ यजमानकर्तृकारक ४ स्वर्गकर्मकारक ५ इसप्रकार इन्हों करके व्यवस्थितहुआ कर्मकरताहै तहां अर्पणआदि स्रुवाआदि पांचकारकों की बुद्धितौ निवृत्तनहीं होतीहै और उन्होंमें ब्रह्म बुद्धिस्थापन की जाती है जैसे प्रतिमा आदिकोंमें विष्णुआदि देवताओंकी बुद्धि और नामादिकोंमें ब्रह्म बुद्धि स्थापनकी जातीहै अर्थात् जैसे पूजनके योग्य प्रतिमाओंमें विष्णुआदि देवताओंकी बुद्धि होतीहै और प्रतिमादिकोंकी भी बुद्धि बनीरहतीहै और उपासनाकाण्ड में प्रसिद्धनामादिकजे प्रणव आकाश प्राणमन आदिकोंमें ब्रह्म बुद्धि करके उपासना की जाती है तहां प्रणवादिकनामादिकोंकी भी बुद्धिबनी रहतीहै और ब्रह्म बुद्धिभी कियी जातीहै ऐसे स्रुवा मन्त्रआदि यज्ञोंके अंगोमें भी ब्रह्म बुद्धिकरके जब वह यज्ञकिया जायगा तो कर्महीं प्रधान करकेरहा कुछ ज्ञानयज्ञ नहीं सिद्धहोगा तो संन्यासी के ज्ञानयज्ञको स्तुति करनेकेलिये जो प्रकरण सो नहीं रहैगा और यहां तो अनेक प्रकारके यज्ञोंको भगवान् कहिके अन्त्यमें यहकहैंगे कि ब्रीह्यादि द्रव्यमययज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है तो इस कथन करके ज्ञानयज्ञ करके कहागया जो सम्यग्दर्शनरूप ज्ञानतिसी की भगवान् स्तुति करतेहैं यहसिद्धान्त प्रतीत होताहै और जो ज्ञानयज्ञ कहैंगेही नहीं तो स्तुति करनाकैसे संभवहोता है और यहां ज्ञानयज्ञके वर्णनमें ब्रह्मार्पण इत्याश्लोकही व्यर्थहोके प्रमाणताको प्राप्तहोता है और जो ऐसा न होय तो सबीको ब्रह्मत्व सिद्धरहा विशेषकरके अर्पणादिकोंही जो ब्रह्मरूप करके कथनकिया सो व्यर्थ होजायगा और येतो जैसे प्रतिमामें विष्णुदृष्टि कियी जाती है और जैसे नामादिकोंमें ब्रह्म बुद्धिकियी जातीहै तैसे अर्पणादिकों में भी ब्रह्मदृष्टि आरोपण कियी जातीहै ऐसा कहतेहैं तिनको तो पूर्वोक्त ब्रह्मविवाक्षित नहींहै अर्थात् कहनेको इष्टनहीं है क्योंकि तिनके मतमें विशेषता करके अर्पणादि पदार्थोंकाही जानना अभीष्टहै इसते अर्थात् जैसे ज्ञानीको ब्रह्मबुद्धिकरके अर्प्पण आदि नामस्रुवादिकारक बुद्धिका उपमर्दनहोता है अर्थात् सर्वथा भेदबुद्धिका बिनाशहीहोजाताहै तौ स्रुवादिपदार्थोंको ब्रह्म से भिन्न देखताहीनहीं है किन्तु ब्रह्महीको देखताहै कुछ यज्ञकरनेको प्रवृत्त हुआहोय और प्रत्यक्ष स्रुवादिपदार्थों में ऐसीदृष्टिकरके यज्ञकरै यहअर्थ यहां विवक्षितनहींहै क्योंकि ऐसी विवक्षामें संन्यासीको कर्मका अधिकार है नहीं तौ उसको ज्ञानयज्ञ सिद्धनहीं होगा किन्तु ऐसे ब्रह्महीको देखने वाले संन्यासीको इसरीतिका ज्ञानयज्ञ सिद्धहोताहै इसआशयसे अर्प्पणादि पदार्थोंका उच्चारणकिया और यह भी एक कारणहै कि जब ब्रह्मबुद्धि करके कर्त्ताआदि कारकोंकी बुद्धिकानाशहुआ तौ उससमय में कर्म हो ही कैसे सक्ताहै इससे इसज्ञानयज्ञका अधिकारी ज्ञानीहीहै बाहरसे सन्न्यासी होय वा न होय और जैसे प्रतिमादिकोंमें विष्णुबुद्धिकरके अर्चनकरता है वा नामादिकों में ब्रह्मबुद्धिकरके उपासनाकरताहै तैसे जब यज्ञकरनेको

प्रवृत्तहुआ तौ स्रुवादि यज्ञोंके अंगोंमें ब्रह्मदृष्टि कीगई तौ वह ब्रह्मदृष्टि अर्पणादि कारकादिभेद बुद्धिका नाश नहींकरतीहै जैसे विष्णुआदि देवबुद्धिप्रतिमा बुद्धिकानाश नहीं करती किन्तु जैसी जैसी दृढ़देवबुद्धिप्रतिमामें होतीहै तैसे उत्तमफलको देतीहै तैसे यहां भी ब्रह्मदृष्टि अर्पणादि कारकबुद्धिकी अंगरूपता को प्राप्तहुई उत्तमफलको प्राप्तिकरनेकी द्वारा उसकर्मकीश्रेष्ठता को बोधनकरती है कुछ ब्रह्मविद्यारूप नहींहोसक्तीहै क्योंकि ब्रह्माकारवृत्तिही को ब्रह्मविद्या कहते हैं उसके होनेमें फिर कर्ममें प्रवृत्त कैसे सम्भवहोसक्तीहै इससे इसअर्थ में कर्मयज्ञही यहहुआ और ज्ञानयज्ञ नहीं होसक्ता और ब्रह्मदृष्टिमात्रके करनेवाले ज्ञानसे मोक्षनहीं प्राप्तहोसक्ता और [ब्रह्मैवतेनगन्तव्यम्] ऐसे ज्ञानयज्ञकरनेवाले पुरुषको ब्रह्महीं प्राप्तहोनेको योग्य है इसकथनसे मोक्षही इसज्ञानयज्ञकाफलहै ऐसा भगवान्ने सूचितकिया और सो मोक्षरूपफल सम्यग्दर्शनरूप ज्ञानके बिना प्राप्तहोय यह विरुद्ध है अर्थात् ऐसा सम्भव नहीं होताहै और तुम्हारे अर्थमें प्रकरणसेभी विरोध प्राप्तहोगा क्योंकि [कर्मण्यकर्मयःपश्येत्] कर्म में अकर्म जो ब्रह्म तिसको जो देखताहै ऐसे कथनसे सम्यग्दर्शनरूप ज्ञानहीके प्रकरणको प्रारम्भ करके और फिर अन्त्यमें तिसीज्ञानका उपसंहार करतेहुए भगवान्ने यह कहाकि [श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञःपरन्तप ज्ञानंलब्ध्वापरांशांतिमित्यादिना] अर्थ हे अर्जुन द्रव्यमय जो यज्ञ तिससे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठहै और ज्ञानको प्राप्तहोकर परमउत्कृष्टजोशान्तितिसको थोड़ेहीकालमें प्राप्तहोताहै ऐसेकहने करके सम्यग्दर्शन रूप ज्ञानकी स्तुति करते करते अध्याय समाप्तकिया तिसज्ञानके प्रकरणके मध्यमें प्रकरणके अर्थको बिना विचारकिये प्रतिमा में विष्णुदृष्टिके सदृश जो अर्पणादिकोंमें अर्थात् यज्ञके अंग जे स्रुवादिक तिन्होंमें ब्रह्मदृष्टि कहीजातीहै सो अयुक्तहै तिससे जैसा कुछ अर्थ हमने इसश्लोकका व्याख्यान कियाहै वही युक्त है ॥ २४ ॥

दैवमेवाऽपरे यज्ञं योगिनःपर्य्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तत्र अधुना सम्यग्दर्शनस्य यज्ञत्वं सम्पाद्य तत्स्तुत्यर्थमन्येपि यज्ञा उपक्षिप्यन्ते दैवमे वेत्यादिना दैवमेवदेवाइज्यन्ते येन यज्ञेनासौ दैवो यज्ञस्तमेवापरे यज्ञं योगिनः कर्मिणः पर्य्युपासते कुर्वन्तीत्यर्थः ब्रह्माग्नौ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म विज्ञानमानन्दं ब्रह्म यत् साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म यआत्मासर्वान्तर इत्यादिवचनोक्त मशनायादि सर्वसंसारधर्मवर्जितं नेति नेतीतिनिरस्ताशेषविशेषं ब्रह्मशब्देनोच्यते ब्रह्म च तदग्निश्च सहोमादिकरणत्वविवक्षया ब्रह्माग्निस्तस्मिन् ब्रह्माग्नावपरेऽन्ये ब्रह्मविदो यज्ञं यज्ञशब्दवाच्य आत्मा आत्मनामसु यज्ञशब्दस्य पाठात् तमात्मानं यज्ञं परमार्थतः परमेव ब्रह्म सन्तं बुद्ध्याद्युपाधिसंयुक्तमध्यस्तसर्व्वोपाधिधर्म्मकलाहुतिरूपंयज्ञेनैवात्मनैवोक्तलक्षणेनोपजुह्वति प्रतिक्षिपन्ति सोपाधिकस्यात्मनोनिरुपाधिकेन परब्रह्मस्वरूपेणैव यद्दर्शनं स तस्मिन् होमस्तं कुर्वन्ति ब्रह्मात्मैकत्वदर्शननिष्ठाः संन्यासिन इत्यर्थः ॥ २५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ज्ञानस्य यज्ञत्वं सम्पाद्य पूर्वश्लोके स्थिते सत्यधुना तस्यैव ज्ञानस्य स्तुत्यर्थं यज्ञान्तर निर्देशार्थमुत्तरग्रन्थप्रवृत्तिरित्याह तत्रेति सर्वस्य श्रेयः साधनस्य मुख्यगौणवृत्तिभ्यां यज्ञत्वं दर्शयन् आदौ यज्ञद्वयमादर्शयति दैवमेवेति प्रतीकमादाय दैवयज्ञ व्याचष्टे देवा इति सम्यग्ज्ञानाख्यं यज्ञं विभजते ब्रह्माग्नाविति तत्र ब्रह्मशब्दार्थं श्रुत्यवष्टम्भेन स्पष्टयति सत्यमिति यदजमनन्तविपरीतमपरिच्छिन्नं ब्रह्म तस्य परमानन्दत्वेन परमपुरुषार्थत्वमाह विज्ञानमिति तस्य ज्ञानाधिकरणत्वेन ज्ञानत्वमौपचारिकमित्याशङ्क्याह तत् साक्षादिति जीवब्रह्म विभागे कथमपरिच्छिन्नत्वमित्याशङ्क्य विशिनष्टि य आत्मेति परस्यैवात्मत्वं सर्वस्माद्देहादेरव्याकृतान्तादान्तरत्वेन साधयति सर्वान्तर इति विधिमुखं सर्वमेवोपनिषद्वाक्यं ब्रह्मविषयमादिशब्दार्थः निषेधमुखं ब्रह्मविषयमुपनिषद्वाक्यमशेषमेवार्थतो निबध्नाति अशनायेति ब्रह्मण्यग्निशब्दप्रयोगे निमित्तमाह सहोमेति बुद्ध्यारूढतया सर्वस्य वा हेतुत्वादिति द्रष्टव्यं यज्ञशब्दस्यात्मनि त्वं पदार्थे प्रयोगे हेतुमाह आत्मनामस्विति आधाराधेयभावेन वास्तवभेदं ब्रह्मात्मनो व्यावर्त्तयति परमार्थत इति कथं तर्हि होमो नहि तस्यैव तत्र होमः सम्भवतीत्याशङ्क्याह बुद्ध्यादीति उपाधिसंयोगफलं कथयति अध्यस्तेति उपाध्यध्यासद्वारा तद्धर्माध्यासे प्राप्तमर्थं निर्दिशति आहुतीति इत्थं भूतलक्षणां तृतीयामेव व्याकरोति उक्तेति अशनायादि सर्वसंसारधर्मवर्जितेन निर्विशेषेण स्वरूपेणेति यावत् आत्मनो ब्रह्मणि होममेव प्रकटयति सोपाधिकस्येति पर इत्यस्यार्थं स्फोरयति ब्रह्मेति ॥ २५ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं यज्ञत्वेन सम्पादितं सर्वत्र ब्रह्मदर्शनलक्षणं ज्ञानं सर्वयज्ञोपायप्राप्यत्वात् सर्वयज्ञेभ्यः श्रेष्ठमित्येवं स्तोतुमधिकारिभेदेन ज्ञानोपायभूतान् बहून् यज्ञानाह दैवमित्यादिभिरष्टभिः देवा इन्द्रवरुणादय इज्यन्ते यस्मिन् एवकारेणेन्द्रादिषु ब्रह्मबुद्धिराहित्यं दर्शितं तदेवं यज्ञमपरे कर्मयोगिनः पर्युपासते श्रद्धयानुतिष्ठन्ति अपरे तु ज्ञानयोगिनो ब्रह्मरूपेऽग्नौ यज्ञेनैवोपायेन ब्रह्मार्पणमित्याद्युक्तप्रकारेण यज्ञमुपजुह्वति यज्ञादि सर्वकर्माणि प्रविलापयन्तीत्यर्थः सोऽयं ज्ञानयज्ञः ॥ २५ ॥

नवलभाष्य।

तहाँ अब इससमयमें सम्यग्दर्शनको अच्छेप्रकारसे जो आत्माका ब्रह्मरूपकरके जो देखना तिसको यज्ञरूपत्व सिद्धकरके तिसयज्ञकी स्तुतिके अर्थ और भी यज्ञ कहेजातेहैं [दैवमेवेति] देवता यजनकियेजाते हैं अर्थात् पूजित होतेहैं जिसयज्ञकरके तिसको दैवयज्ञकहतेहैं हे अर्जुन तिसदैवयज्ञको [अपरेयोगिनः]अर्थात् और जे योगीजन वेदोक्त विधानकरके कर्मयोगके करनेवाले जे मनुष्य ते उपासनाकरते हैं अर्थात् नियमसे करते हैं और जे संन्यासीलोग ते तौ ब्रह्मरूप अग्निमें अर्थात् [सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म विज्ञानमानन्दंब्रह्म यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्मसआत्मासर्वान्तरइतिश्रुतयोब्रह्मप्रतिपादिकाः] इनश्रुतियों करके क्षुधा पिपासादि संसारधर्मरूप दोषों से

रहित और नेति नेति इसप्रकारकरके दूरहुएहैं सब विशेष धर्म जिससे सो वस्तुरूप ब्रह्मशब्द करके कहाजाता है ऐसा जो ब्रह्म सो हुआ अग्नि तिस ब्रह्मरूपअग्निमें और ब्रह्मवित् जे ज्ञानी पुरुष ते यज्ञशब्दकरके कहागया जो अपना आत्मा सो परमार्थ करके ब्रह्मरूपही हुआ फिर बुद्धिआदि उपाधि धर्म जब उसमें आरोपितहुए तब आहुतिरूप की योग्यता को प्राप्तहुआ ऐसा जो जीवात्मरूप तिसको आत्माहो करके अर्थात् अपने परमार्थस्वरूपके ध्यानकरके हवनकरते हैं अर्थात् उपाधिसाहित जो अपनारूप तिसको उपाधिरहित ब्रह्मरूपकरके जो देखनाहै सोई उस ब्रह्मरूप अग्निमें होम तिसको करते हैं नाम ब्रह्मसे अभेदकरके जो अपनाको देखना है तिसमें स्थितसंन्यासी होते हैं और यहां ब्रह्ममें अग्निरूप की भावनासे यह सूचित किया कि जैसे अग्नि विजातीय काष्ठ घृतादिकोंको ही भस्मकरताहै कुछ अपने स्वरूपको नहीं तैसे ब्रह्मज्ञानभी विजातीय उपाधि धर्मोंको ही नाश करताहै,औरआत्मस्वरूप ब्रह्मरूपहीहै उसमें किसीविकारकीआशङ्काहीनहीं इससे जीवस्वरूप का लय ब्रह्ममें होनाही वेदान्तियोंका मतहै ऐसे कहने वाले मूर्खोंकी केवल भ्रान्तिहीहै ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन् विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

सोऽयं सम्यग्दर्शनलक्षणोयज्ञो दैवयज्ञादिषु यज्ञेषु प्रक्षिप्यते ब्रह्मार्पणमित्यादि श्लोकैः श्रेयान् द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तप इत्यादिनास्तुत्यर्थं श्रोत्रादीनिति श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्येयोगिनः संयमाग्निषु प्रतीन्द्रियं संयमोऽभिद्यत इति बहुवचनं संयमा एवाग्नयस्तेषु जुह्वतीन्द्रियसंयममेव कुर्वन्तीत्यर्थःशब्दादीन् विषयानन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति इन्द्रियाण्येवाग्नयस्तेष्विन्द्रियाग्निषु जुह्वति श्रोत्रादिभिरविरुद्धविषयग्रहणं होमंमन्यते ॥ २६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

उक्तस्य ज्ञानयज्ञस्य दैवयज्ञादिषु ब्रह्मार्पणमित्यादिश्लोकैरुपक्षिप्यमाणत्वं दर्शयति सोयमिति उपक्षेपप्रयोजनमाह श्रेयानिति सम्प्रति यज्ञद्वयमुपन्यस्यति श्रोत्रादीनीति बाह्यानां करणानां मनसि संयमस्यैकत्वात् कथं संयमाग्निष्विति बहुवचनमित्याशङ्क्याह प्रतीन्द्रियमिति संयमानां प्रत्याहाराधिकरणत्वेन व्यवस्थितानां मनोरूपाणां होमाधारत्वादग्नित्वं व्यपदिशति संयमा इति विषयेभ्योऽन्तर्बाह्याणीन्द्रियाणि प्रत्याहरन्तीति संयमयज्ञं संक्षिप्य दर्शयति इन्द्रियेति श्रोत्रादीन्द्रियाग्निषु शब्दादिविषयहोमस्य तत्तदिन्द्रियैस्तत् तद्विषयोपभोगलक्षणस्य सर्वसाधारणत्वमाशङ्क्य प्रतिषिद्धान् वर्जयित्वा रागद्वेषरहितो भूत्वा प्राप्तान् विषयान् भुञ्जते तैस्तैरिन्द्रियैरिति विवक्षितं होमं विशदयति श्रोत्रादिभिरिति ॥ २६ ॥

स्वामिकृतटीका ।

श्रोत्रादीनीति अन्ये नैष्ठिका ब्रह्मचारिणस्तत्तदिन्द्रियसंयमरूपेष्वग्निषु श्रोत्रादीन

जुह्वति प्रविलापयन्ति इन्द्रियाणि निरुध्य संयमप्रधानास्तिष्ठन्तीत्यर्थः इन्द्रियाण्येवाग्न यस्तेषु शब्दादीनन्ये गृहस्था जुह्वति विषयभोगसमयेऽप्यनासक्ताः सन्तोऽग्नित्वेन भावितेषु इन्द्रियेषु हविष्ट्वेन भावितान् शब्दादीन् प्रक्षिपन्तीत्यर्थः ॥ २६ ॥

नवलभाष्य।

अब यह सम्यग्दर्शन रूप ज्ञानयज्ञ दैवयज्ञादिकोंकेभी न इसवास्तेकहा कि जिससे [श्रेयानद्रव्यमयाद्यज्ञात्] इसश्लोक करके भगवान् सब यज्ञों से ज्ञानयज्ञकी श्रेष्ठता कहेंगे उसकी सिद्धिहोवे अब संयमादि यज्ञ कहतेहैं कि[श्रोत्रेति] और हे अर्जुन और जे योगीलोगहैं ते तौ श्रोत्रादिक इंद्रियों का संयमरूप अग्नियों में हवन करते हैं अर्थात् विषयोंसे इन्द्रियों कोखैंच के मनकरके उन्होंको संयम करतेहैं सम्यक्प्रकारसे विषयोंसे निवृत्तिकरके अपने वशमें रखते हैं यद्यपि संयम एकहीप्रकारका है तौभी इंद्रियोंके भेद से संयमका भी भेदमानिके [संयमाग्निषु] यहां बहुवचनकहा और संयम रूप अग्निमें हवन कहनेसे यह सूचनाकिया कि जैसे हवनकीहुई वस्तु की भस्महोजातीहै तौ वह वस्तु और कार्य्यको नहीं करसक्ती तैसेही योगी जन की इंद्रियां भी फिर अनर्थकरने को समर्थ नहीं रहतीहैं और गृहस्थ लोग तौ शब्दादि विषयों को इंद्रियरूप अग्नियोंमें हवनकरते हैं अर्थात् श्रोत्रादिक इंद्रियों करके अविरुद्ध विरोधरहित विषय ग्रहणरूप होम को करते हैं क्योंकि यहां विषयसेवनही को भगवान् ने यज्ञरूप वर्णनकरने से यह सूचन किया कि जैसे वेदके मन्त्रोंकरके संस्कार की हुई अग्निमें अति पवित्र वस्तुको देवताका ध्यानकरके शास्त्रकी विधिसे हवन कियाजाता है तब वह यज्ञकहाता है तैसे यहां भी अध्ययनादि संस्कारयुक्त इंद्रियरूप अग्निमें अतिथि ब्राह्मणादिकों को निवेदनकरने से और न्यायोपार्जित धनादिकों से सिद्धहोनेसे और विवाहकी विधिसे संस्कारयुक्त सवर्णाभार्या के ग्रहणकरने से अतिपवित्र शब्दादि विषयोंको परमेश्वरका ध्यानकरता हुआ गृहस्थ धर्मशास्त्रकी विधिसे निषिद्ध विषयोंको छोड़िके हवनकरै तौ उस गृहस्थ को भी इसप्रकारका विषयोंका सेवन यज्ञरूपहीहोताहै और जो निष्काम कियाजाय तौ अन्तःकरण शुद्धिद्वारा ज्ञानयज्ञके अधिकारको भी उत्पन्नकरता है ॥ २६ ॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च सर्वाणीति सर्वाणीन्द्रियकर्माणि इन्द्रियाणां कर्माणीन्द्रियकर्माणि तथा प्राणकर्माणि प्राणोवायुराध्यात्मिकस्तत्कर्माण्याकुञ्चनप्रसारणादीनि तानि चापरे आत्मसंयमयोगाग्नौ आत्मनि संयम आत्मसंयमः स एव योगाग्निस्तस्मिन्नात्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति प्रक्षिपन्ति ज्ञा

नाग्निदीपिते स्नेहेनेव प्रदीपिते विवेकविज्ञानेनोज्ज्वलभावमापादिते जुह्वति प्रविलापयन्ति इत्यर्थः ॥ २७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

यज्ञान्तरं कथयति किञ्चेति इन्द्रियाणां कर्माणि श्रवणवदनादीनि आत्मनि संयमो धारणा ध्यानसमाधिलक्षणः सर्वमपि व्यापारं निरुध्य आत्मनि चित्तसमाधानं कुर्वन्तीत्याह विवेकेति ॥ २७ ॥

स्वामिकृतटीका ।

किञ्च सर्वाणीति अपरेध्याननिष्ठा बुद्धीन्द्रियाणां श्रोत्रादीनां कर्माणि श्रवणदर्शनादीनि कर्मेन्द्रियाणां वाक्पाण्यादीनां कर्माणि वचनोपादानादीनि प्राणानांच दशानां कर्माणिप्राणस्य वहिर्गमनं अपानस्याधोगमनं व्यानस्य व्यायनाकुञ्चन प्रसारणादीनि समानस्याशितपीतादीनां समुन्नयनं उदानस्योद्‌र्ध्वनयनं उद्‌गारे नाग आख्यातःकूर्म उन्मीलने स्मृतः कृकरः क्षुत्करोज्ञेयो देवदत्तोविजृम्भने न जहाति मृतंचापि सर्वव्यापी धनंजयः इत्येवं रूपाणि जुह्वति आत्मनि संयमोध्यानैकाग्र्यं स एव योगः स एवाग्निस्तस्मिन् ज्ञानेन ध्येयविषयेन दीपिते प्रज्वलिते ध्येयं सम्यग्ज्ञात्वा तस्मिन्मनः संयम्य तानि सर्वाणि कर्माणि उपरमयन्तीत्यर्थः ॥ २७ ॥

नवलभाष्य ।

और हे अर्जुन और जे राजयोगके सेवनकरनेवाले योगी हैं ते तौ सब इंद्रियोंके जे कर्म्म हैं दर्शन स्पर्शनादिक और प्राणवायुके जे कर्म्म आकुंचन प्रसारणादि अर्थात् समेटना और फैलादेना आदि जे कर्म्म तिनसबोंको आत्मामें जो संयम अर्थात् चित्तकी स्थिरता सोई हुआ योगाग्नि नाम ध्यान धारणा समाधिरूप अग्नि फिर कैसा वह अग्निहोय ज्ञानदीपित होय अर्थात् जैसे घृतकरके अग्नि प्रकाशित होताहै तैसे आत्मानात्म विवेकज्ञान करके जो दीपित प्रकाशित होरहा ऐसे आत्मसंयम योगरूप अग्निमें हवन करते हैं अर्थात् सब कर्म्मोंका लय करते हैं ॥ २७ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

द्रव्येति द्रव्ययज्ञास्तीर्थेषु द्रव्यविनियोगं यज्ञबुद्ध्याकुर्वन्ति ये ते द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञास्तपो यज्ञो येषां तपस्विनां ते तपोयज्ञा योगयज्ञाः प्राणायामप्रत्याहारादिलक्षणो योगो यज्ञो येषां ते योगयज्ञास्तथाऽपरे स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च स्वाध्यायो यथाविधि ऋगाद्यभ्यासो यज्ञो येषां ते स्वाध्याययज्ञाः ज्ञानयज्ञाः शास्त्रार्थपरिज्ञानं यज्ञो येषां ते ज्ञानयज्ञाः स्वाध्याययज्ञा ज्ञानयज्ञाश्च यतयो यतनशीलाः संशितव्रताः सम्यक् शितानि तनूकृतानि तीक्ष्णीकृतानि व्रतानि येषां ते संशितव्रताः ॥ २८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

यज्ञ षट्‌कमवतारयति द्रव्येतीति तत्र द्रव्ययज्ञान् पुरुषानुपादाय विभजते तीर्थेष्वि

ति तपस्विनां यज्ञबुद्ध्या तपोनुतिष्ठतां नियमवताम् इत्यर्थः प्रत्याहारादीत्यादिशब्देन यमनियमासनध्यानधारणा समाधयो गृह्यन्ते यथाविधिप्राङ्मुखत्वपवित्रपाणित्वा द्यन्नविधिमनतिक्रम्येति यावत् व्रतानां तीक्ष्णीकरणमतिदृढत्वम् ॥ २८ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च द्रव्ययज्ञा इत्यादि द्रव्यदानमेव यज्ञोयेषां ते द्रव्ययज्ञाः कृच्छ्रचान्द्रायणादि तप एव यज्ञोयेषां ते तपोयज्ञाः योगश्चित्तवृत्तिनिरोधलक्षणसमाधिः स एव यज्ञोयेषां ते योगयज्ञाः स्वाध्यायेन वेदेन श्रवणमननादिना यत् तदर्थज्ञानं तदेव यज्ञो येषां ते य द्वा वेदपाठयज्ञास्तदर्थज्ञानयज्ञाश्चेति द्विविधा यतयः प्रयत्नशीलाः सम्यक् शितं निशितं तीक्ष्णीकृतं व्रतं येषां ते ॥ २८ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन कोई पुरुष द्रव्ययज्ञकरते हैं अर्थात् जिससमय में कोई पात्र देनेके योग्य ब्राह्मण प्राप्तहुआ उसमें दानविधिसे धनरूपआहुति को यज्ञबुद्धिसे त्यागकरते हैं तौ वेपुरुष यज्ञ करने वाले कहाते हैं और कोईतप यज्ञहोतेहैं अर्थात् मनसहित इन्द्रियों का निग्रहवशकरना यहीतप जिन्हों का ऐसे जे तपस्वी वे तपयज्ञहोते हैं और कोई योगयज्ञहोते हैं अर्थात् प्राणायाम प्रत्येहारादि आठप्रकारका योगहीयज्ञ जिन्होंका वेयोगयज्ञ कहातेहैं और कोई स्वाध्याय यज्ञहोते हैं अर्थात् स्वाध्याय जो विधिपूर्वक ऋग्वेदादिकों के पठनका अभ्याससोईहै यज्ञजिन्हों का वे स्वाध्याययज्ञ कहाते हैं और किन्होंको यथावत् शास्त्रोंके अर्थका परिज्ञानरूपही यज्ञहै अर्थात् रात्रि दिवसशास्त्रोंके अर्थके विचारहीमें जिन्होंकी यज्ञकी भावनाहोरही वे ज्ञान यज्ञ कहातेहैं और जे दोनोंप्रकारके यज्ञकरनेवाले संशितव्रतहैं अर्थात् सम्यक्प्रकार करके शितनाम तीक्ष्णहै ब्रह्मचर्य्यादि व्रत जिन्होंका ऐसे हैं और यत्नकरने का है स्वभाव जिन्होंका इससे यती कहाते हैं ॥ २८ ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे।
प्राणापानगती रुध्वा प्राणायामपरायणाः।
अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति ॥ २९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च अपान इति अपाने अपानवृत्तौ जुह्वति प्रक्षिपन्ति प्राणं प्राणवृत्तिं पूरकाख्यं प्राणायामं कुर्वन्तीत्यर्थः प्राणेऽपानं तथापरे जुह्वति रेचकाख्यञ्च प्राणायामं कुर्वन्तीत्येतत् प्राणापानगती रुद्ध्वा मुखनासिकाभ्यां वायोर्निर्गमनं प्राणस्य गतिस्तद्विपर्य्ययेनाधोगमनमपानस्य ते प्राणापानगती एते रुद्ध्वा निरुध्य प्राणायामपरायणाः प्राणायामतत्पराः कुम्भकाख्यं प्राणायामं कुर्वन्तीत्यर्थः किञ्च अपर इति अपरे नियताहारा नियतः परिमितः आहारो येषां ते

प्रथमतौ ज्ञानयज्ञमें ब्रह्मज्ञानका ग्रहणथा और यहांतौ स्वाध्यायके साहचर्यसे ज्ञान शब्दकरके वेदादिके अर्थ ज्ञानहीका ग्रहणहै इसमे इस ज्ञानयज्ञको न्याराकरके कहा ॥

नियताहाराः सन्तः प्राणान् वायुभेदान् प्राणभेदेष्वेव जुह्वति यस्य यस्य वायोर्जयः क्रियते इतरान् वायुभेदांस्तस्मिन् जुह्वति ते तत्र प्रविष्टा इवभवन्ति ॥ २९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

प्राणायामाख्यं यज्ञमुदाहरति किंचेति प्राणायामपरायणाः सन्तो रेचकं पूरकंच कृत्वा कुम्भकं कुर्वन्तीत्याह प्राणेति प्राणापानयोर्गती श्वासप्रश्वासौ निरुध्य किं कुर्वन्तीत्यपेक्षायामाह किंचेते प्राणापानगतिनिरोधरूपं कुम्भकं कृत्वा पुनः पुनर्वायुजयं कुर्वन्तीत्यपेक्षायामाह किंचेति प्राणापानगतिनिरोधरूपं कुम्भकं कृत्वा पुनः पुनर्वायुजयं कुर्वन्तीत्यर्थः आहारस्य परिमितत्वं हि तत्त्वमेध्यत्वोपलक्षणार्थं प्राणानांप्राणेषु होम मेव विभजते यस्येति जितेषु वायुभेदेष्वजितानां तेषां होमप्रकारं प्रकटयति ते तत्रेति॥२९॥

स्वामिकृतटीका।

किंच अपाने इति अपानेऽधोवृत्तौ प्राणमूर्ध्ववृत्तिं पूरकेन जुह्वति पूरककाले प्राणमपानेनैकी कुर्वन्ति तथा कुम्भकेन प्राणापानयोरूर्ध्वाधोगती रुध्वा रेचककालेऽपानं प्राणे जुह्वति एव पूरककुम्भकरेचकैः प्राणायामपरायणा अपरे इत्यर्थः किंच अपरे इति अपरेत्वाहारसंकोचमभ्यस्यन्तः स्वयमेव जीर्यमाणेष्विन्द्रियेषु तत्तदिन्द्रिय वृत्तिलयं होमं भावयन्तीत्यर्थः यद्वा अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेपानं तथापर इत्यनेन पूरक रेचकयोरवतर्प्य मानयोर्हंसः सोहमित्यनुलोमतः प्रतिलोमतश्चाभिव्यज्यमानेनाजपामन्त्रेणतत्वं पदार्थैक्यं व्यतीहारेण भावयन्तीत्यर्थः तदुक्तं योगशास्त्रे सकारेण वहिर्याति हकारेण विशेत् पुनः प्राणस्तत्र स एवाहमहं स इति चिन्तयेदिति प्राणापानगतीरुध्वेत्यनेन श्लोकेन प्राणायाम यज्ञा अपरे कथ्यन्ते यत्रायमर्थः द्वौभागौ पूरयेदन्नैर्जलैरेकं प्रपूरयेत् मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत् इत्येवमादिवचनोक्तनियतआहारो येषां ते कुम्भकेन प्राणापानगती रुध्वा प्राणसंयमन परायणाः सन्तः प्राणानिति इन्द्रियाणि प्राणेषु जुह्वति कुम्भकेन हि सर्वेप्राणा एकी भवन्ति तत्रैव लीयमानेष्विन्द्रियेषु होमं भावयन्तीत्यर्थः तदुक्तं योगशास्त्रे यथा यथा सदाभ्यासान्मनसः स्थिरता भवेत् वायुवाक्काय दृष्टीनां स्थिरता च तथा तथेति ॥ २९ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन कोई अपान वृत्ति पवनमें अर्थात् अधोमार्गकरके जानेवाले पवनमें प्राण वृत्ति पवनका हवन करते हैं अर्थात् मुख नासिका मार्ग करके निकलनेवाले पवनको अपानवायुमें स्थापनकरके बाहर नहीं निकलनेदेते हैं इसरीतिसे पूरकनाम प्राणायाम करते हैं और कोई प्राणवायु में अपानवृत्ति पवनका हवनकरते हैं अर्थात् नीचेमार्गकरके जानेवाले अपानवायु को प्राणवायुमें मिलाके मुख और नासिकाके मार्ग करके दोनोंको निकालते हैं इसप्रकारसे रेचकनाम प्राणायामको करते हैं और इसप्रकार प्राणायाममें तत्परजे पुरुष ते मुख नासिका मार्ग करके जानेवाला जो प्राणवायु और नीचेके मार्गकरके जानेवाला जो अपानवायु इनदोनों की गतिको रोककरके कुम्भकरूप जो प्राणायाम तिसकोकरतेहैं ॥

और तौ परिमित भोजनको करतेहुए प्राणवायुके जे अपानादि भेदकरके भेदहैं तिनको उन्हींहीं में हवनकरते हैं अर्थात् जिस जिस पवनकोरोक करके जीतते हैं उस जीतेहुए पवनमें और जो बिनाजीते हैं तिनको स्थापनकरके फिर नहीं कहीं जानेदेते हैं यही उनका हवनहुआ जैसे हृदयमें प्राणवायु का स्थानहै १ और गुदामें अपान २ और नाभिमें समान ३ और कण्ठमें उदान ४ और सबशरीरमें व्यान रहता है ५ और जिह्वामें देवदत्त पवन ६ और उदरमें नागनाम पवन ७ और सब कोशोंमें धनंजय नाम पवन ८ और छींककरानेवाला नासिकामें कृकल ९ और नेत्रोंके खोलने में कूर्म्म पवन१०रहताहै इसप्रकार जिसस्थानका पवनप्रथमजीता जाताहै तौ उसी जीतेहुए पवनके स्थानमें योगी और स्थानों से भी पवनोंको खैंचिकै उसस्थानमें स्थापनकरताहै जैसे नाभिचक्रमें समानवायुको जीतिके योगी उसीस्थानमें सब पवनोंको स्थिरकर फिर हृदयादि स्थानोंमें स्थापनकरता है तौ उस योगीका यही हवनकरनाहुआ जो जीतेहुए पवन में और पवनों का स्थापनकरना ॥ २९ ॥

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षयितकल्मषाः ।
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ॥ ३० ॥

शङ्करभाष्यम् ।

सर्व इति सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षयितकल्मषाः यज्ञैर्यथोक्तैः क्षयितो नाशितो कल्मषो येषां ते यज्ञक्षयितकल्मषाः एवं यथोक्तान् यज्ञान् निर्वर्त्त्य यज्ञशिष्टामृतभुजो यज्ञानां शिष्टं यज्ञशिष्टं यज्ञशिष्टञ्च तदमृतञ्च यज्ञशिष्टामृतं तत् भुञ्जतइति यज्ञशिष्टामृतभुजो यथोक्तान् यज्ञान् कृत्वा तच्छिष्टेन कालेन यथा विधिचोदितमन्नममृताख्यं भुञ्जत इति यज्ञशिष्टामृतभुजोयान्ति गच्छन्ति ब्रह्म सनातनं चिरंतनं मुमुक्षवश्चेत् कालातिक्रमापेक्षणायोतिशब्द सामर्थ्यात् गम्यते ॥ ३० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

प्रकृतान् यज्ञानुपसंहरति सर्वेपीति यथोक्तयज्ञनिर्वर्तनानन्तरं क्षीणे कल्मषेकिं स्यादित्याशङ्क्याह सर्वमिति यथोक्तानां मध्ये केनचिदपि यज्ञेन विशेषितस्य पुरुषस्य प्रत्यवायं दर्शयति नायमिति पादान्तरेण कथं यथोक्तयज्ञानुष्ठायिनामवशिष्टेन कालेन विहितान्नभुजां ब्रह्मप्राप्तिरित्याशङ्क्य मुमुक्षुत्वे सति चित्तशुद्धिद्वारेत्याह मुमुक्षवश्चेदिति तत् किमिदानीं साक्षादेव मोक्षो विवक्षितः तथाच गतिश्रुतिविरोधः स्यादित्याशङ्क्य गतिनिर्देशसामर्थ्यात् क्रममुक्तिरत्राभिप्रेतेत्याह कालातीति ॥ ३० ॥

स्वामिकृतटीका ।

तदेव मुक्तानां द्वादशानां यज्ञविदां फलमाह सर्वेप्येते इतियज्ञान् विन्दन्ति लभंत इति यज्ञविदो यज्ञज्ञा इति वा यज्ञैः क्षयितं नाशितं कल्मषं यैः यज्ञान्कृतावशिष्टकालेऽनिषिद्धमन्नममृतरूपं भुञ्जतइति तथा ते सनातनं नित्यं ब्रह्मज्ञानद्वारेण प्राप्नुवंति॥३०॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जे सब यज्ञोंके जाननेवाले पुरुष अपने अपने अधिकार के अनुरोधकरके इन बारह प्रकारके यज्ञोंके मध्यमें कोई प्रकारके यज्ञके करनेसे नाशको प्राप्तहुए पाप जिन्होंके और अपना यज्ञकरके उसके अनन्तरकालमें अमृतरूप अन्नको भोजनकरते हुए सब पापोंसे छूटजाते हैं और जो मोक्षमें इच्छा होय तौ सनातन जो ब्रह्म तिसको ज्ञान प्राप्ति द्वारा प्राप्त होतेहैं ॥ ३० ॥

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

नायमिति नायं लोकः सर्वप्राणिसाधारणोऽप्यस्ति यथोक्तानां यज्ञानामेकोपि यज्ञो यस्य नास्ति सोऽयज्ञस्तस्य कुतोऽन्यो विशिष्टसाधनसाध्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तृतीयं पादंव्याचष्टे नायमिति विवक्षितं कैमुतिकन्यायमाह कुत इति साधारणलोकाभावे पुनरसाधारणलोकप्राप्तिर्दूरनिरस्तेत्यर्थः यथोक्तेऽर्थे बुद्धिसमाधानं कुरुकुलप्रधानस्य अर्जुनस्य अनायासलभ्यमिति वक्तुं कुरुसत्तमेत्युक्तम् ॥ ३१ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदकरणे दोषमाह नायमिति अयमल्पसुखोपि मनुष्यलोको अयज्ञस्य यज्ञानुष्ठानरहितस्य नास्ति कुतोऽन्यो बहुसुखः परलोकः अतो यज्ञाः सर्वथा कर्तव्या इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन इन बारह प्रकारके यज्ञों में से जो पुरुष कोई प्रकारका यज्ञनहीं करताहै तिस अयज्ञ पुरुषका अर्थात् यज्ञरहित जो पुरुष तिसका सर्वसाधारण जो यह मनुष्य लोक सो भी नहीं है अर्थात् यज्ञानुष्ठान रूप मेरी आत्मासे+वहिर्मुख उसमूर्ख पुरुषका वृथाइसकर्मलोकमें जीवनहै और यही लोक न हुआ तौ सुकृतसाध्य और लोककी कौन आशाहै ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान् विद्धि तान् सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ३२॥

शङ्करभाष्यम्।

एवमिति एवं यथोक्ता बहुविधा बहुप्रकारा यज्ञा वितता विस्तीर्णा ब्रह्मणो वेदस्य मुखे द्वारे वेदद्वारेणावगम्यमानाः ब्रह्मणोमुखे वितता उच्यन्ते तद्यथा वाचि हि प्राणं जुहुमइत्यादयः कर्मजान् कायिकवाचिकमानसकर्मोद्भवान् विद्धितान् सर्वाननात्मजान् निर्व्यापारोह्यात्मा अत एवं ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् न मद्व्यापारा इमे निर्व्यापारोहमुदासीन इत्येवं ज्ञात्वास्मात् सम्यग्दर्शनात् मोक्ष्यसे संसारबन्धनादित्यर्थः ॥ ३२ ॥

+यज्ञका करना मेरीआज्ञा से

आनंदगिरिकृतटीका।

उक्तानां यज्ञानां वेदमूलत्वेनोत्प्रेक्षा निबन्धनत्वं निरस्यति एवमिति आत्मव्यापार साध्यत्वमुक्तकर्मणामाशङ्क्य दूषयति कर्मजानिति आत्मनो निर्व्यापारत्वज्ञाने फलमाह एवमिति कथं यथोक्तानां यज्ञानां वेदस्य मुखे विस्तीर्णत्वमित्याशङ्क्याह वेदद्वारेणेति आत्मनोऽवगममानत्वमेवोदाहरति तद्यथेति एतद्धस्मवैतत्पूर्वे विद्वांस आहुतिरित्युप क्रमाध्ययनाद्याक्षिप्य हेत्वाकांक्षायामुक्तं वाचिहीति ज्ञानशक्तिमद्विषये क्रियाशक्तिमदुप संहारोऽत्र विवक्षितः प्राणे वा वाचं यो ह्येवप्रभवः स एवाप्यय इति वाक्यमादिशब्दा र्थः ज्ञानशक्तिमतां क्रियाशक्तिमतांवान्योन्योत्पत्तिप्रलयत्वात्तदभावेनाध्ययनादिसिद्धिरि त्यर्थः कर्मणामात्मव्यापारजन्यत्वाभावे हेतुमाह निर्व्यापारोहीति तस्य च निर्व्यापार त्वं फलवत्त्वाज्ज्ञातव्यमित्याह अत इति एवं ज्ञानमेव ज्ञापयन् उक्तं व्यनक्ति नेत्या दिना ॥ ३२ ॥

स्वामिकृतटीका।

ज्ञानयज्ञं स्तोतुमुक्तान् यज्ञानुपसंहरति एवं बहुविधा इति ब्रह्मणो वेदस्य मुखे वि तता वेदेन साक्षाद्विहिता इत्यर्थः तथापि तान् सर्वान् वाङ्मनः कायकर्म जनितात्म स्वरूपसंस्पर्शरहितान् विद्धि जानीहि आत्मनः कर्मणोऽगोचरत्वात् एवं ज्ञात्वा ज्ञानिनि ष्ठः सन् संसाराद्विमुक्तो भविष्यसि ॥ ३२ ॥

नवलभाष्य।

इसप्रकार पूर्वोक्त बहुतप्रकारके यज्ञ वेदके मुखमें अर्थात् वेदकी द्वारा विस्तारको प्राप्तहुए हैं सो वेदमें इसप्रकार कहाहै कि [वाचिहिप्राणंजुहुम इति] वाणीके बिषे प्राणोंको हवन करते हैं इत्यादि प्रकारसे बहुतसेकहेहैं परन्तु हे अर्जुन तिन सब यज्ञोंको तुम कर्म सों उत्पन्नजानो अर्थात् कायिक वाचिक मानस कर्मोंसे उत्पन्नहुएहैं ऐसाजानो अर्थात् अनात्मजजानो क्योंकि जिससे निर्व्यापार आत्माहै इससे एवंज्ञात्वा इसप्रकार जानके अर्थात् मेरे ये व्यापारनहीं मैं तौ व्यापाररहित उदासीन हौं इसप्रकारजानके इससम्यग्दर्शनज्ञानरूप हेतुसे तुम मोक्षकोप्राप्तहोउगे अथवा इससंसार बन्धनसे छूटजाउगे यह अर्थ है ॥ ३२ ॥

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

ब्रह्मार्पणमित्यादिश्लोकेन सम्यग्दर्शनस्य यज्ञत्वं संपादितं यज्ञाश्च अनेकविधा उपदिष्टास्तैः सिद्धिपुरुषार्थप्रयोजनैर्ज्ञानं स्तूयते कथं श्रेयानिति श्रेयान् द्रव्यमयात् द्रव्यसाधनसाध्यात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञः हे परन्तप द्रव्यमयोहि यज्ञः फलस्यारम्भको न ज्ञानयज्ञः फलस्यारम्भकोऽतः श्रेयान् प्रशस्यतरः कथं यतः सर्वं कर्म्म समस्तमखिलं अप्रतिबद्धं पार्थ ज्ञाने मोक्षसाधने सर्वतः संप्लुतोदकस्थानीये परिसमाप्यतेऽन्तर्भवतीत्यर्थः यथा कृतायविजितायाधरे याः संयन्त्येवमेनं सर्वं तदभिसमेति यत् किञ्चित् प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्सवेदेति श्रुतेः ॥ ३३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

कर्म योगेनैकधाऽभिहिते सर्वस्य श्रेयः साधनस्य कर्मात्मकत्वप्रतिपत्त्या केवलं ज्ञानमनाद्रियमाणमर्जुनमालक्ष्य वृत्तानुवादपूर्वकमुत्तरश्लोकस्य तात्पर्यमाह ब्रह्मेत्यादिना सिद्धेति सिद्धं पुरुषार्थभूतं पुरुषार्थोपलक्षणं प्रयोजनं येषां यज्ञानां तैरनन्तरोपदिष्टैरिति यावत् प्रश्नपूर्वकं स्तुतिप्रकारं प्रकटयति कथमित्यादिना ज्ञानयज्ञस्य द्रव्ययज्ञात् प्रशस्यतरत्वे हेतुमाह श्रेयानिति द्रव्यसाधनसाध्यादित्युपलक्षणं स्वाध्यायादेरपि ततोऽपि ज्ञानयज्ञस्य श्रेयस्त्वाविशेषात् द्रव्यमयादियज्ञेभ्यो ज्ञानयज्ञस्य प्रशस्यतरत्वं प्रपंचयति द्रव्यमयो हीति फलस्याभ्युदयस्येत्यर्थः न फलारम्भको न कस्यचित् फलस्योत्पादकः किन्तु नित्यसिद्धस्य मोक्षस्य अभिव्यञ्जक इत्यर्थः तस्य प्रशस्यतरत्वे हेत्वन्तरमाह यत इति समस्तं कर्मेत्यग्निहोत्रादिकमुच्यते अखिलमविद्यमानं खिलं शेषोस्येत्यनल्पम इतरमिति यावत् सर्वमखिलमिति पदद्वयोपादानमसंकोचार्थं सर्वं कर्म ज्ञानेन्तर्भवतीत्यत्र छान्दोग्यश्रुतिं प्रमाणयति यथेति चतुरायके हि द्यूते कश्चिदायः चतुरंगः सन् कृतशब्देनोच्यते तस्मै विजिताय कृताय तादर्थ्येनाधरेयास्तस्मादधस्ताद्भाविनस्त्रिद्व्येकांकास्त्रेता द्वापरकलिनामानः संयस्त्यायाःसंगच्छन्ति चतुरंके खल्वाये त्रिद्व्येकांकानामन्तर्भावो भवति महासंख्यायामवान्तरसंख्यान्तर्भावावश्यं भावादेवमेनं विद्यावन्तं पुरुषं सर्वं तदाभिमुख्येन समेति संगच्छति किं तत् सर्वं यद्विदुषि पुरुषेन्तर्भवति तदाह यत्किञ्चिदिति प्रजाः सर्वा यत् किमपि साधुकर्म कुर्वन्ति तत्सर्वमित्यर्थः एनमभिसमेतीत्युक्तं तमेव विद्यावन्तं पुरुषं विशिनष्टि यस्तदिति किं तदित्युक्तं तदेव विशदयति यत्स इति सरैक्वोयत्तत्त्वंवेदतत्त्वं योन्योऽपि जानाति तमेनं सर्वं साधुकर्माभिसमेतीति योजना ॥ ३३ ॥

स्वामिकृतटीका।

ज्ञानयज्ञस्तु श्रेष्ठ इत्याह श्रेयानिति द्रव्यमयादनात्मव्यापारजन्याद्दैवादियज्ञात् ज्ञानयज्ञःश्रेष्ठः यद्यपिज्ञानस्यापि मनो व्यापाराधीनत्वमस्त्येव तथाप्यात्मस्वरूपस्य ज्ञानस्य मनः परिणामे अभिव्यक्तिमात्रं तज्जन्यत्वमिति द्रव्यमयाद्विशेषः श्रेष्ठत्वे हेतुः सर्वं कर्माखिलं फलसहितं ज्ञाने परिसमाप्यते अन्तर्भवतीत्यर्थः सर्वं तदभिसमेति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्तीति श्रुतेः ॥ ३३ ॥

नवलभाष्य।

ब्रह्मार्पण इत्यादि श्लोककरके सम्यग्दर्शनरूपज्ञानको यज्ञत्व सिद्ध किया अर्थात् यज्ञरूपता सिद्धकीगई और अनेकप्रकार के यज्ञभीकहे तिन पुरुषार्थ प्रधान यज्ञोंकरके ज्ञानयज्ञ स्तुत कियाजाता है अर्थात् सबों से अधिक रूपकरके वर्णन कियाजाताहै [श्रेयानिति] हे परन्तप हे शत्रुओंके सन्तापकरानेवाले व्रीह्यादि द्रव्यरूपसाधनसे सिद्धहोनेवाला जोयज्ञतिससे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठहै जिससे द्रव्यमययज्ञ फलकी उत्पति करनेवालाहै और ज्ञानयज्ञऐसा नहींहै इससेश्रेष्ठहै औरहेअर्जुन जिससप्रतिबन्धरहित सम्पूर्णकर्म सबजगहसे भरेहुए समुद्रके तुल्य जो मोक्षसाधनज्ञान तिसमें समाप्त होता है अर्थात् तिसके अन्तर्गत होजाता है इसमें प्रमाणभूतछान्दोग्य की श्रुति

को कहते हैं [यथाकृतायविजितायाधरेयाःसंयन्त्येवमेनंसर्वंतदभिसमेतिय त्किञ्चित्प्रजाःसाधुकुर्वंतियस्तद्वेदयत्सवेदेतिश्रुतेः] अर्थ जिसद्यूतमें अर्थात् जुआमें चारपांसे होतेहैं और चारदाउँ भी होतेहैं तिसमें ऐसा संकेतहै कि जिसमें एककाअंक होताहै उसको कलियुग कहते हैं और जिसमें दो अंक होयँ उसको द्वापर कहते हैं और जिसमें तीन अंकहोयँ उसको त्रेताकहते हैं और जिसमें चार अंकहोयँ उसको सतयुग कहतेहैं तहां चारिके अंकका पांसापरै तौ वह सतयुगको जीतताहै उसके जीतनेसे कलियुगको आदि लके सबयुग जीतेजाते हैं तौ उसपुरुषका पूरा पूरा दाउं होताहै यहव्यव-स्था है अब श्रुतिका अर्थ कहते हैं कि जैसे सतयुगके अंकके जीतनेसे नीचे के जे कलियुगादिक अंकहैं वे भी उसमें आके मिलजाते हैं अर्थात् जीते जातेहैं क्योंकि बहुत संख्यामें थोड़ी संख्याका अन्तर्भावहोना युक्त ही है तैसेही जो कुछ प्रजा पुण्यकरती हैं सो सबपुण्य इसविद्यायुक्त पुरुषकोप्राप्त होताहै कौनसे पुरुषको कि जिसविद्याको रैक्कऋषि जानते हैं उसविद्याको जो और जानताहै तौ उस पुरुषको वह सब सुकृत होताहै जोकि सबप्रजा करती हैं तब इसश्रुतिके प्रमाणसे ज्ञानयज्ञमें सब यज्ञों का फल समाप्त होताहै ॥ ३३ ॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ ३४॥

शङ्करभाष्यम्।

तदेतद्विशिष्टं ज्ञानं तर्हि केन प्राप्यत इत्युच्यते तद्विद्धीति तद्विद्धि विजानीहि येन विधिना प्राप्यत इत्याचार्य्यानभिगम्य प्रणिपातेन प्रकर्षेण नीचैः प्रपतनं प्रणिपातो दीर्घनमस्कारः तेन कथं बन्धः कथं मोक्षः का विद्या का चाविद्येति परिप्रश्नेन सेवया गुरुशुश्रूषयैवमादिना प्रश्र येणावर्जिता आचार्य्या उपदेक्ष्यन्तिकथयिष्यंति ते ज्ञानं यथोक्तविशेषणं ज्ञानिनो ज्ञानवन्तोपि केचिद्यथावत्तत्त्वदर्शनशीलाश्च नभवन्ति अपरे तु भवन्त्यतो विशिनष्टि तत्त्वदर्शिन इतिये सम्यग्दर्श नस्तैरुपदिष्टं ज्ञानं कार्य्यक्षमं भवति नेतरदिति भगवतो मतम् ॥ ३४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

यद्येवं प्रशस्यतर मिदं ज्ञानं तर्हि केनोपायेन तत्प्राप्तिरिति पृच्छति तदेतदिति ज्ञान प्राप्तौ प्रत्यासन्नमुपायमुप दर्शति उच्यत इति तद्विज्ञानं गुरुभ्यो विद्धि गुरवश्च प्रणिपा तादिभिरुपायैरावर्जितचेतसो वदिष्यन्तीत्याह तद्विद्धीति उपदेष्टृत्वमुपदेशकर्तृत्वं परोक्ष ज्ञानमात्रेण न भवतीत्याह उपदेक्ष्यन्तीति तदिति प्रेक्षितं ज्ञानसाधनं गृह्यते येन वि धिनेति विशेषदर्शनात् यद्वा येनाचार्यावर्जनप्रकारेण तदुपदेशवशादपेक्षितं ज्ञानं लभ्यते तथा तज्ज्ञानमाचार्येभ्यो लभस्वेत्यर्थः तदेव स्फुटयति आचार्यानिति एवमादिनेत्या दिशब्देन शमादयो गृह्यन्ते एवमादिना विद्धीति पूर्वेण सम्बन्धः उत्तरार्द्धं व्याचष्टे प्र श्रयेणेति प्रश्रयो भक्तिश्रद्धापूर्वको निरतिशयोऽवनतिविशेषः यथोक्त विशेषणं पूर्वोक्तेन प्रकारेण प्रशस्यतममित्यर्थः विशेषणस्य पौनरुक्त्यपरिहारार्थमर्थभेदं कथयति ज्ञानवन्तोऽ पीति ज्ञानिन इत्युक्त्वा पुनस्तत्त्वदर्शिन इति ब्रुवतो भगवतोऽभिप्रायमाह ये सम्य

गिति बहुवचनञ्चैतदाचार्यविषयं बहुभ्यः श्रोतव्यं बहुधा चेति सामान्यन्यायाभ्यनु ज्ञानार्थं नत्वात्मज्ञानमधिकृत्य आचार्यबहुत्वं विवक्षितं तस्य तत्त्वसाक्षात्कारवदार्य मात्रोपदेशादेवोदयसम्भवात् ॥ ३४ ॥

स्वामिकृतटीका।

एवंभूतात्मज्ञाने साधनमाह तद्विति तज्ज्ञानं विद्धि जानीहि प्राप्नुहीत्यर्थः ज्ञानिनां प्रणिपातेन नमस्कारेण ततः परिप्रश्नेन कुतोऽयंमम संसारः कथं वा निवर्त्तते इति परिप्रश्नेन सेवया गुरुशुश्रूषया च ज्ञानिनः शास्त्रज्ञास्तत्त्वदर्शिनो परोक्षानुभवसम्पन्नाश्च ते तुभ्यं ज्ञानमुपदेशेन सम्पादयिष्यन्ति ॥ ३४ ॥

नवलभाष्य।

वह ज्ञान किस उपायकरके प्राप्तहोताहै इसआकांक्षामें कहते हैं कि हे अर्जुन सो ज्ञान आचार्य के संमुखजाके और अपनामें नैच्यानुसन्धानसे अर्थात् अपनाको छोटामानके साष्टांग दण्डवत्प्रणाम करनेसे और हेभगवन् हे गुरो कैसे संसारमें बन्धनहोताहै और कैसे मोक्षहोताहै और कौनविद्या है और कौन अविद्याहै इसप्रकार प्रश्नकरनेसे और निष्कपट गुरूकी शुश्रूषाकरने से इत्यादि नम्रताके भावसे प्रसन्नहुए जेतत्त्वदर्शी आचार्यतेतुझको ज्ञानका उपदेश करेंगे और ज्ञानवान्भी होतेहैं तिन्होंमें कोई तो यथावत् तत्त्वदर्शीहोते हैं कोई नहीं होतेहैं इससे भगवान्ने तत्त्वदर्शी और ज्ञानी इनदोनों पदोंको कहा अर्थात् जेतत्त्वदर्शी सम्यग्दर्शी अनुभवरूप रूपज्ञान सम्पन्न जेज्ञानी तिन्होंकरके उपदेश किया जो ज्ञानसो संसाररूप बन्धनके नाशकरने को समर्थ होताहै और का उपदेश किया नहीं होता यहभगवान्का अभिप्राय है ॥ ३४ ॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥ ३५॥

शङ्करभाष्यम्।

तथा च सतीदमपि समर्थं वचनं यदिति यत् ज्ञात्वा यत् ज्ञानं तैरुपदिष्टमधिगम्य प्राप्य पुनर्भूयो मोहमेवं यथेदानीं मोहं गतोऽसि पुनरेवं न यास्यसि हे पाण्डव किञ्च येन ज्ञानेन भूतान्यशेषेण ब्रह्मादीनि स्तम्बपर्य्यन्तानि द्रक्ष्यसि साक्षादात्मनि प्रत्यगात्मनि मत्संस्थानीमानि भूतानीति अथो अपि मयि वासुदेवे परमेश्वरे चेमानीति क्षेत्रज्ञेश्वरैकत्वं सर्वोपनिषत्प्रसिद्धं द्रक्ष्यसीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

विशिष्टैराचार्य्यैरुपदिष्टे ज्ञाने कार्यक्षमे प्राप्ते सति समनन्तरवचनमपि योग्यविषयमर्थवद्भवतीत्याह तथाचेति अतस्तस्मिन् विशिष्टे ज्ञाने त्वदीयमोहापोहहेतौ निष्ठावता भवता भवितव्यमिति शेषः तत्र निष्ठा प्रतिष्ठायै तदेव ज्ञानं पुनर्विशिनष्टि येनेति यज्ज्ञात्वेत्ययुक्तं ज्ञानायोगादित्याशङ्क्य प्राप्त्यर्थत्वमधिपूर्वस्य गमेरंगीकृत्य व्याकरोति अधिगम्येति इतश्चाचार्य्योपदेशलभ्ये ज्ञाने फलवति प्रतिष्ठावता भवितव्यमित्याह किञ्चेति

जीवे चेश्वरे चोभयत्र भूतानां प्रतिष्ठितत्वप्रतिनिर्देशे भेदवादानुमतिः स्यादित्याशङ्क्याह चेत्रज्ञेति मूलप्रमाणाभावे कथं तदेकत्वदर्शनं स्यादित्याशङ्क्याह सर्वैति ॥ ३५ ॥

स्वामिकृतटीका।

ज्ञानफलमाह यज्ज्ञात्वेति सार्द्धैस्त्रिभिः यज्ज्ञानं ज्ञात्वा प्राप्य पुनर्बन्धुवधादिनिमित्तं मोहं न प्राप्स्यसि तत्र हेतुर्येन ज्ञानेन भूतानि पितृपुत्रादीनि स्वाविद्या विजृम्भितानि आत्मन्येवाभेदेन द्रक्ष्यसि अथो अनन्तरम् आत्मानं मयि परमात्मन्यभेदेन द्रक्ष्यसीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

नवलभाष्य।

अबतैसे होनेमें यह भी बचनसमर्थ है इससे कहते हैं [यदिति] हे अर्जुन जिस तत्त्वदर्शियों करके उपदिष्ट ज्ञानको प्राप्तहोकै जैसे इससमयमें मोहको प्राप्तहुआ है ऐसे फिर मोहको प्राप्त नहींहोगा और हेपाण्डव जिसज्ञानकरके ब्रह्माकोआदिलैकै तृणपर्य्यन्त जे सबभूत प्राणी तिनको साक्षात् अपने आत्मस्वरूपहीमें देखैगा और मैं जो वासुदेव परमेश्वर तिसमें भी देखैगा इसप्रकार सबउपनिषदोंमें प्रसिद्ध जो जीव ईश्वरका अभेद तिसको देखैगा ॥ ३५ ॥

अपि चेदसि पापिभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ ३६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्चैतस्य ज्ञानस्य माहात्म्यं अपीति अपि चेदसि पापिभ्यः पापकृद्भ्यः सर्वेभ्यः सकाशादतिशयेन पापकृत् पापकृत्तमः यद्यसि भवसि सर्वं ज्ञानप्लवेनैव ज्ञानमेव प्लवं ज्ञानप्लवं कृत्वा वृजिनं वृजिनार्णवं पापं सन्तरिष्यसि धर्म्मोऽपि मुमुक्षोः पापमुच्यते ॥ ३६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ज्ञानस्य प्रकारान्तरेण प्रशंसां प्रस्तौति किञ्चेति पापकारिभ्यः सर्वेभ्यः सकाशादतिशयेन पापकारित्वमेकस्मिन्नसम्भावितमपि ज्ञानमाहात्म्यप्रसिद्ध्यर्थमङ्गीकृत्य ब्रवीति अपिचेदिति ब्रह्मात्मैक्यज्ञानस्य सर्वपापनिवर्त्तकत्वेन माहात्म्यमिदानीं प्रकटयति सर्वमिति अधर्मे निवृत्तेऽपि धर्मरूपप्रतिबन्धान्नज्ञानवतोऽपि मोक्षः सम्भवतीत्याशङ्क्याह धर्मोपीति इहेत्यध्यात्मशास्त्रं गृह्यते ॥ ३६ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च अपिचेदिति सर्वेभ्योऽपि पापकारिभ्यो यद्यप्यतिशयेन पापकारीत्वमसि तथापि सर्वं पापसमुद्रं ज्ञानप्लवेनैव ज्ञानपोतेनैव सम्यगनायासेन तरिष्यसि ॥ ३६ ॥

नवलभाष्य।

अब और ज्ञानका माहात्म्यकहते हैं [अपीति] अब हेअर्जुन जो कदाचित तू जितने पापकरनेवाले मनुष्य हैं तिनसबोंसे अपनाको अधिकपाप करनेवाला भी मानताहोय तो भी ज्ञानरूपी जो प्लवअर्थात् काष्ठादिनिर्मित

स्वल्पनौका जो घन्नयीनाम प्रसिद्ध तिसकरके अथवाप्लव करके यहां बड़ी नौकाका ग्रहणहै जिसको जहाज कहतेहैं तिसकरके तू पापरूप समुद्रको पारहोजायगा और धर्मभी यहांमुमुक्षुको पापकहा जाताहै ॥ ३६ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

ज्ञानं कथं नाशयति पापमिति सदृष्टान्तमुच्यते यथेति यथा एधांसि काष्ठानि समिद्धः सम्यक् इद्धो दीप्तोऽग्निर्भस्मसात् भस्मीभावं कुरुते अर्जुन एवं ज्ञानमेव अग्नि ज्ञानाग्निः सर्वकर्म्माणि भस्मसात् कुरुते तथा निर्बीजं करोतीत्यर्थः नहि साक्षादेव ज्ञानाग्निः तानि कर्म्माणी न्धनवद् भस्मीकर्त्तुं शक्नोति तस्मात् सम्यक्दर्शनं सर्वकर्मणां निर्बीजत्वे कारणमित्यभिप्रायः सामर्थ्यात् येन कर्म्मणा शरीरमारब्धं तत् प्रवृत्तफलत्वादुपभोगेनैव क्षीयते अतो यान्यप्रवृत्तफलानि ज्ञानोत्पत्तेः प्राक् कृतानि ज्ञानसहभावीनि चातीतानेकजन्मकृतानि च तान्येव सर्वाणि भस्मसात् कुरुते ॥ ३७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

ज्ञाने सत्यपि धर्माधर्मयोरुपलम्भात् कुतस्तयोस्ततो निवृत्तिरित्याशङ्क्य ज्ञानस्य धर्माधर्मनिवर्त्तकत्वं दृष्टान्तेन दर्शयितुमनन्तरश्लोकमवतारयति ज्ञानमिति योग्यायोग्यविभागेन निवर्तकत्वानिवर्तकत्वविभागमुदाहरति यथेति दृष्टान्तानुरूपं दार्ष्टान्तिकमाचष्टे ज्ञानाग्निरिति योग्यविषयेऽपि दाहकत्वमग्नेरप्रतिबन्धापेक्षयेति विवक्षित्वा विशिनष्टि सम्यगिति दार्ष्टान्तिकं व्याचष्टे ज्ञानमेवेति ननु ज्ञानं साक्षादेव कर्मदाहकं किमिति नोच्यते निर्बीजं करोति कर्मेति किमिति व्याख्यानमित्याशङ्क्याह नहीति ज्ञानस्य स्वप्रमेयावरणाज्ञानापाकरणे सामर्थ्यस्य लोके दृष्टत्वादविक्रियब्रह्मात्मज्ञानमपि तदपि तदज्ञानं निवर्तयन् तज्जन्यकर्तृत्वभ्रमं कर्मबीजभूतं निवर्तयति तन्निवृत्तौ च कर्माणि न स्थातुं पारयन्ति नतु साक्षात् कर्मणां निवर्तकं ज्ञानम् अज्ञानस्यैव निवर्तकमिति व्याप्तेस्तदनिवृत्तौ तु पुनरपि कर्मोद्भवसम्भवादित्यर्थः ज्ञानस्य साक्षात् कर्मनिवर्तकत्वाभावे फलितमाह तस्मादिति सम्यग्ज्ञानं मूलभूताज्ञाननिवर्तनेन कर्मनिवर्तकमिष्टंचेदारब्धफलस्यापि कर्मणो निवृत्तिप्रसंगात् ज्ञानोदयसमकालमेव शरीरपातः स्यादित्याशङ्क्याह सामर्थ्यादिति ज्ञानोदयसमसमयमेव देहापोहे तत्त्वदर्शिभिरुपदिष्टं ज्ञानं फलवदिति भगवदभिप्रायस्य बाधितत्वप्रसंगादाचार्यलाभान्यथानुपपत्त्या प्रवृत्तफलकर्मसम्पादकमज्ञानलेशं न नाशयति ज्ञानमित्यर्थः कथं तर्हि प्रारब्धफलं कर्म नश्यतीत्याशङ्क्याह येनेति तर्हि कथं ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् करोतीत्युक्तं तत्राह अत इति ज्ञानादारब्धफलानां कर्मणां निवृत्त्यनुपपत्तेरनारब्धफलानि यानि कर्माणि पूर्वं ज्ञानोदयादस्मिन्नेव जन्मनि कृतानि ज्ञानेन च सह वर्तमानानि प्राचीनेषु चानेकेषु जन्मस्वर्जितानि तानि सर्वाणि ज्ञानं कारण निवर्तनेन निवर्तयतीत्यर्थः ॥ ३७ ॥

स्वामिकृतटीका।

समुद्रवत् स्थितस्यैव पापस्य अतिलंघनमात्रं न तु पापस्य नाश इति भ्रान्तिं दृष्टान्तेन वारयन्नाह यथैधांसीति एधांसि काष्ठानि प्रदीप्तोऽग्निर्यथा भस्मीभावं नयति तथा

त्मज्ञानस्वरूपोऽग्निः प्रारब्धकर्मफलव्यतिरिक्तानि सर्वाणिकर्माणि भस्मीकरोतीत्यर्थः॥३७॥

नवलभाष्य।

अब ज्ञानपापको कैसे नाशकरताहै यहदृष्टान्त सहित वर्णन करते हैं [यथेति] हे अर्जुन जैसे सम्यक् प्रकारका दीप्तप्रज्वलित अग्निसो काष्ठोंको भस्मकरताहै तैसे ज्ञानरूप अग्निसब कर्मोंको भस्मकरता है अर्थात् निर्बीज करदेता है जिससे और देहादिकोंकी उत्पादन करनेकी शक्तिकर्मोंको नहीं रहतीहै कुछ इन्धनके तुल्यसाक्षात् कर्मोंको भस्मकरने का ज्ञानाग्नि समर्थ नहीं है तिससे सम्यग्दर्शनरूप जो ज्ञानसो सबकर्मोंके निर्बीजत्वमें कारण है क्योंकि लोकमें जैसे यथार्थ शुक्तिज्ञान जो है सो उसशुक्तिका अर्थात् सीपी के स्वरूपका आच्छादन करनेवाला जो अज्ञान तिसको दूरकरनेको समर्थहै तैसेही अविक्रियब्रह्मात्मज्ञान भी अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा आत्मामें कर्मका बीजभूत जो कर्तृभ्रम अर्थात् मैं करताहूं इसभ्रमको निवृत्ति करता है उसभ्रमकी निवृत्तिमें ज्ञानके आगे कर्म अपने आपको स्थितहोने को समर्थ नहींहोते हैं यही कर्मोंका भस्महोनाहै इससे ज्ञान साक्षात् कर्म का निवर्तक नहीं है किन्तु परम्परा सम्बन्धकरके अज्ञान निवृत्तिद्वाराही है और जो ज्ञान साक्षात् कर्मोंको ही भस्मकरताहै और अज्ञानकी निवृत्तिमें कारण नहीं है ऐसा मानै तौ फिर कर्मोंकी उत्पत्तिका प्रसंगरूप दोष प्राप्त होगा अब इसप्रकारसे यद्यपि ज्ञान अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा सबकर्मों का नाशकरनेवाला है तौ भी जिसकर्म करके इसशरीर का आरम्भहुआ है उस प्रारब्धकर्म का तौ ज्ञाननाश नहीं करता है प्रारब्ध कर्म तौ फलके देने में प्रवृत्तहुआ है इससे फलके भोगही करके क्षयको प्राप्तहोताहै यहबात भगवान् के वचन सामर्थ्यहीसे जानीजाती है क्योंकि भगवान् ने यहकहा कि हे अर्जुन जे तत्त्वदर्शी ज्ञानीहैं वे तुझको ज्ञानका उपदेशकरैंगे तौ जो ज्ञानकी प्राप्तिहोतेही प्रारब्ध कर्म का भी नाशहोता तौ प्रारब्धके नाशमें शरीरका भी नाशहोजाता तौ ज्ञानियों के देहके नाशहोने से किसी ज्ञानी पुरुषकी स्थिति पृथिवीमें सम्भवही नहीं होगी तौ फिर अब कौनतत्त्वदर्शी ज्ञानी सम्भव होसक्ते हैं जे अर्जुनको उपदेशकरैंगे तौ भगवद्वचनही व्यर्थ होजायगा इससे निश्चितहुआ कि प्रारब्ध कर्मका भोगहीसे क्षय होता है और वेदमें भी ऐसा कहाहै कि [आचार्यवान्पुरुषोवेद] जो आचार्य युक्त पुरुष है अर्थात् जिसका उपदेशकरनेवाला कोई गुरुहै वही पुरुष परमेश्वर को जानसक्ताहै तौ जो ज्ञानी गुरुकी पृथिवीमें स्थितिही सम्भव न होती तौ वेदका कहना भी व्यर्थ होजायगा इससे ज्ञानकी उत्पत्तिके पहिले जे अप्रवृत्तफल कर्महैं अर्थात् फलके देने को नहीं प्रवृत्तहुए नाम प्रारब्धरहित जे संचितकर्म और ज्ञानके अनन्तर ज्ञानके संग होनेवाले जे क्रियमाण कर्म और व्यतीत अनेकजन्मोंके कियेहुए जे कर्म तिनसबों को ज्ञानरूप अग्नि भस्मकरता है॥ ३७॥

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ ३८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यत एवमतः नहीति नहि ज्ञानेन सदृशं तुल्यं पवित्रं पावनं शुद्धि करमिह विद्यते हि यस्मात् तत् ज्ञानं स्वयमेव योग संसिद्धो योगेन कर्मयोगेन समाधियोगे न च संसिद्धः संस्कृतो योग्यतामापन्नो मुमुक्षुः कालेन महता आत्मनि विन्दति लभत इत्यर्थः ॥ ३८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

नन्वन्येनैव परमपरिशुद्धिकरेण केनचिदश्वमेधादिना परमपुरुषार्थसिद्धेरन्यमात्मज्ञाने नेत्याशङ्क्याह यत इति पूर्वोक्तेन प्रकारेण ज्ञानमाहात्म्यं यतः सिद्धमतस्तेन ज्ञानेन तुल्यं परिशुद्धिकरं परमपुरुषार्थोपयिकमिह व्यावहारभूमौ नास्तीत्यर्थः तत् पुनरात्म विषयं ज्ञानं सर्वेषां किमिति झटिति नोत्पद्यते तत्राह तत् ज्ञानं स्वयमिति महता कालेन यथोक्तेन साधनेन योग्यतामापन्नः तदधिकृतः स्वयं तदात्मनि ज्ञानं विन्दतीति योजना सर्वेषां झटिति ज्ञानमनुदयो योग्यता वैधुर्यादिति भावः ॥ ३८ ॥

स्वामिकृतटीका।

तत्र हेतुमाह नहीति पवित्रं शुद्धिकरं इह तपोयोगादिषु मध्ये ज्ञानतुल्यं नास्त्येव तर्हि सर्वेऽपि किमिति आत्मज्ञानमेव नाभ्यस्यन्तीत्यत आह तत् स्वयमिति सार्द्धेन तदात्मविषयं ज्ञानं कालेन महता कर्मयोगेन संसिद्धो योग्यतां प्राप्तः सन् स्वयमेवानायासेन लभते न तु कर्मयोगंविनेत्यर्थः ॥ ३८ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जिससे ऐसाहै इससे ज्ञानके सदृश पवित्र पावन शुद्धि करनेवाला कोईपदार्थ नहीं है तिससे इसज्ञानको आपही योगसंसिद्ध अर्थात् कर्मयोगकरके अथवा समाधियोग करके संस्कारयुक्त पुरुष बड़ेकाल करके अपने आत्माही में प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानंलब्ध्वा परांशान्तिमचिरेणाऽधिगच्छति ॥ ३९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

येनैकान्तेन ज्ञानप्राप्तिर्भवति स उपाय उपदिश्यते श्रद्धावानिति श्रद्धावान् श्रद्धालुर्लभते ज्ञानं श्रद्धालुत्वेऽपि भवति कश्चित् मन्दप्रस्थानोऽत आह तत्परो गुरूपासनादावभियुक्तोज्ञान लब्ध्युपाये श्रद्धावान् तत्परो जितेन्द्रियःस्यादित्यतआहसंयतेन्द्रियः संयतानिविषयेभ्यो निवर्त्तितानियस्येन्द्रियाणिस संयतेन्द्रियो योगी य एवम्भूतः श्रद्धावांस्तत्परः संयतेन्द्रियश्च सोऽवश्यं ज्ञानंलभतेप्रणिपातादिस्तु वाह्यानैकान्तिकोपि भवति मायावित्वादिसम्भवात्नतु तथातु श्रद्धावत्वादादावित्येकान्ततो ज्ञानलब्ध्युपायः किं पुनर्ज्ञानलाभात् स्यादित्युच्यते ज्ञानं लब्ध्वा परां मोक्षाख्यां शान्तिमुपरतिमचिरेण क्षिप्रमेवाधिगच्छति सम्यग्दर्शनात् क्षिप्रमेव मोक्षो भवतीति सर्वशास्त्रन्यायप्रसिद्धः सुनिश्चितोऽर्थः ॥ ३९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

कर्मयोगेन समाधियोगेन च सम्पन्नस्य ज्ञानोत्पत्तावन्तरंगसाधनमुपदिशति येनेति ज्ञानलाभे प्रयोजनमाह ज्ञानमिति न केवलं श्रद्धालुत्वमेव सहायं ज्ञानलाभे हेतुरपि तु तात्पर्यमपीत्याह श्रद्धालुत्वेऽपीति मन्दप्रस्थानत्वं तात्पर्यविधुरत्वं नच तस्योपदिष्टमपि ज्ञानमुत्पत्तुमीष्टे तेन तात्पर्यमपि तत्र कारणं भवतीत्याह अत आहेति अभियुक्तो निष्ठावान् उपासनादावित्यादिशब्देन श्रवणादि गृह्यते न केवलं श्रद्धा तात्पर्यं चेत्युभयमेव ज्ञानकारणं किन्तु संयतेन्द्रियत्वमपि तदभावे श्रद्धादेरकिंचित्करत्वादित्याशयेनाह श्रद्धावानिति उक्तसाधनानां ज्ञानेन सहैकान्तिकत्वमाह य एवम्भूत इति तद्विद्धि प्रणिपातेनेत्यादौ प्रागेव प्रणिपातादेर्ज्ञानहेतोरुक्तत्वात् किमितीदानीं हेत्वन्तरमुच्यते तत्राह प्रणिपातादिस्त्विति तद्धि वहिरंगमिदं पुनरन्तरंगं नच तत्र ज्ञानेन प्रतिनियमो मनस्यन्यथा कृत्वा वहिरन्यथा प्रदर्शनात्मनो मायावित्वस्य सम्भवाद्विप्रलम्भकत्वादेरपि सम्भावनोपनीतत्वादित्यर्थः मायावित्वादेः श्रद्धावत्त्वात् तात्पर्यादावपि सम्भवादनैकान्तिकत्वमविशिष्टमित्याशङ्क्याह नत्विति नहि मायया विप्रलम्भेन वा श्रद्धा तात्पर्यसंयमानि योगतो निष्ठातुमर्हतीत्यर्थः उत्तरार्द्धं प्रश्नपूर्वकमवतार्य व्याकरोति किं पुनरित्यादिना सम्यग्ज्ञानादभ्यासादिसाधनानपेक्षान्मोक्षो भवतीत्यत्र प्रमाणमाह सम्यग्दर्शनादिति शास्त्रशब्देन तमेव विदित्वा ज्ञानादेव तु कैवल्यमित्यादि विवक्षितं न्यायस्तु ज्ञानादज्ञाननिवृत्ते रज्ज्वादौ प्रसिद्धत्वात् आत्मज्ञानादपिनिरपेक्षादज्ञानतत्कार्यप्रध्वंसलक्षणो मोक्षः स्यादित्येवं लक्षणम् ॥ ३९ ॥

स्वामिकृतटीका।

किंच श्रद्धावानिति श्रद्धावान् गुरूपदिष्टेऽर्थे आस्तिक्यबुद्धिमान् तत्परस्तदेकनिष्ठः संयतेन्द्रियश्च तज्ज्ञानं लभते नान्यः अतः श्रद्धादिसम्पत्त्या ज्ञानलाभात् प्राक् कर्मयोग एव शुद्ध्यर्थमनुष्ठेयः ज्ञानलाभानन्तरन्तु न तस्य किंचित्कर्तव्यमित्याह ज्ञानं लब्ध्वातु मोक्षमचिरेण प्राप्नोति ॥ ३९ ॥

नवलभाष्य।

अब जिस एकान्तउपायसे ज्ञानकी प्राप्तिहोतीहै सो उपाय उपदेशकियाजाताहै [श्रद्धाबानिति] हे अर्जुन जो पुरुष श्रद्धावान् श्रद्धालुहै अर्थात् आचार्य और शास्त्र इनके वचनमें विश्वासयुक्त है सो ज्ञानको प्राप्तहोता है और श्रद्धावान् तो है परन्तु आलस्ययुक्त है और उसउपायको नहीं जानताहै जिससे गुरू प्रसन्नहोके उपदेशकरै तो फिर कैसे ज्ञानको प्राप्तहोसक्ताहै इससे कहते हैं कि तत्परहोय अर्थात् ज्ञानकी प्राप्तिमें उपायभूतजो गुरूकी उपासनादिक तिसमें तत्परहोय सावधान रहै और श्रद्धावान् भीहै और तत्परभी है और जो जितेन्द्रिय न होयगा तो उसज्ञानकी स्थिरताही नहीं होगी इससे कहते हैं कि संयतेन्द्रियः सम्यक्प्रकार करके बशकी हैं इन्द्रियां जिसने ऐसा होय तो जो पुरुष श्रद्धावान् होय और ज्ञानकीप्राप्ति के उपायमें तत्परहोय और विषयोंसे निवृत्त करनेवाला योगीभी होय सो अवश्य ज्ञानको प्राप्तहोताहै यह वाक्यार्थ सिद्धहुआ और पूर्वोक्तप्रणिपाता-

दिक अर्थात् गुरूके पास जाके दण्डवत्करना और प्रश्नकरना ऐसा जो प-हिले ज्ञानका उपाय कहाथा सो तौ वाह्यहै और स्थिरहै क्योंकि दण्डवत् प्रणाम और प्रश्नादिक मायावी पुरुषभी दम्भकरके करसक्ताहै और माया-वी पुरुषको ज्ञानी पुरुष उपदेशहा कैसे करसक्ते हैं और श्रद्धावान् पुरुषको तौ मायादिदोष नहीं सम्भवहोता है इससे यह उपाय व्यभिचार रहितहो-नेसे स्थिरहै फिर ज्ञानके लाभसे क्या होताहै इस आशयसे कहते हैं कि हे अर्जुन ज्ञानको प्राप्तहोके पराउत्कृष्टा जो मोक्षरूपा शान्ति तिसकोशीघ्रही प्राप्तहोताहै अर्थात् सम्यग्दर्शनरूप जो ज्ञान तिससे शीघ्रही मोक्षहोता है यह सकलशास्त्र प्रसिद्ध निश्चयकिया हुआ अर्थ है ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥ ४० ॥

शङ्करभाष्यम् ।

अत्र संशयो हि न कर्त्तव्यः पापिष्ठो हि संशयः कथमित्युच्यते अज्ञश्चेति अज्ञश्चानात्मज्ञो ऽश्रद्दधानश्च संशयात्मा च विनश्यति अज्ञाऽश्रद्दधानौ यद्यपि विनश्यतः तथापि न तथा यथा संशयात्मा सतु पापिष्ठः सर्वेषां कथं नायं साधारणोपि लोकोऽस्ति तथा न परलोको न सुखं तत्रापि संशयोपपत्तेः संशयात्मनः संशयचित्तस्य तस्मात् संशयो न कर्त्तव्यः ॥ ४० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

उत्तरश्लोकस्य पातनिकां करोति अत्रेति यथोक्तसाधनवानुपदेशमपेक्ष्याचिरेण ब्रह्म साक्षात् करोति साक्षात् कृतब्रह्मत्वेऽचिरेणैव मोक्षं प्राप्नोतीत्येषोऽर्थः सम्यगा परामृश्य ते संशयस्याकर्तव्यत्वे हेतुमाह पापिष्ठोहीति उक्तं हेतुं प्रश्नपूर्वकमुत्तरश्लोकेन साधयति कथमित्यादिना अज्ञादश्रद्दधानाच्च संशयचित्तस्य विशेषमादर्शयति नायमिति द्वितीयभा गविभजनार्थं भूमिकां करोति अत्रेति अज्ञादीनां मध्ये संशयात्मनो यत्पापिष्ठत्वं तत् प्रश्नद्वारा प्रकटयति कथमिति श्लोकद्वयस्य तत्प्रयुक्तसुखस्य चाभावे हेतुमाह तत्रापी ति संशयचित्तस्य सर्वत्र संशयप्रवृत्तेर्दुर्निवारत्वादित्यर्थः संशयस्यानर्थमूलत्वस्थिते फलि तमाह तस्मादिति ॥ ४० ॥

स्वामिकृतटीका ।

ज्ञानाधिकारिणमुक्त्वा तद्विपरीतमनधिकारिणमाह अज्ञश्चेति अज्ञागुरूपदिष्टार्थान भिज्ञः कथंचिज्ज्ञानेजातेऽपि तत्राश्रद्दधानश्च जातायामपि श्रद्धायां ममेदं सिध्येन्नवे ति संशयाक्रान्तचित्तश्च विनश्यति स्वार्थात् भ्रश्यति एतेषु त्रिष्वपि संशयात्मा सर्वथा नश्यति यतस्तस्यायं लोको नास्ति धनार्जनविवाहाद्यसिद्धेः नच परलोको धर्मस्यानि ष्पत्तेः न च सुखं संशयेनैव भोगस्याप्यसम्भवात् ॥ ४० ॥

नवलभाष्य ।

और हे अर्जुन इसज्ञानके विषयमें संशय नहीं करनाचाहिये जिससे यहसंशय बड़ापापीहै काहेसे ऐसाहै इसआकांक्षामें कहतेहैं कि [अज्ञइति] हे अर्जुन अज्ञ जो अनात्मज्ञ पुरुष अर्थात् आत्मस्वरूप का नहीं जानने-

वाला और अश्रद्दधान अर्थात् श्रद्धारहित और संशयात्मा अर्थात् संदेह करके आकुलचित्त येतीनों पुरुष नाशको प्राप्त होतेहैं अर्थात् जिसप्रयोजन केलिये मनुष्य शरीर प्राप्तहुआ है तिससे भ्रष्टहुए मरेकेतुल्य कहाते हैं तिनमें अज्ञऔर श्रद्धारहित येदोनों यद्यपि नाशको प्राप्तहोते हैं तो भी तैसे नाशको प्राप्त नहीं होते हैं जैसे संशयात्मा अर्थात् संदेहयुक्त पुरुष नाश को प्राप्तहोता है क्योंकि सबके मध्यमें जिससे संदेहयुक्त पुरुष अधिकपापी है कैसेअधिक पापिष्ठहै इस आकांक्षामें कहतेहैं कि संशययुक्त पुरुषका यह सर्व साधारण मनुष्यलोकहै सो नहीं सिद्धहोता है जिससे सबधर्मोंमें और सबमनुष्योंमें संदेहहै किसीका विश्वास नहीं और न उसका परलोकबनता है क्योंकिचित्त शुद्धिद्वारा जे यज्ञदानादि धर्म तिनमें संदेह होनेसे अनुष्ठान के अभावसे परलोकमेंभी सुखनहीं और सुखमेंभी उसको संदेहहै इससे उसको कहीं सुखनहीं संभव होताहै इसीसे संशयात्मा पुरुष अपने धर्मको त्यागके परधर्मको ग्रहणकरते हैं फिर उसमेंभी संदेह होनेसे भ्रमतेही दि-खाई पड़तेहैं इससे यहसंशय परमशत्रुहै इसके दूरकरनेमें विशेषयत्नकरना चाहिये यह भगवान् का तात्पर्य है ॥ ४० ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्म्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥ ४१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कस्मात् योगेति योगसंन्यस्तकर्माणं परमार्थदर्शनलक्षणेन योगेन संन्यस्तानि कर्माणि येन परमार्थदर्शिना धर्माधर्माख्यानि तं योगसंन्यस्तकर्माणं कथं योगसंन्यस्तकर्मेत्याह ज्ञानेनात्मेश्वरैकत्वदर्शनलक्षणेन सञ्छिन्नः संशयो यस्य स ज्ञानसञ्छिन्नसंशयः य एवं योगसंन्यस्तकर्मा तमात्मवन्तमप्रमत्तं गुणचेष्टारूपेण दृष्टानि न कर्माणि निबध्नन्ति अनिष्टादिरूपं फलं नारभन्ते हे धनञ्जय ॥ ४१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

यद्यपि संशयः सर्वानर्थहेतुत्वात् कर्त्तव्यो न भवति तथापि निवर्तकाभावे तदकरणमस्वाधीनमिति शंकते कस्मादिति श्रुतियुक्तिप्रयुक्तमैक्यज्ञानं तन्निवर्तकमित्युत्तरमाह ज्ञानेनेति संशयरहितस्यापि कर्माण्यनर्थहेतूनि भवन्तीत्याशङ्क्याह योगेति विषयपरवस्य पुंसोयोगायोगात् कुतोयोगसंन्यस्तकर्मत्वमित्याशङ्क्याह आत्मवन्तमिति परमार्थदर्शनतः संशयोच्छित्तौ तदुच्छेदकज्ञानमाहात्म्यादेव कर्मणाञ्च निवृत्तावप्रमत्तस्य प्रातिभासिकानि कर्माणि बन्धहेतवो न भवन्तीत्याह न कर्माणीति कर्मयोगादेव कर्मसंन्यासस्यानुपपत्तिमाशङ्क्य आद्यं पादं विभजते परमार्थेति तच्च वैधर्मन्यासपक्षे परोक्षं फलं संन्यासपक्षेत्वपरोक्षमिति विवेकः यथोक्तज्ञानेन संन्यस्तकर्मत्वमेव सति संशये न सिध्यति संशयवतस्तदयोगादिति शंकते कथमिति द्वितीयं पादं व्याकुर्वन् परिहरति आहेत्यादिना पाठक्रमादर्थक्रमस्य बलीयस्त्वादादौ द्वितीयं पादं व्याख्याय पश्चादाद्यं पादं व्याचष्टेत्याह एवमिति सर्वमिदं प्रमादवतो विषयपरवशस्य न सिध्यतीत्यभिसन्धाय आत्म

बन्तं व्याकरोति अप्रमत्तमिति न कर्माणीत्यादि फलोक्तिं व्याचष्टे गुणचेष्टेति अभिष्टाद्दित्याशब्देन इष्टमिष्टश्च गृह्यते ॥ ४१ ॥

स्वामिकृतटीका।

अध्यायद्वयोक्तां पूर्वापरभूमिकाभेदेन कर्मज्ञानमयीं द्विविधां ब्रह्मनिष्ठामुपसंहरति योगेति द्वाभ्यां योगेन परमेश्वराराधनरूपेण तस्मिन् संन्यस्तानि समर्पितानि कर्माणि येन तं पुरुषं कर्माणि स्वफलैर्न निबध्नन्ति ततश्च ज्ञानेनात्मबोधेन सञ्छिन्नः संशयो देहाद्यभिमानलक्षणो यस्य तमात्मवन्तमप्रमादिनं कर्माणि लोकसंग्रहार्थानि स्वाभाविकानि वा न निबध्नन्ति ॥ ४१ ॥

नवलभाष्य।

किससे संदेहकी निवृत्ति होतीहै इसआकांक्षामें कहतेहैं [योगेति] हे अर्जुन परमार्थदर्शनरूप योगकरके त्यागकरे हैं धर्माधर्मरूप कर्म जिसने और जिव ईश्वरका एकत्व दर्शनरूप ज्ञानकरके कटिगया है संशय जिसका ऐसा आत्मवान् प्रमादरहित जो ज्ञानी तिसको इन्द्रियोंकी चेष्टामात्रकरके दिखाई पड़तेभी कर्महैं परन्तु तेकर्म बन्धनको नहीं करसक्तेहैं अर्थात् अनर्थ रूप फलोंको नहीं उत्पन्नकरते हैं ॥ ४१ ॥

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनाऽऽत्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

इतिश्रीभगवद्गीतायांज्ञानकर्मन्यासयोगोनामचतुर्थोऽध्यायः ४॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्मात् कर्म्मयोगानुष्ठानात् अशुद्धिक्षयहेतुकज्ञानसञ्छिन्नसंशयो न निबध्यते कर्म्मभिर्ज्ञानाग्निदग्धकर्म्मत्वादेव यस्माच्च ज्ञानकर्म्मानुष्ठानविषये संशयवान् विनश्यति तस्मादिति तस्मात् पापिष्ठमज्ञानसम्भूतम् अज्ञानादविवेकाज्जातं हृत्स्थं हृदि बुद्धौ स्थितं ज्ञानासिना शोकमोहादिदोषहरं सम्यक्दर्शनं ज्ञानं तदेवासिः खड्गस्तेन ज्ञानासिनाऽऽत्मनः स्वस्य आत्मविषयत्वात् संशयस्य नाहि परस्य संशयोऽपरेण छेत्तव्यतां प्राप्तो येनस्वस्येति विशेष्यतेऽतआत्मविषयोऽपि स्वस्यैव भवति ज्ञानासिना छित्त्वैनं संशयं तद्विनाशहेतुभूतं योगं सम्यक् दर्शनोपायं कर्मानुष्ठानमातिष्ठ कुर्विसर्थः उत्तिष्ठ चेदानीं युद्धाय भारतेति ॥ ४२ ॥

इति श्रीशाङ्करभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तस्मादित्यादि समनन्तरश्लोकगतं तत्पदापेक्षितमर्थमाह यस्मादिति सतां कर्मणामस्मदादिषु फलारम्भकत्वोपलम्भात् विदुष्यपि तेषां तदभावमनपवाधमित्याशंक्याह ज्ञानाग्नीति ननु सन्दिहानस्य तत्प्रतिवधाच्च कर्मयोगानुष्ठानं नापितद्धेतुकज्ञानं तत्रापि संशयावतारादित्याशंक्याह यस्माच्चेति श्लोकाक्षराणि व्याचष्टे तस्मादित्यादिना पापिष्ठमिति संशयस्य सर्वानर्थमूलत्वेन त्याज्यत्वं सूचयते विवेकाग्रहप्रसूतत्वादपि तस्य हेयत्वमविवेकस्यानर्थकरत्वप्रसिद्धेरित्याह अविवेकादिति न च तस्यचैतन्यवदात्मनिष्ठत्वा

दत्याज्यत्वं शंकितव्यमित्याह हृदीति शोकमोहाभ्याममभिभूतस्य पुंसो मनसि प्रादुर्भाव तः संशयस्य प्रबलप्रतिबन्धकाभावेनैव प्रध्वंसः सिद्धेदित्याशंक्येदित्यादिशंक्याह ज्ञानासि नेति स्वाश्रयस्य संशयस्य स्वाश्रयेणैव ज्ञानेन समुच्छेदसम्भवात् किमिति स्वस्येति विशे षणमित्याशंक्याह आत्मविषयत्वादिति स्थान्यादिविषयः संशयः तदविषयेण ज्ञानेन दे वदत्तनिष्ठेन तन्निष्ठोव्यावर्त्यते प्रकृतेत्वात्मविषयस्तदाश्रयश्च संशयः तथाविधेन ज्ञानेन अपनीयते तेन विशेषणमर्थवदित्यर्थः तदेव प्रपंचयति नहीति आत्माश्रयत्वस्य प्रकृते संश येसिद्धत्वेनाविवक्षितत्वात् तद्विषयस्य तद्विषयेनैव तस्य तेन निवृत्तिर्विवक्षितेत्युपसंहरति अत इति संशयसमुच्छित्त्यनन्तरं कर्तव्यमुपदिशति छित्त्वैनमिति अग्निहोत्रादिकं कर्म भगवदाज्ञया क्रमेण करिष्यामि युद्धात् पुनरुपरिरंसैवेत्याशंक्याह उत्तिष्ठेति भरतान्वये म हति क्षत्रियवंशे प्रसूतस्य समुपस्थितसमरविमुखत्वमनुचितमिति मन्वानः सन्नाह भार तेति तदनेन योगस्य कृत्रिमत्वं भगवतोऽनीश्वरत्वंच निराकृत्य कर्मादावकर्मादिदर्शना दात्मनः सम्यग्ज्ञानात् प्रणिपातादेर्बहिरंगाच्च श्रद्धादेरुद्भूतादशेषानर्थनिवृत्त्या ब्रह्म भावमभिदधता सर्वस्मादुत्कृष्टे तस्मिन्नसंशयानस्याधिकारादशेषदोषवन्तं संशयं छित्वोत्त मस्यं ज्ञाननिष्ठापरस्य कर्मनिष्ठेति स्थापितम् ॥ ४२ ॥

इति आनन्दगिरिकृतटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

स्वामिकृतटीका।

तस्मादज्ञानेति यस्मादेवं तस्मादात्मनोऽज्ञानेन सम्भूतं हृदि स्थितमेनं संशयं शो कादिनिमित्तं देहात्मविवेकज्ञानखड्गेन छित्त्वा कर्मयोगमातिष्ठ आश्रय तत्र च प्रथमं प्रस्तुताय युद्धायोत्तिष्ठ हे भारतेति क्षत्रियत्वेन युद्धस्य धर्म्यत्वं दर्शितं पुमवस्थाभेदेन कर्मज्ञानमयोद्विधा निष्ठोक्ता येन तं वन्दे शौरिं संशयसञ्छिदम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीधरस्वामिकृतटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जिससे कर्म योगके अनुष्ठानसे अन्तःकरणकी अशुद्धिके क्षयमें कारणभूत ज्ञानकरके कटिगयाहै संशय जिसका ऐसा जो पुरुष सो कर्मोंकरके बन्धनको नहीं प्राप्तहोता है क्योंकि ज्ञानरूप अग्निकरके कर्म भस्महोगयेहैं इसहेतुसे और जिससे ज्ञान और कर्म इनकेअनुष्ठानविषयमें जो संदेह तिसकरके युक्त पुरुष नाशको प्राप्तहोताहै तिससे अज्ञानसे नामअविवेक से उत्पन्नहुआ और अत्यन्तपापी ऐसा जो बुद्धिमें स्थितसंशय तिसको ज्ञानखड्गकरके अर्थात् शोक मोहादि दोषोंका हरनेवाला जो ज्ञानसो हुआ खड्ग तिसकरके तिसअपने संशयको काटकरके ज्ञानका उपाय जो कर्म योग तिसकोकर युद्धकरने को उठ औरका संशय औरकर के नहीं काटाजाताहै इससे आत्मनः ऐसा कहा ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतायांश्रीमच्छंकराचार्यकृतभाष्येस्वर्गवास्युमादत्तविर चिततत्त्वविवेकामृताख्येनवलभाष्येचतुर्थोध्यायःसमाप्तः ॥ ४ ॥



श्रीमद्भगवद्गीतासटीक॥

पञ्चमोऽध्यायः।

अर्जुनउवाच।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगंच शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥ १॥

शङ्करभाष्यम्।

कर्म्मण्यकर्म्म यः पश्येदित्यारभ्य स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं शारीरं केवलं कर्म्म कुर्वन् यदृच्छालाभसन्तुष्टो ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः कर्म्मजान् विद्धि तान् सर्वान् सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि योगसंन्यस्तकर्माणमित्यन्तैर्वचनैः सर्वकर्म्मसंन्यासमवोचद्भगवान् छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठेत्यनेन वचनेन पुनर्योगञ्च कर्मानुष्ठानलक्षणमनुतिष्ठेत्युक्तवान् तयोरुभयोश्च कर्मानुष्ठानकर्म्मसंन्यासयोः स्थितिगतिवत् परस्पराविरोधादेकेन सह कर्त्तुमशक्यत्वात् कालभेदेन चानुष्ठानविधानाभावादर्थादेतयोरन्यतरकर्त्तव्यतायां प्राप्तौ सत्यां यत् प्रशस्यतरमेतयोः कर्मानुष्ठानकर्मसंन्यासयोः तत् कर्त्तव्यं नेतरादित्येवं मन्यमानः प्रशस्यतरबुभुत्सया अर्जुनउवाच संन्यासं कर्मणां कृष्णेत्यादिना ननु चात्मविदोज्ञानयोगेन निष्ठां प्रतिपादयिष्यन् पूर्वोदाहृतैर्वचनैर्भगवान् सर्वकर्म्मसंन्यासमवोचन्नत्वनात्मज्ञानस्यातश्च कर्मानुष्ठानकर्मसंन्यासयोर्भिन्नपुरुषविषयत्वादन्यतरस्य प्रशस्यतरत्वबुभुत्सया प्रश्नोऽनुपपन्नःसत्यमेवं त्वदभिप्रायेणप्रश्नो नोपपद्यतेप्रष्टुः स्वाभिप्रायेण पुनः प्रश्नो युज्यत एवेति वदामः कथं पूर्वोदाहृतैर्वचनैर्भगवता कर्म्मसंन्यासस्य कर्त्तव्यतया विवक्षितत्वात् प्राधान्यमन्तरेण च कर्त्तारं तस्य कर्त्तव्यत्वासम्भवादनात्मविदापि कर्त्तापक्षे प्राप्तोऽनूद्यत इति न पुनरात्मवित्कर्त्तृकत्वमेव संन्यासस्य विवक्षितमित्येवं मन्वानस्यार्जुनस्य कर्मानुष्ठानकर्मसंन्यासयोरविद्वत्पुरुषकर्त्तृकत्वमप्यस्तीति पूर्वोक्तेन प्रकारेण तयोः परस्पराविरोधादन्यतरस्य कर्त्तव्यत्वे प्राप्ते प्रशस्यतरञ्च कर्त्तव्यं नेतरदिति प्रशस्यतरविविदिषया प्रश्नो नानुपपन्नःप्रतिवचनवाक्यार्थनिरूपणेनापि प्रष्टुरभिप्राय एवमेवेति गम्यते कथं संन्यासकर्म्मयोगौ निःश्रेयसकरौ तयोस्तु कर्म्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते इति प्रतिवचनमेतन्निरूप्यं किमनेनात्मवित्कर्त्तृकयोः संन्यासकर्मयोगयोर्निःश्रेयसकरत्वं प्रयोजनमुक्त्वा तयोरेव कुतश्चिद्विशेषात्कर्मसंन्यासात्कर्म्मयोगस्य विशिष्टत्वमुच्यते आहोस्विदनात्मवित्कर्त्तृकयोःसंन्यासकर्मयोगयोःतदुभयमुच्यत इति किञ्चातो यथात्मवित्कर्त्तृकयोः कर्म्मसंन्यासकर्म्मयोगयोर्निः श्रेयसकरत्वंतयोस्तुकर्म्मसंन्यासात् कर्म्मयोगस्य विशिष्टत्वमुच्यते यदिवानात्मवित्कर्त्तृकयोःसंन्यासकर्म्म

योगयोस्तदुभयमुच्यत इति अत्रोच्यते आत्मवित्कर्त्तृकयोः संन्यासकर्म्मयोगयोरम्भावात्तयोर्निःश्रेयसकरत्ववचनं तदीयाच्च संन्यासात् कर्म्मयोगस्य विशिष्टत्वाभिधानमित्येतदुभयमनुपपन्नं यद्यनात्मविदः कर्म्मसंन्यासः तत्प्रतिकूलञ्च कर्म्मानुष्ठानलक्षणः कर्म्मयोगः सम्भवेतां तदा तयोर्निःश्रेयसकरत्वोक्तिः कर्म्मयोगस्य च कर्म्मसंन्यासाद्विशिष्टत्वाभिधानमित्येतदुभयमुपपद्येत आत्मविदस्तु संन्यासकर्म्मयोगयोरसम्भावात्तयोर्निःश्रेयसकरत्वाभिधानं कर्म्मसंन्यासाच्च कर्म्मयोगो विशिष्यत इति चानुपपन्नमत्राह किमात्मविदः संन्यासकर्म्मयोगयोरप्यसम्भव आहोस्विदन्यतरस्यासम्भवः यदा चान्यतरस्यासम्भवस्तदा किं कर्म्मसंन्यासस्योत कर्म्मयोगस्येसम्भवे कारणञ्च वक्तव्यमिति अत्रोच्यते आत्मविदो निवृत्तमिथ्याज्ञानत्वाद्विपर्य्ययज्ञानमूलस्य कर्मयोगस्यासम्भवः स्यात् जन्मादिसर्वविक्रियारहितत्वेन निष्क्रियमात्मानमात्मत्वेन यो वेत्ति तस्यात्मविदः सम्यग्दर्शनेनास्तमिथ्याज्ञानस्य निष्क्रियात्मस्वरूपावस्थानलक्षणं सर्वकर्मसंन्यासमुक्त्वा तद्विपरीतस्य मिथ्याज्ञानमूलककर्त्तृत्वाभिमानपुरःसरस्य सक्रियात्मस्वरूपावस्थानरूपस्य कर्मयोगस्येह शास्त्रे तत्र तत्रात्मस्वरूपनिरूपणप्रदेशेषु सम्यग्ज्ञानतत्कार्य्यविरोधादभावः प्रतिपाद्यते यस्मात् तस्मादात्मविदो निवृत्तमिथ्याज्ञानस्य विपर्य्ययज्ञानमूलः कर्मयोगो न सम्भवतीति युक्तमुक्तं स्यात् केषु२ पुनरात्मस्वरूपनिरूपणप्रदेशेष्वात्मविदः कर्माभावः प्रतिपाद्येत इत्यत्रोच्यते अविनाशि तु तदिति प्रकृत्य य एनं वेत्ति हंतारं वेदाविनाशिनं नित्यमित्यादौ तत्र तत्रात्मविदः कर्माभाव उच्यते ननु च कर्मयोगोऽप्यात्मस्वरूपनिरूपणप्रदेशे तत्र तत्र प्रतिपाद्यत एव तद्यथा तस्माद्युद्ध्यस्व भारत स्वधर्ममपि चावेक्ष्य कर्मण्येवाधिकारस्ते इत्यादावाश्च कथमात्मविदः कर्मयोगस्यासम्भवः स्यादिति अत्रोच्यते सम्यग्ज्ञानमिथ्याज्ञानतत्कार्यविरोधात् ज्ञानयोगेन सांख्यानामित्यनेन सांख्यानामात्मतत्त्वविदामनात्मवित्कर्त्तृककर्मयोगनिष्ठातो निष्क्रियात्मस्वरूपावस्थानलक्षणायाः ज्ञानयोगनिष्ठायाः पृथक्करणात् कृतकृत्यत्वेनात्मविदः प्रयोजनान्तराभावात् तस्य कार्यं न विद्यत इति कर्त्तव्यान्तराभाववचनाच्च न कर्म्मणामनारम्भात्। संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः इत्यादिवचनाच्चात्मज्ञानाङ्गत्वेन कर्मयोगस्य विधानात् योगारूढस्य तस्यैव समः कारणमुच्यत इत्यनेन चोत्पन्नसम्यग्दर्शनस्य कर्म्मयोगाभाववचनात् शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषमिति च शरीरस्थितिकारणातिरिक्तस्य कर्मणो वारणात् नैव किञ्चित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्वविदित्यनेन च शरीरस्थितिमात्रप्रयुक्तेष्वपि दर्शनश्रवणादि कर्म्मस्वात्मयाथात्म्यविदः करोमीति प्रत्ययस्य समाहितचेतस्तया सदा कर्त्तव्यत्वोपदेशादात्मतत्त्वविदः सम्यग्दर्शनेन विरुद्धो मिथ्याज्ञानहेतुकः कर्मयोगः स्वप्नेऽपि न सम्भावयितुं शक्यते यस्मात् तस्मादनात्मवित्कर्त्तृकयोरेव संन्यासकर्म्मयोगयोर्निःश्रेयसकरत्ववचनं तदीयाच्च कर्मसंन्यासविलक्षणात् पूर्वोक्तात्मवित्कर्त्तृकसर्वकर्म्मसंन्यासविलक्षणात् सत्येककर्त्तृत्वविज्ञाने कर्मैकदेशविषयत्वात् यमनियमादिसहितत्वेन च दुरनुष्ठेयत्वात् सुकरत्वेन च कर्म्मयोगस्य विशिष्टत्वाभिधानमित्येवं प्रतिवचनवाक्यार्थनिरूपणेनापि पूर्वोक्तः प्रष्टुरभिप्रायो निश्चीयते इतिश्चितं ज्यायसी चेत् कर्म्मणस्त इत्यत्र ज्ञानकर्मणोः सहासम्भवे यच्छ्रेय एतयोस्तन्मे ब्रूहि इत्येवं पृष्टोऽर्जुनेन भगवान् ज्ञानयोगेन सांख्यानां निष्ठा पुनः कर्म्मयोगेनयोगिनां निष्ठा प्रोक्तेति निर्णयञ्चकार नच संन्यसनादेव केवलात् सिद्धिंसमधिगच्छतीति वचनात् ज्ञानसहितस्य तस्य सिद्धिसाधनत्वमिष्टं कर्म्मयोगस्य च विधानात् ज्ञानरहितस्य संन्यासः श्रेयान् किंवा कर्मयोगः श्रेयानित्येतयोर्विशेषबुभुत्सया अर्जुनउवाच संन्यासं परित्यागं कर्मणां शास्त्रीयाणामनुष्ठानविशेषाणां शंससि प्रशंससि कथयसीत्येतत् पुनर्योगञ्च तेषामेवानुष्ठानमवश्यं कर्त्तव्यं शंसतो मे कतरत् श्रेय इति संशयः किं कर्मानुष्ठानं श्रेयः किंवातद्धानमिति प्रशस्यतरञ्चानुष्ठेयमतश्च यच्छ्रेयः प्रशस्यतरमेतयोः कर्मसंन्यासकर्मानुष्ठानयोर्यदनुष्ठानत् श्रेयोऽवाप्तिर्मम स्यादितिमन्यसे तदेकमन्यतरत्, सहैकपुरुषानुष्ठेयत्वासम्भवान्मे ब्रूहि सुनिश्चितमभिप्रेतं तवेति ॥ १ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

पूर्वोत्तराध्याययोः सम्बन्धमभिदधानो वृत्तानुवादपूर्वकमर्जुनप्रश्नस्याभिप्रायं प्रदर्शयितुं प्रक्रमते कर्मणीत्यादिना इत्यारभ्य कर्मण्यकर्मदर्शनमुक्त्वा तत्प्रशंसा प्रसारितेत्याह स युक्त इति ज्ञानवन्तं सर्वाणि कर्माणि लोकसंग्रहार्थं कुर्वन्तं ज्ञानलक्षणेनाग्निना दग्धसर्वकर्माणं कर्मप्रयुक्तफलसम्बन्धविधुरं विवेकवन्तो वदन्तीति ज्ञानवतो ज्ञानफलभूतं संन्यासं विवक्षन् विविदिषोः साधनरूपमपि संन्यासं भगवान् विवक्षितवानित्याह ज्ञानाग्नीति निराशीरित्यारभ्य शरीरस्थितिमात्रकारणं कर्म शरीरस्थितावपि संगरहितः सन् समाचरन् धर्माधर्मफलभागी न भवतीत्यपि पूर्वोत्तराभ्यामध्यायाभ्यां द्विविधं संन्यासं सूचितवानित्याह शारीरमिति यदृच्छेत्यादावपि संन्यासः सूचितः तद्धर्मफलायोपदेशादित्याह यदृच्छेति ज्ञानस्य यज्ञत्वसम्पादनपूर्वकं प्रशंसावचनादपि कर्मसंन्यासो दर्शितो ज्ञाननिष्ठस्येत्याह ब्रह्मार्पणमिति ज्ञानयज्ञस्तुत्यर्थं विहितान्नानाविधान् यज्ञाननूद्य तेषां देहादिव्यापारजन्यत्ववचनेनात्मनो निर्व्यापारत्वविज्ञानफलाभिलाषादपि यथोक्तमात्मानं विविदिषोः सर्वकर्मसंन्यासेऽधिकारोऽध्वनित इत्याह कर्मजानिति समस्तस्यैवावशेषवर्जितस्य कर्मणो ज्ञाने पर्यवसानाभिधानाच्च जिज्ञासोः सर्वकर्म संन्यासः सूचित इत्याह सर्वमिति तद्विद्धीत्यादिना ज्ञानप्राप्त्युपायं प्रणिपातादिप्रदर्श्य प्राप्तेन ज्ञानेनातिशयमाहात्म्यवता सर्वकर्मणां निवृत्तिरेवेति वदता च ज्ञानार्थिनः संन्यासेऽधिकारी दर्शितो भवतेत्याह ज्ञानाग्निरिति ज्ञानेन समुच्छिन्नसंशयं तस्मादेव ज्ञानात् कर्माणि संन्यस्य व्यवस्थितमप्रमत्तं वशीकृतकार्यकरणसंघातवन्तं प्रातिभासिकानि कर्माणि न निबध्नन्ति इत्यपि द्विविधः संन्यासो भगवतोक्त इत्याह योगेति कर्माणीत्यारभ्य योगसंन्यस्तकर्माणमित्यन्तैरुदाहृतैर्वचनैरुक्तं संन्यासमुपसंहरति इत्यन्तैरिति तर्हि कर्मसंन्यासस्यैव जिज्ञासुना ज्ञानवता चादरणीयत्वात् कर्मानुष्ठानमनादेयमापन्नमित्याशङ्क्योक्तमर्थान्तरमनुवदति छित्त्वैनमिति कर्म तत्त्यागयोरुक्तयोरेकेनैव पुरुषेणानुष्ठेयत्वसम्भावान्नविरोधोऽस्तीत्याशङ्क्य युगपद्वा क्रमेण वानुष्ठानमिति विकल्प्याद्यं दूषयति उभयश्चेति द्वितीयं प्रत्याह कालभेदेनेति उक्तयोर्द्वयोरेकेन पुरुषेणानुष्ठेयत्वाऽसम्भवे कथं कर्तव्यत्वसिद्धिरित्याशङ्क्याह अर्थादिति द्वयोरुक्तयोरेकेन युगपत् क्रियाभ्याम् अनुष्ठानानुपपत्तेरित्यर्थः अन्यतरस्य कर्तव्यत्वेकतरस्येति कुतो निर्णयो द्वयोः सन्निधानाविशेषादित्याशङ्क्याह यत् प्रशस्यतरमिति भगवता कर्मणां संन्यासो योगश्चोक्तो नच तयोः समुच्चित्यानुष्ठानं तेनान्यतरस्य श्रेष्ठस्यानुष्ठेयत्वे तद्बुभुत्सया प्रश्नोपपत्तिरित्युपसंहरति इत्येवमिति नायं प्रष्टुरभिप्रायः कर्मसंन्यासकर्मयोगयोर्भिन्नपुरुषानुष्ठेयतत्त्वस्योक्तत्वादेकस्मिन् पुरुषे प्राप्त्यभावादिति शंकते नन्विति चोद्यमंगीकृत्य परिहरति सत्यमेवमिति कीदृशस्तर्हि प्रष्टुरभिप्रायो येन प्रश्नप्रवृत्तिरिति पृच्छति कथमिति एकस्मिन् पुरुषे कर्म तत्त्यागयोरस्ति प्राप्तिरिति प्रष्टुरभिप्रायं प्रतिनिर्दिष्टुं प्रारभ्यते पूर्वोदाहृतैरिति यथा स्वर्गकामो यजेतेति स्वर्गकामोद्देशेन यागो विधीयते नते तस्यैवाधिकारो नान्यस्येत्यपि प्रतिपाद्यते वाक्यभेदप्रसंगात् तथा नात्मवित् कर्ता संन्यासपक्षे प्राप्तोऽनूद्यते नचात्मवित् कर्तृकत्वमेव संन्यासस्य नियम्यते वैराग्यमात्रेणाज्ञस्यापि संन्यासविधिदर्शनात् तस्मात् कर्म तत्त्यागयोर विद्वत्कर्तृकत्वमस्तीति मन्वानस्य अर्जुनस्य प्रश्नः सम्भवतीति भावः भवतु संन्यास्यते कर्तव्यत्वविवक्षा तथापि कथमेकस्मिन् पुरुषेतयोरप्राप्तावुक्ताभिप्रायेण प्रश्नवचनंप्रकसल्प्य

तत्र अनात्मविदिति आत्मविदो विद्या सामर्थ्यात् कर्मत्यागध्रौव्यवदितरस्यापि सति वैराग्येतत्त्यागस्यावश्यकत्वात् तत्र कर्तासो प्राप्तोत्रानूद्यते तथा च कर्मतत्त्यागयोरेकस्मिन् विदुषि प्राप्ते व्यक्तत्वादुक्ताभिप्रायेण प्रश्नप्रवृत्तिरविरुद्धेत्यर्थः संन्यासस्यात्मवित्कर्तृकत्वमेवात्र विवक्षितं किं न स्यादित्याशंक्य कर्त्र्यन्तरपर्युदासः संन्यासविधिश्चेत्यर्थभेदे वाक्यभेदप्रसंगान्मैवमित्याह न पुनरिति इति शब्दो वाक्यभेदप्रसंगहेतुद्योतनार्थः ततः किमित्याशङ्क्य फलितमाह एवमिति कर्मानुष्ठानकर्मसंन्यासयोरविद्वत् कर्तृकत्वमप्यस्तीत्येवं मन्वानस्यार्जुनस्य प्रशस्यतरविविदिषया प्रश्नो नानुपपन्न इति सम्बन्धः तयोः समुच्चित्यानुष्ठानसम्भवे कथं प्रशस्यतरविविदिषेत्याशङ्क्याह पूर्वोक्तेनेति उभयोश्चेत्यादावुक्तप्रकारेण कर्म तत्त्यागयोर्मिथोविरोधान्न समुच्चित्यानुष्ठानं सावकाशमित्यर्थः भवतु तर्हि यस्य कस्यचिदन्यतरस्यानुष्ठेयत्वमिति कुतो यथोक्ताभिप्रायेण प्रश्नप्रवृत्तिरित्याशङ्क्याह अन्यतरस्येति उभयप्राप्तौ समुच्चयानुपपत्तावन्यतरपरिग्रहे विशेषस्यान्वेष्यत्वादुक्ताभिप्रायेण प्रश्नोपपत्तिरित्यर्थः इतश्चाविद्वत् कर्तृकयोः संन्यासकर्मयोगयोः कर्तुः श्रेयानिति प्रष्टुरभिप्रायो भातीत्याह प्रतिवचनेनेति किं तत् प्रतिवचनं कथं वा तन्निरूपणमिति पृच्छति कथमिति तत्र प्रतिवचनं दर्शयति संन्यासेति तन्निरूपणं कथयति एतदिति तदुभयं निःश्रेयसकरत्वं कर्मयोगस्य श्रेष्ठत्वञ्चेत्यर्थः गुणदोषविभागविवेकार्थं पृच्छति किञ्चेति अतोऽस्मिन्नाद्ये पक्षे किं दूषणम् अस्मिन् वा द्वितीये पक्षे किं फलमिति प्रश्नार्थः तत्र सिद्धान्तो प्रथमपक्षे दोषमादर्शयति अत्रेत्यादिना तदेवानुपपन्नत्वं व्यतिरेकद्वारा विवृणोति यदीत्यादिना निःश्रेयसकरत्वोक्तिरित्यत्र पारम्पर्येणेति द्रष्टव्यं विशिष्टत्वाभिधानमिति प्रतियोगिनोऽसहायत्वादस्य च शुद्धिद्वारा ज्ञानार्थत्वादित्यर्थः आत्मज्ञस्य कर्मसंन्यासकर्मयोगयोरसम्भवेदर्शिते चोदयति अत्राहेति चोदयिता निर्द्धारणार्थं विमृशति किमित्यादिना अन्यतरासम्भवेऽपि सन्देहात् प्रश्नोऽवतरतीत्याह यदा चेति यस्य कस्यचिद् अन्यतरस्याऽसम्भवो भविष्यतीत्याशंक्य कारणमन्तरेणासम्भवोभवन्नतिप्रसंगः स्यादिति मन्वानः सन्नाह असम्भव इति आत्मविदः सकारणं कर्मयोगासम्भवं सिद्धान्तीदर्शयति अत्रेति संग्रहवाक्यं विवृण्वन्नात्मवित्त्वं विवृणोति जन्मादीति तस्य तदुक्तं निवृत्तमिथ्याज्ञानत्वं तदिदानीं व्यनक्ति सम्यगिति विपर्य्ययज्ञानमूलस्येत्यादिनोक्तं प्रपंचयति निष्क्रियेति यथोक्त संन्यासमुक्त्वा ततो विपरीतस्य कर्मयोगस्याभावः प्रतिपाद्यत इति सम्बन्धः वैपरीत्यं स्फोरयन् कर्मयोगमेव विशिनष्टि मिथ्याज्ञानेति मिथ्या च तदज्ञानञ्चेत्यनाद्य निर्वाच्यमज्ञानं तन्मूलोऽहं कर्त्तेत्यात्मनि कर्तृत्वाभिमानस्तज्जन्यस्तस्येति यावत् यथोक्तं संन्यासमुक्त्वा यथोक्तकर्मयोगस्यासम्भवप्रतिपादने हेतुमाह सम्यग्ज्ञानेति कुत्र तदभावप्रतिपादनं तदाह इहेति उक्तहेतुं कृत्वात्मज्ञस्य कर्मयोगासम्भवे फलितमाह यस्मादिति इह शास्त्रे तत्र तत्रेत्यादावुक्तमेव व्यक्तो कर्तुं पृच्छति केषु केष्विति तानेव प्रदेशान् दर्शयति अत्रेति आत्मस्वरूपनिरूपणप्रदेशेषु संन्यासप्रतिपादनादात्मविदः संन्यासो विवक्षितश्चेत् तर्हि कर्मयोगोऽपि तस्य कस्मान्न भवति प्रकरणविशेषादिति शंकते ननु चेति आत्मविद्याप्रकरणे कर्मयोगप्रतिपादनमुदाहरति तद्यथेति प्रकरणादात्मविदोऽपि कर्मयोगस्य संभवे फलितमाह अतश्चेति आत्मज्ञानोपायत्वेनापि प्रकरणपाठसिद्धौज्ञानादूर्ध्वं न्यायविरुद्धं कर्म कल्पयितुमाशङ्कमिति परिहरति अत्रोच्यत इति सम्यग्ज्ञानमिथ्याज्ञानयोस्तत् कार्ययोश्च भ्रमनिवृत्तिभ्रमसद्भावयोर्मिथो विरोधात् कर्तृत्वादिभ्रममूलं कर्म सम्यग्ज्ञानादूर्ध्वं न

म्भवतीत्यर्थः आत्मज्ञस्य कर्मयोगासम्भवे हेत्वन्तरमाह ज्ञानयोगेनेति इतश्चात्मविदो ज्ञानादूर्ध्वं कर्मयोगो न युक्तिमानित्याह कृतकृत्यत्वेनेति ज्ञानवतो नास्ति कर्मेत्यत्र कारणान्तरमाह तस्येति तर्हि ज्ञानवता कर्मयोगस्य हेयत्ववज्जिज्ञासुनापि तस्य त्याज्यत्वं ज्ञानप्राप्त्या तस्यापि पुरुषार्थसिद्धेरित्याशङ्क्य जिज्ञासोरस्ति कर्मयोगापेक्षा इत्याह न कर्मणामिति स्वरूपोपकार्यंगमन्तरेणांगिस्वरूपानिष्पत्तेर्ज्ञानार्थिना कर्मयोगस्य शुद्ध्यादिद्वारा ज्ञानहेतोरादेयत्वमित्यर्थः तर्हि ज्ञानवतामपि ज्ञानफलोपकारित्वेन कर्मयोगो मृश्यतामित्याशङ्क्याह योगारूढस्येति उत्पन्नसम्यग्ज्ञानस्य कर्माभावे शरीरस्थितिहेतोरपि कर्मणोऽसम्भवान्न तस्य शरीरस्थितिस्तदस्थितौ च कुतो जीवन्मुक्तिस्तदभावे च कस्योपदेष्टृत्वम् उपदेशाभावे च कुतो ज्ञानोदयः स्यादित्याशङ्क्याह शरीरमिति विदुषोऽपि शरीरस्थितिरास्थिता चेत् तन्मात्रप्रयुक्तेषु दर्शनश्रवणादिषु कर्तृत्वाभिमानोऽपि तस्य स्यादित्याशंक्याह नैवेति तत्त्वविदित्यनेन च समाहितचेतस्तया करोमीति प्रत्ययस्य सदैव कर्तृत्वोपदेशादिति सम्बन्धः यत्तु विदुषः शरीरस्थितिनिमित्तकर्माभ्यनुज्ञाने तस्मिन् कर्तृत्वाभिमानोऽपि स्यादिति तत्राह शरीरेति आत्मयाथात्म्यविदः तेष्वपि नाहंकरोमीति प्रत्ययस्य नैव किञ्चित् करोमीत्यादावकर्तृत्वोपदेशान्न कर्तृत्वाभिमानसम्भावनेत्यर्थः यथोक्तोपदेशानुसन्धानाभावे विदुषोऽपि करोमीति स्वाभाविक प्रत्ययद्वारा कर्मयोगः स्यादित्याशंक्याह आत्मतत्त्वेति यद्यपि विद्वान् यथोक्तमुपदेशं कदाचिन्नानुसन्धत्ते तथापि तत्त्वविद्याविरोधात् मिथ्याज्ञानं तन्निमित्तं कर्म वा तस्य सम्भावयितुमशक्यमित्यर्थः आत्मवित्कर्तृकयोः संन्यासकर्मयोगयोरयोगात् तयोर्निःश्रेयसकरत्वमन्यतरस्य विशिष्टत्वमित्येतदयुक्तमिति सिद्धत्वात् द्वितीयं पक्षमंगीकरोति यस्मादित्यादिना तदीयाच्च कर्मसंन्यासात् कर्मयोगस्य विशिष्टत्वाभिधानमिति सम्बंधः ननु कर्मयोगेन शुद्धबुद्धेः संन्यासो जायमानस्तस्मादुत्कृष्यते कथं तस्मात् कर्मयोगस्योत्कृष्टत्व वाचोयुक्तिर्युक्तेति तत्राह पूर्वोक्तेति वैलक्षण्यमेव स्पष्टयति सत्येवेति स्वाश्रमविहितश्रवणादौ कर्तृत्वविज्ञाने सत्येव पूर्वाश्रमोपात्तकर्मैकदेशविषयसंन्यासात् कर्मयोगस्य श्रेयस्त्ववचनं नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तमित्यादि स्मृतिविरुद्धमित्याशङ्क्याह यमनियमादिति ॥ आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दम आर्जवं। प्रीतिः प्रसादो माधुर्यमक्रोधश्च यमा दश ॥ दानमिज्या तपो ध्यानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहौ। व्रतोपवासौ मौनञ्च स्नानञ्च नियमा दश ॥ इत्युक्तैर्यमनियमैरन्यैश्चाश्रमधर्मैर्विशिष्टत्वेनानुष्ठातुमशक्यत्वादुक्तसंन्यासात् कर्मयोगस्य विशिष्टत्वोक्तिर्युक्तेत्यर्थः नहि कश्चिदिति न्यायेन कर्मयोगस्येतरापेक्षयासुकरत्वाच्च तस्य विशिष्टत्ववचनं श्लिष्टमित्याह सुकरत्वेन चेति प्रतिवचनवाक्यार्थालोचनात् सिद्धमर्थमुपसंहरति इत्येवमिति संन्यासकर्मयोगयोर्मिथोविरुद्धयोः समुच्चित्यानुष्ठातुमशक्ययोरन्यतरस्य कर्तव्यत्वे प्रशस्यतरस्य तद्भावातद्भावस्य चानिर्द्धारितत्वात्तन्निर्द्धारयिषया प्रश्नः स्यादिति प्रश्नवाक्यार्थपर्यालोचनया प्रष्टुरभिप्रायो यथापूर्वमुपदिष्टस्तथाप्रतिवचनार्थनिरूपणेनापि तस्य निश्चितत्वात् प्रश्नोपपत्तिः सिद्ध्येत्यर्थः ननु तृतीये यथोक्तप्रश्नस्य भगवता निर्णीतत्वान्नात्र प्रश्नप्रतिवचनयोः सावकाशत्वमित्याशंक्य विस्तरेणोक्तमेव सम्बन्धं पुनः संक्षेपतो दर्शयति ज्यायसी चेदिति सांख्ययोगयोर्भिन्नपुरुषानुष्ठेयत्वेन निर्णीतत्वान्न पुनः प्रश्नयोग्यत्वमित्यर्थः इतोऽपि न तयोः प्रश्नविषयत्वमित्याह नचेति एवकारविशेषणज्ञानसहितसंन्यासस्य सिद्धिसाधनत्वं भगवतोऽभिमतं छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठेति च कर्मयोगस्य विधानात्तस्यापि सिद्धि

साधनत्वमिष्टं ततश्च निर्णीतत्वान्न प्रश्नस्तद्विषयः सिद्ध्यतीत्यर्थः केनाभिप्रायेण तर्हि प्रश्नः स्यादित्याशंक्य ज्ञानरहितसंन्यासात् कर्मयोगस्यप्रशस्यतरत्वबुभुत्सयेत्याह ज्ञान रहित इति प्रष्टुरभिप्रायमेवं प्रदर्श्य प्रश्नोपपत्तिमुक्त्वा प्रश्नमुत्थापयति संन्यासमिति त र्हि द्वयं त्वयानुष्ठेयमित्याशंक्य तदशक्तेरुक्तत्वात् प्रशस्यतरस्यानुष्ठानार्थं तदिदमिति नि श्चित्य वक्तव्यमित्याह यच्छ्रेय इति काम्यानां प्रतिषिद्धानाञ्च कर्मणां परित्यागो म योच्यते न सर्वेषामित्याशङ्क्य कर्मण्यकर्मेत्यादौ विशेषदर्शनान्नैवमित्याह शास्त्रीयाणा मिति अस्तु तर्हि शास्त्रीयाशास्त्रीययोरशेषयोरपि कर्मणोस्त्यागो नेत्याह पुनरिति तर्हि कर्मत्यागस्तद्योगश्चेत्युभयमादर्शितव्यमित्याशङ्क्य विरोधान्नैवमित्यभिप्रेत्याह अत इति द्वयोरेकेनानुष्ठानायोगस्योक्तत्वात् कर्तव्यत्वोक्तेश्च संशयो जायते तमेव संशयं विशदयति किं कर्मेति प्रशस्यतरबुभुत्सा किमर्थेत्याशङ्क्याह प्रशस्यतरञ्चेति तस्यैवानुष्ठेयत्वे प्रश्नं सावकाशत्वमाह अतश्चेति तदेव प्रशस्यतरं विशिनष्टि यदनुष्ठानादिति तदेकमन्यतर मस्मै ब्रूहीति सम्बन्धः उभयोरुक्तत्वे सति किमित्येकं वक्तव्यमिति नियुज्यते तत्राह सहेति कर्मतत्त्यागयोर्मिथो विरोधादित्यर्थः ॥ १ ॥

स्वामिकृतटीका।

निवार्य संशयं जिष्णोः कर्मसंन्यासयोगयोः जितेन्द्रियस्य च यतेः पंकमे मुक्तिमब्रवीत् अज्ञानसम्भूतं संशयं ज्ञानासिना छित्त्वा कर्मयोगमातिष्ठेत्युक्तं तत्र पूर्वापरविरोधं मन्वानोऽर्जुनउवाच संन्यासमिति यस्त्वात्मरतिरेव स्यादित्यादिना सर्वं कर्माखिलं पार्थेत्यादिनाच ज्ञानिनः कर्मसंन्यासं कथयसि ज्ञानासिना संशयं छित्त्वा योगमातिष्ठेति पुनर्योगञ्च कथयसि न च कर्मसंन्यासः कर्मयोगश्चैकस्यैकदैवाऽसम्भवतो विरुद्धस्वरूपत्वात् तस्मादेतयोर्मध्ये एकस्मिन्ननुष्ठातव्ये सतिमम यच्छ्रेयः सुनिश्चितंतदेकंब्रूहि॥१॥

नवलभाष्य।

अबयहां(कर्मण्यकर्म यः पश्येत्] इसश्लोकसे लेकरके ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् ॥ २ ॥ शारीरंकेवलं कर्म ॥ ३ ॥ यदृच्छालाभसंतुष्टः ॥ ४ ॥ ब्रह्मार्पणंब्रह्महविः ॥ ५ ॥ कर्मजान्विद्धितान्सर्वान् ॥ ६ ॥ सर्वंकर्माखिलंपार्थ ॥ ७ ॥ ज्ञानाग्निः ॥ ८ ॥ सर्वकर्माणि ॥ ९ ॥ योगसंन्यस्तकर्माणम् ॥ १० ॥ इतने चौथे अध्यायमें कहेहुए दशश्लोकों करके भगवान् कर्मत्यागकोवर्णनकरतेहुए और छित्त्वैनंसंशयं योगम् इत्यादि इस अध्यायके एकअन्त्यके श्लोककरके कर्म योगकरनेका अर्जुनको उपदेशकिया तो कर्मका करना और कर्मका त्याग इनदोनों उपदेशोंको एकसंग खडेहोनेकी और चलनेकी आज्ञाके तुल्य परस्पर विरोधके कारणसे एक किसी पुरुषको इनदोनोंकी करनेको सामर्थ्य नहीं होनेसे और समयभेद करके करनेको भगवान्की आज्ञाके भावसे तो फिर कर्मका करना और कर्मका त्याग इनदोनोंमें एकहीका करना प्राप्तहुआ इसव्यवस्थामें अर्जुनने यह विचार किया कि जब कर्मका अनुष्ठान और कर्मका त्याग इनदोनोंमें एकहीका करना है तो इनदोनोंमें जो श्रेष्ठहोय उसीको करना चाहिये ऐसा अपने मनमें मानता हुआ अर्जुन दोनों उपदेशोंमें अत्यन्त श्रेष्ठकौनसा यहजाननेकी इच्छाकर

केप्रश्न करताहै कि [संन्यासंकर्मणामिति] न कहौ आत्मविद पुरुष को ज्ञानयोग करके निष्ठाको प्रतिपादन करतेहुए भगवान् पहिले कहेहुए दश-श्लोंको करके सबकर्मोंका संन्यास कहतेहुए कुछ अज्ञके वास्ते नहीं कहते हुए तो फिर कर्मका अनुष्ठान और कर्मका त्याग इनदोनोंके अधिकारी न्यारे न्यारेहुए इससे अज्ञजो अर्जुन तिसको कर्मसंन्यासके अधिकारकी प्राप्तिहीनथी फिर दोनोंके मध्यमें एकको श्रेष्ठजानने की इच्छासे अर्जुन का प्रश्ननहीं संभव होताहै अब ऐसी आशंका करनेवाले वादीसे उत्तरदेने वाला सिद्धान्ती कहताहै कि ठीकहै इसप्रकार तुम्हारी रीतिसे तो अर्जुन का प्रश्ननहीं संभव होताहै परन्तु पूछनेवालेके अभिप्रायसे तो प्रश्नसंभव होताहीहै इससे अर्जुनका प्रश्नयुक्तहीहै ऐसा हम कहतेहैं न कहौ कैसेयुक्त है तो फिर सुनिये प्रश्नके आशयको पहले कहेहुये कर्मण्यकर्म इत्यादिदश वचनतिन्हों करके भगवानने कर्म संन्यासको करनेकी योग्यताकी विवक्षा करके अर्थात् कहनेकी इच्छाकरके प्राधान्यकहा अर्थात् मुख्यताकही और कर्त्ताके विना कर्त्तव्यता अर्थात् करनेकी योग्यतानहीं संभव होती क्योंकि जबकोई कर्मसंन्यास का करनेवाला नहीं उपस्थितहै तो किसके आगे उस की योग्यता कहीजाय तो अनात्मविदभी अर्थात् अज्ञभी कर्त्ता एकपक्षमें प्राप्तहुआ उसीका अनुवाद यहां किया जाताहै इससे आत्मवित् पुरुषही कर्म संन्यासका अधिकारी है यहनहीं भगवान्को विवक्षित है किन्तुवैराग्य युक्त मुमुक्षु अनात्मविद भी अधिकारी हैऐसी भगवान्की विवक्षाको कहने की इच्छाको मानताहुआ जो अर्जुन तिसको कर्मानुष्ठान और कर्मसंन्या-सइनदोनों के करनेका अधिकार अज्ञकोभी है इसहेतुसे पहले कहाहुआ जो प्रकार तिसकरके अर्थात् जैसे खड़ेहोने को और चलनेको कोई एकही कालमें एकपुरुषसे करनेको कहे तैसे एककालमें दोनोंके परस्पर विरोधसे दोनोंके मध्यमें एक किसीका करनेकी प्राप्तिमें जो श्रेष्ठहै उसीको करना युक्तहै और अश्रेष्ठको करना युक्तनहीं इसआशयसे अत्यन्त श्रेष्ठके जानने की इच्छाकरके प्रश्न अयुक्तनहीं है अर्थात् युक्त ही है और भगवान्के उत्तर बाक्यके अर्थके कहने से भी प्रश्नकर्त्ता अर्जुन का यही अभिप्राय जानाजा-ताहै सो कैसे जानाजाताहै तिसको सुनिये तहां भगवान्का उत्तरवाक्यय-हहै कि [संन्यासःकर्मयोगश्चनिश्रेयसकरावुभौ तयोस्तुकर्मसंन्यासात्कर्मयो गो विशिष्यते इति] हे अर्जुन संन्यास और कर्मयोग ये दोनों ज्ञानोत्पत्ति द्वारा मोक्षके करनेवाले हैं परन्तु तिन दोनोंमें कर्मसंन्यास की अपेक्षाकर के अर्थात् कर्मसंन्याससे कर्मयोग श्रेष्ठहै अब इस भगवान् के उत्तरवाक्यमें यह आशङ्का होतीहै कि यहां आत्मवेत्ताहै करनेवाला जिन्होंका ऐसे जे कर्मसंन्यास और कर्मयोग तिन दोनोंका मोक्षसाधनत्वरूप प्रयोजन को कहिकै अर्थात् इनदोनों का मोक्षका करनाही प्रयोजनहै यह कहके फिर तिनदोनों में किसी कारण विशेषसे कर्मसंन्याससे कर्मयोगकी श्रेष्ठता

कहीजाती है अथवा अज्ञके किये हुएजे संन्यास और कर्मयोग तिनको मोक्षकी साधनता औरकर्मयोगकी श्रेष्ठता कहीजातीहै तहां कहते हैं कि इस आशङ्कासे तुम्हारा प्रयोजन ही क्याहै जो कदाचित् आत्मवित् के कियेहुए कर्मसंन्यास और कर्मयोगों को मोक्षसाधनता और इनदोनों में कर्मयोग की श्रेष्ठताकहीजाय तो तुम्हारा क्या बनता है अथवा अज्ञके किये हुए इनदोनों को मोक्षकी साधनता और कर्मयोगकी श्रेष्ठता प्रतिपादन कीजावै तो तुम्हारा क्या प्रयोजन बनता है तहां इन दोनोंमें एकके निश्चयसे करनेमें कल्याणकी प्राप्तिही प्रयोजन है इसआशयसे कहते हैं कि आत्मविदहै कर्त्ता जिन्होंका ऐसे जे कर्मसंन्यास और कर्मयोग तिनका तो असंभवही है क्योंकि जब आत्मवित् होगया तो कर्मसंन्यास और कर्मयोग करनेसे उसको प्रयोजनही क्या रहा और दूसरे विकार रहित अकर्त्ता जो आत्मस्वरूप तिसके यथावत् जाननेसे जब कोई प्रकारका अभिमान ही नहींरहा तो कर्मका त्याग और कर्मका ग्रहण इनका सम्भवही कैसेहोता है इसप्रकार आत्मवेत्ता को दोनोंके असम्भव होनेसे फिर उनदोनों को मोक्षसाधनत्व कहनाऔर दोनोंके मध्यमें एकका श्रेष्ठत्वकरके कहना ये दोनों युक्तनहीं हैं और जो अनात्मवित् अज्ञपुरुषहै कर्त्ता जिन्होंका ऐसे कर्मसंन्यास और कर्मयोग भगवान् के उत्तर वाक्यमें ग्रहणकियेजायँ तो उस अनात्मविद् पुरुषको कर्मसंन्यास और कर्मयोग ये दोनों सम्भवहोंगे तो फिर उनदोनों को मोक्षसाधनता का कहना अर्थात् ये दोनों मोक्षके करनेवाले हैं यह कहना और कर्मसंन्याससे कर्मयोग का श्रेष्ठत्वकरके कहना ये दोनों बनसक्ते हैं और आत्मविद को तो नहीं सम्भव होसक्ते अब जो आत्मवित्के किये हुए संन्यास कर्मयोगों के असम्भवसे दोनोंको मोक्षकरत्व अर्थात् मोक्षका करना और कर्मयोग को श्रेष्ठत्व प्रतिपादन को अयुक्तता जो कही तहां आत्मवेत्ता को कर्मसंन्यास और कर्मानुष्ठान अर्थात् कर्मोंका करना इनदोनों का असम्भव है किं वा इनदोनों में एक का असम्भव है तो कर्मसंन्यास का असम्भव है किंवा कर्मयोगका और उस असम्भवमें कारणभी कहना चाहिये तब इस आशङ्कामें कहतेहैं कि आत्मवेत्ता को निवृत्त मिथ्या न होनेसे अर्थात् आत्मविद पुरुषको झूंठा ज्ञान नहीं रहाहै इसकारणसे वहझूंठा विपरीत ज्ञानही कारण जिसमें ऐसा कर्मयोग तिसीका असम्भव होता है क्योंकि जन्मादि सब विकारों से रहित होने से क्रियारहित आत्माको अपने रूपकरके जो जानता है और सम्यग्दर्शन रूपज्ञानसे निवृत्तहोगया झूंठाज्ञान जिसका ऐसे आत्मवित् पुरुषको निष्क्रिय आत्मस्वरूप करके जो स्थिति सोईहै स्वरूप जिसका ऐसा जो सब कर्मोंका संन्यास तिसको कहिके तिससे विपरीत उलटा जो मिथ्याज्ञान मूलक कर्तृत्वाभिमान अर्थात् मिथ्याज्ञान ही है मूल कारण जिसका ऐसा जो मैं करता हूं ऐसा अभिमान तिसको आश्रयण

करके कर्मसहित जो अपनाको मानना सोई हुआ कर्मयोग तिसका इस गीताशास्त्रमें तहां तहां आत्मस्वरूप वर्णनकरनेके प्रकरणों में सम्यग्दर्शन रूपज्ञान और मिथ्याज्ञान इनकेकार्य्यों का परस्पर विरोधके कारणसे अभाव प्रतिपादन कियाजाता है जिससे तिससे दूरहुआ है मिथ्याज्ञान जिसका ऐसे आत्मवित् पुरुषको विपरीत ज्ञानहै कारण जिसमें ऐसा कर्मयोग नहीं सम्भवहोता यही युक्तहीकहा है न कहौ फिर कौन कौन आत्मस्वरूप निरूपण प्रकरणों में आत्मविद ज्ञानी पुरुषको कर्मका अभाव कहा है तौ इसआकांक्षामें कहाजाताहै कि [अविनाशितुतद्विद्धि] हेअर्जुनतिस तत्त्वको तू अविनाशीजान ऐसाकहिके फिर उसी प्रकरणमें कहा कि [यएनंवेत्तिहन्तारं वेदाविनाशिनंनित्यमित्यादौ] जो पुरुष इसआत्माको औरका मारनेवाला जानताहै और जो इसको और करके माराजाता है ऐसा जानताहै तौ वे दोनों मूर्ख हैं ऐसाकहिके फिर कहा कि हे अर्जुन जो इस आत्माको अजअविनाशी नित्य ऐसा जानता है वह पुरुष कैसे किसीको मारताहै और कैसे मरवाता है इसप्रकार ऐसे २ प्रकरणों में आत्मवेत्ताको कर्मका अभाव प्रतिपादन कियाहै अर्थात् जो आत्मामें कर्म सम्भवहोतातौ उत्पत्ति आदि कर्मोंका नहीं सम्भव होना भगवान् कैसे कहते हैं और इस प्रकार अकर्त्ता अपनाको निश्चयकरनेवाला आत्मविदभी कैसे कर्मसंबन्धको प्राप्तहोसक्ता है न कहौ कर्मयोगभी तहां तहां आत्मस्वरूप के निरूपणके प्रकरणही में कहाहै जैसे [तस्माद्युध्यस्वभारत स्वधर्ममपि कर्मण्येवाधिकारस्ते] हे अर्जुन तू युद्धकर और अपने धर्मको देखकरके भी चलायमान होने को योग्य नहीं है और कर्महीमें तेरा अधिकार है इसको आदिलेके अनेक जगह कहाहै तौ फिर आत्मविद को कर्मका अभाव कहां सिद्धहुआ अर्थात् जो कदाचित् सर्वथा कर्मका असम्भवही होता तौ भगवान् ने यह कर्मका उपदेश कियाहै सो अनर्थक होजायगा तौ फिर इसका समाधान कहते हैं तिसको सुनिये सम्यग्ज्ञान अर्थात् सत्यज्ञान और मिथ्याज्ञान इनके कार्य्यों का परस्पर विरोधहोनेसे और [ज्ञानयोगेनसांख्यानाम्]इस श्लोककरके सांख्य जे आत्मवित् पुरुष तिनकी जो निष्क्रिय क्रियारहित आत्मस्वरूपमें स्थिरतारूप ज्ञानयोगनिष्ठा तिसका अनात्मवित् नाम अज्ञ पुरुष है करनेवाला जिसका ऐसी जो कर्मयोगनिष्ठा तिससे जुदाकरने से और कृतकृत्यताके कारणसे आत्मवित् पुरुषको किसी प्रयोजनकी अपेक्षा के नहीं होनेसे और [तस्यकार्य्यंनविद्यते] तिसज्ञानी को कोई कर्मकरने योग्य नहीं है इस भगवानके वचनकरके तिसज्ञानी को करने योग्य किसी कर्मके नहीं होनेके कहने से और [नकर्म्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यंपुरुषोऽश्नुते संन्यासस्तुमहावाहोदुःखमाप्तुमयोगतः] हे अर्जुन कर्मोंके नहीं करनेसे कोई पुरुष मोक्षको प्राप्त नहीं होताहै और हे अर्जुन विना कर्मयोगकरे संन्यास का प्राप्तहोना दुःखरूपही है इनको आदिलेके भगवान के वचनों करके

आत्मज्ञानके अंगत्वकरके अर्थात् साधनरूप करके कर्मयोगके विधानसे औ फिरफिर योगारूढस्य तस्यैवशमः कारणमुच्यते] हे अर्जुन ज्ञानयोगको प्राप्तहुआ जो पुरुषतिसको सबकर्मोंसे निवृत्तिही कारणहै इत्यादि वचनक रके उत्पन्नहुआ है सम्यग्दर्शनरूप ज्ञानजिसको ऐसे पुरुषको कर्मयोगके अभावके कहनेसे और शारीरं केवलंकर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्] शरीर निर्वाहमात्र भिक्षादि कर्मकरताहुआ किल्बिष जो पापतिसको नहीं प्राप्तहो ताहै इस कहनेसे शरीर स्थिति कारणकर्मसे और जो कर्महै तिसीके वार-णकरनेसे और नैवकिञ्चित्करोमीति युक्तोमन्येततत्त्ववित्] हे अर्जुनयोग युक्तजो तत्त्ववेत्ता सो मैं कुछनहीं करताहूं ऐसामानताहै इसश्लोककरके तो शरीरस्थिति मात्रहीहै प्रयोजन जिनका ऐसे दर्शन श्रवणादि कर्मोंमें भी परमार्थस्वरूप जाननेवाले ज्ञानीको मैं करताहूं ऐसी प्रतीतिके निषेधकेकर नेसे और एकाग्रचित्तसे सदाकरनेके उपदेशसे आत्मवेत्ता परुषको यथार्थ ज्ञानसे विरुद्ध मिथ्याज्ञानही हेतु जिसमें ऐसाकर्म योगस्वप्नमें भी नहीं संभव होताहै जिससे तिससे अज्ञही करनेवाला जिन्होंका ऐसे जेसंन्यास और कर्मयोग तिन्होंहीको भगवान्ने मोक्ष साधनताकही अर्थात् येदोनों मोक्षके करनेवाले हैं ऐसा कहाहै और उसीअज्ञका कियाहुआ जो कर्मसं-न्यास तिससे कर्मयोगकी श्रेष्ठताभी भगवान्ने कहीहै क्योंकि उसमूर्ख पुरुष का कियाहुआ कर्मोंका त्यागज्ञानी पुरुषके कियेहुए सबकर्मोंके त्यागसे वि-लक्षणहै अर्थात् और तरहकाहै इससे मूर्खके कियेहुए कर्म संन्यासही से कर्मयोगकी श्रेष्ठता भगवान्को अभीष्टहै कुछज्ञानी के कियेहुएकर्म संन्यास से कर्मयोगकी श्रेष्ठता अभिमतनहीं है क्योंकि पूर्वोक्तवचनोंके प्रमाणों से कर्मयोग कर्मसंन्यास का अंगहोके निकृष्टही है नकहो ज्ञानीके कियेहुयेकर्म संन्यासमें क्याविलक्षणताहै जिससे वह श्रेष्ठहै तो कहतेहैं कि ज्ञानी तो पूर्व इस आश्रमके जितने झूंठेज्ञानके कारणसेकर्महैं तिनको त्यागताहै और अज्ञसंन्यासी तो श्रवणमनन निदिध्यासनादि आश्रमकर्म करताहै औरयम नियमादिक कोभी करताहै पूर्वाश्रमके कर्मोंके त्यागकरनेसे कर्मोंके एकदे-शहीका त्यागहुआ अर्थात् पहले आश्रमके कर्मोंकाही त्यागहुआ इसआश्र-मके तो बनेहीरहे और अज्ञसंन्यासीको यमनियमादिक भी करने पड़ते हैं तबजो ज्ञानकी उत्पत्तिके पहले उससंन्यासीको भी ज्ञानोत्पत्तिके लियेयम नियमादिक की आवश्यकता है इसीसे इसको दुरनुष्ठेयत्व है अर्थात् दुःख करकेसेवन करनेकी योग्यताहै तो फिर ऐसेदुष्कर कर्म संन्याससे सुखसा-ध्यकर्म योगको श्रेष्ठवर्णन किया इसप्रकार भगवान्के उत्तरवाक्यके अर्थ निरूपण करके भी पहले कहाहुआ जो प्रश्नकरनेवाले अर्जुनका अभिप्राय सो निश्चय कियाजाता है यहसिद्धान्त इहां स्थितहुआ इसीसे [ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते] इसश्लोकमें ज्ञानऔर कर्म इनदोनोंका संगसंग अनुष्ठानका अर्थात् करनेका असंभव देखके [यच्छ्रेयएतयोरेकंतन्मेब्रूहि] अर्जुनने कहा

कि हे भगवन् इनदोनोंमें जो श्रेष्ठतिसको कहिये इसप्रकार अर्जुनकरके पूछेहुए जो भगवान् सो यहकहतेहुए कि हे अर्जुन ज्ञानयोग करके ज्ञानियों की निष्ठा मैंने वर्णन करी अर्थात् ज्ञानीलोगों को ज्ञानयोगहीमें स्थितिकर ना चाहिये ऐसा कहा और कर्मकरने वालोंको कर्मयोगही करके निष्ठा अर्थात् स्थिति मैंने वर्णनकरी इसप्रकार निर्णय करतेहुए और [नचसंन्यसनादेवसिद्धिंसमधिगच्छतीति] केवलज्ञानरहित संन्यासहीसे पुरुष मोक्ष को प्राप्तनहीं होताहै इसवचनसे ज्ञानसहितही संन्यासको मोक्षमें कारणता भगवान्को इष्टहै और कर्मयोगका भी विधानकिया है इससे ज्ञानरहित पुरुषको संन्यास श्रेष्ठहै अथवा कर्मयोगश्रेष्ठहै इसप्रकार इनदोनों के मध्यमें विशेष जाननेकी इच्छा करके अर्जुन पूछताहै कि हे कृष्णशास्त्रोक्त कर्मोंका त्याग तिसको आपकहतेहौ और फिर उन्हींकर्मोंके अनुष्ठानको भी कहते हौ अर्थात् ये अवश्यकरने के योग्यहैं यहभी कहतेहौ इससे मुझको संदेह होताहै कि कर्मोंका करना श्रेष्ठहै अथवा कर्मोंका त्यागश्रेष्ठहै इससे कर्म संन्यास और कर्मयोग इनदोनों के मध्यमें जो श्रेष्ठहोय और जिसके करने से श्रेयहोय अर्थात् मोक्षरूप कल्याणहोय तिसको निश्चयकरकेमुझसेकहिये अर्थात् जो विचार करके मेरे लिये आपने अच्छा समुझा होय तिस को कहिये ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

शङ्करभाष्यम्।

स्वाभिप्रायमाचक्षाणो निर्णयाय श्रीभगवानुवाच संन्यास इति संन्यासः कर्मणां परित्यागः कर्मयोगश्च तेषामनुष्ठानं तावुभावपि निःश्रेयसकरौ निःश्रेयसं मोक्षं कुर्वाते ज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वेन उभौ यद्यपि निःश्रेयसकरौ तथापि तयोस्तु निःश्रेयसहेत्वोः कर्मसंन्यासात् केवलात् कर्मयोगो विशिष्यते इति कर्मयोगं स्तौति ॥ २ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

प्रश्नमेवमुत्थाप्य प्रतिवचनमुत्थापयति स्वाभिप्रायमिति निर्णयाय तद्द्वारेण परस्य संशयनिवृत्त्यर्थमित्यर्थः एवंप्रश्ने प्रवृत्ते कर्मयोगस्यसौकर्यमभिप्रेत्य प्रशस्यतरत्वमभि धित्सुर्भगवान् प्रतिवचनं किमुक्तवानित्याशंक्याह संन्यास इति उभयोरपि तुल्यत्वशंकां वारयति तयोस्त्विति कथं तर्हि ज्ञानस्यैव मोक्षोपायत्वं विवक्ष्यते तत्राह ज्ञानोत्पत्ती ति तर्हि द्वयोरपि प्रशस्यत्वमप्रशस्यत्वं वा तुल्यत्वमित्याशंक्याह उभाविति ज्ञानसहा यस्य कर्मसंन्यासस्य कर्मयोगापेक्षया विशिष्टत्वविवक्षया विशिनष्टि केवलादिति ॥ २ ॥

स्वामिकृतटीका।

अत्रोत्तरं श्रीभगवानुवाच संन्यास इति अयम्भावः नहि वेदान्तवेद्यात्मतत्त्वज्ञं प्रतिकर्मयोगमहं ब्रवीमि यतः पूर्वोक्तेन संन्यासेन विरोधः स्यात् अपितु देहात्माभिमा निनं त्वां बन्धुवधादिनिमित्तशोकमोहादिकृतमेनं संशयं देहात्मवि वेकज्ञानासिना छित्त्वा

परमात्मज्ञानोपायभूतं कर्मयोगमातिष्ठेति ब्रवीमि कर्मयोगेन शुद्धचित्तस्यात्मतत्त्वज्ञाने जाते सति तत्परिपाकार्थं ज्ञाननिष्ठांगत्वेन संन्यासः पूर्वमुक्तः एवञ्च सत्यंगप्रधानयोर्विकल्पायोगात् संन्यासः कर्मयोगश्चेत्येतावुभावपि भूमिकाभेदेन समुच्चितावेव निःश्रेयसं साधयतः तथापि तयोर्मध्ये कर्मसंन्यासात् सकाशात् कर्मयोगो विशिष्टो भवतीति ॥ २ ॥

नवलभाष्य।

अब अपने अभिप्रायको प्रकटकरने को निर्णय के अर्थ श्रीभगवान् कहतेहैं कि [संन्यासइति] हे अर्जुन संन्यास जोकर्मोंका परित्याग औरकर्मयोग जो कर्मोंका अनुष्ठान तेदोनों यद्यपिज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा मोक्षकेकरनेवालेहैं तो भी तिनदोनों मोक्षकारणोंके मध्यमें ज्ञानरहित जोकेवलकर्मोंका त्याग तिससे कर्मयोग श्रेष्ठहै इसप्रकार भगवानकर्मयोग की स्तुतिकरते हैं ॥ २ ॥

ज्ञेयः स नित्यः संन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कस्मादित्याह ज्ञेयो ज्ञातव्यः स कर्मयोगी नित्यसंन्यासीति यो न द्वेष्टिकिंचिन्न कांक्षति दुःखसुखे तत्साधने चैवंविधो यः कर्मणि वर्त्तमानोऽपि स नित्यसंन्यासीति ज्ञातव्यइत्यर्थः निर्द्वन्द्वो द्वन्द्ववर्जितो हि यस्मान्महाबाहो सुखं बन्धादनायासेन प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

कर्मोहि बन्धकारणं प्रसिद्धं तत् कथं निःश्रेयसकरं स्यादिति शंकते कस्मादिति अकर्त्रात्मविज्ञानात् प्रागपि सर्वदाऽसौ संन्यासी ज्ञेयो यो रागद्वेषौ क्वचिदपि न करोतीत्याह इत्याहेति यथा अननुष्ठीयमानानि कर्माणि संन्यासिनं न निबध्नन्ति कृतानि च वैराग्येन्द्रियसंयमादीनि फलाभिसन्धिरहितानि तथैवानभिसंहितफलानि नित्यनैमित्तिकानि योगिनमपि न निबध्नन्ति निवर्तयन्ति च सञ्चितं दुरितमित्यभिप्रेत्याह निर्द्वन्द्वो हीति कर्मयोगिनो नित्यसंन्यासित्वज्ञानमन्यथाज्ञानत्वान्मिथ्याज्ञानमित्याशङ्क्याह एवंविध इति कर्मिणोऽपि रागद्वेषाभावेन संन्यासित्वं ज्ञातुमुचितमित्यर्थः रागद्वेषरहितस्यानायासेन बन्धप्रध्वंससिद्धिश्च युक्तं तस्य संन्यासित्वमित्याह निर्द्वन्द्व इति ॥ ३ ॥

स्वामिकृतटीका।

कुत इत्यपेक्षायां संन्यासित्वेन कर्मयोगिनं स्तुवंस्तस्य श्रेष्ठत्वं दर्शयति ज्ञेय इति रागद्वेषादिराहित्येन परमेश्वरार्थं कर्माणि योऽनुतिष्ठति स नित्यं कर्मानुष्ठानकालेऽपि संन्यासीत्येव ज्ञेयः तत्र हेतुः निर्द्वन्द्वो रागद्वेषादि द्वन्द्वशून्यो हि शुद्धचित्तो ज्ञानद्वारा सुखमनायासेनैव संसारात् प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

नवलभाष्य।

काहेसे कर्म योगश्रेष्ठ है इसआकांक्षामें कहते हैं कि [ज्ञेयइति] हेअर्जुन जो पुरुष दुःख और दुःखके साधनजे दुष्टजन समागमादि तिनसे द्वेष कभी नहीं करताहै अर्थात् तिनको प्राप्तहोके अप्रसन्न नहीं होताहै औरसुख

औरसुख के साधनजे धनलाभ मित्रसमागमादि तिनको प्राप्तहोके कुछआकांक्षानहीं करताहै अर्थात् प्रसन्नताके कारणसे जेसदा बनेहीरहैं ऐसीअभिलाष नहींकरता है इसप्रकारका पुरुष कर्म में प्रवृत्तभी है परन्तु वह नित्य संन्यासी ही है ऐसा उसको जाननाचाहिये क्योंकि हे महाबाहो हे लम्बी भुजाओं करके शोभित जो निर्द्वन्द्वहै अर्थात् सुख दुःख हर्ष विषादादिद्वन्द्वों से रहित है सो अनायास ही से संसाररूप बन्धनसे छूटजाता है ॥ ३ ॥

सांख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयो र्विन्दतेफलम् ॥ ४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

ननु संन्यासकर्मयोगयोर्भिन्नपुरुषानुष्ठेययोर्विरुद्धयोः फलेऽपि विरोधोयुक्तो नतूभयोर्निःश्रेयसकरत्वमेवेतिप्राप्तइदमुच्यते सांख्ययोगाविति सांख्ययोगौ पृथक्विरुद्धभिन्नफलौ बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताःपण्डिताश्च ज्ञानिन एकं फलमविरुद्धमिच्छन्ति कथमेकमपि सांख्ययोगयोःसम्यगास्थितः सम्यगनुष्ठितवानित्यर्थः उभयोर्विन्दते फलमुभयोस्तदेव हि निःश्रेयसं फलमतो न फले विरोधोऽस्ति ननु संन्यासकर्मयोगशब्देन प्रस्तुत्य सांख्ययोगशब्दयोः फलैकत्वं कथमिहाप्रकृतं ब्रवीति नैष दोषःयद्यप्यर्जुनेन संन्यासं कर्मयोगञ्च केवलमभिप्रेत्य प्रश्नः कृतो भगवांस्तुतदपरित्यागेनैव स्वाभिप्रेतञ्च विशेषं संयोज्य शब्दान्तरवाच्यतया प्रतिवचनं ददौ सांख्ययोगाविति तावेव संन्यासकर्मयोगौ ज्ञानतदुपायसमबुद्धित्वादिसंयुक्तौ सांख्ययोगशब्दवाच्याविति भगवतो मतमतो नाप्रकृतप्रक्रियेति ॥ ४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

यदुक्तं संन्यासकर्मयोगयोः निःश्रेयसकरत्वं तदाक्षिपति ननु संन्यासेति तत्रोत्तरत्वेनोत्तरश्लोकमवतारयति इति प्राप्तइति विवेकिनस्तर्हि कथं वदन्तीत्याकांक्षायामाह स कमिति संख्यामात्मसमीचामर्हतीति सांख्यं संन्यासो योगस्तु कर्मयोगस्तावुभावपि पृथगित्यस्यार्थमाह विरुद्धेति शास्त्रार्थविवेकशून्यत्वं बाल्यत्वं उत्तरार्द्धमवतारयितुम्भूमिकां करोति पण्डितास्त्विति ज्ञानिनो योगिनश्चेति शेषः द्वयोरविरुद्धफलत्वमेव प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति कथमित्यादिना एकं साधनमनुष्ठितवतोद्वयोरपि फलं भवतीति विरुद्धमित्याशङ्क्याह उभयोरिति सांख्ययोगयोः संन्यासकर्मानुष्ठानयोस्तत्त्वज्ञानद्वारा निःश्रेयसफलत्वान्न विरुद्धफलत्वशंका इत्यर्थः सांख्ययोगयोरेकफलत्ववचनं प्रकरणाननुगुणमिति शंकते नन्विति अप्रकृतमसिद्धमिति परिहरति नैष दोष इति संन्यासं कर्मणामित्यादिना संन्यासं कर्मयोगञ्चांगीकृत्य प्रश्ने संन्यासः कर्मयोगश्चेत्यादिना तथैव प्रतिवचने च कथं सांख्ययोगयोरेकफलत्वमप्रकृतं न भवतीत्युच्यते तत्राह यद्यपीति प्रतिवचनमपि तदनुरूपमेव भगवता निरूपितमिति विशेषानुपपत्तिरित्याशङ्क्याह भगवांस्त्विति तदपरित्यागेनेत्यत्र तत्पदेन प्रष्टा प्रतिनिर्दिष्टौ कर्मसंन्यासकर्मयोगावुच्यते सांख्ययोगाविति शब्दान्तरवाच्यतया तयोरेव संन्यासकर्मयोगयोरत्यागेन स्वाभिप्रेतंच विशेषं संयोज्यभगवान् प्रतिवचनं सन्ददाविति योजना यदुक्तं स्वाभिप्रेतञ्च विशेषं संयोज्येतितदेव व्यक्तीकरोति तावेवेति समबुद्धित्वादीत्यादिशब्देन ज्ञानोपायभूतः शमादिरादीयते प्रकृतयोरेव संन्यासकर्मयोगयोरुपादाने फलितमाह अत इति सांख्ययोगावित्यादिश्लोकव्याख्यानसमाप्तिरिति शब्दार्थः ॥ ४ ॥

स्वामिकृतटीका।

यस्मादेवमंगप्रधानत्वेनोभयोरवस्थाभेदेन क्रमसमुच्चयोऽतो विकल्पमंगीकृत्योभयोः कः श्रेष्ठ इति प्रश्नोऽज्ञानामेवोचितः न विवेकिनामित्याह सांख्ययोगाविति सांख्यशब्देन ज्ञाननिष्ठावाचिना तदंगं संन्यासं लक्षयति संन्यासकर्मयोगावेकफलौ सन्तौ पृथक् स्वतन्त्राविति बाला अज्ञा एव प्रवदन्ति नतु पण्डिताः तत्र हेतुः अनयोरेकमपि सम्यगास्थितः आश्रितवानुभयोः फलमाप्नोति तथाहि कर्मयोगं सम्यगनुतिष्ठन् शुद्धचित्तः सन् ज्ञानद्वारा यदुभयोः फलं कैवल्यं तद्विन्दतीति संन्यासं सम्यगास्थितोऽपि पूर्वमनुष्ठितस्य कर्मयोगस्यापि परम्परायात् फलंकैवल्यं तद्विन्दतीति न पृथक् फलत्वमनयोरित्यर्थः॥४॥

नवलभाष्य।

अब यहां यहआशङ्काहोतीहै कि न्यारे न्यारे पुरुषों करके करनेको योग्य और परस्पर विरुद्ध ऐसे जे कर्मत्याग और कर्मयोग तिन्होंका फलमें भी विरोधही होना युक्तहै और दोनोंको एक मोक्षरूप फलको उत्पन्नकरना युक्तनहीं है ऐसा प्राप्तहुआ तौ तिसका निश्चयकरने को भगवान् कहते हैं कि [सांख्ययोगाविति] हे अर्जुन सांख्य जो ज्ञानसहित कर्मत्याग और योग जो समबुद्धि युक्त कर्मयोग इनदोनों को जे बालहैं अर्थात् जे अज्ञ हैं ते पृथक् न्यारे न्यारे कहते हैं अर्थात् ये दोनों न्यारे न्यारे फलके देनेवाले हैं ऐसा अज्ञपुरुष कहते हैं और जे पण्डित हैं ज्ञानी हैं ते तौ ऐसा नहींकहतेहैं किन्तु जे पण्डित अर्थात् ज्ञानी हैं ते दोनोंका एकही विरोधरहित फलकी इच्छाकरते हैं कैसे जिससे सांख्य और योग इनके मध्यमें एक किसीको भी सम्यक् अच्छेप्रकारसे जो पुरुष करताहै सो दोनोंका वह प्रसिद्धजो मोक्षरूप फल तिसको प्राप्तहोता है इससे दोनोंके फलमें कुछ विरोधनहीं है न कहो संन्यास और कर्मयोग शब्द करके इसप्रकरणका प्रारम्भ करके अर्थात् इसप्रकरणमें अर्जुनके प्रश्नमें संन्यास और कर्मयोग शब्द का उच्चारण किया और भगवान् के उत्तरमें भी संन्यास और कर्मयोग शब्दही कहे और यहां सांख्ययोग शब्दोंकरके दोनों का एकफल भगवान् कहते हैं सो प्रकरणसे विरुद्धहै सो ऐसा कहना उचित नहीं है तौ कहते हैं कि यहदोष नहीं है काहेसे कि यद्यपि अर्जुनने संन्यास और कर्मयोगही के अभिप्रायसे प्रश्नकिया और भगवान् तौ अर्जुन के अभिप्रायको विनाही त्यागकरते हुए औ अपने विशेष अभिप्रायको मिलाकर जो कि और शब्दसे कहाजाय ऐसे प्रत्युत्तरको देतेहुए अर्थात् जिसमें संन्यास और कर्मयोगशब्दोंके अर्थका त्याग न होय और विशेष अर्थ का संग्रह होय ऐसे सांख्य और योग शब्दोंकरके उत्तरदेते हुए कहते हैं कि [सांख्ययोगाविति] अर्थात् तिन संन्यास कर्मयोगों को ही ज्ञान और ज्ञानका उपाय भूत जो समबुद्धि इन्हों करके मिलाया तौ इन अर्थोंको सांख्य और योगशब्द कहनेलगे इसकारणसे भगवान् ने सांख्ययोग शब्दकरके उत्तरदिया इससे यहां अप्रकृत अर्थात् प्रकरणसे बाहर भगवान्ने कुछ नहींकहा जो कहा सोप्रकरणहीमेंकहा॥४॥

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

एकस्यापि सम्यगनुष्ठानात् कथमुभयोः फलं विन्दत इत्युच्यते यदिति यत् सांख्यैर्ज्ञाननिष्ठैः संन्यासिभिः प्राप्यते स्थानं मोक्षाख्यं तद्योगैरपि ज्ञानप्राप्त्युपायत्वेनेश्वरे समर्प्य कर्म्माणि आत्मनः फलमनभिसन्धायानुतिष्ठन्ति ये ते योगिनः तैरपि परमार्थज्ञानसंन्यासप्राप्तिद्वारेण गम्यत इत्यभिप्रायोऽत एकं सांख्यञ्च योगञ्च यः पश्यति स पश्यति फलैकत्वात् सम्यक् पश्यतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

प्रश्नपूर्वकं श्लोकान्तरमवतारयति एकस्यापीति केचिदेव तयोरेकफलत्वं पश्यन्तीत्याशङ्क्य तेषामेव सम्यग्दर्शित्वं नेतरेषामित्याह एकमिति तिष्ठत्यस्मान्न च्यवतु पुनरिति व्युत्पत्तिमाश्रित्याह मोक्षाख्यमिति योगशब्दार्थमाह ज्ञानप्राप्तीति येहि जिज्ञासवः सर्वाणि कर्म्माणि भगवत्प्रीत्यर्थत्वेन कुर्वन्ति तेषां फलाभिलाषमकृत्वा ज्ञानप्राप्तौ बुद्धिशुद्धिद्वारेणोपायत्वेनानुतिष्ठन्ति तेऽत्र योगा विवक्ष्यन्ते अच्प्रत्ययस्य मत्वर्थित्वं गृहीत्वोक्तं योगिन इति सर्वोऽपि द्वैतप्रपञ्चो न वस्तुभूतो मायाविलासित्वादात्मत्वविक्रियोऽद्वितीयो यस्तुसन्निति प्रयोजकज्ञानं परमार्थज्ञानं तत्पूर्वकसंन्यासद्वारेण कर्म्मिभिरपि तदेव स्थानं प्राप्यमित्येकफलत्वं संन्यासकर्म्मयोरविरुद्धमित्याह तैरपीति फलकत्वे फलितमाह अत इति ॥ ५ ॥

स्वामिकृतटीका।

एतदेव स्फुटयति यत् सांख्यैरिति सांख्यैर्ज्ञाननिष्ठैः संन्यासिभिर्यत् स्थानं मोक्षाख्यं प्रकर्षेण साक्षादवाप्यते योगैरिति अर्श अर्शआदित्वान्मत्वर्थीयोऽत्प्रत्ययो द्रष्टव्यस्तेन कर्मयोगिभिरपि तदेव ज्ञानद्वारेण गम्यतेऽवाप्यत इत्यर्थः। अतः सांख्यञ्च योगश्चैकफलत्वेनैकं यः पश्यति स एव सम्यक् पश्यति ॥ ५ ॥

नवलभाष्य।

अब संन्यास और कर्मयोग इनके मध्यमें एकके भी अच्छीतरह करनेसे कैसे दोनोंके फलको प्राप्तहोताहै इस आकांक्षासे कहते हैं कि [यदिति] हे अर्जुन सांख्य जे ज्ञाननिष्ठ संन्यासी तिन्होंकरके जो मोक्षरूपस्थान प्राप्त होताहै सोई ज्ञानप्राप्तिमें उपायरूप करके ईश्वरमें कर्मोंको समर्प्पणकरके और फलकी चाहनाको छोड़के जे कर्मोंको करते हैं उन कर्मयोगियों करके भी ज्ञानसहित संन्यास प्राप्तिद्वारा वह मोक्षरूपस्थान प्राप्तहोताहै इससे सांख्यको अर्थात् ज्ञानसहित संन्यासको और कर्मयोग को एकही जो देखताहै अर्थात् दोनोंको एकफल होनेसे एकरूपही जो देखताहै सोई अच्छी तरह देखताहै ॥ ५ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाऽधिगच्छति ॥ ६ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

एवं तर्हि योगात् संन्यास एव विशिष्यते कथं तर्हि एवमुक्तं तयोस्तु कर्म्मसंन्यासात् कर्म्मयोगो विशिष्यते इति शृणु तत्र कारणं त्वया पृष्टं केवलं कर्म्मसंन्यासं कर्म्मयोगञ्चाभिप्रेत्य तयोरन्यतरः कः श्रेयानिति तदनुरूपं प्रतिवचनं मयोक्तं कर्म्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यत इति ज्ञानमनपेक्ष्य ज्ञानापेक्षस्तु संन्यासः सांख्यमिति ममाभिप्रेतः परमार्थयोगस्तु स एव यस्तु कर्म्मयोगो वैदिकः स च तादर्थ्याद्योगः संन्यास इति चोपचर्यते कथं तादर्थ्यमित्युच्यते संन्यास इति संन्यासस्तु पारमार्थिको हे महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः योगेन विना योगयुक्तो वैदिकेन कर्मयोगेन ईश्वरसमर्पितरूपेण फलनिरपेक्षेण तेनयुक्तो मुनिर्मननादीश्वररूपस्य मुनिर्ब्रह्मपरमात्मज्ञाननिष्ठालक्षणत्वात् प्रकृतः संन्यासी ब्रह्मोच्यते न्यास इति ब्रह्मब्रह्म हि पर इति श्रुतेः ब्रह्मपरमार्थसंन्यासं परमात्मज्ञाननिष्ठालक्षणं न चिरेण क्षिप्रमेवाधिगच्छति प्राप्नोत्यथोमयोक्तं कर्मयोगोविशिष्यत इति ॥ ६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

यदि यथोक्तज्ञानपूर्वकसंन्यासद्वारा कर्मणामपि श्रेयोऽवाप्तिरिष्टा तर्हि संन्यासस्यैव श्रेयस्त्वप्राप्तमिति चोदयति एवं तर्हीति संन्यासस्य श्रेष्ठत्वे कर्मयोगस्य प्रशस्यत्ववचनमनुचितमित्याह कथं तर्हीति पूर्वोक्तमेवाभिप्रायं स्मारयन् परिहरति शृणवति कर्मयोगस्य विशिष्टत्ववचनं तत्रेति परामृष्टं तदेव कारणं कथयति त्वयेत्यादिना केवलं विज्ञानरहितमिति यावत् तयोरन्यतरः कः श्रेयानिति इतिशब्दोऽध्याहर्त्तव्यः त्वदीयं प्रश्नमासृत्य तदनुगुणं प्रतिवचनं ज्ञानमनपेक्ष्य तद्रहितात् केवलादेव संन्यासात् योगस्य विशिष्टत्वमिति यथोक्तमित्याह तदनुरूपमिति ज्ञानापेक्षः संन्यासस्तर्हि कीदृगित्याशङ्काह ज्ञानेति तर्हि कर्मयोगे कथं योगशब्दः संन्यासशब्दो वा प्रयुज्यते तत्राह यस्त्विति तादर्थ्यात् परमार्थज्ञानशेषत्वादिति यावत् तदेव तादर्थ्यं प्रश्नपूर्वकं प्रसादयति कथमित्यादिना कर्मानुष्ठानाभावे बुद्धिशुद्ध्यभावात् परमार्थसंन्यासस्य सम्यग्ज्ञानात्मनोनप्राप्तिरिति व्यतिरेकमुपन्यस्यान्वयमुपन्यस्यति योगेति परमार्थिकः सम्यग्ज्ञानात्मकःसामग्र्याभावे कार्यप्राप्तिरयुक्तेति मत्वाह दुःखमिति योगयुक्तत्वं चाचष्टे वैदिकेनेति ईश्वरस्वरूपस्य स्वविशेषयति शेषः ब्रह्मेति व्याख्येयं पदमुपादाय व्याचष्टे प्रकृत इति तत्र ब्रह्मशब्दप्रयोगे हेतुमाह परमात्मेति लक्षणशब्दो गमकविषयः संन्यासे ब्रह्मशब्दप्रयोगे तैत्तिरीयकश्रुतिं प्रमाणयति न्यास इति कथं संन्यासे हिरण्यगर्भवाची ब्रह्मशब्दः प्रयुज्यते द्वयोरपि परत्वाविशेषादित्याह ब्रह्महीति ब्रह्मशब्दस्य संन्यासविषयत्वे फलितं वाक्यार्थमाह ब्रह्मेत्यादिना नद्यः स्रोतांसीव निम्नप्रवणानि कर्मभिरतितरां परिपक्वकषायस्य करणानि सर्वतो व्यावृत्तानिनिरस्ताशेषकूटस्य प्रत्यगात्मान्वेषणप्रवणानि भवन्तीति सुकर्मयोगस्य परमार्थसंन्यासप्राप्त्युपायत्वं फलितमाह अत इति ॥ ६ ॥

स्वामिकृतटीका ।

यदि कर्मयोगिनोऽप्यन्ततः संन्यासेनैव ज्ञाननिष्ठा तर्हि आदित एव संन्यासः कर्त्तुं युक्त इति मन्वानं प्रत्याह संन्यासस्त्विति अयोगतः कर्मयोगं विना संन्यासः प्राप्तुं दुःखं दुःखहेतुरशक्यं इत्यर्थः चित्तशुद्ध्यभावेन ज्ञाननिष्ठाया असम्भवात् योगयुक्तस्तु शुद्धचित्ततया मुनिः संन्यासी भूत्वा अचिरेण ब्रह्माधिगच्छति अपरोक्षं जानाति अतश्चित्तशुद्धेः प्राक् कर्मयोग एव संन्यासाद्विशिष्यत इति पूर्वोक्तं सिद्धं तदुक्तं वार्त्तिककृद्

भिः प्रमादिनो वहिश्चिताः पिशुनाः कलहोत्सुकाः संन्यासिनोऽपि दृश्यन्ते दैवसंदूषिताशया इति ॥ ६ ॥

नवलभाष्य।

अब जो कदाचित् अर्जुनकहै कि जो दोनों एकरूपही हैं तौ ज्ञानप्रधान होने से और प्रत्यक्ष फलहोनेसे संन्यासही श्रेष्ठहै ऐसा कहना उचितथा फिर क्यों ऐसा कहा कि कर्मसंन्यास और कर्मयोग इनके मध्यमें कर्मयोग ही विशेषहै तौ भगवान् कहते हैं कि इसमें कारणको सुनो हे अर्जुन तुम ने कर्मयोगको और कर्मसंन्यास को अपने मनमें करके पूछाथा कि दोनोंमें कौन श्रेष्ठहै तौ मैंनेभी उस योग्यही उत्तरदिया कि कर्मसंन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठहै परन्तु ज्ञानके ऊपर दृष्टिकरके नहींकहा अर्थात् ज्ञानसहित कर्मसंन्यास से मैं ने कर्मयोग की श्रेष्ठता नहींकही और ज्ञानकी अपेक्षाकरके जो संन्यासहै सो तो सांख्य कहाता है और वोही मुझको अभिप्रेत है अर्थात् मेरा अभिप्राय उसी संन्यासमें है और परमार्थ अर्थात् सत्ययोग भी वही है जो वैदिककर्मयोगहै सो वह वैदिककर्मयोग संन्यासके अर्थहोनेसे लक्षणा करके संन्यासही को कहताहै अर्थात् योगशब्द यहां संन्यासशब्दके अर्थको कहताहै सो अर्थ यहां कैसे होताहै इससे कहते हैं (संन्यासइति) हे महावाहो हे अर्जुन संन्यास जो है सो तौ अर्थात् परमार्थिक संन्यास तौ योग के विना प्राप्तहोनेको दुःखरूपही है अर्थात् दुःखकरके प्राप्तहोने को योग्य है इससे योग युक्त जो मुनि अर्थात् ईश्वरमें समर्पित और फलकी अपेक्षाकरके रहित जो वैदिककर्म योग तिसकरके युक्त और ईश्वर रूपके मननसे मुनि ब्रह्मविचारमें तत्पर सो ब्रह्म जो परमात्मज्ञान निष्ठारूप इसप्रकरणमें कहाहुआ संन्यास तिसको शीघ्रही प्राप्तहोता है इस आशयसे मैंने कहाकि कर्मयोग श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यदा पुनरयं सम्यग्दर्शनप्राप्त्युपायत्वेनयोगेति योगेन युक्तो विशुद्धात्मा विशुद्धचित्तो विजितात्माविजितदेहो जितेन्द्रियश्च सर्व्वभूतात्मा सर्वेषां ब्रह्मादीनां स्तम्बपर्य्यन्तानां भूतानामात्मा भूतआत्माप्रत्येकचेतनो यस्य स सर्व्वभूतात्मभूतात्मा सम्यग्दर्शीत्यर्थः स तत्रैव वर्त्तमानो लोकसंग्रहायकर्म कुर्व्वन्नपि न लिप्यते योगयुक्तो न कर्मभिर्बध्यत इत्यर्थः ॥ ७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

ननु पारिव्राज्यं परिगृह्य श्रवणादिसाधनमसकृदनुतिष्ठतो लब्धसम्यग्बोधस्यापि यथा पूर्वं कर्माण्युपलभन्ते तानि च बन्धहेतूनि भविष्यन्तीत्याशङ्क्य श्लोकान्तरमवतारयति यदा पुनरिति सम्यग्दर्शनप्राप्त्युपायत्वेन यदा पुनरयं पुरुषो योगयुक्तत्वादिविशेषणः सम्यग्दर्शी सम्पद्यते तदा प्रातिभासिकीं प्रवृत्तिमनुसृत्य कुर्वन्नपि न लिप्यत इति योज

ना योगेन नित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठानेनेति यावत् आदौ नित्याद्यनुष्ठानवतो रजस्तमोभ्यामकलुषितं सत्वं सिद्ध्यतीत्याह विशुद्धेति बुद्धिशुद्धौ कार्यकारणसंघातस्यापि स्वाधीनत्वं भवतीत्याह विजितेति तस्य यथोक्तविशेषणवतो जायते सम्यग्दर्शित्वमित्याह सर्वभूतेति सम्यग्दर्शिनस्तर्हि कर्मानुष्ठानं कुत्रत्यं तदनुष्ठाने वा कुतोबन्धविश्लेषसिद्धिरित्याशङ्क्याह स तत्रेति सम्यग्दर्शनं सम्यगर्थः ॥ ७ ॥

स्वामिकृतटीका।

कर्मयोगादि क्रमेण ब्रह्माधिगमे सत्यपि तदुपरितनेन कर्मणा बन्धः स्यादेवेत्याशङ्क्याह योगयुक्त इति योगेन युक्तः अतएव विशुद्ध आत्मा चित्तं यस्य अत एव विजित आत्मा शरीरं येन अतएव विजितानीन्द्रियाणि येन ततश्च सर्वेषां भूतानामात्मभूत आत्मा यस्य स लोकसंग्रहार्थं स्वाभाविकं वा कर्म कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जिस अवस्थामें फिर यह पुरुष सम्यग्दर्शनरूप ज्ञान की प्राप्ति में उपाय रूप योग करके युक्त और इसीसे विशुद्धहुआ अर्थात् निर्मल हुआहै चित्त अन्तःकरण जिसका और फिर विजित जीता है अर्थात् अपने आधीन कियाहै स्थूलदेह जिसने और फिर जितेन्द्रियः अर्थात् जीतीहैं इन्द्रियां जिसने और सर्वभूतात्मभूतात्मा अर्थात् सब ब्रह्माको आदिलेके तृणपर्य्यन्त जीवोंका आत्मभूतही आत्मास्वरूप जिसका अर्थात् सबप्राणियोंमें अपनेहीस्वरूप को व्याप्त जो ज्ञानी देखरहाहै ऐसासम्यग्दर्शी जो ज्ञानी सो लोकसंग्रह के अर्थ कर्म कर्त्ताहुआभी कर्मोंकरके लिप्त नहींहोता अर्थात् योगयुक्त बन्धनको प्राप्तनहीं होताहै ॥ ७ ॥

नैव किंचित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन् ॥८॥

शङ्करभाष्यम्।

नचासौ परमार्थतः करोतीत्यतनैव किञ्चित् करोमीति युक्तः समाहितः स न मन्येत चिंतयेत तत्त्वविदात्मनो याथात्म्यं तत्त्वं वेत्तीति तत्त्ववित् परमार्थदर्शीत्यर्थः कदा कथंवा तत्त्वमवधारयन् मन्येतेत्युच्यते पश्यन्निति मन्येतेति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

कर्माण्यंगीकृत्य तैरस्य विदुषो बन्धो नास्तीत्युक्तमिदानीं वस्तुतस्तस्य कर्माण्येव न सन्तीत्याह नचेति लोकदृष्ट्या विदुषोऽपि कर्माणि सन्तीत्याशङ्क्य स्वदृष्ट्या तदभावमभिप्रेत्याह नैवेति सार्द्धं समनन्तरश्लोकमाकाङ्क्षापूर्वकमुत्थापयति कदेत्यादिना चक्षुरादिज्ञानेन्द्रियैर्वागादिकर्मेन्द्रियैः प्राणादिवायुभेदैरन्तःकरणचतुष्टयेन च तत्तच्चेष्टानिर्वर्तनावस्थायां तत्तदर्थेषु सर्वा प्रवृत्तिरिन्द्रियाणामेवेत्यनुसन्दधानो नैव किञ्चित् करोमीति विद्वान् प्रतिपद्यते इत्यर्थः ॥ ८ ॥

स्वामिकृतटीका।

कर्म कुर्वन्नपि न लिप्यत इत्येतद्विरुद्धमित्याशंक्य कर्तृत्वाभिमानाभावान्नेत्याह नैवेति द्वाभ्यां कर्मयोगेन युक्तः क्रमेण तत्त्वविद्भूत्वा दर्शनश्रवणादीनि कुर्वन्नपीन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्त इति धारयन् बुद्ध्या निश्चिन्वन् किञ्चिदप्यहं न करोमीति मन्यते तत्र दर्शनश्रवणस्पर्शनावघ्राणाशनानिचक्षुरादिज्ञानेन्द्रियव्यापारा गतिः पादयोः स्वापो बुद्धेः श्वासः ॥ ८ ॥

नवलभाष्य।

और यहपरमार्थ दृष्टिसे कुछ नहीं करताहै यहजनातेहुए कहते हैं कि [नैवकिञ्चिदिति] हेअर्जुन तत्त्ववित् अर्थात् आत्माका यथावत् परमार्थ स्वरूपका जाननेवाला परमार्थदर्शी जो पुरुष सो युक्त अर्थात् समाहित एकाग्र चित्तहुआ यहनहीं मानताहै किमैं कुछकरताहूं किसअवस्थामें और किसप्रकारके योगयुक्त पुरुष तत्त्वका निश्चयकरताहुआ ऐसानहीं मानता है इसअपेक्षामें कहतेहैं कि (पश्यन्निति) ॥ ८ ॥

प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्त इति धारयन् ॥ ९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्यैवं तत्त्वविदः सर्वकार्यकरणचेष्टासु कर्मसु अकर्मैव पश्यतः सम्यग्दर्शिनस्तस्य सर्वकर्म्म संन्यास एवाधिकारः कर्म्मणोऽभावदर्शनात्नहि मृगतृष्णिकायामुदकबुद्ध्यापनाय प्रवृत्त उदकाभावज्ञानेऽपि तत्रव पानप्रयोजनाय सम्प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यथोक्तस्य विदुषो विध्यभावेऽपि विद्यासामर्थ्यात् प्रतिपत्तिकर्मभूतं कर्मसंन्यासं फलात्मकमभिलपति यस्येति अज्ञस्येव विदुषोऽपि कर्मसु प्रवृत्तिसम्भवात् कुतः संन्यासेऽधिकारः स्यादित्याशङ्क्याह नहीति ॥ ९ ॥

स्वामिकृतटीका।

प्राणस्य प्रलपनं वागिन्द्रियस्य विसर्गः पायूपस्थयोः ग्रहणं हस्तयोः उन्मेषनिमेषणो कूर्माख्यप्राणस्येति विवेकः एतानि सर्वाणि कुर्वन्नपि अनभिमानात् ब्रह्मवित् न लिप्यते तथाच परामर्षं सूत्रं तदधिगमे उत्तरपूर्वार्द्धयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशादिति ॥ ९ ॥

नवलभाष्य।

हे अर्जुन देखताहुआ और सुनताहुआ और स्पर्शकरताहुआ और सूंघताहुआ और खाताहुआ और चलताहुआ और सोताहुआ औरश्वासलेताहुआ और बोलताहुआ और मलमूत्रका त्यागकरताहुआ और ग्रहणकरताहुआ अर्थात् पकड़ताहुआ और नेत्रादिकोंको खोलताहुआ और मूंदताहुआ इसप्रकार इन्द्रियोंके कर्मोंकाकरता तत्त्ववेत्ता सोइन्द्रियांहींअपने२ विषयोंमें प्रवृत्तहोती हैं ऐसा निश्चयकरता और मैं कुछ नहीं करताहूं ऐसे

विवेक करके अपने आत्माको मानताहै इसप्रकार सबकार्य करण अर्थात् देहइन्द्रिय चेष्टारूप कर्मोंमें जो तत्त्ववेत्ता सम्यग्दर्शी ज्ञानी अकर्महीको देखताहै तिसको सबकर्मोंके त्यागहीमें अधिकार है क्योंकि जिससे कर्मका अभावदर्शन है तिससे नहीं कहीं मृगतृष्णाके जलमें पानबुद्धिकरके प्रवृत्त हुए पुरुषको किसी कारणसे जलके अभावज्ञानहुए पीछे फिर उसमें जल पानके प्रयोजनसे प्रवृत्ति होतीहै ॥ ९ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १० ॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्तु पुनरतत्त्ववित् प्रवृत्तश्च कर्म्मयोगे ब्रह्मणीति ब्रह्मणीश्वरे आधाय निक्षिप्य तदर्थं करोमीति भृत्य इव स्वाम्यर्थं सर्वाणि कर्म्माणि मोक्षेऽपि फले सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः सर्वकर्म्माणि लिप्यते न स पापेन सम्बद्ध्यते पद्मपत्रमिवाम्भसोदकेन ॥ १० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तर्हि विद्यावानिवाविद्यावानपि कर्माणि न प्रवर्त्तेत पापोऽपद्दतिसम्भवादित्याशङ्क्याह यस्त्विवति यथा भृत्यः स्वाम्यर्थं कर्माणि करोति न स्वफलमपेक्षते तथैव यो विद्वान् मोक्षेऽपि संगं त्यक्त्वा भगवदर्थमेव सर्वाणि कर्माणि करोति न स्वकर्मणा बध्यते नहि पद्मपत्रमम्भसा सम्बध्यते तद्वदित्यर्थः ॥ १० ॥

स्वामिकृतटीका।

तर्हि यस्य करोमीत्यभिमानोऽस्ति तस्याकर्मलेपो दुर्वारः तथा अविशुद्धचित्तत्वात् संन्यासोऽपि नास्तीति महत् संकटमापन्नमित्याशङ्क्याह ब्रह्मणीति ब्रह्मण्याधाय परमेश्वरे समर्प्य तत्फले च संगं त्यक्त्वा यः कर्माणि करोति असौ पापेन बन्धहेतुतया पापिष्ठेन पुण्यपापात्मकेन कर्मणा न लिप्यते यथा पद्मपत्रमम्भसि स्थितमपि तेनाम्भसा न लिप्यते तद्वत् ॥ १० ॥

नवलभाष्य।

और जो तत्त्वका जाननेवाला नहीं है और कर्म योगमें प्रवृत्तहुआ है तिसकेलिये कहतेहैं कि [ब्रह्मणीति] हे अर्जुन जो पुरुष सबकर्मों को ब्रह्म जो परमेश्वर तिसमें स्थापनकरके अर्थात् जैसे राजाका भृत्य अपने स्वामीके अर्थ कर्म करताहै तैसे सबकर्मोंको जो भक्तपरमेश्वर प्रीतिके अर्थ करताहुआ परमेश्वरहीमें उनके फलोंको समर्पणकरके और परमेश्वरप्रसाद से होनेवाला जो मोक्षरूप फल तिसमेंभी आसक्तिको त्यागकरके कर्मकरताहै सो कामरूपी पापकरके लिप्तनहीं होता जैसे कमलका पत्रजलही में रहताहै और जलकरके लिप्तनहीं होताहै तैसे परमेश्वरका भक्तभी कर्मोंमें रहताभी है परन्तु उनकर्मोंमें अभिलाषरूपी जो पाप है तिसकरके लिप्त नहीं होताहै ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

शङ्करभाष्यम्।

केवलं सत्त्वशुद्धिमात्रफलमेव तस्यैव कर्मणः स्यात् यस्मात् कायेनेति कायेन देहेन मनसा बुद्ध्या च केवलैरिन्द्रियैर्ममत्ववर्जितैरपि ईश्वरायैव कर्म करोमीति न फलायेति ममत्वबुद्धिशून्यैरिन्द्रियैरपि केवलशब्दः कायादिभिरपि प्रत्येकं सम्बध्यते सर्वव्यापारेषु ममतावर्ज्जनाय योगिनः कर्मिणः कर्म्म कुर्वन्ति सङ्गं सक्त्वा फलविषयमात्मशुद्धये सत्वशुद्धय इत्यर्थः ॥ ११ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अविदुषस्तर्हि कृतेन कर्मणा किं स्यादित्याशङ्क्याह केवलमिति अज्ञस्येश्वरार्पणबुद्ध्यानुष्ठितं कर्मबुद्धिशुद्धिफलमित्यत्रैव हेतुमाह यस्मादिति केवलशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धे प्रयोजनमाह सर्वव्यापारेष्विति ॥ ११ ॥

स्वामिकृतटीका।

बन्धकत्वाभावमुक्त्वा मोक्षहेतुत्वं सदाचारेण दर्शयति कायेनेति कायेन स्नानादि मनसा ध्यानादि बुद्ध्या तत्त्वनिश्चयादि केवलैः कर्माभिनिवेशरहितैरिन्द्रियैः श्रवणकीर्तनादि लक्षणं कर्मफलसंगं त्यक्त्वा चित्तशुद्धये कर्म योगिनः कुर्वन्ति ॥ ११ ॥

नवलभाष्य।

केवल अन्तःकरण शुद्धिमात्रही तिसकर्मका फलहोता है यह दिखाने को भगवान् कहतेहैं कि [कायेनेति] हे अर्जुन काय जो देह तिसकरके औरमनकरके और बुद्धिकरके और केवल जे इन्द्रिय अर्थात् ममत्ववर्जित जे इन्द्रियां तिन्होंकरके भी अर्थात् परमेश्वरकी प्रीतिहीके अर्थमें कर्म करताहूं और किसी फलके अर्थ नहीं करताहूं इसप्रकार ममत्व बुद्धिरहित जे इन्द्रियां तिन्होंकरके योगीजेकर्म करनेवाले ते कर्म फलोंमें आसक्तिको त्यागकरके केवल अन्तःकरण शुद्धिके अर्थकर्म करते हैं और यहां देहादि व्यापारोंमें भी जिससे ममत्वका वर्जन सिद्धहोय इससे केवल शब्दका देहादिकोंमें न्यारा न्यारा संबंध होताहै तिससे ममत्वरहित केवल देहव्यापारकरके और मत्वरहित केवल मनकरके और ममत्व रहित केवल बुद्धिकरके और मत्व रहित केवल इन्द्रियों करके योगी कर्म करतेहैं यह अर्थ जानना ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीं।
अयुक्तः कामकारेण फले शक्तो निबध्यते ॥ १२ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तस्माच्चत्वैव तवाधिकार इति कुरु कर्मैव यस्माच्च युक्त इति युक्त ईश्वराय कर्माणि करोमि न मम फलायेति एवं समाहितः सन् कर्मफलं सक्त्वा परित्यज्य शान्तिं मोक्षाख्यामाप्नोति नैष्ठिकीं निष्ठायाम्भवां सत्त्वशुद्धिज्ञानाप्राप्तिसर्वकर्मसंन्यासज्ञाननिष्ठाक्रमेणेति वाक्यशेषः यस्तुपुनर

युक्तोऽसमाहितः कामकारेण करणं कारः कामस्यकारः कामकारस्तेन कामकारेण कामप्रेरितः बयेत्यर्थः मम लाभायेदं करोमि कर्मेत्येवं फले शक्ता निबध्यते अतस्त्वं युक्ताभवइत्यर्थः ॥ १२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

कर्मणश्चित्तशुद्धिफलत्वे तादर्थ्येन कर्मानुष्ठानमेव तव कर्त्तव्यमिति यस्मादित्यस्यापेक्षितं वदन् फलितमाह तस्मादिति युक्तः सन् फलं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन् मोक्षाख्यां शान्तिं यस्मादाप्नोति तस्माच्च त्वया संगं त्यक्त्वा कर्म कर्त्तव्यमिति योजना विपक्षे दोषमाह अयुक्त इति युक्तत्वं व्याकरोति ईश्वरायेति फलं परित्यज्य कर्म कुर्वन्निति शेषः नैष्ठिकी शान्तिरित्येतदेव विशदयति द्वितीयमर्द्धं विभजते यस्त्विति असमाधाने दोषादर्जुनस्य नियोगं दर्शयति अतस्त्वमिति ॥ १२ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ननु कथं तेनैव कर्मणा कश्चिन्मुच्यते कश्चिद्बध्यत इति व्यवस्था अत आह युक्त इति युक्तः परमेश्वरैकनिष्ठः सन् कर्मणां फलं त्यक्त्वा कर्माणि कुर्वन्नात्यन्तिकीं शान्तिं मोक्षं प्राप्नोति अयुक्तस्तु बहिर्मुखः कामकारेण कामतः प्रवृत्या फले आसक्तो नितरां बन्धं प्राप्नोति ॥ १२ ॥

नवलभाष्य ।

तिससे हे अर्जुन भक्तोंके योग्य उक्त विध कर्ममेंही तेरा अधिकार है इससे तू कर्महीकर इसआशयसे कहतेहैं कि [युक्तइति] युक्तः अर्थात् ईश्वरके अर्थही मैं कर्मकरताहूं कुछ अपने फलकेलिये नहीं करताहूं इस प्रकार समाहित एकाग्र चित्तहोके कर्म फलको त्यागके कर्म करता हुआ नैष्ठिकी निष्ठामें होनेवाली जो मोक्षरूपा शान्ति तिसको प्राप्तहोता है अर्थात् प्रथम सत्त्व शुद्धि तदनन्तर ज्ञानप्राप्ति तिसके अनन्तर सबकर्मों का त्यागपूर्वक ज्ञाननिष्ठा इसक्रमसे मोक्षरूप शान्तिको प्राप्तहोता है और जो तो फिर अयुक्तहै असमाहित है अर्थात् स्थिर चित्त नहींहै किन्तुचल चित्त है सो तो कामकारकरके अर्थात् कामनाओंकी प्रेरणासे मैं इसकामनासे यह कर्म करताहूं इसप्रकार फलमें प्रीति युक्त पुरुष बन्धनको प्राप्तहोता है इससे हेअर्जुन तू तो युक्तहो अर्थात् समाहितहीहो प्राकृत मनुष्योंके तुल्यकामासक्तमत हो ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यस्तु परमार्थदर्शी स सर्वेति सर्वाणि कर्माणि सर्वकर्माणि संन्यस्य परित्यज्य नित्यं नैमित्तिकं काम्यं प्रतिषिद्धञ्च तानि सर्वाणि कर्माणि मनसा विवेकबुद्ध्या कर्मादौ अकर्म सन्दर्शनेन संत्यजेत्यर्थः आस्ते तिष्ठति सुखं त्यक्तवान् मनःकायचेष्टोयतिः निरायासःप्रसन्नचित्तः आत्मनोऽन्यत्र निवृत्त बाह्य सर्वप्रयोजनः सुखमास्त इत्युच्यते वशी जितेन्द्रिय इत्यर्थः क्वास्त इत्याह नवद्वारे पुरे सप्तशीर्षण्यात्मन उपलब्धिद्वाराण्यर्वाग् द्वय मूत्र पुरीषविसर्गार्थे तैर्द्वारैर्नवद्वा

पुरमुच्यते शरीरं पुरमिव पुरमात्मैकस्वामिकं तदर्थप्रयोजनैश्चेन्द्रियमनोबुद्धिविषयैर्नैकफलविज्ञानस्योत्पादकैः पौरैरिवाधिष्ठितं तस्मिन्नवद्वारे पुरे देही सर्वं कर्मसंन्यस्यास्ते इति किं विशेषणं न सर्वो हि देही संन्यस्य संन्यासीव देह एवास्ते तत्रानर्थकं विशेषणमुच्यते यस्त्वज्ञो देही देहेन्द्रिये संघातमात्रात्मदर्शी स सर्वोऽपि गेहे भूमावासने वासे इति मन्यते नहि देहमात्रात्मदर्शिनो देह इव देद आस इति प्रत्ययः सम्भवति देहादि संघातव्यतिरिक्तात्मदार्शिनस्तु देहआस इयि प्रत्यय उपपद्यते परकर्मणाञ्च परास्मिन्नात्मन्यविद्ययाध्यारोपितानां विद्यया विवेक ज्ञानेन मनसा संन्यास उपद्यते उत्पन्नविवेकविज्ञानस्य सर्वकर्म संन्यासिनोऽपि गेह इव देह एव नव द्वारे पुरे आसनं प्रारब्धफलकर्मसंस्कारशेषानुवृत्त्या देह एव विशेषविज्ञानोत्पत्तेर्देह एवास्त इत्यस्त्येव विशेषणफलं विद्वदविद्वत्प्रत्ययमेदापेक्षत्वाद यद्यपि कार्य्यकरणकर्माण्यविद्ययात्मन्यध्यारोपितानि संन्यस्यास्ते इत्युक्तं तथाप्यात्मसमवायि तु कर्तृत्वं कारयितृत्वञ्च स्यादित्याशंक्याह नैव कुर्वन् स्वयं न च कार्य्यकारणानि कारयन् क्रियासु प्रवर्त्तयन् किं यत् तत् कर्तृत्वं कारायितृत्वञ्च देहिनः स्वात्मसमवायि सत् संन्यासान्न संभवति यथा गच्छती गतिः गमन व्यापारपरित्यागेन स्यात्तद्वत् किंवा स्वत एवात्मनो नास्तीत्यत्रोच्यते नास्यात्मनः स्वतः कर्तृत्वं कारयितृत्वञ्चोक्तं ह्यविकार्य्योयमुच्यते शरीरस्थोपि कौन्तेय न करोति न लिप्यत इति ध्यायतीव लेलायतीवेति श्रुतेः ॥ १३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तर्हि फले सक्तिं त्यक्त्वा सर्वैरपि कर्म कर्तव्यमिति कर्मसंन्यासस्य निरवकाशत्वमित्याशङ्क्याविदुषः सकाशाद्विदुषो विशेषं दर्शयति यस्त्विति सर्वकर्मपरित्यागे प्राप्तमरणं व्यावर्तयति आस्त इति वृत्तिं लभमानोऽपि शरीरतापेनाध्यात्मिकादिना तप्यमानास्तिष्ठतीति चेन्नेत्याह सुखमिति कार्य करणसंघातपारवश्यं पर्युदस्यति वशीति आसनस्यापेक्षितमधिकरणं निर्दिशति नवेति देहसम्बन्धाभिमानाभासवत्त्वमाह देहीति मनसा सर्वकर्मसंन्यासेऽपि लोकसंग्रहार्थं वहिः सर्वं कर्म कर्तव्यमिति प्राप्तं प्रत्याह नैवेति तान्येव सर्वाणि कर्माणि परित्याज्यानि विशिनष्टि नित्यमिति तेषां परित्यागे हेतुमाह तानीति यदुक्तं सुखमास्त इति तदुपपादयति त्यक्त्वेति जितेन्द्रियत्वं कायवशीकारस्याप्युपलक्षणं द्वे श्रोत्रे द्वे चक्षुषी द्वे नास्तिके वागेकेति सप्तशीर्षण्यानि शिरोगतानि शब्दाद्युपलब्धिद्वाराणि तथापि कथं नवद्वारत्वमधोगताभ्यां पायूपस्थाभ्यां सहेत्याह अर्वागिति शरीरस्य पुरसाम्यं स्वामिना पौरैश्चाधिष्ठितत्वेन दर्शयति आत्मेत्यादिना यद्यपि देहे जीवनत्वाद्देहसम्बन्धाभिमानाभासमानर्वातिष्ठते तथापि प्रवासीव परगेहे तत्पूजापरिभवादिभिरप्रहृष्यन्नविषीदन् व्यामोहादिरहितश्च तिष्ठतीति मत्वाह तस्मिन्निति विशेषण माक्षिपति किमिति तदनुपपत्तिमेवादर्शयति सर्वोहीति सर्व साधारणे देहावस्थाने संन्यस्य देहेतिष्ठति विद्वानिति विशेषणमकिञ्चित्कारमिति फलितमाह तत्रेति विशेषणफलं दर्शयन्नुत्तरमाह उच्यत इति किं अवि किनं प्रति विशेषणानर्थक्यं चोद्यते किंवा विवेकिनं प्रतीति विकल्प्याद्यमंगीकरोति यस्त्विति अज्ञत्वदेहित्वे हेतुः तदेव देहित्वं स्फुटयति देहेति सघतात्मदर्शिनोऽपि देहे स्थितिप्रतिभासः स्यादिति चेन्नेत्याह नहीति द्वितीयं दूषयति देहादीति गृहादिषु देहस्यावस्थानेनात्मावस्थान भ्रमव्यावृत्त्यर्थं देहे विद्वानास्त इति विशेषणमुपपद्यते विवेकवतो देहेऽवस्थानप्रतिभाससम्भावादित्यर्थः ननु विवेकिनो देहावस्थानप्रतिभानेऽपि वाङ्मनोदेहव्यापारात्मना कर्मणां तस्मिन् प्रसंगाभावात् तत्त्यागेन कुतस्तस्य देहेऽवस्थानमुच्यते तत्राह

परकर्मणाञ्चेति ननु विवेकिनो दिगाद्यनवच्छिन्नबाह्याभ्यन्तराविक्रियब्रह्मात्मतां मन्यमानस्य कुतो देहेवऽस्थानमास्थातुं शक्यते तत्राह उत्पन्नेति तत्र हेतुमाह प्रारब्धेति प्रारब्धफलं धर्माधर्मात्मकं कर्म तस्योपभुक्तस्य शेषादनुपभुक्ताद्देहादिसंस्कारोऽनुवर्त्तते तदनुवृत्त्या च तत्रैव देहे विशेषविज्ञानमवस्थानविषयमुपपद्यते अतो विवेकवतः संन्यासिनो देहेऽवस्थानव्यपदेशः सम्भवतीत्यर्थः अविद्वत्प्रत्ययापेक्षया विशेषणासम्भवेपि विद्वत्प्रत्ययापेक्षया विशेषणमर्थवदित्युपसंहरति देह एवेति देहे स्ववस्थान वियोविद्वत्प्रत्ययस्तद्विषयश्चाविद्वत्प्रत्ययस्तयोरेव भेदेविद्वत्प्रत्ययापेक्षा विशेषणमर्थवदित्युपसंहरन्नेव हेतुं विशदयति विद्वदिति आरोपितकर्तृत्वाद्यभावेऽपि स्वगतकर्तृत्वादि दुर्वारमित्याशंकामनूद्य दूषयति यद्यपीत्यादिना क्रियासुप्रवर्त्तयन्नास्त इति पूर्वेण सम्बन्धः पूर्वस्यापि शतुरेव मेव सम्बन्धः कर्तृत्वं कारयितृत्वंचात्मनो नेत्यत्र विचारयति किमिति यत् कर्तृत्वं कारयितृत्वंच तत् किं देहिनः स्वात्मसमवायि सदेव संन्यासान्न भवतीत्युच्यते यथा गच्छतो देवदत्तस्य स्वगतैव गतिः तत् स्थित्यात्यागान्न भवति अथवा स्वारस्येन कर्तृत्वं कारयितृत्वञ्चात्मनो नास्तीति वक्तव्यमाद्ये सक्रियत्वं द्वितीये कूटस्थत्वमित्यर्थः द्वितीयं पक्षमाश्रित्योत्तरमाह अत्रेति उक्तेऽर्थे वाक्योपक्रममनुकूलयति उक्तं हीति तत्रैव वाक्यशेषमपि सम्पादयति शरीरस्थोऽपीति स्मृत्युक्तेऽर्थे श्रुतिमपि दर्शयति ध्यायतीवेति उपाधिगतैव सर्वाविक्रियानात्मनि स्वतोऽस्तीत्यर्थः ॥ १३ ॥

स्वामिकृतटीका।

एवं तावत् चित्तशुद्धिशून्यस्य संन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यत इत्येतत् प्रपञ्चितं इदानीं शुद्धचित्तस्य संन्यासः श्रेष्ठ इत्याह सर्वकर्माणीति वशीजित चित्तः सर्वकर्माणि विक्षेपकानि मनसा विवेकयुक्तेन संन्यस्य सुखं यथा भवत्येवं ज्ञाननिष्ठः सन्नवस्ते क्वास्त इत्यत आह नवद्वारे नेत्रे नासिके कर्णौ मुखञ्चेति सप्तशिरोगतानि अधोगते द्वेपायूपस्थरूपे इत्येवं नवद्वाराणि यस्मिन् पुरे पुरवदहंकारशून्ये देहे देही अवतिष्ठते अहंकाराभावादेव स्वयं तेन देहेन नैव कुर्वन् मम काराभावात् न कारयन्निति अशुद्धचित्ताद्व्यावृत्तिरुक्ता अशुद्धचित्तो हि संन्यस्य पुनः करोति कारयति च नत्वयं तथा अतः सुखमास्त इत्यर्थः ॥ १३ ॥

नवलभाष्य।

और जो तो परमार्थका देखनेवाला है सो तो इसरीतिसे रहताहै इस आशयसे भगवान् कहतेहैं कि [सर्वेति] हे अर्जुन जो सबकर्मों को अर्थात् नित्यनैमित्तिक काम्य प्रतिषिद्ध जे चारप्रकारके कर्महैं तिनमें सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म हैं और श्राद्धादि नैमित्तिक कर्म हैं और पुत्रेष्ट्यादिक अर्थात् पुत्रकी उत्पत्तिकेलिये यज्ञतिसको आदिलेके कर्म काम्य कर्मपरनिन्दाहिंसादिक इनसबोंको मनकरके अर्थात् विवेकवती बुद्धि करके कर्मादिकों में अकर्म जो ब्रह्म तिसके सम्यग्दर्शनकरके परित्यागकरके सुखपूर्वक स्थित होताहै अर्थात् त्यागकरीहैं बाणी औरमन औरशरीर इन्होंकी चेष्टा जिसने ऐसा जो श्रमरहित प्रसन्नचित्त संन्यासी सो आत्मासे औरजगह अपने सब बाह्यप्रयोजनोंसे निवृत्त और जितेन्द्रिय होके सुखपूर्वक रहताहै कौन

जगह रहताहै तौ इस आकांक्षामें कहते हैं नवद्वारपुरमें रहता है तहां उस पुरमें सात तौ ऊपरके द्वारहैं अर्थात् दो नेत्रोंके छिद्र और दो कानोंके और दो नासिकाके और एक मुखका छिद्र ये सातद्वार ऊपरकेहैं और एक गुदा का छिद्र और एक लिङ्ग का छिद्र इसप्रकारसे दो नीचेके द्वारहैं इनद्वारों करके नवद्वारकापुर यहशरीर कहाताहै क्योंकि लोक प्रसिद्ध पुरके तुल्ययह शरीरभी पुरहै जैसे पुर नगर ग्रामादिकों का कोई स्वामी होताहै और पुर-बासी लोगभी होते हैं तैसे एक आत्मा इसशरीरपुरका स्वामीहै और उस आत्माही के अर्थ प्रयोजन जिन्होंका ऐसे इन्द्रिय और मन और बुद्धिविष-य अनेक फल विज्ञानके उत्पन्नकरनेवाले पुरवासी हैं तिन्होंकरके बसरहा है अर्थात् वे इन्द्रियादि प्रजा इसपुरमें वासकरती हैं तिस नवद्वारपुर में देही ओ आत्मा अर्थात् आत्मरूपही जो वह संन्यासी सो कर्मोंको त्यागके स्थितहोरहाहै न कहौ ऐसे विशेषणोंकरके आत्मवित् संन्यासी का वर्णन व्यर्थहै क्योंकि सबही का आत्मा इसदेहमें संन्यासीके तुल्य कर्मोंका त्याग करके वासकरताही है फिर संन्यासीहीमें क्या विशेषता हुई तब इसप्रश्न का समाधान करतेहुए ज्ञानीका और अज्ञानीका अन्तर कहते हैं कि जो अज्ञदेहीहै अर्थात् जो मूर्ख देहाभिमानी पुरुष देहसंघातमात्रमें आत्माको देखताहै सो सबहीगृहमें और पृथिवीमें और आसनपै मैं बैठाहूं ऐसामान ताहै नहीं कहीं देहमात्रमें आत्मदर्शी पुरुषको गृहके सदृश देहमें मैं बैठाहूं ऐसी प्रतीति सम्भवहोतीहै अर्थात् देहही मैं हूं ऐसे जाननेवाले पुरुषको जैसे घरमें मैं बैठाहूं ऐसा ज्ञानहोताहै तैसे देहमें मैं बैठाहूं ऐसाज्ञान नहींहो-ताहै और देहादि संघातसे न्यारा आत्मा कोदेखनेवाला जो पुरुष तिसको तौ देहमें मैं हूं ऐसी प्रतीति होतीही है और उसीको प्रकृतिसे परे आत्मा में अविद्याकरके आरोपित अर्थात् झूंठेही मानरक्खे जे देह इन्द्रियादिकोंके कर्म तिन्होंका विवेकज्ञानकरके मनसे त्यागभी बनसक्ता है और उत्पन्नहु-आ विवेकज्ञान जिसको अर्थात् देहादिकोंसे मैं न्याराहूं ऐसाहै विवेकज्ञान जिसको ऐसा जो सब कर्मोंका त्यागकरनेवाला संन्यासी तिसको गृहकी नाईं अर्थात् जैसे घरमें स्थितिहोती है नवद्वारपुररूप देहमें स्थिति सम्भव होताहै क्योंकि जोप्रारब्धकर्मफलका अंशबाकीरहाहै तिसकी अनुवृत्तिकरके ज्ञानीको देहहीमें भोगनेके योग्य पदार्थोंका विशेषज्ञान सम्भवहोसक्ता है तिससे देहहीमें मैं बैठाहूं ऐसा व्यवहार होताहै इससे ज्ञानी और अज्ञानी के निश्चयके भेदसे (नवद्वारेपुरेदेही) इसविशेषणका फलहै ही कुछ निरर्थ नहीं है अर्थात् नौ दरवाजे के शरीररूप पुरमें ज्ञानीका और रीतिसे बर्त्ताव होताहै और अज्ञानीका और तरहका निश्चय और बर्त्तावहोनेसे विशेषता प्रतीत होतीहीहै यद्यपि अविद्याकरके आत्मामें आरोपित कार्यकारणकरण कर्मादिकोंको त्यागकरके ज्ञानी नवद्वार पुरमें रहताहै ऐसा पहले कहि आएहैं तो भी करनेमें और करानेमें और त्यागदेनेमें और त्यागकराने में

आत्मामें क्रियाहोनेसे समवाय संबन्धअर्थात् क्रियाऔर क्रियावान्केसंबन्ध को समवाय संबन्ध कहतेहैं यहतर्कशास्त्रमें प्रसिद्धहै तो प्रतीति होगाहीहै इसदोषके कारणकरनेकोकहतेहैं [नैवेति] हेअर्जुन न तोआपकरतेहुए और न देहइन्द्रियादिकोंसे करातेहुए स्थितहोता तो फिर क्याआत्मामें पहले कर्तृत्वथा अर्थात् कर्त्तापनाथा और करानाभीथा सो संन्यास करनेसेनिवृत्त किया जैसे कोई चलताहोय और उसको फिर चलनेके निषेधकरे अथवा पहलेहीसे आत्मामें जेकर्तृत्वादिक धर्मनहींहै उसीका अनुबाद संन्यासादि शब्दोंकरके कियाजाता है तिसपै कहतेहैं इसआत्माको आपही कर्तृत्वादि धर्म नहींहैं सो पीछे कहिआएहैं कि (अविकार्य्योयमुच्यते ॥ शरीरस्थोपि कौन्तेय न करोतिनलिप्यतइति)यहआत्मा विकाररहित कहाजाताहै और हे अर्जुन शरीरमें स्थितभीहै तो भी न कुछ करताहीहै और न लिप्तही होताहै ॥ और श्रुतिभी कहतीहै ॥ (ध्यायतीवलेलायतीव) ध्यानकरने-वालेके सदृश और क्रीड़ाकरने वालेके सदृश आत्मा प्रतीत होताहै यह श्रुतिका अर्थहै ॥ इससे जानागया कि ध्यान करना इत्यादि धर्मआत्माके नहींहै किन्तु बुद्धिहीके हैं ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोग स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च न कर्तृत्वमिति न कर्तृत्वं स्वतः कुर्विति नापि कर्माणि रथघटप्रासादादीनि ईप्सिततमानि लोकस्य सृजत्युत्पादयति प्रभुरात्मा नापि रथादि कृतवतस्तत्फलेनसंयोगं न कर्मफलसंयोगं न यदि किञ्चिदपि स्वतो न करोति न कारयति च देहि कर्स्ताहि कुर्वन् कारयंश्च प्रवर्त्तत इत्युच्यते स्वभावस्तु स्वोभावः स्वभावोऽविद्यालक्षणा प्रकृतिः माया प्रवर्त्तते दैवीहीत्यादीति क्ष्यमाणा ॥ १४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

आत्मनो यदुक्तं कारयितृत्वं नास्तीति तत् प्रपंचयति नेत्यादिना यद्यपि लोकस्य कर्तृत्वं न सृजतीति नास्तीति कारयितृत्वं तथापि रथशकटादीनि कुर्वन् भवति कर्त्तेत्याशङ्क्याह न कर्माणीति तथापि भोजयितृत्वेन विक्रियावत्त्वं दुष्परिहारमित्याशङ्क्याह न कर्मेति कस्य तर्हि प्रवर्तकत्वं तदाह स्वभावस्त्विति कुर्विति कर्तृत्वं लोकस्य न सृजत्यात्मेति सम्बन्धः रथादीनां कर्मत्वं साधयति ईप्सितेति आत्मनो देहादिस्वामित्वेन प्रभुत्वं रथादिकृतवतो लोकस्य रथादिफलेन सम्बन्धमपि न सृजत्यात्मेत्यात्मनो भोजयितृत्वं प्रत्याचष्टे नापीति चतुर्थपादं शंकोत्तरत्वेनावतारयति यदीत्यादिना स्वभाववादस्तर्हीत्याशङ्क्य व्याकरोति अविद्यालक्षणेति प्रकृतेरविद्यावत्वं व्युत्पादयितुं यायेत्युक्तं सा च सप्तमे वक्ष्यते तेन प्रधानविलक्षणेत्याह दैवी हीति ॥ १४ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु एष एव साधु कर्म कारयतितं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एषएवासाधुकर्म

कारयति तं यमेभ्योलोकेभ्य अधोनिनीषत इत्यादि श्रुतेः परमेश्वरेणैव शुभाशुभफलेषु कर्मसु कर्तृत्वेन प्रयुज्यमानोऽस्वतन्त्रः पुरुषः कथं तानि कर्माणि त्यजेत् ईश्वरेणैव ज्ञानमार्गे प्रयुज्यमानः शुभान्यशुभानिच त्यक्ष्यतीति चेत् एवं सति वैषम्यनैर्घृण्याभ्यामीश्वरस्यापि प्रयोजककर्तृत्वात् पुण्यपापसम्बन्धः स्यादितिशङ्काह न कर्तृत्वमिति द्वाभ्यां प्रभुरीश्वरो जीवलोकस्य कर्तृत्वादिकं न सृजति किन्तु जीवस्य स्वभावोऽविद्यैव कर्तृत्वादिरूपेण प्रवर्तते अनाद्यविद्याकामवशात् प्रवृत्तिस्वभावमेव लोकमीश्वरः कर्मसु नियुंक्ते नतु स्वयमेव कर्तृत्वादिकमुत्पादयतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन औरभी श्रवणकरो इस आशय से कहते हैं कि (नकर्तृत्वमिति) हेअर्जुन प्रभु जो आत्मा सो किसी देहेन्द्रियादिकोंसे तुम ऐसा करो ऐसा कहिके किसीका कर्तृत्वादि धर्मको कर्त्तापना इत्यादि धर्मको नहीं उत्पन्न करता है और करनेको इष्ट रथ घट महल इत्यादि कर्मोंको भी नहीं रचता है और रथादिकों के करनेवाले पुरुषोंको तिसके फलकरके संयोग कोभी नहींरचता है अब जो आत्मा आपकुछभी नहीं करता है और न किसीसे करातानहीं है तो फिरलोक में करताहुआ और करताहुआ कौन प्रवृत्त होता है इस आशयसे कहते हैं कि हे अर्जुन स्वभाव जो है सो प्रवृत्तहोताहै अविद्या लक्षण जो प्रकृति अर्थात् माया सो प्रवृत्तहोरही है अर्थात् स्वशब्द यहां आत्मीय वाची है स्वकहिये आत्मीय जो भाव नामप्रभाव मायाशक्ति सो स्वभाव कहाताहै इसीको भगवान् [दैवीह्येषागुणमयी इत्यादि] इस श्लोकमें बिस्तारपूर्बक कहैंगे १४ ॥

नादत्ते कस्यचित् पापं नचैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

परमार्थतस्तु नेति नादत्ते नच गृह्णाति भक्तस्यापि कस्यचित् पापं नचैवादत्ते सुकृतं विभुः भक्तैः प्रयुक्तं विभुः किमर्थं तर्हि भक्तैः पूजादिलक्षणं यागदानहोमादिकञ्च सुकृतं प्रयुज्यत इत्याह अज्ञानेनावृतं ज्ञानं विवेकविज्ञानं तेन मुह्यन्ति करोमि कारयामि भोक्ष्ये भोजयामि त्येवं मोहं गच्छन्त्यविवेकिनः संसारिणो जन्तवः ॥ १५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

कर्तृत्वभोक्तृत्वैश्वर्याद्यात्मनोऽविद्याकृतानीत्युक्तमिदानीमीश्वरे संन्यस्त समस्तव्यापारस्य तदेकशरणस्य दुरितं सुकृतं वा तदनुग्रहार्थं भगवानादत्ते मदेकशरणो मत्प्रीत्यर्थं कर्म कुर्वाणो दुष्कृताद्यनुमोदनेनानुग्राह्यो मयेति प्रत्ययभावत्वादित्याशङ्क्य सोऽपि परमार्थतो नास्यास्त्वविक्रियत्वादित्याह परमार्थतस्त्विति कथं तर्हि भक्तानामनुग्राह्यत्वमीश्वरस्यानुगृहीतृत्वमिति प्रसिद्धिस्तत्राह अज्ञानेनेति पूर्वार्द्धगतान्यक्षराणि व्याख्याय आकांक्षापूर्वकमुत्तरार्द्धमवतार्य व्याचष्टे किमर्थमित्यादिना ॥ १५ ॥

स्वामिकृतटीका।

कोऽपि सन् प्रभुः कस्यचित् पापं सुकृतञ्च नैवादत्ते न भजते तत्र हेतुः विभुः परिपूर्णः आप्तकाम इत्यर्थः यदि हि स्वार्थकामनया कारयेत्तर्हि तथा स्यात् नत्वेतदस्ति आप्तकामस्यैवाचिन्त्यनिजमायया ततत् पूर्वकर्मानुसारेण प्रवर्त्तकत्वात् ननु भक्ताननुगृह्णतोऽभक्तान्निगृह्णतश्च वैषम्योपलम्भात् कथमाप्तकामत्वमित्यत आह अज्ञानेनेति निग्रहोऽपि दण्डरूपोऽनुग्रह एवेत्येवमज्ञानेन सर्वत्र समः परमेश्वर इत्येवम्भूतं ज्ञानमावृतं तेन हेतुना जन्तवो जीवा मुह्यन्ति भगवति वैषम्यं मन्यन्त इत्यर्थः ॥ १५ ॥

नवलभाष्य।

और परमार्थमें तौ हे अर्जुन विभु जोपरमेश्वर सोकिसी भक्तकेभी पाप को और पूजनादिको नहीं ग्रहणकरता है न कहो फिर किस वास्ते भक्तों करके पूजनादिरूप करके दान याग होमादिक परमेश्वर प्रीत्यर्थ कियेजातेहैं इससे कहते हैं कि हे अर्जुन अज्ञानकरके ज्ञान जो विवेक ज्ञान सो आवृत्तहोरहा है अर्थात् आच्छादित होरहाहै अर्थात् देह इन्द्रिय बुद्धिसे परे कर्तृत्वादि बिकार रहित मैं हूं यह विवेक ज्ञान अज्ञानकरके नष्ट होरहा है इसकारण से जन्तुजे प्राणी ते मोहको प्राप्तहोते हैं अर्थात् यहकर्म मैं करताहूं और यह कराताहूं और जे ऐश्वर्यादि भोगमैं भोगताहूं और यह औरोंको भुगाऊंगा इसको आदिलैकै प्रकारकरकै अविवेकी संसारी मनुष्य मोहको प्राप्तहोते हैं १५ ॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशित मात्मनः।
तेषामादित्यवद्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परं ॥ १६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

ज्ञानेन इति ज्ञानेन तु येन अज्ञानेनावृत्त्या मुह्यन्ति जन्तवः तदज्ञानं येषां जन्तूनां विवेकज्ञानेनात्मविषयेण नाशितमात्मनो भवति तेषा जन्तूनामादित्यवत् यथाऽदित्यः समस्तं रूपजातं अवभासयति तद्वत् ज्ञानज्ञेयञ्च वस्तु सर्वं प्रकाशयति तत् परमार्थतत्त्वं ॥ १६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तर्हि सर्वेषामनाद्यज्ञानत्वात् व्यामोहभावाच्च कुतः संसारनिवृत्तिरिति तत्राह ज्ञानेनेति सर्वमिति पूर्णत्वमुच्यते ज्ञेयस्यैव वस्तुनस्तत्परमिति विशेषणं तद्व्याचष्टे परमार्थतत्त्वमिति ॥ १६ ॥

स्वामिकृतटीका।

ज्ञानिनस्तु न मुह्यन्तीत्याह ज्ञानेनेति आत्मनो भगवतो ज्ञानेन येषां तद्वैषम्योपलम्भकमज्ञानं नाशितं तज्ज्ञानं तेषामज्ञानं नाशयित्वा तत्परं परिपूर्णमीश्वरं स्वरूपं प्रकाशयति यथाऽदित्यस्तमो निरस्य समस्तं वस्तुजातं प्रकाशयति तद्वत् ॥ १६ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जिस अज्ञान करके आवृत्त आच्छादित मनुष्य मोहित

होरहे हैं वह अज्ञान जिन प्राणियों का आत्म विषय विवेक ज्ञानकरके नाशकियागया है तिन प्राणियों को आदित्यके तुल्य अर्थात् जैसे उदयको प्राप्तसूर्य्य अन्धकारको नाशकर सम्पूर्ण घटपटादि रूपको प्रकाशकरते हैं तैसेही वह आत्मज्ञानभी जितनेज्ञान और ज्ञेय अर्थात् जानिबेयोग्य पदार्थ तिनको प्रकाशकरता है और परमार्थ में फिर आपही स्वयंप्रकाशरूपहो स्थित रहता है ॥ १६ ॥

तद् बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यत् परं ज्ञानं प्रकाशितं तद्बुद्धय इति तस्मिन् गता बुद्धिर्येषां ते तद्बुद्धयः तदात्मानस्तदेव परं ब्रह्म आत्मा येषां ते तदात्मानः तन्निष्ठाइति तन्निष्ठा निष्ठाभिनिवेशस्तात्पर्यं सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य ब्रह्मण्येवावस्थानं येषां ते तन्निष्ठास्तत्परायणाश्च तदेव परमायनं परा गतिर्येषां भवति ते तत्परायणाः केवलात्मरतय इत्यर्थः ते गच्छन्त्येवंविधा अपुनरावृत्तिं पुनर्देहसम्बंधं न गृह्णन्ति ज्ञाननिर्धूतकल्मषाःयथोक्तेन ज्ञानेन निर्धूतोऽतिनिवृत्तो नाशितः कल्मषः पापादिसंसारकारणदोषो येषां ते ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः यतय इत्यर्थः ॥ १७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

विदुषां विविदिषूणाञ्चान्तरंगाणि विद्यापरिपाकसाधनानि इत्युपदिदिक्षुरुत्तरश्लोकस्यापेक्षितं पूरयति यत् परमिति तस्मिन् परमार्थतत्त्वे परस्मिन् ब्रह्मणि वाह्यं विषयमपोह्य गता प्रवृत्ता श्रवण मनन निदिध्यासनैरसकृदनुष्ठितैर्बुद्धिः साक्षात्कारलक्षणा येषां ते तथेति प्रथमविशेषणं विभजते तस्मिन्निति तर्हि बोद्धा जीवो बोद्धव्यं ब्रह्मेति जीवब्रह्मभेदाभ्युपगमो नेत्याह तदात्मान इति कल्पितं बोद्धृबोद्धव्यत्वं वस्तुतस्तु न भेदोऽस्तीत्यंगीकृत्य व्याचष्टे तदेवेति ननु देहादावात्माभिमानमपनीय ब्रह्मण्येवाहमस्मीत्यवस्थानं तत्तदनुष्ठीयमानकर्मप्रतिवन्धान्न सिध्यतीत्याशङ्क्य विशेषणान्तरमादत्ते तन्निष्ठा इति तत्र निष्ठाशब्दार्थं दर्शयन् विवक्षितमर्थमाह निष्ठेत्यादिनातथापि पुरुषार्थापेक्षाप्रतिबन्धात् कथं यथोक्ते ब्रह्मण्येवावस्थानं सेद्धुं पारयति तत्राह तत्परायणाश्चेति यथोक्तानामधिकारिणां परमपुरुषार्थस्योक्तब्रह्मान्तरेकान्नान्यत्रासक्तिरिति तात्पर्यार्थमाह केवलेति ननु यथोक्तविशेषणवतां वर्त्तमानदेहपातेऽपि देहान्तरपरिग्रहव्यग्रतया कुतो यथोक्ते ब्रह्मण्यवस्थानमास्थातुं शक्यते तत्राह ते गच्छन्तीति सति संसारकारणे दुरितादौ संसारप्रसरस्य दुर्वारत्वान्नपुनरावृत्तिसिद्धिरित्याशङ्क्याह ज्ञानेति उक्तविशेषणसम्पत्त्या दर्शितफलशालित्वमाश्रमान्तरेष्वसम्भावितमिति मन्वानो विशिनष्टि यतय इति ॥ १७ ॥

स्वामिकृतटीका।

एवम्भूतेश्वरोपासकानां फलमाह तदिति तस्मिन्नेव बुद्धिर्निश्चयात्मिका येषां तस्मिन्नेव आत्मा प्रयत्नो येषां तस्मिन्नेव निष्ठा तात्पर्यं येषां तदेव परमायनमाश्रयो येषां ततश्च तत्प्रसादलब्धेनात्मज्ञानेननिर्द्धूतं निरस्तं कल्मषंयेषांतेऽपुनरावृत्तिंमुक्तिंयांति॥१७॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जो वह सबसेपरे उत्कृष्टज्ञान प्रकाशित हुआहै तिसज्ञान हीमें प्रविष्टहुई अर्थात् तदाकार हुईहै बुद्धिजिन्होंकी और वही ज्ञानस्वरूपपरब्रह्म है आत्मास्वरूप जिन्होंका और वह ब्रह्महीहै निष्ठा तात्पर्य विषय अर्थात् सबकर्मोंका त्यागकरके उसब्रह्महीमें निष्ठास्थिति जिन्होंकी और वहब्रह्महीहै परउत्कृष्ट अयन अर्थात् गति जिन्होंकी ऐसे जे केवल आत्मरति पुरुषते ज्ञानकरके निर्धूतनाशको प्राप्तहुआ है कल्मष अर्थात् पापादि संस्कारकारण दोषजिन्होंका इसप्रकार संन्यास धर्मको प्राप्तहोतेहुए अपुनरावृत्ति जो मोक्ष तिसको प्राप्तहोतेहैं अर्थात् फिरदेह संबन्धको ग्रहण नहीं करते हैं ॥ १७ ॥

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

येषां ज्ञानेन नाशितमात्मनोऽज्ञानं ते पण्डिताः कथं तत्त्वं पश्यन्तीत्युच्यते विद्येति विद्याविनयसम्पन्ने विद्या च विनयश्च विद्याविनयौ विद्यात्मनो बोधो विनयश्च उपशमः ताभ्यां विद्याविनयाभ्यां सम्पन्नो विद्वान् विनीतश्च यो ब्राह्मणस्तस्मिन् ब्राह्मणे गवि हस्तिनि शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनो विद्याविनयसम्पन्ने उत्तमसंस्कारवति ब्राह्मणे सात्त्विके मध्यमायाञ्च राजस्यां गवि संस्कारहीनायामसन्तमेव केवलतामसे हस्त्यादौ च सत्त्वादिगुणैस्तज्जैश्च संस्कारस्तथा राजसैस्तथा तामसैश्च संस्कारैरत्यन्तमेवास्पृष्टं सममेकमविक्रियं ब्रह्म द्रष्टुं शीलं येषां ते पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यदपुनरावृत्तिसाधनं तत्त्वज्ञानं तदेव प्रश्नद्वारेण विवृणोति येषामित्यादिना विद्या वेदार्थविज्ञानमित्यंगीकृत्य विनयं व्याचष्टे विनय इति उपशमो निरहंकारत्वमनौद्धत्यं पदार्थमेवमुक्त्वा वाक्यार्थं दर्शयति विद्वानिति गवीत्याद्यनूद्य वाक्यार्थं कथयति विद्येति हस्त्यादौ पण्डिताः समदर्शिन इत्युत्तरत्र सम्बन्धः तत्र तत्र प्राणिप्रभेदेषु तत्तद्गुणैस्तत्तन्निमित्तसंस्कारैश्च संस्पृष्टत्वसम्भवान्न ब्रह्मणः समत्वमित्याशङ्क्याह सत्त्वादीति तज्जैश्चेत्यत्र तच्छब्देन सत्त्वमेव गृह्यते सात्त्विकसंस्कारैरिव राजससंस्कारैरपि सर्वथैवासंस्पृष्टं ब्रह्मेत्याह तथेति राजसैरिव तामसैरपि संस्कारैर्ब्रह्मात्यन्तमेवास्पृष्टमित्याह तथा तामसैरिति ब्रह्मणोऽद्वितीयत्वं कूटस्थत्वमसंगत्वञ्चोक्तेऽर्थे हेतुरिति मत्वा समशब्दार्थमाह सममिति समदर्शित्वमेव पाण्डित्यं तद्व्याचष्टे ब्रह्मेति ॥ १८ ॥

स्वामिकृतटीका।

कीदृशास्ते ज्ञानिनो येऽपुनरावृत्तिं मुक्तिं गच्छन्तीत्यपेक्षायामाह विद्येति विषमेष्वपि समं ब्रह्मैव द्रष्टुं शीलं येषां ते पण्डिता ज्ञानिन इत्यर्थः तत्र विद्याविनयाभ्यां युक्ते ब्राह्मणे च शुनि यः पचति तस्मिंश्चेति कर्मणो वैषम्यं गवि हस्तिनि शुनि चेति जातितो वैषम्यं दर्शितम् ॥ १८ ॥

नवलभाष्य।

जिन पुरुषोंका ज्ञानकरके आत्मविषयक अज्ञान अर्थात् अपनेस्वरूप का अज्ञान नाशको प्राप्तहुआ वे पण्डित कौनप्रकार करके तत्त्वको देखतेहैं इसआशयसे कहतेहैं [विद्येति] और हेअर्जुन विद्याजो आत्मबोध और विनय जो उपशम अर्थात् मनको वशकरना तिनदोनों उत्कृष्टगुणों करके युक्तब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मण तो आपही उत्तमहै तिसपै विद्याज्ञान और विनय इनकरके युक्तसात्त्विकहोनेसे अतिउत्तमहुआ और गौमध्यम पदार्थमेंहुई राजसहोनेसे और हाथी और कुत्ता और चाण्डाल ये तामसहोनेसे अधमहुए तो विद्याविनय युक्त ब्राह्मणमें और गौमें और हाथी कुत्ता चाण्डालमें जे पुरुष सत्त्वादि गुणोंकरके और इनके संस्कारों करके और तैसेही राजसतामस संस्कारोंसे अत्यन्तनहीं स्पर्श कियागया औरसम एक अविक्रिय विकाररहित ब्रह्महीको देखतेहैं ऐसे समदर्शीपण्डितकहातेहैं १८॥

इहैव तैर्जितः स्वर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥१९॥

शङ्करभाष्यम्।

नन्वभोज्यान्नास्ते दोषवन्तः समासमाभ्यां विषमसमे पूजात इति स्मृतेर्न ते दोषवन्तः कथं इति इहैव जीवद्भिरेव तैः समदर्शिभिः पण्डितैर्जितो वशीकृतः सर्गो जन्म येषां साम्ये सर्वभूतेषु ब्रह्मणि समभावे स्थितं निश्चलीभूतं मनोऽन्तःकरणं निर्दोषं यद्यपि दोषवत्सु श्वपाकादिषु मूढैस्तद्दोषैर्दोषवदिव विभासते तथापि तद्दोषैरसंस्पृष्टमिति निर्दोषं हि दोषवर्जितं हि यस्मान्नापि स्वगुणभेदभिन्नं निर्गुणत्वाच्चैतन्यस्य वक्ष्यति च भगवानिच्छादीनां क्षेत्रधर्मत्वमनादित्वान्निर्गुणत्वादिति च नाप्यन्त्यादिविशेषा आत्मनो भेदकाः सन्ति प्रतिशरीरं तेषां सत्त्वे प्रमाणानुपपत्तेरतः समं ब्रह्मैकञ्च तस्माद् ब्रह्मण्येव ते स्थिताः तस्मान्न दोषगन्धमात्रमपि तान् स्पृशति देहादिसंघातात्मदर्शनाभिमानाभावात् तेषां देहादिसंघातात्मदर्शनाभिमानवद्विषयन्तु तत् सूत्रं समासमाभ्यां विषम समे पूजात इति पूजाविषयत्वविशेषणात् दृश्यते हि ब्रह्मवित् षडङ्गवित् चतुर्वेदवित् इति पूजादानादौ गुणविशेषसम्बन्धः कारणं ब्रह्म तु सर्वगुणदोषसम्बन्धवर्जितमिसतो ब्रह्मणि ते स्थिता इति युक्तं॥ १९॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

सात्त्विकेषु राजसेषु तामसेषु चासमत्वेषु समत्वदर्शनमनुचितमिति शंकते नन्विति सर्वत्र समदर्शिनः तच्छब्देन परामृश्यन्ते तेषां दोषवत्त्वादभोज्यान्नत्वादभोज्यान्नत्वमित्यत्र प्रमाणमाह समासमाभ्यामिति समानामध्ययनादिभिः समानधर्मकाणां वस्त्रालंकारादिपूजया विषमे प्रतिपत्तिविशेषे क्रियमाणे सत्यसमानांचासमानधर्म्मकाणां कस्यचिदेकवेदत्वमपरस्य द्विवेदत्वमित्यादि धर्मवतां प्रागुक्ततया पूजया समे प्रतिपत्तिविशेषे पूजयिता पुरुषविशेषं ज्ञात्वा प्रतिपत्तिमकुर्वन् धनाद्धर्म्माच्च हीयते तेन सात्त्विके राजसतामसयोश्च समबुद्धिं कुर्वन् प्रत्यवैतीत्यर्थः उत्तरत्वेनोत्तरश्लोकमवतारयति न ते दोषवन्त इति स्मृत्यवष्टम्भेन सर्वसत्त्वेषु समत्वदर्शिनां दोषवत्त्वमुक्तं कथं नास्तीति प्रतिज्ञामात्रेण सिध्यतीति शंकते कथमिति स्मृतेर्गतिमग्रे वदिष्यन् निर्दोषत्वं समत्वद

र्शिनां विषदयति इहैवेति सर्वेषां चेतनानां साम्ये प्रवणमनसां ब्रह्मलोकगमनमन्तरेण अस्मिन्नेव देहे परिभूतजन्मनामशेषदोषराहित्ये हेतुमाह निर्दोषं हीति वर्त्तमानो देहः सप्तम्या परिगृह्यते तानेव समदर्शिनो विशिनष्टि येषामिति ननु ब्रह्मणो निर्दोषत्वमसिद्धं दोषवत्सु श्वपाकादिषु तद्दोषैर्दोषवत्त्वोपलम्भसम्भवात्तत्राह यद्यपीति यस्मात् तन्निर्दोषं तस्मात्तस्मिन् ब्रह्मणि स्थितौनिर्दोषैः सर्गो जित इति सम्बन्धः ब्रह्मणो गुणभूयस्त्वादल्पीयान् दोषोऽपि स्यादित्याशंक्याह नापीति चेतनस्य गुणविशेषे विशिष्टत्वमानष्टं निर्गुणत्वश्रवणादित्ययुक्तं बुद्धिसुखादीनां परिशेषादात्मधर्म्मत्वस्य कैश्चिन्निश्चितत्वादित्याशंक्याह वक्ष्यति चेति आत्मनो निर्गुणत्वे वाक्यशेषं प्रमाणयति अनादित्वादिति चकारो वक्ष्यतीत्यनेन सम्बन्धार्थः गुणदोषवशादात्मनो भेदाभावेऽपि भेदोऽन्त्यविशेषेभ्यो भविष्यतीति प्रसंगादाशंक्य दूषयति नापीति प्रतिशरीरमात्मभेदसिद्धौ तद्धेतुत्वेन तेषां सत्त्वं तेषांच सत्त्वे प्रतिशरीरमात्मनो भेदसिद्धिरिति परस्पराश्रयत्वमभिप्रेत्य हेतुमाह प्रतिशरीरमिति आत्मनो भेदकाभावे फलितमाह अत इति समत्वमेव व्याकरोति एकश्चेति ब्रह्मणो निर्विशेषत्वेनैकत्वाज्जीवानाञ्च भेदकाभावेनैकत्वस्योक्तत्वादेकलक्षणत्वादेकत्वं जीव ब्रह्मणोरैक्यमित्याह तस्मादिति जीव ब्रह्मणोरेकत्वे जीवानां ब्रह्मवन्निर्दोषत्वं सिध्यतीत्याह तस्मान्नैति तच्छब्दार्थमेव स्फोरयति देहादीति यदि सर्वसत्त्वेषु समत्वदर्शनमदुष्टमिष्टं तर्हि कथं गौतमसूत्रमित्याशंक्याह देहासंघातेति सूत्रस्य तथोक्ताभिमानवद्विषयत्वे गमकमाह पूजेति यदि चतुर्वेदानामेव सतां पूजया वैषम्यं यदि वा चतुर्वेदानां षडंगविदां ब्रह्मविदांच पूजया साम्यं तदा तेषामुक्ता पूजा विषयाणां केषांचिन्मनोविकारसम्भवे कर्त्ता प्रत्यवैतीत्यविद्वद्विषयत्वं सूत्रस्य प्रतिभातीत्यर्थः तत्रैव चानुभवमनुभवमनुकूलत्वेनोदाहरति दृश्यते हीति देहादिसंघाताभिमानवतां गुणदोषसम्बन्धसम्भवात्तद्विषयं सूत्रमित्युक्तमिदानीं ब्रह्मात्मदर्शनाभिमानवतां गुणदोषासम्बन्धान्न तद्विषयं सूत्रमित्यभिप्रेत्याह ब्रह्मत्विति ॥ १९ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु विषमेषु समदर्शनंनिषिद्धं कुर्वन्तोऽपि पण्डिताः यथाह गौतमः समासमाभ्यां विषमे पूजात इति अस्यार्थः समाय पूजायां विषमे प्रकारे कृते सति विषमाय च समे प्रकारे कृते सति स पूजक इह लोकात् परलोकाच्च हीयत इति तत्राह इहैवेति इहैव जीवद्भिरेव तैः सृज्यत इति सर्गसंसारो जितो निरस्तः कैः येषां मनः साम्ये समत्वे स्थितं तत्र हेतुः हि यस्माद् ब्राह्म समं निर्दोषंच तस्मात्ते समदर्शिनो ब्रह्मण्येव स्थिता ब्राह्मभावं प्राप्ता इत्यर्थः गौतमोक्तस्तु दोषो ब्रह्मभावप्राप्तेः पूर्वमेव पूजात इति पूजकावस्था श्रवणात् ॥ १९ ॥

नवलभाष्य।

न कहो धर्मशास्त्रमें तो ऐसाकहा कि जे पुरुष विषम पुरुषमें सम दृष्टि से पूजन करतेहैं और सममें विषमदृष्टिसे पूजनकरते हैं अर्थात् जो उस पूजाके योग्य नहींहैं ऐसे अधम पुरुषमें उत्तम पूजाके करनेवाले हैं और जो उत्तम पूजाके योग्य विद्वान् तिसमें निकृष्ट अधम पूजाकरते हैं वेपुरुष उसदोष करके अभोज्यान्न होजातेहैं अर्थात् ऐसेपुरुषों का अन्नभोजनकरनेयोग्य नहीं होताहै वेपुरुष चांडालादि तुल्यपतित होजातेहैं जे यथोचित

पूजनहीं करतेहैं और यहां कहा कि विद्याविनययुक्त ब्राह्मणको और चांडालको एकसा देखने वालेही श्रेष्ठहैं तो धर्मशास्त्रसे बड़ाविरोधहुआ तिसपै कहतेहैं कि वहदोषज्ञानका अवस्थामें नहींहै किन्तुलौकिकदृष्टिहीकरके भेद दृष्टिपुरुषों को धर्मशास्त्रने एकसा देखनेमें दोषकहाहै इसआशयसे कहते हैं कि [इहैवेति] हेअर्जुन वे समदर्शी पण्डितलोगोंने इसीजन्ममें अर्थात् जीवतेही सर्ग जो जन्मसो अपना जीतलिया है जिनपुरुषों का समभाव जो ब्रह्म तिसमेंमन अन्तःकरण निश्चलहुआ है क्योंकि ब्रह्मनिर्दोष हैं यद्यपि दोषयुक्त चांडालादिकोंमें मूढ़पुरुषोंकरके दोषयुक्तकी नाईं ब्रह्मभी प्रतीत होताहै तो भी तिनदोषोंकरके नहीं स्पर्श कियागया निर्दोष दोषवर्जितहीहै जिससे अपनेगुणोंकरके कभी जुदानहीं होताहै क्योंकि वास्तव में उसब्रह्ममें कोई गुणहैही नहीं जिससे जुदाहोय जिससे चैतन्य जो ब्रह्म तिसको निर्गुणत्वहै और आगे भगवान् तेरहवें अध्यायमें इच्छादि धर्मोंको क्षेत्रके धर्मोंमें अर्थात् शरीरहीके धर्मोंमेंकहेंगे और आत्माकोतो [अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः] इसको आदिलेके अनेक श्लोकों करके निर्गुणत्वही कहेंगे और चांडालादि विशेष धर्मभी आत्माको भिन्ननहींकरसक्के अर्थात् न्यारानहीं करसक्के हैं क्योंकि सबशरीरों में एकएक शरीरके प्रति चांडालादि धर्मोंके होनेमें प्रमाणका अभावहै, इससे अर्थात् जैसे आत्मा प्रतिशरीर अर्थात् एकएक शरीरके भेदसे सबमें व्याप्तहोरहाहै तैसे चांडालादि धर्मभी होते तो आत्माको भिन्नकरसक्के जबये कभी कहींहोते हैं कभी नहीं ऐसे आगमापायी हैं तो आत्माको कैसे भिन्नकरसक्के हैं तिससे ब्रह्मसमहै और एकहै इससे ब्रह्महीके बिषे वेज्ञानीस्थितहैं तिससे दोष का गन्धमात्रभी उनको स्पर्शनहीं करसक्ताहै क्योंकि तिनको देहादि संघातमें अर्थात् देहइन्द्रियादिकों के समूहमें आत्माका देखनेका अभिमानही नहींहै इससे जो कदाचित् ज्ञानीलोग देहादि समूहको अपनास्वरूप मानें तो देहादिकों के उत्तम मध्यम निकृष्ट व्यवहारके करनेवाले गुणदोषोंकरके भी युक्तहोयँ सो अभिमान तो उनकोहैही नहीं फिर कैसे दोषों करके स्पर्शको प्राप्तहोते हैं और पूर्वोक्त धर्मशास्त्रका [समासमाभ्यां विषमसमे पूजातः] अर्थात् विषममें नीचपुरुषमें श्रेष्ठपूजनसे और श्रेष्ठपुरुषमें हीन पूजनकरने से मनुष्य दोषयुक्तहोता है अर्थात् उसका अन्न अभोजनीयहोताहै यहगौतम सूत्रतो जो देहादि समूहमें आत्माको देखताहै उसीके अर्थ है क्योंकि उस देहात्मदर्शी पुरुषको गुणदोषदृष्टि बनीहै जबतक तबतक गुणवान् पुरुषको जानके उसका यथोचित पूजन करनाही योग्यहै और उसके विपरीत करनेमें दोषभी है क्योंकि पूजादानादि विषयशास्त्रमें देखतेही हैं कि जो वेदवित् ब्राह्मण होय और शिक्षादि छःअंगोंको जानताहोय और जो चारोंवेदों को जानता होय ऐसे ब्राह्मण का पूजनकरै और उसको दानदेइ तो इसप्रकार पूजादानादिकोंहीं में यह विशेष सम्बन्ध कारण

है और ब्रह्म तौ सब गुण दोष सम्बन्ध करके वर्जितहै इससें वे ज्ञानी ब्रह्महीमें स्थित हैं यह कहना युक्तहीहै ॥ १९ ॥

नप्रहृष्येत्प्रियंप्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य वाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणिस्थितः ॥ २० ॥

शङ्करभाष्यम् ।

कर्म्मिविषयञ्च समासमाभ्यामित्यादि इदन्तु सर्वकर्म्मसंन्यासिविषयं प्रस्तुतं सर्वकर्माणि मनसेत्यारभ्याध्यायपरिसमाप्तेः यस्मान्निर्दोषं समं ब्रह्मात्मा तस्मात् नेति न प्रहृष्येत् न हर्षं कुर्यात् प्रियमिष्टं प्राप्य लब्ध्वा नोद्विजेत् प्राप्यैव चाप्रियमनिष्टं लब्ध्वा देहमात्रात्मदर्शिनां हि प्रियाप्रियप्राप्ती हर्षविषादौ कुर्वाते न केवलात्मदर्शिनः तस्य प्रियाप्रियप्राप्त्यसम्भवात् किञ्च सर्वभूतेष्वेकः समो निर्दोष आत्मेति स्थिरा निर्विचिकित्सा बुद्धिर्यस्य स स्थिरबुद्धिरसंमूढः संमोहवर्ज्जितश्च स्यात् यथोक्तब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितोऽकर्म्मकृत् सर्वकर्म्मसंन्यासीत्यर्थः ॥ २० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

इतश्च नेदं सूत्रं ब्रह्मविद्विषयमित्याह कर्मीति तत्रैव पूजापरिसम्भवादित्यर्थः ननु यत्र समत्वदर्शनं तत्रैव त्विदं सूत्रं नतु कर्म्मिणि वेति विभागोऽस्ति तत्राह इदं त्विति समत्वदर्शनस्य संन्यासिविषयत्वे तेन प्रस्तुतत्वे हेतुमाह सर्वकर्माणीति अध्यायपरिसमाप्तेः सर्वकर्माणीत्यारभ्य तत्र सर्वकर्म्म संन्यासाभिधानात्तद्विषयमिदमसत्वदर्शनं गम्यते तत्र च निरहंकारे निरवकाशं सूत्रमित्यर्थः ननु इष्टानिष्टप्राप्तिभ्यां हर्षविषादौविद्वानपि कुर्वन्निर्दोषे ब्रह्मणि कथं स्थितिं लभेतेत्याशंक्याकांक्षितं पूरयन्नुत्तरश्लोकमुत्थापयति यस्मादिति आत्मज्ञाननिष्ठावतो विदुषो हर्षविषादनिमित्ताभावान्न तावुचितावित्याह स्थिरबुद्धिरिति ननु हर्षविषादनिमित्तत्वं प्रियाप्रिययोः सिद्धमिति कथं तत्प्राप्त्याहर्षोद्वेगौ न कर्तव्याविति नियुज्यते तत्राह देहेति विदुषोऽपि प्रियाप्रियप्राप्तिसामर्थ्यादेव हर्षविषादौ दुर्वारावित्याशंक्याह न केवलेति अद्वितीयदर्शनशीलस्य व्यतिरिक्तप्रियाप्रियप्राप्त्ययोगात्न तन्निमित्तौ हर्षविषादावित्यर्थः इतोऽपि विदुषो हर्षविषादावसम्भावितावित्याह किञ्चेति निर्दोषे ब्रह्मणि प्रागुक्ते दृढप्रतिपत्तिः संमोहेन हर्षादिहेतुना रहितो यथोक्ते सर्वदोषरहिते ब्रह्मण्यहमस्मीति विद्यावानशेषदोषशून्ये तस्मिन्नेव ब्रह्मणि स्थितस्तदनुरोधात् कर्माण्यमृष्यमाणो नैव हर्षविषादभागी भवितुमलमित्यर्थः ॥ २० ॥

स्वामिकृतटीका ।

ब्रह्मप्राप्तस्य लक्षणमाह न प्रहृष्येदिति ब्राह्मविद्भूत्वा ब्रह्मण्येव यः स्थितः स प्रियं प्राप्य न प्रहृष्येत् न प्रहृष्टो हर्षवान् स्यात् अप्रियं प्राप्य च नोद्विजेत् न विषीदतीत्यर्थः यतः स्थिरबुद्धिः स्थिरा निश्चला बुद्धिर्यस्य तत् कुतः यतोऽसंमूढः निवृत्तमोहः ॥ २० ॥

नवलभाष्य ।

और यहभी कारण है कि (समासमाभ्याम्) इत्यादि पूर्वोक्त गौतमसूत्र कर्मकाण्ड विषयक है अर्थात् कर्मकाण्ड के प्रकरण में कहा है और विद्याविनयसम्पन्ने इत्यादि श्लोक सब कर्मोंके संन्यास विषयमें कहा है क्योंकि सर्वकर्माणि मनसा यहांसे लेकर अध्यायकी समाप्ति पर्य्यन्त संन्यासही

का प्रकरणहै और जिससे निर्दोषसम ब्रह्महीं आत्माहै इसआशयसे कहतेहैं कि [नेति] हेअर्जुन संन्यासी अपने आत्माको निर्दोष दोषरहितसम सबजगह समान ब्रह्मरूप जानके प्रिय जो इष्टवस्तु तिसको प्राप्तहोके हर्ष को प्राप्तनहोय और अप्रिय जो अनिष्टवस्तु तिसको प्राप्तहोके चित्तके उद्वेग को नकरे क्योंकि देहमात्रमें आत्मदर्शी अर्थात् आत्माके देखनेवाले जे पुरुष तिन्हींको प्रिय और अप्रियवस्तुकी प्राप्तिहर्ष विषादको करतीहै और केवल आत्मदर्शीको नहींकरती क्योंकि तिस आत्मदर्शी को प्रिय पदार्थ और अप्रिय पदार्थ की प्राप्तिही का असम्भव है इससे और सब भूतों में एकसम और निर्दोष आत्मा है ऐसीस्थिर और सन्देह रहित है बुद्धिजिस की और मोहरहित ऐसा जो ब्रह्मवित् ब्रह्मके जाननेवाला पुरुष सोब्रह्मही में स्थित है अर्थात् कर्ममें स्थित नहीं है अर्थात् अकर्मकृत् नहीं कर्मके करनेवाला संन्यासी है ॥ २० ॥

वाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत् सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च ब्रह्मणि स्थितः वाह्ये वाह्यस्पर्शेषु वाह्याश्च ते स्पर्शाश्च वाह्यस्पर्शाः स्पृश्यन्ति इति स्पर्शाः शब्दादयो विषयास्तेषु वाह्यस्पर्शेषु असक्त आत्मान्तःकरणं यस्य सोऽयमसक्तात्मा विषयेषु प्रीतिवर्जितः स विन्दति लभते आत्मनि यत् सुखं तद्विन्दतीत्येतत् स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा ब्रह्मणि योगः समाधिर्ब्रह्मयोगस्तेन ब्रह्मयोगेन युक्तः समाहितस्तस्मिन् व्यापृत आत्मान्तःकरणं यस्यस ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते प्राप्नोति तस्माद्वाह्यविषयप्रीतेःक्षणिकाया इन्द्रियाणि निवर्त्तयेदात्मन्यक्षयसुखार्थीत्यर्थः ॥ २१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

शब्दादिविषयप्रीतिप्रतिबन्धान्न कस्यचिदपि ब्रह्मणि स्थितिः सिध्येदित्याशंक्याह किंचेति न केवलं पूर्वोक्तरीत्या ब्रह्मणि स्थितो हर्षविषादरहितः किन्तु विद्यान्तरेणापीत्यर्थः यावद्यावद्विषयेषु रागरूपमावरणंनिवर्त्ततेतावत्तावदात्मस्वरूपमुखमभिव्यक्तं भवतीत्याह वाह्येति न केवलमसक्तात्मा शमवशादेव सुखं विन्दते किन्तु ब्रह्मसमाधिना समाहितान्तःकरणः सुखमनन्तं व्याप्नोतीत्याह स ब्रह्मेति तत्र पूर्वार्द्धं व्याचष्टे वाह्याश्चेति समाधानाधीनसम्यग्ज्ञानद्वारा निरतिशयसुखप्राप्तिमुत्तरार्द्धव्याख्यानेन कथयति ब्रह्मणीत्यादिना शब्दादिविषयविमुखस्यानन्तसुखाप्तिसम्भवात्तदर्थिना प्रयत्नेन विषयवैमुख्यं कर्त्तव्यमिति शिष्यशिक्षार्थमाह तस्मादिति ॥ २१ ॥

स्वामिकृतटीका।

मोहनिवृत्त्या बुद्धिस्थैर्यहेतुमाह वाह्येति इन्द्रियैः स्पृश्यन्त इति स्पर्शा विषयाः वाह्येन्द्रियविषयेष्वसक्तात्मा अनासक्तचित्तः आत्मन्यन्तःकरणे यदुपशमात्मकं सात्त्विकं सुखं तद्विन्दति लभते स चोपशमसुखं लब्ध्वा ब्रह्मणि योगेन समाधिना युक्तस्तदैक्यं प्राप्त आत्मा यस्य सोऽक्षयं सुखमश्नुते प्राप्नोति ॥ २१ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन ब्रह्ममेंस्थित जो पुरुष सो वाह्यनाम बाहिरके जे शब्दादि विषय तिन्हों में असक्त अर्थात् प्रीतिरहित है अन्तःकरण जिसका ऐसा जो पुरुष अर्थात् विषयों में प्रीति रहित आत्मामें जो सुख तिसको प्राप्त होता है इससे सो विषय प्रीति रहितही पुरुष ब्रह्मसमाधि करके अर्थात् ब्रह्माकार वृत्तिकरके समाहित स्थिर है अन्तःकरण जिसका ऐसाहुआ अक्षयसुख अर्थात् नाशरहित नित्य सुखको प्राप्तहोताहै इससे जो नित्य सुखकी इच्छाकरैतौ क्षणिक थोरेकालका होनेवाला जो विषयसुख तिससे इन्द्रियों को निवृत्त करै यह अभिप्राय है॥ २१॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ २२॥

शङ्करभाष्यम्।

इतश्च निवर्त्तयेत येहीति ये हि यस्मात् संस्पर्शजा विषयेन्द्रियसंस्पर्शेभ्यो जाता भोगा भुक्तयो दुःखयोनय एव तेऽविद्याकृतत्वात् दृश्यन्ते ह्याध्यात्मिकादीनि दुःखानि तन्निमित्तान्येव यथेह लोके तथा परलोकेऽपीति गम्यते एव शब्दान्न संसारे सुखस्य गन्धमात्रमप्यस्तीति बुध्वा विषयमृगतृष्णिकायां इन्द्रियाणि निवर्त्तयेन्न केवलं दुःखयोनय आद्यन्तवन्तश्च आदिर्विषयेन्द्रियतत्संयोगो भोगानामन्तश्च तद्वियोग एवात आद्यन्तवन्तोऽनित्या मध्यक्षणभावित्वादित्यर्थः कौन्तेय न तेषु रमते बुधो भोगेषु विवेकी अवगतपरमार्थतत्त्वेऽत्यन्तमूढानामेव हि विषयेषु रतिर्दृश्यते यथा पशुप्रभृतीनां॥ २२॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तत्रैव हेत्वन्तरपरत्वेनोत्तरश्लोकमुदाहरति इतश्चेति विषयेभ्यः सकाशादिन्द्रियाणीति शेषः वैराग्यार्थमेव वैषयिकानि सुखानि दूषयति ये हीति ननु विषयेन्द्रियसंप्रयोगसम्भूतेषु भोगेषु जन्तूनामभिरुचिदर्शनात् कुतस्तेषां दुःखयोनित्वमित्याशङ्क्याविवेकिनां तेष्वासंगेऽपि न विवेकिनामित्याह आद्यन्तवन्त इति यस्मादाधिव्याधिजरामरणादिसहितेभ्यः समागमनादिक्लेशरूपभागिभ्यश्च विषयेन्द्रियसम्बन्धेभ्योभोगाः सुखलवानुभवा जायन्ते तस्मात्ते दुःखहेतवो भवन्तीति योजना अविद्याकार्यत्वाद्दुःखानां कुतो भोगजन्यत्वमित्याशङ्क्य भोगानामविद्याप्रयुक्तत्वात्तन्निबन्धनत्वं दुःखानां युक्तमित्यभिप्रेत्याह अविद्येति भोगानां दुःखयोनित्वे मानमनुभवमुपन्यस्यति दृश्यन्ते हीति ऐहिकानां भोगानां दुःखनिमित्तत्वेऽपि नामुष्मिकाणां तथात्वमनुभवादित्याशङ्क्यावधारणासामर्थ्यसिद्धमर्थमाह यथेति पूर्वार्द्धस्याक्षरार्थमुक्त्वा तात्पर्यार्थमाह नेत्यादिना इतश्च विषयेभ्यः सकाशादिन्द्रियाणि निवर्तयितव्यानीत्याह न केवलमिति आद्यन्तवत्त्वे मध्यक्षणवर्तित्वेन क्षणभंगुरत्वादुपेक्षणीयत्वं भोगानां सिध्यति अस्ति हि तेषां क्षणभंगुरत्वं क्षणिकविषयाकारमनोवृत्तिव्यंग्यत्वादिति मन्वानः सन्नाह अत इति बुद्धिपूर्वकारिणां विवेकवतां भोगेषूपेक्षोपलब्धेश्च तेषामाभासत्वं प्रतिभातीत्याह न तेष्विति प्रतीकोपादानमाद्यमिदं पुनर्व्याख्यानमिति न पुनरुक्तिः ननु केषाञ्चिद्भोगेष्वभिरुचिरुपलभ्यते तत्राह अत्यन्तेति॥ २२॥

स्वामिकृतटीका।

ननु प्रियविषयभोगानामपि निवृत्तेः कथं मोक्षः पुरुषार्थः स्यात्तत्राह ये हीति संस्पृश्यन्त इति संस्पर्शा विषयाः तेभ्यो जाता ये भोगाः सुखानि ते हि वर्तमानकालेऽपि स्पर्द्धाऽसूयादिव्याप्तत्वाद् दुःखस्यैव योनयः कारणभूताः तथादिमन्तोऽन्तवन्तश्च अतो विवेकी तेषु न रमते ॥ २२ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन इसकारणसेभी इन्द्रियों विषयों से निवृत्त करना चाहियें जिससे बिषय और इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्नहुये जे भोगते केवल दुःखही के उत्पत्तिके कारण हैं अर्थात् दुःखके वीज हैं क्योंकि जिसते अबिद्या करके आवृत होरहे हैं अर्थात् ढकरहे हैं देखनेमें तो जे भोगसुखरूप मालूम पड़ते हैं और भीतर से दुःखरूपही होरहे हैं जैसे विषवृक्षकी लता देखनेमें तो बड़ी कोमल सुकुमार प्रतीत होती है और सूंघतेही प्राणहर लेती है तैसेई इन्द्रियों के सुखभी हैं और लोकमें देखनेमेंभी आतेहैं कि विषयी पुरुषोंकी आध्यात्मिकादि तीनों दुःखोंसे निवृत्ति नहींहोती कभीदैव योगसे किसी दुःखकी निवृत्तिभी हुई परन्तु इनमें कोईनकोई बनाही रहता है आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति किसीकी नहींदेख पड़ती तब जो देखनेमें सुखकेकरनेवाले नानाप्रकार के विषय भोगवान् बड़ेबड़े धनिक राजाओं कोभी दुःख दिखाई पड़ता है इससे बिदितहुआ किजे भोगही दुःखके निमित्त हैं और प्रत्यक्ष में देखने में आताहै कि जैसे कोई रोगीपुरुष जिह्वा के स्वादसे कुपथ्यबस्तु भोजनकरै तो उससमयमें तो क्षणमात्र सुखप्रतीत होता है परन्तु उसके परिपाकदशा में बड़ादुःख होताहै तैसेही जबसंसार रूप रोगसेग्रस्त यह पुरुष होरहा है तब विषय भोगरूप कुपथ्य कैसे नहीं दुःखदायी होवैंगी इसीदृष्टान्तसे परलोकके स्वर्गादि भोगभी दुःखहीके कारणभूत हैं और यहां (दुःखयोनयएवते) इसवाक्यमें एव इसपदके कहनेसे भगवान् ने यह सूचनाकिया कि संसारमें सुखका लेशभी नहीं है ऐसा जानके विषयरूपी मृगतृष्णा से इन्द्रियोंको निवृत्तकरै और केवल दुःखही के कारण भूत जे विषय भोग नहीं है किन्तु आदि और अन्त इनकरके युक्तभी हैं तिसमें विषय और इन्द्रिय इनका संयोगही भोगोंको आदि है और विषयेन्द्रिय संयोगका बियोगही भोगोंका अन्त है और जिससे आद्यन्तयुक्त हैं इसीसे अनित्य हैं अर्थात् जे भोग पहिलेभी न थे और अन्त में भी नहींरहैंगे केवल मध्यक्षण में प्रतीत होते हैं इससे मिथ्या हैं इससे हे कौन्तेय हे कुन्तीकेपुत्र अर्जुन जिसने परमार्थ तत्त्वजाना है ऐसा जो विवेकी पुरुष सो इन अनित्य भोगोंमें नहींरमण करता है अर्थात् जैसे पशुओं की विषयों में प्रीतिहै तैसे अत्यन्त मूढ़ पुरुषोंकीही विषय भोगोंमें प्रीति दिखाई पड़ती है विवेकी जे पण्डित तिनकी प्रीतिनहींहोती है ॥ २२ ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

अयञ्च श्रेयोमार्गप्रतिपक्षी कष्टतमो दोषः सर्वानर्थप्राप्तिहेतुर्दुर्निवार्य्यश्चेति तत्परिहारे यत्नाधिक्यं कर्त्तव्यमित्याह भगवान् शक्नोतीति शक्नोत्युत्सहते इहैव जीवन्नेव यः सोढुं प्रसहितुं प्राक् पूर्वं शरीरविमोक्षणात् आमरणात् इत्यर्थः मरणसीमाकरणं जीवतोऽवश्यम्भावी हि कामक्रोधोद्भवो वेग अनन्त निमित्तवान् हि स इति यावन्मरणं तावन्नविश्रम्भणीय इत्यर्थः काम इन्द्रियगोचरप्राप्ते इष्टे विषये श्रूयमाणे स्मर्य्यमाणे चानुभूते सुखहेतौ या गृद्धिःतृष्णा स कामः क्रोधश्चात्मनः प्रतिकूलेषु दुःखहेतु दृश्यमानेषु श्रूयमाणेषु स्मर्य्यमाणेषु वा यो द्वेषः स क्रोधस्तौ कामक्रोधौ उद्भवो यस्य वेगस्य स कामक्रोधोद्भवो वेगः रोमाञ्चन हृष्टनेत्रवदनादिलिङ्गोऽन्तः करणप्रक्षोभरूपः कामोद्भवो वेगः गात्रप्रकम्पप्रस्वेद सन्दष्टौष्ठपुटरक्तनेत्रादि लिङ्गः क्रोधोद्भवो वेगस्तं कामक्रोधोद्भवं वेगं य उत्सहते सोढुं सहितुं सक्तः स युक्तो योगी सुखी चेह लोके नरः ॥ २३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

उत्तरश्लोकस्य तात्पर्यमाह अयंचेति श्रेयोमार्गप्रतिपक्षत्वं कष्टमतत्वे हेतुस्तत्रैव हेत्वन्तरमाह सर्वेति प्रयत्नाधिक्यस्य कर्त्तव्यत्वे हेतुं सूचयति दुर्निवार्य इति प्रसिद्धं हि कामक्रोधोद्भवस्य वेगस्य दुर्निवारत्वं येन मातरमपि चाधिरोहति पितरमपि हन्तितमवश्यं परिहर्त्तव्यं दर्शयति शक्नोतीति यथोक्तं वेगं वहिरनर्थरूपेण परिणामात् प्रागेव देहान्तरूत्पन्नं यः सोढुं क्षमते तं स्तौति स युक्त इति मरणसीमाकरणस्य तात्पर्यमाह मरणेति प्रसिद्धौ हिशब्दः तत्र हेतुमाह अनन्तेति व्याध्युपहतानां वृद्धानाञ्च कामादिवेगो न भवतीत्याशङ्क्याह इति यावदिति कामक्रोधोद्भव वेगं व्याख्यातुमादौ कामं मनोविकारविशेषत्वेन व्याचष्टे काम इति कथमस्य मनोविकारविशेषत्वं तदाह इन्द्रियेति कामो गृद्धिस्तृष्णेति पर्यायाः सन्तः शब्दा मनोविकारविशे पर्यवस्यन्तीत्यर्थः क्रोधश्च मनोविकारविशेषस्तद्वदित्याह क्रोधश्चेति तमेव क्रोधं स्पष्टयति आत्मन इति एवं कामक्रोधौ व्याख्याय तयोरुत्कटत्वावस्थात्मनो वेगस्य ताभ्यामुत्पत्तिमुपन्यस्यति ताविति यथोक्तवेगावगमोपायमुपदिशति रोमाञ्चनहृष्टनेत्रेत्यादिना उभयविधवेगं योजीवन्नेव सोढुं शक्नोति तं पुरुषधौरेयत्वेन स्तौति तमित्यादिना ॥ २३ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तस्मान्मोक्ष एव परमः पुरुषार्थस्तस्य च कामक्रोधवेगोऽतिप्रतिपक्षोऽतस्तत्सह नसमर्थ एव मोक्षभागित्याह शक्नोती हैवेती कामात् क्रोधाच्चोद्भवति यो वेगः मनोनेत्रादिक्षोभलक्षणस्तमिहैव तदुद्भवसमय एव यो नरः सोढुं प्रतिरोद्धुं शक्नोति तदपि न क्षणमात्रं किन्तु शरीरविमोक्षणात् प्राग्देहपातादित्यर्थः य एवम्भूतः स एव युक्तः समाहितः सुखीच भवति नान्यः यद्वा मरणादूर्द्ध्वं विलसन्तीभिर्युवतिभिरालिंग्यमानोऽपि पुत्रादिभिर्दह्यमानोऽपि यथा प्राणशून्यः कामक्रोधवेगं सहते तथा मरणात्प्रागपि जीवन्नैव यः सहते स एव युक्तः सुखी चेत्यर्थः तदुक्तं वशिष्ठेन प्राणे गते यथा देहः सुखदुःखंनविन्दति तथा चेत् प्राणयुक्तोऽपि स कैवल्याश्रमे वसेदिति ॥ २३ ॥

नवलभाष्य।

और जो अगाड़ीके श्लोकमें कहाजायगा सो दोष यहमोक्षमार्ग काशत्रु इसीसे बड़ा कष्टरूप दोषहै उसको निवारण करना चाहिये और इसके दूरकरने में अधिक यत्नकरना चाहिये इसआशयसे भगवान् कहते हैं कि (शक्नोतीति) हे अर्जुन जो पुरुष शरीर के छूटनेके पूर्वकालमें अर्थात् मरण से पाहिले नाम मरण पर्य्यन्त काम और क्रोध इनसे उत्पन्नहुआ जो चित्त का वेग तिसके सहने को समर्थ है अर्थात् उत्साह करता है सोईतौ योगी और वही पुरुष संसार में सुखी है अर्थात् जो जीवतेही काम क्रोधके वेग को सहने को समर्थ न हुआ वह योगीभी नहीं है और सुखीभी नहींहोसक्ता और यहां मरण पर्य्यन्त जो मर्य्यादा भगवान्ने कही अर्थात् जबतक मरणहोय तिसके पहलेइससे यह सूचनकिया कि जबतक मनुष्य जीवताहै तबतक काम क्रोध का वेग अवश्य होता है क्योंकि इसके होनेमें बहुतसे निमित्त हैं इससे जबतक जीवै तबतक यह विश्वास करनेयोग्य नहींहै अर्थात् यह न जानै कि एकबार तौ हमने काम और क्रोधको जीतही लियाहै अब क्या करैगा किन्तु सबसे अधिक शत्रुजानके इस काम क्रोधके वेगको सहनेमें नित्य उद्योगयुक्तरहै तहां काम उसको कहते हैं कि जो अपना को इष्ट प्रत्यक्ष इन्द्रियोंका विषय शब्दादिकों में कोईप्राप्तहोय अथवा सुननेमें आवै कि फलाने यह पदार्त्थ खाने पीनेमें बहुत अच्छाहोताहै औ उसकी स्त्री बड़ीसुन्दरीहै अथवा पहिले आपही जो पदार्त्थ भोगाहै और उसमें सुखभी हुआहोय फिर उसका स्मरणहोय इसप्रकार इनतीनों प्रकार के इष्ट विषयों में भोगनेकी बड़ी उत्कट जो इच्छा जिसको तृष्णा कहते हैं वह काम कहाताहै और इसीतरह तीनप्रकारके जे अपनाको जे प्रतिकूल विषय अर्थात् जिन्होंमें दुःखकी प्रतीति हुईहोय अथवा होतीहोय अथवा दुःखकी जिन्होंमें सम्भावना होय ऐसे प्रतिकूल विषयोंमें जो द्वेष अर्थात् यह हमारे नेत्रोंके सामनेसे जुदाहोजाय और दुःखदायी वस्तुकी प्राप्ति किसवास्ते हुई इसको आदि लेके जो प्रतिकूल अन्तःकरणकी वृत्ति उस को क्रोध कहते हैं ऐसे जे काम और क्रोध तेहैं उत्पत्ति कारण जिसके ऐसा जो मनकाबेग उसको कामक्रोधोद्भव वेगकहते हैं तहां रोमावलीका खड़ा होना और नेत्रोंकी प्रसन्नता होना अर्थात् प्रीतिसे देखना और मुखकी प्रसन्नता होना इनको आदिलेके चिह्नोंसे जो अन्तःकरण का क्षोभहोना अर्थात् आत्मस्वरूपसे अलगहोके बाह्यविषयकी चाहहोना उसको कामोद्भवबेग कहते हैं और शरीरका कांपना और पसीने का आना और ओंठ का दांतोंसे काटना और लालनेत्र होना इनको आदिलेके चिह्नहोते हैं जिसमें उसको क्रोधोद्भवबेग कहतेहैं ऐसे कामोद्भव और क्रोधोद्भवबेग को जो धीर पुरुष सहनेको उत्साहकरताहै वही योगी है और वही इसलोकमें

सुखीहै और जो इनसे विपरीत है सो नहीं सुखको प्राप्तहोताहै और यहां बेगके सहनेसे यह सूचनाकिया कि जब इनदोनोंका बेग उत्पन्नहोनेको होय उसके पहिलेही विवेकी पुरुष सात्त्विकी धृतिकरके उसबेगको नियम न करै जिससे बाहर प्रकट होकै अपनेकार्य्य की उत्पत्ति न करनेपावै॥ २३॥

योऽन्तः सुखोऽन्तराऽरामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्म निर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कथम्भूतश्च ब्रह्मणि स्थितो ब्रह्म प्राप्नोतीत्याह भगवान् य इति यो ऽन्तरात्मनि सुखं यस्य सोऽन्तर्सुखस्तथान्तरेवात्मन्यारामः क्रीड़ा यस्य सोऽन्तरामस्तथैवान्तरात्मैव ज्योतिः प्रकाशो यस्य सोऽन्तर्ज्योतिरेव य ईदृशः स योगी ब्रह्मनिर्व्वाणं ब्रह्मणि निर्वृतिं मोक्षमिह जीवन्नेव ब्रह्मभूतः सन्नधिगच्छति प्राप्नोति ॥ २४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ज्ञानस्यात्यन्तरंगमात्रमात्मनिष्ठत्वं दर्शयन् प्रकृतिं ब्रह्मविदमेव विशिनष्टि कथम्भूतश्चेति यश्चान्तरेव सुखं न वाह्यैर्विषयैस्तथान्तरेव ज्योतिर्न श्रोत्रादिभिरतो विषयान्तरविज्ञानरहित इत्याह तथेति यथोक्तविशेषणसमाधिमान् जीवन्नेवं मुक्तिमधिगच्छतीत्याह स योगीति आत्मन्यन्तरेव सुखमिति वाह्यविषयनिरपेक्षत्वं विवक्षितमन्तरारामत्वञ्च इन्द्रियादिविषयापेक्षामन्तरेण क्रीड़ाप्रयुक्तफलभाक्त्वमभिमतमिन्द्रियादिजन्यप्रकाशशून्यत्वमात्मज्योतिष्ट्वमिष्टं यथोक्तविशेषणसम्पन्नः समाहितश्च जीवन्नेवं ब्रह्मभावं प्राप्नोति ब्रह्मणि परिपूर्णे निर्वृतिं सर्वानर्थनिवृत्त्युपलक्षितां स्थितिमनतिशयानन्दाविर्भावलक्षणात् प्राप्नोतीत्याह य ईदृश इति ॥ २४ ॥

स्वामिकृतटीका।

न केवलकामक्रोधवेगसंवरणमात्रेण मोक्षं प्राप्नोति अपितु योऽन्तरिति अन्तरात्मन्येव सुखं यस्य नतु विषयेषु अंतरेवारामः क्रीड़ा यस्य न वहिः अन्तरेव ज्योतिर्दृष्टिर्यस्य न गीतनृत्यादिषु स एवं ब्रह्मणि भूतःस्थितः सन् ब्रह्मनिर्वाणं लयमधिगच्छति प्राप्नोति॥२४॥

नवलभाष्य।

अबकैसा ब्रह्ममेंस्थितब्रह्मको प्राप्तहोताहै इसआकांक्षामें भगवान्कहतेहैं कि (यइति) हेअर्जुन जोपुरुष अन्तरात्मामें आत्माहीके मध्यमेंसुखजिसको अर्थात् अन्तःसुखहै और तैसे आत्माहीके अर्थात् अपनेस्वरूपही के मध्य मेंहै आरामक्रीड़ा जिसकी औआत्माही के मध्यमें प्रकाश जिसका ऐसा जो योगीसो ब्रह्मनिर्वाण अर्थात् ब्रह्मके विषे जो निर्वाण निर्वृत्ति आनन्द तिसको इसीजन्ममें जीवतेही ब्रह्मभूत हुआ प्राप्तहोताहै ॥ २४ ॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च लभन्त इति लभन्ते ब्रह्मनिर्व्वाणं मोक्षं ऋषयः सम्यग्दर्शिनः संन्यासिनःक्षीणकल्मषाः क्षीणपापादिदोषाः छिन्नद्वैधाः छिन्नसंशयाः यतात्मानः संयतेन्द्रियाः सर्वभूताहितेरताः सर्वेषां भूतानां हिते आनुकूल्ये रता अहिंसका इत्यर्थः॥ २५॥

आनंदगिरिकृतटीका।

मुक्तिहेतोर्ज्ञानस्य साधनान्तरमाह किञ्चेति यज्ञादि नित्यकर्मानुष्ठानात्पापादिलक्षणं कल्मषं क्षीयते ततश्च श्रवणाद्यावृत्तेः सम्यक्दर्शनं जायते ततो मुक्तिरप्रयत्नेन भवतीत्याह लभन्त इति ज्ञानप्राप्त्युपायान्तरं दर्शयति छिन्नेति श्रवणादिना संशयनिरसनं कार्यं कारणनियमनञ्च दयालुत्वेनाहिंसकत्वमित्येतदपि सम्यक्ज्ञानप्राप्तौ कारणमित्यर्थः अक्षरव्याख्यानं स्पष्टत्वान्न व्याख्यायते॥ २५॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च लभन्त इति ऋषयः सम्यग्दर्शिनः क्षीणं कल्मषं येषां छिन्नं द्वैधं संशयो येषां यतः संयत आत्मा चित्तं येषां सर्वेषां भूतानां हितेरताः ये कृपालवस्ते ब्रह्मनिर्वाणं मोक्षं लभन्ते॥ २५॥

नवलभाष्य।

और हेअर्जुन क्षीणहुएहैं नाशको प्राप्तहुएहैं पापादि दोष जिन्होंके और छिन्ननाम कटिगयाहै द्वैधसंशय जिन्होंका और वशकरीहैं इन्द्रियां जिन्होंने और सबभूतोंके हितमें प्रीतियुक्त अर्थात् सबभूतोंके आनुकूल्यमें रत किसी प्राणीके हिंसानहीं करतेहुए ऐसे जे ऋषिसम्यग्दर्शी पुरुष अर्थात् परमार्थ ज्ञानयुक्त पुरुष ते ब्रह्मनिर्वाण जो मोक्ष तिसको प्राप्त होतेहैं॥ २५॥

कामक्रोध विमुक्तानां यतीनां यतचेतसां।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्त्तते विदितात्मनां॥ २६॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च कामेति कामक्रोधविमुक्तानां कामश्च क्रोधश्च कामक्रोधौ ताभ्यां विमुक्तानां यतीनां संन्यासिनां यतचेतसां संयतान्तःकरणानां अभित उभयतो जीवतां मृतानाञ्च ब्रह्मनिर्व्वाणं मोक्षो वर्त्तते विदितात्मनां विदितो ज्ञात आत्मा येषां ते विदितात्मानस्तेषां विदितात्मनां सम्यग्दर्शिनामित्यर्थः॥ २६॥

आनंदगिरिकृतटीका।

पूर्वं कामक्रोधयोर्वेगः सोढव्यो दर्शितः सम्प्रति तानेव त्याज्यावित्याह किंचेति ननु दर्शितविशेषवतां मृतानामेव मोक्षो नतु जीवतामिति चेन्नेत्याह अभित इति अस्मदादीनामपि तर्हि प्रभूतकामादिप्रभावविधुराणां किमिति मोक्षो न भवतीत्याशंक्य सम्यग्ज्ञानवैशिष्ट्याभावादित्याह विदितेति उक्तेऽर्थे श्लोकाक्षराणामन्वयमाचष्टे कामक्रोधेत्यादिना॥ २६॥

स्वामिकृतटीका।

किंच कामेत्यादि कामक्रोधाभ्यां विमुक्तानां यतीनां संन्यासिनां संयतचित्तानां ज्ञातात्मतत्त्वानामभित उभयतो जीवतां मृतानांच न देहान्त एव तेषां ब्रह्मणि लयोऽपितु जीवतामपि वर्त्तत इत्यर्थः ॥ २६ ॥

नवलभाष्य।

और हेअर्जुन काम औरक्रोध इनकरके रहित और वशकराहै अन्तःकरण जिन्होंने औरजानाहै आत्मा जिन्होंने ऐसे जो संन्यासी तिनको जीवतेभी मोक्षहै और मरेहुएभी मोक्षहै अर्थात् जीवतेमें जीवन्मुक्त दशाको प्राप्तहैं मरणके अनन्तर मोक्षको प्राप्तहोतेहैं ॥ २६ ॥

स्पर्शान् कृत्वा वहिर्वाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७॥

शङ्करभाष्यम्।

सम्यग्दर्शननिष्ठानां संन्यासिनां सद्योमुक्तिरुक्ता कर्मयोगश्च ईश्वरार्पितसर्वभावेनेश्वरे ब्रह्मण्याधाय क्रियमाणः सत्त्वशुद्धिज्ञानप्राप्ति सर्वकर्म संन्यासक्रमेण मोक्षायेति भगवान् पदे पदेऽब्रवीद्वक्ष्यति च अथ इदानीं ध्यानयोगं सम्यग्दर्शनस्यान्तरङ्गं विस्तरेण वक्ष्यामीति तस्य सूत्रस्थानीयान् श्लोकानुपदिशति स्म भगवान् वासुदेवः स्पर्शानिति स्पर्शान्, शब्दादीन् कृत्वा बहिर्वाह्यान् श्रोत्रादिद्वारेणान्तर्बुद्धौ प्रवेशिताः शब्दादयो विषयास्तानचिन्तयतः शब्दादयो वाह्या वहिरेव कृता भवन्ति तानेवं वहिः कृत्वा चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः कृत्वेत्यानुषज्यते तथा प्राणापानौ नासाभ्यन्तरचारिणौ समौ कृत्वा ॥ २७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

वृत्तमनूद्योत्तरश्लोकत्रयस्य तात्पर्यार्थमाह सम्यग्दर्शनेति ईश्वरार्पितसर्वभावेनेति भगवति परस्मिन्नीश्वरे समर्पितः सर्वेषां देहेन्द्रियमनसां भावश्चेष्टाविशेषो न क्वचिदपि वहिस्तेषां व्यापारस्तेनेत्यर्थः कर्मयोगस्य तत्फलस्य चाभिधानानन्तरमित्यर्थशब्दार्थः स्वतो वाह्यानां विषयाणां कुतो वहिष्करणमित्याशंक्याह श्रोत्रादीति तेषां वहिष्करणं कर्तृगित्याशंक्याह तानिति ॥ २७ ॥

स्वामिकृतटीका।

स योगी ब्रह्मनिर्वाणमित्यादिषु योगी मोक्षमवाप्नोतीत्युक्तं तमेव योगं सङ्क्षेपेणाह स्पर्शानिति द्वाभ्यां वाह्या एव स्पर्शा रूपरसादयो विषयाश्चिन्तिताः सन्तोऽन्तः प्रविशन्ति तांस्तच्चिन्तात्यागेन वहिरेव कृत्वा चक्षुर्भ्रुवोरन्तरे भ्रूमध्य एव कृत्वा अत्यन्तं नेत्रयोर्निमीलने निद्रया मनो लीयते उन्मीलने च वहिः प्रसरति तदुभयदोषपरिहारार्थमर्द्धनिमीलनेन भ्रूमध्ये दृष्टिं निधाये त्यर्थः उच्छ्वासनिश्वासरूपेण नासिकयोरभ्यन्तरे चरन्तौ प्राणापानावूर्द्ध्वाधोगतिरोधेन समौ कृत्वा कुम्भकं कृत्वेत्यर्थः यद्वा प्राणोऽयं यथा न वहिर्निर्याति तथा वा अपानोऽन्तर्न प्रविशति किन्तु नासामध्य एव द्वावपि यथा चरतस्तथा मन्दाभ्यामुच्छ्वासनिश्वासाभ्यां समौ कृत्वेति ॥ २७ ॥

नवलभाष्य।

अब जेसम्यग्दर्शन अर्थात् विवेककरके इन्द्रियादिकों से परेजो आत्मा का दर्शननाम ज्ञानातिसमें स्थित जे संन्यासी तिनकी शीघ्रही मुक्तिकही और परमात्मा जो भगवान् ईश्वर तिसमें समर्पितकी जो सबइन्द्रियोंकी चेष्टा अर्थात् सिवाय ईश्वरके बाहर फलादिककेलिए इन्द्रियोंकी चेष्टाका न होना ऐसीरीतिसे कियागया जो कर्मयोग सो प्रथमतो अन्तःकरण की शुद्धि फिरज्ञान फिर सबकर्मोंका त्याग इसक्रमकरके मोक्षके अर्थ होताहै इससिद्धान्त को भगवान् बहुत जगहकहिआए हैं और आगेभी कहैंगे अब इसके उपरांत सम्यग्दर्शनका अन्तरंग साधन ध्यानयोगको विस्तार पूर्वक कहैंगे इससे उसयोगके सूत्रके तुल्यश्लोकोंका उपदेश करतेहैं भगवान् (स्पर्शानिति) हेअर्जुन बाहिरके जेशब्दादि विषयते श्रोत्रादि इन्द्रियोंके द्वारा बुद्धिमें प्रवेश कराएगएहैं अर्थात् जब कोई मनुष्य श्रोत्रादि इन्द्रियोंकरके शब्दादि विषयोंका सेवनकरता है तबरागादि बशसे जबबुद्धिका संयोगउन शब्दादि विषयोंमें होताहै तबवे शब्दादि विषय बुद्धि में प्रविष्टहोजाते हैं और जो किसी सत्संगादि कारणसे उनविषयोंमें दोषदृष्टिके निश्चयसे उन का चिन्तन नकरे तो वेबुद्धिसे निकलजाते हैं जैसे किसीने कोई व्यवहारादि विषयकी वार्त्तासुनी वा कोई प्रत्यक्षनेत्रादिकोंसे अतिसुन्दर तरुणीरूप का दर्शन किया अथवा अतिस्वादु वस्तुका भोजनकिया तो उससमयमें विषय इन्द्रियोंके संयोगमें जो मन उनविषयों में लगजाताहै तो वेबाहरके विषयमन और बुद्धिमें प्रवेशकरजाते हैं इसीसे उनविषयों का यहपुरुषरातिदिवस स्मरण करता है फिर जबपुण्य वशसे सत्संगहोनेसे विवेकज्ञान होताहै तो उन विषयों को अत्यन्त झूंठाजान स्मरणनहीं करता अर्थात् यादि नहीं करताहै तो वे विषय आपहीमनसे बाहर निकलजाते हैं तो विषयोंके बाहर निकालनेका यहीयत्न है जो इनका स्मरण न करना इस से हेअर्जुन इसीयत्नसे जो योगी विषयोंको अपनेमनसे बाहरकरके और नेत्रको भौंहोंके बीचमें करके अर्थात् भौंहोंके मध्यमें नेत्रकी दृष्टिकोकरके और तैसेही नासिकाके भीतर चलनेवाले जो प्राणवायु और अपानवायु इनको समानकरके अर्थात् नासिकासे बाहर निकलने वाला जो प्राणवायु तिसको बाहर न निकलनेदेय और नासिकाके द्वाराभीतर जानेवाला जो अपान पवन तिसकोभी रोकके प्राणवायुमें मिलाकर दोनोंकी गतिकोरोक के समानकरे अर्थात् इनदोनों पवनोंको योगी वशकरके अपने आधीन रक्खै॥ २७॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥ २८॥

शङ्करभाष्यम्।

यतेन्द्रिय इति यतेन्द्रियमनोबुद्धि र्यतानि संयतानि इन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च यस्य स यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मननात् मुनिः संन्यासी मोक्षपरायणः एवं देहसंस्थानो मोक्षपरायणो मोक्ष एव परमायनं परा गतिर्यस्य सोऽयं मोक्षपरायणो मुनिर्भवेत् विगतेच्छाभयक्रोध इच्छा च भयञ्च क्रोधश्च इच्छाभयक्रोधास्ते विगता यस्मात् स विगतेच्छाभयक्रोधः य एवं वर्त्तते सदा संन्यासी मुक्त एव सन् तस्य मोक्षेऽन्यः कर्त्तव्यो नास्ति ॥ २८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

विषयप्रावण्यं परित्यज्य चक्षुरपि भ्रुवोर्मध्ये विक्षेपपरिहारार्थं कृत्वा प्राणापानौ नासाभ्यन्तरचरणशीलौ समौ न्यूनाधिकवर्जितौ कुम्भकेन निरुद्धौ कृत्वा करणानि सर्वाण्येवं संयम्य प्राणायामपरो भूत्वा किं कुर्यादित्यपेक्षायामाह यतेन्द्रियेति इन्द्रियादि संयमं कृत्वा मोक्षमेवापेक्षमाणो मननशील: स्यादित्यर्थ: ज्ञानातिशयनिष्ठस्य सर्वदेच्छादिशून्यस्य संन्यासिनो मुक्तेरनायाससिद्धत्वान्न तस्य किंचिदपि कर्तव्यमस्तीत्याह विगतेति पूर्वार्द्धाक्षराणिव्याकरोतियतेत्यादिना द्वितीयार्द्धस्थाणिव्याचष्टेविगतेत्यादिना ॥२८॥

स्वामिकृतटीका।

यत इति अनेनोपायेन यता: संयता इन्द्रिय मनो बुद्धयो यस्य मोक्ष एव परमयनं प्राप्यं यस्य अतएव विगता इच्छाभयक्रोधा यस्य एवंभूतो यो मुनि: स सदा जीवन्नपि मुक्त एवेत्यर्थ: ॥ २८ ॥

नवलभाष्य।

फिर इनदोनोंके वशहोने में और पवन औरमन इन्द्रिय जे सबआपही वशहोजाते हैं क्योंकि प्राणके आधीन सबइन्द्रियां हैं यह अत्यन्त प्रसिद्ध है और इसीसे वशकरीहैं सबइन्द्रियां औरमन और बुद्धि जिसने और मुनिहोय अर्थात् मनन करनेकाहै स्वभाव जिसका नाम अहर्निश ब्रह्म तत्त्व विचारमें तत्पर और मोक्षही परम अयनगति जिसकी और दूरहुई है किसी पदार्थकी इच्छा औरभय और क्रोध जिससे ऐसा जो संन्यासी सो सदामुक्तही है ॥ २८ ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥

इतिश्रीभगवद्गीतायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसम्बादे
संन्यासयोगोनामपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

एवं समाहितचित्तेन किं विज्ञेयमिति चोद्यते भोक्तारमिति भोक्तारं यज्ञानां तपसाञ्च कर्तृरूपेण देवतारूपेण च यस्तं सर्व्वलोकमहेश्वरं सर्वेषांलोकानां महान्तं ईश्वरं सर्व्वलोकमहेश्वरं

सुहृदं सर्वभूतानां सर्वप्राणिनां प्रत्युपकारनिरपेक्षतयोपकारिणं सर्वभूतानां हृदयेशयं सर्वकर्मफलाध्यक्षं सर्वप्रत्ययसाक्षिणं मां नारायणं ज्ञात्वा शान्तिं सर्वसंसारोपरतिमृच्छतिप्राप्नोति ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताभाष्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अधिकारिणो यथोक्तस्य कर्तव्याभावे ज्ञातव्यमपि नास्तीत्याशंक्य परिहरति भोक्तारमित्यादिना प्रसिद्धं भोक्तारं व्यवच्छिनत्ति सर्वलोकेति ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययाविति न्यायेन सर्वफलदातृत्वं दर्शयति सुहृदमिति उक्तेश्वरज्ञाने फलं कथयति ज्ञात्वेति यज्ञेषु तपःसु च द्विधा भोक्तृत्वं व्यनक्ति कर्तृरूपेणेति हिरण्यगर्भादिव्यवच्छेदार्थं विशिनष्टि महान्तमिति स्वपरिकरोपकारिणं राजानं व्यावर्त्तयति प्रत्युपकारेति ईश्वरस्य ताटस्थ्यं व्युदस्यति सर्वभूतानामिति तर्हि तत्र तत्र व्यवस्थितकर्म तत्फलसंसर्गित्वं स्यादित्याशंक्याह सर्वकर्मेति नच तस्य बुद्धितद्वृत्तिसम्बन्धोऽपि वस्तुतोऽस्तीत्याह सर्वप्रत्ययेति यथोक्तेश्वरपरिज्ञानफलमभिदधाति मां नारायणमिति तदेवं कर्मयोगस्यामुख्यसंन्यासापेक्षया प्रशस्तत्वेऽपि ततो मुख्यसंन्यासस्याधिक्यात्तद्वतो बुद्धिशुद्ध्यादियुक्तस्य कामक्रोधोद्भवं वेगमिहैव सोढुं शक्तस्य शमदमादिमतो योगाधिकृतस्य त्वं पदार्थाभिज्ञस्य परमात्मानं प्रत्यक्त्वे न जानतो मुक्तिरिति सिद्धम् ॥ २९ ॥

इति आनन्दगिरिकृतटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

स्वामिकृतटीका।

नन्वेवमिन्द्रियादिसंयममात्रेण कथं मुक्तिः स्यान्न तावन्मात्रेण किन्तु ज्ञानद्वारेणेत्याह भोक्तारमिति यज्ञानां तपसांचैव मम भक्तैः समर्पितानां यदृच्छया भोक्तारं पालकमिति वा सर्वेषां लोकानां महान्तमीश्वरं सर्वभूतानां सुहृदं निरपेक्ष्योपकारिणं मन्तर्यामिणं मां ज्ञात्वा मत्प्रसादेन शान्तिं मोक्षमृच्छति प्राप्नोति ॥ विकल्पशंकापोहेन येनैवं योगसांख्ययोः समुच्चयः क्रमेणोक्तः सर्वज्ञं नौमि तं गुरुं ॥ २९ ॥

इति श्रीधरस्वामिकृतटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

नवलभाष्य।

अब कहतेहैं कि इसप्रकार समाधिस्थ चित्तजो योगी तिसको कौनजानवेयोग्य है इसआकांक्षामें कहतेहैं कि [भोक्तारमिति] हेअर्जुन कर्त्तारूप करके और देवतारूप करके जो यज्ञ औरतप इनके भोगनेवाला है और सबलोकों का जो बड़ाभारी ईश्वरहै अर्थात् जिसके ऊपर कोई दूसरानहीं है और जो सबप्राणियोंका सुहृदहै अर्थात् कोई मेरेसंग इसके बदलेका

उपकारकरे ऐसी नहीं इच्छाकरके सबप्राणियों का उपकारकरने वाला जो है यद्यपि लोकमें माता पिताभी पुत्रसे प्रत्युपकार अर्थात् बदलेका सत्कार नहीं चाहतेहैं और पुत्रका भरणपोषणरूप उपकारकरते हैं इसीसे सुहृद् कहाते हैं तो कदाचित् माता पिता वृद्धावस्थामें अशक्ततावस्था में पुत्रके प्रत्युपकारके भी चाहेंइच्छा किसीतरह से करतेहोयं परमेश्वर तो किसीभक्तसे भी अपनी भेंटपूजाकी अभिलाषा करके कुछ किसीका उपकार नहीं करताहै जिससे वह आप्तकाम हैं किन्तु अपनी सहजदयालुताही से सब की रक्षाकरताहै इससे सत्यसुहृद् सबका परमेश्वरही होसक्ता है इसप्रकार हेअर्जुन सबप्राणियोंके हृदयमें शयन करनेवाला औरसब कर्म फलोंका स्वामी और सबप्राणियोंके न्यारे न्यारे निश्चय कासाक्षी ऐसा जो मैं नारायण तिसको जानके यहपुरुष शांतिको प्राप्तहोता है अर्थात् सबसंसाररूपी दुःखकी निवृत्तिको प्राप्तहोता है ॥ २९ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीताभगवच्छंकराचार्यकृतभाष्येस्वर्गवास्युमादत्तविरचित तत्त्वविवेकामृताख्येनवलभाष्येपञ्चमोध्यायःसमाप्तः॥ ५ ॥



श्रीमद्भगवद्गीतासटीक॥

श्रीभगवानुवाच।

अनाश्रितः कर्म्मफलं कार्य्यं कर्म्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्नि र्नचाक्रियः॥ १॥

शङ्करभाष्यम्।

अतीतानन्तराध्यायान्ते ध्यानयोगस्य सम्यग्दर्शनं प्रत्यन्तरङ्गस्य सूत्रभूताः श्लोकाः स्पर्शान्कृत्वा बाहिरित्यादयउपदिष्टास्तेषां वृत्तिस्थानीयोऽयं षष्ठोऽध्याय आरभ्यते तत्र ध्यानयोगस्य बहिरङ्ग कर्मेति यावद्ध्यानयोगारोहणासमर्थस्तावद्गृहस्थेनाधिकृतेन कर्त्तव्यं कर्मेति अतस्तत् स्तौति अनाश्रित इति ननु किमर्थं ध्यानयोगारोहणसीमाकरणं यावतानुष्ठेयमेव विहितं कर्म यावज्जीवं नारुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यत इति विशेषादारूढस्य च शमेनैव सम्बंधकरणादारुरुक्षोरारूढस्य च शमः कर्म चोभयं कर्त्तव्यत्वेनाभिप्रेतञ्चेत् स्यात्तदारुरुक्षोरारूढस्येति शमकर्मविषयभेदेन विशेषणं विभागकरणञ्चानर्थकं स्यात् तत्राश्रमिणां कश्चित् योगमारुरुक्षुर्भवत्यारूढश्च कश्चिदन्येऽनारुरुक्षवो नचारूढास्तानपेक्ष्या रुरुक्षोरारूढस्यचेति विशेषणविभागकरणञ्चोपपद्यत एवेति चेन्न तस्यैवेति वचनात् पुनर्योगग्रहणाच्च योगारूढस्येति य आसीत् पूर्वयोगमारुरुक्षुस्तस्यैवारूढस्य शम एव कर्त्तव्यं कारणं योगफलं प्रत्युच्यत इत्यतो न यावज्जीवं कर्त्तव्यत्वप्राप्तिः कस्यचिदपि कर्मणा योगाविभ्रष्टवचनाच्च गृहस्थस्य चेत् कर्मिणो योगोविहितः षष्ठेऽध्याये स योगविभ्रष्टोपि कर्म्मगतिं कर्मफलं प्राप्नोतीति तस्य नाशंकानुपपन्ना स्यादवश्यंहि कृतं कर्म्मकाम्यं नित्यंवा मोक्षस्य नित्यत्वादनारभ्यत्वेपि स्वं फलमारभत एव नित्यस्य च कर्म्मणो वेदप्रमाणावबुद्धत्वात् फलेन भवितव्यमित्यवोचामान्यथा वेदस्यानर्थक्यप्रसंगादिति नच कर्म्मणि सत्युभयविभ्रष्टवचनमर्थवत् कर्म्मणो विभ्रंशकारणानुपपत्तेः कर्म्मकृतमीश्वरे संन्यस्येत्यतः कर्त्तारि कर्मफलं नारभत इति चेन्नेश्वरे संन्यासस्याधिकतरफलहेतुत्वोपपत्तेर्म्मोक्षायैवेतिचेत् स्वकर्म्मणां कृतानामीश्वरे न्यासोमोक्षायैव न फलान्तराय योगसहितः योगाच्च विभ्रष्ट इत्यतस्तं प्रति नानाशंका युक्तैवेति चेन्नैकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहो ब्रह्मचारिव्रते स्थित इति कर्मसंन्यासविधानात् नचात्र ध्यानकाले स्त्रीसहायत्वाशंकायेनैकाकित्वं विधीयते नच गृहस्थस्य निराशीरपरिग्रहइत्यादिवचनमनुकूलं उभयभ्रष्टप्रश्नानुपपत्तेश्च अनाश्रित इत्यनेन कर्मिण एव सन्न्यासित्वं योगित्वप्रोक्तं प्रतिषिद्धञ्च निरग्नेराक्रियस्य च सन्न्यासित्वं योगित्वञ्चेति. चेन्न ध्यानयोगं प्रति बहिरंगस्य सतः कर्मणः फलाकांक्षा संन्यासस्तुतिपरत्वान्न केवलं निरग्निराक्रिय एव संन्यासी योगी च किं तर्हि कर्म्यपि कर्मफलासंगं संन्यस्य कर्म्मयोगमनुतिष्ठन् सत्त्वशु-

द्धयर्थं संन्यासी योगी च भवतीति स्तूयते नचैकेन वाक्येन कर्मफलासंगसंन्यासस्तुतिश्चतुर्था श्रमप्रतिषेधकोपपद्यते नच प्रसिद्धानिरग्नेरक्रियस्य परमार्थसंन्यासिनः श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहास योगशास्त्रेषु विहितं संन्यासित्वं योगित्वञ्च प्रतिषेधति भगवान् स्ववचनविरोधाच्च सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्य नैव कुर्वन्नकारयन्नास्ते मौनी सन्तुष्टो येनकेनचिदानिकेतनः स्थिरमतिर्विहाय कामान् यः सर्व्वान् पुमांश्चरति निस्पृहः सर्व्वारम्भपरित्यागीति च तत्र तत्र भगवता स्ववच॰ नानि दर्शितानि तैर्विरुध्येत चतुर्थ्याश्रमविप्रतिषेधस्तस्मात् मुनेर्योगमारुरुक्षोः प्रतिपन्नगार्हस्था स्याग्निहोत्रादिकर्मफलनिरपेक्षमनुष्ठीयमानं ध्यानयोगारोहणसाधनत्वबुद्धिशुद्धिद्वारेण प्रतिप द्यत इति स संन्यासी च योगी चेति स्तूयते अनाश्रित इति अनाश्रित न आश्रितोऽनाश्रितः किं कर्म्मणः फलं यत्तदनाश्रितः कर्म्मफलः तृष्णा रहित इत्यर्थः यो हिकर्म्मफले तृष्णावान् स कर्मफलमाश्रितो भवति अयन्तु तद्विपरीतोऽनाश्रितः कर्मफलं एवम्भूतःसन् कार्यं कर्त्तव्यं नित्यं काम्यविपरीतमग्निहोत्रादिकं करोति निर्वर्तयति यः कश्चित् य ईदृशः कर्म्मी स कर्म्यन्तरेभ्यो विशिष्यत इत्येवमर्थमाह स संन्यासी च योगी चेति संन्यासः परित्यागः स यस्यास्ति स संन्या सी च योगी च योगश्चित्तसमाधानं स यस्यास्ति स योगी चेत्येवं गुणसम्पन्नोऽयं मन्तव्यो न के वलं निरग्निनिरक्रिय एव संन्यासी योगी चेति मन्तव्यः निर्गता अग्नयः कर्माङ्गभूता यस्मात् स निरग्निरक्रियश्च अनग्निसाधनाप्यविद्यमाना क्रियास्तपोदानादिका यस्यासावक्रियः ननु च निरग्नेरक्रियस्यैव श्रुतिस्मृतियोगशास्त्रेषु संन्यासित्वं योगित्वञ्चप्रसिद्धंकथमिहसाग्नेःसक्रियस्य संन्यासित्वं योगित्वञ्चाप्रसिद्धमुच्यते इति नैष दोषः कयाचिद् गुणवृत्त्योभयस्य सम्पिपाद यिषितत्वात् कथं कर्मफलसंकल्पसंन्यासात् संन्यासित्वं योगाङ्गत्वेन च कर्मानुष्ठानात् कर्मफलं संकल्पस्य वा चित्तविक्षेपहेतोः परित्यागाद्योगित्वञ्चेति॥ १॥

आनंदगिरिकृतटीका।

ध्यानयोगप्रस्तावानन्तरं तद्योग्यताहेतुकर्मणःस्तुतिं भगवानुक्तवानित्याह श्रीभगवा निति पूर्वोत्तराध्याययोः संगतिमभिदधानो वृत्तमनूद्याध्यायान्तरमवतारयति अतीतेति सम्यग्दर्शनप्रकरणे ध्यानयोगस्य प्रसंगाभावं व्युदस्यति सम्यगिति संग्रहविवरणयोरतो तानन्तराध्याययोर्युक्तं हेतुहेतुमत्वमिति भावः अध्यायसम्बन्धमभिधायानाश्रितः कर्म फलमित्यादिश्लोकद्वयस्य तात्पर्यमाह तत्रेति कर्मयोगस्य संन्यासहेतोर्मर्यादां दर्श यितुं सांगञ्च योगं विचारयितुमध्याये प्रवृत्ते सतीति सप्तम्यर्थः संन्यासिना कर्तव्यं कर्मै त्येवं प्रतिभासंव्युदस्यति गृहस्थेनेति कर्तव्यत्वं स्तुतियोग्यत्वमतः शब्दार्थः समुच्चयवा दी सीमाकरणमाक्षिपति नन्विति यावज्जीवश्रुतिवशात् ध्यानारोहणसामर्थ्ये सत्यपि कर्मानुष्ठानस्य दुर्वारत्वादिति हेतुमाह यावतेति भार्यावियोगादिप्रतिबन्धाद्यावज्जीव श्रुतिचोदितकर्मानुष्ठानवत् वैराग्यप्रबन्धादपि तदननुष्ठानसम्भवाद्भगवतो विशेषवचनाच्च न यावज्जीवं कर्मानुष्ठानप्रसक्तिरिति परिहरति नारुरुक्षोरिति उक्तमेवार्थं व्यतिरेकद्वारे ण विवृणोति आरुरुक्षोरित्यादिना आरोढुमिच्छतीत्यारुरुक्षुरत्रारोहणेच्छाविशेषणमा रोहणं कृतवानित्यत्र पुनरिच्छाविषयभूततमारोहणं विशेषणमेवं शमकर्म विषययोर्भेदेन विशेषणं मर्य्यादाकरणानंगीकरणे विरुद्धमापद्येत तयोरेवं विभागकरणञ्च भगवतसीमा नंगीकारेण युज्यतेत्यर्थः विशेषणविभागकरणयोरन्यथोपपत्तिमाशंकते तत्रेति व्यवहार भूमिः सप्तम्यर्थः षष्ठी निर्द्धारणे भवत्वधिकारिणां त्रैविध्यं तथापि प्रकृते विशेषणादौ कि मायातमित्याशङ्क्य तृतीयापेक्षया तदुपपत्तिरित्याह तानपेक्षेति आरुरुक्षोरारूढस्य च भेदे तस्यैवेति प्रकृतपरामर्शानुपपत्तिरिति दूषयति न तस्येति यद्यनारुरुक्षुं पुरुषम पेक्षाऽऽरुरुक्षोरिति विशेषणं तस्य च कर्मारोहणकारणमनारूढञ्च पुरुषमपेक्ष्यारूढस्येति

विशेषणं तस्य च शमः संन्यासो योगफलप्राप्तौ कारणमिति विशेषणविभागकरणयोरुप पत्तिस्तदारुरुक्षोरारूढ़स्य च भिन्नत्वात् प्रकृतपरामर्शिनः तच्छब्दस्यानुपपत्तेर्न युक्तमित्थं विशेषणाद्युपपादनमित्यर्थः किंच योगमारुरुक्षोस्तदारोहणे कारणं कर्मेत्युक्त्वा पुनर्यो गारूढ़स्येति योगशब्दप्रयोगात् यो योगं पूर्वमारुरुक्षुरासीत्तस्यैवापेक्षितं योगमारूढ़स्य तत्फलप्राप्तौ कर्मसंन्यासः शमशब्दवाच्यो हेतुत्वेन कर्त्तव्य इति वचनादारुरुक्षोरारूढ़ स्य चाभिन्नत्वप्रत्यभिज्ञानान्न तयोर्भिन्नत्वं शंकितुं शक्यमित्याह पुनरिति यत्तु यावज्जी वश्रुतिविरोधात् योगारोहणसीमाकरणं कर्मणोऽनुचितमिति तत्राह उच्यत इति पूर्वोक्त रीत्या कर्मतत्त्यागयोर्विभागोपपत्तौ श्रुतेरन्यविषयत्वात् योगमारूढ़स्य मुमुक्षोर्जिज्ञास मानस्य नित्यनैमित्तिककर्मस्वपि परित्यागसिद्धिरित्यर्थः इतश्च यावज्जीवं कर्मकर्त्तव्यत्वं न भवतीत्यर्थः ननु योगभ्रष्टशब्देन गृहस्थस्यैवाभिधानात्तस्यैवास्मिन्नध्याये योगविधाना द्योगारोहणयोग्यत्वे सत्यपि यावज्जीवं कर्म्म कर्त्तव्यमिति नेत्याह गृहस्थस्येति तेनापि मुमुक्षुणा कृतस्य कर्म्मणो मोक्षातिरिक्तफलानारम्भकत्वाद्योगभ्रष्टोऽसौ छिन्नाऽभ्रमिव न श्यतीति शंका सावकाशेत्याशंक्याह अवश्यं हीति अपौरुषेयात्त्रिर्दोषाद्वेदात् फलदायि त्वो कर्म्मणः स्वाभाविकी शक्तिरवरा ब्रह्मभावस्य च स्वतः सिद्धत्वान्न कर्म्मफलवत्त्व मिति मोक्षातिरिक्तस्यैव फलस्य कर्म्मारम्भकमिति कर्म्मिणि योगभ्रष्टेऽपि कर्म्मगतिं गच्छतीति निरवकाशाशंकेत्यर्थः ननु मुमुक्षुणा काम्यप्रतिषिद्धयोगकरणात् कृतयोश्च नित्यनैमित्तिकयोरफलत्वात् कथं तदीयस्य कर्म्मणो नियमेन फलारम्भकत्वं तत्राह नित्यस्यचेति चकारेण नैमित्तिकं कर्मानुकृष्यते वेदप्रमाणकत्वेऽपि नित्यनैमित्तकयोरफ लत्वे दोषमाह चान्यथेति कर्मण्यनुष्ठितस्य फलारम्भकत्वध्रौव्यात् गृहस्थो योगभ्रष्टोऽ पि कर्मगतिं गच्छतीति न तस्य नाशाऽशंकेति शेष इतोऽपि गृहस्थो योगभ्रष्टशब्दवा च्यो न भवतीत्याह नचेति ज्ञानं कर्म चेत्युभयं ततो भ्रष्टोऽयं नश्यतीति वचनं गृह स्थे कर्मणि सति नार्थवद्भवितुमलं तस्य कर्मनिष्ठस्य कर्मणो विभ्रंशे हेत्वभावात् तत् फलस्यावश्यकत्वादित्यर्थः कृतस्य कर्मणो मुमुक्षुणा भगवति समर्पणात् कर्त्तरि फलाना रम्भकत्वादस्ति विभ्रंशकारणमिति शंकते कर्मेति राजाराधनबुद्ध्या धनधान्यादिसमर्प णस्याधिकफलहेतुत्वोपलम्भादीश्वरे समर्पणं न भ्रंशकारणमिति दूषयति नेत्यादिना अ धिकफलहेतुत्वेऽपि मोक्षहेतुत्वमिष्यतामिति शंकते मोक्षायेति तदेव चोद्यं विवृणोति स्वकर्मणामिति सहकारिसामर्थ्यात्तस्य फलान्तरं प्रत्युपायत्वासिद्धिरिति हेतुं सूचयति योगेति ध्यानसहितस्य संन्यासस्य मोक्षोपयिकत्वे कुतो योगभ्रष्टमधिकृत्य नाशाऽशं केत्याशंक्याह योगाच्चेतिसहकार्यभावे सामग्र्याभावात्फलानुपपत्तेर्युक्ता नाशाशंके त्यर्थः ध्यानसहितमीश्वरे कर्मसमर्पणं मोक्षायेत्यत्र प्रमाणाभावात् गृहस्थोयोगभ्रष्टशब्द वाच्योनभवतीति दूषयति नेति गृहस्थस्य योगभ्रष्टशब्दवाच्यत्वाभावे हेत्वन्तरमाह ए काकीति न खल्वेतानि विशेषणानि गृहस्थसमवायीनि सम्भवन्ति तेन तस्य ध्यानयोग विध्यभावात् न तत्प्रतियोगभ्रष्टशब्दवचनमुचितमित्यर्थः एकाकित्ववचनं गृहस्थस्यापि ध्यानकाले स्त्री सहायत्वाभावाभिप्रायेण भविष्यतीत्याशङ्क्य अग्निहोत्रादिवद्ध्यानस्य प- त्नीसाध्यत्वाभावादप्राप्त प्रतिषेधप्रसंगान्नैवमित्याह नचान्येति विशेषणान्तरपर्यालोचनयापि नायमेकाकिशब्दो गृहस्थपरो भवितुमर्हतीत्याह नचेति किञ्चगृहस्थस्यैवैकाकित्वादिवि वक्षितत्वाध्यानयोगविधौ तं प्रत्युभयभ्रष्टप्रश्नो नोपपद्यत इत्याहभवेति नहिगृहस्थं प्रति उभयस्मात् ज्ञानात् कर्मणश्च विभ्रष्टत्वमुपेत्य प्रष्टुं युज्यते तस्यज्ञानात् भ्रंशेऽपि कर्म्मणो-

स्तदभावादनुष्ठितकर्म्मवशात् फलप्रतिलम्भादतो यथोक्तप्रश्नालोचनया न गृहस्थं प्रति ध्यानविधानोपपत्तिरित्यर्थः ननु भगवता संन्यासस्य प्रतिपिद्धत्वात् गृहस्थस्यैव योग विधानात्तस्यैव योगभ्रष्टशब्दवाच्यत्वमिति शंकते अनाश्रित इत्यनेनेति भगवद्वाक्यं न प्रतिषेधपरमिति परिहरति न ध्यानेति स्तुतिपरत्वमेव स्फोरयति न केवलमिति सत्त्वशु- द्धयर्थमनुतिष्ठन्निति सम्बन्धः वाक्यस्योभयपरत्वमाशङ्क्य वाक्यभेदप्रसंगान्मैव मित्याह न चेति इतोऽपि भगवतः संन्यासाश्रमप्रतिषेधोऽभिप्रेतो न भवतीत्याह नच प्रसिद्धमिति तस्यप्रसिद्धं संन्यासित्वं योगित्वंचेति सम्बन्धः प्रसिद्धत्वमेव व्याकरोति श्रुतीति इतोऽपि संन्यासाश्रमं भगवान्नप्रतिषेधतीत्याह स्ववचनेति विरोधमेव साधयति सर्वकर्म्माणीत्या- दिना अनाश्रित इत्यादिवाक्यस्य यथा श्रुतात्थर्त्वमुपपत्तेः स्तुतिपरत्वमुपपादितमुपसंह रति तस्मादिति कर्म्मफलसंन्यासित्वमत्र मुनिशब्दार्थः स्तुतिपरं वाक्यमक्षरयोजनार्थ मुदाहरति अनाश्रित इतिकर्मफलेऽभिलाषो नास्तीत्येतावता कथं तदनाश्रितत्ववाचो युक्तिरित्याशङ्क्य व्यतिरेकमुखेन विशदयति यो हीति कार्यमित्यादि व्याकरोति एवम्भूतः सन्निति कथं कर्मिणः संन्यासित्वं योगित्वंच कर्मित्वविरोधादित्याशंक्याह य ईदृश इति स्तुतेरत्र विवक्षितत्वान्नानुपपत्तिश्चोदनीयेति मन्वानः सन्नाह इत्येवमिति न निरग्निरि- त्यादेरर्थमाह न केवलमिति अग्नयो गार्हपत्याऽऽहवनीयाऽन्वाहार्यपचनप्रभृतयः नन्व ग्नित्वे सिद्धमक्रियत्वमग्नि साध्यत्वात् क्रियाणां तथाच न निरग्निरित्येतावतैवापेक्षितसिद्धे र्नचाक्रिय इत्यनर्थकमर्थपुनरुक्तेरिति तत्राह अनग्नीति उत्तरश्लोकस्य तात्पर्यं दर्शयितुं व्यावर्त्यामाशंकां दर्शयति ननु चेति प्रसिद्धं परित्याज्याप्रसिद्धिरुपादीयमाना प्रसिद्धि विरुद्धेति चोद्यं दूषयति नैष दोष इति उभयस्यसाग्निसक्रिये च संन्यासित्वस्य योगित्वस्य चेत्यर्थः गुणवृत्त्योभयसम्पादनं प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति तत् कथमित्यादिना ॥ १ ॥

स्वामिकृतटीका ।

चित्ते शुद्धेऽपि न ध्यानं विना संन्यासमात्रतः मुक्तिः स्यादिति षष्ठेऽस्मिन् ध्यानयो गो वितन्यते पूर्वाध्यायान्ते संक्षेपेणोक्तं योगं प्रपंचयितुं षष्ठाध्यायारम्भस्तत्र तावत् सर्व कर्माणि मनसा संन्यस्येत्यारभ्य संन्यासपूर्विकाया ज्ञाननिष्ठायास्तात्पर्य्येणाभिधानाद् दुःखरूपत्वाच्च कर्मणः सहसा संन्यासातिप्रसंगं प्राप्तं वारयितुं संन्यासादपि श्रेष्ठत्वेन क र्म्मयोगं स्तौति अनाश्रित इति द्वाभ्यां कर्मफलमनाश्रितोऽनपेक्षमाणः सन्नवश्यं कार्यं तया विहितं कर्मयः करोति स एव संन्यासी योगी च नतु निरग्निरग्निसाध्येष्ट्याख्य कर्मत्यागी नचाक्रियोऽग्निसाध्यपूर्ताख्यकर्मत्यागी च ॥ १ ॥

नवलभाष्य ।

पीछेके अध्यायके अन्तमें सम्यग्दर्शनरूप ज्ञानका अन्तरंग जो ध्यानयो- गतिसके सूत्रभूत अर्थात् संक्षेपकरके सबध्यानयोगके तात्पर्यको कहनेवाले जे (स्पर्शान्कृत्वावहिः) इत्यादि तीनिश्लोकसे उपदेशरूपकरके कहे अब उनकी वृत्तिरूप अर्थात् उन्हींश्लोकोंका व्याख्यानरूप यहछठा अध्याय आरम्भकिया जाताहै तहां ध्यानयोगका वहिरंग साधन कर्महै इस कारण से जबतक ध्यानयोग की प्राप्तिहोय तबतक अधिकारी जो गृहस्थ तिसकर के कर्म अवश्य करना चाहिये इसहेतुसे भगवान् कर्म योगकी स्तुतिकरते हैं (अनाश्रितइति) न कहो किसवास्ते ध्यानयोगकी प्राप्तिमें एकमर्यादा

रूप अर्थात् पहिली सिड्ढीकी तरह कर्मको कहतेहो क्योंकि जबतक जीवै तबतक वर्णाश्रम विहित कर्मकरनाही चाहिये ऐसा कर्मकाण्डमें जहांतहां वर्णनकियाहै इससे यहसिद्धहुआ कि समुच्चयवादी के मतमें ध्यानयोग की प्राप्तिमें भी कर्मको नहींछोड़ै तिसपै कहते हैं कि ऐसी नहीं-आशंका करनी उचितहै क्योंकि [आरुरुक्षोर्मुनेर्योगंकर्मकारणमुच्यते] जो मुनियोग की प्राप्तिहोने की इच्छाकरै उसको कर्महीं कारणहै अर्थात् कर्मही प्रथम करना चाहिये ऐसा भगवान्हीने विशेष विधानकरके निर्णय करदिया है कि जबतक ध्यानयोगकी प्राप्ति न होय तभी तक कर्म करनाचाहिये इससे और जब ध्यानयोग को प्राप्तहोजाय फिर तिसके उपरान्त ज्ञाननिष्ठाहीमें स्थितरहै ऐसाभी भगवान् ने कहाहै इससे तुम्हारी आशंका नहीं बनसक्ती जो कदाचित् कर्म और संन्यास जे दोनोंध्यानयोग की प्राप्तिहोनेकीइच्छा करनेवाले को और ध्यानयोग को प्राप्तहोगयाहै उसको भी बराबर एकहीसे करनेके योग्यहोते तौ भगवान् दोनोंका न्यारे न्यारे मर्य्यादापूर्वक क्यों विधान करते अर्थात् जबतक ध्यानयोग प्राप्तहोय तभीतक कर्मकरै और बाद ध्यानयोग की प्राप्तिके सन्न्यासही को करै ऐसा जो भगवान् ने कहा है सो वचन अनर्थक होजायगा तब अब समुच्चयवादी सिद्धान्तीसे यह कहता है कि जबतक जीवै तबतक अग्निहोत्रकरै ऐसा वेदमेंकहाहै तिसके प्रमाणसे हम भगवान्के वचनका यह आशय कहते हैं कि जगत्में तीनतरहकेमनुष्य हैं एकतौ ध्यानयोग की इच्छाकरनेवाले हैं अर्थात् यह वे इच्छाकिया करते हैं किसीतरह योगाभ्यास हमको होय तौ हम परमात्मा के ध्यानसमाधिमें स्थितहो आनन्दयुक्त रहाकरैं और कोई ऐसे हैं कि ध्यानयोगमें स्थितहो-रहेहीहैं अर्थात् जिनको पूर्णयोग प्राप्तहोगयाहै इससे अहर्निश परमात्माके ध्यानही में वे मग्नरहते हैं और एकऐसे मनुष्यहैं कि संसारहीमें फसेहुएहैं इससे वे योगके प्रभावको जानतेही नहीं हैं फिर योगाभ्यास की इच्छा कैसे करसक्ते हैं तौ जे तीसरेप्रकारके मनुष्य कहे तिन्हीं के वास्ते भगवान्ने कहाहै कि वे पुरुष योगकी प्राप्तिहोने की इच्छाकरैं तौ पहिले उनको वर्णाश्रमविहित कर्म करनाचाहिये और जो योगको प्राप्तहोजायँ तौ संन्यास धारणकरैं और जो पहिलेके दो प्रकारके कहिआये हैं वे मनुष्य तौ जब तक जीवैं तबतक वेदोक्तकर्म भी करते रहैं और ज्ञानयोग को भी करैं तौ ऐसी व्यवस्थामें भगवान् का वचन भी निरर्थक नहींहुआ और समुच्चय वादभी सिद्धहुआ अर्थात् ज्ञान और कर्म इनका संग संग करना भी सिद्धहुआ तौ अब सिद्धान्ती समुच्चयवादी से कहताहै कि जो भगवान् का आशय ऐसाहोता तौ आपका कहना ठीकरहा परन्तु भगवान् के कहेहुए श्लोकमें तौ जैसा आप कहते हौ वह अर्थही नहीं निकलता अर्थात् उससे विपरीत अर्थ सिद्धहोता है क्योंकि भगवान्ने ऐसाकहाहै कि (योगारूढस्यतस्यैवश मःकरणमुच्यते) इसका अर्थ यहहै कि जिस पुरुषने योगके प्राप्तहोने की

इच्छा की थी वहीपुरुष जब पूरा पूरा समाधिपर्य्यंत योगको प्राप्तहोजाय तो उसको कर्म करनेका कुछ प्रयोजन नहीं किन्तु शमही अर्थात् ज्ञानही उसका कारणहै फिर वह संन्यास धारणकर ज्ञानही में स्थितरहै तो इसमें यहबात भगवान् ने खुलीही हुई कही कि जिस पुरुष ने योगकी इच्छासे पहिले कर्मयोग कियाथा फिर वही पुरुष अन्तःकरण शुद्धिको प्राप्तहो जब योगको प्राप्तहुआ उसीको सन्न्यासको कहा और जो आपने कहाथा कि जे तीसरे प्रकारके संसारी पुरुषहैं तिनकेलिये यहां भगवान् ने योगके पहिले कर्मका उपदेश किया और योगके अनन्तर संन्यासको कहा सो अर्थ कहां निकला और जो औरहीका ग्रहणहोता तो फिर तिसी पुरुषको शमकारण है ऐसा किसवास्तेकहते इससे यहां तिसीको ऐसाकहने से यह सूचितकिया कि जिसने योगकी इच्छाकरके कर्म कियाथा और वही फिर योगको प्राप्त हुआ तो उसीको सन्न्यासका विधानहै और इसीश्लोकके पहिलेके अर्द्ध भागमें योगशब्द का ग्रहणकरिआये थे फिर यहां [योगारूढ़स्य] इसपदमें योगशब्द का ग्रहणकिया इससे भी यही सूचितहोताहै कि उसीका यहां ग्रहण है जिसने पहिले योगकी इच्छा की थी और यहभी विचारकरके देखना चाहिये कि जो सांसारिक विषय भोगमें लिप्तहै उसको योग की इच्छा ही कैसे सम्भवहोसक्ती है तो फिर उसके प्रति उपदेशभी निरर्थकहोजायगा और जो कहा कि योगको प्राप्तहोगया है वहभी कर्मकरै तो जब परमात्मा के ध्यानमें स्थितहुआ तो उसको कर्म करनेका प्रयोजनही क्यारहा और उस अवस्थामें योगीको कर्म सम्भवही कैसे होताहै इससे जे तीसरेप्रकारके संसारी पुरुष कहे उन्हींके वास्ते वेदकी आज्ञाहै कि जबतक जीवै तबतक कर्मकरै और ज्ञानीको और ध्यानावस्थित योगीको तो भगवान्का कहाकर्म त्यागही उचित है तो फिर समुच्चयवादी का कहाहुआ ज्ञान और कर्मका संगसंग करना कैसे बनसक्ता है अब कदाचित् समुच्चयवादी यहकहै कि इसीअध्यायमें भगवान् ने कहा कि जो योगभ्रष्ट पुरुष होताहै वह पवित्र जो धनीलोग तिसके यहां उत्पन्नहोताहै तो इसकथनसे सूचितहोताहै कि गृहस्थको भी योगका अधिकारहै इसीसे वह योगसे भ्रष्टहोके स्वर्गादिलोक में कर्मफलको भोगके फिर पवित्र धनवान् के गृहमें जन्मलेताहै ऐसाकहाहै तो इसका उत्तर सिद्धांतवादी कहताहै कि ऐसे आपके कहने में अर्जुनका प्रश्नही नहीं संभवहोगा क्योंकि अर्जुनने यह प्रश्नकिया कि जोपुरुष योगाभ्यासमें प्रवृत्तहुआ और फिरकिसी कारणसे उसकी इन्द्री चलायमान हुई अथवा संपूर्ण योगकोविना प्राप्तहुये बीचहीमें शरीर छूटगया और उसकी श्रद्धाबनीहीथी तो फिर उसको योगफलतो प्राप्त नहींहुआ और कर्ममार्ग को पहिलेही त्यागकरचुका था इससे इधरसे भीगया तो दोनोंलोकोंसे भ्रष्ट हुआ कौनगतिको प्राप्तहोताहै तो फिरइस प्रश्नसे स्पष्ट विदितहोताहै कि कर्म करनेवाला जो योगसे भ्रष्टहुआहै उसकी प्रश्ननहींहै जो कदाचित् उस

की प्रश्नहोती तो उसने जोनित्य नैमित्तिकादि कर्मकिये हैं उनका अवश्य फलहोताही तहांमोक्ष यद्यपि कर्मजन्य नहींहै परन्तु स्वर्गादिफल तो होता ही फिर सर्वथा नाशकी अर्जुननेशंका किसवास्तेकी नकहोकाम्य कर्मतोयोगी कर्त्ताही नहींहै और नित्य कर्मका कुछफल विशेषकहींकहानहीं इससेशंका होसक्ती तौयह कहनायुक्त नहींहै क्योंकि नित्य जोअग्निहोत्र संध्योपासनादि कर्महै सो वेद वोधितहीहै अर्थात् वेदहीने जतायाहै तौ जोउसका कुछफल न होयतौ उसके विधान करनेवाला शास्त्रही अनर्थक होजायगा इससे जब तक पुण्यकर्म उसयोगीका बनाहै तबतक दोनोंलोकके नाशकी आशंकाकरना ठीकनथी अब कदाचित् समुच्चयवादी कहै कि कर्मतौ उसयोगीने कियाथा परन्तु वहकर्म ईश्वरको समर्पण करदिया इससे कर्त्तामें उसका फल नहीं होसक्ता तौ यहभी कहना तुम्हारा ठीकनहीं क्योंकि ईश्वरमें समर्पण करनेसे तो उसका अधिक फलहोना चाहिये जैसेकिसीने अपनाधन राजा केपास रखिदिया तौ क्याउसका नाशहोताहै उसका तोराजा और अधिक मानकरताहै तौ समुच्चयवादी यह कहताहै कि ईश्वरमें जो उसने कर्म समर्पण किये सो केवल मोक्षहीके लियेकिये थे कुछ और फलकेलिये नहीं किये तौफिरजबमोक्षार्थ जोयोगउससे चलायमान हुआ तोऔर फलतोकुछ होनानहीं फिरनाशकी आशंका अर्जुनको युक्तही है तब सिद्धांतवादी कहता है कि जो गृहस्थको ध्यानयोगका अधिकार होयतो आपका कथन सब संभव होसक्ताहै वहांतो ऐसालिखाहै कि (एकाकीयतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः निराशीःब्रह्मचारिव्रतेस्थितः) अकेलाहोयऔर अपने वशकियाहै चित्त और देहजिसने और त्यागदियाहै धनपुत्रादि परिग्रह जिसने और सबकामनाओं करिकै रहितहो और ब्रह्मचर्य्यमें स्थितहोय ऐसाजो होयसो ध्यान योगका अधिकारी है यह कहनेसे कर्मका त्यागही भगवान्‌को अभिमत है और कुछ ध्यानयोगमें स्त्रीकेसहायकी आशंका नहींप्राप्तथी जिसकेअर्थ एकाकी अर्थात् अकेलेका विधान करते और कामना रहित और अपरिग्रह अर्थात् संग्रह करनेके योग्य धनादिकोंका त्यागकरदेवै इनको आदिलैकै जे योगीके विशेषण कहे हैं तेगृहस्थमें नहीं संभवहोते हैं और जो अर्जुन ने दोनोंलोकके नाशकी आशंका करके जो प्रश्नकिया सो भी गृहस्थमें नहीं संभवहोती क्योंकि योगभ्रष्ट होनेमें भी गृहस्थको मोक्षकी प्राप्ति न होउ परन्तु कर्मके अधिकार होनेसे कर्मों करके जे लोकहोते हैं तिनकेबने रहने से सर्वथा नाशकी आशंका नहीं संभवहोती और जो सबकर्म उसने मोक्ष हीके लिये ईश्वरमें समर्पण किये हैं इससे मोक्ष न होनेसे नाशकी आशंका ठीकहीहै ऐसा जो कहाथा तिसका यहउत्तरहै कि यद्यपि मोक्ष न होने में समर्पित कर्मोंकी निष्फलता तुम्हारी दृष्टिसेरहो परन्तु पहिले कियेहुये जे कर्महैं और आगेभी कर्मके अधिकार होनेसे गृहस्थमें सर्वथा फलकेनहीं होनेका असंभवसे दोनों लोकके नाशकी आशंकासे अर्जुनका प्रश्न संभव

नहींहोता और संन्यासीको तोकर्मका अधिकारहै नहीं इससे योगभ्रष्ट होनेसे इसलोकका भी सुखछूटा और मोक्षभी न हुआ तौ सर्वथा नाशकी संभावनासे अर्जुनका प्रश्न संभव होसक्ताहै तौअब फिर समुच्चयवादी यहकहताहै कि आपका कहना तबठीक होसक्ताहै जब स्वरूपमात्र करकै अर्थात् एक कर्ममात्रहीके छोड़नेसे संन्यासी और योगी भगवान्को अभीष्टहोय भगवान्तौ (अनाश्रितःकर्मफलम्) इत्यादि श्लोक करकै यह कहते हैं कि जो पुरुष कर्मफलका आश्रयणनकरै अर्थात् उसकी चाह न करै किंतु मनसे त्यागकरै और बाहरसे करनेके योग्य जोकर्महै तिसकोकरै वोहीतो संन्यासीहैऔर वोही योगीहै और अग्निके त्यागकरनेसे अर्थात्आग्निनिमित्त अग्निहोत्रादि कर्मके त्यागसे कुछसंन्यासी नहींहोताहै और बाहरकी क्रियाओंके त्यागमात्रसे योगीभी नहींहोताहै तौइसभगवान्के वचनसे यह सिद्ध हुआ कि निष्काम कर्मयोग करने वालेहीको ध्यानयोगका और ज्ञानका अधिकारहै तौ फिरज्ञान और कर्मइनका समुच्चय सिद्धहुआअर्थात् संग २ करनासिद्धहुआ और इसीनिष्काम कर्म्मकरने वालेमें अर्जुनका प्रश्नभी संभवहोताहै क्योंकि जब निष्काम अर्थात् कामनाको त्यागकरिकै वेदोक्तनित्य नैमित्तिक कर्ममें प्रवृत्तहुआ तौ उसके प्रभावसे अन्तःकरण शुद्धिहोने से योगाभ्यासमें प्रवृत्तिहुई तब ध्यानयोग करनेमें कोई कारणसे वह छूटगया तौ पूरापूरा योगफल अर्थात् मोक्ष उसको नहीं प्राप्तहुआ और कर्म्मफलकात्याग पहलेही करचुकाहै इससे स्वर्गादिककी आशनहीं तौ सर्वथा नाशकी संभावनासे अर्जुनका प्रश्नभी बनगया तौफिर समुच्चयबादीका मत ठीकहीहै तौ फिर अब सिद्धांतवादी कहताहै कि एक (अनाश्रितःकर्मफलम्) इसश्लोकके तात्पर्यको विनाजाने केवल बाहरके अर्थमात्रके देखने से आप अपनामत सिद्ध करतेहौ सो ठीकनहींहै क्योंकि [अनाश्रितःकर्मफलम्] इसश्लोकका ध्यानयोगके प्रतिबहिरंग जो कर्मतिसके फलकी इच्छा के त्यागमें तात्पर्यहै कि केवल अग्निहोत्रादि कर्मके त्यागकरने वालाही संन्यासी और योगीनहींहै किंतु जो कर्मकरने वालाभी कर्मफलकी आसक्तिको त्यागकरकै अन्तःकरणकी शुद्धिके अर्थ कर्मयोग करताहै वह भी संन्यासी और योगीही कहाताहै क्योंकि उसको अन्तःकरण शुद्धिद्वाराज्ञान योगमें प्रवृत्ति और ध्यान योगमें प्रवृत्ति भी अवश्य होनेवालीहै इसप्रकार वह कर्मफलका त्यागी इसश्लोक करकै स्तुतकिया जाताहै अर्थात् उसकी तारीफ कीजातीहै कुछएक इसवाक्य करकै कर्मफलके त्यागकी जोस्तुति है सो चौथाआश्रम जो संन्यास तिसका निषेध करनेवाली है यहकहना युक्ति सिद्धनहींहै अर्थात् संन्यास आश्रमके निषेधमें इसश्लोकका तात्पर्य नहींहै किन्तु कर्मफलके त्यागकी प्रशंसामें तात्पर्यहै और परमार्थमें सत्य जो निरग्नि अर्थात् अग्निसाध्य अग्निहोत्रादि कर्मरहित संन्यासी और क्रियारहित योगी तिसका जो श्रुति और स्मृति और पुराण इतिहास और

योगशास्त्रमेंप्रसिद्ध संन्यासित्व अर्थात् संन्यासीपना और योगित्वअर्थात् योगीपना तिसका भगवान् निषेधनहींकरतेहैंअर्थात् श्रुतिपुराणादिकोंमेंतोनिरग्निऔरक्रिया रहितही संन्यासी और योगीकहा तिसका निषेध इसश्लोकमें भगवान् नहींकरते हैं क्योंकि तिसका निषेधकरेंगे तो अपनेहीवचनोंसे विरोधका प्रसंगहोगा कौन वे वचनहैं तिनकोदिखातेहैं (सर्व्वकर्माणिमनसासंन्यस्यनैवकुर्व्वन् न कारयन्नास्ते मौनीसंतुष्टोयेनकेनचित् अनिकेतः स्थिर मतिः विहायकामान्यस्सर्वान्पुमांश्चरतिनिस्पृहः सर्वारम्भपरित्यागीतिच) संन्यासी सबकर्म्मोंको मनसेत्यागकरके नौदरवाजेका पुर जोमनुष्य शरीर तिस में न तो आप कुछकरताहै और न किसीसेकर्मकराताही है इसप्रकार वासकरताहै और संन्यासीमौनरहे और जो कुछ भिक्षामिले तिसीमें संतोषकरै और एक किसी स्थानमें नियतवास न करै और अपनी बुद्धिको स्थिररक्खे और सबकामनाओंकोत्यागकरै निःस्पृहहोके पृथ्वीमेंविचरै और सबकर्म्मोंके परित्यागकरनेका जिसकाशीलहोय तोइनसबश्लोकोंमें कर्म्मके त्यागकरनेवालेहीको भगवान्ने संन्यासीकहा और जो(अनाश्रितःकर्मफलं) इसश्लोकमें कर्मके त्यागकरनेवालेको संन्यासीपनाको मनाकरतेहोते तोपहिलेकहेहुए जेअपने वचनतिन्होंसेविरोधहोगा तिससेयोगमार्ग्ग पै चढ़नेकी इच्छाकरताहुआ जो विचारवान् गृहस्थ तिसका कियाहुआ जोफलकीप्राप्तिकीइच्छारहित अग्निहोत्रादि कर्म्म सो बुद्धिकी शुद्धिकेद्वारा ध्यानयोगके चढ़नेके साधनभावको प्राप्तहोताहै इससे उसके करनेवाला जो गृहस्थ सो संन्यासी है और योगी भी है इसप्रकार स्तुतकियाजाता है अर्त्थात् उसकी यहां तारीफकीजाती है इसआशयसे भगवान्कहते हैं कि (अनाश्रितइति) हे अर्जुन कर्म्मका जो फल तिसको नहीं आश्रयणकरताहुआ अर्त्थात् कर्म फलकी तृष्णासेरहित जो कर्म्मफलमें तृष्णायुक्तहोताहै सो कर्म्मफलकेआश्रयकरनेवाला लोकमेंकहाताहै और यहमुमुक्षु जो गृहस्थ सो वैसानहींहै इससे कर्म्मफलको अनाश्रितहै अर्त्थात् कर्म्मफलका आश्रय करनेवाला नहीं है इसप्रकारहोके कार्य्य जो करनेकेयोग्य जो कामना के कर्म्मसे विपरीत नित्य अग्निहोत्रादिकर्म्म तिसकोकरताहै जो कोई ऐसाअधिकारी कर्म्मके करनेवालाहै सो और कर्म्मकरनेवालों से श्रेष्ठहै इसहेतुसे वह संन्यासी है और योगी भी है क्योंकि संन्यासनाम परित्यागकाहै सो उसमें फलके त्यागकरनेसेही है इससे वहसंन्यासीहै और योगनाम चित्तकीएकाग्रताकाहै तो जो फलकीचाह न हुई तो सो भी उसमेंही है इससे वहयोगी भी है इसप्रकार जैसे लोकमेंक्रूरता आदि गुणोंकेदेखनेसे पुरुषभी सिंहकहाताहै तैसेही यहां संन्यासीके और योगीकेधर्म्म गृहस्थमें दिखाईपड़तेहैं इस गौणधर्म्मकरके वहगृहस्थ भी संन्यासी और योगीहीरूपसे माननीयहै और केवल निरग्नि और अक्रियही संन्यासी और योगीहोताहै ऐसा नहींमानना चाहिये अर्त्थात् दूरहुईहैं कर्म्मकीअंगभूत गृह्य१ आहवनीय२ दक्षिण ३ ये

तीनअग्नि जिससे वह निरग्निकहाताहै वोही संन्यासीहोय सो नहीं है और अग्निसाधनकेबिना भी तपोदानादिक्रिया जिसके न होयं वह अक्रियकहाताहै सो केवलयोगीनहीं है न कहो श्रुति और स्मृति योगशास्त्रमें तो निरग्नि और अक्रियकोही संन्यासी और योगीकहाहै और आप उनसेविरुद्ध और अप्रसिद्ध कैसे कहतेहो तिसपै कहते हैं कि यहदोषनहींहै क्योंकि कोई एकगुण वृत्तिकरके अर्थात् गौणीलक्षणा*करके दोनोंधर्म्म गृहस्थमेंभी सिद्धकरना भगवान्को अभीष्टहै इससे ऐसाकहाहै सो कैसेप्रकारसे सोकहते हैं कि कर्म्मफल संकल्पके त्यागरूपगुणके सम्बन्धसे गृहस्थकोभी संन्यासित्वहै अर्थात् संन्यासीपनाहै और योगकेअंगकरके कर्मानुष्ठानसे अर्थात् कर्म्मके करनेसे अथवा चित्त विक्षेपमें अर्थात् चित्तके चलायमान होनेमें कारण जो कर्म्मफलका संकल्प अर्थात् इनकर्म्मोंका ऐसा फल मुझकोहोय ऐसाविचारकरना तिसकेपरित्यागसे उसमेंयोगित्व अर्थात् योगीपनाहै १ ॥

यं सन्न्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
नह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥

शङ्करभाष्यम्।

गौणमुभयं न पुनर्मुख्यंसंन्यासित्वं योगीत्वञ्चाभिमतमित्येतमर्थं दर्शयितुमाह यं संन्यासमिति यं सर्व्वं कर्म्म तत्फलपरित्यागलक्षणं परमार्थं संन्यासं संन्यासमिति प्राहुः श्रुतिस्मृतिविदो योगं कर्मानुष्ठानलक्षणं तं परमार्थसंन्यासं विद्धि जानीहि हे पाण्डव कर्मयोगस्य प्रवृत्तिलक्षणस्य तद्विपरीतेन निवृत्तिलक्षणेन परमार्थसंन्यासेन कीदृशं सामान्यमंगीकृत्य तद्भाव उच्यत इत्यपेक्षायामिदमुच्यते अस्ति परमार्थसंन्यासेन सादृश्यकर्तृद्वारकं कर्मयोगस्य यो हि परमार्थसंन्यासी सत्यक्तसर्वकर्मसाधनतया सर्वकर्म तत्फलविषयं सङ्कल्पं प्रवृत्तिहेतुकामकारणं संन्यस्यति अयमपि कर्मयोगी कर्म्म कुर्वाण एव फलविषयं सङ्कल्पं संन्यस्यतीत्येतमर्थं दर्शयन्नाहनहि यस्मादसंन्यस्तोऽसङ्कल्पःऽसंन्यस्तोऽपरित्यक्तः फलविषयसंकल्पोऽभिसन्धिर्येन सोऽसंन्यस्तसंङ्कल्पः कश्चन कश्चिदपि कर्मी योगी समाधानवान् भवति न सम्भवतीत्यर्थः फलसंङ्कल्पस्य चित्तविक्षेपहेतुत्वात् तस्माद्यः कश्चन योगी कर्म्मी संन्यस्तफलसंकल्पो भवेत् स योगी समाधानवान् भवति न विक्षिप्तचित्तो भवति चित्तविक्षेपहेतोः फलसङ्कल्पस्य संन्यस्तत्वात् इत्यभिप्रायो योगाङ्गत्वेन कर्म्मानुष्ठानात् कर्मफलसङ्कल्पस्य वा चित्तविक्षेपहेतोः परित्यागात् योगित्वञ्चेति संन्यासित्वञ्चेत्याभिप्रेतमुच्यते एवं परमार्थसंन्यासकर्मयोगयोः कर्तृद्वारकं संन्यासंसामान्यमपेक्ष्य यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डवेति कर्मयोगस्य स्तुत्यर्थं संन्यासत्वमुक्तं ॥ २ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

सम्भवति मुख्ये संन्यासित्वादौ किमिति गौणमुभयमभीष्टमित्याशङ्क्य मुख्यस्य क

*जिस कारणसे जो शब्द किसीअर्थमें प्रसिद्धहै उसकारणके नहीं होनेमें भी उसके गुणोंके देखनेसे और अर्थमें भी उसशब्दका प्रयोग जहांहोय उसको गौणीलक्षणा कहतेहैं जैसे जातिरूप कारणसे सिंहशब्द प्रसिद्धहै और मनुष्यमें सिंहजातिके नहींहोनेमें भी क्रूरताआदि सिंहके गुणके देखनेसे मनुष्यमें सिंहशब्दका प्रयोगहोता है ॥

र्मण्यसम्भवाद्गौणमेव स्तुतिसिद्ध्यर्थं तदिष्टमित्याह न पुनरिति चित्तव्याकुलत्वहेतु कामना त्यागाच्चित्तसमाधानसिद्धेर्योगित्वं कर्मिणोपि युक्तं संन्यासित्वं तु तस्य विरुद्ध मितिशंकमानं प्रत्युक्तेऽर्थे श्लोकमवतारयति इत्येतमिति परमार्थसंन्यासं प्राहुरिति स म्बन्धः इतीत्थं संन्यासस्य प्रामाणिकाभ्युपगतत्वादितीतिशब्दो योज्यो योगं फलतृष्णां परित्यज्य समाहितचेतस्तयेति शेषः यदुक्तं संन्यासित्वं योगित्वंच गृहस्थस्य गौणमि ति तदुत्तरार्द्धयोजनया प्रकटयितुमुत्तरार्द्धमुत्थापयति कर्मयोगस्येति कर्मयोगस्य परमा र्थसंन्यासेन कर्तृद्वारकं साम्यमुक्तं व्यक्तं करोति योहीति त्यक्तानि सर्वाणि कर्माणि सा धनानि च येन स तथोक्तस्य भावस्तत्ता तया सर्वं कर्मविषयं तत्फलविषयञ्च संकल्पं त्यजतीत्यर्थः संकल्पत्यागे तत्कार्यकामत्यागः तत्त्यागे तज्जन्यप्रवृत्तित्यागश्च सिध्य तीत्यभिसन्धाय विशिनष्टि प्रवृत्तीति कर्मिण्यपि यथोक्तसंकल्पसंन्यासित्वमस्तीत्याह अ यमपीति तदपरित्यागे व्याकुलचेतस्तया कर्मानुष्ठानस्यैव दुःशक्यत्वादित्यर्थः उक्तमेव साम्यं व्यक्तीकुर्वन् व्यतिरेकं दर्शयति इत्येतमिति फलसंकल्पापरित्यागे किमिति समा धानवत्ताभावस्तत्राह फलेति व्यतिरेकमुखेनोक्तमर्थमन्वयमुखेनोपसंहरति तस्मादिति हि शब्दार्थस्य यस्मादित्युक्तस्य तस्मादित्यनेन सम्बन्धः कर्मिणं प्रति यथोक्तविधौ हेतुम द्भावमभिप्रेत्य द्वितीयविधौ हेतुमाह चित्तविक्षेपेति पूर्वश्लोके पूर्वोत्तरार्द्धाभ्यामुक्तमनु वदति एवमिति ॥ २ ॥

स्वामिकृतटीका ।

कुत इत्यपेक्षायां कर्मयोगस्यैव संन्यासत्वं प्रतिपादयन्नाह यमिति यं संन्यासं प्राहुः प्रकर्षेण श्रेष्ठत्वेनाहुः संन्यास एवात्यरेचयदित्यादि श्रुतय इति केवलात् फलसंन्यासाद्धे तोर्योगमेव तं जानीहि कुत इत्यपेक्षायामितिशब्दोक्तो हेतुर्योगेऽप्यस्तीत्याह नहीति न संन्यस्तः फलसंकल्पो येन स कर्मनिष्ठो ज्ञाननिष्ठो वा कश्चिदपि योगी नहि भवति अतः फलसंकल्पत्यागादेव चित्तविक्षेपाभावात् योगी च भवत्येव स इत्यर्थः ॥ २ ॥

नवलभाष्य।

अब पूर्व्व श्लोकमें गौण जो संन्यास और योग अर्त्थात् संन्यास और योगकेगुणोंके देखनेहीसे प्रवृत्त जे संन्यास और योग तिन्हींकाहीग्रहण भगवान्को अभिमत है और मुख्यप्रसिद्ध जे कर्म्ममात्रकेत्यागसे संन्यासयोग तिन्होंका ग्रहणनहीं है इसअर्त्थको दिखानेको भगवान् कहतेहैं कि (यंसंन्यासमिति) हे अर्जुन श्रुतिस्मृतिके जाननेवालेपुरुष जिसफलसहितकर्मों के त्यागको अर्त्थात् जिस परमार्त्थ संन्यासको संन्यास ऐसा कहते हैं तिस परमार्त्थ संन्यासको तुम कर्म्मानुष्ठानरूप योगजानौ कदाचित् अर्जुनकहै कि कर्मयोग तौ प्रवृत्तिरूपहै अर्त्थात् इन्द्रादिकोंकी शास्त्रविहित व्यापारमें प्रवृत्तिकराना और सबव्यापारोंसे इन्द्रियादिकोंकी निवृत्तिकरानेको संन्यासकहते हैं तौदिनरात्रिकेतुल्यइनदोनोंको विरोधहुआ फिर कौनधर्म्मकरके समताहै जिससे दोनोंकाअभेद भगवान्कहतेहैं तिसपै कहते हैं कि कर्त्ताके द्वारा दोनोंका सादृश्य सम्भवहोताहै अर्त्थात् दोनोंकेकरनेवाले एकहीसे हैं क्योंकि जो परमार्त्थसंन्यासी है सो सबकर्मोंके साधनोंकोत्यागसे प्रवृत्तिमें

कारण और कामनामें कारणभूत जो सबफलसहित कर्म्मकरनेका संकल्प तिसकोत्यागदेताहै और कर्म्मयोगी भी कर्म्मोंको करताहीहुआ सब कर्म्म फलोंकेसंकल्पको त्यागकरताहै इसीअर्थको दिखातेहुयेकहते हैं कि जिससे हेअर्जुन नहींत्यागाकियाहै फलकासंकल्प अर्थात् फलमेंप्रीति जिससे ऐसा कोई कर्म्मकरनेवाला योगी नहींकहाताहै अर्थात् तबतक समाहित चित्त नहींहोता नाम एकाग्रचित्तनहींहोताहै क्योंकि जबतक कर्म्मफलोंकीइच्छा है तबतक चित्त चलायमानहीरहेगा तिससे जो कर्म्मके करनेवाला फल संकल्पको त्यागनहींकरता तबतक कर्मीहीकहाताहै और जब कर्म्मफलोंके संकल्पको त्यागकरता है तभी कर्म्मयोगी कहाता है अर्थात् फिर वह चित्त समाधानयुक्तही रहताहै कभी विक्षिप्त चित्त नहीं होता क्योंकि चित्तविक्षेप का कारण जो फलसंकल्प उसको तौ वह त्यागहीकरचुकाहै योगकेअंगक- रके अर्थात् योगकीसिद्धिकेलिये कर्म्मकेकरनेसे और चित्तविक्षेपमें कार- णभूत जो फलसंकल्प तिसके त्यागकरनेसे योगीपनाभी उसमें है और सं- न्यासीपना भी है यहअभिप्राय भगवान्का है इसप्रकार परमार्त्थ संन्यास और कर्म्मयोग इनदोनोंको कर्तृद्वारा समानताको आश्रयणकरके (यंसं- न्यासमिति) इसश्लोककरके कर्म्मयोगकी स्तुतिकेलिये संन्यासता भगवा- न् ने कही ॥ २ ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्मकारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

ध्यानयोगस्य फलनिरपेक्षः कर्म्मयोगी बहिरङ्गसाधनमिति तं संन्यासत्वेन स्तुत्वाऽधुना कर्म योगस्य ध्यानयोगसाधनत्वं दर्शयति आरुरुक्षोरिति आरुरुक्षोरारोढुमिच्छतः अनारूढस्य ध्यानयोगेऽवस्थातुमशक्तस्येवेत्यर्थः कस्यतस्यारुरुक्षोर्मुनेः कर्मफलसंन्यासिनि इत्यर्थः किमारु- रुक्षोर्योगं कर्मकारणं साधनमुच्यते योगारूढस्यपुनस्तस्यैव शम उपशमः सर्वकर्मभ्यो निवृत्तिः कारणं योगारूढत्वस्य साधनमुच्यत इत्यर्थः यावद्यावत् कर्मभ्य उपरमते तावत्तावन्निरायासस्य जितेन्द्रियस्य चित्तं समाधीयते तथा सति सझटिति योगारूढो भवति तथाचोक्तं व्यासेन नैता दृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्तं यथैकता शमता सत्यता च शीलं स्थितिर्दण्डनिधानमार्जवं ततस्तत श्चोपरमः क्रियाभ्य इति ॥ ३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

परमार्थसंन्यासस्य कर्मयोगान्तर्भावे कर्मयोगस्यैव सदा कर्तव्यत्वमापद्येत तेनेतर स्यापि कृतत्वासिद्धेरित्याशङ्कोक्तानुवादपूर्वकमुत्तरश्लोकतात्पर्यमाह ध्यानयोगस्येति भा विन्या वृत्त्या मुनेर्योगमारोढुमिच्छोरिष्यमाणस्य योगारोहणस्य कर्महेतुश्चेदपेक्षितं यो गमारूढस्यापि तत्फलप्राप्तौ तदेव कारणं भविष्यति तस्य कारणत्वे क्लृप्तशक्तित्वादित्या शंक्याह योगारूढस्येति अनारूढस्येत्येतस्यैवार्थं स्फुटयति ध्यानेति मुनित्वं कर्मफल संन्यासित्वमौपचारिकमित्याह कर्मफलेति साधनं चित्तशुद्धिद्वारा ध्यानयोगप्राप्तीच्छाया

मिति शेषः तस्येतिप्रकृतस्य कर्मिणो ग्रहणं एवकारो भिन्नक्रमः शमशब्देन सम्बध्यते क स्यान्ययोगव्यच्छेदेन शमो हेतुरिति तत्राह योगारूढत्वस्येति सर्वव्यापारोपरमरूपोपश मस्य योगारूढत्वेविवृणोति यावद्यावदिति सर्वकर्मनिवृत्तावायासाभावाद्वशीकृतस्येन्द्रि यग्रामस्य चित्तसमाधाने योगारूढत्वं सिध्यतीत्यर्थः सर्वकर्मोपरमस्य पुरुषार्थसाधनत्वे पौराणिकीं सम्मतिमाह तथाचेति एकता सर्वेषु भूतेषु वस्तुनो द्वैताभावोपलक्षितत्वमिति प्रतिपत्तिः शमता तेष्वेवौपाधिकविशेषेऽपि स्वतो निर्विशेषत्वधीः सत्यता तेषामेव हित वचनं शीलं स्वभावसम्पत्तिः स्थितिः स्थैर्यं दण्डनिधानमहिंसनं आर्जवमवक्रत्वं क्रि याभ्यः सर्वाभ्यः सकाशादुपरतिश्चेत्येतदुक्तं सर्वं यथा यादृशमेतादृशं नान्यद् ब्राह्मण स्य वित्तं पुरुषार्थसाधनमस्ति तस्मादेतदेवास्य निरतिशयं पुरुषार्थसाधनमित्यर्थः ॥ ३ ॥

स्वामिकृतटीका।

तर्हि यावज्जीवं कर्मयोग एव प्राप्त इत्याशङ्क्य तस्यावधिमाह आरुरुक्षोरिति ज्ञान योगमारोढु प्राप्तुमिच्छोः पुंसस्तदारोहे कारणं कर्मोच्यते चित्तशुद्धिकरत्वात् ज्ञानयोग मारूढस्यतु तस्यैव ज्ञाननिष्ठस्यशमोयो विक्षेपकर्मोपरमो ज्ञानपरिपाकेकारणमुच्यते॥३॥

नवलभाष्य।

फलरहित जो कर्म्मयोग सो ध्यानयोगका वहिरंग साधनहै इसकारण से संन्यासरूपकरके उसकी स्तुतिकरके अब इससमयमें कर्मयोगको ध्यान योगकी साधनरूपता दिखातेहुये अर्त्थात् कर्म्मयोग ध्यानयोगका साधनहै इसअर्थको दिखातेहुये भगवान् कहतेहैं कि आरुरुक्षोरिति हे अर्जुन योग मार्गमें चढ़नेकीइच्छा जिसको अर्त्थात् योगकेप्राप्तहोनेकी इच्छा जिसकी ऐसा जो ध्यानयोगमें स्थितहोनेको अशक्त कर्मफलत्यागी मुनि तिस कर्म ही कारणहै अर्त्थात् निष्कामकर्महीं साधनहै और फिर वही जब योगको प्राप्तहोजाय तो फिर उसको ध्यानयोगमें स्थिरताके लिये शमहीकारण है अर्त्थात् सबकर्मोंसे निवृत्तिहीकारणहै नाम साधनहै जितनेजितने कर्मोंसे निवृत्त होताजाताहै तितने तितनेहीक्लेशसे छूटाहुआ जो जितेन्द्रिय योगी उसकाचित्त फिर समाधिमें स्थितहोजाताहै सोई श्रीव्यासजीने महाभारत में कहाहै कि (नैतादृशंब्राह्मणस्यास्तिवित्तं यथैकताशमतासत्यताच शीलं स्थितिर्दण्डनिधानमार्जवंततस्ततश्चोपरमःक्रियाभ्यइति) अर्थ इसआठ प्रकारकेधनसे और कोई ब्राह्मणका उत्तमधन नहीं है जैसा प्रथम तो सब जगह आत्मा एकत्वज्ञानहोना १ और फिर चित्तकी शांतिहोना २ और फिर सब प्राणियोंसे हितका वचन कहना ३ और अच्छास्वभावहोना ४ और चित्तकी स्थिरताकाहोना ५ औरकिसी प्राणीकी हिंसानहींकरनी ६ और हृदय की कोमलता अर्थात् दयालुताहोनी ७ और तौनतौन कर्मोंसे निवृत्तहोना अर्थात् जहांतक बनै तहांतक सबजगहसे चित्तको हटाइकै परमेश्वरमें लगाना ८ जैसेयह आठप्रकारकाधन ब्राह्मणको पुरुषार्थ सिद्धिकरनेवालाहै तैसा और कोई धन नहींहै ३ ॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्म्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

अथेदानीं यदा योगारूढो भवतीत्युच्यते यदेति यदा समाधीयमानचित्तो भवति योगी हीन्द्रियार्थेषु इन्द्रियाणामार्थाः शब्दादयस्तेष्विन्द्रियार्थेषु कर्मसु च नित्यनैमित्तिककाम्यप्रतिषिद्धेषु प्रयोजनाभावबुद्धया नानुषज्जतेऽनुषङ्गं कर्त्तव्यताबुद्धिं न करोतीत्यर्थः सर्वसंकल्पसंन्यासी सर्व्वान् संकल्पानिहामुत्रार्थकामहेतून् संन्यसितुं शीलं अस्येति स सर्वसंकल्पसंन्यासी योगरूढ प्राप्तयोग इत्येतत्तदा तस्मिन् काले योगारूढ उच्यते सर्वसंकल्पसंन्यासीति वचनात् सर्वांश्च कामान् कामात्मकान् सर्वाणि च कर्माणि संन्यसेदित्यर्थः संकल्पमूला हि सर्वे कामाः संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः कामं जानामि ते मूलं संकल्पात्वं हि जायसे न त्वां संकल्पयिष्यामितेन मे न भविष्यसि इत्यादिस्मृतेः सर्वकामपरित्यागे च सर्वकर्म्मसंन्यासः सिद्धो भवतित्यथा कामोभवति तत्क्रतुर्भवति तत्कर्म्म कुरुतेइत्यादि श्रुतिभ्यो यद्यद्धि कुरुते कर्म तत्तत् कामस्य चेष्टितमित्यादिस्मृतिभ्यश्च न्यायाश्च नहि सर्वसंकल्पसन्न्यासे कश्चित् स्पन्दितुमपि सक्तस्तस्मात् सर्वसंकल्पसंन्यासीति वचनात् सर्वान् कामान्सर्वाणि कर्माणि च त्याजयति भगवान् ॥४॥

आनंदगिरिकृतटीका।

योगप्राप्तौ कारणकथनानन्तरं तत्प्राप्तिकालं दर्शयितुं श्लोकान्तरमवतारयति अथेति समाधानावस्था यदेत्युच्यते अतएवोक्तं समाधीयमानचित्तो योगीति शब्दादिषु कर्मसु चानुषंगस्य योगारोहणप्रतिबन्धकत्वात्तदभावस्य तदुपायत्वं प्रसिद्धमिति द्योतयितुं हीत्युक्तं सर्वेषामपि संकल्पानां योगारोहणप्रतिबन्धकत्वमभिप्रेत्य सर्वसंकल्पसंन्यासीत्यत्र विवक्षितमर्थमाह सर्वानिति सर्वसंकल्पसंन्यासेऽपि सर्वेषां कामानां कर्मणांच प्रतिबन्धकत्वसम्भवे कुतो योगप्राप्तिरित्याशंक्याह सर्वेति सर्वसंकल्पपरित्यागे यथोक्तविध्यनुष्ठानमयत्नसिद्धमिति मन्वानः सन्नाह संकल्पेति मूलोन्मूलने च तत्कार्यनिवृत्तिरयत्नसुलभेति भावः तत्र प्रमाणमाह संकल्पमूल इति तत्रान्वयव्यतिरेकावभिप्रेत्योक्तमुपपादयति कामेति सर्वसंकल्पाभावे कामाभाववत् कर्माभावस्य सिद्धत्वेऽपि कर्मणां कामकार्यत्वात् तन्निवृत्तिप्रत्युक्तामपि निवृत्तिमुपन्यस्यति सर्वकामेति यदुक्तं कर्मणां कामकार्यत्वं तत्र श्रुतिस्मृती प्रमाणयति स यथेति स पुरुषः स्वरूपमजानन् यत्फलकामो भवति तत्साधनमनुष्ठेयतया बुद्धौ धारयतीति तत् क्रतुर्भवति यच्चानुष्ठेयतया गृह्णाति तदेव कर्म वहिरपि करोतीति कामाधीनं कर्मोक्तमिति श्रुत्यर्थः कामजन्यं कर्मेत्यन्वयव्यतिरेकसिद्धमिति द्योतयितुं स्मृतौ हि शब्दः न्यायमेव दर्शयति नहि सर्वसंकल्पेति स्वापादावदर्शनादित्यर्थः नित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठानं दूरनिरस्तमिति वक्तुमपिशब्दः श्रुतिस्मृतिन्यायसिद्धमर्थमुपसंहरति तस्मादिति ॥ ४ ॥

स्वामिकृतटीका।

कीदृशोऽयं योगारूढो यस्य शमः कारणमुच्यत इत्यत्राह यदेति इन्द्रियार्थेष्विन्द्रियभोगेषु तत्साधनेषु च कर्मसु यदा नानुषज्जते आसक्तिं न करोति तत्र हेतुः आसक्तिमूलभूतान् सर्वान् भोगविषयान् कर्मविषयांश्च संकल्पान् संन्यसितुं त्यक्तुं शीलं यस्य स तदा योगारूढ उच्यते ॥ ४ ॥

अब किस अवस्थामें योगारूढ़ पुरुष होताहै अर्थात् कब योग को प्राप्त होताहै और कैसे जानाजाय किअब योगको प्राप्तहुआ इसआकांक्षामें भगवानकहते हैं कि (यदाहीति) हे अर्जुन जिससमयमें समाधिमें स्थितहुआहै चित्त जिसका ऐसा जो योगी सो इन्द्रियार्त्थ जे शब्दादिविषय तिनकविषे और नित्यनैमित्तिक काम्यप्रतिषिद्ध जे चारप्रकारकेकर्म तिन्होंमें अनुषंगन करै अर्थात् जे करनेकेयोग्यहैं इससे इनको करनाचाहिये ऐसीबुद्धिको न करै इसीप्रकार विषयोंमेंभोग बुद्धिको न करै और फिर सबसंकल्पोंकोत्याग करनेका है स्वभाव जिसका अर्थात् इसलोकके और परलोकके जे विषय तिनकीप्राप्तिमें कारण जे बुद्धिकेव्यापार अर्थात् इन२पदार्त्थोंकोमैंइनइन उपायोंकरके प्राप्तहोउंगा ऐसे प्रकारके जे हजारोंतरहके बुद्धिकेव्यापार जिनको व्यवहारीलोग पहिले मनमें शोचाकरते हैं पीछे कर्म्मकरते हैं वे संकल्पकहाते हैं तिन सबसंकल्पोंको जिससमयमें यह योगी त्यागदेवे तब जाननाचाहिये कि अब योगारूढ़हुआ अर्थात् योगकोप्राप्तहुआ और सबसंकल्पोंका त्यागकरनेवालाहोय इसकहनेसे यह जानागया कि सबकामोंको और सब इच्छाकियेजाते जे विषय तिन्होंको और उनविषयोंके उपायभूत जितनेकर्म हैं तिन्होंको त्यागदेय क्योंकि जितनेकाम हैं ते सब संकल्पही हैं मूलकारण जिन्होंकाऐसे हैं सो स्मृतियोंमेंकहा भीहै कि (संकल्पमूलःकामो वैयज्ञाःसंकल्पसम्भवाः कामजानामितेमूलंसंकल्पात्वंहिजायसे नत्वांसंकल्पयिष्यामितेनत्वंनभविष्यसि) अर्थ संकल्पहै मूलकारण जिसका ऐसाकाम है अर्थात् जिससमयमें यहपुरुष बिषयोंका मनसेध्यानकरताहै उससमय में मनके विषयोंके संयोगसे काम उत्पन्नहोताहै नाम उनविषयोंकी प्राप्ति कीइच्छाहोती है उसीसे कामकहते हैं तब जब विषयकेध्यानकरने समयमें इसपदार्त्थमें हमको सुखहोगा ऐसा जब संकल्पहुआ तभी उसमें काम उत्पन्नहुआ कि यहपदार्थ किसीप्रकारसे हमकोमिलता तौइसप्रकारसे संकल्पहै कारण जिसमें ऐसा कामहुआ और यज्ञभी सम्पूर्णसंकल्पहीसे उत्पन्नहुये हैं क्योंकि पहिले मनमें ऐसा विचारहोताहै कि यहहमारा इष्टसाधन है अर्थात् जो हमाराअभीष्टहै तिसकी सिद्धिकरनेवालाहै जब ऐसाबिचार रूप संकल्पहुआ तिसकेउपरान्त फिरयज्ञकरताहै इसरीतिसे यज्ञभीसंकल्प सेउत्पन्नहोते हैं और हे काम तुम्हारामूल अर्थात् जड़ हमजानते हैं कितुम संकल्पसेउत्पन्नहोतेहौ इससेतुम्हारेविषयका हम संकल्पहीनहींकरैंगेतिससे तुम नहींहोउगे इसस्मृतिके प्रमाणसे सबकामोंके परित्यागमें सबकर्मोंका त्याग सिद्धहोताहै अब कामकेपरित्यागसे सबकर्मोंको त्यागहोता है इसमें छान्दोग्यउपनिषद्की श्रुति भी प्रमाणहै कि (सयथाकामोभवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म्मकुरुते) अर्थ जैसी कामनाकरकेयुक्त पुरुषहोताहै वह वैसाहीसंकल्प बुद्धिमेंकरताहै अर्थात् इसउपायकरके यहकामहोगा इससे यहीकाम करनाचाहिये ऐसा निश्चय बुद्धिमेंकरताहै फिर बाहर भी

वैसाहीकर्म्म करताहै यहश्रुतिकाअर्थ है और स्मृतिमें भी ऐसाकहा कि यद्यद्धिकुरुतेकर्मतत्तत्कामस्यचेष्टितम् इति अर्थ जो २ कर्म पुरुषकरता है सो सबकामका करायाहुआहै और युक्तिसेभी यहीपायाजाताहै जोभीतर मनही में सबसंकल्पोंका त्यागहोजाय अर्थात् कोईतरहकाविचार न होय तौ यह उँगली भी नहींउठासक्ताहै तिससे(सर्वसंकल्पसंन्यासी)इसवचनकेकहनेसे सबकामोंका और सबकर्मोंकात्याग भगवान्करातेहैं ऐसानिश्चितहुआ ४ ॥

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यदैवं योगारूढस्तदा तेनात्मनोद्धृतो भवति संसारादनर्थव्रातादत उद्धरेदिति उद्धरेत् संसार सागरे निमग्नमात्मनात्मानं तत उत ऊर्ध्वं हरेत् उद्धरेत् योगारूढतामापादयेदित्यर्थः नात्मानमवसादयेन्नाधो नयेत् आत्मैव हि यस्मादात्मनोबन्धु र्नह्यन्यः कश्चिद् बन्धुर्यः संसारमुक्तये भवति बन्धुरपि तावन्मोक्षं प्रति प्रतिकूल एव स्नेहादि बन्धनायतनत्वात्तस्माद्युक्तमवधारणमात्मैव ह्यात्मनो बन्धुरिति आत्मैव रिपुः शत्रुर्योऽन्योपकारी बाह्यः शत्रुः सोऽप्यात्मप्रयुक्त एवेति युक्तमेवावधारणमात्मैव रिपुरात्मन इति ॥ ५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

योगारूढस्य किं स्यादित्याशंक्याह यदैवमिति योगारोहस्य दृष्टादृष्टोपायैरवश्यकर्तव्यतायै मुक्तिहेतुत्वं तद्विपर्ययस्याधः पतनहेतुत्वंच दर्शयति अत इति तत्र हेतुमाह आत्मैव हीति उद्धरणापेक्षामात्मनः सूचयति संसारेति संसाराद्रूर्ध्वं हरणं कीदृगित्याशङ्क्याह योगारूढतामिति योगप्राप्यावनास्थातुं न कर्तव्येत्याह नात्मानमिति योगप्राप्त्युपायश्चेन्नानुष्ठीयते तदा योगाभावे संसारपरिहारासम्भवादात्माधो नीतः स्यादित्यर्थः नन्वात्मानं संसारे निमग्नं तदा यो बन्धुस्तस्मादुद्धरिष्यति नेत्याह आत्मैव हीति कुतोऽवधारणमन्यस्यापि प्रसिद्धस्य बन्धोः सम्भवात्तत्राह नहीति अन्यो बन्धुः सन्नपि संसारमुक्तये न भवतीत्येतदुपपादयति बन्धुरपीति स्नेहादीत्यादिशब्दात्तदनुगुणप्रवृत्तिविषयत्वं गृह्यते आत्मातिरिक्तस्यापि शत्रोरपकारिणः सुप्रसिद्धत्वादवधारणमनुचितमित्याशंक्याह योऽन्य इति ॥ ५ ॥

स्वामिकृतटीका।

अतो विषयासक्तित्यागे मोक्षं तदासक्तौ च बन्धं पर्यालोच्य रागादिस्वभावं त्यजेदित्याह उद्धरेदिति आत्मना विवेकयुक्तेनात्मानं संसारादुद्धरेत् नत्ववसादयेदधोनयेत् हि यत आत्मैव मनः संगादुपरत आत्मनः स्वस्य बन्धुरुपकारकः रिपुरपकारकः ॥ ५ ॥

नवलभाष्य।

और जो योगको प्राप्तनहोय तौ उसपुरुष करकै अनर्थ समूह जो संसार तिससे अपना आत्मा उद्धारनहीं कियाजाताहै किन्तु जो योगीहै सो अपने आत्माका उद्धार करसक्ताहै इस आशयसे कहतेहैं कि (उद्धरेदिति)हेअर्जुन संसार सागरमें डूबरहा जो अपना आत्मा तिसको पुरुषउस संसार सागर

से उद्धारकरै अर्थात् योगको प्राप्तहोय और अपने आत्माको अवसादन न करै अर्थात् नीचेके लोकको प्राप्तनकरै कदाचित् कहौ दुःखित देखिकै कोई बन्धुउस दुःखसे छुड़ादेगा सो यहआशा नहीं करना इस आशयसे कहते हैं कि हे अर्जुन जिससे अपना आत्माही अपना बन्धुहै दूसराबन्धु कोई संसार बन्धनसे छुड़ानेवाला नहींहै और प्रत्यक्षबन्धु तौउलटा स्नेहका बन्धन के कारणसे मोक्षमार्गके प्रतिबन्धक है अर्थात् विघ्नरूपही है तिससे युक्तही यहां निश्चयार्थ एवशब्दका प्रयोग करकै कहा कि आत्माही अपनाबन्धुहै और आत्माही अपनाशत्रुहै और कोई अन्यनहीं शत्रुहै और जो बाहरका शत्रुभी है सो भी आत्माहीके कारणसे होताहै इससे यहभी कहना युक्तहीहै कि अपना आत्माही अपनारिपु है ॥ ५ ॥

बन्धुरात्माऽत्मनस्तस्य येनैवाऽत्मात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्त्तेताऽत्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

आत्मैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन इत्युक्तं तत्र किं लक्षण आत्मा आत्मनो बन्धुः किं लक्षणोवा आत्मा आत्मनो रिपुरित्युच्यते बन्धुरितिबन्धुरात्मात्मनस्तस्य तस्यात्मनः स आत्माबन्धुर्येनात्मनाऽत्मैव जितः आत्मकार्य्यकारणसंघातो येन जितो वशीकृतो जितेन्द्रिय इत्यर्थ अनात्मानस्तु अजितात्मनस्तु शत्रुत्वे शत्रुभावे वर्त्तेत शत्रुवत् यथाऽनात्मा शत्रुरात्मनोऽपकारी तथाऽत्मात्मनोऽपकारे वर्त्तेत इत्यर्थः ॥ ६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

उक्तमनूद्यप्रश्नपूर्वकं श्लोकान्तरमवतारयति आत्मैवेत्यादिना एकस्यैवात्मनो मिथोविरुद्धं बन्धुत्वं रिपुत्वंच लक्षणभेदमन्तरेणायुक्तमिति चोदिते वशीकृतसंघातस्यात्मानं प्रतिबन्धुत्वमितरस्य शत्रुत्वमित्यविरोधं दर्शयति बन्धुरित्यादिना वशीकृतसंघातस्य विक्षेपाभावादात्मनि समाधानसम्भवादुपपन्नमात्मानं प्रतिबन्धुत्वमिति साधयति तस्येति अवशीकृतसंघातस्य पुनर्विक्षेपोपपत्तेरात्मनि समाधानायोगादात्मानं प्रति शत्रुभावे प्रसिद्धशत्रुवत् आत्मैव शत्रुत्वेन वर्त्तेतेत्युत्तरार्द्धं व्याकरोति अनात्मन इति दृष्टान्तं व्याचष्टे यथेति उक्तदृष्टान्तवशादवशीकृतसंघातः स्वस्य हितानाचरणादात्मनं प्रति शत्रुरेवेति दार्ष्टान्तिकमाह तथेति ॥ ६ ॥

स्वामिकृतटीका।

कथम्भूतस्यात्मैवबन्धुः कथंभूतस्य चात्मैव रिपुरित्यपेक्षायामाह बन्धुरिति येनात्मनैवात्मा कार्यकरणसंघातरूपो जितो वशीकृतस्तस्य तथाभूतस्यात्मैव बन्धुः अनात्मनोऽजितात्मनस्तु आत्मैवात्मनः शत्रुत्वे शत्रुवदपकारित्वे वर्त्तेत ॥ ६ ॥

नवलभाष्य।

अपना आत्माही अपनाबन्धुहै और आत्माही शत्रुहै यहकहा तहां कैसा आत्माबन्धुहै और कैसा आत्माशत्रुहै इस आकांक्षामें कहतेहैं कि (बन्धुरि-

ति) हे अर्जुन जिसपुरुषने अपने आत्माही करके कार्य करणसंघातरूप अर्थात् मनइन्द्रिय सहित शरीररूप आत्मावशीभूत कियाहै अर्थात् जो जितेन्द्रियहै तिसपुरुषका तो आत्माबन्धुहै और जिसने अपने आत्माको चित्त सहित इन्द्रिय समूहको नहीं जीताहै नहीं वशमें कियाहै उसपुरुषका वह आत्माशत्रुके तुल्यवर्तताहै अर्थात् जैसेकोई बाहरका शत्रु अपना तिरस्कार करताहै तैसेवहभी अपना तिरस्कार करताहै अपने वास्तव स्वरूपमें चित्त समाधान नहीं होनेदेताहै यही उसकी शत्रुताहैऔर यही तिरस्कारहै॥६॥

जिताऽत्मनः प्रशान्तस्य परमाऽत्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानाऽवमानयोः॥ ७॥

शङ्करभाष्यम्।

जितात्मनइति जितात्मनः कार्यकरणादिसंघात आत्मा जितो येन स जितात्मातस्य जितात्मनः प्रशान्तस्यपरमात्मा समाहितः साक्षादात्मभावेन वर्त्तत इत्यर्थः किञ्च शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानेऽवमानेच मानावमानयोः पूजापरिभवयोः समः स्यात् इत्यध्याहारः॥ ७॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

कथं संयतकार्यकरणस्य बन्धुरात्मेति तत्राह जितात्मन इति जितकार्यकरणसंघातस्य प्रकर्षेणोपरतबाह्याभ्यन्तरकरणस्य परमात्मा विक्षेपेण पुनःपुनरनभिभूयमानो निरन्तरं चिते प्रयत इत्यर्थः जितात्मानं संन्यस्तसमस्तकर्माणामधिकारिणं प्रदर्श्य योगांगानि दर्शयति शीतेति समः स्यादित्यध्याहारः पूर्वार्द्धं व्याचष्टे जितेत्यादिना न केवलं तस्य परमात्मा साक्षादात्मभावेन वर्तते किन्तु शीतोष्णादिभिरपि नासौ चाल्यते तत्त्वज्ञानादित्युत्तरार्द्धं विभजते किंचेति तेषु समः स्यादिति सम्बन्धः॥ ७॥

स्वामिकृतटीका।

जितात्मनः स्वस्मिन् बन्धुत्वं स्पष्टयति जितात्मन इति जित आत्मा येन तस्य प्रशान्तस्य रागादिरहितस्यैव परं केवलमात्मा शीतोष्णादिषु सत्स्वपि समाहित आत्मनिष्ठो भवति नान्यस्य यद्वा तस्य हृदि परमात्मा समाहितः स्थितो भवति॥ ७॥

नवलभाष्य।

और हेअर्जुन जो पुरुष जितात्माहै अर्थात् वशकियाहै मनइन्द्रिय सहित शरीरजिसने और इसीसे प्रशांतहुआहै चित्तजिसका ऐसेपुरुषको परमात्मा समाहित होताहै आत्मभाव करिके वर्तताहै उसका आत्मरूपहीहोता है और वहयोगी शीतउष्ण और सुखदुःख और अपने मान और अपमान अर्थात् बड़ीकोई पूजाकरै चाहै तिरस्कारकरै इनसबोंमें समानरहै॥७॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः॥ ८॥

शङ्करभाष्यम्।

ज्ञानेति ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा ज्ञानं शास्त्रोक्तपदार्थानां परिज्ञानंविज्ञानन्तुशास्त्रतोऽज्ञतानां तथैव स्वानुभवकरणं ताभ्यां ज्ञानविज्ञानाभ्यां तृप्तः संजातालंप्रत्यय आत्मान्तःकरणं यस्य स ज्ञान विज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थोऽप्रकम्पो भवति इत्यर्थः विजितेन्द्रियश्च य ईदृशो युक्तः समाहित इति स उच्यते कथ्यते स योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः लोष्टाश्मकाञ्चनानि समानि यस्य सः सम लोष्टाश्मकाञ्चनः॥ ८॥

आनंदगिरिकृतटीका।

चित्तसमाधानमेव विशिष्टफलञ्चेदिष्टं तर्हि कथम्भूतः समाहितो व्यवह्रियते तत्राह ज्ञानेति परोक्षापरोक्षाभ्यांज्ञानविज्ञानाभ्यां संजातोऽलं प्रत्ययोऽक्रियो हर्षविषादकामक्रोधादिरहितो योगी युक्तः समाहित इति व्यवहारभागी भवतीति पादत्रयव्याख्यानेन दर्शयति ज्ञानमित्यादिना स च योगी परमहंस परिव्राजकः सर्वत्रोपेक्षाबुद्धिरनतिशय वैराग्यभागीतिकथयति स योगीति॥ ८॥

स्वामिकृतटीका।

योगारूढस्य लक्षणं श्रैष्ठ्यं चोक्तमुपसंहरति ज्ञानेति ज्ञानमौपदेशिकं विज्ञानमपरोक्षानुभवस्ताभ्यां तृप्तो निराकांक्ष आत्मा चित्तं यस्य अतः कूटस्थो निर्विकारः अतएव विजितानीन्द्रियाणि येन अतएव समानानि लोष्टादीनि यस्य मृत्खण्डपाषाणसुवर्णेषु हेयोपादेयबुद्धिशून्यः स युक्तो योगारूढ इत्युच्यते॥ ८॥

नवलभाष्य।

और ज्ञान जो शास्त्रसे उत्पन्नहुआ बोध और विज्ञान जो अनुभव नाम आत्माका साक्षात्कार इन्हों करके तृप्त आनन्दयुक्त होरहाचित्त जिसका अर्थात् इस आनन्दके आगे जिसको किसी पदार्थकी इच्छाही नहीं उदयको प्राप्तहोती है और इसीसे कूटस्थ अर्थात् कहींसे चलायमान नहीं है और जीतीहैं इन्द्रियां जिसने ऐसाजो योगी सो युक्त अर्थात् समाहित चित्तकहा जाताहै नामसमाधि स्थित कहाताहै और वहीयोगी समानहै मट्टीकाढेला और पत्थर और सोनाजिसको ऐसाहोताहै॥ ८॥

सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थ द्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपिच पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥ ९॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च सुहृदिति सुहृदित्यादि श्लोकार्द्धमेकपदं सुहृदिति प्रत्युपकारमनपेक्ष्योपकर्त्ता मित्रं स्नेहवान् अरिः शत्रुः उदासीनो न कस्यचित् पक्षं भजते मध्यस्थो यो विरुद्धयोरुभयोर्हितैषी द्वेष्यः आत्मनो प्रियोबन्धुः सम्बन्धीत्येतेषु साधुषु शास्त्रानुवर्त्तिष्वपि च पापेषु प्रतिषिद्धकारिषु सर्वेष्वेतेषु समबुद्धिः कः किं कर्म्मेत्यव्यापृतबुद्धिरित्यर्थो विशिष्यते विमुच्यत इति वा पाठान्तरं योगारूढानां सर्वेषामयमुत्तम इत्यर्थः॥ ९॥

आनंदगिरिकृतटीका।

योगारूढस्य प्रशस्तत्वमभ्युपेत्य योगस्यांगान्तरं दर्शयति किंचेति पदच्छेदः पदार्थो

क्तिरिति व्याख्यानांगं सम्पादयति सुहृदितीति अरिर्नाम परोक्षमपकारकः प्रत्यक्षमप्रियो द्वेष्य इति विभागः समबुद्धिरिति व्याचष्टे कः किमिति प्रथमो हि प्रश्नो जातिगोत्रादिविषयः द्वितीयो व्यापारविषयः उक्तप्रकारेणाव्यापृतबुद्धित्वे सर्वोत्कर्षोव सर्वोपायविमोक्षो वा सिध्यतीत्याह विशिष्यत इति पाठद्वयेऽपि सिद्धमर्थं संगृह्य कथयति योगारूढानामिति॥ ९॥

स्वामिकृतटीका।

सुहृन्मित्रादिषु समबुद्धियुक्तस्तु ततोऽपि श्रेष्ठ इत्याह सुहृदिति सुहृत् स्वभावेनैव हिताशंसी मित्रं स्नेहवशेनोपकारकः अरिर्घातुकः उदासीनो विवदमानयोरुभयोरप्युपेक्षकः मध्यस्थो विवदमानयोरुभयोरपि हिताशंसी द्वेष्यो द्वेषविषयः बन्धुः सम्बन्धी साधवः सदाचाराः पापा दुराचाराः एतेषु समा रागद्वेषशून्या बुद्धिर्यस्य स तु विशिष्टः॥ ९॥

नवलभाष्य।

और हेअर्जुन जोयोगी सुहृद् और मित्र और वैरी और उदासीन और मध्यस्थ और द्वेष्य और वन्धुइनमें समवुद्धिहै अर्थात् जो बदलेका उपकार न चाहै और अपनेसंग उपकारकरै उसको सुहृद् कहतेहैं और जो अपने में प्रीतिकरै उसको मित्रकहते हैं और शत्रुको अरिकहते हैं और किसीका पक्षपात न करै उसको उदासीन कहते है और परस्परदोनों विरोधियोंका जो हितचाहै उसको मध्यस्थ कहतेहैं और जोअपनाको अप्रियहोय अर्थात् देखतेही मनराजी न होय उसको द्वेष्यकहतेहैं और जिससे कुछ सम्बन्धहोय उसकोबन्धुकहते हैं इनसबोंमें जिसकी समान वुद्धिहोय औ औरसाधु जो शास्त्रकीरीतिसे चलनेवाले और पापी जो शास्त्रसे विरुद्धचलनेवाले तिन्हों मेंभी जिसकी समान वुद्धिहोय सो सब योगियोंमें श्रेष्ठहै अर्थात् जातिगुण कर्मकरकै उनअधमोंमें जिसकी विषम दृष्टि नहोय किंतु सर्वत्र आत्मदृष्टि करकै समानही देखताहोय वह सबमें श्रेष्ठहै॥ ९॥

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥ १०॥

शङ्करभाष्यम्।

अतएव उत्तमफलप्राप्तये योगीति योगी ध्यानी युञ्जीत समादध्यात् सततं सर्वदात्मानमन्तःकरणं रहस्येकान्ते योगी गिरिगुहादौ स्थितः सन्नेकाकी असहायो रहसि स्थित एकाकी चेति विशेषणात् संन्यासं कृत्वेत्यर्थः यतचित्तात्मा चित्तमन्तःकरणमात्मा देहश्च संयतौ यस्य स यतचित्तात्मा निराशीर्वीततृष्णोऽपरिग्रहश्च परिग्रहरहित इत्यर्थः संन्यासित्वेऽपिसति त्यक्तसर्वपरिग्रहः सन् युञ्जीतेत्यर्थः॥ १०॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

यथोक्तविशेषणवतो योगारूढत्वभूतमत्वे योगानुष्ठाने प्रयतितव्यमित्यंगाभिधानान्तरं प्रधानमभिदधाति अतएवमिति आदरनैरन्तर्यदीर्घकालत्वं विशेषणत्रयं योगस्य सूचयति सततमिति तस्यैव पंचांगान्युपन्यस्यति रहसीतीत्यादिना सर्वदेत्यादरदीर्घकालयोरुपल

षणं प्रत्यगात्मानं व्यावर्त्तयति अन्तःकरणमिति गिरिगुहादावित्यादिशब्देन योगप्रति बन्धकदुर्जनादिविधुरो देशो गृह्यते विशेषणद्वयस्य तात्पर्यमाह रहसीति योगं युञ्जान स्य संन्यासिनो विशेषणान्तराणि दर्शयति यतेति सति संन्यासित्वे किमर्थंपरिग्रहग्र हणमर्थपुनरुक्तेरित्याशंक्य कौपीनाच्छादनादिष्वपि शक्तिनिवृत्त्यर्थमित्याह संन्यासि त्वेऽपीति ॥ १० ॥

स्वामिकृतटीका।

एवं योगारूढस्य लक्षणमुक्त्वेदानीं तस्य सांगं योगं विधत्ते योगीत्यादिना स योगी परमो मत इत्यन्तेन ग्रन्थेन योगी योगारूढ़ आत्मानं मनो युञ्जीत समाहितं कुर्यात् सततं निरन्तरं रहसि एकान्ते स्थितः सन् एकाकी संगशून्यः यतं चित्तमात्मा देहश्च य स्य निराशीर्निराकांक्षः अपरिग्रहः परिग्रहशून्यश्च ॥ १० ॥

नवलभाष्य।

जिससे ऐसायोगहै इससे उत्तमफलकी प्राप्तिके अर्थ योगाभ्यासकरै इस आशयसे कहते हैं कि (योगीति) हेअर्जुन योगी जोध्यान करनेवाला पुरुष सो पर्वतकी गुहाआदि एकांत देशमें स्थितहोके सहाय रहित अर्थात् अकेला सब कर्मादिकों को त्यागकरके वशकरा है चित्त और शरीर जिसने और त्यागकरी हैं सब कामना जिसने और त्यागकरी ऊपरकी सामग्री जिसने सो निरन्तर चित्तको समाहित करै अर्थात् समाधिमें स्थितकरै१०॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चेलाजिनकुशोत्तरं ॥ ११ ॥

शङ्करभाष्यम्।

अथेदानीं योगं युञ्जत आसनाहारविहारादीनां योगसाधनत्वेन नियमो वक्तव्यः प्राप्तयो गस्य लक्षणं तत्फलादि चेयत आरभ्यते तत्रा सनमेव तावत् प्रथममुच्यते शुचाविति शुचौ शुद्धे विविक्ते स्वभावतः संस्कारतो वा देशे स्थाने प्रतिष्ठाप्य स्थिरमचलनमात्मनः आसनं नात्युच्छ्रितं नाप्यतिनीचं तच्च चेलाजिनकुशोत्तरं चेलमजिनं कुशाश्च उत्तरे यस्मिन्नासने तदासनं चेलाजिनकुशोत्तरं पाठक्रमात् विपरीतोत्र अनुक्रमश्चेलादीनाम् ॥ ११ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

योगं योगांगानि चोपदिश्योत्तरसन्दर्भस्य तात्पर्यमाह अथेति योगस्वरूपकतिपयत दंगप्रदर्शनानन्तर्यमथशब्दार्थविहारादीनामित्यादिशब्देन यथोक्तासनादिगतावांतरभेदग्र हणंतत्फलादिवेत्यादिशब्देन योगफलंसम्यग्ज्ञानश्चतत्फलं कैवल्यं ततोभ्रष्टस्यात्य तिकाविनष्टत्वमित्यादि गृह्यते एवं समुदायतात्पर्यं दर्शिते किमासीनः शयानस्तिष्ठन् ग च्छन् कुर्वन् वा युञ्जीतेत्यपेक्षायामनन्तरश्लोकतात्पर्यमाह तत्रेति निर्द्धारणे सप्तमी प्रथमं योगानुष्ठानस्य प्रधानमासीनः सम्भवादिति न्यायादिति यावत् विविक्तत्वं द्वेधा विभजते स्वभावत इति आसनस्यास्थैर्ये तत्रोपविश्य योगमनुतिष्ठतः समाधानायोगात् योगासिद्धिरित्यभिसन्धाय विशिनष्टि अचलनमिति आस्यतेऽस्मिन्निति व्युत्पत्तिमनुश्रि

त्याह आसनमिति आसन इति परकीयासनव्युदासार्थं पतनभयपरिहारार्थं नात्युच्च मित्युक्तं नाप्यतिनीचमिति भूतलपाषाणादिसंश्लेषे वातक्षोभाग्निमान्द्यादिसम्भावित दर्शननिरासार्थं चेलंवस्त्रमजिनं चर्म पशूनां तच्च तृणस्य कुशा दर्भास्ते चोत्तरे यस्मिन्नुप रिष्टादारभ्य तत्रयोक्तं प्रथमं चेलं ततोऽजिनं ततश्च कुशा इति प्रतिपन्नक्रममापातिकं क्रममतिक्रम्यादौ कुशास्ततोऽजिनं ततश्चेलमिति क्रमं विवक्षित्वाह विपरीतोऽत्रेति॥११॥

स्वामिकृतटीका।

आसननियमं दर्शयन्नाह शुचाविति द्वाभ्यां शुद्धे स्थाने आत्मनः स्वस्यासनं स्थाप यित्वा कीदृशं स्थिरमचंचलं नात्युच्छ्रितं नचातिनीचं चेलं वस्त्रं अजिनं व्याघ्रादिच र्म्म चेलाजिने कुशेभ्य उत्तरे यस्य कुशानामुपरि चर्म्म तदुपरि वस्त्रमास्तीर्य्येत्यर्थः॥११॥

नवलभाष्य।

अबइस समयमें योगाभ्यास करताहुआ जो पुरुष तिसको आसनआहार विहारादिकोंका भी नियम साधनकेलिये कहना चाहिये और जबयोगप्राप्त होजाय तौ उसयोगीके लक्षण और योगका फलभी कहना चाहिये इससे उत्तर ग्रन्थका आरम्भ कियाजाताहै तिसमें प्रथम आसनकीविधि कहीजा-तीहै (शुचौदेशइति) हे अर्जुन शुचिपवित्र स्वभावहीसे अथवा संस्कारादि कों करके शुद्ध जो स्थान तिसमें योगी अपने स्थिर आसन को अर्थात् जो आसन योगाभ्यास करतेपै चलायमान न होय तिसआसनको स्थापनकरै अर्थात् बिछावै और नतो वहआसन अत्यन्त ऊंचाहोय और अति न नी-चाहोय और प्रथम कुशबिछावै उसकेऊपर मृगचर्म उसके ऊपरवस्त्र बिछा होय ऐसे आसनको स्थापनकरै॥ ११॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥ १२॥

शङ्करभाष्यम्।

प्रतिष्ठाप्य किं तत्रेति तत्र तस्मिन्नासने उपविश्य योगं युञ्ज्यात् कथं सर्वविषयेभ्य उपसं हृत्यैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः स किमर्थं योगं युञ्ज्यादित्याह आत्मविशुद्धये अंतः करणस्य शुद्ध्यर्थमित्येतत्॥ १२॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

यथोक्तमासनं सम्पाद्य किं कर्त्तव्यमिति प्रश्नपूर्वकं कर्त्तव्यं तन्निर्द्दिशति प्रतिष्ठाप्येति योगं युञ्जानस्येति कर्त्तव्यताकलापं पृच्छति कथमिति सर्वेभ्यो विषयेभ्यः सकाशात् प्रत्याहृत्य मनसो यदेकस्मिन्नेव ध्येये विषये समाधानं यच्चित्तस्येन्द्रियाणांच वाह्यक्रिया णां संयमनं तदुभयं कृत्वा योगमनुतिष्ठेदित्याह सर्वेति आसने यथोक्ते स्थित्वा यथो क्तं चरित्वा योगानुष्ठानस्य प्रश्नपूर्वकं फलमाह स किमर्थमित्यादिना॥ १२॥

स्वामिकृतटीका।

तत्र तस्मिन्नासने उपविश्य एकाग्रं विक्षेपरहितं मनः कृत्वा योगं युञ्ज्यादभ्यसेत् यता संयता चित्तस्येन्द्रियाणाञ्च क्रिया यस्य आत्मनो मनसो विशुद्धय उपशांतये॥१२॥

और हे अर्जुन तिसआसनके ऊपर बैठकरके अपने आधीन करी हैं चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाजिसने ऐसा जो योगी सो विषयोंसे खैंचिकै एकाग्र मनको करकै अन्तःकरणके शुद्धिकेलिये योगाभ्यासकरै अर्थात् आत्मस्वरूपके सम्मुख मनको करै १२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रंस्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

बाह्यसाधनमासनमुक्तं अधुना शरीरस्य धारणं कथमित्युच्यते समामिति समं कायशिरोग्रीवं कायश्च शिरश्च ग्रीवा च कायशिरोग्रीवं तत् समंधारयन् अचलश्च समं धारयतश्चलनं न सम्भवत्यतो विशिनष्टि अचलमिति स्थिरः स्थिरो भूत्वेत्यर्थः स्वं नासिकाग्रं संप्रेक्ष्य सम्यक प्रेक्षणं दर्शनं कृत्वेवेतीव शब्दो लुप्तो द्रष्टव्यो नहि स्वनासिकाग्रसंप्रेक्षणमिह विधित्सितं किं तर्हि चक्षुषो दृष्टिसन्निपातः स चान्तःकरण समाधानापेक्षो विवक्षितः स्वनासिकाग्रसंप्रेक्षणमेव चेद्विवक्षितं मनस्तत्रैव समाधीयेत नात्मनि आत्मनि हि मनसः समाधानं वक्ष्यत्यात्मसंस्थं मनः कृत्वेति तस्मादादिशब्दलोपेनाक्ष्णोर्दृष्टिसन्निपात एव संप्रेक्ष्येत्युच्यते दिशश्चानवलोकयन् दिशाञ्चावलोकनमकुर्वन्नित्येव मन्तरा कुर्वन्नित्येतत् ॥ १३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

उक्तमनूद्यानन्तरश्लोकस्यापुनरुक्तमर्थमाह बाह्येति समत्वमृजुत्वं कायः शरीरमध्यं अचलमिति विशेषणमवतार्य तस्य तात्पर्यमाह सममिति कार्यकरणयोर्विषयपारवश्य शून्यत्वमचलत्वं स्थैर्यं किमितीव शब्दलोपोत्र कल्प्यते स्वनासिकाग्रसंप्रेक्षणमेव योगांगत्वेनात्र विधित्सितं किं न स्यादित्याशंक्याह नहीति तर्हि किमत्र विवक्षितमिति प्रश्न पूर्वकमाह किं तर्हीति दृष्टिसन्निपातो दृष्टेश्चक्षुषो रूपप्रवृत्तिराहित्यं कथमसावनायासेन सिध्यति तत्राह तत्रेति समाधानस्य प्राधान्येनात्र विवक्षितत्वात् दृष्टेर्बहिर्विषयत्वेन तद्भंगसंगात्तस्याविषयेभ्यो व्यावृत्त्यान्तरे च सन्निपातो विवक्षितो भवतीत्यर्थः तथापि कथं स्वनासिकाग्रसंप्रेक्षणमत्र श्रुतमविवक्षितमित्याशंक्याह स्वनासिकेति तत्रैव मनः समाधाने का हानि रित्याशंक्य वाक्यशेषविरोधान्मैवमित्याह आत्मनि हीति किं तर्हि प्रेक्षेत्यादौ विवक्षितमित्याशंक्याह तस्मादिति दक्षिणोत्तरचक्षुषो या दृष्टिस्तस्या बाह्याद्विषयाद्वैमुख्येनान्तरेव सन्निपतनमत्र स्वकीयं नासिकाग्रं नासिकान्तं संप्रेक्ष्येति विवक्षितमित्यर्थः तत्रैवोत्तरमपि विशेषणमनुकूलमित्याह दिशश्चेति अनवलोकयन्नासीदित्युत्तरत्र सम्बन्धः अन्तरादिशामवलोकनमपि योगप्रतिबन्धकमिति तत्प्रतिषेधः ॥ १३ ॥

स्वामिकृतटीका।

चित्ते काग्र्योपयोगिनीं देहादिधारणां दर्शयन्नाह सममिति द्वाभ्यां काय इति देहस्य मध्यभागो विवक्षितः कायश्च शिरश्च ग्रीवा च कायशिरोग्रीवं मूलाधारादारभ्य मूर्द्धाग्रपर्यन्तं सममवक्रं निश्चलं धारयन् स्थिरो दृढप्रयतो भूत्वेत्यर्थः स्वीयं नासिकाग्रं संप्रेक्ष्य चार्द्धनिमीलितनेत्र इत्यर्थः इतस्ततो दिशश्चानवलोकयन्नासीतेत्युत्तरेणान्वयः ॥१३॥

नवलभाष्य।

अब शरीर धारण विधान करते हैं (सममिति) हे अर्जुन उसआसनपै

स्थिरहो करकै शरीर और शिर और ग्रीवा अर्थात् गर्दन इनकोसम अर्थात् बराबर और अचल जिसमें हिलै नऐसे धारणकरतेहुये और अपनी नासिकाके अग्रभागको अर्थात् नाकके अगाड़ीके भागकोही मानों देखताहोय ऐसे नेत्रोंकी दृष्टिको रक्खै और यहां यह अर्थका विधाननहीं है कि नासिकाके अगाड़ीके भागको योगीदेखै क्योंकि ऐसे कहनेमें नासिकाके अग्रभागहीका ध्यानहुआ तौ फिर वहांहीं चित्तकी स्थिरता होजायगी सो तौ भगवान्‌को कहनेको इष्टनहींहै जिससे आगे ऐसाकहैंगे कि आत्मामें चित्तको स्थिरकरके फिरयोगी कुछ चिन्तन न करै तौ इसकथनसे विरोधहोगा तिससे यहां आत्मामें चित्तको स्थिर करनेके लिये ऐसीदृष्टि रक्खै जिसमें ऐसा सूचित होकि मानों नासिकाहीको देखताहोय यहीअर्थ विवक्षित है अर्थात् ऐसी नेत्रोंकी दृष्टि करनेसे और कहीं दृष्टिके नहींजानेसे चित्त स्थिरहोताहै इसीसे कहते हैं कि हे अर्जुन दिशाओंको नहीं देखै अर्थात् पूर्वादि दिशाओं के मध्यमें किसी दिशाके तरफ दृष्टिको नहीं करताहुआ योगीयोगको करै अर्थात् मनको समाधिस्थकरै ॥ १३ ॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च प्रशान्तेति प्रशान्तात्मा प्रकर्षेण शान्त आत्माऽन्तःकरणं यस्य सोऽयं प्रशान्तात्मा विगतभीर्विगतभयः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ब्रह्मचारिणो व्रतं ब्रह्मचारिव्रतं ब्रह्मचर्यं गुरुशुश्रूष भिक्षा भुक्त्यादि तस्मिन् स्थितस्तदनुष्ठाता भवेदित्यर्थः किञ्च मनःसंयम्य मनसो वृत्तीरुप संहृत्येत्येतत् मच्चित्तो मयिपरमेश्वरे चित्तं यस्य सोऽयं मच्चित्तो युक्तः समाहितः सन्न्यासी चो पविशेत् मत्परोऽहं परो यस्य सोऽयं मत्परोभवति कश्चित् रागी स्त्रीचित्तो नतु स्त्रियमेव परत्वेन गृह्णाति किं तर्हि राजानं महादेवं वा अयन्तु मच्चित्तो मत्परश्च ॥ १४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

योगं युंजानस्य विशेषणान्तराणि दर्शयति किंचेति अन्तःकरणस्य प्रशान्तिः रागद्वेषादि दोषराहित्यं तस्याश्च प्रकर्षो रागादिहेतोरपि निवृत्तिः विगतभयत्वं सर्वकर्म परित्यागे शास्त्रीयनिश्चयवशान्निःसन्दिग्धबुद्धित्वं भिक्षाभुक्त्यादीत्यादि शब्देन त्रिषवण स्नानशौचाचमनादि गृह्यते विशेषणान्तरमाह किंचेति उपसंहृत्य योगनिष्ठो भवेदिति शेषः मनोवृत्त्युपसंहारे ध्यानमिति न सिध्येत्तस्य तद्वृत्त्या वृत्तिरूपत्वादित्याशंक्याह मच्चित्त इति विषयान्तरविषयमनोवृत्त्युपसंहारेणात्यन्त्येव तन्नियमनान्न ध्यानानुपपत्तिरित्यर्थः मच्चित्तत्वेनैव मत्पर इति पृथक् विशेषणमनर्थकमित्याशंक्याह भवतीति अन्तःकरणशुद्धिर्योगस्यावान्तरफलम् ॥ १४ ॥

स्वामिकृतटीका।

प्रशान्तेति प्रशान्त आत्मा चित्तं यस्य विगता भीर्भयं यस्य ब्रह्मचारिव्रते ब्रह्मचर्ये स्थितः सन् मनः संयम्य प्रत्याहृत्य मय्येव चित्तं यस्य अहमेव परः पुरुषार्थो यस्य स मत्परः एवं युक्तो भूत्वा तिष्ठेत् ॥ १४ ॥

और हेअर्जुन प्रकर्षकरिकै अर्थात् अत्यन्त शान्तहै अन्तःकरण जिसका और निर्भय और ब्रह्मचर्यव्रत जो भिक्षाभोजन गुरु शुश्रूषादितिसमें स्थित ऐसा जो योगी सो मनकी वृत्तियोंको चारोंतरफसे खैंचिकै मैं जो परमेश्वर तिसीमें चित्तको स्थिर करिकै इसप्रकार समाधिस्थ सबकर्मादिकोंका आश्रय छोड़मैंहीहूं परउत्कृष्ट अर्थात् सबसे अधिक आश्रय जिसका ऐसाहोकै स्थितरहै यहां मच्चित्त और मत्पर इनदोनों विशेषणोंके कहनेसे यहसूचित किया कि जैसेकोई रागीपुरुष स्त्रीमें चित्तको रखताहै परतु स्त्रीही उसको सबसे अधिक माननीय नहींहोतीहै किन्तु भयआदि कारणसे राजाको वा ईश्वरको अधिक करके मानताहीहै और यहयोगी तौ तैसानहीं है किंतु मेरेही मेंइसकाचित्तहै और मुझकोही सबसे अधिक जानताभीहै ॥ १४ ॥

युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

अथेदानीं योगफलमुच्यते युञ्जन्निति युञ्जन् समाधानं कुर्वन्नेवं यथोक्तेन विधानेन सदा योगी नियतमानसः नियतं संयतं मानसं मनो यस्य सोऽयं नियतमानसः स शान्तिमुपरातिं निर्वाणपरमां निर्वाणं मोक्षस्तत्परमानिष्ठा यस्याः शान्तेः स निर्वाणपरमा तां निर्वाणपरमां मत्संस्थां मदधीनतामधिगच्छति प्राप्नोति ॥ १५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

सम्प्रति परमफलकथनपरत्वेनानन्तरश्लोकमादत्ते अथेति योगस्वरूपं तदंगमासनमतिसत्कर्तृविशेषणमित्यस्यार्थः । प्रकथनानन्तरमित्यथशब्दार्थः आत्मानं युञ्जन्निति सम्बन्धः आत्मशब्दो मनोविषयः यथोक्तो विधिरासनादि उक्तविशेषणत्रय द्योतनार्थं सदेत्युक्तं योगी ध्यानी संन्यासीत्यर्थः मनःसंयमस्य योगं प्रत्यसाधारणत्वं दर्शयति नियतेति शान्तिशब्दितोपरतेः सर्वसंसारनिवृत्तिपर्यवसायित्वं मत्वा विशिनष्टि निर्वाणेति यशोक्ताया मुक्तेर्ब्रह्मस्वरूपावस्थानादनर्थान्तरत्वमाह मत्संस्थामिति मदधीनां मदात्मिकामित्यर्थः ॥ १५ ॥

स्वामिकृतटीका ।

योगाभ्यासफलमाह युञ्जन्नेवमिति एवमुक्तप्रकारेण सदा आत्मानं मनो युञ्जन् समाहितं कुर्वन् नियतं निरुद्धं मानसं चित्तं यस्य स शान्तिं संसारोपरमं प्राप्नोति कथंभूतां निर्वाणं परं प्राप्यं तस्यां मत्संस्थां मद्रूपेणावस्थितिम् ॥ १५ ॥

नवलभाष्य ।

अबयोगफलको कहतेहैं हे अर्जुन इसप्रकार सदासबकालमें चित्तको समाधिमें स्थित करताहुआ योगीवश होगयाहै मनजिसके ऐसाहोकै मोक्षही परम पुरुषार्थ जिसका ऐसी जो मेरेमें रहनेवाली शान्ति तिसको प्राप्त होताहै अर्थात् मेराहीरूप होजाताहै ॥ १५ ॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति नचैकान्तमनश्नतः।
नचातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

इदानीं योगिन आहारादिनियम उच्यते नात्यश्नत इति न अत्यश्नत आत्मसम्मितमन्नपरिमाण मतीत्यश्नतः अत्यश्नतो न योगोऽस्ति नच एकान्त मनश्नतो योगोस्ति यदुह वा आत्म संमितमन्नं तदवति तन्नहिनस्ति तद् यत् कणीयो न तदवतीति श्रुतेः तस्मात् योगी नात्म संमितादन्नादधिकं न्यूनं वा श्नीयादथवा योगिनो योगशास्त्रे परिपठितादन्नपरिमाणादतिमात्रम श्नतो योगो नास्ति उक्तं हि अर्द्धमशनस्य सव्यञ्चनस्य तृतीयमुदकस्य तु वायोः संचरणार्थंतु चतुर्थमवशेषयेदित्यादि परिमाणं तथा नचाति स्वप्नशीलस्य योगो भवति नैव चातिमात्रं जाग्रतो योगो भवति चार्जुन ॥ १६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

आहारादीत्यादिशब्देन विहारजागरितादि चोच्यते आत्मसंमितमन्नपरिमाणमष्टग्रासादि आहारनियमे शतपथश्रुतिं प्रमाणयति तदिति तदन्नं भुज्यमानं यदुहवा इति प्रसिद्ध्या श्रुत्याऽनुदित मवत्यनुष्ठानयोग्यता मापाद्यानुष्ठानद्वारेण भोक्तारं रक्षति न पुनस्तदन्नमस्यानर्थाय भवतीत्यर्थः यत्पुनरात्मसंमितात् भूयोऽधिकतरं शास्त्रमतिक्रम्य भुज्यते तदात्मानं हिनस्ति भोक्तुरनर्थाय भवति यच्चान्नं कणीयोऽल्पतरं शास्त्रनिश्चयाभावादद्यते तदन्नमनुष्ठानयोग्यतादिद्वारा न रक्षितुं क्षमते तस्मादत्यधिकमत्यल्पंचान्नं योगमारुरुक्षता त्याज्यमित्यर्थः श्रुतिसिद्धमर्थं निगमयति तस्मादिति नेत्यादेर्व्याख्यानान्तरमाह अथवेति किं तदन्नपरिमाणं योगशास्त्रोक्तं यदधिकं न्यूनंवाऽभिव्यवहरतो योगानुपपत्तिरित्याशंक्याह उक्तं हीति पूरयेदशनेनार्द्धं तृतीयमुदकेन तु वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेदिति वाक्यमादिशब्दार्थः यथा नात्यन्तमश्नतोऽनश्नतश्च योगो न सम्भवति तथा चात्यन्तस्वपतो जाग्रतश्च न योगः सम्भवतीत्याह तथेति ॥ १६ ॥

स्वामिकृतटीका।

योगाभ्यासनिष्ठस्याहारादिनियममाह नात्यश्नत इति द्वाभ्यांअत्यन्तमधिकं भुंजानस्य एकान्तमत्यन्तमभुंजानस्यापि योगः समाधिर्न भवति तथाऽतिनिद्राशीलस्यातिजाग्रतश्च योगो नैवास्ति ॥ १६ ॥

नवलभाष्य।

अबइस समयमें योगीका आहारादि नियम कहाजाताहै (नात्यश्नतइति) हे अर्जुन अपने प्रमाणसे अधिक अन्नका भोजन करताहुआ जोयोगी तिसको योगसिद्ध नहींहोताहै और प्रमाणसे न्यूनभी कुछनहीं भोजन करतेहुये योगीको भी योगसिद्ध नहींहोता जितने अन्नके भोजनमें परिपाकमें व्याकुलता न होय और क्षुधाभी बाधानकरै वोहीउसके प्रमाणका भोजन है और कहीं आठग्रास परिमित अन्न भोजन कहाहै कहीं अधिक कहा इसप्रकार यथोचित जानना अब भोजन के नियम में श्रुतिलिखते हैं (यदुहवाआत्मसम्मितमन्नं तदवतितन्नहिनास्ति यद्भूयोहिनास्तिततूयत्क-

णीयोनतदवतीति) अर्थ जो जिसको अपने प्रमाणका अन्नहै वहशरीरकी रक्षाकरताहै और रोगादिककी उत्पत्तिकेद्वारा नाशनहीं करताहै और जो अधिक भोजन कियाजाताहै वहरोगको उत्पन्नकर शीघ्रही आयुको क्षीण करके नाशकरताहै और जो प्रमाणसे थोड़ा भोजन कियाजाताहै वह नहीं रक्षाकरनेको समर्थहै अर्थात् किसीकार्य्य करनेकी सामर्थ्यको नहीं उत्पन्न करसक्ताहै इस श्रुतिके प्रमाणसे योगी अपने प्रमाणसे अधिक अथवा न्यून नभोजन करै अथवा योगीके लिये योग शास्त्रमें कहा जो अन्नका परिमाण तिससे अधिक भोजन करनेवाले को योगसिद्ध नहींहोताहै यह अर्थ जानना सो योगशास्त्रमेंकहाहै कि (अर्द्धंसव्यञ्जनान्नस्यतृतीयमुदकस्यतु वायोः संचारणार्थन्तुचतुर्थमवशेषयेत्)अर्थ आधापेट सव्यञ्जन अर्थात् दालिशाक सहित अन्नकरके पूर्णकरै और तीसराभाग जलसे पूरणकरै और चौथाभाग पवनके चलनेके लिये खालीरक्खै और तैसेहीहे अर्जुन अत्यन्त सोनेकाहै स्वभाव जिसका ऐसे पुरुषको योग नहींहोता और अत्यन्त जागताही रहै उसकोभी योग नहींहोता ॥ १६ ॥

युक्ताऽहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७॥

शङ्करभाष्यम्।

कथं पुनर्योगो भव तीत्युच्यते युक्तेति युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य आह्रियत इत्याहारोऽन्नं विहरणं विहारः पादक्रमस्तौ युक्तौ नियतपरिमाणौ यस्य स युक्ताहारविहारस्तस्य युक्तचेष्टस्य तथान्या च युक्ता नियता चेष्टा यस्य कर्म्मसु तथा युक्तस्वप्नावबोधस्य युक्तौ स्वप्नश्चाव बोधश्च तौ नियतकालौ यस्य तस्य युक्ताहारविहारस्य कर्म्मसु युक्तस्वप्नावबोधस्य योगिनो योगोभवति दुःखहा दुःखानि सर्वाणि हन्तीति दुःखहा सर्वसंसारदुःखक्षयकृद्योगो भवति इत्यर्थः ॥ १७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

आहारनिद्रादिनियमविरहिणोयोगव्यतिरेकमुक्त्वा तन्नियमवतो योगान्वयं व्याचष्टे कथं पुनरित्यादिना अन्नस्य नियतत्वमर्द्धमशनस्येत्यादि विहारस्य नियतत्वं योजनान्न परं गच्छेदित्यादि कर्मसु चेष्टाया नियतत्वं वाङ्नियमादि रात्रौ प्रथमतो दशघटिका परिमिते काले जागरणं मध्यतः स्वपनं पुनरपि दशघटिका परिमिते जागरणमिति स्वप्नाव बोधयोर्नियतकालत्वमेवं प्रयतमानस्य योगिनो भवति योगस्य फलमाह दुःखहेति सर्वाणीत्याध्यात्मिकादिभेदभिन्नानीत्यर्थः यथोक्तयोगमन्तरेणापि स्वस्वप्नादौ दुःखनिवृत्तिरस्तीतिविशिनष्टि सर्वेति विशुद्धविज्ञानद्वारेति शेषः ॥ १७ ॥

स्वामिकृतटीका।

तर्हि कथम्भूतस्य योगो भवतीत्यत आह युक्ताहारेति युक्तो नियत आहारो विहारश्च गतिर्यस्य कर्मसु कार्येषु युक्ता नियता चेष्टा यस्य युक्तौ नियतौ स्वप्नावबोधौ निद्राजागरौ यस्य तस्य दुःखनिवर्तको योगो भवति सिद्ध्यति ॥ १७ ॥

नवलभाष्य ।

किसको फिरयोग होताहै इस आकांक्षामें कहते हैं कि (युक्तेति) हे अर्जुन युक्तपरिमित अर्थात् प्रमाणयुक्तहै आहार भोजन और विहार अर्थात् चलना जिसका और युक्त नियतकालहै कर्मोंमें चेष्टा अर्थात् स्नानादि व्यापार जिसका और तैसेही परिमितकालहै सोना और जागनाजिसका ऐसेपुरुष को संसाररूप दुःखके हरनेवाला योगहोताहै ॥ १७ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवाऽवतिष्ठते ।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

अथाधुना कदा युक्तो भवतीत्युच्यते यदेति यदा विनियतं चित्तं विशेषेण नियतं संयतमेकाग्रतामापन्नं चित्तं हित्वा बाह्यं चित्तमात्मन्येव केवलेऽवतिष्ठते स्वात्मनि स्थितिं लभत इत्यर्थः निस्पृहः सर्वकामेभ्यो निर्गता दृष्टादृष्टविषयेभ्यः स्पृहा तृष्णा यस्य योगिनः स युक्तः समाहित इत्युच्यते तदा तस्मिन् काले ॥ १८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

सफलस्य सांगस्य योगस्योक्त्यनन्तरं यदा हीत्यादावुक्तकालानुवादेन युक्तं लक्षयितुमनन्तरश्लोकप्रवृत्तिं दर्शयति अथाधुनेति विशेषेण संयतत्वमेव सूचयति एकाग्रतामिति आत्मन्येवेत्येवकारार्थं कथयति हित्वेति केवलत्वमद्वितीयत्वं तस्यात्मस्थितिं विवृणोति स्वात्मनीति चित्तस्य हि कल्पितस्यात्मैव तत्त्वं तत् पुनरन्यतः सर्वतो निवारितमधिष्ठाने निमग्नं तिष्ठतीति भावः तस्यामवस्थायांसर्वेभ्योविषयेभ्यो व्यावृत्ततृष्णो युक्तो व्यवह्रियत इत्याह निस्पृह इति ॥ १८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

कदा निष्पन्नयोगः पुरुषो भवतीत्यपेक्षायामाह यदेति विनियतं विशेषेण निरुद्धं सच्चित्तमात्मन्येव यदा निश्चलं तिष्ठति तदा प्राप्तयोग इत्युच्यते ॥ १८ ॥

नवलभाष्य ।

अबइस कालमें किस समयमें वहयोगयुक्त होताहै यह वर्णन करते हैं (यदेति) हे अर्जुन जिससमयमें एकाग्रताको प्राप्तकिया जो चित्त सो अपने स्वरूपहीमें स्थितहोय और योगी सब कामनाओंसे निस्पृहहोय तब योगको प्राप्तहुआ ऐसाजाने ॥ १८ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

योगिनः समाहितं यच्चित्तं तस्योपमोच्यते यथेति यथा दीपः प्रदीपो निवातस्थो निवाते वातवर्जिते स्थाने स्थितो नेङ्गते नैजाति न चलति सा उपमा उपमीयतेऽनयेत्युपमा योगज्ञैश्चित्त

प्रचारदर्शिभिः स्मृता चिन्तिता योगिनो यतचित्तस्य संयतान्तःकरणस्य युञ्जतो योगमनुतिष्ठत आत्मनः समाधिमनुतिष्ठत इत्यर्थः ॥ १९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

उपमा योगिनश्चित्तस्थैर्य्यस्योदाहरणमित्यर्थः उपमाशब्दस्य प्रदीपविषयत्वसिद्ध्यर्थंकरणव्युत्पत्तिं दर्शयति उपमीयत इति योगिनो यथोक्तविशेषणवतश्चित्तस्थैर्य्यस्येतिशेषः ॥ १६ ॥

स्वामिकृतटीका।

आत्मैकाकारतयावस्थितस्य चित्तस्योपमानमाह यथेति वातशून्ये देशेस्थितो दीपो यथा नेंगते न चलति सा उपमा दृष्टान्तः कस्य आत्मविषयं योगं युञ्जतोऽभ्यस्यतो योगिनो यतं नियतं चित्तं यस्य निष्कम्पतया प्रकाशकतया चाचञ्चलं तच्चित्तं तद्वत्तिष्ठतीत्यर्थः ॥ १६ ॥

नवलभाष्य।

अब योगीका समाधिमें स्थितहुआ जो चित्त तिसकी उपमादीजाती है (यथेति) हे अर्जुन जैसेपवन रहित स्थानमें रक्खा जो दीपक उसकी ज्योति चलायमान न होय सो उपमा आत्मयोगको करताहुआ जो योगीतिसके समाधिस्थ चित्तकी योगियोंने कहीहै अर्थात् उसदीपकी ज्योतिके सदृश योगीकाचित्त निश्चल होताहै ऐसाचित्त गतिके देखनेवाले योगीजन कहतेहैं ॥ १९ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
तत्र चैवात्मनाऽत्मानं पश्यन्नात्मानितुष्यति ॥ २० ॥

शङ्करभाष्यम्।

एवं योगाभ्यासबलादेकाग्रीभूतं निवातप्रदीपकल्पं सत् यत्रेति यत्र यस्मिन् काले उपरमते चित्तं उपरतिं गच्छति निरुद्धं सर्वतो निवारितप्रचारं योगसेवया योगानुष्ठानेन यत्र चैव यस्मिंश्च काले आत्मना समाधिपरिशुद्धेनान्तःकरणेन आत्मानं परं चैतन्यं सर्वतो ज्योतिःस्वरूपं पश्यन्नुपलभमानः स्वे एवात्मनि तुष्यति तुष्टिं भजते ॥ २० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

द्विविधः समाधिः सम्प्रज्ञातोऽसम्प्रज्ञातश्च ध्येयैकाकारसतत्ववृत्तिभेदेन कथञ्चित् ज्ञायमानः सम्प्रज्ञातः समाधिः कथमपि पृथग् ज्ञायमाना सैव सतत्ववृत्तिरसम्प्रज्ञातः समाधिस्तत्र सामान्येन समाधिलक्षणमभिधायासंप्रज्ञातस्य समाधेरधुना लक्षणं विवक्षन्नाह एवमिति काले समाध्युपलक्षिते एवकारस्तुष्यतीत्यनेन सम्बध्यते चकारस्य सम्बन्धमाह यस्मिंश्चेति कालस्तु पूर्ववत्सकर्मकारकत्वेन निर्दिष्टमात्मानं तत्पदार्थत्वेन व्याचष्टे परमिति आत्मनीत्यस्य त्वं पदार्थविषयत्वमाह स्वे एवेति परमात्मानं प्रतीचि येव तद्भावेनपरोक्षीकुर्वन्न तुष्टिहेत्वभावात्तुष्यत्येवेत्यर्थः तस्मिन् काले योगसिद्धिर्भवतीतिशेषः ॥ २० ॥

स्वामिकृतटीका ।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डवेत्यादौ कर्म्मैव योगशब्देनोक्तं नात्यश्नतस्तु योगोऽस्तीत्यादौ तु समाधिर्योगशब्देनोक्तस्तत्र मुख्यो योगः क इत्यपेक्षायां समाधिमेवस्वरूपत: फलतश्च लक्षयन् स एव मुख्यो योग इत्याह यत्रेति सार्द्धैस्त्रिभि: यत्र यस्मिन्नवस्थाविशेषे योगाभ्यासेन निरुद्धं चित्तमुपरतं भवतीति योगस्य स्वरूपलक्षणमुक्तं तथाच पातंजलसूत्रं योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इति इष्टप्राप्तिलक्षणेन फलेन तमेव लक्षयति यत्र च यस्मिन्नवस्थाविशेषे आत्मना शुद्धेन मनसा आत्मानमेव पश्यति नतु देहादि पश्यंश्चात्मन्येव तुष्यति नतु विषयेषु यत्रेत्यादीनां तं यच्छब्दानां योगसंज्ञितं विद्यादिति चतुर्थेनान्वय: ॥ २० ॥

नवलभाष्य ।

इसप्रकार योगाभ्यासके बल से पवन रहित स्थानमें रक्खेहुये दीपकके सदृश एकाग्रताको प्राप्त निश्चलहुआ चित्त फिरक्या करताहै इसआकांक्षा में कहते हैं यत्रेति हे अर्जुन जिससमयमें योगसेवा करके अर्थात् योगाभ्यास करके निरुद्धहुआ अर्थात् रोकीहै गतिजिसकी ऐसा निश्चलहुआ उपरामको प्राप्तहोताहै अर्थात् विषयोंसे निवृत्तहुआ आत्माके समीप रमण करताहै और जिस अवस्थामें समाधिकरके शुद्धहुआ जो अन्तःकरण तिस करके ज्योतिस्वरूप आत्माको देखताहुआ अर्थात् ज्ञानद्वारा प्राप्तहुआ योगीउस आत्मस्वरूपहीमें संतोषको प्राप्तहोताहै अर्थात् उसको प्राप्तहो और किसीकी इच्छानहीं करताहै ॥ २० ॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र नचैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१ ॥

शंकरभाष्यम् ।

किञ्च सुखमिति सुखमात्यन्तिकमत्यन्तमेव भवतीत्यात्यन्तिकं अनन्तमित्यर्थः यत्तद्बुद्धिग्राह्यं बुद्ध्यैवेन्द्रियनिरपेक्षया गृह्यत इति बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियं गोचरातीतमविषयजनितमित्यर्थः वेत्ति यदीदृशं सुखमनुभवति यत्र यस्मिन् काले नच एव अयं विद्वानात्मस्वरूपे स्थितस्तस्मात् नैव चलति तत्त्वतः तत्त्वस्वरूपान्न प्रच्यवत इत्यर्थः ॥ २१ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

योगसिद्धिकालं प्रकारान्तरेण प्रकटयति किञ्चेति बुद्धिशब्दः स्वानुभवविषयः इन्द्रियनिरपेक्षस्वानुभवगम्यत्वोक्तेरतीन्द्रियमिति पुनरुक्तमित्याशंक्याह अविषयेति पदच्छेदः नचेत्यादि अपेक्षितपूरणं आत्मस्वरूप इति तस्मात् तत्त्वत इति सम्बन्धः नैवोक्ते वकारसंबन्धोक्तिःचकारः सप्तम्या सम्बंधनीयः यत्रेति पूर्ववत् सम्बन्धः ॥ २१ ॥

स्वामिकृतटीका ।

आत्मन्येव तोषे हेतुमाह सुखमिति यत्र यस्मिन्नवस्थाविशेषे यत्तत् किमपि निरतिशयमात्यन्तिकं नित्यं सुखं वेत्ति ननु तदा विषयेन्द्रियसम्बन्धाभावात् कुतः सुखं स्यत्तत्राह अतीन्द्रियविषयेन्द्रियसम्बन्धातीतं केवलं बुद्ध्यैवात्माकारया ग्राह्यअतएव च यत्र स्थितः संस्थितस्तत्त्वत आत्मस्वरूपान्नैव चलति ॥ २१ ॥

नवलभाष्य ।

और जिससमयमें इन्द्रिय संगरहित केवल शुद्धबुद्धिही करके ग्रहणकिया अर्थात् प्राप्त करनेके योग्य अतीन्द्रिय जो सुख अर्थात् विषय सम्बन्ध रहित जो सुख तिसको योगीजानै अर्थात् अनुभवकरै नामभोगै और जिस समयमें उसआत्म स्वरूपका जाननेवाला योगी अपने स्वरूपको प्राप्तहोके फिर उससे न चलायमानहोय ॥ २१ ॥

तं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिंस्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

किञ्च यं लब्ध्वेति यं लब्ध्वायमात्मलाभं लब्ध्वाप्राप्य च अपरमन्यल्लाभान्तरं ततोधिक मस्तीति न मन्यते न चिन्तयति किञ्च यस्मिन्नात्मतत्त्वेस्थितो दुःखेन शस्त्रनिपातादिलक्षणेन गुरुणा महतापि न विचाल्यते ॥ २२ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

प्रकारान्तरेण प्रकृतं योगं विशिनष्टि किञ्चेति आत्मलाभान्नपरं विद्यते इति स्मृत्या व्याचष्टे यमात्मलाभमिति लाभान्तरं पुरुषार्थभूतं ततस्मादात्मलाभादिति यावत् तं विद्यादित्युत्तरत्र सम्बन्धः यस्मिन् इत्याद्यवतारयति किञ्चेति अपरिपक्वयोगो यथा दर्शितेन दुःखेन प्रच्याव्यते न चैवं विचाल्यते यस्मिंस्थितो योगी तं योगं विद्यादिति पूर्ववत् ॥ २२ ॥

स्वामिकृतटीका।

अचलत्वमेवोपपादयति यमिति यतो यमात्मस्वरूपं लब्ध्वा ततोऽधिकं लाभं न मन्यतेतस्यैव निरतिशयसुखत्वात् यस्मिंश्च स्थितो महतापि शीतोष्णादिदुःखेन न विचाल्यते नाभिभूयते एतेनानिष्टनिवृत्तिफलेनापि योगस्य लक्षणमुक्तं द्रष्टव्यं ॥ २२ ॥

नवलभाष्य।

और जिस आत्मलाभको प्राप्तहोके योगीउससे अधिक किसीदूसरे लाभको न मानै अर्थात् इससेपरे और कोई प्राप्तहोनेके योग्य मुझको बस्तु नहींरही ऐसाजिस समयमें निश्चयको प्राप्तहोय और जिस आत्मतत्त्वमें स्थितहुआ योगी शस्त्रपातादिकों से उत्पन्नहुये बड़ेभारी दुःखकरके भी न चलायमान होय ॥ २२ ॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगंयोगसंज्ञितम् ।
सनिश्चयेनयोक्तव्यो योगोनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यत्रोपरमते इत्याद्यारभ्य यावद्भिर्विशेषणैर्विशिष्टआत्मावस्थाविशेषोयोगः उक्तः तमिति तं विद्यात् विजानीयात् दुःखसंयोगवियोगं दुःखैःसंयोगो दुःखसंयोगस्तेन वियोगो दुःखसंयोग

वियोगस्तं दुःखसंयोगवियोगं योग इत्येव संज्ञितं विपरीतलक्षणेन विद्यात् विजानीयादित्यर्थः योगफलमुपसंहृत्य पुनरन्वयारम्भेण योगस्य कर्त्तव्यतोच्यते निश्चयानिर्वेदयोर्योगस्यसाधन विधानार्थं स यथोक्तफलो योगो निश्चयेनाध्यवसायेन योक्तव्योऽनिर्विण्णचेतसा न निर्विण्णं अनिर्विण्णं तच्चेतस्तेन निर्वेदरहितेन चेतसा चित्तेनेत्यर्थः ॥ २३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तं विद्यादित्याद्यपेक्षितं पूरयन्नवतारयति यत्रेति तमित्यात्मावस्थाविशेषं परामृशति दुःखसंयोगस्य वियोगो वियोगसंज्ञितो युज्यते स कथं योगसंज्ञितः स्यादित्याशंक्याह विपरीतेति इयं हि योगावस्था समुत्खातनिखिलदुःखभेदेति दुःखसंयोगाभावो योगसंज्ञामर्हतीत्यर्थः उपसंहृतयोगफले किमिति पुनर्योगस्य कर्तव्यत्वमुच्यते तत्राह योगफलमिति प्रकारान्तरेण योगस्य कर्त्तव्योपदेशारम्भोऽन्वारम्भः योगं युंजानस्तत्क्षणादुक्तां स सिद्धिमलभमानः संशयानो विवर्त्तेतेति तन्निवृत्त्यर्थं पुनः कर्त्तव्योपदेशोऽर्थवानितिमत्वाऽह निश्चयेति तयोः साधनत्वविधानमेवाक्षरयोजनया साधयति स यथेति इहजन्मनि जन्मान्तरे वा सेत्स्यतीत्यध्यवसायेन योक्तव्यः कर्तव्यः ॥ २३ ॥

स्वामिकृतटीका।

तमिति य एवंभूतोऽवस्थाविशेषस्तं दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितं विद्यात् दुःखशब्देन दुःखमिश्रितं वैषयिकं सुखमपि गृह्यते दुःखस्य संयोगेन संस्पर्शमात्रेणापि वियोगो यस्मिंस्तमवस्थाविशेषं योगसंज्ञितं योगशब्दवाच्यं जानीयात् परमात्मनि क्षेत्रज्ञस्य योजनं योगः यद्वा दुःखस्य संयोगेन वियोग एव शूरे कातरशब्दवद्विरुद्धलक्षणया योग उच्यते कर्म्मणि तु योगशब्दस्तदुपायत्वादौपचारिक इति भावः यस्मादेवं महाफलो योगस्तस्मात् स एव यत्नतोऽभ्यसनीय इत्याह स इति सार्द्धेन स योगो निश्चयेन शास्त्राचार्य्योपदेशजनितेन योक्तव्योऽभ्यसनीयः यद्यपि शीघ्रं न सिध्येति तथाप्यनिर्विण्णेन निर्वेदरहितेन चेतसा योक्तव्यः दुःखबुद्ध्या प्रयत्नशैथिल्यं निर्वेदः ॥ २३ ॥

नवलभाष्य।

तौ हेअर्जुन तिस आत्मावस्था विशेषको योगजानना अर्थात् यत्रोपरमते यहांसे लेकरके तीन श्लोकोंकरके जिसका वर्णनकियाहै उस अवस्था को योग कहतेहैं कैसावह योगहै कि जो सबसंसारके दुःखोंका वियोग रूपही है अर्थात् सकल दुःखोंके नहीं होनेहीको योगकहते हैं न कहौकैसे दुःखोंके वियोगका नामयोग होसक्ताहै योगनाम तौ किसी पदार्थके मिलनेका नाम लोकमें प्रसिद्धहै तौकहतेहैं कि दर्शशब्दके तुल्य विपरीत लक्षणा करकेयहां वियोगहीको योगकहते हैं जैसे दर्शशब्दके अक्षरार्थसे यह प्रतीतहोताहै जिसमें चन्द्रदर्शनहोय और विपरीतलक्षणा करके अर्थात् उलटे अर्थकरकै तो जिसतिथिमें चन्द्रमाका लेशमात्र भी दर्शन न होय उसको दर्श कहते हैं अर्थात् अमावास्याका नामकोशमें दर्शशब्द प्रसिद्धहै तैसेयहां भी दुःखोंके वियोगहीको योगशब्द कहताहै अबयोग फलका उपसंहार करके अर्थात् समाप्ति करकै फिर प्रकारान्तर करकै अर्थात् और प्रकार करके योगके उपदेश का आरम्भ करतेहैं भगवान् अर्थात् जैसेकोई योगाभ्यासमें प्रवृत्तहुआ और

जैसाकुछ योगका फलकहा है कि जिस आनन्दको प्राप्तहोके फिर किसी पदार्थकी इच्छाही न होना सोफल उसयोगीको नहीं दिखाई पड़ा तौ फिर उसमें क्लेशको देखकरके योगाभ्याससे निवृत्ति प्राप्तहुई इससे भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन सो योग निश्चय करके उसयोगीका निर्वेद रहित चित्त करके करनेही योग्यहै अर्थात् इतनेदिन करते हमकोहुये इसमेंतो कुछ हुआ ही नहीं अबक्याहोना है ऐसा निर्वेद नामदुःख बुद्धि न करै किन्तु अवश्य हमको पूरेपूरे योगकी प्राप्तिमें जैसाकुछ फलकहाहै सो होगाहीहै ऐसे निश्चयसे योगाभ्यास अवश्य कर्त्तव्यहै ॥ २३ ॥

संकल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समंततः॥२४॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च सङ्कल्पेति सङ्कल्पप्रभवान् सङ्कल्पः प्रभवो येषां कामानां ते सङ्कल्पप्रभवाः कामास्तान् कामांस्त्यक्त्वा परित्यज्य सर्वानशेषतो निर्लेपेन किञ्च मनसैव विवेकयुक्तेन इन्द्रियग्राममिन्द्रिय समुदायं विनियम्य नियमनंकृत्वा समन्ततः समन्तात् ॥ २४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

इतश्च योगस्य कर्त्तव्यत्वमिति प्रतिजानीते किञ्चेति केन क्रमेण कर्त्तव्यत्वमित्यपेक्षायामाह संकल्पेति संकल्पः शोभनाध्यासः सर्वानित्युक्त्वा पुनरशेषत इति पुनरुक्ति रित्याशङ्क्याह निर्लेपेनेति यथा शेषो न भवति तथा सर्वेषां कामानां शोभनाध्यासाधीनानां त्यागस्य योगानुष्ठानशेषत्ववद्विवेकयुक्तेन मनसा करणसमुदायस्य सर्वतो नियमनमपि तत्र शेषत्वेन कर्त्तव्यमित्याह किञ्चेति ॥ २४ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च संकल्पेति संकल्पात् प्रभवो येषां तान् योगप्रतिकूलान् सर्वान् कामानशेषतः सवासनांस्त्यक्त्वा मनसैव विषयदोषदर्शिना सर्वतः प्रसरन्तमिंद्रियसमूहं विशेषेण नियम्य योगी योक्तव्य इति पूर्वेणान्वयः ॥ २४ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन संकल्पसे उत्पन्नहुये जे संपूर्णकाम अर्थात् अनेक पदार्थों की इच्छा तिनसबोंको त्यागकरकै और विवेकयुक्त जो मन तिस करकै इन्द्रियोंके समूहको सबतरफसे नियमनकरकै ॥ २४ ॥

शनैःशनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थंमनःकृत्वा नकिंचिदपिचिन्तयेत् ॥ २५॥

शङ्करभाष्यम्।

शनैरिति शनैःशनैर्नसहसा उपरमेत् उपरतिं कुर्य्यात् कया बुद्ध्या किं विशिष्टया धृतिगृहीतया धृत्या धैर्य्येण गृहीतया धैर्य्येण युक्तयेत्यर्थः आत्मनि संस्थितं आत्मैव सर्वं न ततोऽन्यत्

किञ्चिदस्तीत्येवमात्मसंस्थं मनःकृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् एष योगस्य परमो विधिःत-त्रैवमात्मसंस्थंमनः कर्तुं प्रवृत्तो योगी ॥ २५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

कामत्यागद्वारेणेन्द्रियाणि प्रत्याहृत्य किं कुर्यादिति शंकितारं प्रत्याह शनैःशनैरि-ति सहसा विषयेभ्यः सकाशादुपरमे मनसो न स्वास्थ्यं सम्भवतीत्यभिप्रेत्याह न सह-सेति तत्र साधनं धैर्ययुक्ता बुद्धिरित्याह कया इत्यादिना भूम्यादीऽव्याकृतपर्यन्ताः प्रकृ-तीरष्टौ पूर्वत्र पूर्वत्र धारणं कृत्वोत्तरक्रमेण प्रविलापयेदिति भावः अव्यक्तमात्मनि प्र-विलाप्य आत्ममात्रनिष्ठंमनो विधाय चिन्तयितव्याभावादतिस्वस्थो भवेदित्याह आत्मे-ति तत्र संस्थितिमेव मनसो विवृणोति आत्मैवेति योगविधिमुपक्रम्य किमिदमुक्तमि-त्याशङ्क्याह एष इति यन्मनसो नैश्चल्यमिति शेषः ननु मनसः शब्दादिनिमित्तानुरोधेन रागद्वेषवशादत्यंतचञ्चलस्यास्थिरस्य तत्र तत्र स्वभावेन प्रवृत्तस्य कुतो नैश्चल्यं नैश्च-न्त्यञ्चेति तत्रेति योगप्रारम्भः सप्तम्यर्थ एवशब्देन मनसैवेत्यादि उक्तप्रकारो गृह्यते ॥ २५ ॥

स्वामिकृतटीका।

यदितु प्राक्तनकर्म्मसंस्कारेण मनो विचलेत्तर्हि धारणया स्थिरीकुर्यादित्याह श-नैरिति धृतिर्धारणा तया गृहीतया वशीकृतया बुद्ध्या आत्मसंस्थमात्मन्येव सम्यक् स्थितं निश्चलं मनः कृत्वा उपरमेत् यत् शनैरभ्यासक्रमेण नतु सहसा उपरमस्वरूपमाह न किञ्चिदपि चिन्तयेत् निश्चले मनसि स्वयमेव प्रकाशमानपरमानन्दनिर्वृतोभूत्वा आत्मध्यानादपि न निवर्त्तेत इत्यर्थः ॥ २५ ॥

नवलभाष्य।

धैर्य्यकरकै युक्त जो बुद्धि तिसकरकै धीरेधीरे उपरामको प्राप्तहोय और फिर आत्मामें स्थितमनको करकै अर्थात् आत्माहीसबहै और तिससेव्यति-रिक्त और कुछनहीं है ऐसा निश्चयकरिकै फिरकुछ चिन्तननकरै जोइसप्र-कार आत्मामें मनको स्थिरकरनेको योगी प्रवृत्तहुआहै यही योगकी परम विधिहै ॥ २५ ॥

यतोयतोनिश्चलति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततोनियम्यैतदात्मन्येववशंनयेत्॥ २६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यत इति यतो यतो यस्माद् यस्मान्निमित्ताच्छब्दादेर्निश्चलति निर्गच्छति स्वभावदोषान्मन श्चञ्चलमसर्थं चलमतएवास्थिरं ततस्ततस्तस्माच्छब्दादेर्निमित्तान्नियम्य तत्तन्निमित्तं याथा-त्म्यनिरूपणेनाभासीकृत्य वैराग्यभावनया चैतन्मनआत्मन्येव वशं नयेत् आत्मवश्यतामापा-दयेत् ॥ २६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

स्वाभाविको दोषो मिथ्याज्ञानाधीनो रागादिशब्दादेर्मनसो नियमनं कथमित्याश-ङ्क्याह तत्तन्निमित्तमिति याथात्म्यनिरूपणं क्षयिष्णुत्वदुःखसंमिश्रत्वाद्यालोचनं तेन तत्र तत्र वैराग्यभावनया तत्तदाभासीकृत्य ततस्ततो नियम्यैतन्मन इति सम्बन्धः ॥ २६ ॥

स्वामिकृतटीका।

एवमपि रजोगुणवशाद्यदि मनः प्रचलेत्तर्हि पुनः प्रत्याहारेण वशीकुर्य्यादित्याह-यतोयत इति स्वभावतश्चञ्चलं धार्य्यं माणमप्यस्थिरं मनो यं यं विषयं प्रति निर्गच्छति ततस्ततः प्रत्याहृत्य आत्मन्येव स्थिरं कुर्य्यात् ॥ २६ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन चंचल और इसीसे अस्थिरऐसा जो मन सो जिसजिस शब्दादि विषयके निमित्तसे बाहर निकल करके जाताहै तिसतिस शब्दादि विषयरूप निमित्तसे नियमन करके अर्थात् उसशब्दादि निमित्तका जैसा कुछ स्वरूपहै तिसके निरूपण करके मिथ्याका निश्चय करके वैराग्यकी भावना करके इसमनको आत्माहीमें वशकरे अर्थात् आत्माकी आधीनता को प्राप्तकरै ॥ २६ ॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

एवं योगाभ्यासबलादयोगिन आत्मन्येव प्रशाम्यति मनः प्रशान्तेति प्रशान्तमनसं प्रकर्षेण शान्तं मनो यस्य सः प्रशान्तमनास्तं प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमं निरतिशयमुपैत्युपगच्छति शान्तरजसं प्रक्षीणमोहादिक्लेशरजसमित्यर्थः ब्रह्मभूतं जीवन्मुक्तं ब्रह्मैव सर्व्वमित्येवं निश्चयवन्तं ब्रह्मभूतमकल्मषं धर्म्माऽधर्म्मादिवर्ज्जितम् ॥ २७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

मनसो वशीकरणेनोपशमे किं स्यादित्याह एवमिति योगाभ्यासो विषयविवेकद्वारा मनोनिग्रहाद्यावृत्तिः प्रशान्तमात्मन्येव प्रलीनमिति यावत् मनस्तद्वृत्त्योरभावे स्वरूप भूतसुखाविर्भावस्य स्वापादौ प्रसिद्धं द्योतयितुं हिशब्दः मोहादिक्लेशप्रतिबन्धाद्योगि नंयथोक्तसुखाप्राप्तिमाशङ्क्य मनोविलयमुपेत्य परिहरति प्रशान्तेति तस्यास्मदादिविलक्षणत्वमाह ब्रह्मभूतमिति अस्मदादेरपि स्वतो ब्रह्मभूतत्वेन तुल्यं जीवन्मुक्तत्वमित्याशङ्क्याह ब्रह्मैवेति धर्माधर्मप्रतिबन्धादयुक्ता यथोक्तसुखप्राप्तिरित्याशङ्क्योक्तम् अकल्मष मिति ॥ २७ ॥

स्वामिकृतटीका।

एवं प्रत्याहारादिभिः पुनः पुनर्मनोवशीकुर्वन्तं रजोगुणक्षये सति योगसुखं प्राप्नोतीत्याह प्रशान्तेति एवमुक्तप्रकारेण शान्तरजो यस्य तं अतएव प्रशान्तं मनो यस्य तमेनं निष्कल्मषं ब्रह्मत्वं प्राप्तं योगिनमुत्तमंसुखं समाधिसुखं स्वयमेवोपैति प्राप्नोति॥२७॥

नवलभाष्य।

इसप्रकार योगाभ्यासके बलकरके योगीका मन आत्माहीमें शान्तिको प्राप्तहोताहै इस आशयसे कहते हैं प्रशान्तेति हे अर्जुन प्रकर्ष करके शान्त हुआहैचित्तजिसका औरनष्टहुआहै मोहादि क्लेशरूप रजोगुण जिसका और

ब्रह्महीसब है ऐसे निश्चयकरके युक्त अर्थात् जीवन्मुक्त और धर्म और अधर्मादिकल्मषकरिकैरहित ऐसा जोयोगी तिसको उत्तमसुख अर्थात् निरतिशय सुख प्राप्तहोताहै ॥ २७ ॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

शंकरभाष्यम्।

युञ्जन्निति युञ्जन्नेवं यथोक्तेन क्रमेण योगी योगान्तराय वर्जितः सदा सर्वदात्मानं युंजन् विगतकल्मषो विगतपापः सुखेनानायासेन ब्रह्मसंस्पर्शं ब्रह्मणा परेण संस्पर्शो यस्य तद्ब्रह्मसंस्पर्शं सुखमत्यन्तमुत्कृष्टं सुखं निरतिशयं सुखमश्नुते व्याप्नोति ॥ २८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

उत्तमं सुखं योगिनो भवतीत्युक्तं तदेव स्फुटयति युंजन्निति क्रमो यथोक्तोमनसेन्द्रियग्राममित्यादि योगान्तरायो रागद्वेषादि सदात्मानं युंजन्निति सम्बन्धः ॥ २८ ॥

स्वामिकृतटीका।

ततश्च कृतार्थी भवतीत्याह युंजन्निति एवमनेन प्रकारेण सर्वदा आत्मानं मनो युंजन् वशीकुर्वन् विशेषेण सर्वात्मना विगतं कल्मषं यस्य स योगी सुखेनानायासेन ब्रह्मणः संस्पर्शोऽविद्यानिवर्तकः साक्षात्कारस्तदेवात्यन्तं सर्वोत्तमं सुखमश्नुते जीवन्मुक्तो भवतीत्यर्थः ॥ २८ ॥

नवलभाष्य।

और हेअर्जुन दूरहोगयेहैं पापजिसके ऐसा जो योगी सो सदासब कालमें समाधिस्थ चित्तको करताहुआ अनायासहीसे ब्रह्मकरके संस्पर्श जिसका ऐसा जो अत्यन्त सुख तिसको प्राप्तहोताहै ॥ २८ ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

इदानीं योगस्य यत् फलं ब्रह्मैकत्वदर्शनं सर्वसंसारविच्छेदकारणं तत्प्रदर्श्यते सर्वेति सर्वभूतस्थं सर्वेषु भूतेषु स्थितं स्वमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ब्रह्मादीनिस्तम्बपर्यन्तानि च सर्वभूतान्यात्मन्येकतां गतानि ईक्षते पश्यति योगयुक्तात्मा समाहितान्तःकरणः सर्वत्र समदर्शनःसर्वेषु ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु विषमेषु सर्वभूतेषुसमं निर्विशेषं विक्रियारहितं ब्रह्मात्मैकत्वविषयं दर्शनं ज्ञानं यस्य स सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

पापपदमुपलक्षणं पुण्यस्यापि संस्पर्शस्तादात्म्यमेकरसं उत्कर्षो विषयासंस्पर्शो योगमनुतिष्ठतो ब्रह्मभूतस्य सर्वानर्थनिवृत्तिनिरतिशयसुखप्राप्तिलक्षणो द्विविधो मोक्षो हेतुनाकेन स्यादिति शंकमानं प्रत्याह इदानीमिति स्वमात्मानमीक्षत इति सम्बन्धः सर्वभूतान्यपितद्विशेषणत्वेन पश्यति चेन्न शुद्धस्तु ज्ञानमिति नाविद्यानिवृत्तिरित्याशङ्क्याह सर्वभूतानीतिउक्ते दर्शने चित्तसमाधानोपायं दर्शयति योगेति विषमेषु उपाधिषु तदनुरोधाद्विषममेवदर्शनम् उपदर्शितदर्शनप्रतिबन्धकं प्रत्युदस्यति सर्वत्रेति॥ २९ ॥

स्वामिकृतटीका।

ब्रह्मसाक्षात्कारमेव दर्शयति सर्वभूतस्थमिति योगेनाभ्यस्यमानेन युक्तात्मा समाहितचित्तः सर्वत्र समं ब्रह्मैव पश्यतीति तथा स स्वमात्मानमविद्याकृतदेहादिपरिच्छेदशून्यं सर्वभूतेषु ब्रह्मादिस्थावरान्तेष्ववस्थितं पश्यति तानि च आत्मन्यभेदेन पश्यति ॥ २६ ॥

नवलभाष्य।

अबइस समयमें संसारका विच्छेद कारणनाम छूटजानेका कारण जो ब्रह्मका एकत्व दर्शन रूपयोगका फलसो दिखायाजाता है (सर्वेति) हेअर्जुन योगकरकै एकाग्रहुआहै अन्तःकरण जिसका और सबजगह एकही ब्रह्म है ऐसाहै ज्ञानाजिसको ऐसा जो योगी सो सबप्राणियोंमें स्थित अपने आत्मा को देखताहै और ब्रह्माको आदिलैकै सबप्राणियोंको अपने आत्मामें देखता है ॥ २९ ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वञ्च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

शङ्करभाष्यम्।

एतस्यात्मैकत्वदर्शनस्य फलमुच्यते यो मामिति यो मां पश्यति वासुदेवं सर्वस्यात्मानं सर्वत्र सर्वेषु भूतेषु पश्यति सर्वञ्च ब्रह्मादिभूतजातंमयि सर्व्वात्मनि पश्यति तस्यैवमात्मकत्वदर्शिनः अहमभिरो न प्रणश्यामि न परोक्षतां गमिष्यामि स च मे न प्रणश्यति स च विद्वान् मे समं वासुदेवस्य न प्रणश्यति न परोक्षो भवति तस्य च मम चैकात्मकत्वात् स्वात्माहि नाम आत्मनः प्रिय एव भवति ॥ ३० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

उक्तस्यैकत्वज्ञानस्य फलविकल्पत्वशंकां शिथिलयति एतस्येति तत्रैकत्वदर्शनमनुवदति यो मामिति तत्फलमिदानीमुपन्यस्यति तस्येति ज्ञानानुवादभागं विभजते यो मामिति तत्फलोक्तिभागं व्याचष्टे तस्यैवमिति अनेकत्वदर्शिनोऽपीश्वरो नित्यत्वान्न प्रणश्यतीत्याशङ्क्याह नेति अहं परमानन्दो न तं प्रति परोक्षो भवामीत्यर्थः स चेत्यादि व्याचष्टे विद्वानिति विद्वानिवाविद्वानपीश्वरस्य न नश्यतीत्याशङ्क्योक्तं नेत्यादिना अविदुषश्च स्वरूपेण सतोऽपि व्यवहितत्वादविद्यया नष्टप्रायतेत्यर्थः ईश्वरस्य विदुषश्च परस्परमपरोक्षत्वे हेतुमाह तस्य चेति आत्मैकत्वेऽपि कथं मिथोऽपरोक्षत्वं तत्राह स्वात्मेति ॥ ३० ॥

स्वामिकृतटीका।

एवं भूतात्मज्ञाने च सर्वभूतात्मतया मदुपासनं मुख्यकारणमित्याह यो मामिति मां परमेश्वरं सर्वत्र भूतमात्रे यः पश्यति सर्वं च प्राणिमात्रं मयि यः पश्यति तस्याहं न प्रणश्यामि अदृश्यो न भवामि स च ममादृश्यो न भवति प्रत्यक्षो भूत्वा कृपादृष्ट्या तं विलोक्यानुगृह्णामीत्यर्थः ॥ ३० ॥

नवलभाष्य।

अबइस आत्माके एकत्व दर्शनका फलकहते हैं कि (योमामिति) हे अर्जुन सब प्राणियोंका आत्मा जो मैं वासुदेव तिसको सब प्राणियों में देखताहै और सब ब्रह्मादिक प्राणियोंको मेरेबिषे देखताहै तिस आत्माके एकत्वदर्शी पुरुषको मैं जो ईश्वर सो कभी परोक्षताको प्राप्त नहींहोताअर्थात् सबकालमें उसको दिखाईहीदेताहूं यहनहीं कि कभीवह मुझकोनदेखै और वहज्ञानी मुझको कभी अदृश्य नहीं होताहै अर्थात् उसको मैं सदा देखाही करताहूं क्योंकि तिसज्ञानीका और मेराआत्मा एकहीहै और अपना आत्मा सबीको प्रियहोताहै ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते ॥ ३१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्माच्चाहमेव स सर्व्वात्मैकत्वदर्शी इत्येतत् पूर्वश्लोकार्थं सम्यग्दर्शनमनूद्य तत्फलं मोक्षोऽभिधीयते सर्व्वेति सर्वथा सर्वप्रकारैर्वर्त्तमानोऽपि सम्यग्दर्शी योगी मयि वैष्णवे परमे पदे वर्त्तते नित्यमुक्त एव सः न मोक्षंप्रति केनाचित् प्रतिबध्यत इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

विद्वदीश्वरयोरेकत्वानुवादेन विद्याफलं विवृणोति यस्माच्चेति तस्मादेकदर्शनार्थं प्रयतितव्यमिति शेषः पूर्वार्द्धेनानूद्योत्तरार्द्धेन फलविधिरिति मत्वाह इत्येतदिति रागादिरहितस्य यमनियमादिसंस्कारवतः स्वैरप्रवृत्त्यसम्भवेऽपि तामंगीकृत्य ज्ञानं स्तौति सर्वथेति प्रतिभासतोऽपि यथेष्टचेष्टांगीकारे कुतो ज्ञानवतो नित्यमुक्तत्वं प्रातीतिकदुराचारप्रतिबन्धादित्याशङ्क्याह न मोक्षमिति ॥ ३१ ॥

स्वामिकृतटीका।

नचैवम्भूतो विधिकिंकरः स्यादित्याह सर्वस्थितमिति सर्वभूतेषु स्थितं नामाभेदमास्थित आश्रितो यो भजति स योगी ज्ञानी सन् सर्वथा कर्मपरित्यागेनापि वर्तमानो मय्येव वर्तते मुच्यते न तु भ्रश्यतीत्यर्थः ॥ ३१ ॥

नवलभाष्य।

जिसकारणसे सबमें आत्माका एकत्व देखनेवाला मैंहीहूं इससम्यग्दर्शनरूप पहिले श्लोकके अर्थको अनुवाद करिकै उसका फल जो मोक्षसो अब दिखायाजाताहै (सर्वेति) हेअर्जुन जो पुरुष एकत्वरूप ज्ञानको आश्रय करकै सब प्राणियोंमें स्थित जो मैंहूं तिसका भजन करताहै सो सबप्रकार करकै वर्त्तमान भी है अर्थात् किसीवर्ण आश्रममें वर्त्तमान भीहै परन्तु मेरे हीबिषे वर्त्तताहै अर्थात् वैष्णवरूप जो परमपद तिसमें स्थित नित्य मुक्तही सोहै मोक्षके प्रतिबन्ध नहींहोता है ॥ ३१ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

किञ्चान्यत् आत्मेति आत्मौपम्येन आत्मा स्वयमेव उपमीयत इति उपमा तस्याः उपमायाः भाव औपम्यं तेन आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतेषु समं तुल्यं पश्यति योऽर्जुन स च किं समं पश्यतीत्युच्यते यथा मम सुखमिष्टं तथा सर्वप्राणिनां सुखमनुकूलं वा शब्दश्चार्थे यदिवा यच्च दुःखं मम प्रतिकूलमनिष्टं यथा तथा सर्वप्राणिनां दुःखमनिष्टं प्रतिकूलमित्येवमात्मौपम्येन सुख दुःखे अनुकूलप्रतिकूले तुल्यतया सर्वभूतेषु समं पश्यति न कस्यचित् प्रतिकूलमाचरत्यहिंसक इत्यर्थः य एवमहिंसकः सम्यग्दर्शननिष्ठः स योगी परम उत्कृष्टो मतो अभिप्रेतः सर्व्वयोगिनां मध्ये ॥ ३२ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

स्वैराचरणस्याप्रतिबन्धकत्वकथनात् परपीड़नस्य योगिनः सम्यग्दर्शनं प्रत्यगप्रतिबन्धकत्वप्रसक्तावुक्तं किञ्चेति अन्यदपि किञ्चिदुच्यते परमयोगिनो निर्देशद्वारा योग माहात्म्यमित्यर्थः उपमैवौपम्यमात्मा च तदौपम्यञ्च तेन सर्वभूतेषु यः समं पश्यतीत्युक्तं तदेव समदर्शनं प्रश्नपूर्वकं विवृणोति किमित्यादिना विकल्पार्थत्वं वारयति वा शब्दइति उपदर्शितसमदर्शनफलमभिलपति न कस्यचिदिति किमपेक्षया तस्य परमत्वं तत्राह सर्वेति ॥ ३२ ॥

स्वामिकृतटीका ।

एवञ्च मां भजतां योगिनां मध्ये सर्वभूतानुकम्पी श्रेष्ठइत्याह आत्मौपम्येनेतिआत्मौपम्येन स्वसादृश्येन यथा मम सुखंप्रियं दुःखञ्चाप्रियं तथान्येषामपीति सर्वत्र समं पश्यन् सुखमेव सर्वेषां यो वाञ्छति न तु कस्यापि दुःखंस योगीश्रेष्ठोममाभिमतइत्यर्थः ॥ ३२ ॥

नवलभाष्य ।

और हेअर्जुन जो योगी अपने आत्माके तुल्यसब प्राणियोंमें सुख और दुःख इनको समान देखताहै अर्थात् जैसे मुझको सुख इष्ट है तैसेही सब प्राणियों को सुखही अनुकूल है और जो दुःख मुझको अनिष्ट है अर्थात् प्रतिकूल है जैसे तैसेही सब प्राणियोंको दुःख अनिष्ट प्रतिकूल है इसप्रकार अपने दृष्टान्त करके सुख दुःख इनको अनुकूल प्रतिकूल भावकरके तुल्यही सब प्राणियों में देखता है और ऐसा देखकरके किसीका प्रतिकूल आचरणनहीं करता है अर्थात् किसीकी हिंसा नहीं करता है इसप्रकार किसी प्राणीकी नहीं हिंसा करनेवाला और पूर्वोक्त सम्यक् दर्शनरूप ज्ञान में स्थित जो योगी सोसब योगियोंके मध्यमें मुझको श्रेष्ठअभिमत है॥३२॥

अर्जुनउवाच योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामिचञ्चलत्वात् स्थितिंस्थिराम्॥३३॥

शङ्करभाष्यम् ।

एतस्य यथोक्तस्य सम्यग्दर्शनलक्षणस्य योगस्य दुःसम्पाद्यतममालक्ष्य शुश्रूषुः ध्रुवं तत्प्रा

त्युपायमर्जुनउवाच योऽयमिति योऽयंयोगस्त्वया प्रोक्तः साम्येत समत्वेन हे मधुसूदन एतस्य योगस्याहं न पश्यामि नोपलभे चञ्चलत्वान्मनसः किं स्थिरामचलां स्थितिं प्रसिद्धमेतत्॥ ३३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

मनश्चञ्चलमस्थिरमित्युपश्रुत्य निर्विशेषे चित्तस्थैर्यं दुःशक्यमिति मन्वानस्तदुपाय बुभुत्सया पृच्छतीति प्रश्नमुत्थापयति एतस्येति तत्प्राप्त्युपायं शुश्रूषुरिति मन्वानःमन श्चञ्चलत्वेऽपि तन्निग्रहद्वारा योगस्थैर्यंसम्पाद्यतामित्याशङ्क्याह एतस्येति प्रसिद्धमिति-सम्बन्धः ॥ ३३ ॥

स्वामिकृतटीका।

उक्तलक्षणस्य योगस्यासम्भवं मन्वानोऽर्जुन उवाच योऽयमिति साम्येन मनसो लय विक्षेपशून्यतया केवलात्माकारावस्थानेन योऽयं योगस्त्वया प्रोक्त एतस्य योगस्य स्थिरां दीर्घकालां स्थितिं न पश्यामि मनसश्चञ्चलत्वात् ॥ ३३ ॥

नवलभाष्य।

अब अर्जुन पूर्वोक्त जो यह सम्यक् दर्शनरूपयोग अर्थात् परमात्मज्ञान रूप योग तिसकी दुष्करता को अर्थात् दुःख करके करनेकी योग्यता को विचार करके शीघ्रही उसके प्राप्तिके उपायकी सुननेकी इच्छाकरके पूछता है (योयमिति) हे मधुसूदन जो योग आपने सबजगह सम दृष्टिकरके कहा अर्थात् ब्रह्मदृष्टि करके कहा इस योगकी मैं मनकी चञ्चलता से स्थिर स्थिति नहीं देखताहूं अर्थात् मनकी स्थिरताके आधीन योग है और मन का स्वभाव है चञ्चल इससे योगकी स्थिरताको नहीं देखताहूं ॥ ३३ ॥

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ ३४॥

शङ्करभाष्यम्।

चञ्चलमिति चञ्चलं हि मनः कृष्ण इति कृषतेर्विलेखनार्थस्य रूपं भक्तजनपापादिदोषा कर्षणात् कृष्ण हि यस्मान्मनः चञ्चलं न केवलमत्यर्थं चञ्चलं प्रमाथिच प्रमथनशीलं प्रमथ्नाति शरीरामिन्द्रियाणि च विक्षिपति परवशीकरोति किञ्च बलवत् प्रबलं न केनचिन्नियन्तुं शक्यं दुर्निवारत्वात् किञ्च दृढं तन्तुनागव दच्छेद्यंतस्यैवम्भूतस्य मनसोऽहं निग्रहं रोधं मन्ये वायोरिव यथा वायोर्दुष्करो निग्रहस्ततोऽपि मनसो दुष्करं मन्य इत्यभिप्रायः ॥ ३४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

मनसश्चञ्चलत्वेपि कृष्णपदपरिनिःपतितप्रकारं सूचयति कृष्ण इतीति कथं कर्षकत्व माप्तकामस्य भगवतः सम्भवतीत्याशङ्क्याह भक्तेति ऐहिकामुष्मिकसर्वसम्पदामाकर्षण-शीलत्वाच्चेति द्रष्टव्यं प्रमथ्नाति क्षोभयति तदेव क्षोभकत्वं प्रकटयति विक्षिपतीति दुर्निवारत्वमभिप्रेताद्विषयादाक्रष्टुमशक्यत्वं विशेषणान्तरमाह किञ्चेति अच्छेद्यत्वं विशेषणान्तरमाह किञ्च दृढमिति तन्तुनागो वरुणपाशशब्दितो जलचारी पदार्थोत्यन्तदृढ तया छेत्तुमशक्यत्वेन प्रसिद्धो विवक्षितः वायोरित्युक्तं व्यनक्ति यथेति॥ ३४ ॥

स्वामिकृतटीका।

एतत् स्फुटयति चञ्चलमिति चञ्चलं स्वभावेनैव चपलं किञ्च प्रमाथि प्रमथनशीलं देहेन्द्रियक्षोभकरमित्यर्थः किञ्च बलवद्विचारेणापि जेतुमशक्यं किञ्च दृढं विषयवासनानुबन्धतया दुर्भेद्यम् अतो यथाऽकाशे दोधूयमानस्य वायोः कुम्भादिषु निरोधनमशक्यं तथाऽहं तस्य मनसो निग्रहं निरोधं दुष्करं सर्वथा कर्तुमशक्यं मन्ये ॥ ३४ ॥

नवलभाष्य।

हे कृष्ण × अर्थात् हे भक्तजनोंके पापादिदोषों के खैंचनेवाले नाम दूर करनेवाले जिससे यह मन बड़ाचञ्चल है और केवल चञ्चलही होय सो नहीं किन्तु इन्द्रिय और शरीर इनको मथन करनेवाला है अर्थात् कुमार्ग में डालकरके वश करनेवाला है और फिर यह बलवान्भीहै अर्थात् अत्यन्त प्रबल है दुर्निवार होनेसे किसीके वश करनेको शक्यनहीं है और फिर दृढ़ है तन्तुनागके सदृश छेदनकरने को शक्यनहीं है अर्थात् तन्तुनागनाम वरुणकी फांसीका है सो वह जलमें पड़ी रहती है किसी तरहसे उसको कोई काटनहीं सक्ता है तैसेही इसमनके छेदनकरनेको किसीकी सामर्थ्य नहीं है तिस मनका निग्रह एक जगह रोककरके रखना मैं पवन की तरहसे दुष्कर मानता हूं अर्थात् सब जगह चलताहुआ जो पवन तिसको कोई जैसे एक किसी स्थानमें नहीं रोकसके तैसे मनका बश करना तिस पवनसेभी मैं दुष्कर मानता हूं ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

श्रीभगवानुवाच एवमेतद्यथा ब्रवीषि असंशयं नास्ति संशयो मनो दुर्निग्रहं चञ्चलमित्यत्र हे महाबाहो किन्तु अभ्यासेन तु अभ्यासो नाम चित्तभूमौ कस्याञ्चित् समानप्रत्ययावृत्तिश्चित्तस्य वैराग्येण च गृह्यते वैराग्यं नाम दृष्टादृष्टेषु भोगेषु दोषदर्शनाभ्यासात् वैतृष्ण्यं विषयेषु वितृष्णा वैराग्यं तेन च वैराग्येण गृह्यते विक्षेपरूपः प्रचारश्चित्तस्यैवं तन्मनो गृह्यते निरुध्यत इत्यर्थः ॥ ३५ ॥

×यहांव्याकरणकी रीतिसे कृषधातुका अर्थ विलेखनहै अर्थात् खैंचना और आकर्षण करनाहै तिससेनक् प्रत्ययहोताहै तौ कृष्ण ऐसाशब्द सिद्धहोताहै तौ इसका अर्थ यह हुआ कि जो स्मरण करनेवाले भक्तोंके मनको अपनी तरफखींचै अथवा भक्तोंके कष्टको दूरकरै अथवा भक्तोंकेलिये नानाप्रकारकी संपदाओंका आकर्षणकरै सो कृष्ण कहाता है इसप्रकारसे कृष्णशब्द करकै परमात्माही कहाजाताहै तौ यहां अर्जुनका यह अभिप्राय है कि यद्यपि मनचंचल और बलवान्भी है परन्तु आपमें आकर्षण शक्तिहै इससे आप ही इसको खैंचिकै वशकरनेको समर्थहो विनाआपकी कृपा इसका वशहोना मेरेसमुझ में नहींआता है ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

प्रश्नमंगीकृत्य प्रतिवचनमुत्थापयति श्रीभगवानिति कुत्र संशयराहित्यं तत्राह्मन इति कथं तर्हि मनोनिरोधो भवति तत्राह किंत्विति अभ्यासस्वरूपं सामान्येन निदर्शयति अभ्यासो नामेति कस्याञ्चिच्चित्तभूमावित्यविशेषितो ध्येयो विषयो निर्दिश्यते समानप्रत्ययावृत्तिविजातीयप्रत्ययान्त रितेति शेषः चित्तस्येतिषष्ठीप्रत्ययस्यतद्विकारत्वद्योतनार्थं वैराग्यस्वरूपं निरूपयति वैराग्यमिति तेषु वैतृष्ण्यं वैराग्यं नामेति सम्बन्धः तत्र हेतुं सूचयति दोषेति विषयेषु वितृष्णा विषयषु दोषदर्शनमभ्यस्यते तेन वैतृष्ण्यं जायते तेन निगृह्यमाणं निर्दिशति विक्षेपेति तस्मिन् गृहीते निरुद्धे मनोनिरोधेऽस्य किं स्यादित्यपेक्षायामाह एवमिति अभ्यासहेतुकवैराग्यद्वारा चित्तप्रचारनिरोधे निरुद्धवृत्तिकं मनो विषयविमुखमन्तर्निष्ठं भवतीत्यर्थः ॥ ३५ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदुक्तंचञ्चलादिकमंगीकृत्यैव मनोनिग्रहोपायं श्रीभगवानुवाच असंशयमितिचञ्चलत्वादिना मनो निरोद्धुमशक्यमिति यद्वदसि एतन्निःसंशयमेव तथापि तु अभ्यासेनपरमात्माकारया वृत्त्या विषयवैतृष्ण्यं नच गृह्यते अभ्यासेनालं प्रतिबन्धाद्वैराग्येण च विक्षेपप्रतिबन्धादुपरतवृत्तिकं सत् परमात्माकारेण परिणतं तिष्ठतीत्यर्थः तदुक्तं योगशास्त्रे मनसो वृत्तिशून्यस्य ब्रह्माकारतयास्थितिः या सम्प्रज्ञातनामासौ समाधिरभिधीयत इति ॥ ३५ ॥

नवलभाष्य।

अब श्रीभगवान् अर्जुन के प्रश्नका उत्तर कहते हैं कि हे लम्बायमान भुजायुक्त अर्जुन जैसे तू कहता है सो तैसेही है अर्थात् मनचञ्चल है और दुःख करके वशकरने योग्यभी है इस तेरे कहने में कुछसन्देह नहीं है तौभी हे कुन्तीकेपुत्र अभ्यास करके और वैराग्य करके यह मनग्रहणकिया जाता है नाम वश कियाजाता है तहां अभ्यास उसको कहते हैं कि चित्तकी किसी भूमिका में समान प्रत्यय वृत्तिहोना अर्थात् जैसे ध्येय आत्मस्वरूपका प्रत्यय करके अर्थात् निश्चय करके चित्तका प्रवाहहुआ तिससे विरुद्धदेहादिपदार्थोंका चित्तमें नहींलाना और यहां देखे जे सरसस्वादु अन्न भोजन स्त्री पुत्रादि भोग और नहीं देखे जे स्वर्ग के दिव्य गन्ध अप्सरा आदि भोग तिन्होंमें मिथ्यात्वके अर्थात् झूंठपनेके और परिणाम में दुःखदायी पने के निश्चयसे इनमें भोगकी तृष्णाका नहींहोना उसको वैराग्य कहते हैं तिस वैराग्यकरके और पूर्वोक्त जो अभ्यास तिस करके विक्षेपरूप चित्तके प्रचार के नहीं होनेसे रुकाहुआ जो मन सो विषयोंसे विमुख आत्म सुखमेंस्थित होताहै अर्थात् विनाआनन्द तौ मन कहींजायहीनहीं सक्ता तौ जब धीरे धीरे विषयों से निवृत्त हुआ जैसेजैसे एकाग्र होताजाता है तैसेतैसे इसको आत्मानन्दकी प्रतीतिहुई और सत्संग वशसे और प्रत्यक्षभी विषयीलोगों को दारुण विपत्तिके देखनेसे जैसीजैसी विषयों में दोषदृष्टि बढ़ती है तैसे

तैसे उन विषयों से जुदाहोताहुआ योगीका चित्त अपने आनन्द के लिये फिर समाधिहीमें स्थित होताहै यह भगवान्का अभिप्राय है ॥ ३५ ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप्य इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥ ३६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यः पुनरसंयतात्मा तेन असंयतेति असंयतात्मना अभ्यासवैराग्याभ्यां असंयत आत्मा अन्तःकरणं यस्य सोऽयमसंयतात्मा तेनाऽसंयतात्मना योगो दुःप्रापो दुःप्राप्य इति मे मतिः यस्तु पुनर्वश्यात्मा अभ्यासवैराग्याभ्यां वश्यमापादित आत्मा मनो यस्य सोऽयं वश्यात्मा तेन तु यतता भूयोऽपि प्रयत्नं कुर्वता शक्योऽवाप्तुं योग उपायतो यथोक्तादुपायात् ॥ ३६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

संयतात्मनो योगप्राप्तिः सुलभेत्युक्त्वा व्यतिरेकं दर्शयति यः पुनरिति व्यतिरेकोपन्यासपरं पूर्वार्द्धमनूद्य व्याकरोति असंयतेति पूर्वोक्तान्वयव्याख्यानपरमुत्तरार्द्धं व्याचष्टे यस्त्वित्यादिना अन्तःकरणस्य स्ववशत्वे सिद्धेऽपि वैराग्यादावास्थावता भवितव्यमित्याह यततेति उपायवैराग्यादि पूर्वकोमनो निरोधः ॥ ३६ ॥

स्वामिकृतटीका।

एतावांस्त्विह निश्चय इत्याह असंयतेति उक्तप्रकारेणाभ्यासवैराग्याभ्यां फलसंयत आत्मा चित्तं यस्य तेन योगो दुःप्राप्यः प्राप्तुमशक्यः अभ्यासवैराग्याभ्यां वश्यो वशवर्ती आत्मा चित्तं यस्य तेन पुरुषेण पुनश्चानेनैवोपायेन प्रयत्नं कुर्वता योगः प्राप्तुं शक्यः ॥ ३६ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जो फिर असंयतात्मा पुरुष है अर्थात् अभ्यास और वैराग्य करके जिसने अपना चित्त वशीभूत नहींकिया है उस पुरुष को तौ योग दुष्प्रापही है अर्थात् दुःखसेभी प्राप्तहोनेको योग्यनहीं है यह मेरीबुद्धि है अर्थात् मेरीबुद्धिमें ऐसा निश्चित होताहै और जिस योगीनेतौ अभ्यास और वैराग्य करके अपनामन वशमें किया है वह यत्नकरताहुआ अर्थात् जिसमें फिरभी कभी यहमन विषयोंमें न जानेपावै इसकेलिये सावधान होकै अधिक यत्नकरताहुआ जो योगी तिसको तौ पूर्वोक्त उपायसे योगप्राप्तहोनेको शक्यही है अर्थात् उसको तो प्राप्तहोताही है ॥ ३६ ॥

अर्जुनउवाच।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ ३७॥

शङ्करभाष्यम्।

तत्र योगाभ्यासांगीकरणेन परलोकेहलोकप्राप्तिनिमित्तानि कर्म्माणि संन्यस्तानि योग

सिद्धिफलं च मोक्षसाधनं सम्यग्दर्शनं न प्राप्तमिति योगी योगमार्गान्मरणकाले चलिताचेत इति तस्य नाशमाशंक्यार्जुनउवाच अयतिरिति अयतिरप्रयत्नवान् योगमार्गे श्रद्धयाऽस्तिक्यबुद्ध्या योगतो योगादन्तकालेऽपि चलितं मानसं मनो यस्य स चलितमानसो भ्रष्टस्मृतिः सोऽप्राप्य योगसंसिद्धिं योगफलं सम्यग्दर्शनं कां गतिं हे कृष्ण गच्छति ॥ ३७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

प्रशान्तमुत्थापयति तत्रेत्यादिना मनोनिरोधस्य दुःखसाध्यत्वमाशंक्य परिहृते सति प्रष्टापुनरवकाशं प्रतिलभ्योवाचेति सम्बन्धः लोकद्वयप्रापककर्म्मसम्भवे कुतो योगिनोनाशा शङ्केत्याशङ्क्याह योगाभ्यासेति तथापियोगानुष्ठानपरिपाकपरिप्राप्तिसम्यग्दर्शनसामर्थ्यान्माचोपपत्तौ कुतस्तस्य नाशाशंकेति चेन्मैवमनेकान्तरायवत्त्वाद्योगस्येह जन्मनिप्रायेण संसिद्धेरसिद्धिरित्यभिसन्धायाह योगसिद्धीति अभ्युदयनिःश्रेयसवहिर्भावोनाशो योगमार्गे तत्फलस्य सम्यग्दर्शनादिति शेषः तर्हि ततो वहिर्मुखत्वमेवात्यन्तिकसंवृत्तमित्याशंक्याह श्रद्धयेति तर्हि योगमार्गमाश्रयते नेत्याह योगादिति मरणकाले व्याकुलेन्द्रियस्य ज्ञानसाधनानुष्ठानावकाशाभावाद् युक्तं ततश्चलितमानसत्वमित्याशङ्क्याह भ्रष्टेति गम्यत इति गतिः पुरुषार्थः सामान्यप्रश्नमन्तर्भाव्यविशेषप्रश्नो द्रष्टव्यः ॥ ३७ ॥

स्वामिकृतटीका।

अभ्यासवैराग्याभावेन कथञ्चिदप्राप्तसम्यग्ज्ञानः किं फलं प्राप्नोतीत्यर्जुन उवाच अयतिरिति प्रथमं श्रद्धयोपेत एव योगे प्रवृत्तः नतु मिथ्याचारतया ततः परंत्वयतिः सम्यक् न यतते शिथिलाभ्यास इत्यर्थः तथा योगाच्चलितं मानसं विषयप्रवणं चित्तं यस्य मन्दवैराग्य इत्यर्थः एवमभ्यासवैराग्यशैथिल्याद्योगस्य संसिद्धिं फलं ज्ञानमप्राप्य कां गतिं प्राप्नोति ॥ ३७ ॥

नवलभाष्य।

तहां योगाभ्यासही को जिसने सबसे अधिक जानके आश्रयणकिया और इसलोकमें और परलोकमें फलके देनेवाले जे कर्म तिन्होंका त्यागकिया और मोक्षमेंसाधन जो सम्यक् दर्शन ज्ञानरूप योग सिद्धिका फल सोभी प्राप्तहुआ नहीं और मरणसमय में उस योगी का चित्त चलायमान हुआ अर्थात् योगसे रहित हुआ तो तिस योगीके नाशकी आशंका करके अर्जुन पूछता है कि (अयतिरिति) हे कृष्ण जो योगी योगाभ्यास के यत्नसे रहित है अर्थात् जिसका चित्त मरणसमय में समाधि रहित होगया और न उस समय में इन्द्रियोंकी व्याकुलता से योगको करसक्ता है और योगमार्ग में श्रद्धायुक्ततो हैही और मरणसमय में स्मरणहीन हो कै शरीरको छोड़दिया तो योगकाफल जो सम्यक् दर्शन अर्थात् ब्रह्मको जानकै ब्रह्मरूप होजाना तिसको विनाप्राप्तहुये फिर वह कौनगतिको प्राप्तहोता है ॥ ३७ ॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महावाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कच्चिदिति कच्चित् किं नोभयविभ्रष्टः कर्म्ममार्गात् योगमार्गाच्च विभ्रष्टः सन् छिन्ना

भ्रमिव नश्यति किंवा न नश्यति अप्रतिष्ठो निराश्रयो हे महाबाहो विमूढः सन् ब्रह्मणः पथि ब्रह्मप्राप्तिमार्गे ॥ ३८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

प्रश्नमेव विवृणोति कच्चिदिति प्रशस्तप्रश्नार्थत्वं कच्चिदित्यस्यांगीकृत्य व्याचष्टे किमिति उभयविभ्रष्टत्वं स्पष्टयति कर्म्मेत्यादिना वायुना छिन्नं विशकलितमभ्रं यथा नश्यति तद्वदित्याह छिन्नेति नाशाशंकानिमित्तमाह निराश्रय इति कर्म्ममार्गरूपावष्टम्भाभावेऽपि ज्ञानमार्गावष्टम्भस्तस्य भविष्यतीत्याशंक्याह विमूढः सन्निति नहि कर्मिणां प्रतीयमाशंकायुक्ताभिलाषं त्यक्त्वेश्वरे समर्प्यावाककर्म्मानुतिष्ठतो निरुपचारेण तद्भ्रंशवचनासम्भवात् सर्वकर्म्मसंन्यासिनस्तु विहितानां त्यागात् ज्ञातोपायाच्च विच्युतेरनर्थप्राप्तिशंका युक्तेति भावः ॥ ३८ ॥

स्वामिकृतटीका।

प्रश्नाभिप्रायं विवृणोति कच्चिदिति कर्म्मणामीश्वरेऽर्पितत्वादननुष्ठानाच्च तावत् कर्म्मफलं स्वर्गादिकं न प्राप्नोति योगानिष्पत्तेश्चमोचनंप्राप्नोति एवमुभयस्माद् भ्रष्टः अप्रतिष्ठोनिराश्रयः अतएव ब्रह्मप्राप्त्युपाये पथि मार्गे विमूढः सन् कच्चित् किंन नश्यति किंवा नश्यतीत्यर्थः नाशेदृष्टान्तः यथा छिन्नाभ्रं पूर्वस्मादभ्राद्विश्लिष्टमभ्रान्तरमप्राप्तं सन् मध्य एव विलीयते तद्वदित्यर्थः ॥ ३८ ॥

नवलभाष्य।

क्या वह योगी कर्ममार्ग और योगमार्ग इनदोनों मार्गोंसे भ्रष्टहुआ कटेहुये मेघके सदृश नाशको प्राप्तहोता है अथवा नहीं अर्थात् जैसे थोड़ासा बादलकाखण्ड बड़ेबादल मेंसे अलग कटके दूसरे बादल में नहीं मिलने पावता है बीचहीं में पवन के वेगसे बिलायजाता है तैसे वह योगीभी कर्ममार्ग कोतो पहिलेही छोड़चुकाथा और योगभी पूराहोने नहींपाया तो क्या वहउस मेघकेतुल्य नष्टहोजाताहै किंवानहीं नाशको प्राप्तहोताहै क्योंकि वह निराश्रयहै कोई आश्रय उसका दृढ़नहीं हुआहै और हे महाबाहो लंबीभुजाओं करके शोभित कृष्ण जिससे वह ब्रह्मकी प्राप्तिके मार्गमें विमूढ़ है अर्थात् अच्छीतरह जाननेवाला नहींहै ॥ ३८ ॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

शंकरभाष्यम्।

एतादिति एतन्मे मम संशयं कृष्ण छेत्तुमपनेतुमर्हसि अशेषतः त्वदन्यः त्वत्तोन्यः ऋषिर्देवो वा छेत्ता नाशयिता संशयस्यास्य नहि यस्मादुपपद्यते न सम्भवति अतस्त्वमेव छेत्तुमर्हसीत्यर्थः ॥ ३९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यथोपदर्शितसंशयापाकरणार्थमर्जुनो भगवन्तं प्रेरयन्नाह एतदिति मत्तोऽन्यः कश्चिदृषिर्वा देवो वा त्वदीयं संशयं छेत्स्यतीत्याशंक्याह तदन्य इति अन्यस्य संशयच्छेत्तुरभावे फलितमाह अत इति ॥ ३९ ॥

स्वामिकृतटीका।

त्वय्येव सर्वज्ञेनायं मम सन्देहो निरसनीयः त्वत्तोऽन्यस्तु एतत्सन्देहनिवर्तको नास्तीत्याह एतदिति एतत् एतत्छेत्ता निवर्तकः स्पष्टमन्यत् ॥ ३६ ॥

नवलभाष्य।

इससे हेकृष्ण इसमेरे संदेहको निश्शेष करकै अर्थात् सबप्रकारसे आप ही दूरकरनेको योग्यहो और जिससे आपके सिवाय और कोई ऋषि वा देवता इसमेरे संशयका छेदन करनेवाला नहीं संभवहोताहै ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

शङ्करभाष्यम्।

पार्थेति हे पार्थ नैव इहलोके नामुत्र परस्मिन् वा लोके विनाशस्तस्यविद्यते नास्ति नाशो नामपूर्वस्माद्धि न जन्मप्राप्तिः स तस्य योगभ्रष्टस्य नास्ति नहि यस्मात् कारणात् कल्याणकृत् शुभकृत् कश्चिद्दुर्गतिं कुत्सितांगतिं हे तात तनोत्यात्मानं पुत्ररूपेणेति पिता तात उच्यते पितैव पुत्र इति पुत्रोऽपि तात उच्यते शिष्योऽपि पुत्रतुल्य उच्यते यतो गच्छति ॥ ४० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

योगिनो नाशाशंकां परिहरन्नुत्तरमाह भगवानिति यदुक्तमुभयभ्रष्टो योगी नश्यतीति तत्राह पार्थेति तत्र हेतुमाह नहीति योगिनो मार्गद्वयाद्भ्रष्टस्यैहिको नाशः शिष्टगर्हालक्षणो न भवतीति श्रद्धादेः सद्भावात्तथापि कथमामुष्मिकनाशशून्यत्वमित्याशङ्क्य तद्रूपनिरूपणपूर्वकं तदभावं प्रतिजानीते नाशो नामेति तत्र हेतुभागं विभजते नहीत्यादिना उभयभ्रष्टस्यापि श्रद्धेन्द्रियसंयमादेः सामिकृतश्रवणादेश्चाभावादुपपन्नं शुभकृत्त्वं कथं पुत्रस्थानीयः शिष्यः सम्बोध्यते पितुरेव तात शब्दत्वादित्याशङ्क्याह तनोतीति तेन पुत्रस्थानीयस्य शिष्यस्य तातेति सम्बोधनमविरुद्धमित्यर्थः न गच्छति कुत्सितां गतिं कल्याणकरत्वादिति नाशाभावः ॥ ४० ॥

स्वामिकृतटीका।

अत्रोत्तरं श्रीभगवानुवाच पार्थेति सार्द्धैश्चतुर्भिः इह लोके नाश उभयभ्रंशात् पातित्वं अमुत्र परलोके नाशो नरकप्राप्तिस्तदुभयं तस्य नास्त्येव यतः कल्याणकृत् शुभकारी कश्चिदपि दुर्गतिं न गच्छति अयञ्च शुभकारी श्रद्धया योगे प्रवृत्तत्वात् तातेति लोकरीत्या उपलालयन् सम्बोधयति ॥ ४० ॥

नवलभाष्य।

अब भगवान् इस प्रश्नका उत्तर कहतेहैं कि (पार्थेति) हे अर्जुन नतो इसलोकमें औरनपरलोकमें उस योगभ्रष्ट पुरुषका नाशहोताहै अर्थात्पहिले जन्मसेहीन जन्मकी प्राप्ति नहींहोतीहै क्योंकि हे तात जिसकारणसे कोई भी कल्याणके करनेवाला अर्थात् अच्छीबातका करनेवाला दुर्गतिको

नहीं प्राप्तहोताहै अर्थात् निंद्यगतिको नहीं प्राप्तहोताहै और यहां भगवान्ने अर्जुनसे तातकहा तिसका अर्थयहहै कि जो पुत्ररूप करिके अपने आत्मा को विस्तारकरै सो तातकहावै इस अक्षरार्थसे तातनाम पिताकाहै और पिताही पुत्ररूप करके होताहै इससे पुत्र भी तातशब्द करके कहाजाता है और शिष्य भी पुत्रके तुल्यहोताहै इससे शिष्य भी तातशब्द करके कहा जाताहै इस आशयसे अर्जुनसेभी तातऐसा भगवान्ने कहा ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किन्त्वस्य भवति प्राप्येति योगमार्गेषु प्रवृत्तः संन्यासी सामर्थ्यात्प्राप्य गत्वा पुण्यकृता मश्वमेधादियाजिनांलोकांस्तत्र च उषित्वा वा समनुभूय शाश्वतीर्नित्याः समाः संवत्सरान् तद्भोगक्षये शुचीनां यथोक्तकारिणां श्रीमतां विभूतिमतां गेहे गृहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

योगभ्रष्टस्य लोकद्वयेऽपि नाशाभावे किं भवतीति पृच्छति किंत्विति तत्र श्लोकेनोत्तरमाह प्राप्येति कथं संन्यासीति विशेष्यते तत्राह सामर्थ्यादिति कर्म्माणि व्यापृतस्य कर्म्मिणो योगमार्गप्रवृत्त्यानुपपत्तिस्तत्प्रवृत्तावपि फलाभिलाषविकलस्येश्वरे समर्पितसर्व्वकर्म्मणस्तद्भ्रंशाशंकाऽनवकाशादित्यर्थः समानां नित्यत्वं मानुषसमाविलक्षत्वं वैराग्याभावविवक्षया विभूतिमतां गृहे जन्मेति विशिष्यते ॥ ४१ ॥

स्वामिकृतटीका।

तर्हि किमसौ प्राप्नोतीत्यपेक्षायामाह प्राप्येति पुण्यकारिणामश्वमेधादियाजिनां लोकान् प्राप्य तत्र शाश्वतीः समा बहून् संवत्सरानुषित्वा वाससुखमनुभूय शुचीनां सदाचाराणां श्रीमतां धनिनां गेहे स योगभ्रष्टो जन्म प्राप्नोति ॥ ४१ ॥

नवलभाष्य।

फिरक्या इसको होताहै इस आकांक्षामें (प्राप्येति) हेअर्जुनवहयोगमार्ग में प्रवृत्त जो कर्मोंके त्यागकरनेवाला संन्यासी सो पुण्य करनेवाले अर्थात् अश्वमेधादि यज्ञ करनेवाले जो पुरुष तिन्होंके भोगकरने योग्य लोकोंको प्राप्तहोके फिर तिनलोकोंमें बहुतबर्षतक वासकरके अर्थात् वहांके सुखोंको भोगकरके फिर उसभोगके क्षयमें पवित्रजे लक्ष्मीवान् अर्थात् बडे ऐश्वर्य्य युक्त जे पुरुष तिनके गृहमें वह योगभ्रष्ट पुरुष उत्पन्नहोता है ॥ ४१ ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥

शङ्करभाष्यम्।

अथेति अथवा श्रीमतां कुलादन्यस्मिन् योगिनामेव दरिद्राणां कुले भवति जायते धीमतां

बुद्धिमतां एतद्धि जन्म यद्दरिद्राणां योगिनां कुले दुर्लभ्यतरं दुःखेन लभ्यतरं पूर्वमपेक्ष्य लोके जन्म यदीदृशं यथोक्तविशेषणे कुले यस्मात् ॥ ४२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

आद्यवैराग्यादिकल्याणाधिक्ये पक्षान्तरमाह अथवेति योगिनामिति कर्म्मिणां ग्रहणं माभूदिति विशिनष्टि धीमतामिति ब्रह्मविद्यावतां शुचीनां दरिद्राणां कुले जन्म दुर्लभं प्रमादकारणाभावादित्याह एतद्धीति किमपेक्ष्यास्य जन्मनो दुःखलभ्यादपि दुःखलभ्यतरत्वं तदाह पूर्व्वमिति यद्यपि विभूतिमतां शुचीनां गृहे जन्म दुःखलभ्यं तथापि तदपेक्षया इदं जन्म दुःखलभ्यतरं यदीदृशं शुचीनां दरिद्राणां विद्यावतामिति विशेषणोपेते कुले लोके जन्मलक्षणमित्यर्थः यदुक्तमपरं जन्मोक्तं तस्योत्तमत्वे हेत्वन्तरमाह यस्मादिति ॥ ४२ ॥

स्वामिकृतटीका।

अल्पकालाभ्यस्तयोगभ्रंशे गतिविशेषमुक्त्वा चिराभ्यस्तयोगभ्रंशे पक्षान्तरमाह अथवेति योगनिष्ठानां धीमतां ज्ञानिनामेव कुले जायते ननु पूर्व्वोक्तानामनारूढयोगानां कुले एतज्जन्म स्तौति ईदृशं जन्म एतद्धि लोके दुर्लभतरं मोक्षहेतुत्वात् ॥ ४२ ॥

नवलभाष्य।

अथवा हे अर्जुन लक्ष्मीवान् पुरुषोंके कुलसे अन्य जो योगियोंका कुल अर्थात् दरिद्रीभी जे योगी तिनकाजो कुलतिसमें वह योगभ्रष्ट पुरुषउत्पन्न होताहै परन्तु यहयोगियोंके कुलमें जो जन्महै सो हेअर्जुन अत्यन्त दुर्लभहै अर्थात् बहुतसुकृत सहायहोयं तौ ऐसीजगह जन्महोय लक्ष्मीयुक्त पुरुषोंके कुलसे दरिद्र योगियोंके कुलमें जन्मश्रेष्ठहै यह भगवानका आशयहै ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तत्रेति तत्र योगिनां कुले तं बुद्धिसंयोगं बुद्ध्या संयोगं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकं पूर्वस्मिन् देहे भवं पौर्वदैहिकं यतते च यत्नं करोति ततस्तस्मात् पूर्व्वकृतात् संस्काराद्भूयो बहुतरं संसिद्धिनिमित्तं हे कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

बुद्धेत्यात्मविषयेति शेषः पूर्वस्मिन् देहे भवं तत्रानुष्ठितसाधनविशेषयुक्तमित्यर्थः तर्हि यथोक्तजन्मनि साधनानुष्ठानमन्तरेणैव बुद्धिसम्बन्धः स्यादित्याशङ्क्याह यतते चेति प्रयत्नः श्रवणाद्यनुष्ठानविषयः ॥ ४३ ॥

स्वामिकृतटीका।

ततः किमत आह आत्रेति सार्द्धेन स तत्र द्विप्रकारेऽपि जन्मनि पूर्वदेहभवं पौर्वदैहिकं तमेव ब्रह्मविषयया बुद्ध्या संयोगं लभते ततश्च भूयोऽधिकं संसिद्धौ मोक्षे प्रयत्नं करोति ॥ ४३ ॥

नवलभाष्य ।

हे अर्जुन फिरवह योगियोंके कुलमें जन्मको प्राप्तहोके पूर्वदेहमें अभ्यास करी जो आत्मबुद्धि अर्थात् आत्मज्ञान तिसको फिर अनायासहीसे प्राप्त होताहै और हे अर्जुन पूर्वकाकिया जो वह संस्कार तिसके कारणसे फिर मोक्षहीकेलिये पहिलेसे भी अधिक यत्नमें प्रवृत्तहोताहै ॥ ४३ ॥

पूर्व्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपिसः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

कथम्भूतं पूर्व्वदेहबुद्धिसंयोगं इति तदुच्यते पूर्वेति यः पूर्व्वजन्मनि कृतोऽभ्यासः स पूर्व्वाभ्यासस्तेनैव बलवता ह्रियते संसिद्धौ हि यस्मादवशोऽपि सः योगभ्रष्टः न कृतंचेत् योगाभ्यासजात् संस्कारात् बलवत्तरमधर्मादिलक्षणं कर्म तदा योगाभ्यासजनितेन संस्कारेणाह्रियतेऽधर्मश्चेद्बलवत्तरः कृतस्तेन योगजोऽपि संस्कारोऽभिभूयत एव तत्क्षये तु योगजः संस्कारः स्वयमेव कार्य्यमारभते न दीर्घकालस्थस्यापि विनाशस्तस्यास्तीत्यतोजिज्ञासुरपि योगस्य स्वरूपं ज्ञातुमिच्छन् योगमार्गे प्रवृत्तः संन्यासी योगभ्रष्टः सामर्थ्यात् सोपि शब्दब्रह्मवेदोक्तकर्मानुष्ठानफलमतिवर्त्तते कर्म्मानुष्ठानलक्षणमतिक्रामति अपाकरिष्यति किमुत बुद्ध्या यो योगं तन्निष्ठो अभ्यासं कुर्य्यात् ॥ ४४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

यदि पूर्वसंस्कारोऽस्येच्छामुपनयन् प्रवर्तयति तथाचाप्रवृत्तिरनिच्छया स्यादित्याशङ्क्याह पूर्वेति स हि योगभ्रष्टः समनन्तरजन्मकृतसंस्कारवशादुत्तरस्मिन् जन्मनि अनिच्छन्नपि योगं प्रत्येवाकृष्टो भवतीत्यर्थः तत्र कैमुतिकन्यायं सूचयति जिज्ञासुरिति पूर्वार्द्धं विभजते पूर्वेति तस्मान्नेच्छया तस्य प्रवृत्तिरिति शेषः योगभ्रष्टस्याधर्मादिप्रतिबन्धेऽपि तर्हि पूर्वाभ्यासवशाद् बुद्धिसम्बन्धः स्यादित्याशङ्क्याह नेत्यादिना यदि योगभ्रष्टे न योगाभ्यासजनितसंस्कारप्राबल्यात् प्रबलतरधर्मप्रभेदरूपं कर्म न कृतं स्यात् तदानेन संस्कारेण वशीकृतः सन्निच्छादिरहितोऽपि बुद्धिसम्बन्धभाग् भवतीत्यर्थः विपक्षे योगसंस्कारस्याभिभूतत्वान्न कार्य्यारम्भकत्वमित्याह अधर्मश्चेदिति योगजसंस्कारस्याधर्माभिभूतस्य कार्य्यमकृत्वैवाभिभावकप्राबल्ये प्रणाशः स्यादित्याशङ्क्याह तत्क्षयेत्विति कालव्यवधानान्निवृत्तिं शंकित्वोक्तनेति तृणजलौकादृष्टान्तश्रुत्या संस्कारस्य दीर्घतायाः समधिगतत्वादिति भावः कैमुतिकन्यायोक्तिपरमुत्तरार्द्धं विभजते जिज्ञासुरपीत्यादिना अत्रापि संन्यासीति विशेषणं पूर्ववदवधेयमित्याह सामर्थ्यादिति नहि कर्म्मी कर्ममार्गे प्रवृत्तस्ततो भ्रष्टः शंकितुं शक्यते अतः संन्यासी पूर्वोक्तैर्विशेषणैः विशिष्टो योगभ्रष्टोऽभीष्टः सोपिवैदिकं कर्म तत्फलञ्चातिवर्तते किमुत योगं बुद्ध्वा तन्निष्ठः सदाभ्यासं कुर्वन् कर्म तत्फलञ्चातिवर्तते किमिति वक्तव्यमिति योजना योगनिष्ठस्य कर्म तत्फलातिवर्तनं ततोऽधिकफलावाप्तिर्विवक्ष्यते ॥ ४४ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तत्र हेतुः पूर्वेति तेनैव पूर्वदेहकृताभ्यासेनावशोऽपि कुतश्चिदन्तरायादनिच्छन्नपि सह्रियते विषयेभ्यः परावृत्त्य ब्रह्मनिष्ठः क्रियते तदेवं पूर्वाभ्यासवशेन प्रयत्नं कुर्वन् अ-

नैर्मुच्यत इतीममर्थं कैमुतिकन्यायेन स्पष्टयति जिज्ञासुरिति सार्द्धेन योगस्य स्वरूपं जिज्ञासुरेव केवलं न तु प्राप्तयोगः एवंभूतो योगप्रविष्टमात्रोऽपि पापवशाद्योगभ्रष्टोऽपि शब्दब्रह्मवेदमतिवर्तते वेदोक्तकर्मफलान्यतिक्रामति तेभ्योऽधिकं फलं प्राप्य मुच्यत इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

नवलभाष्य।

कैसापूर्व देहका बुद्धि संयोगहै यह सूचन कराते कहतेहैं (पूर्वेति) हेअर्जुन पूर्वजन्ममें कियाजो योगाभ्यास तिसके बलकरके अवशभी पराधीनजो वह योगभ्रष्ट सो मोक्षमार्गमें प्रवृत्त कियाजाताहै अर्थात् उसपूर्वजन्मके संस्कार वशसे किसीविघ्न करके बाधित नहींहुआ योगहीमें प्रवृत्तहोताहै परन्तु जब योगाभ्यासके संस्कारसे प्रबलकोई अधर्म न कियाहोय तो ऐसा ही होताहै और जो कदाचित् योगाभ्यासकी अपेक्षासे अधर्मही अधिक कियाहोताहै तो उसबलवान् अधर्मके संस्कारसे योगका संस्कार तिरस्कृत होजाताहै अर्थात् तब कुछकाल विषय सेवनादिकका उसको विघ्नहोताहै तिसके भोगके क्षयमें फिर योगका संस्कार उदयहोताहै तो फिर योगमें प्रवृत्तहोताहै और बहुत कालका कियाहुआ भी योगहै परन्तु उसके संस्कार का नाश तो कभी नहींहोता है इससे हे अर्जुन योगका जिज्ञासू भी होय अर्थात् योगके स्वरूपके जाननेकी इच्छा करताहुआ भीजो पुरुषनाम योग भ्रष्ट संन्यासी सो वेदोक्त कर्मोंके फलोंको उल्लंघन करताहै अर्थात् तिन्होंके बन्धनमें नहींआता और तिससे अधिक सुखको प्राप्तहोताहै और जो योग शास्त्रको जानके जैसाचाहिये तैसे योगाभ्यास करताहुआ कर्म्म गतिको उल्लंघन करेहै इसका क्या कहनाहै ॥ ४४ ॥

प्रयत्नात् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

कुतश्च योगित्वं श्रेय इति प्रयत्नादिति प्रयत्नात् प्रयतमानादधिकतरं यतमान इत्यर्थः तत्र योगी विद्वान् संशुद्धकिल्बिषो विशुद्धकिल्बिषः स शुद्धपापोऽनेकेषु जन्मसु किञ्चित् किञ्चित् संस्कारजातमुपचित्य तेनोपचितेनानेकजन्मकृतेन संसिद्धोऽनेकजन्मसंसिद्धः ततो लब्धसम्यग्दर्शनः सन् याति परां प्रकृष्टां गतिं ॥ ४५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

योगनिष्ठस्य श्रेष्ठत्वे हेत्वरं युक्तं उत्तरश्लोकमवतारयति कुतश्चेति मृदुप्रयत्नोऽपि क्रमेण मोच्यते चेदधिकप्रयत्नस्यक्लेशहेतोरकिञ्चित्करत्वमित्याशङ्क्य हेत्वन्तरमेव प्रकटयति प्रयत्नादिति तत्र योगविषये प्रयत्नातिरेके सतीत्यर्थः ततः सञ्चितसंस्कारसमुदायादिति यावत् समुत्पन्नसम्यग्दर्शनवशात् प्रकृष्टा गतिः संन्यासिना लभ्यते तेन शीघ्रं मुक्तिमिच्छन्नधिकप्रयत्नो भवेदल्पप्रयत्नस्तु चिरेणैव मुक्तिभागित्यर्थः ॥ ४५ ॥

स्वामिकृतटीका।

यदैवं मन्दप्रयत्नेपि योगी परां गतिं याति तदा यस्तु योगी प्रयत्नादुत्तरोत्तरमधिकं योगे यतमानो यत्नं कुर्वन् योगेनैव संशुद्धकिल्बिषो विधूतपापः सोनेऽकेषु जन्मसूपचितेन योगेन संसिद्धः सम्यग्ज्ञानी भूत्वा ततः श्रेष्ठां गतिं यातीति किंवक्तव्यमित्यर्थः ॥ ४५॥

नवलभाष्य।

काहेसे योगश्रेष्ठहै इस आकांक्षामें कहतेहैं कि (प्रयत्नादिति) हे अर्जुन अधिक यत्न करताहुआ जो योगी सो शुद्धहुये हैं पापजिसके ऐसाहोके अर्थात् पापरहित होके अनेक जन्मोंमें संचया किया जो योग तिसकरके सम्यग्दर्शन ज्ञानरूप सिद्धिको प्राप्तहोके परमगतिको प्राप्तहोताहै ॥ ४५ ॥

तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगी तस्माद्योगी भवार्ज्जुन ॥ ४६॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्मादेवं तस्मात् तपस्विभ्य इति तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योपि ज्ञानमात्रशास्त्रार्थ पाण्डित्यं तद्वद्भ्योऽपि मतो ज्ञातोऽधिकः श्रेष्ठ इति कर्मिभ्योऽग्निहोत्रादिकर्म्म तद्वद्भ्योऽधिको योगी विशिष्टः तस्माद्योगी भवाऽर्जुन ॥ ४६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

सम्यग्ज्ञानद्वारा मोक्षहेतुत्वं योगस्योक्तमनूद्य योगिनः सर्वाधिकत्वमाह यस्मादिति योगस्य सर्वस्मादुत्कर्षादवश्यकर्तव्यत्वाय योगिनः सर्वाधिक्यं साधयति तपस्विभ्य इति योगिनो ज्ञानिनश्च पर्य्यायत्वात् कथं तस्य ज्ञानिभ्योऽधिकत्वमित्याशङ्क्याह ज्ञानमिति योगिनः सर्वाधिकत्वे फलितमाह तस्मादिति ॥ ४६ ॥

स्वामिकृतटीका।

यस्मादेवं तस्मात्तपस्विभ्य इति कृच्छ्रचान्द्रायणादितपोनिष्ठेभ्योऽपि ज्ञानिभ्यः शास्त्रविज्ञानवद्भ्योपि कर्म्मिभ्य इष्टापूर्तादिकर्मकारिभ्योपि योगिश्रेष्ठो ममाऽभिमतः तस्मात्त्वंयोगी भव ॥ ४६ ॥

नवलभाष्य।

जिससेऐसाहै तिससे हेअर्जुन तपस्वी जे तप करनेवालेहैं तिनसे योगी श्रेष्ठहै और ज्ञानी जे शास्त्रोंके अर्थके जाननेवाले जे पण्डितलोग हैं तिनसे भी योगीश्रेष्ठहै और उनशास्त्रोंको जानके जे अग्निहोत्रादि कर्म करनेवाले हैं तिनसे भी योगीमुझको अधिकश्रेष्ठ अभिमतहै तिससे हे अर्जुन तू भी योगीहो अर्थात् योगाभ्यासमें तत्परहोउ ४६ ॥ ॥

योगिनामपि सर्व्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ ४७॥

इति श्रीभगवद्गीतायां ध्यानयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

योगिनामिति योगिनामपि सर्वेषां रुद्रादिध्यानपराणां मध्ये मद्गतेनमयि वासुदेवे समाहिते नान्तरात्मनान्तःकरणेन श्रद्धावान् श्रद्दधानः सन्भजते सेवते यो मां स मे मम युक्ततमोऽतिशयेन युक्तो मतोऽभिप्रेत इति ॥ ४७ ॥

इतिश्रीभगवद्गीताभाष्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

नत्वादित्यो विराडात्मा सूत्रं कारणमक्षरमित्येतेषामुपासका भूयांसो योगिनो गम्यन्ते तेषां कतमः श्रेयानिष्यते तत्राह योगिनामिति यो भगवन्तं सगुणं निर्गुणं वा यथोक्तेन चेतसा श्रद्दधानः सन्ननवरतमनुसन्धत्ते स युक्तानां मध्येऽतिशयेन युक्तः श्रेयानीश्वरस्याभिप्रेयः नहि तदीयोऽभिप्रायोऽन्यथाभवितुमर्हतीत्यर्थः तदनेनाध्यायेन कर्म्मयोगस्य संन्यासहेतोर्मर्य्यादां दर्शयता सांगयोगं विवृण्वता मनोनिग्रहोपायोपदेशेन योगभ्रष्टस्यात्यन्तिकनाशशंकाञ्च शिथिलयता त्वं पदार्थाभिज्ञस्य ज्ञाननिष्ठत्वोक्त्या वाक्यार्थज्ञानान्मुक्तिरिति साधितम् ॥ ४७ ॥

इति आनन्दगिरिकृतटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

स्वामिकृतटीका।

योगिनामपि यमनियमादिपराणां मध्ये मद्भक्तः श्रेष्ठ इत्याह योगिनामपीति मद्गतेन मय्यासक्तेनान्तरात्मना मनसा यो मां परमेश्वरं श्रद्धायुक्तः सन् भजते स योगयुक्तेभ्यः श्रेष्ठो मम सम्मतः अतो मद्भक्तो भवेति भावः॥ आत्मयोगमवोचद्यो भक्तियोगशिरोमणिम्। तं वन्दे परमानन्दं माधवं भक्तसेवधिम् ॥ ४७ ॥

इति श्रीधरस्वामिकृते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन योगियोंमेंभी जे रुद्रादि देवताओंके ध्यान में परायण योगी हैं तिनयोगियोंके मध्यमें मैं जो वासुदेव परमात्मा तिसमें एकाग्र हुआ जो अन्तःकरण तिसकरके श्रद्धायुक्तहोके जो मेराभजन करताहै सो मुझको सबसेश्रेष्ठ योगी अभिमतहैअर्थात् उसीमें योगिशब्दकाअर्थ यथावत् पायाजाताहै यहमेरा अभिप्रायहै ॥ ४७ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीताभगवच्छंकराचार्यकृतभाष्येस्वर्गवास्युमादत्तविरचित तत्त्वविवेकामृताख्यनवलभाष्येषष्ठोऽध्यायस्समाप्तः ॥ ६ ॥



श्रीमद्भगवद्गीतासटीक॥

सप्तमोऽध्यायः।

श्रीभगवानुवाच।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥ १॥

शङ्करभाष्यम्।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां समेयुक्ततमो मत इति प्रश्न बीजमुपन्यस्य स्वयमेव ईदृशं मदीयं तत्त्वमेवं मद्गतान्तरात्मा स्यादित्येतद्विवक्षुर्भगवानुवाच म यीति मयि वक्ष्यमाणविशेषणे परमेश्वरे आसक्तं मनो यस्य स मय्यासक्तमनाः हे पार्थ योगं युञ्जन् मनःसमाधानं कुर्वन् मदाश्रयोऽहमेव परमेश्वर आश्रयो यस्य स मदाश्रयो योहि कश्चित् पुरुषार्थेन केनचिदर्थी भवति स तत् साधनं कर्माग्निहोत्रादितपोदानं वा किंचिदाश्रयं प्रतिपद्यते अयन्तु योगी मामेवाश्रयं प्रतिपद्यते हित्वान्यत् साधनान्तरं मय्येवासक्तमनाः भवति यस्त्वमेवम्भूतः सन् असंशयं समग्रं समस्तः विभूतिबलशक्त्यैश्वर्यादिगुणसम्पन्नं मां यथा येन प्रकारेण ज्ञास्यसि संशयमन्तरेणैवमेव भगवानिति तच्छृणूच्यमानं मया॥ १॥

आनंदगिरिकृतटीका।

कर्मसंन्यासात्मकसाधनप्रधानं त्वं पदार्थप्रधानं वा प्रथमषट्कं व्याख्याय मध्यमषट्कमुपास्यनिष्ठं तत्पदार्थनिष्ठं वा व्याख्यातुमारभमाणः समनन्तराध्यायमवतारयति योगिनामिति अतीताध्यायान्तेनान्तरात्मना यो भजते मामिति प्रश्नबीजं प्रदर्श्य कीदृशं भगवतस्तत्त्वं कथं वा मद्गतान्तरात्मा स्यादित्यर्जुनस्य प्रश्नद्वये जाते स्वयमेव भगवान् अपृष्टमेव तद्वक्तुं इच्छन्नुक्तवानित्यर्थः परमेश्वरस्य वक्ष्यमाणविशेषणं सकलजगदायतनत्वादिना नानाविधिविभूतिभागित्वं तत्रासक्तिर्मनसो विषयान्तरपरिहारेण तन्निष्ठत्वं मनसो भगवत्येवासक्तौ हेतुमाह योगमिति विषयान्तरपरिहारे हि गोचरमालोच्यमानो भगवत्येव प्रतिष्ठितो भवतीत्यर्थः तथापि स्वाश्रये पुरुषो मनः स्थापयति नान्यत्रेत्याशङ्क्याह मदाश्रय इति योगिनो यदीश्वराश्रयत्वेन तस्मिन्नेवासक्तमनस्त्वमुपन्यस्तं तदुपपादयति यो हीति ईश्वराख्याश्रयस्य प्रतिपत्तिमेव प्रकटयति हित्वेति अस्तु योगिनस्त्वदाश्रयप्रतिपत्त्या मनसस्त्वय्येवासक्तिस्तथापि मम किमायातमित्या-

शङ्का द्वितीयार्द्धं व्याचष्टे यस्त्वमेवमिति एवम्भूतो यथोक्तध्याननिष्ठपुरुषवदेवमप्यासक्त-मना यस्त्वं स त्वं तथाविधः सन्नसंशयमविद्यमानः संशयो यत्र ज्ञाने तद्यथा स्यात्तथा मां समग्रं ज्ञास्यसीति सम्बन्धः समग्रमित्यस्यार्थमाह समस्तेति विभूतिर्नानाविधैश्वर्यो-पायसम्पत्तिः बलं शरीरगतं सामर्थ्यं शक्तिर्मनोमतं प्रागल्भ्यं ऐश्वर्यमीशितव्यविषयमी-शनसामर्थ्यम् आदिशब्देन ज्ञानेच्छादयो गृह्यन्ते असंशयमिति पदस्य क्रियाविशेषणत्वं विशदयन् क्रियापदेन सम्बन्धं कथयति संशयमिति विना संशयं भगवत्तत्त्वपरिज्ञानमेव स्फोरयति एवमेवेति भगवत्तत्त्वे ज्ञातव्ये कथं मम ज्ञानमुपदेक्ष्यति नहि त्वामृते तदुपदेष्टा कश्चिदस्तीत्याशंक्याह तच्छृणिवति ॥ १ ॥

स्वामिकृतटीका।

विज्ञेयमात्मनस्तत्त्वं सयोगं समुदाहृतम्। भजनीयमथेदानीमैश्वरं रूपमीर्यते॥ पूर्वा ध्यायान्ते मद्गतेनान्तरात्मना यो मां भजते स मेयुक्ततमो मत इत्युक्तं तत्र कीदृशस्त्वं यस्य भक्तिः कर्त्तव्येत्यपेक्षायां स्वस्वरूपं निरूपयिष्यन् श्रीभगवानुवाच मयीति मयि पर-मेश्वरे आसक्तमभिनिविष्टं मनो यस्य सः मदाश्रयोऽहमेवाश्रयो यस्य अनन्यशरणः सन् योगं युञ्जन्नभ्यस्यन्नसंशयं यथा भवत्येवं मां समग्रं विभूतिबलैश्वर्यादिसहितं यथा ज्ञास्यसि तदिदं मया वक्ष्यमाणं शृणु ॥ १ ॥

नवलभाष्य।

अब कर्मयोगहै साधन जिसमें ऐसा त्वम्पदार्थ प्रधान अर्थात् जीवपदार्थ का कहनेवाला छः अध्यायके प्रकरणको श्रीभगवान् निरूपण करके उसकी दृढ़ताके अर्थ तत्पदार्थ प्रधान अर्थात् ईश्वरपदार्थ प्रधान उपासनाकाण्ड प्रकरणको छः अध्याय करके निरूपण करनेको छठे अध्यायके अन्तमें उपा-सना प्रकरणका सूत्ररूप (योगिनामपि) इत्यादि श्लोक भगवान् कहतेहुये तिसमें अर्जुनकी प्रश्नका बीजस्थापन करकेभी फिर आपही कृपाकरके ऐसा मेरातत्त्वहै और इसप्रकार भक्तमेरे में अपने चित्तको प्रवेश करताहुआ स्थितहोय इसअर्थको कहनेकी इच्छाकरके भगवान् कहतेहैं कि (मयीति) हे अर्जुन मैं जो परमेश्वर तिसमें आसक्त अर्थात् प्रीतियुक्तहै मन जिसका और मेरेबिषे चित्तको समाहित करता अर्थात् एकाग्र करताहुआ और मैं-ही परमेश्वरहौं आश्रय जिसका ऐसाहुआ तूसो समग्र अर्थात् विभूति बल ऐश्वर्यादि युक्त जो मैंहूं तिसको जिसप्रकार करके जानेगा तिसप्रकारको सुन अब यहां मदाश्रयः और मय्यासक्तमना ऐसा जो कहा तिसका आ-शययहहै कि जैसेलोक में जो पुरुष जिसपदार्थका अर्थीहोता है सो तिस फलका साधन जो अग्निहोत्रादि कर्म अथवा तप दानादि रूपकर्म तिसका आश्रय करताहै और यहयोगी तौ और साधनों को त्यागकरके मैं जो एक आश्रय तिसीको जानताहै और इसीसे मेरेबिषे है आसक्त मन जिसका ऐसाहोताहै तैसे हे अर्जुन तूभी ऐसाहोके संपूर्णमेरे स्वरूपको जैसे जानैगा तिसप्रकारको श्रवणकर॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥ २॥

शङ्करभाष्यम्।

तच्च मद्विषयं ज्ञानमिति ज्ञानं ते तुभ्यमहं सविज्ञानं विज्ञानसहितं सानुभवसंयुक्तमिदं वक्ष्यामि कथयिष्याम्यशेषतः कार्त्स्न्येन तज्ज्ञानं विवक्षितं स्तौति श्रोतुरभिमुखीकरणाय यत् ज्ञात्वा यत् ज्ञानं ज्ञात्वा नेह भूयः पुनः ज्ञातव्यं पुरुषार्थसाधनमवशिष्यते नावशेषो भवतीति तत्त्वज्ञो यः स सर्वज्ञो भवतीत्यर्थः॥ २॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ज्ञास्यसीत्युक्त्या परोक्षज्ञानशंकायां तन्निवृत्त्यर्थं तदुक्तिप्रकारमेव विवृणोति तच्चेति इदमपरोक्षं ज्ञानं चैतन्यं तस्य सविज्ञातस्य प्रतिलम्भे किं स्यादित्याशङ्क्याह यज्ज्ञात्वेति इदमाचैतन्यस्य परोक्षत्वं व्यावर्त्तते तदेव सविज्ञानमिति विशेषणेन स्फुटयति अशेषतः अनवशेषेण तद्वेदनफलोपन्यासेन श्रोतारं तत्श्रवणप्रवणं करोति तज्ज्ञानमिति एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानश्रुतिमाश्रित्योत्तरार्द्धतात्पर्य्यमाह यज्ज्ञात्वेति॥ २॥

स्वामिकृतटीका।

वक्ष्यमाणं स्तौति ज्ञानमिति ज्ञानं शास्त्रीयं विज्ञानमनुभवस्तत्सहितमिदं मद्विषयमशेषतः साकल्येन वक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा इह श्रेयोमार्गेवर्तमानस्य पुनरन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्टं न भवति तेनैव कृतार्थोभवतीत्यर्थः॥ २॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन विज्ञान सहित अर्थात् अनुभव सहित जो यहज्ञान तिसको मैं तुझसे संपूर्ण भावकरके कहताहूं अब श्रोताको सन्मुख करने को भगवान् जिसज्ञानको आगे कहैंगे तिसकी स्तुति करते हैं अर्थात् तारीफ करतेहैं कि हे अर्जुन जिसज्ञानको जानके फिर और जानबे योग्य कुछबाकीनहीं रहैगा अर्थात् जो तत्त्वज्ञ पुरुष होताहै सो सर्वज्ञ होताहै॥ २॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ ३॥

शङ्करभाष्यम्।

अतो विशिष्टफलत्वात् दुर्लभतरं ज्ञानं कथमित्युच्यते मनुष्याणामिति मनुष्याणांमध्ये सहस्रेष्वनेकेषु कश्चिद्यतति सिद्धये सिद्ध्यर्थं यतति प्रयत्नं करोति तेषां यततामपि सिद्धानां सिद्धाएव हि ते ये मोक्षाय मोक्षामार्गेयतन्ते तेषां कश्चिदेव मां वेत्ति तत्त्वतो यथावत्॥ ३॥

आनंदगिरिकृतटीका।

भगवत्तत्त्वज्ञानस्य विशिष्टफलत्वमुक्त्वा फलितमाह अत इति ज्ञानस्य दुर्लभत्वं प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति कथमित्यादिना सहस्रशब्दस्य बहुवाचकत्वमुपेत्य व्याकरोति अनेकेष्विति सिद्धये सत्त्वशुद्धिद्वारा ज्ञानोत्पत्त्यर्थमित्यर्थः सिद्ध्यर्थं यतमानानां कथं

सिद्धिमित्याशङ्क्याह सिद्धा एवेति सर्वेषामेव तेषां ज्ञानोदयात्तस्य सुलभत्वमित्याशङ्क्याह तेषामिति ॥ ३ ॥

स्वामिकृतटीका।

मद्भक्तिं विना तु मज्ज्ञानं दुर्लभमित्याह मनुष्याणामिति असंख्यातानां जीवानां मध्ये मनुष्यव्यतिरिक्तानां श्रेयसि प्रवृत्तिरेव नास्ति मनुष्याणान्तु सहस्रेषु मध्ये कश्चिदेव पुण्यवशात् सिद्धये आत्मज्ञानाय प्रयतते प्रयत्नं कुर्वतामपि सहस्रेषु प्राक्तनपुण्यवशादात्मानं वेत्ति तादृशानां चात्मज्ञानां सहस्रेषु कश्चिदेव मां परमात्मानं मत्प्रसादेन तत्त्वतो वेत्ति तदेवमतिदुर्लभमप्यात्मतत्त्वं तुभ्यमहं वक्ष्यामीत्यर्थः ॥ ३ ॥

नवलभाष्य।

इससे विशेष फलरूप होनेसे वह अतिदुर्लभज्ञानकैसाहै इसआकांक्षामें कहते हैं कि(मनुष्याणामिति) हे अर्जुन मनुष्योंके मध्यमें अनेक हजारोंमें कोईएकतौ मोक्षकेअर्थ यत्नकरताहै और मोक्षके अर्थ यत्नकरतेहुये जेसिद्ध हैं अर्थात् मोक्षमार्गमें प्रवृत्तहोके जे मोक्षकेलिये यत्नकरते हैं तेभी यहां सिद्धही कहाते हैं इससे भगवान्ने ऐसाकहा तिनयत्न करनेवाले सिद्धोंके मध्यमें भी कोईही मुझको तत्त्वकरके जानताहै अर्थात् यथावत् जानता है सब सिद्धलोग भी मुझको जैसामैंहौं तैसा नहीं जानसक्ते हैं ॥ ३ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्नाप्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

अतः श्रोतारं प्ररोचनेनाभिमुखीकृत्याह भूमिरिति भूमिरिति पृथिवीतन्मात्रमुच्यते न स्थूला भिन्ना प्रकृतिरष्टधेति वचनात् तथाऽबादयोऽपितन्मात्राण्येवोच्यन्ते अपोऽनलो वायुः खं मनो मन इति मनसः कारणं अहंकारो गृह्यते बुद्धिरित्यहंकारकारणं महत्तत्त्वं अहंकार इत्यविद्यासंयुक्तमव्यक्तं यथा विषसंयुक्तमन्नं विषमुच्यते एवमहंकारवासनावदव्यक्तं मूलकारणमहङ्कार इत्युच्यते प्रवर्त्तकत्वादहङ्करस्याहङ्कार एवाहि सर्व्वस्य प्रवृत्तिबीजं दृष्टं लोके इतीयं यथोक्ता प्रकृतिर्मे ममैश्वरी मायाशक्तिरष्टधाभिन्ना भेदमागता ॥ ४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ज्ञानार्थं प्रयत्नस्य तद्द्वारा ज्ञानलाभस्य तदुभयद्वारेण मुक्तेश्च दुर्लभत्वाभिधानस्य श्रोतृप्ररोचनं फलमिति मत्वाह श्रोतारमिति आत्मनः सर्वात्मकत्वेन परिपूर्णत्वमवतारयन्नादावपरां प्रकृतिमुपन्यस्यति आहेति भूमिशब्दस्य व्यवहारयोग्यस्थूलपृथिवीविषयत्वं व्यावर्तयति भूमिरितीति तत्र हेतुमाह भिन्नेति प्रकृतिसमानाभिव्याहारात् गन्धतन्मात्रस्थूलपृथिवीप्रकृतिरुत्तरविकारो भूमिरित्युच्यते न विशेष इत्यर्थः भूमिशब्दवदबादिशब्दानामपि सूक्ष्मभूतविषयत्वमाह तथेति तेषामपि प्रकृतिसमानाधिकृतत्वाविशेषात् तन्मात्राणां पूर्वपूर्वप्रकृतीनामुत्तरोत्तरविकाराणां न विशेषसिद्धिरित्यर्थः मनःशब्दस्य संकल्पविकल्पात्मककरणविषयत्वमाशङ्क्याह मन इतीति न खल्वहङ्काराभावे संकल्पविकल्पयोरसम्भवात्तदात्मकं मनः सम्भवतीत्यर्थः निश्चयलक्षणा बुद्धिरित्युपगमाद्

बुद्धिशब्दस्य निश्चयात्मककरणविषयत्वमाशङ्क्याह बुद्धिरितीति नहि हिरण्यगर्भसमष्टि-बुद्धिरूपमन्तरेण व्यष्टिबुद्धिः सिध्यतीत्यर्थः अहंकारस्याभिमानविशेषात्मकत्वेनान्तः-करणप्रभेदत्वं व्यावर्त्तयति अहङ्कार इति अविद्यासंयुक्तमित्यविद्यात्मकमित्यर्थः कथं मूलकारणस्याहङ्कारशब्दत्वमित्याशङ्क्योक्तमर्थं दृष्टान्तेन स्पष्टयति यथेत्यादिना मूलका-रणत्याहङ्कारशब्दत्वे हेतुमाह प्रवर्त्तकत्वादिति तस्य प्रवर्त्तकत्वं प्रपञ्चयति अहङ्कार एवेति सत्येवाहङ्कारे ममकारो भवति तयोश्चाभावे सर्वाऽप्रवृत्तिरिति प्रसिद्धमित्यर्थः उक्तां प्रकृतिमुपसंहरति इतीयमिति इयमित्यपरोक्षा साक्षिदृश्येति यावत् ऐश्वरी तदाश्रया तदैश्वर्योपाधिभूता प्रक्रियते महदाद्याकारेणेति प्रकृतिस्त्रिगुणं जगदुपादानं प्रधानमिति मतं व्युदस्यति मायेति तस्यास्तत्कार्याकारेण परिणामयोग्यत्वं द्योतयति शक्तिरिति अष्टधेति अष्टभिः प्रकारैरिति यावत् ॥ ४ ॥

स्वामिकृतटीका ।

एवं श्रोतारमभिमुखीकृत्येदानीं प्रकृतिद्वारा सृष्ट्यादिकर्तृत्वेनेश्वरतत्त्वं प्रतिज्ञातं निरूपयिष्यन् परापरभेदेन प्रकृतिद्वयमाह भूमिरिति द्वाभ्यां भूम्यादीनि पञ्चभूतसूक्ष्माणि मनःशब्देन तत्कारणभूतोऽहङ्कारः बुद्धिशब्देन तत्कारणं महत्तत्त्वं अहङ्कारशब्देन तत्कारणमविद्या इत्येवमष्टधा भिन्ना यद्वा भूम्यादिशब्दैः पञ्चमहाभूतानि सूक्ष्मैः सहैकीकृत्य गृह्यन्ते अहङ्कारशब्देनैवाहङ्कारस्तेनैव तत्कार्याणीन्द्रियाण्यपि गृह्यन्ते बुद्धिरिति महत्तत्त्वं मनःशब्देन तु मनसैवोन्नेयमव्यक्तस्वरूपं प्रधानमित्यनेन प्रकारेणामे प्रकृतिर्मायाख्या शक्तिरष्टधा भिन्ना विभागं प्राप्ता चतुर्विंशतिभेदभिन्नाप्यष्टस्वेवान्तर्भाव विवक्षयाऽष्टधा भिन्नेत्युक्तं तथाच क्षेत्राध्याये इमामेव प्रकृतिं चतुर्विंशतितत्त्वात्मना प्रपञ्चयिष्यति ॥ महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेवच।इन्द्रियाणि दशैकञ्च पञ्च चेन्द्रि-यगोचरा इति ॥ ४ ॥

नवलभाष्य।

अब इसके उपरांत श्रोता जो अर्जुन तिसको रुचिके उत्पन्न करानेवाले वचनों करके भगवान् अपने संमुख करके कहनेके योग्य जो पदार्थ तिसको कहते हैं कि (भूमिरिति) हे अर्जुन भूमिं अर्थात् यहां भूमिशब्द करके भूमि का सूक्ष्मरूप जो तन्मात्रागन्ध तिसका ग्रहण विवक्षितहै कुछ स्थूल पृथि-वीका ग्रहण नहींहै क्योंकि आगे (भिन्नाप्रकृतिरष्टधा) यहां भूम्यादिकों को प्रकृति शब्दकरिके भगवान् कहैंगे तो उससे विरोध पायाजायगा क्योंकि प्रकृतिनाम गन्धादिकोंहीकाहै पृथिवी आदिस्थूल भूतोंको तो विकार शब्द करके कहाहै तैसेही जलशब्दसे यहां रसका ग्रहणहै और अग्निशब्दकरिकै रूपका ग्रहणहै और वायुशब्द करके स्पर्शका ग्रहणहै और आकाश शब्द करके शब्दका ग्रहणहै और मनशब्दसे मनका कारण जो अहंकार तिसका ग्रहणहै और बुद्धि शब्दकरिकै महत्तत्त्वका ग्रहणहै जो हिरण्य गर्भकी बुद्धि है उस बुद्धिमें सबजीवोंकी व्यष्टि बुद्धियां अन्तर्गतहोतीहैं अर्थात् उसकेभी-तर आजातीहैं और एसेही अहंकार शब्दकरके अविद्या संयुक्त अव्यक्तका ग्रहणहै जैसे विषसे मिलाहुआ जो अन्नहै सो विषही कहाजाताहै ऐसेही

अहंकारकी वासनायुक्त जो अव्यक्त अर्थात् मूलकारण प्रकृतिसो भी यहां अहंकार शब्दकरके कहाजाता है क्योंकि अहंकारको प्रवर्त्तकत्व है अर्थात् अहंकारही प्रवृत्तिमें कारण लोकमें देखाहै इससे हे अर्जुन सबकी प्रवृत्ति करानेवाली मेरीप्रकृति जो ऐश्वरीमाया शक्ति अर्थात् में जो ईश्वर तिसकी मायाशक्तिरूप जो प्रकृति सोई गन्ध तन्मात्रादि भेदकरके आठप्रकारके भेद को प्राप्तहै ॥ ४ ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मेऽपराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्य्यते जगत् ॥ ५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

अपरेति अपरा न परा निकृष्टाऽशुद्धानर्थकरी संसाररूपा बन्धनात्मिकेयमितोन्यां यथोक्तायास्तु अन्यां विशुद्धां प्रकृतिं ममात्मभूतां विद्धि मे परां प्रकृष्टां जीवभूतां क्षेत्रज्ञलक्षणां प्राणधारणनिमित्तभूतां हे महाबाहो यया प्रकृत्या इदं धार्यते जगदन्तः प्रविष्टया ॥ ५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अचेतनवर्गमेकीकर्तुं प्रकृतेरष्टधा परिणाममभिधाय विकारावच्छिन्नं कार्यरूपं चेतनवर्गमेकीकर्तुं पुरुषस्य चैतन्यस्य विद्याशक्त्यवच्छिन्नस्यापि प्रकृतित्वं कथयितुमुक्तां प्रकृतिमनूद्य दर्शयति अपरेति निकृष्टत्वं स्पष्टयति अनर्थकरीति अनर्थकरत्वमेव स्फोरयति संसारेति कथञ्चिदप्यनन्यत्वव्यावृत्त्यर्थस्तुशब्दः अन्यामत्यन्तविलक्षणामिति यावत् अन्यत्वमेव स्पष्टयति विशुद्धामिति प्रकृतिशब्दस्यात्र प्रयुक्तस्यार्थान्तरमाह ममेति प्रकृष्टमेव भोक्तृत्वेन स्पष्टयति जीवभूतामिति प्रकृत्यन्तरादस्याः प्रकृतेरवान्तरविशेषमाह ययेति नाह जीवरहितं जगद्धारयितुं शक्यमित्याशयेनाह अन्तरिति ॥ ५ ॥

स्वामिकृतटीका।

अपरामिमां प्रकृतिमुपसंहरन् परां प्रकृतिमाह अपरेयमिति अष्टधा या प्रकृतिरुक्ता इयमपरा निकृष्टा जडत्वात् परार्थत्वाच्च इतः सकाशात् परां प्रकृष्टामन्यां जीवभूतां जीवस्वरूपां मे प्रकृतिं जानीहि परत्वे हेतुः यया चेतनया क्षेत्रज्ञस्वरूपया स्वकर्मद्वारेणेदञ्चजगद्धार्यते ॥ ५ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन इसप्रकृतिका नाम अपराहै अर्थात् नहीं जो परनाम उत्कृष्टहोय नामनिकृष्ट अशुद्धहोय और अनर्थके करनेवाली इसीसे संसार रूप बन्धनहीहै स्वरूप जिसका ऐसीयहहै और इससे दूसरी जो शुद्ध चेतन रूप प्रकृतिहै जिसको प्राणधारण करनेसे जीव कहतेहैं सो तो मेरास्वरूप भूतहीहै इससे हे अर्जुन उसको तो तू पराजान अर्थात् उत्कृष्टजान जिस प्रकृति करके सबजगत् धारण कियाजाताहै अर्थात् जो सबजगत्के भीतर प्रवेश करके सबको धारण करतीहै ॥ ५ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

एतदिति एतद्योनीन्येते परापरे क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणे प्रकृती योनी येषां भूतानां तान्येतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्येवमुपधारय जानीहि यस्मान्मम प्रकृतिर्योनिः कारणं सर्व्वभूतानां अतोऽहं कृत्स्नस्य समस्तस्य जगतः प्रभवः उत्पत्तिः प्रलयो विनाशस्तथा प्रकृतिद्वयद्वारेणाहं सर्व्वज्ञ ईश्वरो जगतः कारणमित्यर्थः ॥ ६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

उक्तप्रकृतिद्वये कार्यलिङ्गकमनुमानं प्रमाणयति एतद्योनीति प्रकृतिद्वयस्य जगत्कारणत्वे कथमीश्वरस्य जगत्कारणत्वं तदुपगतमित्याशङ्क्याह अहमिति एतद्योनीत्युक्ते समनन्तरप्रकृतजीवभूतप्रकृतावेतच्छब्दस्याव्यवधानात् प्रवृत्तिमाशङ्क्य व्याकरोति एतदिति सर्वाणि चेतनाचेतनानि जनिमन्तीत्यर्थः सर्वभूतकारणत्वेन प्रकृतिद्वयमङ्गीकृतञ्चेत् कथमहमित्यथयुक्तमित्याशङ्क्याह यस्मादिति मम प्रकृती परमेश्वरस्योपाधितया स्थिते इत्यर्थः तर्हि प्रकृतिद्वयं कारणमीश्वरश्चेति जगतोऽनेकविधकारणांगीकरणं स्यादित्याशङ्क्याह प्रकृतीति अपरप्रकृतिरचेतनत्वात्परप्रकृतेश्चेतनत्वेऽपि किञ्चिज्ज्ञत्वात् ईश्वरस्यैव सर्वकारणत्वं युक्तमित्याह सर्वज्ञेति ॥ ६ ॥

स्वामिकृतटीका।

अनयोः प्रकृतित्वं दर्शयन् स्वस्य तद्द्वारा सृष्ट्यादिकारणत्वमाह एतदिति एते चेत्रचेत्रज्ञस्वरूपे प्रकृती योनी कारणभूते येषां तानि एतद्योनीनि स्थावरजंगमात्मकानि सर्वाणि भूतानीति उपधारय बुध्यस्व तत्र जड़ा प्रकृतिर्देहरूपेण परिणमते चेतना तु मदंशभूता भोक्तृत्वेन देहेषु प्रविश्य स्वकर्मणा तानि धारयति ते च मदीये प्रकृती मत्तः सम्भूते अतोऽहमेव कृत्स्नस्य सप्रकृतिकस्य जगतः प्रभवः प्रकर्षेण भवत्यस्मादिति प्रभवः परमकारणमहमित्यर्थः तथा प्रलीयतेऽनेनेति प्रलयः संहर्ताप्यहमेवेत्यर्थः ॥ ६ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जे अपरा और परा क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंज्ञकदोनों प्रकृतिहैं योनि अर्थात् कारण जिनके ऐसेसब भूतोंको अर्थात् प्राणियोंको तू जान और जिससे मेरी प्रकृति जो मायारूपशक्ति सो सबका कारणहै इससे प्रकृति द्वारा मैंही सबजगत्का प्रभवहों अर्थात् उत्पत्ति कारणहौं और तैसेही प्रलय कारणभी मैंहीहूं अर्थात् मैं सर्वज्ञ ईश्वर जगत् कारणहौं ॥ ६ ॥

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्मादेतत्ततःमत्तः इतिमत्तः परमेश्वरात् परतरंअन्यत् कारणान्तरं किञ्चिन्नास्ति न विद्यते अहमेव जगत्कारणमित्यर्थः हे धनञ्जय यस्मादेवं तस्मान्मयि परमेश्वरे सर्व्वाणि भूतानि सर्वमिदं जगत् प्रोतमनुस्यूतमनुगतमनुविद्धं ग्रथितमित्यर्थः दीर्घतन्तुषु पटवत् सूत्रे च मणिगणाइव ॥ ७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

प्रधानात् परतोऽक्षरात् पुरुषवत् परमात्मनोऽपि परादन्यत् परं स्यादित्याशङ्क्य

प्रकृतिद्वयद्वारा सर्वकारणत्वमीश्वरस्योक्तमुपजीव्य परिहरति यस्मादिति नान्यदस्ति परमित्यत्र हेतुमाह मयीति परतरशब्दार्थमाह अन्यदिति स्वातन्त्र्यव्यावृत्त्यर्थमन्तर-शब्दः निषेधफलं कथयति अहमेवेति सर्वजगत्कारणत्वेन सिद्धमर्थं द्वितीयार्द्धव्याख्या-नेन विशदयति यस्मादिति अतो दीर्घेषु तिर्यक्षु च पटघटितेषु तन्तुषु पटस्यानुगतिर-वगम्यते तद्वन्मय्येवानुगतं जगदित्याह दीर्घेति यथा च मणयः सूत्रेऽनुस्यूतास्तेनैव धीयन्ते तदभावे विप्रकीर्यन्ते तथा मय्येवात्मभूतेन सर्वं व्याप्तं ततो निष्कृष्टं विनष्टमेव स्यादिति श्लोकोक्तं दृष्टान्तमाह सूत्रे इति ॥ ७ ॥

स्वामिकृतटीका।

यस्मादेवं तस्मान्मत्त इति मत्तः सकाशात् परतरं श्रेष्ठं जगतः सृष्टिसंहारयोःस्वत-न्त्रं कारणं किञ्चिदपि नास्ति स्थितिहेतुरप्यहमेवेत्याह मयीति मयि सर्वमिदं जगत् प्रोतं ग्रथितमाश्रितमित्यर्थः दृष्टान्तः स्पष्टः ॥ ७ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जिससे ऐसाहै इससे मैं जो ईश्वर तिससे और कोईज-गत् कारणनहींहै और मेरेहीमें सब जगत् प्रोत होरहाहै अर्थात् पुहिरहा है जैसे सूतमें अर्थात् धागेमें मणियां संग्रथितहोवैं अर्थात् गुहीहोवैं और जैसे लम्बे तंतुओंमें वस्त्रपुहाहोय तैसे साराजगत् मुझसे ग्रथित होरहाहै ॥ ७ ॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्य्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

केन केन धर्म्मेण विशिष्टे त्वयि सर्व्वमिदं प्रोतमित्युच्यते रस इति रसोऽहमपां यः सारः रसस्तस्मिन् रसभूते मय्यापः प्रोता इत्यर्थः एवं सर्व्वत्र यथाहमप्सु रस एवं प्रभास्मि शशि सूर्ययोः प्रणवः ओङ्कारः सर्ववेदेषु तस्मिन् प्रणवभूते मयि सर्ववेदाः प्रोताः तथा खे आकाशे शब्दः सारभूतः तस्मिन् मयि खं प्रोतं तथा पौरुषं पुरुषस्य भावः पौरुषं यतः पुंबुद्धिः नृषु तस्मिन् मयि पुरुषाः प्रोताः ॥ ८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अबादीनां रसादिषु प्रोतत्वप्रतीतेस्त्वय्येव सर्वं प्रोतमित्ययुक्तमिति मत्वा पृच्छति केनेति तत्रोत्तरमुत्तरग्रन्थेन दर्शयति उच्यत इतिसारो मधुरो हेतुरिति यावत् रसोऽह-मिति कथं तत्राह तस्मिन्निति अप्सु यो रसः सारस्तस्मिन्मयि मधुररसे कारणभूते प्रोता आप इति वदुत्तरत्र सर्वत्र व्याख्यानं कर्तव्यमित्याह एवमिति उक्तमर्थं दृष्टान्तं कृत्वा प्रभास्मीत्यादि व्याचष्टे यथेति चन्द्रादित्ययोर्या प्रभा तद्भूते मयि तौ प्रोतावित्यर्थः तत्र वाक्यार्थं कथयति तस्मिन्निति प्रणवभूते तस्मिन् वेदानां प्रोतत्ववदाकाशे यः सार-भूतः शब्दस्तद्रूपे परमेश्वरे प्रोतमाकाशमित्याह तथेति पौरुषं नृष्विति भागं पूर्ववद्वि-भजते तथेत्यादिना पुरुषत्वमेव विशदयति यत इति पुंस्त्वसामान्यात्मके परस्मिन्नी-श्वरे प्रोतास्तद्विशेषास्तदुपादानत्वेन तत् स्वभावत्वादित्यर्थः ॥ ८ ॥

स्वामिकृतटीका।

जगत्स्थितिहेतुत्वमेव प्रपञ्चयति रसोऽहमिति पञ्चभिः अप्सु रसोऽहं रस तन्मात्र स्वरूपया विभूत्या आश्रयत्वेनाप्सु स्थितोऽहमित्यर्थः तथा शशिसूर्ययोः प्रभास्मि चंद्रसूर्ये च प्रकाशरूपया विभूत्या तदाश्रयत्वेन स्थितोऽहमित्यर्थः अन्यत्रापीत्येवं द्रष्टव्यं सर्वेषु वेदेषु वैखरीरूपेषु तन्मूलभूत ओङ्कारोऽस्मि खे आकाशे शब्दः शब्दतन्मात्ररूपोऽस्मि नृषु पुरुषेषु पौरुषमुद्यमोऽस्मि उद्यमे पुरुषास्तिष्ठन्ति ॥ ८ ॥

नवलभाष्य।

अब कदाचित् अर्जुनकहै कि कौन कौन धर्मकरके सबजगत् आपमेंपुहा हुआहै तौ इस आकांक्षामें कहते हैं कि (रसइति) हे अर्जुन जैसे जलोंका साररसहै तैसेरसरूप जो मैंहूं तिसमें सारेजल पुहेहुये हैं और ऐसेही चन्द्रमा और सूर्य्य इनमें प्रभाकान्तिरूप मैंहूं और सब वेदोंमें ॐकाररूप मैंहूं तिस ॐकाररूप मेरेमें सबवेद संग्रथित होरहेहैं अर्थात् पिरोहे सरीखे होरहे हैं तैसे आकाशमें सारभूत शब्दहै तिस शब्दरूप मुझमें आकाश व्याप्तहोरहाहै तैसे पुरुषोंमें जो पुरुषत्व धर्महै अर्थात् पुरुषपना जिससे पुरुषयह है ऐसीबुद्धि होतीहै तिस पुरुषत्वरूप मेरेमें सबपुरुष पुहेहुये हैं॥ ८॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्याञ्च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

शङ्करभाष्यम्।

पुण्य इति पुण्यः सुरभिगन्धः पृथिव्याञ्चाहं तस्मिन् मयि गन्धभूते पृथिवी प्रोता पुण्यत्वं गन्धस्य स्वभावत एव पृथिव्यां दर्शितमबादिषुरसादेः पुण्यत्वोपलक्षणार्थमपुण्यत्वन्तु गन्धादीनामविद्याधर्माद्यपेक्षं संसारिणां भूतविशेषसंसर्गनिमित्तं भवति तेजो दीप्तिश्चास्मि विभावसावग्नौ तथा जीवनं सर्वभूतेषु येन जीवन्ति सर्वाणि भूतानि तज्जीवनं तपश्चास्मि तपस्विषु तस्मिन् तपसि मयि तपस्विनः प्रोताः ॥ ९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

मयि सर्वमिदं प्रोतमित्यस्यैव परिपूरणार्थं प्रकारान्तरमाह पुण्य इति पृथिव्यां पुण्यशब्दितो यः सुरभिगन्धः सोऽहमस्मीत्यत्र वाक्यार्थं कथयति तस्मिन्निति कथं पृथिव्यां गन्धस्य पुण्यत्वं तत्राह पुण्यत्वमिति यत्तु पृथिव्यां गन्धस्य स्वाभाविकं पुण्यत्वं दर्शितं तदबादिषु रसादेः स्वाभाविकपुण्यत्वस्योपलक्षणार्थमित्याह पृथिव्यामिति प्रथमोत्पन्नाः पञ्चापि गुणाः पुण्या एव सिद्धादिभिरेव भोग्यत्वादिति भावः कथं तर्हि गन्धादीनां पुण्यत्वप्रतिभानं तत्राह अपुण्यत्वन्त्विति तदेव स्फुटयति संसारिणामिति गन्धादयः स्वकार्यैर्भूतैः सह परिणममानाः प्राणिनां पापादिवशादपुण्याः सम्पद्यन्त इत्यर्थः पञ्चाग्नौ तेजः तद्भूते मयि प्रोतोग्निरित्याह तेज इति जीवनभूते च मयि सर्वाणि भूतानि प्रोतानीत्याह तथेति जीवनशब्दार्थमाह येनेति अन्नरसेनामृताद्ययेनेत्यर्थः तपश्चास्मीत्यादेस्तात्पर्यमाह तस्मिन्निति चित्तैकाग्र्यमनाशकादिवा तपस्तद्रात्मनीश्वरे प्रोतास्तपस्विनो विशेषणाभावे विशिष्टस्य वस्तुनो भावादित्यर्थः ॥ ९ ॥

स्वामिकृतटीका ।

किञ्च पुण्य इति पुण्योऽविकृतो गन्धो गन्धतन्मात्रं पृथिव्याश्रयभूतोऽहमित्यर्थः यद्वा विभूतिरूपेणाश्रयत्वस्य विवक्षितत्वात् सुरभिगन्धस्यैवोत्कृष्टतया विभूतित्वात् पुण्योगन्ध इत्युक्तं तथा विभावसौ अग्नौ यत्तेजो दुःसहा दीप्तिस्तदहं सर्वभूतेषु जीवनं प्राणधारणमायुरहमित्यर्थः तपस्विषु वानप्रस्थादिषु द्वन्द्वसहनरूपं तपोऽस्मि॥९॥

नवलभाष्य ।

और पृथिवीमें जो पुण्यअति पवित्रगन्धहै अर्थात् जो घ्राणइन्द्रीको तृप्तकरनेवाला सुरभिनाम करकेहै सो मैंहीहूं तिसीमें पृथिवी पुहरहीहै और यहां गन्धमें पुण्यत्व धर्म जो है सो स्वभावहीसे पृथिवी में रहताहै ऐसेही जलादिकोंमें रसादिकोंमें भी जो पुण्यत्वहै सो स्वाभाविकहै और वोहीमेरी विभूतिहै यह भगवान्ने यहां पुण्यशब्दके कहनेसे सूचितकिया और जो गन्धादिकोंमें अपुण्यताहै अर्थात् खराबपनाहै सोतौ अविद्या धर्मादिकोंकी अपेक्षा करके सांसारिक प्राणियोंके संसर्गसेहै अर्थात् उन प्राणियोंके पापादि दोषोंसे गन्धादिकोंमें भी विकार उत्पन्नहुये हैं प्रथम तौ पुण्य रूपहीरहे और हे अर्जुन अग्निमें दीप्ति जो प्रकाशहै सो मैंहीहूं और तपस्वी लोगोंमें सार जो तपहै सो मैंहूं तिस तपरूप मेरेमें सबतपस्वी पुहरहे हैं ॥ ९ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

शङ्करभाष्यम् ।

बीजमिति बीजं प्ररोहकारणं मां विद्धि सर्व्वभूतानां हे पार्त्थ सनातनं चिरन्तनं किञ्च बुद्धिर्विवेक शक्तिरन्तःकरणस्य बुद्धिमतां विवेकशक्तिमतामस्मि तेजः प्रागल्भ्यं तद्वतां तेजस्विनामहं ॥ १० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

ननु सर्वाणि भूतानि स्वकारणे प्रोतानि कथं तेषां त्वयि प्रोतत्वं तत्राह बीजमिति बीजान्तराद्यपेक्षयाऽनवस्थां वारयति सनातनमिति चैतन्यस्याभिव्यञ्जकं तत्त्वनिश्चयसामर्थ्यं बुद्धिस्तद्वतां या बुद्धिस्तद्भूते मयि सर्वे बुद्धिमन्तः प्रोता भवन्तीत्याह किञ्चेति प्रागल्भ्यवतां यत् प्रागल्भ्यं तद्भूते मयि तद्वन्तः प्रोता इत्याह तेज इति तद्धि प्रागल्भ्यं यत्पराभिभवसामर्थ्यं परैश्च प्रधृष्यत्वम् ॥ १० ॥

स्वामिकृतटीका ।

किञ्च बीजमिति । सर्वेषां चराणां भूतानां बीजं सजातीयोत्पादनसामर्थ्यं सनातनं नित्यं उत्तरोत्तरसर्वकार्येष्वनुस्यूतं तदेव बीजं मद्विभूतिं विद्धि नतु प्रकृतिव्यक्तिरिव नश्यत् तथा बुद्धिमतां बुद्धिः प्रज्ञाहमस्मि तेजस्विनां प्रगल्भानां तेजः प्रागल्भ्यमहं ॥ १० ॥

और हे अर्जुन सनातन अनादि कालसे चलाआया जो बीज अर्थात् उत्पत्ति कारण सो मैंहीहूं और बुद्धिमान् पुरुषोंकी जो बुद्धिहै अर्थात् सत् असत् पदार्थोंकी न्यारे न्यारे भावकरके जो अन्तःकरणको जाननेकी शक्ति सो मैंहूं और तेजस्वी पुरुषोंका जो तेज प्रगल्भता जिससे साधारणपुरुष कोईसामना नहींकरसक्ताहै अर्थात् तिरस्कार नहींकरसक्ताहै सो मैंहूं॥ १०॥

बलम्बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्म्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥ ११॥

शङ्करभाष्यम्।

बलमिति बलं सामर्थ्यमोजो बलवतामहं तच्च बलं कामरागविवर्जितं कामश्च रागश्च कामरागौ कामस्तृष्णा असन्निकृष्टेषु विषयेषु रागो रञ्जनाप्राप्तेषु विषयेषु ताभ्यां कामरागाभ्यां विवर्जितं देहादिधारणमात्रार्त्थं बलं सत्त्वमहमास्मि नतु यत् संसारिणां तृष्णा रागकारणं किंच धर्म्माऽविरुद्धो धर्मेण शास्त्रार्थेन अविरुद्धो यः प्राणिषु भूतेषु कामो यथा देहधारणमात्राद्यर्थौऽशनपानादिविषयः कामोऽस्मि हे भरतर्षभ॥ ११॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

यच्च बलवतां बलं तद्भूते मयि तेषां प्रोतत्वमित्याह बलमिति कामक्रोधादिपूर्बकस्यापि बलस्यानुमतिं वारयति तच्चेति कामरागयोरेकार्थत्वमाशङ्क्यार्थभेदमावेदयति कामस्तृष्णेत्यादिना विशेषणसामर्थ्यसिद्धं व्यावर्त्यं दर्शयति नत्विति शास्त्रार्थाविरुद्ध काम भूते मयि तथाविधकामवतां भूतानां प्रोतत्वं विवक्षित्वाह किञ्चेति धर्माविरुद्ध काममुदाहरति यथेति॥ ११॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च बलमिति कामोऽप्राप्तेषु वस्तुष्वभिलाषो राजसः रागः पुनरभिलषितेऽर्थे प्राप्तेऽपि पुनरधिकेर्थे चित्तरञ्जनात्मकस्तृष्णापर्यायस्तामसस्ताभ्यां बिवर्जितं बलवतां बलमस्मि सात्त्विकं स्वधर्मानुष्ठानसामर्थ्यमहमित्यर्थः धर्मेणाविरुद्धः स्वदारेषु पुत्रोत्पादनमात्रोपयोगी कामोऽहमिति॥ ११॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जो काम और रागइन करके रहित जो बलवान् पुरुषों का बलहै सो मैंहूं अर्थात् जेविषय समीप नहीं हैं उन्होंमें भोगकी जो तृष्णा होनी उसको कामकहते हैं और जे अपने समीप विषय हैं तिन्होंमें प्रीति विशेषका होना उसको रागकहते हैं तिन कामरागके निमित्तसे जो शरीरमें बलनबढ़ायाजावै किंतु स्वभाव सिद्धही जोशरीरमात्र धारणके अर्थ जोबली पुरुषका बलहै सो मैंहीहूं नामवह बलमेरीही विभूतिहै और जो औरके तिरस्कारकी कामनासे वा स्त्री आदिभोगोंकी इच्छासे संपादनकिया जो बल है सो मेरी विभूतिनहींहै यह अभिप्रायहै और हेअर्जुन जो धर्मसे अविरुद्ध अर्थात् धर्मशास्त्रसे विरोध जिसमें नहीं पायाजाय ऐसा जो देह धारणमात्र

के अर्थ जो अन्नपानादिका कामनाम प्राणियोंमें इच्छा सो मैंहूं अर्थात् वह मेरी विभूतिहै और इन्द्रियोंके भोगकी विशेष इच्छारूपजो परस्त्रीविषया-दि धर्मविरोधी कामसो मेरी विभूतिनहीं है यह सूचनकिया ॥ ११ ॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान् विद्धि नत्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च ये चैवेति ये चैव सात्त्विकाः सत्त्वनिर्वृत्ताः भावाः पदार्था राजसाः रजोनिर्वृत्ता स्तामसास्तमोनिर्वृत्ताश्च ये केचित् प्राणिनां स्वकर्म्मवशात् जायन्ते भावाः तान् मत्त एव जाय मानानित्येवं विद्धि सर्व्वान्समस्तानेव यद्यपि ते मत्तो जायन्ते तथापि नत्वहं तेषु तदधीनस्त द्वशो यथा संसारिणस्ते पुनर्म्मयि मद्वशा मदधीनाः ॥ १२ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

चिदानन्दोरभिव्यञ्जकानां भावानाम् ईश्वरात्मत्वाभिधानादन्येषामतदात्मत्व प्राप्तावुक्तं किञ्चेति प्राणिनां त्रैविध्ये हेतुं दर्शयन् वाक्यार्थमाह ये केचिदिति तर्हि पितुरिव पुत्राधीनत्वं ततो जायमानानां तदधीनत्वं तवापि स्यादिति विक्रियावत्व दृश्य त्वप्रसक्तिरित्याशङ्क्याह यद्यपीति मम परमार्थत्वात्तेषां कल्पितत्वान्न तद्गुणदोषौ मयि स्यातामित्यर्थः तेषामपि तद्वदेव स्वतन्त्रतासम्भवात् किमिति कल्पितत्वमित्याशङ्क्याह ते पुनरिति त्रिविधानां भावानां न स्वातन्त्र्यमीश्वरकार्यत्वेन तदधीनत्वात्तथाच कल्पित स्याधिष्ठानसत्ता प्रतीतिभ्यामेव तद्वत्त्वात्तन्मात्रत्वसिद्धिरित्यर्थः ॥ १२ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च ये चैवेति ये चान्येऽपिसात्त्विका भावाः शमदमादयः राजसाश्चहर्ष दर्पादयः तामसाश्च ये शोकमोहादयः प्राणिनां स्वकर्म्मवशाज्जायन्ते तान् सर्वान् मत्त एव जातान् विद्धि मदीयप्रकृतिगुणत्रयकार्यत्वात् एवमपि तेष्वहं न वर्ते जीववत् दधीनोऽहं न भवामीत्यर्थः ते तु मदधीनाः सन्तोमयि वर्त्तन्त इत्यर्थः ॥ १२॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जे प्राणियोंके स्वकर्म वशसे अर्थात् अपने अपने कर्म्म वशसे उत्पन्नहुये जे सात्त्विकभाव अर्थात् शुद्ध धर्मादि लक्षणभाव और जे काम्यकर्मादि प्रवृत्तिरूप जे रजो गुणसे सिद्धहुये भाव और जे निषिद्धकर्म प्रवृत्तिरूप जे तमोगुणसे सिद्धहुये भाव स्वभावते सबमोहीसे होतेहैं ऐसा तू जान और जे सबभाव मुझसे उत्पन्नभी हैं परन्तु मैं तिनके आधीन नहीं हौं और ते भाव तो सबमेरे आधीनहैं क्योंकि कल्पित पदार्थोंकी सत्ता अ-धिष्ठान सत्ताके आधीनहुआ करती जैसे शुक्तिमें कल्पित जो रजत तिसकी शुक्तिसत्तासेन्यारी कोई सत्तानहींहै किंतु शुक्तिसत्ताके आधीनहीसत्ताहै तैसे आत्मामें कल्पनाकिये गये जो त्रिगुण धर्मते आत्माही के आधीन रह सक्ते हैं ॥ १२ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

एवम्भूतमपि परमेश्वरं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं सर्वभूतात्मानं निर्गुणं संसारदोषबीजप्ररोहकारणं मां नाभिजानाति जगदित्यनुक्रोशं दर्शयति भगवान् तच्च किं निमित्तं जगतोऽज्ञानमुच्यते त्रिभिरिति त्रिभिर्गुणमयैर्भावैर्गुणविकारैः रागद्वेषमोहादिप्रकारैर्भावैः पदार्थैरेभिर्यथोक्तैः सर्व्वमिदं प्राणिजातं जगत् मोहितमविवेकतामापादितं सत् नाभिजानाति मामेभ्यो यथोक्तेभ्यो गुणेभ्यः परं व्यतिरिक्तं विलक्षणञ्चाव्ययं व्ययरहितं जन्मादिसर्व्वभावविकारवर्जितमित्यर्थः ॥ १३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

सतीश्वरस्य स्वातन्त्र्ये नित्यशुद्धत्वादौ च कुतो जगतस्तदात्मकस्यसंसारित्वमित्याशङ्क्यतदज्ञानादित्याह एवम्भूतमपीति यद्यप्रपञ्चोऽविक्रियश्च त्वंःकस्मात्त्वामात्मभूतं स्वयंप्रकाशं सर्वो जनस्तथा न जानातीति मत्वा शङ्कते तच्चेति श्लोकेनोत्तरमाह उच्यत इतिएभ्यः परमित्यप्रपञ्चकत्वमुच्यते अव्ययमिति सर्वविक्रियाराहित्यं ॥ १३ ॥

स्वामिकृतटीका ।

एवं भूतमीश्वरं त्वामेवं जनः किमिति नजानातीत्यत आह त्रिभिरिति त्रिभिस्त्रिविधैरेभिः पूर्वोक्तैर्गुणमयैः कामलोभादिभिर्गुणविकारैर्भावैः स्वभावैर्मोहितमिदं जगत् अतो मां नाभिजानाति कथंभूतं एभ्यो भावेभ्यः परं एभिरस्पृष्टं एतेषां नियंतारं अत एवाव्ययं निर्विकारमित्यर्थः ॥ १३ ॥

नवलभाष्य ।

अब इसप्रकार नित्यशुद्ध बुद्धमुक्त स्वभाव और सबभूतोंका आत्मा और निर्गुण और संसारदोष बीजके प्ररोहका अर्थात् अंकुरका कारण ऐसा जोमैंहूं तिसकोजगत् नहीं जानताहै यह अपनी दया दिखातेहुये भगवान् सोवहजगत्‌केअज्ञानमें क्या निमित्तहै इस आकांक्षामें कहतेहैं(त्रिभिरिति)हे अर्जुन तीनगुणमय अर्थात् गुणोंके विकार भावनाम रागद्वेष मोहादि प्रकारके पदार्थ तिन्होंकरके मोहित अर्थात् अविवेकताको प्राप्तहुआ जो प्राणियोंका समूहरूप जो जगत् सो इनगुणमय विकारोंसेपरे अर्थात् इनकरके रहित इनसे विलक्षण जन्मादि सबभाव विकारों करके वर्जित जो मैंहूं तिसको नहीं जानताहै ॥ १३ ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १४ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

कथं पुनर्दैवीमेतां त्रिगुणात्मिकां वैष्णवींमायामतिक्रमन्तीत्युच्यते दैवीति दैवी देवस्य विष्णोः स्वभावभूता हि यस्मात् एषा यथोक्ता गुणमयी मम माया दुरत्यया दुःखेनात्ययोऽतिक्रमणं यस्याः सा दुरत्यया तत्रैवं सति सर्व्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेव मायाविनं स्वात्मभूतं स

र्व्वात्मना ये प्रपद्यन्ते ते मायामेतां सर्व्वभूतचित्तमोहिनीं तरन्त्यतिक्रामन्ति संसारबन्धनात् मुच्यन्त इत्यर्थः ॥ १४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यथोक्ताऽनादिसिद्धमायापारवश्यपरिपर्य्यनायोगाज्जगतो न कदाचिदपि तत्त्वबोधसमुदयसम्भावनेत्याशङ्क्य कथं पुनरिति भगवदेकशरणतया तत्त्वज्ञानद्वारेण मायातिक्रमः सम्भवतीति परिहरति उच्यत इतिकथंदुरत्ययत्वेन तदत्ययः स्यादिति तत्राहमामेवेति प्रधानस्यैव स्वातंत्र्यं मायाया व्युदस्यति देवस्येति स्वातन्त्र्ये मायात्वाऽनुपपत्तिं हिशब्दद्योतितां हेतुं करोति यस्मादिति अनुभवसिद्धा सानकस्मादपलापमर्हतीत्याह एषेति जगतस्तत्तत्त्वप्रतिबन्धकीभूता गुणाः सत्त्वादयो ममेति प्रागुक्तमेव मायायाः सम्बन्धमनूद्य विधित्सितं दुरत्ययत्वं विभजते दुःखेनेतिममेवेत्यादि व्याचष्टे तत्रेति तस्मिन् मायारूपे यथोक्तरीत्या दुरत्यये सतीति यावत् मामेवेत्येवकारेण मायाया वेद्यकोटिनिवेशाभावो विवक्षते सर्वात्मना कर्म्मानुष्ठानादिव्यग्रतामन्तरेणेत्यर्थः मायातिक्रमो मोहातिक्रमो भवतीति मत्वा विशिनष्टि सर्वेति मायातत्प्रयुक्तमोहयोरतिक्रमेऽपि कथंपुरुषस्य पुरुषार्थ सिद्धिरित्याशंक्याह संसारेति ॥ १४ ॥

स्वामिकृतटीका।

के तर्हि त्वां जानन्तीन्यत आह दैवीति दैवी अलौकिकी अत्युद्भुतेत्यर्थः गुणमयी सत्त्वादिगुणविकारात्मिका मम परमेश्वरस्य शक्तिर्म्माया दुरत्यया दुस्तरा हि प्रसिद्धमेतत्तथापि मामेवेत्येवकारेणाव्यभिचारिण्या भक्त्या ये प्रपद्यन्ते भजन्ति मायामेतां सुदुस्तरामपि ते तरन्ति ततो मां जानन्तीति भावः ॥ १४ ॥

नवलभाष्य।

फिरकैसे इसदैवी त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको तरते हैं अर्थात् कैसे इसके पारहोतेहैं प्राणी इसहेतुसे इसका उपाय भगवान् कहतेहैं कि(दैवीति) हे अर्जुन दैवी अर्थात् देव जो ईश्वर विष्णु मैं तिसकी स्वभाव भूत हीयह त्रिगुणात्मिका मायाकही इसीसेदुरत्ययहै अर्थात् दुःखकरकेहैअतिक्रमण उल्लंघन जिसकाऐसी है तबजब ऐसेहुआ तौ सबधर्मोंको त्यागकरके मायावी और अपना आत्मभूत जो मैं तिसीके शरणजे प्राप्तहोते हैं तेसब प्राणियोंके चित्तके मोहन करनेवाली जो यहमाया तिसको उल्लंघन करते हैं अर्थात् तिसके पारहोके संसार बन्धनसे छूटते हैं अर्थात् सिवायमेरे शरणहोनेके और कोईदूसरा उपाय इसमायाके तरनेका नहींहै ॥ १४ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराऽधमाः।
माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ १५॥

शंकरभाष्यम्।

यदि त्वां प्रपन्नाः मायामेतां तरन्ति कस्मात्त्वामेव सर्वेन प्रपद्यन्ते इत्युच्यते न मामिति न मां परमेश्वरं दुष्कृतिनः पापकारिणो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः नराणां मध्ये अधमा निकृष्टास्ते च माययापहृतज्ञाना आसुरं भावं हिंसानृतादिलक्षण माश्रिताः ॥ १५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

भगवन्निष्ठाया मायातिक्रमहेतुत्वे तदेकनिष्ठत्वमेव सर्वेषामुचितमिति पृच्छति यदीति पापकारित्वेनाविवेकभूयस्तया हिंसानृतादिभूयस्त्वाद्भूयसां जन्तूनां न भगवन्निष्ठत्वसिद्धिरित्याह उच्यत इति मौढ्यं पापकारित्वे हेतुरत एव निकृष्टाः संमुषितमिव तिरस्कृतं ज्ञानं स्वस्वरूपचैतन्यमेषामिति ते तथा ॥ १५ ॥

स्वामिकृतटीका।

किमिति तर्हि सर्वे त्वामेव न भजन्तीत्यत आह न मामिति नरेषु येऽधमास्ते मां न प्रपद्यन्ते न भजन्ति अधमत्वे हेतुः मूढा विवेकशून्याः तत्कुतो दुष्कृतिनः पापशीला अतो मयापहृतं निरस्तं शास्त्राचार्य्योपदेशाभ्यां जातमपि ज्ञानं येषां ते तथा अतएव दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधपारुष्यमेवचेत्यादिना वक्ष्यमाणमासुरं भावं स्वभावं प्राप्ताः सन्तो न मां भजन्ति ॥ १५ ॥

नवलभाष्य।

अब जो आपहीके शरण होनेसे इसमायाके पारहोते हैं तो सबी प्राणी आपहीके शरण क्यों नहींहोते इस आशंकाको दूरकरतेहुये कहते हैं कि (नमामिति) हे अर्जुन जे इस संसारमें दुष्कृतीपाप करनेवाले मनुष्यों में अधम मूढ़ पुरुषहैं तेमेरी शरणही नहीं प्राप्तहोतेहैं किंतुमाया करके अपहृत चुरायागयाहै विवेकज्ञान जिन्होंका ऐसेहुये हिंसा अनृतभाषण दंभ दर्पादि रूप जो असुरोंका स्वभावहै तिसका आश्रयण करतेहैं अर्थात् जब पापवश करके उनका विवेकज्ञान नष्टहोगया तो ईश्वरको जानही नहीं सके और उलटा संशय ग्रस्त चित्तहोके ईश्वर विषय मेंभी नानाप्रकारकी कुतर्ककरते हैं और रामकृष्णादिकों को ईश्वरावतारही वे आसुर पुरुष नहीं कहते हैं फिर उनके वचनोंमें श्रद्धाकरके कैसे परमेश्वरके शरणप्राप्तहोंय इसीसे वे मूढ़ पुरुष हिंसादिदोष ग्रस्तहुये विषय जालमें नानाप्रकारके दुःखोंकोअनुभव करतेभी कभी विरक्त नहींहोते हैं ॥ १५ ॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

ये पुनर्नरोत्तमाः पुण्यकर्माणः चतुर्विधेति चतुर्विधाश्चतुःप्रकारा भजन्ते सेवन्ते मां जनाः सुकृतिनः पुण्यकर्माणो हे अर्जुन आर्त्तः आर्त्तिपरिगृहीतः तस्करव्याघ्ररोगादिना अभिभूतःअभिभवं आपन्नो जिज्ञासुर्भगवत्तत्त्वं ज्ञातुमिच्छति योऽर्थार्थी धनकामो ज्ञानी विष्णोस्तत्त्वविच्च हे भरतर्षभ ॥ १६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

केषां तर्हितन्निष्ठता सुकरेति तत्राह ये पुनरिति ते भजन्ते भगवन्तमिति शेषः ये त्वां भजन्ते ते किं सर्वे मायां तरन्ति नैवं प्रार्थनावैचित्र्यादित्याह चतुर्विधा इति

आपन्नस्तन्निवृत्तिमिच्छन्नितिशेषः तत्त्वविदिति शब्दज्ञानवानात्मतत्त्वसाक्षात्कारमात्रार्थंमुमुक्षुरित्यर्थः ॥ १६ ॥

स्वामिकृतटीका ।

सुकृतिनस्तु मां भजन्त्येव ते च सुकृततारतम्येन चतुर्विधा इत्याह चतुर्विधा इति पूर्वजन्मसु ये कृतपुण्यास्ते मां भजन्ति ते चतुर्विधाः आर्त्तो रोगाद्यभिभूतः स यदि पूर्वं कृतपुण्यस्तर्हि मां भजति अन्यथा क्षुद्रदेवताभजनेन संसरति एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यं जिज्ञासुरात्मज्ञानेच्छुः अर्थार्थी अत्र परत्र च भोगसाधनभूतार्थप्रेप्सुः ज्ञानी चात्मवित् ॥ १६ ॥

नवलभाष्य।

और जे तो पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्योंमें श्रेष्ठहैं ते तो सब त्यागकरके मेराही भजन करतेहैं इस आशयसे कहते हैं (चतुर्विधेति) हे अर्जुन चार प्रकारके सुकृती पुण्यात्मा पुरुषमेरा भजन करतेहैं अर्थात् जे परमेश्वरका भजन करते हैं तेसब पुण्यशीलही हैं परन्तु पुण्यके तारतम्यसे अर्थात् न्यूनाधिक्यभावसे उनकाभजन चारप्रकारका होताहै तिनमेंएकतो जो किसी दुःखकरके पीड़ित पुरुषहै वह परमेश्वरका भजन करताहै अर्थात् चोर और व्याघ्रादिकों करके कहींघिरगयाहै अथवा कोई बड़ेभारी रोगादिपीड़ा करके व्याकुल होरहाहै तबवह पुण्यात्माहै तो उससमयमें परमेश्वरहीका स्मरण करताहै फिरउस क्लेशसे निवृत्त होजाताहै और उस क्लेशसे निवृत्त होनेके अनन्तर बड़ाभारी पुण्यका सहायहुआ तो संसार बन्धनरूप जो बड़ाभारी दुःखतिसकी निवृत्तिके लिये परमेश्वरके स्वरूपके जाननेकी इच्छा करके वहभजन करताहै तो वह जिज्ञासुभक्त दूसरे प्रकारकाहुआ उसीको मुमुक्षु भी कहतेहैं क्योंकि जिसकी संसारसे मुक्तहोनेकी इच्छाहोय उसको शास्त्र में मुमुक्षुकहाहै और जो एकवार परमेश्वरके भजनसे कोई दुःखसे निवृत्त हुआ इससे उसको विश्वास तो उत्पन्नहुआ परन्तु बड़ाभारी उत्कट पुण्य नहीं है किंतु सांसारिक भोगोंकी प्राप्तिहोनेके योग्यही पुण्यहै और उसभक्त की भी वासना सांसारिकभोगोंसे निवृत्तनहींहुईहै तो वहधनपुत्रकलत्र राज्यादि भोगकी प्राप्तिहोनेही की इच्छाकरके परमेश्वरका भजन करताहै तो वह तीसरा अर्थार्थी सकामभक्तहुआ और जिसने अधिक पुण्यके प्रभावसे संसारसे निवृत्तहो केवल परमेश्वरके जाननेकी इच्छासे भजन किया था और वहफिर परमेश्वरकेप्रसादसे ज्ञानकोप्राप्तहोगया तोवहज्ञानीहोकेयथार्थ परमेश्वरके परमानन्द स्वरूपको जानके उसस्वरूपानन्दमें मग्नहो फिरउस से जुदाहोनेकी कभी इच्छानहीं करताहुआ उसी भगवत्स्वरूपमें अपनासे अभेददृष्टि करके रमण करताहै तो वह चौथाज्ञानी भक्तकहाताहै उसके पुण्य समूहोंकी गणना करने को कोई समर्थ नहीं जिससे कृतकृत्यावस्था को प्राप्तहुआहै ॥ १६ ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥ १७॥

शङ्करभाष्यम्।

तेषामिति तेषां चतुर्णां मध्ये ज्ञानी तत्त्ववित्त्वान्नित्ययुक्तो भवत्येकभक्तिश्चान्यस्य भजनीयस्य दर्शनादतः स एकभक्तिर्विशिष्यते विशेषमाधिक्यमापद्यते अतिरिच्यत इत्यर्थः प्रियो हि यस्मादहमात्मा ज्ञानिनोऽतस्तस्याहमत्यर्थं प्रियः प्रसिद्धं हि लोके आत्मा प्रियो भवति इति तस्मात् ज्ञानिन आत्मत्वाद्वासुदेवः प्रियो भवतीत्यर्थः स च ज्ञानी मम वासुदेवस्यात्मैवेति ममात्यर्थं प्रियः॥ १७॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

चतुर्विधानां तेषां सुकृतिनां भगवदभिमुखानां तुल्यत्वमाशंक्याह तेषामिति तस्य विशिष्यमाणत्वे हेतुमाह प्रियो हीति नित्ययुक्तत्वं भगवत्यात्मनि सदा समाहितत्वे तत्त्वं असारे संसारे भगवानेव सारः सोऽहमस्मीत्येकस्मिन्नद्वितीये स्वस्मादत्यन्तमभिन्ने भगवतिभक्तिः स्नेहविशेषोऽस्येत्येकभक्तिः तस्याधिक्ये हेतुं विवृणोति प्रियो हीत्यादिना भगवतो ज्ञानिनश्च परस्परं प्रेमास्पदत्वे प्रसिद्धिं प्रमाणयति प्रसिद्धं हीति आत्मनो ज्ञानिनं प्रतिप्रियत्वेऽपि भगवतो वासुदेवस्य कथं तं प्रति प्रियत्वमित्याशंक्याह तस्मादिति अहंज्ञानीनो निरुपाधिकप्रेमास्पदं परमपुरुषार्थत्वेनात्मत्वेन च गृहीतत्वादित्यर्थः ज्ञानिनोऽपि भगवन्तंप्रति प्रियत्वं प्रकटयति स चेति॥ १७॥

स्वामिकृतटीका।

तेषां मध्ये ज्ञानी श्रेष्ठ इत्याह तेषामिति तेषां मध्ये ज्ञानी विशिष्टः तत्र हेतवः नित्ययुक्तः सदा मन्निष्ठः एकस्मिन् मय्येव भक्तिर्यस्य सः ज्ञानीनो देहाद्यभिमानाभावेन चित्तविक्षेपाभावान्नित्ययुक्तत्वमेकान्तभक्तित्वञ्च सम्भवति नान्यस्य अतएव तस्याहमत्यन्तप्रियः स च मम तस्मादेतैर्नित्ययुक्तत्वादिभिश्चतुर्भिर्हेतुभिः स उत्तम इत्यर्थः॥ १७॥

नवलभाष्य।

तिनचार प्रकारके भक्तोंके मध्यमें तत्त्ववित् होनेसे ज्ञानी नित्ययुक्त है अर्थात् नित्यही मेरेमें समाहितचित्त एकाग्रचित्तहै और एकभक्तिहै क्योंकि दूसराकोई उसको भजन करनेके योग्यहै नहींहै इससे वह एकभक्तहै इसीसे सब भक्तोंमें अधिकहै अर्थात् श्रेष्ठहै और जिससे मैं ज्ञानीका आत्माहौं तिससे मैं ज्ञानीको अत्यन्त प्रियहौं और यह लोकमें भी प्रसिद्धहै कि अपना आत्मा सबको प्रियहोताहै तिससे आत्मा होनेसे वासुदेवभी ज्ञानीको प्रियहै और सो ज्ञानीभी मैं जो वासुदेव तिसका आत्माही है इससे मुझको अत्यन्त प्रियहै॥ १७॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः सहि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥ १८॥

शङ्करभाष्यम्।

न तर्हि आर्त्तादयस्त्रयो वासुदेवस्याऽप्रियाः नकिं तर्हि उदारा इति उदारा उत्कृष्टाः सर्व्व एवैते त्रयोऽपि मम प्रिया एवेत्यर्थः नहि कश्चिन्मद्भक्तो मम वासुदेवस्याप्रियो भवतीति ज्ञानी त्वत्यर्थं प्रियोभवतीति विशेषः तत् कस्मादित्याह ज्ञानीत्वात्मैव नान्यो मत इति मे मम मतं निश्चयः आस्थित आरोढुं प्रवृत्तः स च ज्ञानीहि यस्मादहमेव भगवान् वासुदेवो नान्योऽस्मी त्येवं युक्तात्मा समाहितचित्तः सन् मामेव परं ब्रह्म गन्तव्यमनुत्तमां गतिं गन्तुं प्रवृत्त इत्यर्थः॥ १८॥

आनंदगिरिकृतटीका।

ज्ञानी चेदत्यर्थमीश्वरस्य प्रियो भवति तर्हि विशेषणसामर्थ्यादितरेषामप्रियत्वं प्राप्तमिति शङ्कते न तर्हीति तेषां भगवन्तं प्रतिप्रियतमत्वविवक्षितमित्याह नेति अत्यर्थमिति विशेषणस्य तर्हि किं प्रयोजनमिति पृच्छति किं तर्हीति सर्वेषां भगवदभिमुखत्वादुत्कर्षेऽपि ज्ञानिनि तदतिरेकमंगीकृत्य विशेषणमित्याह उदारा इति किं तत्रप्रमाणमित्याशंक्य ईश्वरज्ञानमित्याह मे मम मतमिति ज्ञानी त्वात्मैवेत्यत्र हेतुमाह आस्थित इति सर्वशब्दस्य ज्ञानिव्यतिरिक्तविषयत्वमाह त्रयोऽपीति ज्ञानिव्यतिरिक्तानां भगवदभिमुखत्वेऽपि ज्ञानाभावापराधान्न भगवत्प्रीतिविषयतेत्याशङ्क्याह नहीति कस्तर्हि ज्ञानवति सति विशेषस्तत्राह ज्ञानीत्विति तमेव विशेषं प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति कस्मादित्यादिना सर्वमात्मानं पश्यतोऽपि अपक्षपातिनः तस्य तव कथं यथोक्तो निश्चयः स्यादित्याशंक्यास्थित इत्येतत् व्याकरोति आरोढुमिति आरोहेहेतुं सूचयति सच ज्ञानीति आरोढुं प्रवृत्तमेव स्फुटयति मामेवेति॥ १८॥

स्वामिकृतटीका।

तर्हि इतरे त्रयस्त्वद्भक्ताः किं संसरन्ति नहि नहीत्याह उदारा इति सर्वेऽप्येते उदारा महान्तः मोक्षभाज इवेत्यर्थः ज्ञानी तु पुनरात्मैवेति मे मतं निश्चयः हि यस्मात् स ज्ञानी युक्तात्मा मदेकचित्तः सन् न विद्यते उत्तमा यस्यास्तामनुत्तमां सर्वोत्तमां गतिंमामेवास्थित आश्रितवान् मत्व्यतिरिक्तमन्यत् फलं न मन्यत इत्यर्थः॥१८॥

नवलभाष्य।

न कहो और भक्तक्या आपको प्रियनहींहैं तिसपै कहतेहैं (उदाराइति) हे अर्जुन सब भक्तमेरे उदारहीहैं अर्थात् मुझको प्रियहीहैं किसी समयमें कोई भक्तमुझको प्रियनहोय सोनहींहै किंतु भक्तमुझको प्रियहैं तिनमेंज्ञानी तो अत्यन्तप्रियहै काहेसे जिससे ज्ञानीमेरा आत्माही है और भिन्ननहीं है ऐसामेरा निश्चयहै जिसकारणसे सो ज्ञानी वासुदेव मैंहूं अन्यनहींहै ऐसे प्रकारसे समाहित चित्तहोके अर्थात् एकाग्रचित्तहोके मैं जो परब्रह्मरूप प्राप्त होनेके योग्य जो गतितिसको प्राप्तहोनेको प्रवृत्तहुआ है॥ १८॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ १९॥

शङ्करभाष्यम्।

ज्ञानी पुनरपि स्तूयते बहूनामिति बहूनां जन्मनां ज्ञानार्थसंस्काराऽर्जनाश्रयाणां अन्ते समाप्तौ ज्ञानवान् प्राप्तपरिपाकज्ञानी मां वासुदेवं प्रत्यगात्मानं प्रत्यक्षतः प्रतिपद्यते कथं वासुदेवः सर्वमिति य एवं सर्वात्मानं मां प्रतिपद्यते स महात्मा न तत्समोऽन्योऽस्त्यधिको वाऽतः सुदुर्लभो मनुष्याणां सहस्रेष्वित्युक्तं ॥ १९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

उत्तरश्लोकस्य गतार्थत्वं परिहरति ज्ञानीति ज्ञानार्थसंस्कारो वासना तत्तज्जन्मनि पुण्यकर्म्मानुष्ठानजनिता बुद्धिशुद्धिस्तदाश्रयाणां तद्वतामनन्तानां जन्मनामिति यावत् ज्ञानवत्त्वं प्राक्तनेष्वपि जन्मसु सम्भावितमित्याशङ्क्याह प्राप्नोति ज्ञानवतो भगवत्प्रतिपत्तिं प्रश्नद्वारा विवृणोति कथमिति यथोक्तज्ञानस्य तद्वतश्च दुर्लभत्वं सूचयति य एवमिति महत्सर्वोत्कृष्टमात्मशब्दितं चित्तमस्येति महात्मत्वे फलितं हेतुमाह अत इति तत्र वाक्योपक्रमानुकूल्यं कथयति मनुष्याणामिति ॥ १९ ॥

स्वामिकृतटीका।

एवंभूतो मद्भक्तोऽतिदुर्लभ इत्याह बहूनां जन्मनां किञ्चित् पुण्योपचयेन अन्ते चरमे जन्मनि ज्ञानवान् सन् सर्वमिदं चराचरं वासुदेव इति सर्वात्मदृष्ट्या मां प्रपद्यते भजति अतः स महात्मा अपरिच्छिन्नदृष्टिः सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

नवलभाष्य।

अब फिर ज्ञानीकी स्तुति करतेहुये भगवान् कहते हैं (बहूनामिति) हे अर्जुन बहुत जन्मोंके अन्त्यमें अर्थात् ज्ञानकेअर्थ संस्कारोंके अर्जनमें साधन भूतजे बहुतसे जन्म तिन्होंके अन्त्यमें जिसजन्ममें ज्ञानवान् होता है अर्थात् प्राप्त हुआहै ज्ञानका परिपाक जिसजन्ममें तिसींजन्ममें मैंजो वासुदेव प्रत्यगात्मा अर्थात् अपने स्वरूपसे अभिन्न जो वासुदेव मैंहूं तिसको प्रत्यक्ष प्राप्तहोता है कैसे कि सब वासुदेवहीहै इसप्रकार सर्वात्मा जोमैंहूं तिसको जो प्राप्तहोताहै सो महात्मा हजारों मनुष्योंमें दुर्लभहै क्योंकि न उसके समान कोई है और न उससे अधिक कोई है इससे वह दुर्लभ है ॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥

शंकरभाष्यम्।

आत्मैव सर्वो वासुदेव इत्येवमप्रतिपत्तौ कारणमुच्यते कामैरिति कामैस्तैस्तैः पुत्रपशुस्वर्गादिविषयैर्हृतज्ञाना अपहृतविवेकविज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवताः प्राप्नुवन्ति वासुदेवादात्मनोऽन्या देवता स्तं तं नियमं देवताराधने प्रसिद्धो यो यो नियमस्तं तमास्थायाश्रित्य प्रकृत्या स्वभावेन जन्मान्तरार्जितसंस्कारविशेषेण नियतनियमिताः स्वया आत्मीयया ॥ २० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

किमिति तर्हि सर्वेषां प्रत्यग्भूते भगवति यथोक्तज्ञानं नोदेतीत्याशङ्क्य न मामित्य

श्रोक्तं हृदि निधाय ज्ञानानुदये हेत्वन्तरमाह आत्मैवेति कामैर्नानाविधैरपहृतविवेक विज्ञानस्य देवतान्तरनिष्ठत्वमेव प्रत्यग्भूतपरदेवताप्रतिपत्यभावे कारणमित्याह कामैरिति देवतान्तरनिष्ठत्वे हेतुमाह तं तमिति प्रसिद्धो नियमो जपोपवासप्रदक्षिणनमस्काराद्दिः नियमविशेषाश्रयणे कारणमाह प्रकृत्येति ॥ २० ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं कामिनोऽपि सन्तः कामप्राप्तये परमेश्वरमेव ये भजन्ति ते कामान् प्राप्य शनैर्मुच्यन्त इत्युक्तं ये त्वत्यन्तं राजसास्तामसाश्च कामाभिभूताः क्षुद्रदेवताः सेवन्ते ते संसरन्तीत्याह कामैरिति चतुर्भिः ये तु तैस्तैः पुत्रकीर्तिशत्रुजयादिविषयैः कामैरपहृतविवेकाः सन्तोऽन्याः क्षुद्रा भूतप्रेतयक्षादिदेवता भजन्ति किं कृत्वा तत्तद्देवताराधने यो यो नियम उपवासादिलक्षणस्तं तं नियमं स्वीकृत्य तत्रापि च स्वीयया प्रकृत्या पूर्वाभ्यासवासनया नियता वशीकृताः सन्तो देवताविशेषं भजन्ति ॥ २० ॥

नवलभाष्य।

सबका आत्माही वासुदेवहै इसप्रकार ज्ञानके नहीं होनेमें कारण कहते हैं (कामैरिति) हे अर्जुन तौन तौन जे पुत्र पशुस्वर्गादि विषय कामना तिन्हों करके नष्टहुआहै विवेकज्ञान जिन पुरुषोंका ते अपने पूर्व जन्मोंके संस्कारों करके वशीभूतहुये तिसतिस देवताके आराधनका तौन तौन शास्त्रोक्त नियमको आश्रयण करके अर्थात् जिस देवताके आराधनका नाम पूजन करनेका जो नियम अर्थात् स्नान दानव्रत यजनादिकहाहै तिसको तिसी प्रकारसे करके अपना आत्मरूप जो वासुदेव तिससेअन्य जे इन्द्रादि देवताहैं तिनको प्राप्तहोते हैं ॥ २० ॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तेषाञ्च कामिनां यो य इति यो यः कामी यां यां देवता तनुं श्रद्धया संयुक्तो भक्तश्च सन्नार्चितुं पूजयितुमिच्छति तस्य तस्य कामिनोऽचलां स्थिरां श्रद्धां तामेव विदधामि स्थिरीकरोमि ययेव पूर्वं प्रवृत्तः स्वभावतो यो यो यां देवतातनुं श्रद्धया अर्चितुमिच्छतीति ॥ २१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तत्तद्देवताप्रसादात् कामिनामपि सर्वेश्वरे सर्वात्मके वासुदेवे क्रमेण भक्तिर्भविष्यतीत्याशङ्क्याह तेषाञ्चेति स्वभावतो जन्मान्तरीयसंस्कारवशादित्यर्थः भगवद्विहितया स्थिरया श्रद्धया संस्काराधीनया देवताविशेषमाराधयतोऽपि भगवदनुग्रहादेव फलप्राप्तिरित्याह यो यो यामिति ईहते निर्वर्त्तयतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

स्वामिकृतटीका।

तेषां मध्ये यो य इति यो यो भक्तो यां यां तनुं देवतारूपां मदीयामेव मूर्तिं श्रद्धया अर्चितुम् इच्छति प्रवर्तते तस्य तस्य भक्तस्य तत्तन्मूर्तिविषयां तामेव श्रद्धामचलांदृढ़ामहमन्तर्यामी विदधामि करोमि ॥ २१ ॥

नवलभाष्य ।

और हे अर्जुन जो जो कामना करनेवाला पुरुषजिसजिस देवताकी मूर्त्ति कोभक्तहोके उस देवताकी श्रद्धासे पूजनकरनेकी इच्छाकरताहै तिसातिसका-मनायुक्त पुरुषकी तिसातिस देवतामें वोही अचल नाम स्थिर जो श्रद्धा है तिसको मैं विधान करताहूं अर्थात् स्थिर करताहूं अर्थात् जिस श्रद्धासे प-हिले वह पूजक स्वभावहीसे जिसकिसी देवताके पूजनमें प्रवृत्तहुआ था उसी श्रद्धाको मैं अन्तर्यामि रूपकरके दृढ़ करदेताहूं कुछ अपनी तरफ़ से नयी श्रद्धाको उत्पन्न नहीं करताहूं ॥ २१ ॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हितान् ॥२२॥

शङ्करभाष्यम् ।

स तयेति स तया मद्विहितया श्रद्धया युक्तः सन् तस्या देवतायाः तन्वा आराधनमीहते चेष्टते लभते च ततः तस्या आराधिताया देवता तन्वाः कामानीप्सितान् मयैव परमेश्वरेण सर्वज्ञेन कर्मफलविभागज्ञतया विहितान्निर्म्मितान् तान् हि यस्मात्ते भगवता विहिताः कामा स्तस्मात्तानवश्यं लभन्ते इत्यर्थः हितानिति पदच्छेदे हितत्वं कामानामुपचारितं कल्प्यं नहि कामाऽहिताः कस्यचित् ॥ २२ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

आराधितदेवताप्रसादात् फलप्राप्तौकिमीश्वरेणेत्याशंक्य तस्य सर्वज्ञस्य सर्वकर्मफल विभागाभिज्ञस्य तद्देवताधिष्ठातृत्वात्तस्यैव फलदातृत्वमित्याह सर्वज्ञेनेति एकोबहूनां योविदधाति कामानित्यादि श्रुतिमाश्रित्य हितानिति पदद्वयं व्याचष्टे यस्मादितिहि-तानीत्येकं पदमिति पक्षं प्रत्याह हितानिति मुख्यत्वसम्भवे किमित्यौपचारिकत्वमि-त्याशंक्याहनहीति ॥ २२ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ततश्च स तयेति स भक्तस्तया दृढ़या श्रद्धया तस्यास्तनोराराधनमीहते करोति ततश्च कामा: ये सङ्कल्पितास्तांश्च ततो देवताविशेषाल्लभते किन्तु मयैव तत्तद्देवता न्तर्यामिना विहितान् निर्मितान् हि स्फुटमेतत् तत्तद्देवतानामपि मदधीनत्वान् मूर्तित्वाच्चेत्यर्थः ॥ २२ ॥

नवलभाष्य ।

फिरवह मुझकरके विधान करीहुई जोश्रद्धा तिसकरके युक्तहोके तिस देवताकी मूर्त्तिके आराधनको करताहै फिर उसदेवतामें अन्तर्यामि रूपकर केप्रविष्ट मैंजो कर्म्मफलोंको विभाग करके देनेवाला सर्वज्ञ ईश्वर तिसकरके रचेहुये जे अभीष्ट कामतिनको उस आराधन करीहुई देवताकी मूर्त्तिसे प्राप्तहोताहै वह पुरुष क्योंकि जिससे सत्यसंकल्प भगवान्के रचेहुये वे प-दार्थ हैं इससे अवश्य उनको प्राप्तहोते हैं और जो कोई ऐसा अर्थ करते हैं

कि अपनाको हितकरनेवाले जो कामहैं तिनको वहभक्त प्राप्तहोता है सो यह अर्थ तो ठीकनहीं क्योंकि काम किसीको हितकारी कभी होतेही नहीं हैं ॥ २२ ॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ २३॥

शङ्करभाष्यम्।

यस्मादन्तवत्साधनव्यापारा अविवेकिनः कामिनश्च ते अतः अन्तवदिति अन्तवद्विनाशि तत्फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसामल्पप्रज्ञानां देवान् देवयजो यान्ति देवान् जयन्ति इति देवयजः ते देवान् यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि एवं समानेऽप्यायासे मामेव न प्रतिपद्यन्ते अनन्तफलायाहो खलु कष्टं वर्तत इत्यनुक्रोशं दर्शयति भगवान् ॥ २३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

प्रेक्षपूर्वकारीणि कामानां हि तत्त्वाभावे हेतुमाह यस्मादिति किञ्च ये कामिनस्तेन विवेकिनस्ततश्चाविवेकपूर्वकत्वात् कामानां कुतो हितत्वाशंकेत्याह अविवेकिन इति कामानामनन्तफलत्वेनहितत्वमाशंक्याह अतइति तेषामविवेकपूर्वकत्वमतः तुशब्दार्थः तुशब्दोऽवधारणार्थः कामफलस्यानाशित्वे किमिति कामनिष्ठत्वं जन्तूनामित्याशंक्य प्रज्ञामान्द्यादित्याह अल्पेति किं तर्हि साधनमनन्तफलायेत्याशंक्य भगवद्भक्तिरित्याह मद्भक्ता इति अक्षरार्थमुक्त्वा श्लोकस्य तात्पर्यार्थमाह एवमिति देवताप्राप्तौ भगवत्प्राप्तौ चेति शेषः मामेवेत्यादौ देवताविशेषं प्रतिपद्यन्ते अन्तवत् फलायेति वक्तव्यं उक्तवैपरीत्ये कारणमविवेकातिरिक्तं नास्ति इत्यभिप्रेत्याह अहो खल्विति ॥ २३ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं यद्यपि सर्वा अपि देवता ममैव तनवोऽतस्तदाराधनमपि वस्तुतो मदाराधनमेव ततत्फलदातापि चाहमेव तथापि साक्षान्मद्भक्तानाञ्च तेषाञ्च फलवैषम्यं भवतीत्याह अन्तवदिति अल्पमेधसां परिच्छिन्नदृष्टीनां मया दत्तमपि तत्फलमन्तवत् विनाशि भवति तदेवाह देवान् यजन्तीति देवयजस्ते देवानन्तवतो यान्ति मद्भक्तास्तु मामनाद्यनन्तं परमानन्दं प्राप्नुवन्ति ॥ २३ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जिससे अन्तयुक्तहै साधन व्यापार जिन्होंका ऐसे अविवेकी वेकामी पुरुषहैं अर्थात् जिस कर्मरूप साधनसे फलकी इच्छा करतेहैं वह नाशवान्है इससे उन अल्पबुद्धि पुरुषोंको नाशवान्ही फलहोता है इसप्रकार देवताओंके यजन पूजन करनेवाले पुरुष देवलोकों को प्राप्तहोते हैं और जे मेरेभक्तहैं ते मुझको भी प्राप्तहोते हैं यहां भगवान् यह सूचन करतेहैं कि श्रमतो दोनोंको बराबरहीहै तो भी मन्दबुद्धि पुरुष नाशवान् फलकेलिये यत्नकरते हैं और मुझको न जानते हैं और अनन्त फलकेलिये न मेराभजन करते है यहबड़े कष्टकी वार्त्ताहै इसप्रकार दयादिखाते हैं ॥२३॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किं निमित्त त्वामेव न प्रपद्यन्ते इत्युच्यते अव्यक्तमिति अव्यक्तमप्रकाशं व्यक्तिमापन्नं प्रकाशं गतं इदानीं मन्यन्ते मां नित्यप्रसिद्धमीश्वर मपि सन्तमबुद्धयोऽविवेकिनः परं भावं परमात्मास्वरूपमजानन्तोऽविवेकिनो ममाव्ययं व्ययरहितमनुत्तमं निरतिशयं मदीयं भावमजानन्तो मन्यन्त इत्यर्थः ॥ २४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

भगवद्भजनस्योत्तमफलत्वेऽपि प्राणिनां प्रायेण तन्निष्ठत्वाभावे प्रश्नपूर्वकं निमित्तं निवेदयति किंनिमित्तमित्यादिना अप्रकाशं शरीरग्रहणात् पूर्वमिति शेषः इदानीं लीलाविग्रहपरिग्रहावस्थायामित्यर्थः प्रकाशस्य तर्हि कदाचित्कत्वं भगवति प्राप्तमित्याह नित्येति कथं तर्हि भगवन्तमागन्तुकप्रकाशं मन्यन्ते तत्राबुद्धय इत्युत्तरं तद्विवृणोति परमिति परमनुत्तममिति विशेषणद्वयं सोपाधिकनिरूपाधिकभावार्थं ॥ २४ ॥

स्वामिकृतटीका।

ननु च समाने प्रयासे महति च फलविशेषे सति सर्वेऽपि किमिति देवतान्तरं हित्वा त्वामेव न भजन्ति तत्राह अव्यक्तमिति अव्यक्तं प्रपञ्चातीतं मां व्यक्तिं मनुष्यमत्स्यकूर्मादिभावं प्राप्तमल्पबुद्धयो मन्यन्ते तत्र हेतुः मम परं भावं स्वरूपमजानन्तः कथंभूतम् अव्ययं नित्यं न विद्यते उत्तमो भावो यस्मात् तं मद्भावम् अतो जगद्रक्षणार्थं लीलयाविष्कृतनानाविशुद्धोर्जितसत्त्वमूर्त्तिं मां परमेश्वरं कर्मनिर्मितभौतिकदेहं देवतान्तरसमं पश्यन्तो मन्दमतयो मां नातीवाद्रियन्ते प्रत्युत क्षिप्रफलदं देवतान्तरमेव भजन्ते ते चोक्तप्रकारेणान्तवत् फलं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ २४ ॥

नवलभाष्य।

कौन निमित्तसे तुम्हारे शरण नहीं प्राप्तहोते हैं यह कदाचित्अर्जुनकहै इस आकांक्षामें भगवान् कहतेहैं कि (अव्यक्तमिति) हे अर्जुन अबुद्धि जे मूर्ख अविवेकी पुरुष ते ऐसामानतेहैं कि पहिले ज्ञानऐश्वर्यादि करके प्रकाश रहितरहे जे अब वसुदेवके गृहजन्म पाइकैऐसेप्रकाशयुक्तहुये हैं जैसेइतर कोई राजकुमार संस्कारादि विशेषसे प्रकाशयुक्त होय और यहनहीं जानते हैं कि स्वाभाविक ज्ञान बलैश्वर्यादि युक्त ईश्वरही कृष्णरूप करके प्रकटहै अथवाहैं तो मैं अव्यक्त अप्रकट कभी मनुष्यके सदृश कर्मादि वशसे देह धारणकर प्रकटनहीं होताहौं तोभी मूढ़मनुष्य मुझको ऐसामानते हैं कि जैसे और जीवदेह धारण करते हैं तैसेयह भी कोई देवकी वसुदेवके गृहमें संस्कारीजीव उत्पन्नहुआहै और यहनहीं जानते हैं कि नित्यमुक्त शुद्धबुद्ध स्वरूप ईश्वरहीने अपनी योगमायाके प्रभाव करके नटवत्लीला विग्रह प्रकटकियाहै क्योंकि वे अविवेकी मूढ़पुरुष अव्यय विकाररहित मेरे निरतिशयप्रभावको नहीं जानतेहैं इससे ऐसा मानते हैं ॥ २४ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥२५॥

शङ्करभाष्यम्।

तदज्ञानं किं निमित्तं इत्युच्यते नाहमिति नाहं प्रकाशः सर्वस्य लोकस्य केषाञ्चिदेव मद्भक्तानां प्रकाशोऽहमित्यभिप्रायः योगमायासमावृतो योगो गुणानां युक्तिर्घटनं सैव माया योगमाया तया योगमाययासमावृतः सञ्छन्न इसत्थः अतएव मूढलोकोऽयं नाभिजानाति मामजमव्ययं॥ २५॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अविवेकरूपमज्ञानं भगवन्निष्ठा प्रतिबन्धकमुक्तं तस्मिन्नपि निमित्तं प्रश्नपूर्वकमनूद्य ज्ञानमुपन्यस्यति तदज्ञानमित्यादिना त्रिभिर्गुणमयैरित्यनौपाधिकरूपस्याप्रतिपत्तौकारणमुक्तमत्र तु सोपाधिकस्यापीति विशेषं गृहीत्वा व्याचष्टे नाहमिति तर्हि भगवद्भक्तिरनुप्रयुक्तेत्याशंक्याह केषाञ्चिदिति सर्वस्य लोकस्य न प्रकाशोऽहमित्यत्र हेतुमाह योगेति अनाद्यनिर्वाच्यज्ञानाच्छन्नत्वादेव मद्विषये लोकस्य मौढ्यं ततश्च मदीयस्वरूपविवेकाभावान्मन्निष्ठत्वराहित्यमित्याह अत एवेति॥ २५॥

स्वामिकृतटीका।

तेषां स्वाज्ञाने हेतुमाह नाहमिति सर्वस्य लोकस्य नाहं प्रकाशः प्रकटो न भवामि किन्तु मद्भक्तानामेव यतो योगमायया समावृतः योगयुक्तिर्मदीयः कोऽप्यचिंत्यः प्रज्ञाविलासः स एव माया अघटमानघटनापटीयस्त्वात् तया संच्छन्न अतएव मत्स्वरूपज्ञाने मूढ़ःसन्नयं लोकोऽजमव्ययञ्च मां न जानातीति॥ २५॥

नवलभाष्य।

अबमूढ़ पुरुषोंके अज्ञानमें कारण कहते हैं कि (नाहमिति)और हेअर्जुन मैं अपने स्वाभाविक ज्ञानबल ऐश्वर्यादि रूपकरके सबको प्रकाशित नहीं होताहूं अर्थात् सबकोई मेरेयथार्थ स्वरूपको नहींजानसक्ते किंतुकोई एकान्त भक्तोंहीको मैं प्रकाशमान अर्थात् प्रकट होताहूं इससे वेई मुझको जानसक्ते हैं सबकोई नहीं क्योंकि जिससे मेरी अघटन घटना पटीयसी जो मेरी योगमाया तिसकरकेमैंआच्छादितहों अर्थात्जैसेतृणहै औरवज्रहोजाय और वज्रतृण होजाय यह किसीके मनमें घटित नहींहोता नाम नहींआता है तिसके करनेमें बड़ी चतुर ऐसी जो मेरी योगमाया युक्ति विशेष रूपमाया तिसकरके ढकाहुआ हों इसीसे यहमूढ़ मनुष्यलोक जन्मनाशादि विकार रहित सबसे परे जो मैंहूं तिसको नहीं जानता है॥ २५॥

वेदाहं समतीतानि वर्त्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मान्तु वेद न कश्चन॥ २६॥

शङ्करभाष्यम्।

यया योगमायया समावृतं मां लोको नाभिजानाति नासौ योगमाया मदीया सती ममेश्वर

स्य मायाविना ज्ञानं प्रतिबध्नाति यथान्यस्यापि मायाविनो मायाज्ञानं तद्वत् यत एवमतः वेदाहमिति अहन्तु वेदजाने समतीतानि समतिक्रान्तानि भूतानि तथा वर्तमानानि चार्जुन भविष्याणि च भूतानि वेदाहं मान्तु वेद न कश्चन मद्भक्तं मच्छरणमेकं मुक्त्वामत्तत्त्ववेदनाभावादेन मां भजते ॥ २६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

मायया भगवानावृतश्चेतस्यापि लोकस्येव ज्ञानप्रतिबन्धः स्यादित्याशङ्क्याह यथेति नहीयं माया मायाविनो विज्ञानं प्रतिबध्नाति मायात्वात् लौकिकमायावत् अथवा नेश्वरो मायाप्रतिबद्धज्ञानोमायावित्वात् लौकिकमायाविवदित्यर्थः भगवतो माया प्रतिबद्धज्ञानत्वाभावेन सर्वज्ञत्वमप्रतिबद्धं सिद्धमित्याह यत इति लोकस्य मायाप्रतिबद्धविज्ञातत्वादेव भगवदभिमुख्यशून्यत्वमित्याह मांत्विति कालत्रयपरिच्छिन्नसमस्तवस्तुपरिज्ञाने प्रतिबन्धो नेश्वरस्यास्तीति द्योतनार्थस्तुशब्दः मां त्विति लोकस्य भगवत्तत्वज्ञाने प्रतिबन्धं द्योतयति तर्हि त्वद्भक्तिर्विफलेत्याशङ्क्याह मद्भक्तमिति तर्हि सर्वोऽपि त्वद्भक्तिद्वारा त्वां ज्ञास्यति नेत्याह मत्तत्त्वेति विवेकवतो मद्भजनं नतु विवेकशून्यस्सर्वस्यापीत्यर्थः ॥ २६ ॥

स्वामिकृतटीका।

सर्वोत्तमं स्वरूपमजानन्त इत्युक्तं तदेव स्वस्य सर्वोत्तमत्वमनावृतज्ञानशक्तित्वेन दर्शयन्नन्येषामज्ञानमेवाह वेदाहमिति समतीतानि विनष्टानि वर्तमानानि च भावीनि च त्रिकालवर्तीनि भूतानि स्थावरजङ्गमानि सर्वाण्यहं वेद जानामि मायाश्रयत्वान्मम तस्याः स्वाश्रयव्यामोहकत्वाभावात् मान्तु कोऽपि न वेत्ति मन्मायामोहितत्वात् प्रसिद्धं हि लोके मायायाः स्वाश्रयाधीनत्वमन्यमोहकत्वञ्चेति ॥ २६ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जिसयोगमाया करके आच्छादित छिपाहुआ जोमैंहूं तिसको यह मूढ़लोक नहीं जानताहै सो वह मेरी योगमाया मैं जो मायावी ईश्वर तिसके ज्ञानको नहीं ढकसक्तीहै जैसे लोकमें मायावी पुरुषकी माया और पुरुषोंकेज्ञानको आच्छादन करकेमोहित करतीहै तैसेउसमायावी पुरुषके ज्ञानको नहीं आच्छादित करती है तैसे ईश्वरके ज्ञानकोभी ईश्वर कीमाया नहीं प्रतिबन्धयुक्त करसक्तीहै जिससे ऐसाहै इससे हे अर्जुन जे भूतप्राणी उत्पन्न होगयेहैं और जे होरहे हैं और जे आगे उत्पन्न होनेवाले हैं तिनको सबको मैं जानताहूं और मुझको तो कोईनहीं जानताहै तिससे मेरेही एकशरण ऐसा जो मेराभक्त तिसको छोड़के मेरे स्वरूपको कोईनहीं जानताहै इससे मेराभजन नहीं करता किन्तु कामवशहोके और औरही देवताओंको भजता है ॥ २६ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥ २७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

केन पुनस्तत्त्वेन प्रतिबन्धेनप्रतिबद्धानि सन्ति जायमानानि सर्वभूतानि त्वां न विदन्ति

इत्यपेक्षायामिदमाह इच्छेति इच्छाद्वेषसमुत्थेन इच्छा च द्वेषश्च इच्छाद्वेषौताभ्यां समुत्तिष्ठतीति इच्छाद्वेषसमुत्थेन केनेति विशेषापेक्षायामिदमाह द्वन्द्वमोहेनेति द्वन्द्वनिमित्तो मोहोद्वन्द्वमोहस्तावेव इच्छाद्वेषौ शीतोष्णवत् परस्परविरुद्धौ सुखदुःखतद्धेतुविषयौ यथाकालं सर्वभूतैः सम्बध्यमानै द्वन्द्वशब्देनाभिधीयेते तत्र यदा इच्छाद्वेषौ सुखदुःखतद्धेतुसम्प्राप्त्या लब्धात्मको भवतस्तदा तौ सर्वभूतानां प्रज्ञायाः स्ववशापादनद्वारेण परमार्थात्मतत्त्वविषयज्ञानोत्पत्तिप्रतिबन्धकारणं मोहं जनयतः नहीच्छाद्वेषदोषवशीकृतचित्तस्य यथा भूतार्थविषयज्ञानमुत्पद्यते वहिरपि किमु वक्तव्यं ताभ्यामाविष्टबुद्धेः संमूढस्य प्रत्यगात्मनि बहुप्रतिबन्धे ज्ञानं नोत्पद्यत इत्यतस्तेनेच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत भरतान्वय सर्व्वभूतानि संमोहितानि सन्ति संमोहं संमूढतां सर्गे जन्मनि उत्पत्तिकाले इत्येतत् यान्ति गच्छन्ति हे परन्तप मोहवशान्येव सर्वभूतानि जायमानानि जायन्त इत्यभिप्रायः ॥ २७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

भगवत्तत्त्वविज्ञानप्रतिबन्धकं मूलाज्ञानातिरिक्तप्रश्नद्वारेणोदाहरति केनेत्यादिना पुनःशब्दात् प्रतिबन्धकं मूलाज्ञानातिरिक्तप्रश्नद्वारेणोदाहरति केनेत्यादिना पुनःशब्दात् प्रतिबन्धकान्तरविवक्षा गम्यते अपरोक्षमवान्तरप्रतिबन्धकमिदमागृह्यते विशेषमाकांक्षापूर्वकं निक्षिपति केनेति विशेषापेक्षायामिति द्वन्द्वशब्देन गृहीतयोरपि इच्छाद्वेषयो र्ग्रहणं द्वन्द्वशब्दार्थोपलक्षणार्थमित्याह तावेति तयोरपर्य्यायमेकत्रानुपपत्तिं गृहीत्वा विशिनष्टि यथाकालमिति नच तयोरनधिकरणं किञ्चिदपि भूतं संसारमण्डले सम्भवतीत्याह सर्वभूतैरिति तथापि कथं तयोर्मोहहेतुत्वमित्याशङ्क्याह तत्रेति तयोराश्रयः सप्तम्यर्थः उक्तमेवार्थं कैमुतिकन्यायेन प्रपञ्चयति नहीति पूर्व्वभागानुवादपूर्वकमुत्तरभागेन फलितमाह अतइति प्रत्यगात्मन्यहङ्कारादिप्रतिबन्धप्रभावतो ज्ञानोत्पत्तेरसम्भवोऽतःशब्दार्थः कुलप्रयुक्तमहिम्ना स्वरूपशक्त्याच युक्तस्यैव यथोक्तप्रतिबन्धप्रतिविधानसामर्थ्यमिति द्योतनार्थं भारत परन्तपेति सम्बोधनद्वयंतत्त्वज्ञानप्रतिबन्धं प्रकृतमवान्तरकारणमुपसंहरति मोहेति ॥ २७ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं मायाविषयत्वेन जीवानां परमेश्वराज्ञानमुक्तं तस्यैवाज्ञानस्य दृढत्वे कारणमाह इच्छेति सृज्यत इति सर्गः सर्गे स्थूलदेहोत्पत्तौ सत्यां तदनुकूले इच्छा तत्प्रतिकूले च द्वेषस्ताभ्यां समुत्थः समुद्भूतो यः शीतोष्णसुखदुःखादिद्वन्द्वनिमित्तो मोहो विवेकभ्रंशस्तेन सर्वाणि भूतानि सम्मोहं यान्ति अहमेव सुखी दुःखी चेति गाढ़तरमभिनिवेशं प्राप्नुवन्ति अतस्तानि मज्ज्ञानाभावान्मां न भजन्तीति भावः ॥ २७ ॥

नवलभाष्य।

फिर कौनके तत्त्वज्ञानके प्रतिबन्ध करके प्रतिबन्धको प्राप्त उत्पन्नहुये जे प्राणी ते तुमको नहीं जानते हैं इस आकांक्षामें भगवान् कहते हैं कि (इच्छेति) हेभारत हेभरत वंशोद्भव और हे परन्तप हे शत्रुओंको संताप कारक अर्जुन इच्छा और द्वेष इनसे उत्पन्नहुआ जो द्वन्द्वनिमित्तक मोह तिस करके सबप्राणी उत्पत्ति समयमेंही मोहको प्राप्तहोते हैं अर्थात् शीत उष्ण सुखदुःख इच्छाद्वेष इनको आदिलेके परस्पर विरुद्ध दो दो पदार्थ द्वन्द्व कहातेहैं तो यहांशीतउष्णके सदृश परस्पर विरोधयुक्त और सुख और दुःख

और इनदोनोंके हेतु इनमें प्रकट होनेवाले और अपने अपने अवसरमें सब प्राणियोंमें संबन्ध करनेवाले इच्छाद्वेषही द्वन्द्वशब्द करके ग्रहणकिये जातेहैं तहां इच्छा और द्वेषजे दोनों सुखदुःख और इनके कारणोंके प्राप्ति में जब अपने स्वरूपको प्रकट करतेहैं अर्थात् जिस समयमें किसीपुरुषको सुख प्राप्तहुआ वा दुःख प्राप्तहुआ अथवा सुखका कारणमित्र धनादिकसे मिलापहुआ और दुःखका कारण दुष्ट समागमादिक तिसकी प्राप्तिहुई तो उस पुरुषको सुखमें और सुखके कारणमें इच्छा प्रकटहोतीहै अर्थात् ऐसी उत्कट इच्छाहोती है जिससे यहसदा मुझको सुख ऐसाही रहै ऐसी चाह होतीहै और दुःखमें और दुःखके कारणमें द्वेष प्रकटहोताहै सो वहभी ऐसा उत्कट बढ़ताहै जिससे अहर्निश संतप्त रहताहै फिर इसप्रकार वृद्धिकोप्राप्त हुये जे रागद्वेषते उस पुरुषकी बुद्धिको अपने वशमें करके परमार्थ आत्म-तत्त्व विषयक ज्ञानकी उत्पत्तिमें प्रतिबन्ध कारण जो मोह तिसको उत्पन्न करतेहैं और फिर इच्छाद्वेष रूपदोष करके वशहुआहै चित्त जिसका ऐसे पुरुषको व्यवहारके पदार्थोंका भी यथार्थ ठीक ठीक ज्ञाननहीं उत्पन्न होता तो इच्छाद्वेषादि दोषकरके व्याप्तहुई बुद्धि जिसकी ऐसेमूढ़ पुरुषको बहुतहै प्रतिबन्ध जिसमें ऐसा प्रत्यगात्म अपना स्वरूपभूत परमात्म तत्त्वका ज्ञाननहीं होताहै इसका कहनाही क्याहै इससे हे अर्जुन इसप्रकार इच्छा द्वेषसे उत्पन्नहुआ जो द्वन्द्वमोह तिसकरके उत्पत्ति कालहीमें सबप्राणी मूढ़ताको प्राप्तहोतेहैं अर्थात् मोहवशहुएही सबप्राणी उत्पन्नहोते हैं इससे मेरे स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नहींहोता यह अभिप्रायहै ॥ २७ ॥

येषामन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यत एवमतस्तेन द्वन्द्वमोहेन प्रतिबद्धप्रज्ञानानि सर्व्वभूतानि संमोहितानि मामात्मभूतं न जानन्ति अत एवात्मभावेन मान्तु न भजन्ते के पुनरनेन द्वन्द्वमोहेन निर्म्मुक्ताः सन्तः त्वां विदित्वा यथाशास्त्रमात्मभावेन भजन्त इत्यपेक्षितमर्थं दर्शयितुमुच्यते येषामिति येषान्तु पुनरंतगतं समाप्तप्रायं क्षीणं पापं जनानां पुण्यकर्म्मणां पुण्यं कर्म येषां सत्त्वशुद्धिकारणं विद्यते ते पुण्यकर्म्माणस्तेषां पुण्यकर्म्मणां ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता यथोक्तेन द्वन्द्वमोहेन निर्मुक्ता भजन्ते मां परमात्मानं दृढव्रता एवमेव परमार्थतत्त्वं नान्यथेत्येवं सर्व्वम्परित्यागव्रतेन निश्चितविज्ञाना दृढव्रता उच्यन्ते ॥ २८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

जायमानभूतानां मोहपरतन्त्रत्वे फलितमाह यत इति भगवत्तत्त्ववेदनाभावे तन्निष्ठत्ववैधुर्य्यं फलतीत्याह अतएवेति यदि सर्वाणि भूतानि जन्मप्रतिपद्यमानानि संमूढानि सन्ति भगवत्तत्वपरिज्ञानशून्यानि भगवद्भजनपराङ्मुखानि तर्हि शास्त्रानुरोधेन भगवद्भजन पराङ्मुखानि तर्हि शास्त्रानुरोधेन भगवद्भजनमुच्यमानमधिकार्य्यभावाद

नर्थकमापद्येतेति शङ्कते के पुनरिति अनेकेषु जन्मसु सुकृतवशादपाकृतदुरितानां द्वन्द्वप्रयुक्तमोहविरहिणां ब्रह्मचर्यादिनियमवतां भगवद्भजनाधिकारित्वाच्च शास्त्रविरोधोऽस्तीति परिहरति उच्यत इति तुशब्दद्योत्यमर्थमाह पुनरिति मुक्तेर्वाक्त्वमिष्टध्यर्थं समाप्तप्रायमित्युक्तं प्रकृतोपयोगं पुण्यस्य कर्मणो दर्शयितुं विशिनष्टि सत्त्वेति उभयविधशुद्धे द्वन्द्वनिमित्तमोहनिवृत्तफलमाह ते द्वन्द्वेति मोहनिवृत्तेर्भगवन्निष्ठापर्यन्तत्वमाह भजन्त इति तेषां नानापरिग्रहवतां भगवद्भजनं तद्दृतिमाशङ्क्याह दृढ़ेति ॥ २८॥

स्वामिकृतटीका।

कुतस्तर्हि केचन त्वां भजन्तो दृश्यन्ते तत्राह येषामिति येषान्तु पुण्याचरणशीलानां सवप्रतिबन्धकं पापमन्तगतं नष्टं ते द्वन्द्वनिमित्तेन मोहेन विनिर्मुक्ताः दृढ़व्रताः एकान्तिनः सन्तो मां भजन्ति ॥ २८॥

नवलभाष्य।

जिससे ऐसा सिद्धांतहै इससे तिस द्वन्द्वमोह करके प्रतिबन्धको प्राप्तहोरहाहै ज्ञानाजिन्होंका ऐसे जे भूत प्राणी ते मोहको प्राप्तहुये आत्मभूत जो मैंहूं तिसको नहीं जानते हैं इसीसे आत्मभाव करके मेराभजन नहीं करते हैं कौन फिर इसद्वन्द्व मोहको छूटके तुमको जानके शास्त्रके अनुरोधसे अर्थात् जैसे शास्त्रमेंकहाहै तैसे आत्मभाव करके भजन करतेहैं इस आकांक्षा में कहते हैं कि (येषामिति) हे अर्जुन जिन पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषोंका अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धि करनेवालाहै पुण्यकर्म जिन्होंका ऐसेजिनपुरुषोंका पापक्षीण होगयाहै ते पूर्वोक्त अर्थात् पहिले श्लोकमें कहा जो द्वन्द्व मोह तिससे छूटेहुये दृढ़व्रत होकर मैं जो परमात्मा तिसको भजते हैं और इसीप्रकार परमार्थ तत्त्वहै अन्यथानहीं है इसप्रकार सबका परित्याग रूपव्रत करके निश्चितहुआहै विज्ञान जिन्होंका ऐसे जे पुरुषहैं ते यहां दृढ़व्रत कहेजाते हैं ॥ २८ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्तिये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

शंकरभाष्यम्।

ते किमर्थं भजन्त इत्युच्यते जरेति जरामरणमोक्षाय जरामरणयोर्मोक्षार्थं मां परमेश्वरं आश्रित्य मत्समाहितचित्ताः सन्तो यतन्ति प्रयतन्ते ये ते यद्ब्रह्म परं तद्विदुः कृत्स्नं समस्तमध्यात्मं प्रत्यगात्मविषयं वस्तु तद्विदुः कर्म्म चाखिलं समस्तं विदुः ॥ २९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यथोक्तानामधिकारिणां भगवद्भजनफलं प्रश्नद्वारा दर्शयति ते किमर्थमिति जरामरणादिलक्षणो यो बन्धस्तद्विश्लेषार्थं भगवद्भजनमित्यर्थः सम्प्रति सगुणस्य सप्रपञ्चस्य मध्यमानुग्रहार्थं ध्येयत्वमाह मामाश्रित्येति जरादि संसारनिवृत्त्यर्थं निर्गुणं निःप्रपञ्चं मामुत्तमाधिकारिणो जानन्तीत्युक्तं मामेव ये प्रपद्यन्ते इत्यादाविव्याह जरेति

मध्यमाधिकारिणं प्रत्याह मामिति परमेश्वराश्रयणं नाम विषयविमुखत्वेन भगवदेक निष्ठत्वमित्याह मत्समाहितेति प्रयतनं भगवन्निष्ठासिद्ध्यर्थं बहिरङ्गानां यज्ञादीनामन्त रंगानाञ्च श्रवणादीनामनुष्ठानं प्रागुक्तं जगदुपादानं परंब्रह्म कथं ब्रह्म विदुरित्यपेक्षायां समस्ताध्यात्मवस्तुत्वेन सकलकर्मत्वेन च तद्विदुरित्याह कृत्स्न मिति ॥ २६ ॥

स्वामिकृतटीका।

एवञ्च मां भजन्तस्ते सर्वं विज्ञेयं विज्ञाय कृतार्था भवन्तीत्याह जरेति जरामरण योर्निरसनार्थं मामाश्रित्य ये प्रयतन्ते ते तत् परं ब्रह्म विदुः कृत्स्नमध्यात्मञ्च विदुः येन तत्प्राप्तव्यं तं देहादिव्यतिरिक्तं शुद्धमात्मानञ्च जानन्तीत्यर्थः तत्साधनभूतमखिलं सरहस्यं कर्म च जानन्ति इत्यर्थः ॥ २६ ॥

नवलभाष्य।

ते पुरुष किसवास्ते मेराभजन करतेहैं इस आकांक्षाम कहतेहैं कि (जरेति) हे अर्जुन जरा जो वृद्धावस्था और मरण+इनके जे क्लेश तिनको दूर करनेके लिये मैंजो परमेश्वर तिसका आश्रय करके अर्थात् मेरेबिषे एकाग्रचित्तहोके जे यत्नकरतेहैं तेपरब्रह्मको जानतेहैं औरसंपूर्णजोअध्यात्मविषयकज्ञान अर्थात् अपना आत्माका जो कुछसत्य ज्ञानादिरूपपरमार्थ स्वरूप तिसको जानते हैं और संपूर्ण कर्म्मको जानते हैं अर्थात् जैसाकुछ कर्म्मका स्वरूपहै तिसको भी जानते हैं ॥ २९ ॥

साधि भूताधिदैवं मां साधियज्ञञ्च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि चमां ते विदुर्युक्तचेतसः॥ ३० ॥

इति श्रीभगवद्गीयां योगशास्त्रे कृष्णार्जुनसंवादे विज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

साधीति साधिभूताधिदैवं अधिभूतं चाधिदैवञ्च अधिभूताधिदैवं तेन सह अधिभूताधिदैवेन वर्त्तते इति साधिभूताधिदैवं मां ये विदुः साधियज्ञञ्च सह अधियज्ञेन साधियज्ञं ये विदुः प्रयाणकाले मरणकालेपि च ते मां विदुः युक्तचेतसः समाहितचित्ता इति ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताभाष्ये सप्तमोऽध्यायः॥ ७ ॥

+जरामरण कहनेका आशय यहहै कि जरामरण दुःखकी निवृत्ति तौसब योगियों को योगाभ्यास से हुआही करती है अर्थात् यह योग स्वभाव सिद्धहै इससे प्राधान्य करके भगवान् ने इनहीं दुःखोंको कहा और वास्तव में तो परमेश्वरका आश्रयकरके योगसे सकल दुःखकी निवृत्ति होतीहै ऐसा छठेअध्याय में कहिआये हैं उसका नहीं विस्मरण करना॥

आनंदगिरिकृतटीका।

न केवलं भगवन्निष्ठानां सर्वाध्यात्मककर्मात्मकब्रह्मवित्वमेव किन्त्वधिभूतादिमहितं तद्वेदित्वमपि सिध्यतीत्याह साधिभूतेति अध्यात्मं कर्माधिभूतमधिदैवमधियज्ञञ्चेति पञ्चकं कर्म तद्ब्रह्म ये विदुस्तेषां यथोक्तज्ञानवतां समाहितचेतसामापदवस्थायामपि भगवत्तत्त्वज्ञानमप्रतिहतं तिष्ठतीत्याह प्रयाणेति अपिचेति निपाताभ्यां तस्यामवस्थायां करणग्रामस्य व्यग्रतया ज्ञानसम्भवेपि मयि समाहितचित्तानामुक्तज्ञानवतां भगवत्तत्वज्ञानमयत्नलभ्यमिति द्योत्यते तदनेन सप्तमेनोत्तममधिकारिणं प्रतिज्ञेयं निरूपयता तदर्थमेव सर्वात्मकत्वादिकमुपदिशता प्रकृतिद्वयद्वारेण सर्वकारणत्वादिति च वदता तत्पदवाच्यं तल्लक्ष्यञ्चोपेक्षितं ॥ ३० ॥

इति आनन्दगिरिकृतटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

स्वामिकृतटीका।

नचैवं भूतानां योगभ्रंशशङ्कापीत्याह साधिभूतेति अधिभूतादिशब्दानामर्थं श्रीभगवाननेनोत्तराध्याये व्याख्यास्यति रधिभूतेनाधिदैवेन च सह अधियज्ञेन च सह मां ये जानन्ति जानन्ति नतु तदापि व्याकुलीभूय मां निस्मरन्ति अतो मद्भक्तानां न योगभ्रंशशंकेति भावः ॥ कृष्णभक्त्यैव यत्नेन ब्रह्मज्ञानमवाप्यते। इति विज्ञानयोगाख्ये सप्तमे सम्प्रकाशितम् ॥ ३० ॥

इति श्रीधरस्वामिकृत टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन अधिभूत और अधिदैव करके सहित जो मैंहूं तिसको जे जानते हैं और अधियज्ञ करके सहित जो मैं तिसको जे यथावत् जानते हैं तेमरण समयमें भी समाहित चित्तहोके मुझको जानते हैं अर्थात् उन योगियोंका मरण कालमें व्याकुल चित्त नहींहोता किंतु समाधिस्थितही चित्त रहताहै इससे वे उस समयमें भी मुझको जानते हैं ॥ ३० ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीताभगवच्छंकराचार्यकृतभाष्येस्वर्गवास्युमादत्ताविरचित तत्त्वविवेकामृताख्येनवलभाष्येसप्तमोऽध्यायस्समाप्तः ॥ ७ ॥



श्रीमद्भगवद्गीतासटीक॥

अष्टमोऽध्यायः।

अर्जुनउवाच।

किन्तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तमम्।
अधिभूतञ्च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते॥ १॥

शङ्करभाष्यम्।

ते ब्रह्म तद्विदः कृत्स्नमित्यादिना भगवताऽर्जुनस्य प्रश्नबीजानि उपदिष्टानि अतस्तत्प्रश्नार्थं अर्जुन उवाच किं तदिति॥ १॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

सप्तमाध्यायान्ते येषामन्तर्गतं पापमित्यादिना येषां ब्रह्मादीनामनुसन्धानमुक्तं यच्च प्रयाणकाले भगवतः स्मरणं दर्शितं तदिदं जिज्ञासमानः सन्पृच्छतीति प्रश्नसमुदायमवतारयति ते ब्रह्मेति प्रश्नबीजानि तद्विषयभूतानि ब्रह्मादीनि वस्तूनीति यावत् बुभुत्सितविषयप्रतिलम्भानन्तरं तेषां प्रश्नद्वारा निर्णयार्थमाह अत इति यदुक्तं ते ब्रह्म तद्विदुरिति तत् किं सोपाधिकं निरुपाधिकं वा ब्रह्मशब्दस्योभयत्रापि सम्भवादिति मत्वाऽऽह किं तदिति यच्चोक्तं कृत्स्नमध्यात्ममिति तत्रात्मानं देहमधिकृत्य तस्मिन्नधिष्ठाने तिष्ठतीत्यध्यात्मशब्देन श्रोत्रादिकरणग्रामो वा प्रत्यग्भूतं ब्रह्मैव वा विवक्षितमित्याह किमध्यात्ममिति विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि चेति श्रुतौ कर्मणो द्वैविध्यनिर्द्धारणात् कर्म चाखिलमित्यत्र कर्म गृहीतमिति पृच्छति किमिति चराचराभ्यां कार्यकारणाभ्यां अतीतस्य भगवतो न किञ्चिदवेद्यमस्तीति सूचयति पुरुषोत्तमेति साधिभूताधिदैवमित्यत्राधिभूतशब्देन पृथिव्यादिषु भूतेषु वर्त्तमानं किञ्चिदेव गृह्यते किंवा समस्तमेव कार्यमिति निर्द्धारयिषयापृच्छति अधिभूतमिति अधिदैवमिति च दैवतविषयमनुध्यानं वा दैवतेष्वादित्यमण्डलादिषु वर्त्तमानं चैतन्यं वा जिघृक्षितमिति प्रश्नान्तरं प्रस्तौति अधिदैवमिति॥ १॥

स्वामिकृतटीका।

ब्रह्मकर्माधिभूतादि विदुः कृष्णैकचेतसः इत्युक्तं ब्रह्मकर्मादि स्पष्टमष्टम उच्यते

पूर्वाध्यायान्ते भगवतोपक्षिप्तानां ब्रह्माध्यात्मादिसप्तपदार्थानां तत्त्वं जिज्ञासुरर्जुन उवाच किं तद् ब्रह्मेति द्वाभ्यां स्पष्टोऽर्थः ॥ १ ॥

नवलभाष्य।

(तेब्रह्मतद्विदुः)इत्यादिश्लोक करकेभगवान्ने अर्जुनके प्रश्नका बीजकहा अर्थात् जिसमें अर्जुन प्रश्नकरै ऐसे पदकहे इससे अर्जुन प्रश्न करताहुआ बोला कि (किन्तदिति) हे पुरुषोत्तम हे परमात्मन् जो ब्रह्म आपने कहा सो ब्रह्मकौनहै अर्थात् ब्रह्म किससे कहते हैं और अध्यात्मनाम किसकाहै और कर्म किससे कहतेहैं और हेकृष्ण अधिभूत नामकिसकाहै और अधिदैव किसको कहते हैं ॥ १ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन् मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥

शङ्करभाष्यम्।

अधियज्ञ इति ॥ २ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

साधियज्ञञ्चेत्यत्राधियज्ञशब्देन यज्ञमधिकृतो विज्ञानात्मा वा परदेवता वेति प्रश्नान्तरंप्रतिकरोति अधियज्ञ इति स च कथं केनप्रकारेण ब्रह्मत्वेन चिन्तनीयः किं तादात्म्येन किंवात्यन्ताभेदेनेत्याह कथमिति सर्वथापि स किमस्मिन् देहेवर्त्तते ततो बहिर्वा देहेचेत् स कोऽत्रबुद्ध्यादि तद्व्यतिरिक्तो वेति जिज्ञासया ब्रूतेकोऽत्रेति अधियज्ञः कथं कोऽत्रेति न प्रश्नभेदकः कथमिति किन्तु प्रकारभेदविवक्षयेति द्रष्टव्यं यत्तु समाहितचित्तानामुत्क्रमणकालेऽपि भगवदनुसन्धानंसिध्यतीति तदयुक्तमुत्क्रमणदशायां करणग्रामवैत्यग्रामा च्चित्तसमाधानानुपपत्तिरित्यभिप्रेत्याह प्रयाणेति ॥ २ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च अधियज्ञ इति अत्र देहे यो यज्ञो वर्त्तते तस्मिन् कोऽधिष्ठाता प्रयोजकः फलदाता च क इत्यर्थः स्वरूपं पृष्ट्वाधिष्ठानप्रकारं पृच्छति कथं केन प्रकारेण असावस्मिन् देहेस्थितः यज्ञमधितिष्ठतीत्यर्थः यज्ञग्रहणं सर्वकर्मणामुपलक्षणार्थं अन्तकाले च नियतचित्तैः पुरुषैः कथं केनोपायेन ज्ञेयोऽसि ॥ २ ॥

नवलभाष्य।

और हे मधुसूदन अर्थात् मधुदैत्यके नाशक इसदेहमें अधियज्ञ किसको कहते हैं और वह अधियज्ञ किसप्रकार करके देहमें रहताहै और नियत नाम वशकियाहै चित्त जिन्होंने ऐसे पुरुषों करके मरण समयमें आप किसप्रकार करके जानेजाते हौ अर्थात् मरण समयमें चित्तकी एकाग्रताही अशक्यहै फिर कैसे आपकाज्ञान होसक्ताहै ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच।

अक्षरं परमं ब्रह्म स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

एषां प्रश्नानां यथाक्रमं निर्णयाय अक्षरमिति अक्षरं न क्षरतीति परमात्मा एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गर्गीति श्रुतेः ओंकारस्य चोमित्येकाक्षरं ब्रह्मेति परेण विशेषणात्तद्ग्रहणं परमिति च निरतिशये ब्रह्मण्यक्षरे उपपन्नतरं विशेषणं तस्यैव परस्य ब्रह्मणः प्रतिदेहं प्रत्यगात्मभावः स्वभावो इति स्वोभावः स्वभावोऽध्यात्मं उच्यते आत्मानं देहमधिकृत्य प्रत्यगात्मतया प्रवृत्तं परमार्थब्रह्मावसानं वस्तु स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते अध्यात्मशब्देनाभिधीयते भूतभावोद्भवकरः भूतानां भावो भूतभावस्तस्योद्भवो भूतभावोद्भवस्तं करोतीति भूतभावोद्भवकरो भूतवस्तूत्पत्तिकर इत्यर्थः विसर्गो विसर्ज्जनं देवतोद्देशेन चरुपुरोडासादेः स्वस्य द्रव्यस्य वितरणं परित्यागः स एष विसर्गलक्षणो यज्ञः कर्म्मसंज्ञितः कर्म्मशब्दित इत्यर्थः इत्येतस्माद्वीजभूतात् वृष्ट्यादिक्रमेण स्थावरजङ्गमानि भूतानि उद्भवन्ति ॥ ३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

व्याख्यातप्रश्नसप्तकस्य प्रतिवचनं भागवतमवतारयति एषामिति क्रमेण कृतानां प्रश्नानां क्रमेणैव प्रतिवचने प्रष्टुरभीष्टं प्रतिपत्तिसौकर्यञ्च सिध्यतीति बुद्ध्यमानो विशिनष्टि यथाक्रममिति तत्र प्रश्नत्रयं निर्णेतुं भगवद्वचनमुदाहरति अक्षरमिति किं तद् ब्रह्मेति प्रश्नस्य प्रति वचनमक्षरं ब्रह्मपरममिति तत्राक्षरशब्दस्य निरुपाधिके परस्मिन्नात्मन्यविनाशित्वव्याप्तिमत्यसम्बन्धात् प्रवृत्तिं व्युत्पादयति अक्षरमित्यादिना कथं पुनरक्षर शब्दस्य यथोक्ते परमात्मनि वृद्धप्रयोगमन्तरेण व्युत्पत्त्या प्रवृत्तिराश्रीयते व्युत्पत्तेरर्थान्तरेऽपि सम्भवादित्याशङ्क्य द्यावापृथिव्यादि विषयनिरंकुशप्रशासनस्य परस्मादन्यस्मिन्नसम्भवात्तथाविध प्रशासनकर्तृत्वेन श्रुतमक्षरं ब्रह्मैवेत्याह एतस्येति रूढिर्योगमपहरतीति न्यायादोंकारे वर्णसमुदायात्मन्यक्षरशब्दस्य रूढ्या प्रवृत्तिराश्रयितुमुचितेत्याशङ्क्याह ओंकारस्येति प्रतिवचनोपक्रमे प्रक्रान्तमोङ्काराख्यमक्षरमेवोत्तरत्र विशेषितं भविष्यतीत्याशङ्क्य परमविशेषणविरोधात् न तस्य प्रक्रमः सम्भवतीत्याह परममिति चेति किमध्यात्ममिति प्रश्नस्योत्तरं स्वभावोऽध्यात्ममित्यादि तद्व्याचष्टे तस्यैवेति स्वकीयो भावः स्वभावः श्रोत्रादिकरणग्रामः स चात्मनि देहेऽहंप्रत्ययवेद्ये वर्त्तत इति भ्रमं प्रतिभासं व्यावर्त्त स्वभावपदं गृह्णाति स्वो भावइति एवं विग्रहपरिग्रहे स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते इत्यस्यायमर्थो निष्पन्नो भवतीत्यनुवादपूर्वकं कथयति स्वभाव इति तस्यैव परस्येत्यादिनोक्तं न विस्मर्तव्यमिति विशिनष्टि परमार्थेति परमेव हि ब्रह्म देहादौ प्रविश्य प्रत्यगात्मभावमनुभवति तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदिति श्रुतेरित्यर्थः किं कर्मेति प्रश्नस्योत्तरमुपादत्ते भूतेति भूतान्येव भावस्तेषामुद्भवः समुत्पत्तिस्तां करोतीति व्युत्पत्तिं सिद्धवत्कृत्य विधान्तरेण व्युत्प्रपादयति भूतानामिति भावः सद्भावो वस्तुभावोऽतएव भूतवस्तूत्पत्तिकर इति वक्ष्यति वैदिकं कर्म्मात्रोक्तविशेषणं कर्मशब्दितमिति विसर्गशब्दार्थं दर्शयन् विशदयति विसर्ग इत्यादिना कथं पुनर्यथोक्तस्य यज्ञस्य सर्व्वेषु भूतेषु सृष्टिस्थितिप्रलयहेतुत्वेन तदुद्भवकरत्वमित्याशङ्क्याग्नौ प्रास्ताहुतिरित्यादि स्मृतिमनुस्मृत्याह एतस्माद्धीति ॥ ३ ॥

स्वामिकृतटीका।

प्रश्नक्रमेणैवोत्तरं श्रीभगवानुवाच अक्षरमिति त्रिभिः न क्षरति न चलतीत्यक्षरं ननु जीवोऽप्यक्षरस्तत्राह परमं यदक्षरं जगतां मूलकारणं तद् ब्रह्म एतद्वै तदक्षरं गार्गि

ब्राह्मणा अभिवदन्तीति श्रुतेः स्वस्यैव ब्रह्मण एवांशतया जीवरूपेण भवनं स्वभावः स एवात्मानं देहमधिकृत्य भोक्तृत्वेन वर्त्तमानोऽध्यात्मशब्देनोच्यत इत्यर्थः भूतानां जरायुजादीनां भावः सत्ता उत्पत्तिः उद्भवश्च आदित्याज्जायते वृष्टिरिति क्रमेण वृद्धि रुत्कृष्टत्वेन भवनमुद्भवः तौ भूतभावोद्भवौ करोति योविसर्गो देवतोद्देशेन द्रव्यत्याग रूपो यज्ञः सर्वकर्म्मणामुपलक्षणमेतत् स च कर्मशब्दवाच्यः ॥ ३ ॥

नवलभाष्य।

अबइन प्रश्नोंका क्रमपूर्वक अर्थात् जिसक्रमसे अर्जुनने प्रश्नकिये हैं उसीक्रमसे निर्णयके अर्थ भगवान् उत्तर देतेहुये कहतेहैं (अक्षरमिति) हे अर्जुन जो कभी नहीं नाशको प्राप्तहोय ऐसा अक्षरनाम करके प्रसिद्ध जो परमात्मा उसको परब्रह्म कहतेहैं अब अक्षरनाम ब्रह्मकाहै इसमें बृहदारण्यकी श्रुतिभी प्रमाणहै कि (एतस्यवाअक्षरस्यप्रशासनेगार्गिसूर्याचन्द्रमसौविधृतौतिष्ठतइत्यादि) अर्थ याग्यवल्क्यऋषि अपनी स्त्रीसे कहतेहैं कि हेगार्गि इस अक्षर परमात्माकी आज्ञामें वशीभूतहुये सूर्य्य और चन्द्रमा जे स्थितहोरहे हैं अर्थात् उस परमात्माके भयसे नित्यपरिभ्रमणरूप उस की आज्ञाको कियाही करते हैं तौ यहां श्रुतिमें अक्षरनाम ब्रह्महीका कहा सो युक्तहीहै क्योंकि शिक्षाकरना चेतनही में बनसक्ताहै जड़ जो प्रकृति तिसमें नहीं संभवहोता तौ जो प्रकृतिहीमें शासन करना नहीं संभवहुआ तौ उसप्रकृति करके मोहित जे ब्रह्मादि तृणपर्यन्त जीव उनमें कैसे संभव होताहै इससे परमात्मा ही सबका शिक्षा करनेवालाहै उसीको ब्रह्म कहते हैं और (ओमित्येकाक्षरंब्रह्म) इसश्लोकमें ब्रह्मकरके ओंकारको विशेष्य कियाहै इससे वहां अक्षर शब्दकरके वर्णका ग्रहणहोताहै और यहां तौ परमशब्द ब्रह्मका विशेषणहै इसकारणसे अक्षर शब्दकरके परम अर्थात् निरतिशय जो ब्रह्म परमात्मा तिसीका ग्रहणहै नहींकहीं परमात्मासे उत्कृष्ट बर्णरूप ओंकार संभव होसक्ताहै किंतु परमात्माका वाचक ओंकारहै इसीसे ब्रह्मशब्द करके कहाजाताहै और उसीपरब्रह्मका देहदेह प्रतिप्रत्यगात्मरूप करके अर्थात् जीवरूप करके जो होना सो स्वभावशब्द वाच्य अध्यात्म कहाताहै अर्थात् आत्मा जो देह तिसको अधिकार करके प्रत्यगात्म स्वरूप करके जीवरूपसे प्रवृत्तहुआ और अन्त्यमें ब्रह्मरूपही जो होय ऐसा जो वस्तुस्वभाव अर्थात् परमार्थ सत्य आत्मरूप वस्तुस्वभाव सोअध्यात्मशब्द करके यहां कहाजाताहै और हे अर्जुनभूत जे मनुष्यादि देहतिनकी वृष्टि आदिद्वारा उत्पत्तिका करनेवाला जोयज्ञ सो कर्मकहाताहै अर्थात् बीजभूत जो यज्ञादिकर्म्म तिससे वृष्ट्यादिक्रम करके स्थावर जंगमप्राणी उत्पन्नहोते हैं सो क्रमयहहै कि जबमन्त्रों करके संस्कृत अग्निमें हविर्द्रव्यकी आहुति डालीजातीहै तो वह आहुति सूर्यको प्राप्तहोतीहै फिर सूर्यकी किरणें मेघ रूपहो करके जलकी वृष्टि करतीहैं फिरउस वृष्टिसे अनेक प्रकारके अन्नउत्पन्नहोतेहैं फिरउन अन्नोंके भोजन करनेसे वीर्यउत्पन्नहोताहै फिरउसवीर्य

से ऋतुसमयमें अनेक प्राणियोंकी गर्भ स्थितिहोती है तिससे फिर अनेक प्राणी उत्पन्नहोते हैं ॥ ३ ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर ॥ ४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

अधिभूतमिति अधिभूतं प्राणिजातमधिकृत्य भवतीति कोसौ क्षरः क्षरतीति क्षरो विनाशी भावो यत् किञ्च जनिमद्वस्त्वित्यर्थः पुरुषः पूर्णमनेन सर्वमिति पुरि शयनाद्वा पुरुषः आदित्या न्तर्गतो हिरण्यगर्भः सर्वप्राणिकरणानामनुग्राहकः सोऽधिदैवतं अधियज्ञः सर्व्वयज्ञाभिमानिनी देवता विष्णवाख्या यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः स हि विष्णुरहमेवात्रास्मिन् देहेयो यज्ञस्तस्या ऽहमधियज्ञः यज्ञो हि देहनिर्वर्त्तत्वेन देहसमावायीति देहाधिकरणो भवति देहभृतांवर ॥ ४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

सम्प्रति प्रश्नत्रयस्योत्तरमाह अधिभूतमिति अधिभूतञ्च किं प्रोक्तमित्यस्य प्रति वचनमधिभूतं चरो भाव इति तत्राधिभूतपदमनूद्य बाध्यमर्थं कथयति अधिभूतमित्या दिना तस्य निर्देशमन्तरेण निर्ज्ञातुमशक्यत्वात् प्रश्नद्वारा तन्निर्दिशति कोऽसाविति कार्य्यमात्रमत्र संगृहीतमिति वस्तुमुक्तमेव व्यनक्ति यत् किञ्चिदिति अधिदैवं किमिति प्रश्ने पुरुषश्चेत्यादि प्रतिवचनं तत्र पुरुषशब्दमनूद्य मुख्यमर्थं तस्योपन्यस्यति पुरुष इति तस्यैव सम्भावितमर्थान्तरमाह पुरि शयनाद्वेति वैराजं देहमासाद्यमादित्यमण्ड लादिषु दैवत्येषु योऽन्तरवस्थितो लिङ्गात्मा व्यष्टिकरणानुग्राहकोऽत्र पुरुषशब्दार्थः स चाधिदैवतमिति स्फुटयति आदित्येति अधियज्ञः कथमित्यादिप्रश्नपरिहरन्नधियज्ञश ब्दार्थमाह अधियज्ञ इति कथमुक्तायां देवतायामधियज्ञशब्दः स्यादित्याशङ्क्य श्रुति मनुसरन्नाह यज्ञोवेद इति परैव देवताधियज्ञशब्देनोच्यते सा च ब्रह्मणः सकाशादत्य न्ताभेदेन प्रतिपत्तव्येत्याह स हि विष्णुरिति शास्त्रीयव्यवहारभूमिरत्रेत्युक्ता देहसामा नाधिकरण्याद्वात्रेत्यस्यव्याख्यानम् अस्मिन्निति किमधियज्ञो वहिरन्तर्वा देहादिति सन्देहो माभूदित्याह देह इति ननु यज्ञस्य देहाधिकरणत्वाभावात् कथं तथाविध यज्ञानि देवतात्वं भगवतो विवक्ष्यते तत्राह यज्ञो हीति एतेन तस्य बुद्ध्यादिव्यति रिक्तत्वमुक्तमवधेयं नहि परा देवता दर्शितरीत्यादियज्ञशब्दिता बुद्ध्यादिष्वन्तर्भाव मनुभावयितुमलं देहान् बिभ्रतीति देहभृतः सर्वे प्राणिनस्तेषामेव वरः श्रेष्ठः युक्तं हि भगवता साक्षादेव प्रतिक्षणं संवादं विदधानस्यार्जुनस्य सर्वेभ्यः श्रैष्ठ्यम् ॥ ४ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च अधिभूतमिति चरो विनश्वरो भावः देहादिपदार्थः भूतं प्राणिमात्रमधिकृत्य भवतीत्यधिभूतमुच्यते पुरुषो वै राजः सूर्यमण्डलवर्त्ती स्वांशभूतसर्वदेवतानामधिपति रधिदैवतमुच्यते अधिदैवतमधिष्ठात्री देवता स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत इति श्रुतेः अत्रास्मिन् देहेस्थितोऽहमेवाधि यज्ञोयज्ञस्याधिष्ठात्री देवता यज्ञादिकर्म्मप्रवर्त्तकस्तत्फलदाता च कथमित्यस्य त्वुत्तर मनेनैवोक्तं द्रष्टव्यमन्तर्यामिणोऽसत्तादिभिर्गुणैर्जीववैलक्षण्येन देहान्तर्वर्त्तित्वप्रसिद्धत्वात् तथाच श्रुतिः द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वा

द्वृत्त्यन्नमश्नन्नन्योऽपि चकास्तीति देहभृतां मध्ये श्रेष्ठ इति सम्बोधयन् त्वमप्येवं भूतमन्तर्यामिणं पराधीनस्वप्रवृत्तिनिवृत्त्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां बोद्धुमर्हसीतिसूचयति ॥ ४ ॥

नवलभाष्य ।

और हेअर्जुन अधिभूत नाम सबभूतोंको अधिकार करके होनेवाला जो नश्वरभाव अर्थात् जो कुछ उत्पन्न पदार्थहोताहै सो सब नाशवान् होनेसे अधिभूत कहाताहै और जिसकरके सबजगत् पूर्णहोय अथवा देहरूप पुरमें शयनकरै ऐसा जो सूर्यमण्डलमें रहनेवाला हिरण्यगर्भ सब प्राणियोंकी इन्द्रियोंका अनुग्रह करनेवाला अर्थात् सामर्थ्य देनेवाला पुरुष सो अधिदैव कहाताहै और जो सबयज्ञोंका अभिमानी देवता अर्थात् स्वामी जिसको विष्णु कहतेहैं क्योंकि वेदमें ऐसाकहाहै कि यज्ञनाम विष्णुका है सो विष्णु इसदेहमें यज्ञरूपकरके स्थितहोरहाहै सो हेदेहधारिमें श्रेष्ठमैंहींहूं ॥४॥

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

अन्तकाल इति अन्तकाले च मरणकाले मामेव परमेश्वरं विष्णुं स्मरन् मुक्त्वा परित्यज्य कलेवरं शरीरं यः प्रयाति गच्छति स मद्भावं वैष्णवं तत्त्वं याति नास्ति न विद्यते अत्रास्मिन्नर्थे संशयो याति वा न वेति ॥ ५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

यत्तु प्रयाणकाले चेत्यादि चोदितं तत्राह अन्तकाले चेति मामेवेत्यवधारणेन अध्यात्मादिविशिष्टत्वेन स्मरणं व्यावर्त्त्यते विशिष्टस्मरणे हि चित्तविक्षेपान्न प्रधानस्मरणमपि स्याच्च मरणकाले कार्य्यकरणपारवश्याद्भगवदनुस्मरणाऽसिद्धिः सर्वदैव नैरन्तर्य्येण आदरधिया भगवति समर्पितचेतसः तत्कालेऽपि कार्य्यकरणजातमगणयतो भगवदनुसन्धानसिद्धेः शरीरे तस्मिन्नहं ममाभिमानाभावादिति यावत् प्रयातीत्यत्र प्रकृतशरीरमपादानं ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवतीत्यादि श्रुतिमाश्रित्याह नास्तीति व्यासेध्यं संशयमेवाभिनयति याति वेति ॥ ५ ॥

स्वामिकृतटीका ।

प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसीत्यनेन पृष्टमन्तकाले ज्ञानोपायं तत्फलञ्च दर्शयति अन्तकाल इति मामेवोक्तलक्षणमन्तर्यामिरूपं परमेश्वरं स्मरन् देहं त्यक्त्वा यः प्रकर्षेण अर्च्चिरादिमार्गेण उत्तरायणपथायाति स मद्भावं मद्रूपतां याति अत्र संशयो नास्ति स्मरणं ज्ञानोपायो मद्भावापत्तिश्च फलमित्यर्थः ॥ ५ ॥

नवलभाष्य ।

और हे अर्जुन अन्तकालमें मरण समयमें मैंहीं जो परमेश्वर विष्णु तिसको स्मरण करतेसंते जो पुरुष शरीरको त्यागकरके जाताहै मेराभाव जो वैष्णवतत्त्व अर्थात् वैष्णव स्वरूप तिसको प्राप्तहोताहै इसअर्थमें कुछ

संशयनहीं है अर्थात् मेरे स्वरूपको प्राप्तहोताहै वा नहीं प्राप्तहोताहै यह संदेहनहीं है ॥ ५ ॥

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

न मद्विषय एवायं नियमः किं तर्हि यं यमिति यं यं वापि यं यं भावं देवताविशेषं स्मरंश्चिन्तयन् त्यजति परित्यजति अन्ते प्राणवियोगकालेकलेवरं तं तमेव स्मृतं भावमेवैति नान्यं कौन्तेय सदा सर्वदा तद्भावभावितस्तस्मिन् भावस्तद्भावः स भावितःस्मर्य्यमाणतयाऽभ्यस्तो येन स तद्भावभावितः सन् ॥ ६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

अन्तकाले भगवन्तमनुध्यायतो भगवत्प्राप्तिनियमवदन्यमपि तत्काले देवादिविशेषं ध्यायतो देहं त्यजतस्तत्प्राप्तिरवश्यं भाविनीति दर्शयति नेत्यादिना कथं पुनरन्तकाले परवशस्य नियतविषयस्मृतिर्भवितुमुत्सहते तत्राह सदेति देवादिविशेषस्तस्मिन्निति सप्तम्यर्थः भावो भावना वासना स भावो भावितः सम्पादितो येन पुंसा स तथाविधः सन् यं यं भावं स्मरति तन्तमेव देहत्यागादूर्ध्वं गच्छतीति सम्बन्धः ॥ ६ ॥

स्वामिकृतटीका।

न केवलं मां स्मरन् मद्भावं प्राप्नोतीति नियमः किं तर्हि यं यमिति यं यं भावं देवतान्तरं वा अन्यमपि वा अन्तकाले स्मरन् देहं त्यजति तं तमेव स्मर्य्यमाणं भावं प्राप्नोति अन्तकाले भावविशेषस्मरणे हेतुः सदा तद्भावभावित इति सर्वदा तस्य भावो भावनानुचिन्तनं तेन भावितो वासितचित्तः ॥ ६ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन मेरेही विषयमें यह नियमनहीं है किन्तु जिस २ देवता विशेषको वा स्त्री पुत्र धनादिकको अन्तसमयमें स्मरण करताहुआ पुरुष शरीरको त्यागकरताहै सो पुरुष तिसी तिसभावको प्राप्तहोताहै क्योंकि जिससे सबकालमें जिसकी भावना युक्तहोके जिसका स्मरण करताहै इससे उसीभावका अन्त्यसमयमें भी स्मरण करके उसीभावको प्राप्तहोताहै अर्थात् अन्त्यसमयका स्मरण अपने आधीनहीहै जिससे कोईपुरुष सबकाल में तो विषयोंका स्मरण कियाकरै और अन्त्यसमयमें परमेश्वरका स्मरण करके परमेश्वरको प्राप्तहोय किंतु जिसका सबकालमें स्मरणकियाहै उसीका अन्त्यसमयमें भी नियम करके स्मरणहोताहै और यहभी नियमहै कि अन्त्यसमयमें जिसका स्मरणकरै उसीको प्राप्तहोता है ॥ ॥ ६

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥

शंकरभाष्यम् ।

यस्मादेवमन्त्यभावेन देहान्तरप्राप्तौ कारणं तस्मादिति तस्मात् सर्व्वेषु कालेषु मामनुस्मर यथाशास्त्रं युध्य च युद्धञ्च स्वधर्म्मं कुरु मयि वासुदेवेऽर्पिते मनोबुद्धिर्यस्य तव स त्वं मय्य र्पितमनोबुद्धिः सन् मामेव यथास्मृतमेष्यसि असंशयो न संशयोऽत्र विद्यते ॥ ७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

सततं भावना प्रतिनियतफलप्राप्तिनिमित्तान्त्यप्रत्ययहेतुरित्यङ्गीकृत्यानन्तरश्लोकम वतारयति यस्मादिति विशेषणत्रयवतो भगवदनुस्मरणस्य भगवत्प्राप्तिहेतुत्वंभाति तस्मा दित्युच्यते सर्व्वेषु कालेष्वादरनैरन्तर्य्याभ्यां सहेति यावत् भगवदनुस्मरणे विशेषणत्र यसाहित्यं यथाशास्त्रमिति द्योत्यते भगवदनुसन्धानं कर्त्तव्यमुक्त्वा तेन सह स्वधर्म्म मपि कुरु युद्धमित्युपदिशता भगवता समुच्चयो ज्ञानकर्मणोरंगीकृतो भातीत्याशङ्क्याह मयीति मनोबुद्धिगोचरं क्रियाकारकफलजातं सकलमपि ब्रह्मैवेति भावयन् युद्ध्यस्वेति ब्रुवता क्रियादि कलापस्य ब्रह्मातिरिक्तस्याभावाभिलापान्नात्र समुच्चयो विवक्षित इत्यर्थः उक्तरीत्या स्वधर्ममनुवर्त्तमानस्य प्रयोजनमाह मामेवेति उक्तसाधनवशात् फलप्राप्तौ प्रति बन्धाभावं सूचयति असंशय इति ॥ ७ ॥

स्वामिकृतटीका ।

तस्मादिति यस्मात् पूर्ववासनैवान्तकाले स्मृतिहेतुर्नतु तदा विवशस्य स्मरणोद्यमः सम्भवति अस्मात् सर्वदा मामनुस्मर अनुचिन्तय सन्ततस्मरणमाह चित्तशुद्धिं विना न भवति अतो युध्य च युध्यस्व चित्तशुद्ध्यर्थं युद्धादिकं स्वधर्म्ममनुतिष्ठेत्यर्थः एवं मय्य र्पितं मनः संकल्पात्मकं बुद्धिश्च व्यवसायात्मिका येन त्वया स त्वमनायासेन मामेव प्राप्स्यसि असंशयः संशयोऽत्र नास्ति ॥ ७ ॥

नवलभाष्य ।

जिससे हे अर्जुन अन्त्यसमयकी भावनाही तिसतिस देहकी प्राप्तिमें कारणहै इससे तूसब कालमें मेराही स्मरणकर और जैसे शास्त्रमें कहाहै तैसे अपना क्षत्रियका कर्म्म जो युद्धादिक तिसको भीकर इसप्रकार मेरेही बिषे अर्पणकराहै मन और बुद्धि जिसने ऐसा जो तूहै सो मोहीको प्राप्त होयगा इसमें कुछ संशयनहीं है ॥ ७ ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुऽचिन्तयन् ॥ ८

शंकरभाष्यम् ।

किञ्च अभ्यासेति अभ्यासयोगयुक्तेन मयि चित्तसमर्पणविषयभूते एकस्मिन् तुल्यप्रत्यया वृत्तिलक्षणो विलक्षणप्रत्ययान्तरितोऽभ्यासः स चासौ योगस्तेन युक्तं तत्रैव व्यापृतं प्रवृत्तं योगिनश्चेतस्तेनचेतसा नान्यगामिना। नान्यत्र विषयान्तरे गन्तुं शीलमस्येति नान्यगामि तेन नान्यगामिना परमं निरतिशयं पुरुषं दिव्यं दिवि सूर्यमण्डले भवं दिव्यंयाति गच्छति हे पार्थ अनुचिन्तयन् शास्त्राचार्योपदेशमनुध्यायन्नित्येतत् ॥ ८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

इतश्च पूर्वश्लोकोक्त कार्यानुष्ठायी भगवन्तमन्तकाले प्राप्नोतीत्याह किञ्चेति अभ्यासं विभजते मयीति नहि चित्तसमर्पणस्य विषयभूतं भगवतोऽर्थान्तरं वस्तु सदस्तीति मन्वानो विशिनष्टि चित्तेति अन्तरालकालेऽपि विजातीय प्रत्ययेषु विच्छिद्य विच्छिद्य जायमानेष्वपि सजातीय प्रत्ययावृत्तिर्योगिनोऽपि स्यादित्याशङ्क्याह विलक्षणेति अभ्यासाख्येन योगेन युक्तत्वं चेतसो विवृणोति तत्रैवेति तृतीयया परामृष्टोऽभ्यासयोगः सप्तम्यापि परामृश्यते ननु प्राकृतानां चेतस्तथेत्याशङ्क्य विशिनष्टि योगिन इति तच्चेतो विषयान्तरं परामृशेन्न तर्हि परमपुरुषार्थप्राप्तिहेतुः स्यादित्याशङ्क्याह नान्यगामिनेति प्रामादिकं विषयान्तरपारवश्यमभ्यनुज्ञातुं ताच्छील्यप्रत्ययात्तेन तात्पर्यादपरामृष्टार्थान्तरेणपरमपुरुषनिष्ठे नेत्यर्थः तदेव पुरुषस्य निरतिशयत्वं यदपरामृष्टाखिलानर्थत्वमनतिशयानन्दत्वं तच्चप्रागेव व्याख्यातं नेह व्याख्यानमपेक्षते यश्चासावादित्ये इत्यादिश्रुतिमनुसृत्याह दिवीति तत्र विशेषतोऽभिव्यक्तिरेव भवनं पूर्वोक्तेन चेतसा यथोक्तं पुरुषमनुचिन्तयन् यातितमेवेति सम्बन्धः अनुचिन्तयन्नित्यत्रानुशब्दार्थं व्याचष्टे शास्त्रेति चिन्तयन्निति व्याकरोति ध्यायन्निति ॥ ८॥

स्वामिकृतटीका।

सन्ततस्मरणस्य चाभ्यासोऽन्तरंगसाधनमिति दर्शयन्नाह अभ्यासयोगेति अभ्यासः सजातीय प्रत्ययप्रवाहः स एव योग उपायस्तेन युक्तेनैकाग्रेण अतएव नान्यं विषयं गन्तुं शीलं यस्य तेन चेतसा दिव्यं द्योतनात्मकं परमेश्वरमनुचिन्तयन् हे पार्थ तमेव यातीति ॥ ८ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन अभ्यास योगयुक्त जो चित्त तिसकरके अर्थात् जिसमेरे विषे चित्त समर्पणकिया है तिसएकमें निरन्तर जो चित्त वृत्तिका एकाकार प्रवाह जैसेघृत दुग्धादिकीधारानिरन्तर किसीपात्रमें गिरतीहै टूटती न होय तैसे तिरन्तर परमात्मा जो मैं तिसमें चित्तवृत्तिका प्रवाह कभी टूटैनहीं और उस प्रत्ययमें अर्थात् चित्तकी प्रतीतिमें बीचमें विलक्षण और तरहका प्रत्यय न होनेपावै जैसे आत्मध्यान निष्ठचित्तकी वृत्तिहोरहीहै और उससमयमें कोई तरहका लौकिकरूप ध्यानमें आयगया तो वह चित्तकीवृत्ति अन्यथा प्रतीतिको करने लगतीहै सो न होनेपावै अर्थात् आत्माकारही चित्तकी वृत्तिरहै इसको अभ्यास योगकहते हैं और यहभी न होयकि जिस समय योगी ध्यानकररहाहै और उस समयमें किसी इष्टमित्रादिका ध्यान हुआ और उसध्याताने यह विचारकिया कि चित्त तो हमारे बशमें है ही यहभी ध्यानहोनेदेउ फिरहम चित्तको खींचलेवैंगे सो यह बिश्वास न करै इससे भगवान् कहतेहैं कि वह अभ्यासयोग चित्त अनन्यगामीहोय अर्थात् किसी विषयमें नहीं जानेपावै तो ऐसेचित्त करके ध्यान करताहुआ जो योगी सो सूर्य्य मण्डलके अन्तर्गत जो दिव्यपुरुष तिसको प्राप्तहोताहै॥८॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः
सर्वस्यधातरमचिन्त्यारूपमादित्यवर्णंतमसःपरस्तात् ९॥

शङ्करभाष्यम् ।

किंविशिष्टञ्च पुरुषं यातीत्युच्यते कविमिति कविं क्रान्तदर्शिनं सर्वज्ञं पुराणं चिरन्तनमनुशासितारं सर्वस्य जगतः प्रशासितारम् अणोः सूक्ष्मादप्यणीयांसं सूक्ष्मतरम् अनुस्मरेदनुचिन्तयेत् यः कश्चित् सर्वस्य कर्म्मफलजातस्य धातारं विचित्रतया प्राणिभ्यो विभक्तारं विभज्य दातारमचिन्त्यरूपं नास्य रूपं नियतं विद्यमानमपि केनचित् चिन्तयितुं शक्यते इत्यचिन्त्यरूपस्तम् आदित्यवर्णमादित्यस्येव नित्यचैतन्यप्रकाशो वर्णो यस्यतमादित्यवर्णं तमसः परस्तादज्ञानलक्षणान्मोहान्धकारात् परं तमनुचिन्तयन् यातीति पूर्वेणैव सम्बन्धः ॥ ९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

किं विशिष्टपुरुषमनुचिन्तयन्निति सम्बन्धः चकारात् कया वा नाड्योत्क्रामन्नित्यनुकृष्यते तत्र ध्यानद्वाराप्राप्यस्य पुरुषस्य विशेषणानि दर्शयति उच्यत इति क्रान्तदर्शित्वमतीतादेरशेषस्य वस्तुनो दर्शनशालित्वं तेन निष्पन्नमर्थमाह सर्वज्ञमिति चिन्तनमादिमतः स सर्वस्य कारणत्वादनादिमित्यर्थः सूक्ष्ममाकाशादि ततः सूक्ष्मतरं तदुपादानत्वादित्यर्थः यो यथोक्तमनुचिन्तयेत् स तमेवानुचिन्तयन् यातीति पूर्वेणैव सम्बन्ध इति योजना ननु विशिष्टजात्यादिमतो यथोक्तमनुचिन्तनं फलवद्भवति नत्वस्मदादीनामित्याशङ्क्याह यः कश्चिदिति फलमत उपपत्तेरिति न्यायेनाह सर्वस्येति एतदप्रमेयं ध्रुवमिति श्रुतिमाश्रित्याह अचिन्त्यरूपमिति नहि परस्य किञ्चिदपि रूपादिवस्तुतोऽस्ति अरूपवदेवहीति न्यायात् कल्पितमपि नास्मदादिभिः शक्यते चिन्तयितुमित्याह नास्येति मूलकारणादज्ञानात् तत्कार्य्याच्च पुरस्तादुपरिष्टाद् व्यवस्थितं परमार्थतो ज्ञानतत्कार्यास्पृष्टमित्याह तमस इति ॥ ९ ॥

स्वामिकृतटीका ।

पुनरप्यनुचिन्तनीयं पुरुषं विशिनष्टि कविमिति द्वाभ्यां कविं सर्वज्ञं सर्वविद्यानिर्मातारं पुराणमनादिसिद्धम् अनुशासितारं नियन्तारम् अणोः सूक्ष्मादप्यणीयांशमतिसूक्ष्मं आकाशकालादिभ्योऽप्यतिसूक्ष्मतरं सर्वस्य धातारं पोषकम् अपरिमितमहिमत्वादचिन्त्यरूपं मलीमसयोर्मनोबुद्ध्योरगोचरम् आदित्यवत् स्वरूपप्रकाशात्मको वर्णः स्वरूपं यस्य तं तमसः प्रकृतेः परस्ताद्वर्तमानं वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तादिति श्रुतेः ॥ ९ ॥

नवलभाष्य ।

अबकैसे पुरुषको योगी प्राप्तहोताहै इस आकांक्षामें कहते हैं कि (कविमिति) हेअर्जुन कैसावह पुरुषहै जो कविहै क्रान्तदर्शी है अर्थात् जो पदार्थ अतीतहै पहिले व्यतीत होगयाहै और अगाड़ी होनेवालाहै और होरहाहै तिनसबोंका देखनेवालाहै अर्थात् सर्वज्ञहै और पुराणहै अर्थात् चिरन्तनहै पहिलेही सिद्धहै और अनुशासिताहै सबजगत्‌की शिक्षाकरनेवालाहै और अणु जो सूक्ष्म तिससे भी अत्यन्त सूक्ष्महै और जो सब प्राणियोंको कर्म्म

फलोंका न्यारान्यारा करके देनेवालाहै और जिसकारूप कोई नियत चिन्तन करनेमें नहीं आसक्ताहै इससे वह अचिन्त्यरूपहै और आदित्य जो सूर्य्य तिसकी तरहनित्य चैतन्य प्रकाशहै वर्णजिसका ऐसाहै और अज्ञान लक्षण जो मोहान्धकार तिससेपरे है ऐसे पुरुषको जो स्मरण करताहै सो योगी उसको प्राप्तहोता है ॥ ९ ॥

प्रयाण काले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेनचैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्यसम्यक् सतं परं पुरुषमुपैति दिव्यं॥१०॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च प्रयाणकाल इति प्रयाणकाले मरणकाले मनसाचलेन प्रचलनवर्जितेन भक्त्या युक्तो भजनं भक्तिः तया युक्तो योगबलेन चैव योगस्य बलं योगबलं तेन समाधिजसंस्कार प्रचयजनितं स्वचित्तस्थैर्य्यलक्षणं योगबलं तेन च युक्त इत्यर्थः पूर्वं हृदयपुण्डरीके वशीकृतं तत ऊर्ध्वगामिन्यानाड्या भूमिजयक्रमेण भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य स्थापयित्वा सम्यगप्रमत्तः बुद्धिमान् योगी कविं पुराणमित्यादिलक्षणं तं परं पुरुषमुपैति प्रपद्यते दिव्यं द्योतनात्मकं १० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

इतश्च भगवदनुस्मरणं सफलत्वादनुष्ठेयमित्याह किञ्चेति कदा तदनुस्मरणे प्रयत्नातिरेकोऽभ्यर्थ्यते तत्राह प्रयाणकाल इति कथं तदनुस्मरणमित्युपकरणकलापमपेक्ष्यमाणं प्रत्याह मनसेति योऽनुस्मरेत् स किमुपैति तत्राह स तमिति मरणकाले क्लेशबाहुल्येऽपि प्राचीनाभ्यासप्रसादासादित बुद्धिवैभवो भगवन्तमनुस्मरन् यथास्मृतमेव देहाभिमानविगमानन्तरमुपागच्छतीत्यर्थः भगवदनुस्मरणस्य साधनं मनसैवानुद्रष्टव्यमिति श्रुत्युपदिष्टमाचष्टे मनसेति तस्य चञ्चलत्वान्न स्थैर्य्यमीश्वरे सिध्यति तत् कथं तेन तदनुस्मरणमित्याशङ्क्याह अचलेनेति ईश्वरानुस्मरणे प्रयत्नेन प्रवर्त्तितं विषयविमुखं तस्मिन्नेवानुस्मरणयोग्ये पौनःपुन्येन प्रवृत्त्या निश्चलीकृतं ततश्चलनविकलं तेनेति व्याचष्टे प्रचलनेति सम्प्रत्यनुस्मरणाधिकारिणं विशिनष्टि भक्त्येति परमेश्वरे परेण प्रेम्णा सहितो विषयान्तरविमुखः स्मर्तव्य इत्यर्थः योगबलमेव स्फोरयति समाधिजे त योगः समाधिः चित्तस्य विषयान्तरवृत्तिनिरोधेन परस्मिन्नेव स्थापनं तस्य बलं संस्कारप्रचयो ध्येयैकाग्र्यकरणं तेन तत्रैव स्थैर्य्यमित्यर्थः चकारसूचितमन्वयमन्वाचष्टे तेनचेति यत्तु कया नाड्योत्क्रामन् यातीति तत्राह पूर्वमिति चित्तं हि स्वभावतो विषयेषु व्यापृतं तेभ्यो विमुखीकृत्य हृदये पुण्डरीकाकारे परमात्मस्थाने यत्नतः स्थापनीयम् अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे इत्यादिश्रुतेस्तत्र चित्तं वशीकृत्य आदावनन्तरं कर्त्तव्यमुपदिशति तत इति इडापिंगले दक्षिणोत्तरे नाड्यौ हृदयान्निःसृते निरुध्य तस्मादेव हृदयाग्रादूर्ध्वगमनशीलया सुषुम्णया नाड्या हार्दं प्राणमानीय कण्ठावलम्बितं स्तनसदृशं मांसखण्डं प्राप्य तेनाध्वना भ्रुवोर्मध्ये तमावेश्य अप्रमादवान् ब्रह्मरन्ध्राद्विनिःक्रम्य कविं पुराणमित्यादि विशेषणं परमपुरुषमुपगच्छतीत्यर्थः भूमिजयक्रमेणेत्यत्र भूम्यादीनां पञ्चानां भूतानां जयो वशीकरणं तस्य स्वाधीनचेष्टावैशिष्ट्यं तद्द्वारेणेत्यतदुच्यते सतमित्यादि व्याचष्टे सर्वमिति ॥ १० ॥

स्वामिकृतटीका।

स प्रपञ्च प्रकृतिं भित्त्वा यस्तिष्ठति एवंभूतं पुरुषम् अन्तकाले भक्तियुक्तो निश्चलेन विक्षेपरहितेन मनसा योऽनुस्मरेत् मनोनैश्चल्य हेतुः योगबलेन सम्यक् सुषुम्णा मार्गेण भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य इति सतं परं पुरुषं परात्मस्वरूपं दिव्यं द्योतनात्मकंप्राप्नोति॥१०॥

नवलभाष्य।

और हेअर्जुन प्रयाण कालमें अर्थात् मरण समयमें अचल स्थिर जोमनहै तिसकरके और भक्तिकरके और समाधिसे उत्पन्न जे अनेक संस्कार तिन्हों सेहुआ जो चित्तका स्थैर्य्य सो हुआ योगबल तिसकरके युक्त जो योगी सो प्रथम हृदय कमलमें वशकिया जो चित्त तिसकरके हृदयसे दक्षिण उत्तर के तरफ निकलीहुई जेइड़ा और पिंगलादोनाड़ी तिनको रोककरके अर्थात् जिससे उननाड़ियोंकेद्वारा प्राणवायु न जानेपावे इससे उनदोनों नाड़ियों-को रोकके हृदयके अग्रभागसे ऊपरके मार्गकरके चलनेवाली जो सुषुम्नाना-ड़ी तिसकरके हृदयस्थ प्राणको ल्याकरके फिर भूमिकाओंके जीतनके क्रम करके अर्थात् जबवहांसे ऊपरको प्राणके लैचलनेवाला योगीबीचमें मार्गों के जीतनेके क्रमसे अथवा भूम्यादिक जे पंचमहाभूत तिनका जीतना जो वशकरना अर्थात् पृथिव्यादि महाभूतोंके व्यापारको अपने आधीन करके फिर इनके गन्धादि सूक्ष्मरूपोंके उल्लंघनकी सामर्थ्यको प्राप्तहोके कण्ठमें लटकताहुआ स्तनके सदृश जो मांसखण्ड तिसजगहपर प्राणवायुको ल्या-कर फिर उसमार्ग करके भृकुटीके मध्यमें अर्थात् भौंहोंके बीचमें प्राणवायु को स्थापन करके फिर वहां अच्छीतरह सावधानहोके इसप्रकार बुद्धिमान् योगी ब्रह्मरन्ध्रकेद्वारा निकल करके पूर्वोक्त कविपुराण इत्यादि विशेषणों रकके युक्त जो दिव्यपुरुष नारायण तिसको प्राप्तहोता है॥१०॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥११॥

शङ्करभाष्यम्।

योगमार्गानुगमनेनैव ब्रह्मविद्या मन्तरेणापि ब्रह्माप्यत इत्येवं प्राप्त इदमुच्यते पुनरपि वक्ष्य-माणेनोपायेन प्रतिपित्सितस्य ब्रह्मणो वेदविद्वदनादिविशेषणाविशेष्यस्याभिधानं करोति भग-वान् यदक्षरमिति यदक्षरं नक्षरतीति अक्षरं अविनाशि वेदविदो वेदार्थज्ञा वदन्ति तद्वा एतद क्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्तीति श्रुतेः सर्वविशेषनिवर्त्तकत्वेनाभिवदन्त्यस्थूलमन्वण्वित्यादि विशन्ति प्रविशन्ति सम्यग्दर्शनप्राप्तौ सत्यां यद्यतयो यतनशीलाः संन्यासिनो वीतरागा विगतो रागो येभ्यस्ते वीतरागाः यच्चाक्षरमिच्छन्तो ज्ञातुमिति वाक्यशेषः ब्रह्मचर्यं गुरौ चरन्तीति तत्ते पदं यदक्षराख्यं ब्रह्मख्यं पदं पदनीयं ते तुभ्यं संग्रहेण संग्रहः संक्षेपः तेन संक्षेपेण प्रवक्ष्ये कथयिष्यामि स योह तद्भगवान् मनुष्येषु प्राणायामोङ्कारमभिध्यायीत कतमं वा वसते न लोकं जयतीति तस्मै सहोवाच एतद्वै सत्यकामपरञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कार इत्युपक्रम्य यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेदित्यादिना वचनेन अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादिति चोपक्रम्य

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतदित्यादिभिश्च वचनैः परस्य ब्रह्मणो वाचकरूपेण प्रतिमावत् प्रतीक रूपेण च परब्रह्मप्रतिपत्तित्वेन मन्दमध्यमबुद्धिनां विवक्षितस्योङ्कारस्योपासनं कालान्तरे मुक्तिफलमुक्तं यत्तदेवेहापि अधिकृतं कविं पुराणमनुशासितारं यदक्षरं वेदविदो वदन्तीति चोप न्यस्तस्य च परस्य ब्रह्मणः पूर्वोक्तरूपेण प्रतिपत्त्युपायभूतस्योङ्कारस्य कालान्तरमुक्तिफलमुपा सनं योगधारणासहितं वक्तव्यं ॥ ११ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

येन केन चिन्मंत्रादिना ध्यानकाले भगवदनुस्मरणे प्राप्ते सत्यभिधानत्वेन नियन्तुं स्मर्त्तव्यत्वेन प्रकृतपरमपुरुषस्य त्रैविद्यवृद्धप्रसिद्ध्या प्रामाणिकत्वमाह पुनरपीति उपायो वक्ष्यमाण ओंकारः अविषये प्रतीचि ब्रह्मणि वेदार्थविदामपि कथं वचनमित्याशंक्याविष यत्वमित्येतावतैवेति मत्वा श्रुतिमुदाहरति तद्वेति तथापि तस्मिन्नविषये सर्वविशेषशून्ये वचनमनुचितमित्याशंक्याह सर्वेति न केवलं विद्वदनुभवसिद्धं यथोक्तं ब्रह्म किन्तु मुक्तोप सृप्यतया मुक्तानामपि प्रसिद्धमित्याह किंचेति केषांपुनः संन्यासित्वं तदाह वीतरागा इति ज्ञानार्थं ब्रह्मचर्यविधानादपि ब्रह्म ज्ञेयत्वेन प्रसिद्धमित्याह यच्चेति कथं तर्हि यथोक्त ब्रह्म मम ज्ञातुं शक्यमित्याकुलितचेतसमर्जुनं प्रत्याह तत्ते पदमिति वक्ष्यमाणेनोपायेने त्युक्तं व्यक्तोर्वन्नोङ्कारद्वारा ब्रह्मोपासनं श्रुत्युक्तमनुक्रामति स योहेति सत्यकामेनाभिध्यान फलं जिज्ञासुना भगवन्निति पिप्पलादः सम्बोध्याभिमुखीक्रियते निपातो तु प्रसिद्धमर्थम वद्योतयन्तावभिध्यानस्य फलत्वेन कर्त्तव्यत्वमावेदयतः मनुष्येषु मध्ये मयोऽधिकृतो म नुष्यस्तत्प्रसिद्धमभिध्यानं यथा सिध्यति तथा सर्ववेदसारभूतमोङ्कारमाभिमुख्येन ध्यायी त तच्चाभिध्यानमाप्रायणादिति न्यायेन मरणान्तमनुष्ठेयं स चैवमनुतिष्ठन् प्रकृतेनाभिध्या नेन लोकानां जेतव्यानां बहुत्वात् कतमं लोकं जयतीति प्रश्ने पृच्छते सत्यकाय पिप्पला दनामा किलाचार्यः प्रतिवचनं प्रोवाच तत्र प्रथमं अभिध्येयमोङ्कारं परापरब्रह्मत्वेन म हीकरोति एतद्वा इति त्रिमात्रेणाकारमकारात्मकेनेति यावत् योऽभिध्यायीत तमेव यथा भिध्यातं पुरुषमधिगच्छतीत्यादि वचनेनोपासनमोंकारस्योक्तमित्यर्थः प्रश्नश्रुतिवत् कठ वल्ली च तत्रैवार्थेप्रवृत्तेत्याहअन्यत्रेति अव्यवधानेनोपनिषदां व्यवधाने न च कर्म्मश्रुती नां परस्मिन्नात्मनि पर्य्यवसानं दर्शयति सर्व इति तपसामपि सर्वेषां चित्तशुद्धिद्वारा तत्रैव पर्य्यवसानमित्याह तपांसीति तस्यैव च ज्ञानार्थमन्तरङ्गं ब्रह्मचर्यं तत्र तत्र विहितमि त्याह यदिच्छन्त इति तस्य पदनीयस्य ब्रह्मणः संक्षेपेण कथमोंकाराद्वारकमिति कथ यति ओमित्येतदिति उदाहृतवचनानां तात्पर्यं दर्शयति परस्येति तस्य वाचकरूपेण वा तस्यैव प्रतीकरूपेण वा विवक्षितस्योंकारस्योपासनं यथोक्तैर्वचनैरुक्तमिति सम्बन्धः ननु परस्मिन् ब्रह्मणि तत्त्वमस्यादिवाक्यादेव प्रतिपत्तिरधिकारिणो भविष्यति किमित्युपासन मोंकारस्योपन्यस्यते तत्राह परेति यद्यपि विशिष्टस्याधिकारिणो विनैवोपासनमुपनिषद्भ्यो ब्रह्मणि प्रतिपत्तिरुत्पद्यते तथापि मन्दानां मध्यमानाञ्च तद्धि हेतुत्वेनोंकारो विवक्षितः तच्चोपासनं ब्रह्मदृष्ट्या श्रुतिभिरुपदिष्टमित्यर्थः तस्य क्रमभुक्तिफलत्वादनुष्ठेयत्वं सूचयति कालान्तरेति भवत्येवं श्रुतीनां प्रवृत्तिस्तावता प्रकृते किमायातमित्याशङ्क्याह उक्तं यदि ति तदेवेहापि वक्तव्यमित्युत्तरेण सम्बन्धः उपासनमेवोपास्योपन्यासद्वारा स्फोरयति क विमित्यादिना पूर्वोक्तरूपेणत्यभिधानत्वेन प्रतीकत्वेन वेद्यर्थः श्रौतस्योपासनस्यानूद्यमा नस्य सोपस्करत्वं संगिरते योगेति ॥ ११ ॥

स्वामिकृतटीका।

केवलाभ्यासयोगादपि प्रणवाभ्याममन्तरंगं विवित्सुः प्रतिजानीते यदक्षरमिति यदक्षरं वेदार्थज्ञा वदन्ति एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत इति श्रुतेः वीतो रागो येभ्यस्ते वीतरागा यतयः प्रयत्नवन्तो यद्विशन्ति यच्च ज्ञातुमिच्छन्तो गुरुकुले ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते तुभ्यं पदं पद्यते गम्यत इति पदं प्राप्यं संग्रहेण संक्षेपेण प्रवक्ष्ये तत्प्राप्त्युपायं कथयिष्यामीत्यर्थः ॥ ११ ॥

नवलभाष्य।

अब योगमार्गके अनुगमनकरके ब्रह्मविद्याकेविना भी ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै ऐसा सिद्धान्त विरुद्ध पूर्वोक्त कथनसे प्राप्तहोतेसन्ते तिस दोषको दूरकरनेको यहकहाजाता है कि फिर भी भगवान् अगाड़ी कहाजायगा जो उपाय तिसकरके प्राप्तहोनेको इष्ट और वेदविदादि ऋषिलोग जिसको कहतेहैं इत्यादि विशेषणोंकरकेयुक्त जो ब्रह्म तिसका कथनकरते हैं कि (यदक्षरमिति) कि हे अर्ज्जुन जिसको वेदविद अर्त्थात् वेदोंके अर्त्थके जाननेवाले जे आचार्य ते अक्षरनामकरके कहतेहैं अर्त्थात् जो नहीं क्षरण को प्राप्तहोय नाम नहीं नाशकोप्राप्तहोय सो अक्षरकहाताहै इसप्रकार अक्षरअविनाशी जिसब्रह्मको वेदकेजाननेवाले पुरुष कहते हैं सो बृहदारण्य की श्रुतिकहती है (तद्वाएतदक्षरंगार्गिब्राह्मणअभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमित्यादि) कि हेगार्गि सब विशेष धर्मोंके निवर्त्तकत्वकरके अर्थात् ब्रह्म सबधर्मोंको निवृत्तकरनेवालाहै इसभावसे इसअक्षर अर्त्थात् अविनाशीब्रह्मको ब्राह्मण स्थूलकहते हैं अर्थात् स्थूलत्वधर्म्मसे रहितकहते हैं ऐसेही अणुत्वादिधर्मोंसे भी रहित ब्रह्मकोकहते हैं अर्थात् वहब्रह्म न तो स्थूलहै और न सूक्ष्महै और न ह्रस्वहै और न दीर्घ है और न लोहित है अर्थात् न रक्तवर्णहै इसप्रकार अनेकधर्म्मोंका निषेध श्रुतिमें कियाहै और वीतनामनष्टहुआ है संसारमें राग जिन्होंका ऐसे जे वीतरागसंन्यासी ते सम्यग्दर्शनका प्राप्तिके अनन्तर जिस ब्रह्मतत्त्वमें प्रवेशकरते हैं और जिस अक्षरब्रह्मके जाननेकी इच्छाकरतेहुये ब्रह्मचारीलोग गुरुकुलमें ब्रह्मचर्यव्रत धारणकरके वासकरतेहैं हे अर्जुन तिसअक्षर ब्रह्मरूपपदकोनाम प्राप्तहोनेकेयोग्य तत्त्वको संक्षेपकरके तेरेअर्त्थ मैं कहूंगा यहां योगमार्ग्गकरके प्रणववाच्यब्रह्मोपासनामें श्रुतियोंका प्रमाण दिखाते हैं (सयोहतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत कतमंवावसतेनलोकंजयतीति तस्मैसहोवाचएतद्वैसत्यकामपरञ्चापरञ्चब्रह्मयदोंकारइत्युपक्रम्य यःपुनरेतंत्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेणपरंपुरुषमभिध्यायीत॥ प्रणवोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते अप्रमत्तेनवेद्धव्यंशरवत्तन्मयोभवेदित्यादिनावचनेन अन्यत्रधर्म्मादन्यत्राधर्मादिति चोपक्रम्यसर्वे वेदायत्पदमामनन्ति तपांसिसर्वाणिचयद्वदन्तियदिच्छन्तोब्रह्मचर्यंचरन्तितत्तेपदंसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतदित्यादिभि

श्चवचनैः) अब इनश्रुतियों का अर्थ कहते हैं तहां जो प्रथम अथर्व वेद के प्रश्न उपनिषद में पंचम प्रश्नमें सत्यकाम पिप्पलाद ऋषिसे पूछता है कि हेभगवन् मनुष्यों के मध्यमें जो पुरुष मरणकालपर्यंत ओंकारकाध्यान करता है सो उसध्यान करके कौनलोकको जीतताहै अर्थात् बहुतसे पुण्य लोकहैं तिनमें कौनसे लोकको वह ओंकारकाध्यान करनेवाला पुरुष प्राप्तहोताहै तौ उससत्य कामसे पिप्पलादऋषि कहतेहुये कि हे सत्यकाम एक परब्रह्म जोकि निर्गुणब्रह्महै और एकअपर ब्रह्म जिसको सगुण कहते हैं सो दोनों ब्रह्म ओंकारशब्द करके कहेजातेहैं तहां जितने सबलोक और देवता इनमें किसीपदार्थकी इच्छाकरके ओंकारमें सगुणरूपका ध्यानकरके उपासनाकरै तौ उसलोकको प्राप्तहोताहै और जो तीनोंमात्रा जिसमें ऐसे ओंकारकरके सबसेपरे जो पुरुष परमात्मा तिसकाध्यानकरताहै तौ उसको प्राप्तहोताहै और मुण्डकउपनिषदकीश्रुतिमें ऐसाकहाहै कि ओंकार तौधनुषहै और अपना जीवात्माही बाणहै और परब्रह्म जो है सो लक्ष्यहै अर्थात् निशानाहै सो सावधानहोके अर्थात् एकाग्रचित्तसे ओंकारकी उपासनाकी द्वारा अपने आत्माको परमात्मामेंमिलाकरके अर्थात्एकरूपकेध्यानकरनेसे तन्मयताको प्राप्तहोय॥ और यजुर्वेदके कठउपनिषदकीश्रुतिमें ऐसा कहाहै कि जब नचिकेतानामऋषिके पुत्रने धर्मराजसे प्रश्नकिया कि जो वस्तु धर्म और अधर्मसेपरे है उसवस्तुका उपदेश कृपाकरके मुझकोकरिये तौ धर्मराजने यहकहा कि हे ऋषिपुत्र सबवेद जिसपदको वर्णनकरते हैं और सब तप जिसको प्रतिपादनकरते हैं अर्थात् सब तप जिसकेलिये कियेजाते हैं और जिस ब्रह्मतत्त्वकी इच्छाकरके ब्रह्मचारीलोग बहुतबर्षोंके तपको करते हैं तिसपदको मैं संक्षेपसे तेरेअर्थ कहताहूं सो वह ओम् इसपदकरके कहाजाताहै इनको आदिलेके श्रुतियोंके वचनके प्रमाणकरके और प्रतिमाकेसदृश प्रतीकरूप करके अर्थात् जैसे प्रतिमा विष्णु आदि देवताओं के पूजनका अवलम्बहै कि विनाप्रतिमाके विष्णुआदि देवोंकापूजन नहीं बनसक्ता तैसे ओंकार भी परब्रह्मकेध्यानका एकअवलम्बहै क्योंकि बिना ओंकारके परब्रह्म का भी ध्यानादिक नहीं सम्भवहोताहै इससे ओंकारद्वारा मन्दबुद्धी और मध्यबुद्धियोंको जैसे ध्यानादिकरके बोधहोय इसकेलिये ओंकारकी उपासना वेदोंमेंकही है सो कालान्तरमें मुक्तिरूप फलकी करनेवालीहै वोही उपासना इसगीताशास्त्रमें भी अधिकारकीगई है सो (कविंपुराणंऔर यदक्षरं वेदविदोवदन्ति) इत्यादि श्लोकों करके भगवान्ने स्थापन किया अर्थात् जतायाहुआ जो परब्रह्म तिसका पूर्व्वोक्तरूपकरके अर्थात् जैसे वेदमेंकहाहै तिसीप्रकारकरकेजाननेकाउपाय भूत जो ओंकार तिसकी योगधारणासहित कालान्तर में मुक्तिफल के करनेवाली उपासना कहनीचाहिये अर्थात् जिसकी अन्तःकरणकीशुद्धि शिथिलतासे महावाक्यके उपदेशके अनन्तर आत्म साक्षात्कार नहींहुआ उसको ओंकारकी उपासना करते करते सजा-

तीय चित्त वृत्ति प्रत्यय प्रवाहसे आत्माकारवृत्तिसे आत्मसाक्षात्कार होतेही मुक्तिफल प्राप्तहोताहै इससे कालान्तरकहा तौ यहां उपासनाद्वारा ब्रह्मविद्याहीसे मुक्तिहोती है केवल योगमार्ग्गहीकरके नहीं यह सिद्धान्त भगवान् के कथनसे सिद्धहुआ ॥ ११ ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्नाधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ १२ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

प्रसक्तानुप्रसक्ताञ्च यत् किञ्चिदित्येवमर्थ उत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते सर्वेति सर्वद्वाराणि सर्वाणि च तानि द्वाराणि च सर्वद्वाराणि उपलब्धौ तानि सर्वाणि संयम्य संयमनं कृत्वा मनो हृदि हृदयपुण्डरीके निरुध्य निरोधं कृत्वा निःप्रचारतामापाद्य तत्र वशीकृतेन मनसा हृदयादूर्ध्वगामिन्या नाड्या ऊर्ध्वमारुह्य मूर्द्धमारुह्य मूर्द्धन्याधायात्मनः प्राणस्थितः प्रवृत्तो- योगधारणां धारयितुम् ॥ १२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

तर्हि कथमनन्यचेताः सततमित्यादि वचते तत्राह प्रसक्तेति ओंकारोपासनं प्रसक्तं तदनन्तरं तत्फलमनुप्रसक्तं तद्द्वारा चापुनरावृत्त्यादि वक्तव्यकोटिनिविष्टमित्यर्थः उक्तेऽर्थेसमनन्तरग्रन्थमुत्थापयति इत्येवमर्थ इति श्रोत्रादीनां कुत्रद्वारवत्वं तत्राह उपलब्धाविति तेषां संयमनं विषयेषु प्रवृत्तानां दोषदर्शनद्वारा तेभ्यो वैमुख्यापादनं कोऽयं मनसो हृदये निरोधस्तत्राह निःप्रचारमिति मनसो विषयाकारवृत्तिं निरुध्य हृदि वशीकृतस्य कार्य्यं दर्शयति तत्रेति ऊर्ध्वमित्यत्रापि हृदयादिति सम्बध्यते सर्वाण्युपलब्धिद्वाराणि श्रोत्रादीनि संनिरुध्य वायुमपि सर्वेभ्यो निगृह्य हृदयमानीय ततो निर्गतया सुषुम्नया कंठभ्रूमध्यललाटक्रमेण प्राणं मूर्द्धन्याधाय योगधारणामारूढो ब्रह्म व्याहरन् माञ्च तदर्थमनुस्मरन् परमां गतिं यातीति सम्बन्धः ॥ १२ ॥

स्वामिकृतटीका ।

प्रतिज्ञातमुपायं साङ्गमाह सर्वेति द्वाभ्यां सर्वाणीन्द्रियद्वाराणि संयम्य प्रत्याहृत्य चक्षुरादिभिर्बाह्यविषयग्रहणमकुर्वन्नित्यर्थः मनश्च हृदि निरुध्य बाह्यविषयस्मरणमप्यकुर्वन्नित्यर्थः मूर्ध्नि भ्रुवोर्म्मध्ये प्राणमाधाय योगस्य धारणां स्थैर्य्यमास्थित आश्रितवान् सन् ॥ १२ ॥

नवलभाष्य ।

अब यहां इसप्रकार ॐकारकी उपासना प्रसक्तभई फिर तिसकाफल भी प्रसंगको प्राप्तहुआ तिसकेद्वारा अपुनरावृत्तिरूप फल कहनाचाहिये इसकेलिये भगवान् उत्तरग्रन्थका आरम्भकरते हैं (सर्वेति) हे अर्जुन पवनके निकलनेके जितनेद्वारहैं तिनको योगी रोकके अथवा मनके बाहरजानेके जे श्रोत्रादि इन्द्रियरूपद्वारहैं तिनका संयमकरके अर्थात् विषयोंसे रोककरके और मनको हृदयकमलमें रोककरके अर्थात् कहीं न जानेपावै इस प्रकार स्थिरकरके फिर वह वशकिया जो मन तिसकरके हृदयसे ऊपर च-

लनेवाली जो सुषुम्नानाड़ी तिसकेद्वारा ब्रह्माण्डमें प्राणोंको धारणकरके योग धारणा करनेको योगी प्रवृत्तहोय ॥ १२ ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३॥

शङ्करभाष्यम्।

तत्रैव च धारयन् ओमिति ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ब्रह्मणोऽभिधानभूतमोङ्कारं व्याहरन्नुच्चरं स्तदर्थभूतं मामीश्वरमनुस्मरन्ननुचिन्तयन् यः प्रयाति म्रियते स त्यजन् परित्यजन् देहं शरीरं त्यजन् देहमिति प्रयाणविशेषणार्थं देहत्यागेन प्रयाणमात्मनो न स्वरूपनाशेनेत्यर्थः स एवं त्यज न् प्रयाति गच्छति परमां प्रकृष्टां गतिं ॥ १३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

यथोक्तयोगधारणार्थं प्रवृत्तो मूर्द्धनि प्राणमाधाय धारयन् हि किं कुर्यादित्याशङ्क्यान न्तरश्लोकमवतारयति तत्रैवेति एकञ्च तदक्षरं चेति एकाक्षरमोमित्येवं रूपं तत्कथं ब्रह्मण इति यः प्रयातीति मरणमुक्त्वा त्यजन् देहमिति ब्रुवता पुनरुक्तिराश्रितास्या दित्याशङ्क्य विशेषणार्थं विवृणोति देहेति एवमोंकारमुच्चारयन्नर्थं चाभिध्यायन् ध्याननिष्ठः सपुमानित्यर्थः परमामिति गतिविशेषणं क्रमसुक्तिविवक्षया द्रष्टव्यं ॥ १३ ॥

स्वामिकृतटीका।

ओमिति ओमित्येकं यदक्षरं तदेव ब्रह्मवाचकत्वात् ब्रह्मप्रतिमादिवत् ब्रह्मप्रतीका त्वाद्वा ब्रह्मतद्व्याहरन्नुच्चारयन् तद्वाच्यञ्च मामनुस्मरन्नेव देहं त्यजन् यः प्रकर्षेण याति अर्चिरादिमार्गेण स परमां श्रेष्ठां मद्गतिं प्राप्नोति ॥ १३ ॥

नवलभाष्य।

फिर उससमयमें मनको एकाग्र करताहुआ जोयोगी सो ओम् यहएका- क्षर ब्रह्मके नामको उच्चारणकरता मैं जो ईश्वर तिसको स्मरण करताहुआ देहको त्यागकरताहै सो परमगतिको प्राप्तहोताहै अर्थात् प्रकृष्ट जो गति मोक्षरूपा तिसको प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च अनन्येति अनन्यचेता नान्यविषये चेतोयस्य सोऽयमनन्यचेता योगी सततं सर्वदा यो मां परमेश्वरं स्मरति नित्यशः सततमिति नैरन्तर्यमुच्यते नित्यश इति दीर्घकालमुच्यते न षण्मासं संवत्सरं वा किं तर्हि यावज्जीवं नैरन्तर्येण योमां स्मरतीत्यर्थः तस्य योगिनोऽहं सुखेन लभ्यः पार्थ नित्ययुक्तस्य सदा समाहितस्य योगिनः यत एवमतोऽनन्यचेताः सन् मयि सदा समाहितो भवेत् ॥ १४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

ननु वायुनिरोधविधुराणां उदीरितया रीत्या स्वेच्छाप्रयुक्तोत्क्रोरणासम्भवाद्दुर्लभा परमा गतिरापतेदिति तत्राह किञ्चेति इतश्च भगवदनुस्मरणे प्रयतितव्यमित्यर्थः सततं नित्यश इति विशेषणयोरपुनरुक्तत्वमाह सततमित्यादिना उक्तमेवापौनरुक्तं व्यक्तीकरोति नेत्यादिना जितासुरिच्छया देहं त्यजति तदितरस्तु कर्म्मक्षयेणैवेति विशेषं विवक्षन्नाह यत इति ॥ १४ ॥

स्वामिकृतटीका।

एवञ्चान्तकाले धारणया मत्प्राप्तिर्नित्याभ्यासवशत एव भवति नान्यस्येति पूर्वोक्तमेवानुस्मारयति अनन्येति नास्त्यन्यस्मिन् चेतो यस्य तथाभूतः सन् यो मां सततं निरन्तरं नित्यशः प्रतिदिनं स्मरति तस्य नित्ययुक्तस्य समाहितस्याहं सुखेन लभ्योस्मि नान्यस्येति ॥ १४ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जोपुरुष अनन्यचित्तहोके अर्थात् सबविषयोंसे चित्तकोहटाकेनिरन्तर मेरा स्मरणकरता है अर्थात् जबतकजीवे तबतक निरन्तर मेरा स्मरणकरताहै कुछवर्षछःमहीने घड़ीदोघड़ी स्मरणकरै सो नहीं किन्तु सब कालमें नित्य जो स्मरणकरताहै तिस नित्ययुक्त पुरुषको हे अर्जुन मैं सुलभहौं अर्थात् सुखकरके प्राप्तहोनेको योग्यहौं क्योंकि जब सबकालमें मेरा स्मरणकरेगा तौ अन्तकालमें भी मेराहीस्मरणहोगा तौ उससमय मेरे स्मरणहोनेमें मेरीप्राप्ति भी सुलभही है जिससे ऐसाहै इससे अनन्य चित्तहोके पुरुष परमेश्वरमें समाहित चित्तहोय ॥ १४ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमांगताः ॥ १५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तव सौलभ्येन किं स्यादित्युच्यते शृणु तन्मम सौलभ्येन यद्भवति मामुपेत्येति मामुपेत्य मामीश्वरमुपेत्य मद्भावमापाद्य पुनरुत्पत्तिं न प्राप्नुवन्ति किंविशिष्टं पुनर्जन्म न प्राप्नुवन्ति तद्विशेषणमाह दुःखालयं दुःखानामाध्यात्मिकादीनामालयमाश्रयं आलीयन्ते यस्मिन् दुःखानि तं दुःखालयं जन्म न केवलं दुःखालयमशाश्वतमनवस्थितस्वरूपञ्च नाप्नुवन्तीदृशं पुनर्जन्म महात्मानो यतयः संसिद्धिं मोक्षाख्यां परमां प्रकृष्टां गताः प्राप्ताः ॥ १५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अनन्यचेतसं समाहितचेतसं प्रतीश्वरस्य सौलभ्यमेवमित्युच्यते किं त्वां प्राप्तास्त्वय्येवावतिष्ठन्ते किंवा पुनरावर्त्तन्ते चन्द्रलोकादिवेति सन्देहात् पृच्छति तवेति तत्रोत्तरश्लोकेन निश्चयं दर्शयति उच्यत इति ईश्वरोपगमं न सामीप्यमात्रमिति व्याचष्टे मद्भावमिति पुनर्जन्मनोऽनिष्टत्वं प्रश्नद्वारा स्फुटयति किमित्यादिना महात्मत्वं प्रकृष्टसत्त्ववैशिष्ट्यं यत् यस्तस्मिन्नेवेश्वरे समुत्पन्नसम्यग्दर्शनो भूत्वेति शेषः ॥ १५ ॥

स्वामिकृतटीका।

यद्येवं त्वं सुलभोऽसि ततः किमत आह मामिति उत्तलक्षणमहात्मानो मद्भक्ता मां प्राप्य पुनर्दुःखाश्रयमनित्यञ्च जन्म न प्राप्नुवन्ति यतस्ते परमां सिद्धिं मोक्षमेव प्राप्ताः पुनर्जन्मनो दुःखानाञ्चालयं स्थानं मामुपेत्य न प्राप्नुवन्तीति वा ॥ १५ ॥

नवलभाष्य।

फिर आपकी सुलभतामें क्या होताहै इसआकांक्षामें कहते हैं कि (मामिति) हे अर्ज्जुन मैं जो ईश्वर तिसकोप्राप्तहोके अर्थात् मेरेभावको प्राप्तहोके तौफिर दुःखोंकाआलय मन्दिर अर्त्थात् दुःखही जिसमें वासकरते हैं और अनित्य ऐसा जोजन्म तिसको वे महात्मालोग नहींप्राप्तहोतेहैं जिससे मोक्षरूपा उत्कृष्ट सिद्धिकोप्राप्तहुये हैं इससे ॥ १५ ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

ये पुनर्म्मां न प्राप्नुवन्ति ते पुनरावर्त्तन्ते के पुनस्त्वत्तोऽन्यत् प्राप्ताः पुनरावर्त्तन्त इत्युच्यते आब्रह्मेति आब्रह्मभुवनाद्भवन्ति यस्मिन् भूतानीति भुवनं ब्रह्मभुवनं ब्रह्मलोक इत्यर्थः आब्रह्मभुवनात् सह ब्रह्मभुवनेन लोकाः सर्वे पुनरावर्त्तिनःपुनरावर्त्तनस्वभावाः हे अर्जुन मामेकमुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म पुनरुत्पत्तिर्न विद्यते ॥ १६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

भगवन्तमुपगतानामपुनरावृत्तौ ततो विमुखानामनुपजातसम्यग्धियां पुनरावृत्तिरर्थसिद्धेत्याह ये पुनरिति अपामसोमममृता अभूमेति श्रुतेः स्वर्गादिगतानामपि समानैवानावृत्तिरिति आशंकते के पुनरिति अर्थवादश्रुतौ कर्म्मिणाममृतत्वस्यापेक्षिकत्वविवक्षित्वा परिहरति उच्यत इति एतेन भूरादिलोकचतुष्टयं प्रविष्टानां पुनरावृत्तावपि जनादिलोकत्रयं प्राप्तानामपुनरावृत्तिरिति विभागोक्तिरप्रामाणिकत्वादेव हेयेत्यवधेयं तर्हि तद्वदेवेश्वरं प्राप्तानामपि पुनरावृत्तिः शंकते नेत्याह मामिति यावत् सम्पातश्रुतिवदीश्वरं प्राप्तानां निवृत्ताऽविद्यानां पुनरावृत्तिरप्रमाणिकीत्यर्थः ॥ १६ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं सर्वेष्वपि लोकेषु पुनरावृत्तिं दर्शयन् निर्धारयति आब्रह्मभुवनादिति ब्रह्मणो भुवनं वासस्थानं ब्रह्मलोकस्तमभिव्याप्य सर्वे लोका पुनरावर्त्तनशीलाः ब्रह्मलोकस्यापि विनाशित्वात् तत्प्राप्तानामनुत्पन्नज्ञानानामवश्यं भावि पुनर्जन्म य एवं क्रममुक्तिफलाभिरुपासनाभिर्ब्रह्मलोकं प्राप्तास्तेषामेव तत्रोत्पन्नज्ञानानां ब्रह्मणा सह मोक्षो नान्येषां तथाच ब्रह्मणा सह ते सर्वसम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदं परस्यान्ते ब्रह्मणः परमायुषोऽन्ते कृतात्मानो ब्रह्मभावापादितमनोवृत्तयः कर्म्मद्वारेण येषां न मोक्ष इति परिनिष्ठितिः मामुपेत्य वर्त्तमानानां तु पुनर्जन्म नास्त्येवेति ॥ १६ ॥

नवलभाष्य।

हे अर्जुन जे फिर मुझको नहींप्राप्तहोते हैं ते तौ फिर संसारमें जन्मम-

रयाहीकोप्राप्तहोते हैं कान फिर ऐसे हैं जे तुमसेअन्यको प्राप्तहोके संसारमें फिर लौटआते हैं इसआकांक्षामें कहते हैं आब्रह्मेति हे अर्जुन ब्रह्मलोकपर्यन्त अर्थात् ब्रह्मलोक सहित जितने लोकहैं ते सब पुनरावर्त्ती हैं अर्थात् उनलोकोंको प्राप्तहोके मनुष्य फिर संसारमें लौटआता है और मैं जो एक हौं तिसकोप्राप्तहोके तौ हे अर्ज्जुन फिर जन्मनहींहोताहै अर्थात् मुक्तिही को प्राप्तहोताहै ॥ १६ ॥

सहस्रयुगपर्य्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

ब्रह्मलोकसहिता लोकाः कस्मात् पुनरावर्त्तिनः कालपरिच्छिन्नत्वात् कथं सहस्रेति सहस्र युगपर्य्यंतं सहस्राणि युगानि पर्य्यन्तपर्य्यवसानं यस्याहनस्तदहः सहस्रयुगपर्य्यन्त ब्रह्मणः प्रजापतेः विराजो विदुः रात्रिमपि युगसहस्रामहःपरिमाणामेव के विदुरित्याह तेऽहोरात्रविदः कालसंख्याविदोजना इत्यर्थः ॥ १७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

यस्य स्वाभाविकी वंशप्रयुक्ता च शुद्धिस्तस्यैवोक्तेऽर्थे बुद्धिरुदेतीति मत्वा संबुद्धिद्वयं ब्रह्मलोकसहितानां पुनरावृत्तौ हेतुं प्रश्नद्वारा दर्शयति ब्रह्मेति उक्तमेव हेतुमाकांक्षापूर्वकमुत्तरश्लोकेन साधयति कथमित्यादिना यथोक्ताहोरात्रावयवमासर्त्वयनसंवत्सराव यवं शतसंख्यायुरवच्छिन्नत्वात् प्रजापतेस्तदन्तर्वर्त्तिनामपि लोकानां यथायोग्यकालपरिच्छिन्नत्वेन पुनरावृत्तिरित्यभिप्रेत्य व्याचष्टे सहस्रेत्यादिना ॥ १७ ॥

स्वामिकृतटीका ।

ननु च तपस्विनो दानशीलावीतरागास्तितिक्षवः त्रैलोक्यस्योपरिस्थानं लभन्ते शोक वर्जितं इत्यादिपुराणवाक्यैस्त्रिलोक्याः सकाशान्महर्लोकादीनामुत्कृष्टत्वं गम्यते विनाशित्वं च सर्वेषामविशिष्टं कथमसौ विशेषः स्यादित्याशङ्क्य बहुकल्पकालावस्थायित्व निमित्तोऽसौ विशेष इत्याशयेन स्वमानेन शतवर्षायुषो ब्रह्मणोऽहन्यहनि त्रिलोक्या उत्पत्तिर्निशि निशि च प्रलयो भवतीति दर्शयिष्यन् ब्रह्मणोऽहोरात्रयोः प्रमाणमाह सहस्रेति सहस्रं युगानि पर्यन्तोऽवसानं यस्य तद् ब्रह्मणो यदहस्तद्ये विदुः युगसहस्रमन्तो यस्यास्तां रात्रिञ्च योगबलेन ये विदुस्त एव सर्वज्ञा जना अहोरात्रविदः येषान्ते केवलं चन्द्रादित्यगत्यैव ज्ञानं ते तथाहोरात्रविदो न भवन्ति अल्पदर्शित्वात् युगशब्देनात्र चतुर्युगमभिप्रेतं चतुर्युगसहस्रन्तु ब्रह्मणो दिनमुच्यत इति विष्णुपुराणोक्तेः ब्रह्मण इति च महर्लोकादिवासिनामुपलक्षणार्थं तत्रायं कालगणनाप्रकारः मनुष्याणां यद्वर्षं तद्देवानामहोरात्रं तादृशैरहोरात्रैः पक्षमासादिकल्पनया द्वादशभिर्वर्षसहस्रैश्चतुर्युगं भवति चतुर्युगसहस्रन्तु ब्रह्मणो दिनं तावत्प्रमाणैव रात्रिस्तादृशैश्चाहोरात्रैः पक्षमासादिक्रमेण वर्ष शतं ब्रह्मणः परमायुरिति ॥ १७ ॥

नवलभाष्य ।

ब्रह्मलोकसहित सबलोक काहेसे पुनरावर्तीहैं जिससे कालकीगतिकरके

व्याप्तहैं अर्थात् सबलोक कालकेआधीनहोरहे हैं सो जैसे कालकेआधीन हैं उसप्रकारको दिखातेहुये कहतेहैं कि (सहस्रेति) हे अर्ज्जुन हजारयुग हैं पर्यन्तसमाप्तिजिसकी अर्थात् सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग ऐसीहजारचौकड़ी जिसमें व्यतीतहोयं उसकालको ब्रह्माकाएकदिनकहते हैं और ऐसी ही अर्थात् ब्रह्माके दिनके बराबरही हजारयुगकी ब्रह्माकी रात्रिको कालकी गतिके जाननेवाले मनुष्य जानतेहैं ॥ १७ ॥

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

यत एवं कालपरिच्छिन्नास्तेऽतः पुनरावर्तिनो लोकाः प्रजापतेरहनि यद्भवति रात्रौ च तदुच्यते अव्यक्तेति अव्यक्तादव्यक्तं प्रजापतेः स्वापावस्था तस्मादव्यक्तात् व्यक्तयो व्यज्यन्त इति व्यक्तयः स्थावरजङ्गमलक्षणाः सर्वाः प्रजाः प्रभवन्त्यभिव्यज्यन्ते अह्न आगमोऽहरागम स्तस्मिन्नहरागमे कालेब्रह्मणः प्रबोधकाले तथा रात्र्यागमे ब्रह्मणः स्वापकाले प्रलीयन्ते सर्वा व्यक्तयस्तत्रैव पूर्व्वोक्तेऽव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अक्षरार्थमुक्त्वा तात्पर्य्यार्थमाह यत इति यत् प्रजापतेरहस्तद् युगसहस्रपरिमितं या च तस्य रात्रिः सापि तथेति कालविदामभिप्रायमनुश्रित्य ब्राह्मस्याहोरात्रस्य कालपरिमाणं दर्शयित्वा तत्रैव विभज्य कार्य्यं कथयति प्रजापतेरिति अव्यक्तमव्याकृतमितिशङ्कां वारयति अव्यक्तमित्यादिना जातिप्रतियोगिभूता व्यक्तीर्व्यावर्त्तयति स्थावरेति असदुत्पत्तिप्रसक्तिं प्रत्यादिशति अभिव्यज्यन्त इति पूर्वोक्तमव्यक्तसंज्ञकं स्वापावस्थं ब्रह्म प्रजापतिशब्दितं तस्मिन्निति यावत् ॥ १८ ॥

स्वामिकृतटीका।

ततः किमत आह अव्यक्तादित्यादिकार्यस्याव्यक्तरूपं कारणात्मकं तस्मादव्यक्तात् कारणरूपात् व्यज्यन्त इति व्यक्तयश्चराचराणि भूतानि प्रादुर्भवन्ति कदा अहरागमे ब्रह्मणो दिवसस्योपक्रमे तथा रात्रेरागमे ब्रह्मशयने तस्मिन्नेवाव्यक्तसंज्ञके कारणरूपे प्रलयं यान्ति यद्वा तेऽहोरात्रविद इत्येतन्न विधीयते किन्तु ते प्रसिद्धा अहोरात्रविदो जना ब्रह्मणो यदहर्विदुस्तस्याह्न आगमेऽव्यक्ताद्व्यक्तयः प्रभवन्ति याञ्च रात्रिं विदुस्तस्या रात्रेरागमे प्रलीयन्त इति द्वयोरन्वयः ॥ १८ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जिससे इसप्रकारकरके कालकीगतिकरके सबलोकव्याप्त हैं इससे सबलोक पुनरावर्ती हैं अर्थात् आते भी फिर जाते भी हैं अब ब्रह्माकेदिनमें जो होताहै और रात्रिमें जो होताहै तिसकोकहते हैं कि (अव्यक्तेति) हे अर्जुन ब्रह्माकेदिनकेप्रारम्भमें अर्थात् जिससमयमें ब्रह्माजगते हैं उससमय में अव्यक्त जो ब्रह्माकी स्वापावस्था अर्थात् निद्रावस्था तिससे सब व्यक्तियां जे स्थावरजंगमप्रजाते सबउत्पन्नहोती हैं और जब ब्रह्माकी

रात्रिका आगमहोताहै अर्थात् प्रारम्भहोताहै तौ उसीब्रह्मकी निद्रावस्थामें सब प्रजा लीन होजाती हैं ॥ १८ ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

शंकरभाष्यम्।

अकृताभ्यामकृतविप्रणाशदोषपरिहारार्थं ब्रह्ममोक्षशास्त्रप्रवृत्तिसाफल्यप्रदर्शनार्थं अविद्यादिक्लेशमूलकर्माशयवशाच्चावशीभूतग्रामो भूत्वा प्रलीयतइत्यर्थः संसारे वैराग्यप्रदर्शनार्थञ्चेदमाह भूतग्राम इति भूतग्रामो भूतसमुदायः स्थावरजङ्गमलक्षणो यः पूर्व्वस्मिन् कल्पे आसीत् स एवायं नान्यो भूत्वा पुनः अहरागमे प्रलीयते पुनः पुनः रात्र्यागमेऽहः क्षयेऽवशोऽस्वतन्त्र एव पार्थ प्रभवति जायते स एव अहरागमे ॥ १९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ननु प्रबोधकाले ब्रह्मणो यो भूतग्रामो भूत्वा तस्यैव स्वापकाले विलीयते तस्मादन्यो भूयोभूयो ब्रह्मणोऽहरागमे भूत्वा पुनररात्रागमे परवशो विनश्यति तदेवं प्रत्यवान्तर कल्पं भूतग्रामविभागो भवेदित्याशङ्क्यानन्तरश्लोकतात्पर्यमाह अकृतेति प्रतिकल्पं प्राणिनिकायस्य भिन्नत्वे सति अकृताभ्यागमादिदोषप्रसंगात् तत्परिहारार्थं भूतग्रामस्य प्रतिकल्पमैक्यमास्थेयमित्यर्थः यदि स्थावरजंगमलक्षणप्राणिनिकायस्य प्रतिकल्पमन्यथात्वं तदेकस्य बन्धमोक्षान्वयिनो भावात् काण्डद्वयात्मनो बन्धमोक्षार्थस्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिरफला प्रसज्येत् अतस्तत्साफल्यार्थमपि प्रतिकल्पं प्राणिवर्गस्य नवीनत्वानुपपत्तिरित्याह बन्धेति कथं पुनर्भूतसमुदायोऽस्वतन्त्रः सन्नवशीभूत्वा प्रविलीयते तत्राह अविद्यादीति आदिशब्देनास्तिकतारागद्वेषाभिनिवेशा गृह्यन्ते यथोक्तं क्लेशपञ्चकं मूलम्प्रतिलभ्य कल्पं प्रतिलभ्य धर्म्माधर्म्मात्मकंकर्म्मराशिरुद्भवति तद्वशादेवास्वतन्त्रोभूतसमुदायो जन्मविनाशावनुभवतीत्यर्थः प्राणिनिकायस्य जन्मनाशाभ्यासोक्तेरर्थसिद्धमर्थमाह इत्यत इति संसारे विपरिवर्त्तमानानां प्राणिनामस्वातन्त्र्यादवशानामेव जन्ममरणप्रबन्धसम्बाधत् अलमनेन संसारेणेति वैतृष्ण्यं तस्मिन् प्रदर्शनीयं तदर्थञ्चेदम्भूतानामहोरात्रमावृत्तिवचनमित्यर्थः समनन्तरवाक्यमिदमापरामृश्यते रात्र्यागमे लयमनुभवतोऽहरागमेच प्रभवं प्रतिपद्यमानस्य प्राणिवर्गस्य तुल्यं पारवश्यमित्याशयवानाह अवशइति ॥ १९ ॥

स्वामिकृतटीका।

तत्र च कृतनाशाकृताभ्यागमशङ्कां वारयन् वैराग्यार्थं सृष्टिप्रलयप्रवाहस्य विच्छेदं दर्शयति भूतग्राम इति भूतानां चराचरप्राणिनां ग्रामः समूहो यः प्रागासीत् स एवायमहरागमे भूत्वा भूत्वा रात्र्यागमे प्रलीयते प्रलीय पुनरप्यहरागमेऽवशः कर्म्मादिपरतन्त्रः सन् प्रभवति नान्य इत्यर्थः ॥ १९ ॥

नवलभाष्य।

अब नहीं करेहुयेकी जिससेप्राप्ति न होय और करेहुयेकानाश न होय इसदोषके दूरकरनेकेलिये बन्धमोक्षशास्त्रकी प्रवृत्तिकासाफल्य दिखानेके लिये अविद्यादिक्लेशोंका मूलकारणभूत जो कर्म्माशय अर्थात् कर्म्मवासना तिसकेवशसे पराधीन जो प्राणियोंकासमूह सो बारम्बारउत्पन्नहोके लीन

हुआकरताहै यहीसिद्धान्तहै तिसीको संसारमें वैराग्यके अर्थ भगवान्कहते हैं (भूतग्रामइति) हे अर्जुन कर्म्मोंकेआधीन जो यह प्राणियोंका समूह सो उत्पन्नहोके लीनहोताहै अर्थात् जो पूर्व्वकल्पमें प्राणियोंकासमूहरहा सोई इसकल्पमें पहिलेकर्म्मोंकेआधीन सबस्थावरजङ्गम प्राणियोंकासमूह ब्रह्माके दिनमें उत्पन्नहोके फिर रात्रिके आगम में लीन होताहै और जब फिर ब्रह्माके दिवसका प्रारम्भ होताहै तौ अवश अस्वतन्त्र हुआ उत्पन्न होताहै ॥ १९ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्यो व्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यदुपन्यस्तमक्षरं तस्य प्राप्त्युपायो निर्दिष्ट ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेत्यादि अथेदानीमक्षरस्यैव स्वरूपनिर्दिदिक्षयेदमुच्यते पर इति अनेन योगमार्गेणेदं गन्तव्यमिति परस्तस्मादिति परो व्यतिरिक्तो भिन्नः कुतस्तस्मात् पूर्व्वोक्तादव्यक्तात् तुशब्दोऽव्यक्ताक्षरस्य विवक्षितस्य व्यक्ताद्वैलक्षण्यविशेषणार्थः भावोऽक्षराख्यं परं ब्रह्म व्यतिरिक्तत्वे सत्यपि सालक्षण्यप्रसङ्गोऽस्तीति तद्विनिवृत्त्यर्थमाह अन्य इति अन्यो विलक्षणः सचाव्यक्तोऽनिन्द्रियगोचरः परस्तस्मादित्युक्तः कस्मात् पुनः परः पूर्व्वोक्ताद्भूतग्रामबीजभूतादविद्यालक्षणादव्यक्तादन्यो विलक्षणो भाव इत्यभिप्रायः सनातनश्चिरन्तनो यः स भावः सर्व्वेषु भूतेषु ब्रह्मादिषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

अक्षरं ब्रह्म परममित्युपक्रम्य तदनुपयुक्तं किमिदमन्यदुक्तमित्याशङ्क्य वृत्तमनूद्यानन्तरग्रन्थसङ्गतिमाह यदुपन्यस्तमिति अक्षरस्वरूपे निर्दिदिक्षिते तस्मिन् पूर्वोक्तयोगमार्गस्य कथमुपयोगः स्यादित्याशङ्क्य तत्प्राप्त्युपायत्वेनेत्याह अनेनेति गन्तव्यमिति योगमार्गोक्तिरुपयुक्तेति शेषः पूर्वोक्तादव्यक्तादिति सम्बन्धः परशब्दस्य व्यतिरिक्तविषयत्वे तु शब्देन वैलक्षण्यमुक्त्वा पुनरन्यशब्दप्रयोगात् पौनरुक्त्यमित्याशङ्क्याह व्यतिरिक्तत्व इति तु नाद्योतितं वैलक्षण्यमन्यशब्देन प्रकटितं यतो भिन्नेष्वपि भावभेदेषु सालक्षण्यमालक्ष्यते ततश्चाव्यक्ताद्भिन्नत्वेऽपि ब्रह्मणस्तेन सादृश्यमाशङ्क्ते तन्निवृत्त्यर्थमन्यपदमित्यर्थः यद्वा परशब्दस्य प्रकृष्टवाचिनो भावविशेषणार्थत्वे पुनरुक्तिशङ्कैव नास्तीति द्रष्टव्यः अनादिभावस्याक्षरस्याविनाशित्वमर्थसिद्धं समर्थयते यः स भाव इति सर्वं हि विनश्यद्विकारजातं पुरुषान्तं विनश्यति स तु विनाशहेत्वभावान्न विनष्टुमर्हतीत्यर्थः ॥२०॥

स्वामिकृतटीका ।

लोकानां अनित्यत्वं प्रपंचय परमेश्वरस्वरूपस्य नित्यत्वं प्रपञ्चयति पर इति द्वाभ्यां तस्माच्चराचरकारणभूतादव्यक्तात् परस्तस्यापि कारणभूतोयोऽन्यस्तद्विलक्षणोऽव्यक्तश्चक्षुराद्यगोचरो भावः सनातनोऽनादिः स तु सर्वेषु कार्यकारणलक्षणेषु भूतेषु नश्यत्स्वपि न विनश्यति ॥ २० ॥

नवलभाष्य।

जिस अक्षरका प्रकरण पहिले चलायाथा और जिसकी प्राप्तिकाउपाय ओमित्येकाक्षरं यहकहाथा अब इससमयमें उसीअक्षर ब्रह्मकेदिखानेकेलिये

यहकहाजाताहै कि (परइति) हे अर्जुन तिसपूर्व्वोक्त अव्यक्तसंज्ञक प्रकृति से परे अन्य उससेविलक्षण अर्थात् और तरहका क्योंकि प्रकृति तो जड़ है और यहचेतनहै इससे विलक्षण औरही अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियादिकों के अगोचरनाम नहीं प्रत्यक्षहोनेवाला और तुशब्दसेमायाकार्य्य जो प्रपञ्च तिससे न्यारा और सनातन अर्थात् सबकालमें रहनेवाला ऐसापरमात्मा अक्षर ब्रह्मरूपभावहै जो ब्रह्मादि तृणपर्यन्त प्राणियोंकेनाशमें भी नाशको कभी प्राप्त नहीं होताहै अर्थात् सदा एकरसहीरहताहै ॥ २० ॥

अव्यक्तोऽक्षरइत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्त्तन्ते तद्धाम परम मम ॥ २१ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

अव्यक्त इति योऽसावव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमेवाक्षरसंज्ञकमव्यक्तं भावं आहुः परमां प्रकृष्टां गतिं यं भावं प्राप्य गत्वा न निवर्त्तन्ते संसाराय तद्धामस्थानं परमं प्रकृष्टं मम विष्णोः परमं पदमित्यर्थः ॥ २१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

यथोक्तेऽव्यक्ते भावे श्रुतिसम्मतिमाह अव्यक्त इति तस्य परमगतित्वं साधयति यः प्राप्येति योऽसावव्यक्तो भावोऽत्र दर्शितः स येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यमित्यादिश्रुतावक्षर इत्यक्षरं भावं परमां गतिं पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिरित्याद्याः श्रुतयो वदन्तीत्याह योऽसाविति परमपुरुषस्य परमगतित्वमुक्तं व्यनक्ति यं भावमिति तद्विष्णोः परमं पदमिति श्रुतिमत्र संवादयति तद्धामेति ॥ २१ ॥

स्वामिकृतटीका ।

अविनाशे प्रमाणं दर्शयन्नाह अव्यक्त इति यो भावोऽव्यक्तोऽतीन्द्रियः अक्षरः प्रवेशनाशशून्य इति तथा अक्षरात् सम्भवतीह विश्वमित्यादि श्रुतिष्वक्षर इत्युक्तः परमां गतिं गम्यं पुरुषार्थमाहुः पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिरित्यादिश्रुतयः परमगतित्वमेवाह यं प्राप्य न पुनर्निवर्त्तन्त इति तच्च ममैव धाम स्वरूपं ममेत्युपचारे षष्ठी राहोः शिर इतिवत् अतोऽहमेव परमागतिरित्यर्थः ॥ २१ ॥

नवलभाष्य ।

और जो अव्यक्त अक्षरनामकर के कहाहै नाम अविनाशी भाव कहाहै उसीको परमगति कहतेहैं अर्थात् हे अर्ज्जुन उसको ऋषिलोग उत्कृष्टगति कहतेहैं और फिर जिस ब्रह्मभावकोप्राप्तहोके जन्म मरणरूप संसारकोप्राप्त नहींहोतेहैं सो मैं जो विष्णुहौं तिसका परम उत्कृष्टधामहै अर्थात् निवास स्थानहै ॥ २१ ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तल्लब्धेरुपाय उच्यते पुरुष इति पुरुषः पुरि शयनात् पूर्णत्वाद्वा सपरः पार्थ परो निरतिशयो यस्मात् पुरुषान्न परं किञ्चित् स भक्त्या लभ्यस्तु ज्ञानलक्षणयाऽनन्यया आत्मविषयया यस्य पुरुषस्यान्तःस्थानि मध्यस्थानि कार्य्यभूतानि कार्य्यं हि कारणस्यान्तर्वर्त्ति भवति येन पुरुषेण सर्वमिदं जगत्तत व्याप्तं आकाशेनेव घटादि ॥ २२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ननु व्यक्तादतिरिक्तस्य तद्विलक्षणस्य परमपुरुषस्य प्राप्तौ कश्चिदसाधारणो हेतुरेषितव्यो यस्मिन् प्रेक्षापूर्वकारी यत्प्रेक्षया प्रवृत्तो निर्वृणोति तत्राह तल्लब्धेरिति परस्य पुरुषस्य सर्वकारणत्वं सर्वव्यापकत्वंच विशेषणद्वयमुदाहरति यस्येति निरतिशयत्वं विशदयति यस्मादिति तुशब्दोऽवधारणार्थः भक्तिर्भजनं सेवा प्रदक्षिण प्रणामादि लक्षणान्तां व्यावर्तयति ज्ञानेति उक्ताया भक्तेर्विषयतो वैशिष्ट्यमाह अनन्ययेति कोऽसौपुरुषो यद्विषया भक्तिस्तत्प्राप्तौ पर्याप्तेत्याशङ्क्योत्तरार्द्धं व्याचष्टे यस्येति कथं भूतानां तदवस्थत्वं तत्राह कार्यं हीति स पर्यगादिति श्रुतिमाश्रित्याह येनेति ॥ २२ ॥

स्वामिकृतटीका।

तत्प्राप्तौ च भक्तिरन्तरंगोपाय इत्युक्तमेवेत्याह पुरुष इति स चाह परः पुरुषोनन्यया न विद्यतेन्यः शरणत्वेन यस्यास्तया एकान्तरभक्त्यैव लभ्यो नान्यथा परत्वमेवाह यस्य कारणभूतस्यान्तरमध्ये भूतानि येन च कारणभूतेनेदं सर्वं जगततं व्याप्तम् ॥ २२ ॥

नवलभाष्य।

अब उसकी प्राप्तिका उपाय कहते हैं कि (पुरुषइति) हेपार्थ हे अर्जुन देहरूपपुर में शयनकरने से अथवा सर्वत्र परिपूर्ण होने से पुरुषरूप और सबसे उत्कृष्ट होने से पर अर्थात् निरतिशय जिससे अधिक कोईनहोय उसको निरतिशय कहते हैं क्योंकि श्रुतिमें ऐसा कहाहै कि पुरुषसेपर कोई नहीं है ऐसा जो वह पर पुरुष परमात्मा सो हे अर्जुन अनन्य भक्तिकरिके अर्थात् भेदभाव रहित ज्ञानलक्षणा जो भक्तिहै तिसीकरके प्राप्त होनेके योग्यहै कैसा वहहै जिसके अन्तर्गत सब ब्रह्मादि स्थावरान्त भूत हैं क्योंकि कारण के अन्तर्गत कार्यकीसत्ता रहाही करती है और जिस पुरुषरूप करके सबजगत् व्याप्तहोरहा है जैसे आकाश करके घटआदि पदार्थ व्याप्त हैं तैसे परमात्मा करके आकाशादिभी व्याप्त हैं ॥ २२ ॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिञ्चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥ २३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

प्रकृतानां प्रणवावेशितब्रह्मबुद्धीनां कालान्तरमुक्तिभाजां तत् ब्रह्मप्रतिपत्तये उत्तरो मार्गो वक्तव्य इति यत्र काल इत्यादि विवक्षितार्थसमर्पणार्थमुच्यते आवृत्तिमार्गोपन्यास इतरमार्गस्तुत्यर्थः तत्रेति यत्र काले प्रयाता इति व्यवहितेन सम्बन्धः यत्र यस्मिन् काले त्वनावृत्तिमप

नर्जन्म आवृत्तिं तद्विपरीतांश्चैव योगिन इति कर्मिणश्चोच्यन्ते कर्म्मिणस्तु गुणतः कर्म्मयोगेन योगिनामिति विशेषणात् तत्र विभज्यन्ते योगिनः यत्र काले प्रयाता मृता योगिनोऽनावृत्तिं यान्ति यत्र काले च प्रयाता मृता आवृत्तिं यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ननु ज्ञानायत्ता परमपुरुषप्राप्तिरुक्ता नच ज्ञानं मार्गमपेक्ष्य फलाय कल्पते विदुषो गत्युत्क्रान्तिनिषेधश्रुतेः तथाच मार्गोक्तिरयुक्तेत्याशंक्य सगुणशरणानां तदुपदेशोऽन्यथा नित्यभिप्रेत्याह प्रकृतानामिति वक्तव्य इति यत्र काल इत्याद्युच्यते इति सम्बन्धः स चेद्वक्तव्यस्तर्हि किमित्यध्यात्मादिभावेन सविशेषं ब्रह्मध्यायतां फलाप्रये मूर्द्धन्यनाडी सम्बन्धे देवयाने पथ्युपास्यत्वाय वक्तव्यं कालो निर्दिश्यते तत्राह विवक्षितोत सोऽन्यो मार्गस्तदुक्तिशेषत्वेन कालोक्तिरित्यर्थः पितृयानमार्गोपन्यासस्तर्हि किमिति क्रियते तत्राह आवृत्तिमिति मार्गान्तरस्यावृत्तिफलत्वादस्य चानावृत्तिफलत्वात् तदपेक्षया महीयान मिति स्तुतिर्विवक्षितेति भावः योगिन इति ध्यायिनां कर्म्मिणाञ्च तन्त्रेणाभिधानमि त्याह योगिन इति कथं कर्मिषु योगिशब्दो वर्त्ततामित्याशंक्यानुष्ठान गुणयोगादित्याह कर्मिणस्त्विति गुणतो योगिन इति सम्बन्धः तत्रैव वाक्योपक्रमस्यानुकूल्यमाह कर्म्म योगेनेति अवशिष्टान्यक्षराणि व्याचक्षाणो वाक्यार्थमाह यत्रेति योगिनोऽत्र विवक्षिताः ये आवृतावधिकृता योगिनः कर्मिण इति विभागः कालप्राधान्येन मार्गद्वयोपन्यासमुप क्रम्य तमेव प्रधानीकृत्य देवयानं पन्थानमवतारयति तं कालमिति ॥ २३ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं परमेश्वरोपासकास्तत्पदं प्राप्य न निवर्त्तन्ते अन्ये त्वावर्त्तन्तइत्युक्तं तत्र केन मार्गेण गता नावर्त्तन्ते केन वा वर्त्तन्त इत्यपेक्षायामाह यत्रेति यत्र यस्मिन् काले प्रया ता योगिनोऽनावृत्तिं यान्ति यस्मिंश्च काले प्रयाता आवृत्तिं यान्ति तं कालं वक्ष्यामीत्य न्वयः अत्र च रश्म्यानुसारी अतश्चायनेऽपि दक्षिण इति सूचितन्यायेनोत्तरायणादिकाल विशेषमरणस्य त्वविवक्षितत्वात् कालशब्देन कालाभिमानिनीभिरातिवाहिकीभिर्देवता भिः प्राप्योमार्ग उपलक्ष्यते अतोऽयमर्थः यस्मिन् कालाभिमानिदेवतोपलक्षिते मार्गे प्र याता योगिन उपासकाः कर्मिणश्च यथाक्रमनावृत्तिभावत्वञ्च यान्ति तं कालाभिमा निदेवतोपलक्षितं मार्गं कथयिष्यामीति अग्निर्ज्योतिषोः कालाभिमानत्वाभावेऽपि भूय सामहरादिशब्दोक्तानां कालाभिमानिनां साहचर्य्यादाम्रवनमित्यादिवत् कालशब्देनोप लक्षणमविरुद्धं ॥ २३ ॥

नवलभाष्य।

अब प्रकरण में कहेहुये जे ॐकार की उपासना करनेवाले कालान्तरमें मुक्तिको प्राप्तहोनेवाले योगी तिनको उस ब्रह्मकी प्राप्तिकेलिये उत्तरमार्ग कहना चाहिये इससे अगाड़ीका श्लोक भगवान् कहते हैं न कहो फिर यत्र काले इसश्लोकमेंतो कालशब्दका उच्चारण किया है फिर मार्गका कथनकैसे सम्भव होताहै तिसपै कहते हैं कि यहां कालशब्द से लक्षणा करके मार्गही भगवान् को कहना अभीष्ट है जो और कर्मियों के दक्षिण मार्गका निरूपण इसप्रकरण में किया सो उत्तरमार्गकी स्तुतिके अर्थ है (यत्रेति) हे अर्जुन

जिसकाल में प्रयात नाम मृत्युकोप्राप्त योगीजन अनावृत्ति अर्थात् फिर जन्मको प्राप्तनहीं होते हैं और जिसकाल में मृत्युको प्राप्त कर्म योगी आवृत्ति जो संसारमें जन्म तिसको प्राप्तहोते हैं तिसकाल को मैं तेरेअर्थ कहताहूं अर्थात् जिस कालाभिमानि देवताकरके उपलक्षित मार्ग में गयेहुये योगीजन क्रमुमुक्तिको प्राप्तहोतेहैं और जिसकाल के अभिमानी देवतायुक्त मार्ग में गयेहुये कर्मीलोग स्वर्गको भोगके फिर संसार को प्राप्तहोते हैं तिस तिस कालाभिमानी देवताओं को मैं तुझसे कहता हूं॥ २३॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥ २४॥

शङ्करभाष्यम्।

तं कालमाह अग्निर्ज्योतिरिति अग्निः कालाभिमानिनी देवता तथा ज्योतिर्देवतैव कालाभिमानिनी अथवा अग्निर्ज्योतिषी यथाश्रुते एव देवते भूयसान्तु निर्देशो यत्र कालो तं कालमिति आम्र वनवत् तथाऽहर्देवताहरभिमानिनी शुक्लपक्षदेवता तथा षण्मासा उत्तरायणं तत्रापि देवतैव मार्गभूतेति स्थितोऽन्यत्र न्यायस्तस्मिन् मार्गे प्रयाता मृता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो ब्रह्मोपासकाः ब्रह्मोपासनपरा जनाः क्रमेणेति वाक्यशेषो नहि सद्योमुक्तिभाजां सम्यग्दर्शननिष्ठानां गतिर्वा क्वचिदस्ति न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तीति श्रुतेः ब्रह्मसंलीनप्राणा एव ते ब्रह्ममया ब्रह्मभूता एव ते॥ २४॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यथोपक्रमं व्याख्याय यथाश्रुतं व्याख्याति अथवेति कथं तर्हि देवतानामभिनेत्रीणां ग्रहणे कालप्राधान्येन निर्देशोऽभिलष्यते तत्राह भूयसांत्विति मार्गद्वयेपि कालाद्यभिमानिन्यो देवताः कालशब्देनोच्यन्ते कालाभिमानिनीनां भूयस्त्वात् कालशब्देन सर्वासां देवतानामुपलक्षणत्वं विवक्षित्वा कालकथनमित्यर्थः यथाम्राणां भूयस्त्वाद्विद्यमानेष्वपि द्रुमान्तरेषु आम्रैरेव वनं निर्दिश्यते तद्वदित्युदाहरणमाह आम्रेति ननु भोगचिह्नानां भोगभूमीनां वा तत्तच्छब्दैरुपादानसम्भवे किमिति देवताग्रहणमित्याशंक्याति वाहिकास्तल्लिंगादिति न्यायेनोत्तरमाह इति स्थित इतितेषां अग्न्यादीनां समीपमितिसामीप्ये तत्रेति सप्तमी ब्रह्मकार्य्योपाधिकं परं वा ब्रह्मपरम्परया मुक्त्यालम्बनमत एव क्रमेणेत्युक्तानिर्गुणमप्रपञ्चं ब्रह्मास्मीति विद्यावतो व्यवच्छिनत्ति ब्रह्मोपासनेति ननु ब्रह्मशब्दस्य मुख्यार्थत्वात्थं परब्रह्मविदामेवेयं गतिरुच्यते नवादर्य्यधिकरणविरोधादित्याह न हीति॥ २४॥

स्वामिकृतटीका।

तत्रानावृत्तिमार्गमाह अग्निरिति अग्निर्ज्योतिःशब्दाभ्यां तेऽर्चिषमभिसम्भवन्तीति श्रुत्युक्तार्चिरभिमानिनी देवतोपलक्ष्यते अहरिति दिवसाभिमानिनी शुक्ल इति शुक्लपक्षाभिमानिनी उत्तरायणरूपाः षण्मासा इत्युत्तरायणाभिमानिनी एतच्चान्यासामपि श्रुत्युक्तानां संवत्सरदेवलोकादिदेवतानामुपलक्षणार्थं एवम्भूतो यो मार्गस्तत्र प्रयाता गता भगवदुपासकाजना ब्रह्म प्राप्नुवन्ति यतस्ते ब्रह्मविदः तथाच श्रुतिः तेऽर्चिषमभिसम्भवन्ति अर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षण्मासानुदङ्ङादित्य एति मासेभ्यो देवलोक मिति॥ २४॥

नवलभाष्य ।

अब उन्हीं देवताओंको कहते हैं (अग्निरिति) अग्नि और ज्योति शब्द करकेभी यहां कालाभिमानी देबताही का ग्रहण है अथवा अग्नि ज्योति शब्दोंकरके प्रसिद्ध जो अग्नि सूर्य्यादि देवता तिन्हीं का ग्रहण है बहुतसे कालवाचक देवताओं के संग इनको कहाहै इससे इन दोनोंकाभी कालशब्दसे भगवान्ने ग्रहणकिया जैसे लोकमें कहते हैं कि यह आम्रका बनहैतौ उसबन में केवल आम्रही के वृक्ष नहींहोते हैं किन्तु और वृक्षभी होते हैं परन्तु आम्रों के वृक्ष बहुतहोते हैं इससे आम्रवन ऐसा व्यवहार होता है तैसे यहांभी कालशब्दही करके सबके ग्रहणमें दोषनहीं है और अहः शब्द से दिनका अभिमानी जो देवता अर्थात् दिनका स्वामी अपना को मानरहाहै ऐसा जो देवता तिसका ग्रहण है ऐसेही इस प्रकरणमें यहां अभिमानीपद लिखाजायगा वहां स्वामी ऐसा अर्थ जानना और शुक्ल शब्दकरके शुक्लपक्षाभिमानी देवता ग्रहण कियाजाता है ऐसेही षण्मास उत्तरायण कालाभिमानी देवताका ग्रहण जानना तो हे अर्जुन प्रणोंको त्यागकरकेइनदेवताओं के मार्गकरके गयेजे ब्रह्मोपासक योगीजन ते क्रम*करके ब्रह्मको प्राप्तहोते हैं अर्थात् मुक्तिको प्राप्तहोते हैं और शीघ्र उसीसमय में मुक्तिकी प्राप्तितौ सम्यग्दर्शन ज्ञानमें स्थित जेज्ञानी तिन्हींकी कही क्योंकि ज्ञानीके प्राण निकलके कहीं बाहरलोक में नहीं जाते हैं किन्तु ब्रह्महीमें लीनहोते हैं ऐसा *श्रुतिमें कहाहै तिससे वेज्ञानी ब्रह्ममय ब्रह्मभूतही हैं ॥ २४ ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्ण षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्त्यते ॥ २५ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

धूम इति धूमो रात्रिः धूमाभिमानिनी रात्र्यभिमानिनी च देवता तथा कृष्णः कृष्णपक्ष देवता षण्मासा दक्षिणायनमिति च पूर्व्ववद्देवतैव तत्र चन्द्रमसि भवं चान्द्रमसं ज्योतिरूत्फलं इष्टादिकारी योगी कर्मी प्राप्य भुक्त्वा तत्क्षयादिह निवर्त्तते पुनः ॥ २५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

प्रकृतं देवयानं प्रस्थानं स्तोतुं पितृयानमुपन्यस्यति धूम इति तत्रापि मार्गचिह्नानि भोगभूमीश्च व्यवच्छिद्य आतिवाहिकदेवताविषयत्वं धूमादिपदानां विभजते धूमेत्या

---

*अर्थात् ओंकारमें ब्रह्मकाध्यान करनेवाला और अन्त्यसमयमें सुषुम्नानाड़ीके द्वारा ब्रह्मरन्ध्रको भेदनकर जिसने योगबल करके प्राणोंको निकाला है ऐसेयोगीको प्रथम अग्निदेवता अपने लोकको लेजाता है फिर वहां सज्योतिका अभिमानी देवता अपने लोकमें प्राप्तकरता है फिर दिनका देवता लेजाता है फिर शुक्लपक्ष का देवता फिर षण्मास उत्तरायण काल का देवता ब्रह्मलोक में योगीको प्राप्तकरता है फिर वहांकासुख भोग अपनी इच्छापर्वक मुक्तिको प्राप्तहोता है इसप्रकार क्रममुक्ति वेद में कहीहै १४ ॥

*नतस्य प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समवलीयन्ते इति श्रुतेः ॥ १८ ॥

दिना तत्रेति सप्तमी पूर्ववदेव सामीप्यार्था इष्टादीत्यादिशब्देन पूर्त्तदत्ते गृह्येते कृतात्यये ऽनुशयवानिति न्यायं सूचयति तत्क्षयादिति आरोहावरोहयोरभ्यासवाचिना पुनः शब्देन संसारस्यानादित्वं सूच्यते ॥ २५ ॥

स्वामिकृतटीका।

आवृत्तिमार्गमाह धूम इति धूमाभिमानिनी देवता रात्र्यादिशब्दैश्च पूर्ववदेव रात्रिकृष्णपक्षदक्षिणायनरूपषण्मासाभिमानिन्यस्तिस्रो देवता उपलक्ष्यन्ते एताभिरुपलक्षितो यो मार्गस्तत्र प्रयातः कर्मयोगी चान्द्रमसं ज्योतिस्तदुपलक्षितं स्वर्गलोकं प्राप्य तत्रेष्टापूर्तं कर्मफलं भुक्त्वा पुनरावर्त्तते तत्रापि श्रुतिः ते धूममभिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमपक्षीयमाणपक्षद्यान् षण्मासान् दक्षिणादित्य एति मासेभ्यः पितृलोकात् चन्द्रं ते प्राप्यान्नं भवन्तीत्यादि तदेवं निवृत्तिकर्मसहितोपासनया क्रममुक्तिः काम्यकर्मभिश्च स्वर्गभोगानन्तरमावृत्तिः निषिद्धकर्मभिस्तु नरकभोगानन्तरमावृत्तिः क्षुद्रकर्मणान्तु जन्तूनां अत्रैव पुनः पुनर्जन्मेति द्रष्टव्यं ॥ २५ ॥

नवलभाष्य।

धूमइति हे अर्जुन धूमशब्दकरके धूमाभिमानिनी देवता और रात्रिका अभिमानीदेवता और कृष्णपक्षका देवता और षण्मास दक्षिणायनाभिमानीदेवता इनदेवताओंके मार्गकरके कर्मयोगकरनेवालामनुष्य चन्द्रमा करके प्रकाशित स्वर्ग लोकको प्राप्तहोके कर्मभोगकी समाप्तिमें फिर मनुष्यलोक में आके जन्मादिकोंको प्राप्तहोताहै अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्मकरनेवालेकी जब मृत्युहोतीहै तौ प्रथम उसको धूमाभिमानिनीदेवता अपनेलोकको ले जाताहै फिर रात्रिकादेवता अपनेलोकमें प्राप्तकरताहै फिर कृष्णपक्षकाअभिमानीदेवता अपने लोकमें प्राप्तकरताहै फिर षण्मास दक्षिणायनका देवता चन्द्रलोकमें प्राप्तकरताहै वहां पुण्यकर्मों के फलोंको भोगिकै तिसके अन्त्यमें पुण्यशेषसे फिर वेदज्ञकर्मी ब्राह्मणादिकोंके गृहजन्मकोप्राप्तहो कर्म हीकोकरताहै इसप्रकार बारम्बार जन्ममरणको प्राप्तहोताहै ॥ २५ ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽवर्त्तते पुनः॥ २६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

शुक्लेति शुक्लपक्षे शुक्ला च कृष्णा च शुक्लकृष्णे ज्ञानप्रकाशकत्वात् शुक्ला तदभावात् कृष्णा एते शुक्लकृष्णे हि गती जगत् इत्यधिकृतानां ज्ञानकर्म्मणोर्न जगतः सर्व्वस्यैवैते गती सम्भवतः शाश्वते नित्ये संसारस्य नित्यत्वान्नित्ये मतेऽभिप्रेते तत्रैकया शुक्लया यात्यनावृत्तिमन्यथेतरयाऽवर्त्तते पुनः भूयः ॥ २६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

रात्र्यादौ मृतानां ब्रह्मविदामब्रह्मप्राप्तिशङ्कानिवृत्त्यर्थमभिमानिनोदेवताग्रहणायमार्गयोर्नित्वमाह शुक्लेति ज्ञानप्रकाशकत्वाद्विद्याप्राप्यत्वादर्च्चिरादिप्रकाशोपलक्षितत्वाच्च शुक्ला

देवयानाख्या गतिस्तदभावाज्ज्ञानप्रकाशकत्वाभावात् धूमाद्यप्रकाशोपलक्षितत्वादविद्या प्राप्यत्वाच्च कृष्णा पितृयानलक्षणा गतिः तयोर्गत्योः श्रुतिस्मृतिप्रसिध्यर्थौ हिशब्दः जगच्छब्दस्य ज्ञानकर्म्माधिकृतविषयत्वेन सङ्कोचे हेतुमाह न जगत इति अन्यथा ज्ञानकर्म्मोपदेशानर्थक्यादित्यर्थः तयोर्नित्यत्वे हेतुमाह संसारस्येति मार्गयोर्यावत्संसार भावित्वे फलितमाह तत्रेति क्रममुक्तिरनावृत्तिः भूयो भोक्तव्यकर्मवशादित्यर्थः ॥ २६ ॥

स्वामिकृतटीका।

उक्तमार्गावुपसंहरति शुक्लेति शुक्लाऽर्चिरादिगतिः प्रकाशमयत्वात् कृष्णा धूमादिगतिस्तमोमयत्वात् एते गती मार्गौ ज्ञानकर्म्माधिकारिणौ जगतः शाश्वते अनादी संमते संसारस्यानादित्वात् तयोरेकया शुक्लयाऽनावृत्तिं मोक्षं याति अन्यया कृष्णया तु पुनरावर्त्तते ॥ २६ ॥

नवलभाष्य।

हे अर्ज्जुन इसप्रकार शुक्ल और कृष्ण ये दो गती जगत्को अभिमत हैं और निरन्तरचलीआती हैं अर्थात् ज्ञानके प्रकाशसे शुक्लगती तौ प्रणवोपासक जे ज्ञानी अधिकारी हैं तिनकी है और कर्म्मके अधिकारी हैं तिनकी कृष्णगतिहै कर्ममार्गको अविद्याकार्य्य होनेसे अप्रकाशरूपा कृष्णगति है और जे कर्माधिकाररहितहैं तिनकी कृष्ण गति भी नहींहै अर्थात् स्वर्ग्गलोकमें गतिनहींहै किन्तु इसीलोकमें जीवते मरतेहैं तिनमें एकशुक्लगतिकरके तौ मोक्षको प्राप्तहोताहै और दूसरी कर्मियोंकी कृष्णगति जो कही तिसकरके संसारमें फिर लौटआताहै ॥ २६ ॥

नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवाऽर्जुन॥ २७॥

शङ्करभाष्यम्।

नैत इति नैते यथोक्ते सृती मार्गौ पार्थ जानन् संसारायैकाऽन्या मोक्षाय चेति योगी न मुह्यतिनकश्चन कश्चिदपि तस्मात् सर्व्वेषु कालेषु योगयुक्तः समाहितो भवाऽर्जुन ॥ २७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

गतेरुपास्यत्वाय तद्विज्ञानं स्तौति नैत इति योगस्य मोहापोहकत्वे फलितमाह तस्मादिति ज्ञानप्रकारमनुवदति संसारायेति मोक्षाय क्रममुक्त्यर्थमित्यर्थः योगी ध्याननिष्ठो गतिमपि ध्यायन्नैव मुह्यति केवलं कर्म दक्षिणमार्गप्रापकं कर्तव्यत्वेन न प्रत्येतीत्यर्थः योगस्यापुनरावृत्तिफलत्वे नित्यकर्तव्यत्वं सिद्धमित्युपसंहरति तस्मादिति ॥ २७ ॥

स्वामिकृतटीका।

मार्गज्ञानफलं दर्शयन् भक्तियोगमुपसंहरति नैते इति एते सृती मार्गौ मोक्षसंसारप्रापकौ जानन् कश्चिदपि योगी न मुह्यति सुखबुद्ध्या स्वर्गादिफलं न कामयते किन्तु परमेश्वरनिष्ठ एव भवतीत्यर्थः स्पष्टमन्यत् ॥ २७ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन इनदोनोंमार्गोंका जाननेवाला योगी कभी मोहकोप्राप्त नहींहोताहै अर्थात् योगी यहबातजानताहै कि इसमार्गकरके संसारकोप्राप्त होताहै और इसमार्गकरके मोक्षको प्राप्तहोताहै इसकारण से कोई योगी कभी मोहको प्राप्तनहींहोताहै तिससे हे अर्ज्जुन तू सबकालमें योगयुक्तहो अर्थात् समाहित समाधिस्थहै चित्त जिसका ऐसा रहाकर ॥ २७ ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत् पुण्यफलं प्रादिष्टम्।
अभ्येति तत् सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥२८॥

इतिश्रीभगवद्गीतासु योगशास्त्रेषु श्रीकृष्णाऽर्जुनसंवादे
तारकब्रह्मयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

शङ्करभाष्यम्।

शृणु योगस्य माहात्म्यं वेदेष्विति वेदेषु सम्यगधीतेषु यज्ञेषु च साद्गुण्येनानुष्ठितेषु तपःसु च सुतप्तेषु दानेषु च सम्यग्दत्तेषु यदेतेषु पुण्यफलं प्रादिष्टं शास्त्रेणात्येसतात्य गच्छति तत् सर्वं फलजातमिदं विदित्वा सप्त प्रश्ननिर्णयद्वारेणोक्तं सम्यगवधार्य्यानुष्ठाय इह यथा योगी परं उत्कृष्टमैश्वरं स्थानमुपैति प्रतिपद्यते आद्यमादौभवं कारणं ब्रह्मेत्सर्थः ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीताभाष्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

श्रद्धावृद्ध्यर्थं योगंस्तौति शृण्विति पवित्रपाणित्वप्राङ्मुखत्वादिसाहित्यमध्ययनस्य सम्यक्त्वमंगोपांगोपेत्य मनुष्ठानस्यसाद्गुण्यं तपसां शास्त्रोक्तानां सुतप्तत्वं मनोबुद्ध्याद्यैकाग्र्यपूर्वकत्वं दानस्य च सम्यक्त्वं देशकालपात्रानुगुणत्वमिदं विदित्वेत्यत्रेदंशब्दार्थमेव स्फुटयति सप्तेति यद्यपि किं तद् ब्रह्मेत्यादावधियज्ञः कथं कोऽत्रेत्यत्र प्रश्नद्वयं प्रतिभासानुसारेण कैश्चिदुक्तं तथापि प्रतिवचनालोचनायां द्वित्वप्रतीत्यभावात् प्रकारभेदविवक्षया च शब्दद्वयस्य प्रतिनियतत्वान्न सप्तेति विरुध्यते नचेदं वेदनमात्यन्तिकं किंत्वनुष्ठानपर्यन्तमित्याह सम्यगिति प्रकृतो ध्याननिष्ठो योगीत्युच्यते ऐश्वरं विष्णोः परमं पदं तदेव तिष्ठत्यस्मिन्नशेषमिति स्थानं योगानुष्ठानादशेषफलातिशायिमोक्षलक्षणं फलं क्रमेण लब्धुं शक्यमिति भावः तदनेन सप्त प्रतिवचनेन योगमार्गं दर्शयता ध्येयत्वेन तत् पदार्थो व्याख्यातः ॥ २८ ॥

इति आनन्दगिरिकृतटीकायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

स्वामिकृतटीका।

अध्यायार्थमष्टप्रश्नार्थनिर्णयसफलमुपसंहरति वेदेषु अध्ययनादिभिः यज्ञेषु अनुष्ठाना

दिभिः तपःसु कायशोषणादिभिः दानेषु सत्पात्रेऽर्पणादिभिः यत्पुण्यफलमुपदिष्टं शास्त्रेषु तत्सर्वमत्येति ततोऽपि श्रेष्ठं योगैश्वर्यं प्राप्नोति किं कृत्वा इदमष्टप्रश्नार्थनिर्णयेनोक्तं तत्त्वं विदित्वा ततश्च योगी ज्ञानी भूत्वा परमुत्कृष्टं आद्यं जगन्मूलभूतं स्थानं विष्णोः पदं प्राप्नोति ॥ २८ ॥

इति स्वामिकृतटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवलभाष्य ।

और अब योगकेमाहात्म्यको श्रवणकर अर्थात् हे अर्जुन तू सुन इसआशयसेकहते हैं कि (वेदेष्विति) हे अर्जुन सम्यक्प्रकारसे पढ़हुये जे वेद तिन्होंकेबिषे और अच्छीतरह साङ्गोपाङ्गसेकियेहुये जे यज्ञ तिन्होंमें और अच्छीतरहसे कियेहुये जे तप अर्थात् मन और इन्द्रिय इन्होंकोवशकरके किये जे तप तिन्होंमें और अच्छीतरह श्रद्धापूर्व्वक वेदवित् ब्राह्मणोंमेंदिये जे दान इनसबोंमेंशास्त्रकरके जो पुण्यफलकहागयाहै तिसको उल्लंघनकरके योगी परमउत्कृष्टस्थान जो ब्रह्म तिसकोप्राप्तहोताहै कौनसायोगीप्राप्तहोता है इसआकांक्षामें कहते हैं कि (तत्सर्वमिदंविदित्वा) अर्थात् इसअध्याय में जैसे अर्ज्जुनकी किं तद्ब्रह्मइत्यादि साती प्रश्नोंका उत्तरकहाहै तिसको अच्छीतरहसेजानके वैसेही अनुष्ठानकरनेवाला जो योगी सो सब उक्त वेदाध्ययनादि पुण्यफलोंको उल्लंघनकरके अर्थात् इनसबोंसेअधिक पुण्यफल रूप परमपदको प्राप्तहोताहै ॥ २८ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीताभगवच्छंकराचार्यकृतभाष्येस्वर्गवास्युमादत्तविरचितंतत्त्वविवेकामृताख्येनवलभाष्येअष्टमोऽध्यायस्समाप्तः ॥ ८ ॥



श्रीमद्भगवद्गीतासटीक॥

नवमोऽध्यायः।

श्रीभगवानुवाच।

इदन्तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ १॥

शङ्करभाष्यम्।

अष्टमे नाडीद्वारेण धारणायोगसगुणउक्तस्तस्य च फलमग्न्यार्च्चिरादिक्रमेण कालान्तरेब्र ह्मप्राप्तिलक्षणमेवानावृत्तिरूपं निर्दिष्टं तत्रानेनैव प्रकारेण मोक्षप्राप्तिफलमधिगम्यते नान्यथे ति तदाशङ्काव्याविवृत्सया भगवानुवाच इदमिति इदं ब्रह्मज्ञानं वक्ष्यमाणमुक्तञ्च पूर्वेष्वध्यायेषु तद्बुद्धौ सन्निधीकृत्येदमित्याह तुशब्दो विशेषनिर्द्धारणार्थः इदमेव तु सम्यक्ज्ञानं साक्षान्मोक्ष प्राप्तिसाधनं वासुदेवः सर्वमित्यात्मैवेदं सर्वमेकमेवाद्वितीयमित्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यो नान्यदथ ये ऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्तेऽक्षयलोका भवन्तीत्यादि श्रुतिभ्यश्च ते तुभ्यं गुह्यतमं गोप्यतमं प्रवक्ष्यामि कथयिष्याम्यनसूयवे असूयारहिताय किंतज्ज्ञानं किंविशिष्टं विज्ञानसहितमनुभवयु क्तं यत् ज्ञानं ज्ञात्वा प्राप्य मोक्ष्यसेऽशुभात् संसारबन्धनात्॥ १॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अतीतेनागामिनोध्यायस्यागतार्थत्वं वक्तुं वृत्तम् अनुद्रवति अष्टम इति नाडी सुषुम्ना ख्या धारणाख्येनाङ्गेन युक्तो योगः धारणायोगः सगुणः सर्वद्वारसंयमनादिगुणास्तेन स हित इत्यर्थः तत्फलोक्त्यर्थमनन्तराध्यायारम्भमाशङ्क्याह तस्य चेति अग्निरर्च्चिरित्या दिनोपलक्षितेन क्रमवता देवयानेन यथेति यावत् ज्ञानान्तरमेव यथोक्तफललाभात् अल मनेन मार्गेणेत्याशङ्क्याह कालान्तर इति अर्च्चिरादिमार्गेण ब्रह्मप्राप्तौ मुक्तिः मार्गायतत्वात् न तस्येत्यादिश्रुतिविरोधः स्यादित्याशयेन शङ्कते तत्रेति वृत्तोऽर्थः सप्तम्यर्थः उक्ताश ङ्कानिवृत्त्यर्थमनन्तराध्यायमुत्थापयति तदा शङ्केति संप्रयुक्तत्वेनापरोक्षत्वाभावेऽपि पू र्वोत्तरग्रन्थालोचनयाबुद्धिसन्निधानादिदं शब्देन ब्रह्मज्ञानं गृहीतं इत्याह तद्बुद्धाविति प्रकृताज्ज्ञानात् ज्ञानस्य वैशिष्ट्यावद्योती तुशब्द इत्याह तुशब्द इति निपातार्थमेव स्फु टयति इदमेवेति तस्मिन्नर्थे संवादकत्वेन श्रुतिस्मृतिं दर्शयति वासुदेव इति अद्वैतज्ञान वत् द्वैतज्ञानमपि केषाञ्चिन्मोक्षहेतुरित्याशङ्क्याह नान्यदिति द्वैतज्ञानं मोक्षाय नक्षममि

त्यत्र श्रुतिमुदाहरति अथेति अविद्याप्रकरणोपक्रमार्थोऽथशब्दः अतो द्वैतादन्यथा भिन्न त्वेनेत्यर्थः विदुस्तत्त्वमिति शेषः द्वैतस्य दुर्निरूपत्वेन कल्पितत्वात् तज्ज्ञानं रज्जुस र्पादिज्ञानतुल्यत्वान्न क्षेमप्राप्तिहेतुरिति चकारार्थः असूया गुणेषु दोषाविष्करणं तद्रहि ताय ज्ञानाधिकृताय इत्यर्थः ज्ञानं ब्रह्मचैतन्यं तद्विषयं वा प्रमाणज्ञानं तस्य तेनैव विशे षितत्वानुपपत्तिमाशङ्क्य व्याकरोति अनुभवेति विज्ञानमनुभवः साक्षात्कारस्तेन सहित मित्यर्थः उक्तज्ञानं प्राप्तस्य किं स्यादित्याशङ्क्याह यज्ज्ञानमिति ॥ १ ॥

स्वामिकृतटीका।

परेशः प्राप्यते शुद्धभक्त्येति स्थितिमष्टमे। नवमे तु तदैश्वर्यमत्याश्चर्यं प्रपञ्चयते॥ एवं तावत् सप्तमाष्टमयोः स्वीयपरमेश्वरतत्त्वं भक्त्यैव सुलभं नान्यथेत्युक्तमिदानीमचि न्त्यं स्वकीयमैश्वर्यं भक्तेश्चासाधारणप्रभावं प्रपञ्चयिष्यन् श्रीभगवानुवाच इदमिति वि शेषेण ज्ञायते अनेनेति विज्ञानमुपासनं तत्सहितं ज्ञानमीश्वरविषयमिदं तु तेऽनसूयवे पुनः पुनः स्वमाहात्म्यमेवोपदिशतीत्येवं परमकारुणिके मयि दोषदृष्टिरहिताय तुभ्यं व क्ष्यामि तुशब्दोवैशिष्ट्ये तदेवाह गुह्यतममित्यादिना गुह्यं धर्मज्ञानं ततो देहादिव्यति रिक्तात्मज्ञानं गुह्यतरं ततोऽपि परमात्मज्ञानमतिरहस्यत्वाद्गुह्यतमं तज्ज्ञात्वाऽशुभात् संसारबन्धान्मोक्ष्यसे सद्य एव मुक्तो भविष्यसि ॥ १ ॥

नवलभाष्य।

अष्टमाध्यायमें सुषुम्नानाड़ीकेद्वाराअंगोंकरके सहित धारणायोगकहा तिस काफल अर्चिरादि मार्ग्गकरके क्रमसेकालान्तरमें अर्त्थात् देरकरकेब्रह्मप्राप्ति लक्षण अर्थात् ब्रह्मप्राप्तिही है स्वरूपजिसका ऐसा मोक्षरूप फलकहा तहां इसीप्रकार करके मोक्ष प्राप्ति रूप फलप्राप्तहोताहै और प्रकारसे नहीं प्राप्त होताहै ऐसी कदाचित् अर्जुनके हृदयमें आशंकाहोय तिसआशंकाको दूर करनेकी इच्छाकरके श्रीभगवान् कहते हैं कि (इदमिति) हे अर्जुन यह जो आगे कहाजायगा और पीछेके अध्यायोंमें जोकहिआये विज्ञानसहित ब्रह्म ज्ञान अर्थात् अनुभवसहित ब्रह्मज्ञान तिसको मैं असूया दोषरहित जो तू तिसकेअर्थ कहताहूं और हे अर्जुन जिस ज्ञानकोजानके अर्त्थात् प्राप्तहोके अशुभ जो संसारबन्धन तिससे तू छूटजायगा अब यहां(इदन्तुतेगुह्यतमम्) इसमें तु शब्द जो भगवान्‌नेकहाहै सो विशेष अर्थके निश्चयकेलिये कहा है अर्थात् हे अर्जुन यह एक सम्यग्ज्ञान जो है सो साक्षात् मोक्ष प्राप्तिका साधनहै यह कौनसा सम्यग्ज्ञानहै जो कि श्रुति और स्मृतियोंमें प्रसिद्धहै जैसे (वासुदेवःसर्वमितिआत्मैवेदंसर्व्वम् एकमेवाद्वितीयमित्यादिश्रुतिस्मृ तिभ्यः नान्यदव्ययेन्यथातोविदुरन्यराजानस्तेऽक्षयलोकाभवन्तीत्यादिश्रुति भ्यश्च) अर्थ सबजगत् वासुदेव जोपरमात्मा तिसीकास्वरूपहै और जोकुछ दिखाई पड़ताहै सो सब आत्माही है और एक अद्वितीयब्रह्म है अर्त्थात् सजातीय विजातीय स्वगत भेदकरकेरहित ब्रह्महै तहां सजातीयभेद जैसे ब्राह्मणोंमें परस्पर कुलकाभेद तैसे ब्रह्मका किसीसे भेदनहीं है क्योंकि ब्रह्म जातिरहितहै और विजातीय भेद जैसे ब्राह्मणका क्षत्रियादिकों से सो भी

ब्रह्ममें नहीं और स्वगतभेद जैसे अपने हस्तपादादि अवयवोंकाभेद सोभी ब्रह्ममें नहीं सम्भवहोता क्योंकि ब्रह्मका अवयवही कोईनहीं है जिससे भेद होय और जे द्वैतरूप प्रपञ्चसे विलक्षण आत्माकोदेखते हैं ते अन्यराजाके तुल्य अक्षयलोकको प्राप्तहोते हैं इसप्रकार श्रुतिस्मृतियोंकेदेखनेसे ब्रह्मरूप ही अपनाकोजानना सो सम्यग्दर्शन ज्ञानकहाताहै इसीज्ञानसे साक्षात्मोक्षकोप्राप्तहोताहै ऐसा जो यहअत्यन्तगुप्तज्ञान तिसको हे अर्जुन मैं तेरेअर्थ कहताहूं कदाचित् कोई आशंकाकरै कि ज्ञानगुप्त कैसे जो ज्ञान अनेक श्रुति स्मृतियों में प्रसिद्ध और भगवान्ने भी गीतामें बहुतबारकहा और अनेक वेदान्तीलोग ज्ञानहीका बहुत उपदेशकरते हैं और श्रोतालोग भी बहुत श्रवणकरते हैं तो जो अत्यन्त प्रसिद्धवस्तु उसको भगवान्ने अत्यन्तगुप्त कौन आशयसेकहा तो इसकाउत्तरयहहै कि ज्ञान अत्यन्त दुर्ज्ञेयहै यही इसकी गुप्तताहै विना भगवत्कृपा किसीको प्राप्तनहींहोता बहुतसे वेदान्ती लोग शास्त्रप्रक्रियासे निरूपण भी करतेहैं परन्तु फिर वे आपही मोहगर्त्तमें गोते खाते हैं जे धनपुत्रादिएषणाओंसे नहींनिवृत्तहोते कोई महात्मा परमहंस नारायण रूप विरले हैं जे इसअविद्याजालग्रस्त जीवोंका उद्धारकरते हैं इसआशयसे परमदयालु भगवान् ज्ञानको बारम्बार उपदेश करते हैं और अति गुप्त रहस्य इसज्ञानको कहतेहैं ॥ १ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

शङ्करभाष्यम्।

तच्च स्तौति राजविद्येति राजविद्या विद्यानां राजा दीप्त्यतिशयत्वात् दीप्यते हीयमतिशयेन ब्रह्मविद्या सर्वविद्यानां राजगुह्य तथा गुह्यानां राजा पवित्रं पावनमिदमुत्तमं सर्वेषां पावनानां शुद्धिकारणनामिदं ब्रह्मविज्ञानमुत्कृष्टतममनेकजन्मसहस्रसञ्चितमपि धर्म्माधर्म्मादि समूलं कर्म्मक्षणमात्राद्भस्मीकरोति यतोऽतः किं तस्य पावनत्वं वक्तव्यं किञ्च प्रत्यक्षावगमं प्रत्यक्षेण सुखादेरिवावगमो यस्य तत् प्रत्यक्षावगमं अनेकगुणवतोऽपि धर्मविरुद्धत्वं दृष्टं श्येनयाग इव न तथा आत्मज्ञानं धर्मविरोधि किन्तु धर्म्यं धर्म्मादनपेतं एवमपि स्यात् दुःसम्पाद्यमित्यत आह सुसुखं कर्त्तुं यथारत्नविवेकविज्ञानं तत्राल्पायासानां अन्येषां कर्म्मणां सुखसम्पाद्यानामल्पफलत्वं फलतः दृष्टं दुष्कराणाञ्च महाफलत्वं दृष्टमितीदन्तु सुखसम्पाद्यत्वात् तत् फलक्षयाद्व्येतीति प्राप्तौ तत्राहाऽव्ययं नास्य फलतः कर्म्मवद्व्ययोऽस्तीति अव्ययं अतः श्रद्धेयमात्मज्ञानं ॥ २ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तदाभिमुख्यसिद्धये तज्ज्ञानं स्तौति तच्चेति ब्रह्मविद्या विद्यानां राजा श्रेष्ठा इत्यत्र हेतुमाह दीप्तीति कुतो ब्रह्मविद्यायाः विद्यान्तरेभ्यो दीप्त्यतिशयित्वं तदाह दीप्यते हीति दृश्यते हि विद्वदन्तरेभ्यो लोके पूजातिरेको ब्रह्मविदामिति भावः उत्कृष्टतमं शुद्धिकारणं ब्रह्मज्ञानमित्येतदुपपादयति अनेकेति तत्र श्रुतिस्मृतिप्रमाणयितव्ये न शास्त्रैकगम्यमिदं ज्ञानं किन्तु प्रत्यक्षप्रमेयमित्याह किञ्चेति प्रत्यक्षमवगम्यमानमस्मिन्निति तथा

यद्वावगम्यत इति अवगमः फलं प्रत्यक्षोऽवगमोऽस्येति दृष्टफलत्वं ज्ञानस्योच्यते धर्म्यमित्येतद्व्याकरोति अनपेतमिति धर्मस्येव तस्य क्लेशसाध्यत्वमाशङ्क्याहएवमपीति रत्नविषयं विवेकज्ञानं सम्प्रयोगादुपदेशापेक्षादनायासेनदृष्टं तथेदं ब्रह्मज्ञानमित्याह यथेति अव्ययमिति विशेषणमाशङ्कापूर्वकं विवृणोति तत्रेत्यादिना व्यवहारभूमिः सप्तम्यर्थः ज्ञानस्याक्षयफलत्वे फलितमाह अत इति॥ २॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च राजविद्येति इदं ज्ञानं राजाविद्या विद्यानां राजा राजगुह्यं गुह्यानाञ्च राजा विद्यासु गोप्येषु चातिरहस्यं श्रेष्ठमित्यर्थः राजदन्तादित्वादुपसर्जनस्यापि परत्वं राज्ञां विद्या राज्ञां गुह्यमिति वा उत्तमं पवित्रमिदमत्यन्तपावनं ज्ञानिनां प्रत्यक्षावगमञ्च प्रत्यक्षः स्पष्टोऽवगमोऽवबोधो यस्य तत् प्रत्यक्षावगमं दृष्टफलं इत्यर्थः धर्म्यं धर्मादनपेतं वेदोक्तसर्वधर्मफलत्वात् कर्तुञ्च सुसुखं सुखेन कर्तुं शक्यमित्यर्थः अव्ययञ्चाक्षयफलत्वात्॥ २॥

नवलभाष्य।

तिसज्ञानकी भगवान् स्तुतिकरतेहैं (राजविद्येति) हे अर्जुन यह ज्ञान प्रकाशके अधिकहोनेसे सबविद्याओंकाराजाहै इससे इसको राजविद्याकहते हैं क्योंकि सबलोकमेंप्रसिद्धहै कि सबविद्याओंके मध्यमें ब्रह्मविद्या अपनी दीप्तिकरके प्रकाशकरती है और जितने गुप्तपदार्थ हैं तिनका यह आत्मज्ञान राजाहै इससे राजगुह्यहै अर्थात् जो सबकेपास भी सबकालमें है परंतु इसको कोई जाननहीं सक्ता इससे यह अतिगुप्त है और यह उत्तम पवित्र है नामपावन है अर्थात् जितने पवित्रकरनेवाले शुद्धि करनेवाले पदार्थ हैं तिन्हों के मध्यमें यह आत्मविज्ञान अत्यन्त उत्कृष्टहै नाम श्रेष्ठ है जिससे अनेक हजारों जन्मके सञ्चित कियेहुयेभी धर्म्म अधर्म्मादि कर्मोंको जड़समेत क्षणमात्रमें भस्मकरदेता है इससे इसकी पवित्रता क्या कहनाचाहिये और फिर यह ज्ञान कैसा है किजो प्रत्यक्षावगम है अर्थात् प्रत्यक्ष है सुखादिक के सदृश अवगम निश्चय जिसका ऐसा है जैसे अपने सुखको वा दुःखको सबकोई प्रत्यक्ष जानसक्ता है कि इसमें हमको सुखहै इसमें दुःखहै तो जिसआत्माको सुखका वा दुःखका किसीने निश्चय किया तो उसआत्माकाजाननाभी प्रत्यक्षही सम्भवहोताहै अर्थात् अपनेआपही जाननाबनसक्ताहै औरकेजतानेसे ठीकठीक आत्मज्ञान नहींहोताहै और जो अपनाको भूलगयाहै उसको औरकेजतानेसेज्ञान भी होताहै तो भी ठीकठीक जब आपही अपनाको जानै तब वह जाननेवाला कहाता है इससे आत्मज्ञान प्रत्यक्षावगमही है यहासिद्धहुआ और लोकमें अनेकगुणयुक्तभी पुरुषहैं परन्तु कोई धर्म्मविरोधी भी गुण दिखाईपड़ताही है तैसे यह ज्ञान नहींहै किन्तु धर्म्महै अर्थात्धर्म्मयुक्तहै तौभी लोकमेंधर्मयुक्तपदार्थहै सोबड़े कष्टसे सिद्धहोताहै ऐसादेखाहै तैसा यह ज्ञाननहीं है किन्तु (कर्त्तुंसुसुखम्) अर्थात् सुखपूर्व्वक करनेके योग्यहै जैसे रत्नोंके विवेकका विज्ञान होताहै

क्या जौंहरीलोगोंको रत्नोंकेजाननेमें भारवाहक मनुष्यकेतुल्य कष्टहोता है किन्तु अभ्यासवशसे विद्याकी निपुणतासे देखतेही सत्य और झूंठापनेको जानसक्ते हैं तौ भी लोकमें जे थोड़ेश्रमसे कर्म्महोतेहैं अर्थात् जे सुसाध्य कर्महोतेहैं तिनका थोड़ाहीफल देखनेमेंआताहै और जे कर्म कष्टसेहोते हैं अर्थात् बड़ेश्रमसेहोते हैं उनकाफल भी बड़ादेखाहै इससे सुखसाध्यहोनेसे ज्ञानफलसे न्यूनताको प्राप्तहोताहोगा अर्थात् फल इसका थोड़ाहोताहोगा ऐसा दोष प्राप्तहुआ तिसके निवारणकरनेकोकहा कि (अव्ययम्) यह ज्ञान कभी फलकेक्षयसे व्ययको प्राप्तनहींहोताहै अर्थात् कर्म्मकीतरह न्यूनताको प्राप्त नहींहोताहै इससे अव्ययहै इससे आत्मज्ञान श्रद्धाकरनेयोग्यहै २॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥ ३॥

शङ्करभाष्यम्।

ये पुनः अश्रद्दधाना इति अश्रद्दधानाः श्रद्धाविरहिताः आत्मज्ञानस्य धर्म्मस्यास्य स्वरूपे तत्फले च नास्तिकाः पापकारिणोऽसुराणामुपनिषद्देहमात्रात्मदर्शनमेव प्रतिपन्ना असन्तः पुरुषाः परन्तप अप्राप्य मां परमेश्वरं मत्प्राप्तौ नैवाशङ्केति मत्प्राप्तिमार्गसाधनभेदभक्तिमात्रमप्यप्राप्येत्यर्थः निवर्त्तन्ते निश्चयेन आवर्त्तन्ते क्व मृत्युसंसारवर्त्मनि मृत्युयुक्तं संसारस्तस्य वर्त्म नरकतिर्यगादिप्राप्तिमार्गस्तस्मिन्नेव वर्त्तन्त इत्यर्थः॥ ३॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

आत्मज्ञानाख्ये धर्मे श्रद्धावतां तन्निष्ठानां परमपदप्राप्तिमुक्त्वा ततो विमुखानां संसारप्राप्तिमाह ये पुनरिति आत्मज्ञानतत्फलयोर्नास्तिकानेव विशिनष्टि पापेति उक्तानामात्मम्भरीणां भगवत् प्राप्तिसम्भावनाभावादप्राप्य मामित्यप्रसक्तं प्रतिषेधः स्यादितिशङ्क्याह मत्प्राप्ताविति॥ ३॥

स्वामिकृतटीका।

नन्वेवमप्यतिसुकरत्वेन के नाम संसारिणः स्युस्तत्राह अश्रद्दधाना इति अस्य भक्तिसहितज्ञानलक्षणस्य धर्म्यस्येति कर्मणि षष्ठी इमं धर्ममश्रद्दधाना आस्तिक्येनास्वीकुर्वन्त उपायान्तरैर्मत्प्राप्तये कृतप्रयत्ना अपि मामप्राप्य मृत्युयुक्ते संसारवर्त्मनि निवर्त्तन्ते मृत्युव्याप्तसंसारमार्गे परिभ्रमन्तीत्यर्थः॥ ३॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जे पुरुष आत्मज्ञानरूप जो स्वधर्म्म तिसमें श्रद्धाकरके रहितहैं अर्थात् जे पुरुष देहमात्रमें आत्मदृष्टिके करानेवाले असुरोंकेशास्त्रकोमानके आत्मज्ञानकेस्वरूपमें और फलमें नास्तिकताकी दृष्टिकरतेहैं ऐसे जे पापकारी असत्पुरुषते मेरी प्राप्तिके मार्ग्गमें साधन जो भक्तिकाप्रकार तिसको विनाहीप्राप्तहुये मृत्युयुक्त संसारकेमार्गमें अर्थात् नरकतिर्य्यगादिप्रातिरूप मार्गमें निरन्तररहते हैं॥ ३॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि नचाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

शङ्करभाष्यम्।

इति ज्ञानं स्तुत्वार्जुनमभिमुखीकृत्याह मयेति मया मम यः परोभावस्तेन ततं व्याप्तं सर्वमिदं जगदव्यक्तमूर्त्तिना न व्यक्ता मूर्त्तिः स्वरूपंयस्य मम सोऽहमव्यक्तमूर्त्तिस्तेन मयाव्यक्तमूर्त्तिना करणागोचरस्वरूपेणेत्यर्थः तस्मिन्मय्यव्यक्तमूर्त्तौस्थितानि मत् स्थानि सर्व्वभूतानि ब्रह्मादीनि स्तम्बपर्य्यन्तानि नहि निरात्मकं किञ्चिद्भूतं व्यवहारायावकल्प्यतेऽतो मत् स्थानि मयात्मना त्मवत्वेन स्थितानि अतो मयि स्थितानीत्युच्यते तेषां भूतानामहमेव आत्मा इत्यतस्तेषु स्थिति इति मूढबुद्धीनामवभासतेऽतोब्रवीमि नचाहं तेषु भूतेष्ववस्थितो मूर्त्तवत् संश्लेषाभावेनाऽकाशस्याप्यन्तरतमो ह्यहं ॥ ४ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

स्तुतिनिन्दाभ्यां ज्ञाननिष्ठां महीकृत्य ज्ञानं व्याख्यातुमारभते स्तुत्वेति सोपाधिकस्य व्याप्त्यसम्भवमभिप्रेत्य विशिनष्टि ममेति अनवच्छिन्नस्य भगवद्रूपस्य निरुपाधिकत्वमेव साधयति करणेति व्याप्यव्यापकत्वेन जगतो भगवतश्च परिच्छेदमाशङ्क्याह तस्मिन्निति तथापि भगवतो भूतानाञ्चाधाराधेयत्वेन भेदः स्यादित्याशङ्क्याह नहीति निरात्मकस्य व्यवहारानर्हत्वे फलितमाह अत इति ईश्वरस्य भूतात्मत्वे तेषु स्थितिः स्यादित्याशङ्क्याह तेषामिति तस्य तेषु स्थित्यभावं व्यवस्थापयति मूर्त्तवदिति ॥ ४ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं वक्तव्यतया प्रस्तुतस्य ज्ञानस्य स्तुत्या श्रोतारमभिमुखीकृत्य तदेव ज्ञानं कथयति मयेति द्वाभ्याम् अव्यक्ता अतीन्द्रिया मूर्त्तिः स्वरूपं यस्य तादृशेन मया कारणभूतेन सर्वमिदं जगत्ततं व्याप्तं तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदित्यादिश्रुतेः अतएव कारणभूते मयि तिष्ठन्तीति मत्स्थानि सर्वाणि भूतानि चराचराणि एवमपि घटादिषु स्वकार्येषु मृत्तिकेव तेषु भूतेषु नाहमवस्थित आकाशवदसंगत्वात् ॥ ४ ॥

नवलभाष्य।

अब इसप्रकार भगवान् ज्ञानकीस्तुतिकरके अर्जुनको सम्मुखकरके कहते हैं (मयेति) हेअर्जुन अव्यक्त अप्रकट अर्थात् इन्द्रियादिकोंके नहीं गोचर है मूर्तिजिसकी ऐसा जो मैं अर्थात् सबसेपरे मेरा भाव तिसकरके सम्पूर्ण यह जगत् व्याप्तहोरहाहै तिस अव्यक्तमार्त्ति मेरेविषे ब्रह्माको आदिलेके तृण पर्य्यन्त जे सम्पूर्णभूत ते स्थितहोरहे हैं अर्थात् नहीं कोई निरात्मक भूत आत्मरहित भूत व्यवहारकेअर्त्थ कल्पनाकियाजाताहै इससे सबभूत मेरे बिषेस्थितहैं अर्थात् मैं जो आत्मा तिसकरके आत्मवत्वधर्म्मकरके स्थितहैं अर्थात् मैं सबभूतोंका आत्माहौं मेरेही होनेसे सबभूत आत्मवान्कहाते हैं और मैं न होऊं तौ विनाआधार क्षणमात्र भी कोई कैसे स्थितहोसक्ता है रज्जुमें कल्पितसर्प्प भी विनारज्जुके प्रतीतिकेयोग्य नहीं होसक्ता और जे आकाशादि अत्यन्तसूक्ष्मभूत हैं ते भी विनाआत्माके प्रतीति गोचर नहीं

होते इससे सब भूत मेरेमें स्थितकहेजातेहैं जिससे उनभूतोंको मैं आत्माहौं इससे उनभूतोंमेंस्थितहौं ऐसा मूढ़बुद्धियोंको मैं प्रतीतहोताहूं इससे मैं कहताहूं कि हे अर्जुन मैं उनभूतोंमें स्थितनहींहूं जैसे मूर्त्तपदार्थ अर्थात् जैसे मूर्त्तिमान्पदार्थ किसीमेंस्थितहोय तो वह उसको आलिंगनकरेहुये स्थित प्रतीतहोता है तैसे मेरा किसीसे मिलापनहीं फिर मैं कैसे स्थितहोसक्ताहूं और आकाश भी मेरी सत्तासे प्रतीतहोताहै इससे आकाशका अन्तस्वरूप मैं हूं इसकारणसे गौण मेरी स्थिति प्रतीतिहोतीहै वास्तवमेंनहीं है ॥ ४ ॥

नच मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्नच भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

शंकरभाष्यम्।

नह्यसंसर्गिवस्तु क्वचिदाधेयभावेनावस्थितं भवत्यत एवासंसर्गित्वान्मम नचेति नच मत्स्थानि भूतानि ब्रह्मादीनि पश्य मे योगं युक्तिः घटनं मे ममैश्वरं योगमात्मनः ईश्वरस्येदमैश्वरं माहात्म्यामित्यर्थः तथाचात्मनो या श्रुतिरसंसर्गित्वादसङ्गतां दर्शयत्यसङ्गो नहि सज्जत इदञ्चाश्चर्यमन्यत् पश्यभूतभृदसङ्गोऽपि सन् भूतानि बिभर्त्ति नच भूतस्थो यथोक्तेन न्यायेन दर्शितत्वात् भूतस्थत्वानुपपत्तेः कथं पुनरुच्यते असौ ममात्मेति विभज्य देहादिसंघातं तस्मिन्नहङ्कारमध्यारोप्य लोकबुद्धिमनुस्मरन् व्यपदिशति ममात्मेति न पुनरात्मन आत्मा अन्य इति लोकवदजानन्स्तथा भूतभावनो भूतानि भावयति उत्पादयति वर्द्धयति वा भूतभावनः ॥ ५ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

संश्लेषाभावेऽपि किमिति नाधेयत्वमत आह नहीति परमेश्वरस्य भूतेषु स्थित्यभावेऽपि भूतानां तत्र स्थितिरास्थितेति कुतोऽसङ्गत्वं तत्राह अतएवेति नचेत् तत्र चकारोऽवधारणार्थः भूतानामीश्वरेणैव स्थितिरित्यत्र हेतुमाह पश्येति आत्मनोऽसङ्गत्वस्वरूपमित्यत्र प्रमाणमाह तथाचेति असङ्गश्चेदीश्वरस्तर्हि कथं मत्स्थानि भूतानीत्युक्तं कथञ्च तथोक्तांश्च मत्स्थानीति तद्विरुद्धमुदीरितमित्याशङ्क्याह इदञ्चेति तर्हि भूतसम्बन्धः स्यादिति नेत्याह नचेति यथोक्तेन न्यायेन असंगत्वेनेति यावत् असंगतया वस्तुतो भूतासम्बन्धेऽपि कल्पनया तदविरोधान्न मिथोविरोधोऽस्तीति भावः आत्मनः सकाशादात्मनोऽन्यत्वायोगाय कुतः सम्बन्धोक्तिरित्याशङ्क्याह असाविति यथा लोको वस्तुतत्वमजानन् भेदमारोप्य ममायमिति सम्बन्धमनुभवति न तथेह सम्बन्धव्यपदेशः आत्मनि स्वतोभेदाभावादतो भेदे सत्येव लोके सम्बन्धबुद्धिदर्शनमनुसरन् भगवानात्मनो देहादिसङ्घातं विभज्याहङ्कारं तस्मिन्नारोप्य असौममात्मेति भेदं व्यपदिशति तथाच सङ्घातस्य ममेति व्यपदेशात्ततो निकृष्टस्य स्वरूपत्यात्मशब्देन निर्द्दिशान्न भूतस्थोऽसावित्यर्थः पूर्वोक्तासंगत्वांगीकारेणैवात्मा भूतानि भावयतीत्याह तथेति ॥ ५ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च नचेति नच मयि स्थितानि भूतानि असंगत्वादेव मम ननु तर्हि व्यापकत्वमाश्रयत्वञ्च पूर्वोक्तं विरुद्धमित्याशङ्क्याह पश्येति मे ऐश्वरमसाधारणं योगं युक्तिं अघटनघटनाचातुर्य्यमिदं पश्य मदीययोगमायावैभवस्याविततर्क्यत्वान्नकिञ्चित् विरुद्धमित्यर्थः अन्यदप्याश्चर्यं पश्येत्याह भूतेति भूतानि बिभर्त्ति धारयतीति भूतभृत् भूतानि भावयति

पालयंतीति भूतभावनः एवं भूतोऽपि ममात्मा प्रपंचस्वरूपं भूतस्थो न भवतीति अयंभावः यथा देहं बिभ्रत् पालयंश्च जीवोऽहङ्कारेण तत्संश्लिष्टस्तिष्ठति एवमहं भूतानि धारयन् पालयन्नपि तेषु न तिष्ठामि निरहङ्कारत्वादिति ॥ ५ ॥

नवलभाष्य ।

अब हे अर्जुन मैं सबभूतोंमें स्थितनहींहूं इसमें कारण असंगत्वहै क्योंकि जो वस्तुअसंगहै उसकीस्थिति किसीमें सम्भवनहींहोती है और आत्मा असंगहै ऐसाश्रुतिकहती है इससे असंगहोनेसे मैं भूतोंमें स्थित नहींहूं फिर इसी कारण से मेरेबिषे भूतभी स्थित नहीं हैं ऐसा तुमजानो क्योंकि जैसे असंगआत्मा किसीमें स्थित नहींहोसक्ता ऐसेही असंगआत्मा में किसीकी स्थितिभी नहींबनसक्ती यह युक्तही है न कहौ फिर कैसे पहिले आपहीने कहाथा कि सबभूत मेरेबिषेस्थितहैं तिसकाउत्तर भगवान्‌कहते हैं कि अर्जुन यह मेरा ऐश्वरयोगतूदेख नाम मैं जो ईश्वर तिसका योग जो युक्ति अर्थात् संघटनरूप जो माहात्म्य तिसकोतूदेख अर्थात् अघटनघटनापटीयसीअचिन्त्यशक्ति जो मेरीयोगमाया तिसका प्रभाव तूदेख अघटन अर्थात् जो बात मनसे न आयसके उसको करनेमें जो प्रवीणहोय उसको अघटनघटना पटीयसीकहतेहैं तौ असंगआत्मामें भी सबभूतोंकीस्थितिको प्रतीतिकराना यह मेरी अचिन्त्यशक्ति मायाकाप्रभावहै तिसको तू देख सो जैसे मायावी ऐन्द्रजालिक अर्थात् इन्द्रजालकीविद्याका करनेवाला पुरुष अपने रूपहीमें अनेकप्रकारके व्याघ्रादिरूपको दिखलावे तैसे मैं भी अपनी योगमाया करके आपने आत्माहीको भूतादि रूपकरके दिखाताहूं तौ वास्तवमें तौ किसीभूतकासंसर्ग है नहीं मायाकरकेअन्यथारूपके दिखानेमात्रमें असंगताकाभी भंगनहीं और व्यवहारभी सिद्धहुआ इसमेरे ऐश्वर योगको तूदेख और हे अर्जुन औरभी आश्चर्य्यको देख कि असंगभीमैं सबभूतोंका भरण करताहूं और भूतोंमेंस्थित नहींहूं और हे अर्जुन मेरा आत्माभूतभावन अर्थात् भूतोंका उत्पन्नकरनेवाला है यह कथनतो परम आश्चर्य्य सूचकहै क्योंकि जबकि आप असंगहोनेसे मैं किसीभूतमें स्थित नहींहूं ऐसा कहते हौ तौ भूतभृत्‌हौं अर्थात् भूतोंका धारण करनेवालाहौं इससे अधिक क्या आश्चर्यहोगा और मेराआत्माभूतभावनहै यहकहनाभी नहीं सम्भवहोता क्योंकि जो तुम आत्मासे न्यारे कोई और होउ तौ यह कथन सम्भवहोय और असंगआत्मामें भरण भी नहीं सम्भवहोताहै तौ इसका समाधानयहहै कि यहां भगवान् देहादिसंघातको पृथक्करके तिसमें अहंकारको आरोपणकरके लोकबुद्धिको अनुस्मरण करते हुये देहादि संघातसेपृथक् जो आत्माहै तिसको लक्ष्यकरकेकहते हैं कि यहआत्मा मेरा भूतभावनहै और यह नहींहै किं आत्मासे आत्मा अन्य है इसप्रकार अज्ञ पुरुषके सदृश कहाहोय ॥ ५ ॥

यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

यथोक्तेन श्लोकद्वयेन उक्तमर्थं दृष्टान्तेनोपपादयन्नाह यथेति यथा लोके आकाशस्थितः आकाशे स्थितो नित्यं सदा वायुः सर्वत्र गच्छतीति सर्वत्रगः महान् परिमाणतस्तथाकाशवत् सर्वगते मय्यसंश्लेषेणवस्थितानि मत्स्थानीत्येवं उपधारय जानीहि ॥ ६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

सृष्टिस्थितिसंहाराणामसंगात्माधारत्वं मया ततमिदमित्यादि श्लोकद्वयेनोक्तोऽर्थस्त दृष्टान्तेनोपपादयन्नादौ दृष्टान्तमाहेति योजना सदेत्युत्पत्तिस्थितिसंहारकालो गृह्यते आकाशादेर्महतोऽन्याधारत्वं कथमित्याशङ्क्याह महानिति यथा सर्वगामित्वात् परिमाणतो महान् वायुराकाशे सदा तिष्ठति तथा आकाशादीनि महान्त्यपि सर्वाणि भूतान्याकाशकल्पे पूर्णे प्रतीच्यसंगे परस्मिन्नात्मनि संश्लेषमन्तरेण स्थितानीत्यर्थः ॥ ६ ॥

स्वामिकृतटीका।

असंश्लिष्टयोरपि आधाराधेयभावं दृष्टान्तेनाह यथेति अवकाशंविनावस्थानानुपपन्नेर्नित्यमाकाशस्थितो वायुः सर्वत्रगोऽपि महानपि नाकाशेन संश्लिष्यते निरवयवत्वेन संश्लेषायोगात् तथा सर्वाणि भूतानि मयि स्थितानि जानीहि ॥ ६ ॥

नवलभाष्य ।

अब दो श्लोकों करके कहा जोअर्थ तिसको दृष्टान्तद्वारा सिद्धकरतेहुये कहते हैं (यथेति) हे अर्जुन जैसे आकाशमें सदास्थित बड़ाभारी पवनरहताहै और उसपवन से आकाशलिप्त नहींहोता तैसेही आकाशवत् सर्वव्यापक जोमैंहूं तिससे विनाही स्पर्शकरे सबभूत स्थितहैं ऐसा तू निश्चय करके जान ॥ ६ ॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यांति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

एवं वायुराकाश इव मयि स्थितानि सर्वभूतानि सर्वाणि भूतानि स्थितिकाले तानि सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं त्रिगुणात्मिकामपरां निकृष्टां यान्ति मामिकां मदीयां कल्पक्षये ब्राह्मे प्रलयकाले पुनर्भूयस्तानि भूतान्युत्पत्तिकाले कल्पादौ विसृजाम्युत्पादयाम्यहं पूर्ववत् ॥ ७ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

आकाशे वाय्वादिस्थितिवदाकाशादीनि भूतानि स्थितिकाले परमेश्वरे स्थितानि चेत्तर्हि प्रलयकाले ततोऽन्यत्र तिष्ठेयुरित्याशङ्क्याह सर्वमिति प्रकृतिशब्दस्य स्वभाववचनत्वं व्यावर्तयति त्रिगुणात्मिकामिति सा चापरेत्युमिति प्रागेव सूचितेत्याह अपरामिति तस्याश्चेश्वराधीनत्वेनास्वातन्त्र्यमाह मदीयामिति प्रलयकाले भूतानि यथोक्तां प्रकृतिं यान्तिचेदुत्पत्तिकालेऽपि ततस्तेषामुत्पत्ति रीश्वराधीनत्वं भूतसृष्टेर्न स्यादित्याशङ्क्याह पुनरिति॥ ७॥

स्वामिकृतटीका ।

तदेवमसंगस्यैव योगमायया स्थितिहेतुत्वमुक्तं तथैव सृष्टिप्रलयहेतुत्वमाह सर्वेति कल्प क्षये प्रलयकाले सर्वाणि भूतानि मदीयां प्रकृतिं यान्ति त्रिगुणात्मिकां यानि मायां लीय न्ते पुनः कल्पादौ सृष्टिकाले तानि विसृजामि विशेषेण सृजामि ॥ ७ ॥

नवलभाष्य ।

हे अर्जुन जैसे पवन आकाशमें स्थितरहताहै तैसे स्थितकालमें मेरेबि-षेस्थित जेसबभूत तेकल्पक्षय में अर्थात् ब्राह्मप्रलयकालमें अपरासंज्ञक अ-र्थात् अपराहैनामजिसका एसीजो निकृष्ट त्रिगुणात्मिकामेरी प्रकृति तिस को प्राप्तहोते हैं अर्थात् तिसमें लीनहोजाते हैं और फि॰ उत्पत्तिकालमें क-ल्पकी आदिमें उनभूतोंको फिर मैं उत्पन्न करताहूं पाहिलेकी तरह ॥ ७ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

एवमविद्यालक्षणां प्रकृतिमिति प्रकृतिं स्वां स्वीयामवष्टभ्य वशीकृत्य विसृजामि पुनः पुनः प्रकृतितो जातं भूतग्रामं भूतसमुदायं इमं वर्त्तमानं कृत्स्नं समग्रमवशमस्वतंत्रमविद्यादिदोषैः पर वशीकृतं प्रकृतेर्वशात् स्वभाववशात् ॥ ८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

तर्हि कीदृशी प्रकृतिः स च कथं सृष्टावुपयुक्तेत्याशङ्क्याह एवमिति संसारस्यानादि त्वद्योतनार्थं पुनः पुनरित्युक्तं भूतसमुदायस्य विद्यास्मितादि दोषपरवशत्वे हेतुमाह स्व भाववशादिति ॥ ८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

नत्वसंगो निर्विकारश्च त्वं कथं सृजसीत्यपेक्षायामाह प्रकृतिमित्यादि स्वां स्वाधीनां प्रकृतिमवष्टभ्य अधिष्ठाय प्रलये लीनं सन्तं चतुर्विधमिमं सर्वभूतग्रामं कर्म्मादिपरवशं पुनः पुनर्विविधं सृजामि विशेषेण सृजामीति वा कथं प्रकृतेर्वशात् प्राचीनकर्मनिमित्ततत्तत्स्व भाववशात् ॥ ८ ॥

नवलभाष्यं ।

हे अर्जुन इसप्रकार अविद्या लक्षणजो अपनी प्रकृति तिसको वशकरके मैं यह जो प्रकृतिवशसे नाम स्वभाववशसे अविद्याके दोषोंके आधीन जो सम्पूर्णभूत समुदाय तिसको बारम्बार रचताहूं ॥ ८ ॥

नच मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

तर्हि तस्यैव परमेश्वरस्य तद्भूतग्रामं विषमं विदधतः तन्निमित्ताभ्यां धर्माधर्माभ्यां सम्बन्धः स्यादितीदमाह भगवान् नचमामिति नच मामीशं तानि भूतग्रामस्य विषमविसर्गनिमित्तानि

कर्म्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय तत्र कर्म्मणामसम्बन्धत्वे कारणमाह उदासीनवदासीनं यथोदासीन उपेक्षकः कश्चित् तद्वदासीनमात्मनोऽविक्रियत्वमसंसक्तं फलसङ्गरहितमभिमानवर्जितमहङ्करोमीति तेषु कर्मस्वतोऽन्यस्यापि कर्तृत्वाभिमानाभावः फलं सङ्गाभावश्चाबन्धकारणमन्यथ कर्मभिर्बध्यते मूढः कोशकारवदित्यभिप्रायः ॥ ९ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यदि प्राकृतं भूतग्रामं स्वभावादविद्यातन्त्रं विषमं विदधासि तर्हि तव विषमसृष्टिप्रयुक्तं धर्मादिमत्त्वमित्यनीश्वरत्वापत्तिरिति शङ्कते तर्हीति तत्रेति सप्तम्या परमेश्वरो निरुच्यते ईश्वरस्य फलसंगाभावात् कर्तृत्वाभिमानाभावाच्च कर्मासम्बन्धवदीश्वरादन्यस्यापि तदुभयाभावो धर्माद्यसम्बन्धे कारणमित्याह अतोन्यस्येति यदि कर्मसु कर्तृत्वाभिमानो वा कस्यचित् कर्मफलसंयोगो वा स्यात्तत्राह अन्यथेति ॥ ९ ॥

स्वामिकृतटीका।

नन्वेवं नानाविधानि कर्म्माणि कुर्वतस्तव जीववद्बन्धः कथं न स्यादित्यत आह नच मामिति तानि विश्वसृष्ट्यादीनि कर्म्माणि मां न निबध्नन्ति कर्म्मासक्तिर्हि बन्धहेतुः साचाप्तकामत्वान्मम नास्ति अत उदासीनवद्वर्तमानस्य मे बन्धं नोपपादयति उदासीनत्वे कर्तृत्वानुपपत्तेः कर्तृत्वं चोदासीनत्वानुपपत्तेरुदासीनवत् स्थितमित्युक्तं ॥ ९ ॥

नवलभाष्य।

तौ इसप्रकार विषम प्राणियोंके समूहको रचताहुआ जो परमेश्वर तिसको भी उस विषम सृष्टिकेकारणसे उत्पन्नहुये जो धर्म अधर्म तिन्होंकरके सम्बन्ध होनाचाहिये तौ इसआशंकाको निवृत्त करनेको भगवान् कहते हैं (नचमांतानीति) हे अर्जुन वे जो भूत समुदायकी विषम सृष्टिके निमित्त से उत्पन्नहुये जे कर्म्म ते ईश्वर जो मैं हूं तिसको नहीं बन्धनकरते हैं तिन कर्म्मोंके असम्बन्धमें कारणकहतेहैं कि हे अर्जुन कैसा मैं हूं तिसको नहीं बन्धनकरतेहैं कि (उदासीनवदासीनं) उदासीन जो कोई तटस्थ पुरुष अर्थात् जैसे कोई उसकीइच्छा न करै और न द्वेषकरै और उसमेंस्थित तौ रहै उसको उदासीनकहते हैं तद्वत् स्थितहौं और असक्त अर्थात् फल संग रहित उन सृष्ट्यादिकर्म्मोंमेंस्थितहौं अर्थात् अभिमानवर्ज्जित सृष्टि आदि कर्म्मोंको करताहूं इससे मुझको सृष्ट्यादिकर्म नहीं बन्धनकरते हैं और जो कोई अभिमानरहित और फलमें आसक्तिरहित कर्म्मकरताहै तौ उसको भी बन्धन नहीं होताहै और अभिमानपूर्वक कर्म्मफलोंमें आसक्तिसहित जो मूढ़पुरुष कर्म्मकरताहै सो तौ कोशकारकीनाईं उन कर्म्मोंकरके बन्धन हीकोप्राप्तहोताहै अर्थात् कोशकार एक कुप्पीकाकीड़ाहोताहै सोअपनेरहनेको स्थान बनाताहै सो इसरीतिसे उसकुप्पीको बनाताहै जिसमें दरवाजा भी बन्दकरदेताहै तौ उसको निकलनेकोस्थान जब न रहा तौ आप भी उसके भीतर बन्दहोजाताहै तैसे अज्ञ पुरुष भी इसरीति से कर्म्म करताहै जिसमें अपने कियेहुये कर्म्मोंसे आपही बन्धनको प्राप्तहोता है यह अभिप्रायहै ॥ ९ ॥

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्त्तते ॥ १० ॥

शङ्करभाष्यम्।

तत्र भूतग्राममिमं विसृजाम्युदासीनवदासीनमिति च विरुद्धमुच्यते तत्परिहारार्थमाह मयेति मया सर्वतो दृशिमात्रस्वरूपेणाविक्रियात्मनाऽध्यक्षेण मम माया त्रिगुणात्मिकाऽविद्यालक्षणा प्रकृतिः सूयते उत्पादयति सचराचरं जगत् तथाच मन्त्रवर्ण एको देवः सर्व्वभूतेषु गूढः सर्व्व व्यापी सर्वभूताऽन्तरात्मा कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चेति साक्षि मात्रेण हेतुना निमित्तेनाऽनेनाध्यक्षत्वेन कौन्तेय जगत् सचराचरं व्यक्तात्मकं विपरिवर्त्तते सर्वा वस्थासु दृशि कर्मत्वापत्तिनिमित्ता हि जगतः सर्व्वा प्रवृत्तिरहमिदं भोक्ष्ये पश्यामीदं शृणोमीदं सुखमनुभवामि दुःखमनुभवामि तदर्थमिदं करिष्याम्येतदर्थमिदं करिष्ये इदं ज्ञास्यामीत्याद्य गतिनिष्ठा अवगतिरवसानो योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्नित्यादयश्च मन्त्रा एतमर्थं दर्शयन्ति तत श्चैकस्य देवस्य सर्वाध्यक्षभूतचैतन्यमात्रस्य परमार्थतः सर्व्वभोगानभिसम्बन्धिनोऽन्यस्य चेत नान्तरस्याभावे भोक्तुरन्यस्याभावात् किं निमित्तेयं सृष्टिरित्यत्र प्रश्नप्रतिवचनेऽनुपपन्ने को ऽद्धा वेद क इह प्रावोचत्कुत आयातः कुत इयं विसृष्टिरित्यादिमन्त्रवर्णेभ्यो दर्शितञ्च भग वता अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव इति ॥ १० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ईश्वरे स्रष्टृत्वमौदासीन्यत्वंच विरुद्धमिति शङ्कते तत्रेति पूर्वग्रन्थः सप्तम्यर्थः विरो धपरिहारार्थमुत्तरश्लोकमवतारयति तदिति तृतीयाद्वयं समानाधिकरणमित्यभ्युपेत्य व्या चष्टे मयेत्यादिना प्रकृतिशब्दार्थमाह ममेति तस्या अपि ज्ञानत्वं व्यावर्तयति त्रिगुणेति पराभिप्रेतं प्रधानं व्युदस्यति अविद्येति साक्षित्वे प्रमाणमाह तथाचेति मूर्त्तित्रयात्मनो भेदं वारयति एक इति अखण्डजाड्यं प्रत्याह देव इति आदित्यवत्ताटस्थ्यं प्रत्यादिश ति सर्वभूतेष्विति किमिति तर्हि सर्वैर्नोपलभ्यते तत्राह गूढ इति बुद्ध्यादिवत्परिच्छिन्न त्वं व्यवच्छिनत्ति सर्वव्यापीति तर्हि नभोवदनात्मत्वं नेत्याह सर्वभूतेति तर्हि तत्र तत्र कर्मतत्फलसम्बन्धित्वं स्यात्तत्राह कर्मेति सर्वाधिष्ठानत्वमाह सर्वेति सर्वेषु भूतेषु सत्तास्फू र्तिप्रदत्वेन संनिधिवर्त्तीच्यते न केवलं कर्मणामेवायमध्यक्षोऽपि तु तद्वतामपीत्याह सा क्षीति दर्शनकर्तृत्वशङ्कां शातयति चेतेति अद्वितीयत्वं केवलत्वं धर्माधर्मादिराहित्यमाह निर्गुण इति किं बहुना सर्वविशेषशून्य इति चकारार्थः उदासीनस्यापीश्वरस्य साक्षित्व मात्रं निमित्तीकृत्य जगदेतत् पौनःपुन्येन सर्गसंहारावनुभवतीत्याह हेतुनेति कार्य्यवत् कारणस्यापि साक्ष्यधीना प्रवृत्तिरिति वक्तुं व्यक्ताव्यक्तात्मकमित्युक्तं सर्वावस्थास्वित्यनेन सृष्टिस्थितिसंहारावस्था गृह्यन्ते तथापि जगतः स्वर्गादिभ्यो भिन्ना प्रवृत्तिः स्वाभाविकी ने श्वरायत्तेत्याशङ्क्याह दृशीति नहि दृशा व्याप्यत्वं विना जडवदस्वर्गकापि प्रवृत्तिर्भुरिति हिशब्दार्थः तामेव प्रवृत्तिमुदाहरति अहमित्यादिना भोग्यस्य विषयोपलम्भाभावासम्भ वान्नानाविधां विषयोपलब्धिं दर्शयति पश्यामीति भोगफलमिदानीं कथयति सुखमिति विहितप्रतिषिद्धाचरणनिमित्तं सुखदुःखञ्चेत्याह तदर्थमिति नच विमर्शपूर्वकं विनानुष्ठान मित्याह इदमिति इत्याद्या प्रवृत्तिरिति सम्बन्धः सा च प्रवृत्तिः सर्वादृक्कर्मत्वमुररीकृ त्यैव विवृणोति इत्युक्तं निगमयति आगीतीनि तत्रैव च प्रवृत्तेरवसानमित्याह अवगतिरं वसान इति परस्याध्यक्षत्वमात्रेण जगच्चेष्टेत्यत्र प्रमाणमाह योऽस्येति अस्य जगतो यो

ध्यक्षोनिर्विकारः स परमे प्रकृष्टे हार्दे व्योम्नि स्थितो निर्विकारः न परमे प्रकृष्टे हार्दे व्योम्नि स्थितो दुर्विज्ञेय इत्यर्थः ईश्वरस्य साक्षित्वमात्रेण स्रष्टृत्वे स्थिते फलितमाह ततश्चेति किंनिमित्तापरस्येयं सृष्टिर्न तावद्भोगार्था परस्य परमार्थतो भोगासम्बन्धित्वात्तस्यसर्व साक्षीभूतचैतन्यमात्रत्वान्न चान्यो भोक्ता चेतनान्तराभावादीश्वरस्यैकत्वादचेतनस्याभो क्तृत्वान्न च सृष्टिरपवर्गार्थतद्विरोधित्वान्नैवं प्रश्नो वा तदनुरूपं प्रतिवचनं वा युक्तं परस्य मायानिबन्धने सर्गे तत्यानवकाशत्वादित्यर्थः परस्यात्मनो दुर्विज्ञेयत्वे श्रुतिमुदाहरति कोऽद्धेति तस्मिन् प्रवक्तापि संसारमण्डलेनास्तीत्याह क इहेति जगतः सृष्टिकर्तृत्वेन परस्य ज्ञेयत्वमाशङ्क्य कूटस्थात्ततो न सृष्टिर्जातेत्याह कुत इति नह्येयं विविधा सृष्टिरन्यस्मादपि कस्माच्चिदुपपद्यते अन्यस्य वस्तुनो भावादित्याह कुत इति कथं तर्हि सृष्टिरित्याशङ्क्याज्ञानाधीनेत्याह दर्शितञ्चेति ॥ १० ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवोपपादयति मयेति मया अध्यक्षेण अधिष्ठात्रा निमित्तभूतेन प्रकृतिः स चराचरं विश्वं सूयते जनयति अनेन मदधिष्ठानेन हेतुना इदं जगद्विपरिवर्त्तते पुनः पुनर्जायते सन्निधिमात्रेणाधिष्ठातृत्वात् कर्तृत्व मुदासीनत्वञ्चाविरुद्धमितिभावः ॥ १० ॥

नवलभाष्य।

तहां जो भगवान्ने कहा कि सबभूतों के समूहको मैं बारम्बार रचताहूं और यह भी कहा कि उदासीनवत् मैं स्थितहूं अर्थात् जैसे उदासीन पुरुष कुछनहीं करता है तैसेमैंभी न हाथपाउं चलाताहूं केवल तटस्थवत् स्थित रहताहूं तो यह कथनपरस्पर विरुद्धसा मालूमपड़ताहै क्योंकि जब सृष्टचादिकर्म करतेहो तो उदासीनवत् स्थिति कैसेसम्भवहोती है और जोउदासीनवत् स्थितहो तोबड़ीभारी जगत्की रचना कैसे सम्भव होतीहै तो इस विरोध को दूरकरनेको भगवान्कहतेहैं कि (मयेति) हे अर्ज्जुन सबजगह दृष्टिमात्र स्वरूपकरके अविक्रिय विकाररहित सबकास्वामी आत्मरूपकरके स्थित जो मैं तिसकारणसे त्रिगुणात्मिका अविद्यालक्षण जो मेरीमायारूप प्रकृति सो चरअचर जगत्कोरचती है अर्थात् उत्पन्नकरती है इसीपरमेश्वर के साक्षिस्वरूप अर्थकोमंत्र भी कहताहै कि (एकोदेवःसर्व्वभूतेषुगूढःसर्व्व व्यापीसर्व्वभूतान्तरात्माकर्म्माध्यक्षःसर्व्वभूताधिवासः साक्षीचेताकेवलोनिर्गुणश्चेति अर्थ सबभूतोंमें एकही प्रकाश स्वरूप देव छिपाहुआहै औ सर्वव्यापीहै और सबका अन्तरात्मा अन्तर्य्यामी है और कर्म्मफलोंका देने वालाहै और सबभूतोंका अधिवास आधार है और सबकाद्रष्टा है अर्थात् बुद्धि आदिकका देखनेवालाहै और चित्रूपनाम ज्ञानस्वरूपहै और अद्वितीयहै और निर्गुणहै अथवा केवल निर्गुणही प्राकृतगुणोंके सम्बन्धसेरहित ही है ॥ और हे अर्ज्जुन इसहेतुकरके अर्थात् इससाक्षिरूप निमित्त करके मैं अध्यक्षहौं मायाकाप्रेरकहौं इसहेतुकरके सब चरअचर व्यक्तअव्यक्तरूप जगत् जन्मादिभावको प्राप्तहोताहै और कुछ साक्षिरूप परमेश्वरके अनुग्रह से महदहंकारादिक्रमसे अर्थात् महत्तत्त्व अहंकार आदि तत्त्वोंकेक्रमसेसृष्टि

स्थिति संहाररूप कार्य्यहीका निर्म्माणहोय सो नहींहै किन्तु सृष्टिके अनन्तर सबजगत्की प्रवृत्ति भी साक्षीके आधीनही सम्भवहोतीहै क्योंकि सब अवस्थाओंमें परमेश्वरकी दृष्टिका व्यापारही निमित्त जिसमें ऐसीजगत्की सब प्रवृत्ति दिखाईपड़तीहै जैसे यह मैं भोजनकरता देखता व सुनता और यह सुख अनुभवकरताहूं अर्थात् जानताहूं और यह मैं दुःखकोभोगता हूं और तिस दुःखकीनिवृत्तिकेलिय यहयत्नमैंकरूंगा और इसकामकेलिये यह मैं करूंगा और यह मैं जानूंगा तो यहां भोजनादिक नानाक्रियाओंमें मनुष्यकीप्रवृत्ति ज्ञानकेआधीन नहींहोती है अर्थात् जानकरकेही प्रवृत्ति होतीहै और बिनाजानेबिनाकुछ विचारकरे किसीकीभी प्रवृत्तिनहींहोतीतब जानना यहधर्म साक्षिरूप परमेश्वरकी दृष्टिकेबिना कभी जड़वर्गमें सम्भव ही होसक्ता यद्यपि चलना खाना पीना इत्यादि इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिमें बुद्धि की प्रेरणा प्रतीतहोतीहै तौ भी यह मैं सुखकोभोगताहूं यहां बुद्धिकाविषय जो सुखका जानना तिसका निश्चय बिना साक्षीके कौन करसक्ताहै और यह इससमयमें मेरीबुद्धि अशुद्धहै और मेरीबुद्धि अबनिर्म्मलहै यह बिना साक्षीके कैसे प्रतीतिहोसक्ती है क्योंकि बुद्धि अपनी शुद्धि और अशुद्धिको कभी जान नहीं सक्ती और वास्तवमें तौ बिना चेतन आत्माके अनुग्रहके घटवत् जड़ बुद्धि किसी इन्द्रियकी भी प्रेरणा नहीं करसक्ती है इससे सिद्ध हुआ यह सिद्धान्त कि सबप्रवृत्ति साक्षीकेही आधीनहै इसीप्रकारसे दुष्कर्म्मादिकोंसे निवृत्ति भी ज्ञानकेआधीनहै क्योंकि कोई जबतक यह निश्चय नहीं करलेताहै कि इससे मुझको दुःखहै वा निष्फलताहै तबतक कोईनिवृत्तनहींहोता यह लोकमेंप्रसिद्धहै इससे निवृत्तिसे भी साक्षिचैतन्यकानिश्चयहोताहै तौ फिर प्रवृत्ति निवृत्ति ये दोनों परमेश्वरकीदृष्टिके अधीन हैं यहअर्त्थ सिद्धहुआ और इसीअर्त्थको (योस्याध्यक्षःपरमेव्योमन्) इसको आदिलेके वेदकेमंत्रभी कहतेहैं और मंत्रकाअर्त्थ तौ जोइसजगत्का अध्यक्षस्वामी निर्विकार परमेश्वरहैं सोपरमव्योम जो हार्द्दाकाश अर्त्थात् हृदय का आकाश तिसमें स्थितहै ॥ इससे यहसूचितहुआ कि इस निर्विकार चिद्रूप आत्माहीके प्रकाशसे बुद्ध्यादि जड़वर्ग अपने२कार्य्यमें प्रवृत्तहोता है तिससे एक अद्वितीय और सबकाअध्यक्षप्रेरक और चैतन्यमात्र ऐसा जो देव उसको परमार्थसे नाम यथार्त्थ सत्यदृष्टिसे सबभोगोंका सम्बन्ध संभव होता नहीं और दूसरा कोई चेतनहै नहीं इससे किसी भोक्ताके अभावसे अर्त्थात् नहीं होनेसे कौनकारणसे यहसृष्टिहै इसमें प्रश्न और उत्तर दोनों नहीं बनसक्ते अर्त्थात् जो यथावत् जाननेवालाहै तौ उसकी दृष्टिमें सृष्टि ही नहीं सम्भवहोती है तौ उसविषयकाप्रश्न कैसे करसक्ताहै और जो अज्ञ कोई प्रश्नकरे तौ वहां प्रश्न तौ अज्ञानकेबीजसे सम्भवहोताहै परन्तु जो कोई उत्तरदेवेगा सो यथावत् जानहीकेकहेगा तौ वहां विचारकरनेसे उत्तर ठीक ठीक बनतानहीं इससे प्रश्न औ उत्तर नहीं बनसक्ते ऐसा कहा कदाचित्

कोई कहै जीवके भोगकेलिये और मोक्षकेलिये सृष्टिहै तौ जीवका परमार्थ स्वरूप जो निर्विकार तिसमें भोग बननहींसक्ताहै क्योंकि भोग नाम विकारहीकाहै तौ विकाररहित आत्मामें विकार कैसे सम्भवहोताहै और जो कहै बुद्धिकोभोगहै तौ बुद्धि आपही भोग्यरूपहै वह भोगनेवाली कैसे बनसक्तीहै कदाचित् कहोदोनों मिलेहुओंको भोगहोताहै तौ दोनों मिलिके जो हुआ उसको मिथ्याकरके वर्णन कियागयाहै इसी आशयसे (कोऽद्धावेदक इहप्रावोचत् कुतआयातः कुतइयं विसृष्टिरितिमन्त्रः) अर्थ कौनसाक्षात् उसपरमात्माको जानसक्ताहै और कहांसेआके प्राप्तहुआ इसप्रकारसे कौन इसको कहिसक्ताहै और कैसे इसनिर्विकारसे विविधप्रकारकी सृष्टिहोसक्ती है नकहौ फिरकैसे सृष्टिहुई और तो कोईदूसरा समर्थनहीं है जो ऐसीविचित्र सृष्टिको उत्पन्नकरै तौ कहते हैं परमेश्वरकी संनिधि मात्रसे उसकी अनन्तशक्ति जो मायासोई जगत्को उत्पन्न करतीहै इससे यहसब प्रपंच केवलमाया विलासमात्र व्यवहार दशामें प्रतीतहोरहाहै परमार्थमें तौ एक परमात्माहीसत्यहै सोभगवान्ने भी इसीअर्थको दिखायाहै कि (अज्ञानेनावृतंज्ञानंतनमुह्यन्तिजन्तवः) हे अर्जुन अज्ञान करके ज्ञान आवृत अर्थात् ढकाहुआहै तिसहेतुसे प्राणीमोहको प्राप्तहोरहे हैं अर्थात् मैं ब्राह्मणहौं मैं क्षत्रीहौं मैं वैश्यहौं मैं शूद्रहौं मैं पुण्यकरनेवालाहूं मैं भक्तहूं इसप्रकार करके नानाआत्यादि धर्मोंको एक अद्वितीय निर्विकार चैतन्यमात्र अपने आत्मा में अज्ञानसे आरोपण करके सुःखदुःख मोहादिभागीहोते हैं ॥ इससे अज्ञान निबन्धन मायाहीकरके सृष्टिहै यहसिद्धांत भगवान्ने सूचनकिया॥ १०॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीन्तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूत महेश्वरम् ॥ ११ ॥

शंकरभाष्यम्।

एवं मां नित्यशुद्धमुक्तस्वभावं सर्वजन्तूनामात्मानमपि सन्तं अवैति अवजानन्त्यवज्ञां परिभवं कुर्वन्ति मां मूढा अविवेकिनो मानुषीं मनुष्यसम्बंधिनीं तनुं देहमाश्रितं मनुष्यदेहेन व्यवहरन्तमित्येतत् परं प्रकृष्टं भावं परमात्मतत्त्वमाकाशकल्पमाकाशादप्यन्तरतममजानन्तो मम भूतमहेश्वरं सर्वभूतानां महान्तमीश्वरं स्वमात्मानं ततश्च तस्य ममावज्ञानभावनेन [illegible] वराकास्ते ११॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासो नित्यमुक्तश्चेत्त्वं तर्हि किमिति त्वामेवात्मत्वेन भेदेन वा सर्वे न भजन्ते तत्राह एवमिति विपर्ययस्तबुद्धित्वं भगवदवज्ञायां कारणमित्याह मूढा इति भगवतो मनुष्यदेहसम्बन्धात्तस्मिन् विपर्ययः सम्भवतीत्याह मानुषीमिति अस्मदादिवद्देहतादात्म्याभिमानं भगवतो व्यावर्त्तयति मनुष्येति भगवन्तमवजानतामविवेकमूलाज्ञानं हेतुमाह परमिति ईश्वरावज्ञानात् किं भवतीत्यपेक्षायां तदवज्ञानप्रतिबन्धबुद्धयः शोच्या भवन्तीत्याह ततश्चेति भगवदवज्ञानादेव हेतोरवजानन्तस्ते जन्तवो वराकाःशोच्याःसर्वपुरुषार्थबाह्याः स्युरिति सम्बन्धः तत्रहेतुं सूचयतितस्येतिप्रकृतस्यभगवतो

ऽवज्ञानमनादरणं निन्दनं वा तस्य भावनं पौनः पुन्यं तेन हतास्तज्जनितदुरितप्रभावात् प्रतिबद्धबुद्धय इत्यर्थः ॥ ११ ॥

स्वामिकृतटीका ।

नन्वेवं भूतं परमेश्वरं त्वां किमिति केचिन्नाद्रियन्ते तत्राह अवजानन्तीति द्वाभ्यां सर्वभूतमहेश्वररूपं मदीयं परंभावं तत्त्वमजानन्तोमूढा मूर्खा मामवजानन्ति मामवम न्यन्ते अवज्ञाने हेतुः शुद्धसत्त्वमयीमपि तनुं भक्तेच्छावशान्मनुष्याकारामाश्रितवन्त मिति ॥ ११ ॥

नवलभाष्य ।

अब कदाचित् अर्जुनकहै सबकेस्वामी और सबके अन्तरात्मा सबको कर्म्म फलोंके देनेवाले आपहैं तौ फिर तुम्हाराही सबपुरुष क्योंनहीं भजन करते तिस आशंकाको निवृत्त करतेहुये भगवान् कहते हैं कि (अवेति) हे अर्जुन इसप्रकार नित्यशुद्ध मुक्तस्वभाव सबप्राणियोंका आत्माभी मैंहूं परन्तु जब मनुष्य शरीरका आश्रयण करताहूं अर्थात् रामकृष्णादि अवतार धारण करताहूं तौमूढ़मनुष्यअर्थात् अविवेकी मनुष्यमनुष्यदेहकरके व्यवहारकरते मुझको देखकरकेपरम उत्कृष्टपरमात्मतत्त्व आकाशकेसदृश और आकाशके भी अन्तर्गत ऐसा जो सबभूतोंका ईश्वर और अपना आत्मा मुझको नहीं जानतेहैं इससे मेरीअवज्ञा करते हैं अर्थात् तिरस्कार करते हैं इतर मनुष्यके तुल्य मुझको भी जानते हैं तौ फिरमेरी अवज्ञा करनेसे विवेकज्ञानही उनको उत्पन्न नहींहोताहै इससे वेमूढ़ वराकहैं अर्थात् पशुओं के तुल्य पामरहैं तौ मेरा सबसे अधिक उत्कृष्ट प्रभावका नहीं जाननाही अवज्ञामें कारणहै ॥ ११ ॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीञ्चैव प्रकृतिं मोहनीं श्रिताः ॥ १२ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

कथं मोघाशेति मोघाशा वृथा आशा आशिषो येषां ते मोघाशास्तथा मोघकर्माणो यानि चाग्निहोत्रादीनि तैरनुष्ठीयमानानि कर्माणि तानि च तेषां भगवत्परिभवात् स्वात्मभूतस्यावज्ञानान्मोघान्येव निःफलानि कर्माणि भवन्तीति मोघकर्माणस्तथा मोघज्ञानाः मोघं निःफलं ज्ञानं येषां ते मोघज्ञानाः ज्ञानमपि तेषां निःफलमेव स्यात् विचेतसो विगतविवेकाश्च ते भवन्तीत्य भिप्रायः किञ्च ते भवन्ति राक्षसीं रक्षसां प्रकृतिं स्वभावं आसुरीमसुराणाञ्च प्रकृतिं मोहनीं मोहकरीं देहादिवादिनीं श्रिता आश्रिताः छिन्धि भिन्दि पिब खाद, परस्वमपहरेत्येवं वद नशीलाः क्रूरकर्म्मकुर्वाणा भवन्तीत्यर्थः असूर्य्यानाम ते लोका इति श्रुतेः ॥ १२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

भगवन्तमवजानतां प्रश्नपूर्वकं शोच्यत्वं विशदयति कथमिति भगवन्निन्दापराणां न काचिदपि प्रार्थनार्थवतीत्याह वृथेति ननुभगवन्तं निन्दतोऽपि नित्यं नैमित्तिकं वा कर्मा नुतिष्ठन्ति तदनुष्ठानाच्च तेषां प्रार्थिताः सार्था भविष्यन्तीति नेत्याह तथेति परिभवस्ति

रस्करणं अवज्ञानमनादरणं तेषामपि शास्त्रार्थविज्ञानवतां तद्द्वारा प्रार्थनार्थवत्त्वमित्याशङ्क्याह तथा मोघेति तथापि यौक्तिकविवेकवशात्तत्प्रार्थनासाफल्यमित्याशङ्क्याह विचेतस इति न केवलमुक्तविशेषणवत्त्वमेव तेषां किन्तु वर्त्तमानदेहपातादनन्तरं तत्तदतिक्रूरयोनिप्राप्तिश्च निश्चितेत्याह किञ्चेति मोहकारीमिति प्रकृतिद्वयेऽपि तुल्यं विशेषणं छिन्धि भिन्धि पिब खादेति प्राणिहिंसारूपो रक्षसां स्वभावोऽसुराणां स्वभावस्तु न देहिनो जुहुधि परस्वभेवापरेत्यादिरूपः मोहो मिथ्याज्ञानं उक्तमेव स्फुटयति छिन्धीति ॥ १२ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च मोघाशा इति मत्तोऽन्यदेवतान्तरं क्षिप्रं फलं दास्यतीत्येवंभूता मोघा निःफलैवाशा येषां ते अतएव मद्विमुखत्वान्मोघानि निःफलानि कर्माणि येषां ते मोघमेव नानाकुतर्काश्रितं शास्त्रज्ञानं येषां ते अतएव विचेतसो विक्षिप्तचित्ताः सर्वत्र हेतुः राक्षसीं तामसीं हिंसादिप्रचुरां आसुरीञ्च राजसीं कामदर्पादिबहुलां मोहनीं बुद्धिभ्रंशकरीं प्रकृतिं स्वभावं श्रिताः आश्रिताः सन्तो मामवजानन्तीति पूर्वेणैवान्वयः ॥ १२ ॥

नवलभाष्य।

फिरकैसे भगवन्निन्दकोंकी प्रवृत्तिहै इस आकांक्षामें कहतेहैं (मोघेति) हे अर्जुन फिरवेमेरी अवज्ञा करनेवाले पुरुष कैसे हैं कि मोघ निष्फलहै आशा प्रार्थनाओंकी सिद्धि जिन्होंकी अर्थात् सबका अध्यक्ष जो मैं तिसके विरोधसे उननिन्दकोंकी आशासब निष्फलही होतीहैं और तैसेही जे अग्निहोत्रादि कर्म्म वे करते हैं तेभी अपना आत्मा जो भगवान् तिसके तिरस्कारसे उनमूढ़ोंके निष्फलहीहोते हैं अर्थात् नाममात्रसे यज्ञादि कर्म्म करनेसे और भी गर्वरूपी पर्वतपै चढ़ेहुये निष्किंचन जे भगवद्भक्त तिनके तिरस्कारसे अहंकाररूप अग्निसे दग्ध कर्म्मफल भी उनको नहीं प्राप्तहोता है और तैसेही मोघ निष्फलहै शास्त्र जन्यज्ञान जिन्होंका ऐसेविचेतस विवेक रहितहुये संसारमें परिभ्रमण करतेहैं अर्थात् शास्त्रके पढ़नेका फलयह है कि शास्त्रीय ज्ञानकरके परमेश्वरके माहात्म्यको यथावत् जानके परमेश्वरकी दृढ़भक्ति करके संसाररूप बन्धनसे छूटके परमानन्द प्राप्तिसो तौ विपरीत बुद्धिसे भगवान्‌की निन्दासे होतीनहीं तौ वेमूढ़ वादविवाद करते हुये वृथाही शास्त्रका परिश्रम करते हैं फिरजब विवेकज्ञान नष्टहुआ तौ मोह करानेवाला अर्थात् देहहीमें आत्मबुद्धिका निश्चय करानेवाला जो राक्षसोंका औ असुरोंका स्वभाव तिसको आश्रय करके वे भगवान्‌की निन्दा करनेवाले पुरुष नरकहीको प्राप्तहोतेहैं तहां भेदनकरो छेदनकरो अर्थात् इसकोमार इसकोमार ऐसाकहना और आचरण भी करना और खावो पीवो यह उपदेशकरना इत्यादि प्राणियोंकी हिंसाकरना राक्षसोंका स्वभाव है औ न दानकरो और न पुण्यकरो और न हवनकरो और न तीर्थाटनकरो और न किसीब्राह्मणको और देवकोमानो किन्तु अच्छाअच्छा खावो और पीवो और जहांतकबने तहांतक बिरानाधन और बिरानीस्त्रियाओंको अपहरणकरो इत्यादिक असुर स्वभावहैं तैसे वचन कहतेहुये क्रूरकर्मोंको करते

हुये नरकमें पड़तेहैं और ईशावास्यकी श्रुतिमें भी ऐसाकहाहै कि (असुर्या नामतेलोकाअन्धेनतमसावृताः । तांस्तेप्रेत्याभिगच्छन्तियेकेचात्महनोजना इति) अर्थ जे कोई मनुष्य देहको प्राप्तहोके परमेश्वरका भजन नहीं करते हैं ते आत्मघाती मनुष्य उनअसुरोंके लोकोंको प्राप्तहोते हैं जे लोकघोर अन्धकार करकेयुक्त हैं ॥ १२ ॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

ये पुनः श्रद्दधानाः भगवद्भक्तिलक्षणे मोक्षमार्गे प्रवृत्ताः महात्मान इति महात्मानस्तु अक्षुद्रचित्ता मामीश्वरं पार्थ दैवीं देवानां प्रकृतिं शमदमदयाश्रद्धादिलक्षणामाश्रिताः सन्तो भजन्ति सेवन्तेऽनन्यमनसोऽनन्याचित्ताज्ञात्वा मां भूतादिं भूतानां आश्रयमादिकारणं वियदादीनां प्राणिनां चादिकारणमाश्रयमव्ययम् ॥ १३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

के पुनर्भगवन्तं भजन्ते तानाह ये पुनरिति महान् प्रकृष्टो यज्ञादिभिः शोधित आत्मास्तत्वंयेषामिति व्युत्पत्तिमाश्रित्याह अक्षुद्रेति तुशब्दोऽवधारणे प्रकृतिं विशिनष्टि शमेति अनन्यस्मिन् प्रत्यग्भूते मयि परस्मिन्नेव मनोयेषामिति व्युत्पत्त्या व्याकरोति अनन्यचित्ता इति अज्ञाते सेवानुपपत्तेः शास्त्रोपपत्तिभ्यामादौ ज्ञात्वा ततः सेवन्ते इत्याह ज्ञात्वेति अव्ययमविनाशिनं ॥ १३ ॥

स्वामिकृतटीका ।

के तर्हि त्वामाराधयन्तीत्यत आह महात्मान इति महात्मानः कामाद्यनभिभूतचित्ताः अतएव अभयं सत्त्वसंशुद्धिरित्यादिना वक्ष्यमाणां दैवीं प्रकृतिं स्वभावमाश्रिताः अतएव मद्व्यतिरेकेण नास्त्यन्यस्मिन्मनो येषां ते तु भूतादिं जगत्कारणं अव्ययं नित्यञ्च मां ज्ञात्वा भजन्ति ॥ १३ ॥

नवलभाष्य ।

और जे फिर श्रद्धायुक्तहैं और भगवद्भक्तिरूप जो मोक्षमार्ग तिसमें प्रवृत्त हुये महात्मा उदारस्वभाव मनुष्यहैं तेतौ हे अर्जुन मैं जो परमेश्वर तिसको भजतेहैं अर्थात् सेवन करतेहैं जे कैसेहैं दैवीजोप्रकृति तिसकोआश्रयण करते हैं अर्थात् शमदम दयाश्रद्धादिरूप जो देवताओंका स्वभाव तिसको आश्रय करतेहुये हैं इसीसे सबभूतोंका सब प्राणियोंका अथवा आकाशादि भूतोंका आदिकारणमुझकोजानके एकाग्रचित्तहोके मेराभजनकरतेहैं॥१३॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

कथं सततामिति सततं सर्वदा भगवन्तं ब्रह्मस्वरूपं मां कीर्त्तयन्तो यजन्तश्चेन्द्रियोपसंहारशम

दमदयाहिंसादिलक्षणैः धर्मैः प्रयतन्तश्च दृढव्रता दृढं स्थिरमचाञ्चल्यं व्रतं येषां ते दृढव्रता नमस्यन्तश्च मां हृदये शतमात्मानं भक्त्या नित्ययुक्ताः सन्त उपासते सेवन्ते ॥ १४ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

भजनप्रकारं पृच्छति कथमिति तत्प्रकारमाह सततमिति सर्वदेति श्रवणावस्था गृह्यन्ते कीर्तनं वेदान्तश्रवणं प्रणवजपञ्च व्रत ब्रह्मचर्यादि नमस्यन्तो मां प्रति चेतसा प्रह्वीभवन्तो भक्त्या परेण प्रेम्णा नित्ययुक्ताः सन्तः सदा संयुक्ताः ॥ १४ ॥

स्वामिकृतटीका।

तेषां भजनप्रकारमाह सततमिति द्वाभ्यां सततं सर्वदा स्तोत्रमन्त्रादिभिः कीर्तयन्तः केचिन्मामुपासते सेवन्ते दृढानिव्रतानि नियमा येषां तादृशाः सन्तो यतन्तश्च ऐश्वर्य ज्ञानादिषु प्रयत्नं कुर्वन्तः केचिद्भक्त्या नमस्यन्तश्च प्रणमन्तः अन्ये नित्ययुक्ता अनवरतं अवहिताः सेवन्ते भक्त्येति नित्ययुक्ता इति च कीर्तनादिष्वपि द्रष्टव्यं ॥ १४ ॥

नवलभाष्य।

किसप्रकार भजन करते हैं इस आकांक्षामें कहते हैं कि (सततमिति) हे अर्जुन ब्रह्मस्वरूप भगवान् जो मैंहूं तिसको निरन्तर सबकालमें कीर्त्तन करतेहुये अर्थात् स्तोत्रादिकों करके स्तुति करतेहुये और दृढ़व्रतहोके अर्थात् एक निश्चययुक्त चित्तहोके शमदमदया अहिंसादिरूप जे धर्मतिन्हों करके यत्न करतेहुये और हृदयमें शयन करनेवाला आत्मा जोमैं तिसको प्रणाम करतेहुये और निरन्तर भक्तिकरके युक्तहुये वे भक्तमेरी उपासना करते हैं अर्थात् मेरासेवन करते हैं ॥ १४ ॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखम् ॥ १५ ॥

शङ्करभाष्यम्।

ते केन केन प्रकारेणोपासत इत्युच्यते ज्ञानेति ज्ञानयज्ञेन ज्ञानमेव भगवद्विषयं यज्ञस्तेन ज्ञानयज्ञेन यजन्तः पूजयन्तो मामीश्वरं चान्येऽन्यामुपासनां परित्यज्य उपासते तच्च ज्ञानमेकत्वेन एकमेव परं ब्रह्मेति परमार्थदर्शनेन यजन्त उपासते केचिच्च पृथक्त्वेन आदित्यचन्द्रादिभेदेन स एव भगवान् विष्णुरादित्यादिरूपेणावस्थित इत्युपासते केचिद् बहुधावस्थितः स एव भगवान् सर्वतोमुखो विश्वरूप इति तं विश्वरूपं सर्वतोमुखं बहुधा बहुप्रकारेणोपासते ॥ १५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

उपासनप्रकारभेदप्रतिपित्सया पृच्छतिते केनेति तत्प्रकारभेदोदीरणार्थं श्लोकमवतारयति उच्यत इति इज्यते पूज्यते परमेश्वरोनेनेति प्रकृते ज्ञाने यज्ञशब्दः ईश्वरञ्चेति चकारोऽवधारणे देवतान्तरध्यानत्यागमपि शब्दसूचितं दर्शयति अन्यामिति अन्ये च ब्रह्मनिष्ठामिति यावत् ज्ञानयज्ञमेव विभजते तच्चेति उत्तमाधिकारिणामुपासनमुक्त्वा मध्यमानामधिकारिणामुपासनप्रकारमाह केचिच्चेति तेषामेव अहं यज्ञः स्मार्तः किञ्च स्वधाहं पितृभ्यो यद्दीयते तत् स्वधा तथा समौषधं सर्वप्राणिभिर्यदद्यते प्रकारान्तरेणोपासनमुदीरयति केचिदिति बहुप्रकारेणाग्न्यादित्यादिरूपेणेति यावत् ॥ १५ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च ज्ञानेति वासुदेवः सर्वमित्येवं सर्वात्मदर्शनं तदेव यज्ञस्तेन ज्ञानयज्ञेन मां यजन्तः पूजयन्तोऽप्युपासते तत्रापि केचिदेकत्वेनाभेदभावनया केचित् पृथग् भावनया दासोऽहमिति केचित्तु विश्वतोमुखं सर्वात्मकं मां बहुधा ब्रह्म रुद्रादि रूपेणोपासते ॥ १५ ॥

नवलभाष्य।

फिरकौन प्रकार करके उपासना करते हैं इसआशयसे कहतेहैं (ज्ञानयज्ञेनेति)हे अर्जुन पूर्वोक्त भक्तोंसे अन्य और जे ज्ञानीभक्तहैं ते भगवद्विषयक ज्ञानरूप जो यज्ञतिस करके मेरापूजन करतेहुये भेद उपासनाको त्याग करके एकत्व करके उपासना करते हैं अर्थात् एकही परब्रह्महै इस परमार्थ दर्शनरूप ज्ञानकरके यजन करतेहुये उपासना करते हैं और कोईभक्त तो पृथक् करके अर्थात् सोई भगवान् विष्णु सूर्यचन्द्रमादि भेदरूप करके स्थित हैं ऐसी दृष्टिकरके उपासना करते हैं और कोई भक्त तो सोईभगवानसर्वतो मुखहैं अर्थात् सबजगहहैं मुखादि अवयव जिसके ऐसा जो विश्वरूप तिसको बहुत प्रकारकरके उपासना करते ह ॥ १५ ॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

शङ्करभाष्यम्।

यदि बहुभिः प्रकारैरुपासते कथं त्वामेवोपासत इत्यत आह अहमिति अहं श्रौतकर्म्मभेदोऽहमेवाहं यज्ञः स्मार्त्तः किञ्च स्वधान्नमहं पितृभ्यो यद्दीयते तत् स्वधा तथा अहमौषधं सर्वप्राणिभिर्यदद्यते तदौषधशब्दवाच्यव्रीहिं यवादिसाधनमथवा स्वधेति सर्वप्राणिसाधारणमन्नमौषधमितिव्याध्युपशमार्थभेषजं मन्त्रोऽहं यत् पितृभ्यो देवताभ्यश्च हविर्दीयतेऽहमेवाज्यंहविष्टाहमग्निर्यस्मिन् हूयते सोऽप्यग्निरहमेवाहं हुतं हवनं कर्म च ॥ १६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

भगवदेकविषयमुपासनं तर्हि न सिध्यतीति शङ्कते यदीति प्रकारभेदमादाय ध्यायन्तोऽपि भगवन्तमेव ध्यायन्ति तस्य सर्वात्मत्वादित्याह अत आहेति क्रतुयज्ञशब्दयो रनयोरपौनरुक्त्यं दर्शयन् व्याचष्टे श्रौत इति क्रियाकारकफलज्ञानं भगवदतिरिक्तं नास्तीति समुदयार्थः ॥ १६

स्वामिकृतटीका।

सर्वात्मतां प्रपञ्चयति अहं क्रतुरिति चतुर्भिः क्रतुः श्रौतोऽग्निष्टोमादिः यज्ञः स्मार्तपञ्चयज्ञादिः स्वधा पित्र्यर्थं श्राद्धादिः औषधं ओषधिप्रभवमन्नं भेषजं वा मन्त्रो याज्यपुरोधोवाक्यादिः आज्यं होमादिसाधनं अग्निराहवनीयादिः हुतं होमः एतत्सर्वमहमेव ॥ १६ ॥

नवलभाष्य।

तब जो बहुत प्रकार करके उपासना करते हैं तो तुम्हारीही उपासना

करते हैं यहकैसे जानाजाय इसआकांक्षामें कहते हैं (अहमिति) हे अर्जुन वैदिककर्मों के भेदमें क्रतुरूप कर्म मैंहींहूं अर्थात् जिसमें बहुतसे खम्भेगाड़े जातेहैं और मध्यमें कुण्डबनाकरके हवन होताहै ऐसा जो अग्निष्टोमादि याग उसको क्रतुकहते हैं और बलि वैश्वदेवादिक जो स्मार्त्तकर्म तिसको यज्ञ कहते हैं सोभी मैंहींहूं और जो पितरों को अन्न दियाजाता है उसको स्वधाकहते हैं सोभी मैंहींहूं और जोअन्न सबप्राणियों करके भोजनकिया जाता है ऐसाजो धान गेहूं यवआदि तिसको औषध कहते हैं सोभी मैंहींहूं अथवा सबप्राणियोंका साधारणजो अन्नहै तिसको स्वधाकहतेहैं और औ-षध शब्दसे रोगकेदूर करनेकेलिये जो कषाय चूर्णआदि औषधी है तिसका ग्रहण है तेदोनों मैंहींहूं और जिसकरके देवताओं के अर्थ हविर्द्रव्यदिया जाता और पितरोंके अर्थ श्राद्धादि दियाजाता है वहमन्त्र मैंहींहूं और जो देवताओं के लिये हवनमें घृतआदि हविर्द्रव्य दियाजाता है सोभी मैंहींहूं और जिसमें हवन कियाजाता है ऐसा जोअग्नि सोभी मैंहींहूं और जो ह-वनरूपकर्म है सोभी मैंहींहूं इससे यहसूचनकिया कि क्रियाकारक फलज्ञान ये कोई मुझसे पृथक्नहीं हैं ॥ १६ ॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक् साम यजुरेव च ॥ १७ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च पितेति पिता जनयिताऽहमस्य जगतो माता जनयित्री धाता कर्मफलस्य प्राणिभ्यो विधाता पितामहः पितुः पिता वेद्यं वेदितव्यं पवित्रं पावनं ओंकारश्च ऋक् साम यजुरेव च ॥ १७ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

इतश्च भगवतः सर्वात्मकत्वमनुमन्तव्यमित्याह किञ्चेति पवित्रं पूयतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या परिशुद्धं कारणं पुण्यं कर्मेत्याह पावनमिति वेदितव्ये ब्रह्मणि वेदनसाधनमोङ्कारस्तत्र प्रमाणमृगादि च चकारादथर्वाङ्गिरसो गृह्यन्ते ॥ १७ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च पिताहमस्येति धाता कर्मफलविधाता वेद्यं ज्ञेयं वस्तु पवित्रं शोधकं प्रायश्चित्तात्मकं वा ओङ्कारः प्रणवः ऋगादयो वेदाश्चाहमेव स्पष्टमन्यत् ॥ १७ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जो लोकमें उत्पन्न करनेवाला पिताहै सो मैंहींहूं और जो पुत्रके उत्पन्न करनेवाली माताहै सोभी मैंहींहूं अर्थात् पुत्रके उत्पन्नक-रनेकेयोग्य मातापिता की रज और वीर्य इनकी शक्तिमेरीही विभूतिहै और प्राणियोंके अर्थकर्म फलोंके विधान करनेवाला धातानाम करकेदवहै सोभी मैंहींहूं और पिताका जोपिताहै दादा जिसको लोकमें कहते हैं सोभी मैंहींहूं

और जानिबेयोग्य परमार्थ सद्वस्तु सोमैंहूं और जो पवित्र करनेवाली वस्तु है सोमहींहूं और ओंकार जो प्रणवअक्षर सो महींहूं और ऋग्वेद और यजुर्वेद और सामवेद इसप्रकार तीनोंवेद मंहींहूं ॥ १७ ॥

गतिर्भर्त्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

किञ्च गतिरिति गतिः कर्मफलं भर्त्ता पोष्टा प्रभुः स्वामी साक्षी प्राणिनां कृताकृतस्य निवासो यस्मिन् प्राणिनो निवसन्ति शरणमार्त्तानां प्रपन्नानामार्त्तिहरः सुहृत् प्रत्युपकारानपेक्ष उपकारी प्रभव उत्पत्तिर्जगतः प्रलयः प्रलीयते यस्मिन् इति प्रलयः तथा स्थानं तिष्ठत्यस्मिन्निति निधानं निक्षेपः कालान्तरोपभोग्यःप्राणिनां बीजं प्ररोहकारणं प्ररोहधर्मिणामव्ययं यावत्संसारभावित्वादव्ययं नह्यबीजं किञ्चित् प्ररोहति नित्यञ्च प्ररोहदर्शनाद्बीजसन्ततिर्न व्येतीत्येव गम्यते ॥ १८ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

भगवतः सर्वात्मकत्वे हेत्वन्तरमाह किञ्चेति गम्यत इति प्रकृतिविलयपर्य्यन्तं कर्मफलं गतिरित्याह कर्मेति पोष्टा कर्म्मफलस्यैव प्रदाता कार्य्यकारणप्रपञ्चस्याधिष्ठानमित्याह निवास इति शीर्यते दुःखमस्मिन्निति व्युत्पत्तिमाश्रित्याह शरणमिति प्रभवत्यस्माज्जगदिति व्युत्पत्तिमादायोक्तं उत्पत्तिरिति कारणस्य कथमव्ययत्वमित्याशङ्क्याह्यावदिति कारणान्तरेणापि कार्य्यं कदाचिदुदेष्यति किंकारणेत्याशङ्क्याह नहीति माभूतर्हि संसारदशायामेव कार्य्योत्पत्तिरित्याशङ्क्याह नित्यञ्चेति कारणव्यक्तेर्नाशमङ्गीकृत्य तदन्यतमव्यक्तिशून्यत्वं पूर्वकालस्य नास्तीति सिद्धवत्कृत्य विशिनष्टि बीजेति ॥ १८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

किञ्च गतिरिति गम्यत इति गतिः फलं भर्त्ता पोषणकर्त्ता प्रभुर्नियन्ता साक्षी शुभाशुभद्रष्टा निवासो भोगस्थानं शरणं रक्षकः सुहृत् हितकर्त्ता प्रकर्षेण भवत्यनेनेति प्रभवः स्रष्टा प्रलीयतेऽनेनेति प्रलयः संहर्त्ता तिष्ठन्त्यस्मिन्निति स्थानमाधारः निधीयतेऽस्मिन्निति निधानं लयस्थानं बीजं कारणं तथाप्यव्ययमविनाशि नतु व्रीह्यादि बीजवद्विनश्वरमित्यर्थः ॥ १८ ॥

नवलभाष्य ।

और हे अर्जुन गति जो कर्म्मफल सो मैंहूं और भर्ता जो अन्नवस्त्रादि करके पालन पोषण करनेवाला सो मैंहूं और प्रभु जो स्वामी सो मैंहूं और साक्षी जो प्राणियोंके कियेहुये कर्मोंका देखनेवाला और नहीं कियेहुयेका देखनेवाला सो भी मैंहूं और निवास जो प्राणियोंके रहनेका स्थान सो मैं हूं और शरण अर्थात् शरणागत पुरुषोंके दुःखका हरनेवाला मैंहूं और बदलेके उपकारकी विनाही इच्छाकरे जो उपकारकरे उसको सुहृद कहते हैं सो भी मैंहूं प्रभव जो उत्पत्तिका कारणसोमैंहूं और प्रलय जो जिसमें लीन होय जगत् सो मैंहूं और जिसमें स्थितहोय उसको स्थान कहतेहैं सो मैंही

हूं और निधान जो निक्षेप अर्थात् जो धन इसवास्ते किसी गुप्तस्थान में रक्खाजाताहै कि किसी समयमें काले वा हमारेपुत्रादिकोंके काममें आवैगा उसधनको निधान कहते हैं सो मैंहूं अर्थात् लोकमें प्रसिद्ध जो निधान गड़ाहुआ धनकभीउसपुरुष को मिलताहै और कभीऔरका औरही लैलेताहै अथवा पृथिवीहीमें पड़ारहताहै औ मेरीप्रीतिके अर्थविश्वासकरके जिसने ब्राह्मणादिकोंमें निधानरूप करके स्थापनकियाहै सो तो कभीनष्ट नहीं होताहै अथवा कर्म्मरूप धनजिसने मेरेमेंही स्थापनकिया फलकी चाहनहीं की उसको मैंहीं खजाना रूपहोके उसको अपना स्वरूपही देताहूं अथवा धनको जैसे बड़ीप्रीतिसे आपत्ति समयमें सहायताकेलिये गुप्तरखताहै तैसे सबको त्यागके जिसने मेराही भजनकियाहै उसकीनिधि मैंहींहूं इससे ठीक ठीक मैंहीं निधानहूं यहअभिप्रायहै और हरएकवस्तुका अव्यय नाशरहित जो बीज अर्थात् उत्पत्तिका कारण जिससे अंकुरहोताहै सो मैंहीहूं अर्थात् जबतक संसारहै तबतक अनेकवस्तु उत्पन्नहुआही करतीहैं किसीके बीज का नाशनहीं होता यह लोकमें प्रसिद्धहै सो सबका बीजकारण मैंहींहौं और मेराकभी नाशनहीं इससेजबतक मेरीइच्छा तबतक अचिन्त्यशक्ति अपनी मायाशक्ति द्वाराउन पदार्थोंको प्रकटकिया करताहूं इससे हे अर्जुन सब वस्तुओंका अविनाशी बीज मैंहींहूं यहआशय है ॥ १८ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतञ्चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

शंकरभाष्यम्।

किञ्च तपामीति तपाम्यहमादित्यो भूत्वा कैश्चित् रश्मिभिस्तपामि अहं वर्षं कैश्चिद्रश्मिभिरुत्सृज्यामिरुत्सृज्य पुनर्निगृह्णामि कैश्चिद्रश्मिभिरष्टाभिर्मासैः पुनरुत्सृजामि प्रावृषि अमृतञ्चैव देवानां मृत्युश्च मर्त्यानां यत्यस्य यत् सम्बन्धितया विद्यमानं तद्विपरीतं असच्चैवाहं अर्जुन न पुनरत्यन्तमेवासद्भगवान् स्वयं कार्यकारणे वासदसती ये पूर्वोक्तैः निवृत्तिप्रकारैरेकत्व पृथक्त्वादिविज्ञानैर्यज्ञैर्मां पूजन्त उपासते ज्ञानविदस्ते यथाविज्ञानं मामेव प्राप्नुवन्ति ॥ १९ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

इतश्च सर्वात्मत्वे भगवतो न विवदितव्यमित्याह किञ्चेति आदित्याज्जायते वृष्टिरिति स्मृतिमवष्टभ्य व्याचष्टे कैश्चिदिति वर्षोत्सर्गनिग्रहावेकस्यैकस्मिन्काले विरुद्धौ इत्याशङ्क्याह अष्टभिरिति ऋतुभेदेन वर्षस्य निग्रहोत्सर्गविकर्तृत्वावविरुद्धावित्यर्थः यस्य कारणस्य सम्बन्धित्वेन यत्कार्य्यमभिव्यज्यते तदिह सदित्युच्यते कारणसम्बन्धेनानभिव्यक्तं कारणमेव अनभिव्यक्तनामरूपमसदितिव्यवह्रियन्ते तदेतदाह सदेति शून्यवादं व्युदस्यति न पुनरिति भगवतोऽत्यन्तसत्वे कार्य्यकारणकल्पना निरधिष्ठाना न तिष्ठेदित्यर्थः तर्हि यथाश्रुतं कार्यस्य सत्त्वं कारणस्य चासत्त्वमास्थेयमित्याशङ्क्य वाशब्देन निषेधति कार्य्येति तर्हि कार्य्यस्यात्यन्तिकं सत्त्वं वाचारम्भणश्रुतेर्नापीतरस्यात्यन्तिकं असत्त्वं कुतस्तु खल्वित्यादिश्रुतेरित्यर्थः उक्तैर्ज्ञानयज्ञैर्भगवदभिध्यानाभिनिविष्टबुद्धीनां किं फलमित्याशङ्क्य सद्यो वा क्रमेण वा मुक्तिरित्याह ये इति ॥ १९ ॥

स्वामिकृतटीका।

किञ्च तपाम्यहमिति आदित्यात्मना स्थित्वा ग्रीष्मकाले तपामि जगतस्तापंकरोमि वृष्टिसमये च वर्षमुत्सृजामि कदाचित्तु वर्षं निगृह्णामि आकर्षामि अमृतंजीवनं मृत्युश्च नाशः सत्तु स्थूलं दृश्यम् असच्च सूक्ष्ममदृश्यम् एतत्सर्वमहमेवेति एवं मत्वा मामेव बहुधोपासते इति पूर्वेणैवान्वयः ॥ १६ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन मैं सूर्यरूप होकरके कितनी किरणों करके तौ तपताहूं अर्थात् ग्रीष्मऋतुमें गरमी करताहूं और फिर कितनी मेघरूप किरणों करके जलकी वृष्टिकरताहूं फिर तिसके उपरांत कितनी किरणों करके आठ महीनेभर पृथिवीके जलको खींचताहूं फिर वर्षाकालमें छोड़ता भीहूं और देवताओंको अमृतरूप मैंहूं और मनुष्योंकी मृत्युरूपभी मैंहींहूं और हे अर्जुन जिसकारणके सम्बन्धसे जो कार्य प्रकटहोताहै वहसत् कहाताहै सो मैंहूं और जिसकारणके सम्बन्धमेंभी कार्यकी उत्पत्ति न दिखाईदेय उसको असत् कहतेहैं सोभी मैंहूं और असत् शब्दसे सर्वथा मिथ्यारूपका तोयहां ग्रहणनहीं हैं क्योंकि जो कदाचित् सर्वथा मिथ्यारूप भगवान्को कहाजाय तोकार्यकारण कल्पनाही निराधारहोजाय अर्थात् विनाअधिष्ठानके भ्रमभी नहीं बनसक्ताअथवासत् असत्शब्दों करकेस्थूलसूक्ष्म पदार्थोंकेग्रहणसेकार्य कारणरूप मैंहींहूं यहअर्थ यहां विवक्षितहै इसप्रकार पहिले कहेहुये जे एकत्व पृथक्त्वादि विज्ञानरूप पूजनके प्रकार अर्थात् निवृत्ति मार्गको आश्रय करके कोई मुझको एकजानके भजन करते हैं कोई न्यारा न्यारारूप जानके पूजन करतहुये भजन करते हैं इसतरह पहिले कहेहुये जे पूजनके प्रकार तिनकरके जे मेरी उपासना करते हैं ते पुरुष अपने ज्ञानके अनुसार शीघ्र वा विलंब करके मुझकोही प्राप्तहोते हैं ॥ १९ ॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्यसुरेन्द्रलोकमश्नन्तिदिव्यान्दिविदेवभोगान्॥२०॥

शङ्करभाष्यम्।

ये पुनरज्ञाः कामकामाः त्रैविद्येति त्रैविद्या ऋग्यजुः सामविदः याज्ञिकाः ये ते मां वस्वादिवेदरूपिणं इष्ट्वा सम्पूज्य यज्ञशेषं सोमपाः सोमं पिवन्तीति सोमपास्तेनैव सोमपानेन ते पूतपापाः शुद्धाकिल्बिषा यज्ञैरग्निष्टोमादिभिरिष्ट्वा पूजयित्वा स्वर्गतिं स्वर्गगमनं स्वरेवगतिः स्वर्गतिस्तां प्रार्थयन्ते याच्यन्ते ते च पुण्यं पुण्यफलमासाद्य सम्प्राप्य सुरेन्द्रलोकंशतक्रतोः स्थानं अश्नन्ति भुञ्जते दिव्यान् दिवि भवान् अप्राकृतान् देवभोगान् देवानां भोगांस्तान् ॥ २० ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

भगवद्भक्तानामपि निःकामानामेव मुक्तिरिति दर्शयितुं सकामानां पुंसां संसारमवतारयति ये पुनरिति तिस्रो विद्या अधीयन्ते विदन्तीति वा ते त्रैविद्या वेदविदस्तदाह ऋ

गिति वस्वादीत्यादिशब्देन सवसु... या रुद्राश्च गृह्यन्ते शुद्धकिल्बिषा निरस्तपा पा इति यावत् ॥ २० ॥

श्रीधरकृतटीका।

तदेवमवजानन्ति मां मूढा इत्यादि श्लोकद्वयेन चिप्रफलाशया देवतान्तरं यजन्तो मां नाद्रियन्त इत्यभक्ता दर्शिताः महात्मनस्तु मां पार्थेत्यादिना च भक्त उक्तास्तत्रै कत्वेन पृथक्त्वेन वाये परमेश्वरं न भजन्ति तेषां जन्ममृत्युप्रवाहो दुर्वार इत्याह त्रैविद्या इति द्वाभ्यां ऋग् यजुः सामलक्षणास्तिस्रो विद्या येषां ते त्रिविद्यास्त्रिविधा एव त्रैविद्याः स्वार्थेऽण् तिस्रो विद्या अधीयन्ते जानन्तीति वा त्रैविद्या वेदत्रयोक्तकर्मपराइत्यर्थः बेदत्रयविहितैर्यज्ञैर्मामिष्ट्वा ममैव रूपं देवतान्तरमित्यजानन्तोऽपि वस्तुत इन्द्रादिरूपेण मामेवेष्ट्वा संपूज्य यज्ञशेषं सोमं पिबन्तीति सोमपास्तेनैव पूतपापाः शोधितकल्मषाः सन्तः स्वर्गतिं स्वर्गं प्रति गतिं ये प्रार्थयन्ते ते पुण्यफलरूपं सुरेन्द्रलोकं स्वर्गमासाद्य प्राप्य दिवि स्वर्गे दिव्यानुत्तमान् देवानां भोगानश्नन्ति भुञ्जते ॥ २० ॥

नवलभाष्य।

जे फिरअज्ञ अर्थात् मेरे माहात्म्यको नहीं जानते औ स्वर्गादि कामनाओं करके जिनके चित्तग्रस्तहोरहे तिनको क्याहोताहै इसआकांक्षामें कहते हैं कि (त्रैविद्याइति) हेअर्जुन ऋग्यजुसाम इनतीन विद्याओंको पढ़िकेजे यज्ञकरने वालेहैं वे त्रैविद्य कहाते हैं ते त्रैविद्य याज्ञिक पुरुष वसुरुद्रादिरूप जो मैंहूं तिसका पूजनकरके यज्ञमें शेषरहा बचाहुआ जो सोमवल्लीकारस तिसका पानकियाहै जिन्होंने और तिसी सोमपान करके नष्टहुये हैं पाप जिन्होंके ते अग्निष्टोमादि यागोंकर यजन करके स्वर्गरूप गतिकी प्रार्थना करते हैं अर्थात् मांगतेहैं ते फिर अपने पुण्यका फलरूप जो इन्द्रकालोक तिसको प्राप्तहोके दिव्य अर्थात् स्वर्गमें होनेवाले जे मनुष्योंको नहींप्राप्त होसकेऐसे जे दिव्यांगना विमानादि देवताओंके भोगतिनको भोगते हैं ॥ २० ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालम् क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामालभन्ते ॥ २१ ॥

शङ्करभाष्यम्।

ते तमिति ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं विस्तीर्णं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकमिमं विशन्त्या विशन्ति एवं हि यथोक्तेन प्रकारेण त्रयीधर्मं केवलं वैदिककर्मानुप्रपन्नास्ते गतागतं गतञ्चा गतञ्च गतागतं गमनागमनं कामकामाः कामं कामयन्त इति कामकामा लभन्ते गतागतमेव नतुस्वातन्त्र्यं क्वचिल्लभन्त इत्यर्थः ॥ २१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

तर्हि स्वर्गप्राप्तेरपि भगवत्प्राप्तितुल्यतामित्याशङ्क्याह तेतमिति पुण्ये स्वर्गप्राप्तिहेता विति यावत् प्रसिद्धोऽर्थो हिशब्दः त्रयाणां होत्रादीनां वेदत्रयविहितानां धर्म्माणां समाहारस्त्रिधर्म्मं तदेव त्रैधर्म्मं तदनुप्रपन्नास्तदनुगता इति यावत् कामकामानां गमना गमन द्वारा कामि तत्फलाप्तिश्चेदिष्टमेव चेष्टितमित्याशङ्क्याह गतेति ॥ २१ ॥

स्वामिकृत[illegible]ा ।

ततश्च ते तमिति ते स्वर्गकामास्तं प्रार्थि[illegible] तं स्वर्गलोकं तत् सुखं भुक्त्वा भोगप्रापके पुण्ये क्षीणे सति मर्त्यलोकं विशन्ति पुनः[illegible]येवमेव वेदत्रयविहितं धर्ममनुगताः कामकामा भोगान् कामयमाना गतागतं यातायातंलभन्ते ॥ २१ ॥

नवलभाष्य ।

ते फिर इसप्रकार विशाल विस्तीर्ण जो स्वर्गलोक तिसको भोगकरके जबपुण्य क्षीणहोताहै तौ मनुष्य लोकमें प्रवेश करते हैं इसप्रकार त्रयीधर्म जो केवल वैदिककर्म तिसको करतेहुये जे स्वर्गादि भोगरूप कामोंकी इच्छा करनेवाले मनुष्य ते गत आगत अर्थात् आनाजाना इसीको प्राप्तहोते हैं स्वर्गसे आकरके भी फिर पूर्वसंस्कारके वशवोही वैदिकसकाम कर्म्म करते हैं जिससे स्वर्गलोककी प्राप्तिहोय इसप्रकार कर्म्माधीन उन्होंका आना जाना बनाही रहताहै कभी स्वातन्त्र्यको नहीं प्राप्तहोते हैं ॥ २१ ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

ये पुनः निःकामा सम्यग्दर्शिनः अनन्याइति अनन्या अपृथग्भूताः परंदेवं नारायणं आत्मत्वेन गताः सन्तश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः संन्यासिनः पर्युपासते तेषां परमार्थदर्शिनां नित्याभियुक्तानां सतताभियोगिनां योगक्षेमं योगोऽप्राप्तस्य प्रापणं क्षेमस्तद्रक्षणं तदुभयं वहामि प्रापयाम्यहं ज्ञानीत्वात्मेव मे मतं स च मम प्रियो यस्मात्तस्मात्ते ममात्मभूताः प्रियाश्चेति न न्वेषामपि भक्तानां योगक्षेमं वहत्येव भगवान् सत्यमेवं वहत्येव किन्त्वयं विशेषोऽन्ये ये भक्ता स्ते स्वात्मार्थं स्वयमपि योगक्षेममीहन्ते अनन्यदर्शिनस्तु नात्मार्थं योगक्षेममीहन्ते नहि ते जी[illegible]णेवात्मनो ग्रन्थिं कुर्वन्ति केवलमेव भगवच्छरणास्ते अतो भगवानेव तेषां योगक्षेमं वहतीति ॥ २२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

फलमनभिसन्धाय त्वामेवाराधयतां सम्यग्दर्शननिष्ठानामत्यन्तनिःकामानां कथं योगक्षेमं स्यादित्याशङ्क्याह ये पुनरिति तेषां योगक्षेमं वहामीत्युत्तरत्र सम्बन्धः येभ्योऽन्यो न विद्यत इति व्युत्पत्तिमाश्रित्याह अपृथगिति कार्यस्येव कारणे कर्मताकात्म्यं व्यावर्त्तयति परमिति अहमेव वासुदेवः सर्वात्मानमतोऽन्यत् किञ्चिदस्तीति ज्ञात्वा तमेव प्रत्यक्षं सदा ध्यायन्त इत्याह चिन्तयन्त इति प्राकृतान् व्यावर्त्यमुख्यानधिकारिणो निर्दिशति संन्यासिन इति पर्युपासते परितः सर्वतोऽनवच्छिन्नतया पश्यन्तीत्यर्थः नित्याभियुक्तानामित्यनवरतमादरेण ध्याने व्यापृतानामित्याह सततेति योगश्च क्षेमश्च योगक्षेमञ्च योगक्षेमं तत्रापुनरुक्तमर्थमाह योग इति किमर्थं परमार्थदर्शिनां योगक्षेमं वहामीत्याशङ्क्याह ज्ञानीत्विति अतस्तेषां योगक्षेमं वहामि इति संबन्धः सम्यग्दर्शननिष्ठानामेव योगक्षेमं वहति विशेषणममृष्यमाणः शङ्कते नन्विति अन्येषामपि भक्तानां भगवान् योगक्षेमं वहतीत्येतदङ्गीकरोति सत्यमिति तर्हि भक्तेषु ज्ञानिषु च विशेषो नास्तीति पृ

च्छति किंत्विति तत्र विशेषं प्र ‍ ‍ नाय विवृणोति अयमित्यादिना योगचे ममुद्दिश्य स्वयमीहन्ते चेष्टां कुर्वन्तीति या ‍ ‍ मविदां स्वार्थयोगच ममुद्दिश्य चेष्टाभावं स्पष्टयति नहीति ग्रन्थिरपेत्तकाणामित्य ‍ ‍ ज्ञानिनां तर्हि सर्वेज्ञानास्यत्याशङ्क्याह केवलमिति तेषां तदेकशरणत्वे फलितमाह अत इति इति शब्दो विशेषशब्देन सम्बध्यते ॥ २२ ॥

स्वामिकृतटीका।

मत् मद्भक्तास्तु मत्प्रसादेन कृतार्था भवन्तीत्याह अनन्या इति अनन्या नास्ति मद्व्यतिरेकेणान्यत् काम्यं येषां ते तथाभूता ये जना मां चिन्तयन्तः सेवन्ते तेषां तु नित्याभियुक्तानां सर्वथा मदेकनिष्ठानां योगं धनादिलाभं चेमञ्च तत्पालनं मोचंवा तैर प्रार्थितमपि अहमेव बहामि प्रापयामि ॥ २२ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन जे फिर निष्कामहैं अर्थात् जिनके मनमें इसलोक परलोककी कुछ कामनानहीं है और सम्यग्दर्शन रूपज्ञान जिनको प्राप्तहुआ है और अनन्यहैं अपृथग्भूत जे हैं अर्थात् मुझसेन्यारे भावको नहीं प्राप्तहैं मेराहीरूप होरहे हैं और मैं जो परम उत्कृष्ट देवनारायण तिसको आत्मस्वरूप करके प्राप्तहुये जे संन्यासी मनुष्य अर्थात् एकमेराही आश्रयसे इस लोक परलोकके साधनभूत कर्मादिकोंके त्याग करनेवाले एक मेराही चिन्तन करतेहुये उपासना करतेहैं मेरे शरणागत रहतेहैं इसप्रकार जेपरमार्थदर्शी नित्यनिरन्तर मेरेबिषे योगयुक्त अर्थात् चित्तवृत्तिको स्थापन करनेवालेहैं तिनमनुष्यों का जो योगक्षेम तिसको मैंहीं करताहूं अर्थात् अपनाको नहींप्राप्तहै उसकी प्राप्तिकरदेना उसको योग कहते ह और प्राप्तहुई वस्तु की जो रक्षाकरना उसको क्षेमकहते हैं तिनदोनों को मैंहीं करताहूं क्योंकि वे अनन्यभक्त अपने योगक्षेमकीभी चिन्ताको त्यागकरके मेरेही एकशरण हैं इससे मैं उनका योगक्षेम करताहूं और जो ज्ञानीहै सो मेरा [illegible]हीहै इससे मुझकोप्रियहै तिससे वेभक्तमेरे आत्मभूतहैं और प्रियहैं न कहो और भक्तोंकाभी भगवान्ही योगक्षेम करता है फिर कैसेकहा किज्ञानीभक्तका भगवान्ही योगक्षेम करतेहैं तो यहकथन सत्यहै सबहीभक्तोंका भगवान् योग क्षेमकरते हैं परन्तु इतना विशेषहै किजे ज्ञानीको छोड़के और मेरेभक्तहैं ते अपनेआत्माके अर्थ आपभी योगक्षेम करते हैं और जे भगवत्स्वरूपसे अभेदकरके अपनेआत्माको देखते हैं तेतो अपने आत्माकेलिये पृथक् योग क्षेम नहींकरते हैं क्योंकि जीवनमें और मरणमें उनको अहंकारही नहीं रहा केवल एकभगवत् शरणही हैं इससे भगवान्ही उनका योगक्षेम प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

शङ्करभाष्यम्

नन्वन्या अपि देवतास्त्वमेव चेत्तद्भक्ताश्च त्वामेव ... मेवं ये अन्यदेवता भक्ता अन्यासु देवतासु भक्ता अन्यदेवता भक्ताः सन्तो यजन्ते ... द्यास्तिक्यबुद्ध्या अन्विता अनुगतास्तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्... तद् पूर्वकं ज्ञानपूर्वकं यजन्त इत्यर्थः॥ २३॥

आनंदगिरिकृतटीका।

तत्तद्देवतात्मना परस्यैवात्मनः स्थित्यभ्युपगमाद्देवतान्तरपराणामपि भगवच्छरणत्वाविशेषात्तदेकनिष्ठत्वमकिञ्चित्करमिति मन्वानः शङ्कते नन्विति उक्तमंगीकृत्य परिहरति सत्यमित्यादिना देवतान्तरयाजिनां भगवद्याजिभ्यो विशेषमाह अविधीति तद्व्याकरोति अविधिरिति॥ २३॥

स्वामिकृतटीका।

ननु च तद्व्यतिरेकेण वस्तुतो देवतान्तरस्याभावादिन्द्रादिसेविनोऽपि त्वद्भक्ता एवेति कथं ते गतागतं लभेरंस्तत्राह येऽपीति श्रद्धयोपेताः सन्तो ये जना अन्यदेवता इन्द्रादिरूपा यजन्ते तेऽपि मामेव यजन्तीति सत्यं किन्तु अविधिपूर्वकं मोक्षप्रापकं विधिं विना यजन्ति अतस्ते पुनरावर्तन्ते॥ २३॥

नवलभाष्य।

न कहो और जे देवता हैं सोभी आपहीहो तो जे और देवताओंके भक्त हुये तेभी आपहीके भक्तहुये फिर कौनउनका अपराध है जिससे वे संसार में जन्ममरणको प्राप्तहोते हैं तिसपै भगवान् कहतेहैं कि हे अर्जुन जोतू कहताहै सो सत्य है क्योंकिजे और देवताओंके भक्त श्रद्धाकरके युक्तहुये तिन तिन देवताओंका पूजनकरते हैं तेभी मेराही पूजनकरते हैं परन्तु ते अविधिपूर्वक पूजनकरते हैं अर्थात् अज्ञान पूर्वक यजनकरते हैं॥ २३॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेवच।
नतु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्तिते॥ २४॥

शङ्करभाष्यम्।

कस्मात्तेऽविधिपूर्वकं यजन्त इत्युच्यते यस्मात् अहमिति अहंहिसर्वयज्ञानां श्रौतानां स्मार्तानाञ्च सर्वेषां यज्ञानां देवात्मत्वेन भोक्ता च प्रभुरेव च मत्स्वामिको हि यज्ञोऽधियज्ञोऽहमेवात्रेति चोक्तं तथा नतुमामभिजानन्ति तत्त्वेन यथावदतश्चाविधिपूर्वकमिष्ट्वा योगफलात् च्यवन्ति ते॥ २४॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

ननु वस्वादित्येन्द्रादिज्ञानपूर्वकमेव तद्भक्तास्तद्याजिनो भवन्तीति कथमविधिपूर्वकं तेषां यजनमिति शङ्कते कस्मादिति देवतान्तरयाजिनां यजनमविधिपूर्वकमित्यत्र हेत्वर्थत्वेनश्लोकद्वयमुत्थापयति उच्यत इति सर्वेषां द्विविधानां यज्ञानां वस्वादिदेवतात्मनाहमेव भोक्ता स्वेनान्तर्यामिरूपेण प्रभुश्चाहमेवेति प्रसिद्धमेतदिति हि शब्दः प्रभुरेव चे

त्युक्तं विवृणोति मत्स्वामिको हीति तत्र पूर्वाध्यायगतवाक्यं प्रमाणयति अधियज्ञोहमिति तथापि देवतान्तरयाजिनां यज [illegible] विधिपूर्वकमिति कुतः सिद्धं तत्राह तथा इति ममेव यज्ञेषु भोक्तृत्वे प्रभुत्वे च सति [illegible] वत् तयोर्भोक्तृप्रभोर्भावस्तत्त्वं तेन भोक्तृत्वेन प्रभुत्वे च मां यथावद्यतो न जान [illegible] अतो भोक्तृत्वादिना ममाज्ञानान्मयि अनर्पितकर्म्माणश्चावर्त्तन्ते कर्मफलादित्याह अतश्चेति ॥ २४ ॥

स्वामिकृतटीका ।

एतदेव विवृणोति अहमिति सर्वेषां यज्ञानां तत्तद्देवता रूपेणाहमेव भोक्ता प्रभुश्च स्वामी फलदाताप्यहमेवेत्यर्थः एवंभूतं मां ते तत्त्वेन यथावन्नाभिजानन्ति अतश्च्यवन्ति प्रच्यवन्ति वा पुनरावर्त्तन्ते ये तु सर्वदेवतासु मामेवान्तर्यामिणं पश्यन्तो यजन्ति ते तु नावर्त्तन्ते ॥ २४ ॥

नवलभाष्य ।

काहेसे वे अज्ञानपूर्वक यजन करते ह इसआकांक्षामें कहतेहैं कि(अहमिति) हे अर्जुन जिससे सबयज्ञोंका भोक्ता और प्रभुस्वामी अर्थात् कर्म्म फलका देनेवाला महींहूं परन्तु तत्त्वकरके अर्थात् यथावत् वे मुझको ऐसा जानतेही नहींहैं कि सबदेवोंका देवनारायणही अन्तर्यामिरूप करके कर्म्म फलका देनेवालाहै इससे वे नित्यफलरूप जो मैंहूं तिसको विना प्राप्तहुये स्वर्गसे च्युतहोते ह अर्थात् गिरपड़तेहैं मुक्तिको प्राप्त नहींहोते ॥ २४ ॥

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोपि माम् ॥ २५ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

येप्यन्यदेवता भक्तिमत्त्वेनाविधिपूर्वकं यजन्ते तेषामपि यागफलमवश्यम्भाविकं कथं यान्तीति यान्ति गच्छन्ति देवव्रता देवेषु व्रतं नियमोभक्तिश्च येषां ते देवव्रता देवान् यान्ति पितॄनाग्निष्वात्तादीन् यान्ति पितृव्रताः श्राद्धादिक्रियापराः पितृभक्ताः भूतानि [illegible] गणचतुर्भगिन्यादीनि यान्ति भूतेज्याभूतानां पूजकाः यान्ति मद्याजिनो मद्यजन [illegible] वैष्णवाः मामेव यान्तिसमानेऽप्यायासे मामेव न भजन्ते अज्ञानात्तेन ते अल्पफलभाजो [illegible] ॥ २५ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

यद्यन्यदेवताभक्ता भगवत् तत्त्वाज्ञानात् कर्म्मफलाच्च्यवन्ते तर्हि तेषां देवतायजनमकिञ्चित्करमित्याशङ्क्याह येऽपीति देवतान्तरयाजिनामनावृत्तिफलाभावेऽपि तत्तद्देवतायागानुरूपफलप्राप्तिध्रौव्यान्नतदाकिञ्चित्करमित्यर्थः देवतान्तरयाजिनामावश्यकं तत्फलमाशङ्कापूर्वकमुदाहरति कथमित्यादिना नियमो बल्युपहारप्रदक्षिणप्रह्वीभावादिरित्यर्थः देवतान्तराराधनस्यान्तवत् फलमुक्त्वा भगवदाराधनस्यानन्तफलत्वमाह यान्तीति भगवदाराधनस्यानन्तफलत्वे देवतान्तराराधनं त्यक्त्वा भगवदाराधनमेव युक्तं मायासमात्यात फलातिरेकाच्चेत्याशङ्क्याह समानेपीति अज्ञानाधीनत्वेन देवतान्तराराधनवतां फलतो न्यूनतां दर्शयति तेनेति ॥ २५ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवोपपादयति यान्तीति देवे[illegible] नियमा येषां ते अन्तवतो देवान् यान्ति अतः पुनरावर्तन्ते पितृषु व्रतं [illegible] ते पितॄन् यान्ति भूतेषु विनायकमातृगणादिषु इज्या पूजा येषां [illegible] यान्ति मां यष्टुं शीलं येषां ते मद्याजिनस्ते तुमामक्षयंपरमानन्द[illegible]

नवलभाष्य।

और जे पुरुष और देवताओंकी भक्तिकरके अविधि पूर्वक मेरायजनकरतेहैं तिनकोभी यज्ञकाफल तो अवश्य होताहीहै इस आशयसे कहते हैं कि (यान्तीति)हे अर्जुन जेदेवव्रतपुरुषहैं अर्थात् देवताओंके विषे व्रतनियम अथवा भक्ति जिनपुरुषोंकीहै तेपुरुष देवताओंको प्राप्तहोते हैं अर्थात् जबवे मरतेहैं तो तिसतिस देवताके लोकको प्राप्तहोतेहैं और जेपुरुषश्राद्धादि करके पितरोंकी भक्ति करतेहैं ते अग्निष्वात्तादि जे पितृगण तिन्होंके लोकको प्राप्तहोतेहैं और जे विनायक मातृगणादिभूत गणोंका अथवा भूतप्रेत पिशाचादिकोंकाही पूजन करतेहैं ते भूतादिकोंके लोकको प्राप्तहोते हैं इसप्रकार जोजो जिस देवताका भक्तिभाव करके जन्मपर्यन्त सेवन करताहै वह उसीको प्राप्तहोताहै ऐसेही मेरेयजन पूजन करनेकाहै स्वभाव जिन्होंका ऐसे जे वैष्णव ते मुझको प्राप्तहोते हैं इसप्रकार भजमके श्रमको समान होनेमें भी जे मन्दमति अज्ञानसे मेराभजन नहीं करतेहैं ते अल्पफलको प्राप्तहोतेहैं यह तात्पर्य्य है ॥ २५ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

शङ्करभाष्यम्।

न [illegible] मद्भक्तानामनावृत्तिलक्षणमनन्तफलमुक्तं सुखाराधनञ्चाहं कथंपत्रमिति पत्रं पुष्पं फलं त[illegible]कं योमे मह्यं भक्त्या प्रयच्छति तदहंपत्रादि भक्त्योपहृतं भक्तिपूर्वकं प्रापितं भक्त्युपहृतमश्नामि गृह्णामि प्रयतात्मनः शुद्धबुद्धेः ॥ २६ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

अनन्तफलत्वाद्भगवदाराधनमेव कर्त्तव्यमित्युक्तं सुकरत्वाच्च तथेत्याह न केवलमिति भगवदाराधनस्य सुकरत्वमेव प्रश्नपूर्वकं प्रपञ्चयति कथमित्यादिना यद्वि पुष्पादिकं भक्तिपूर्वकं मदर्थमर्पितं तेनायं शुद्धचेताः तपस्वी मामाराधयतीत्याह अवधारयामीत्याह पत्रमित्यादिना ॥ २६ ॥

स्वामिकृतटीका।

तदेवं स्वभक्तानामक्षयफलमुक्त्वा अनायासत्वञ्च स्वभक्तेर्दर्शयति पत्रमिति पत्रपुष्पादिमात्रमपि मह्यं भक्त्या यः प्रयच्छति तस्य प्रयतात्मनः शुद्धचित्तस्य निष्कामभक्तस्य तत् पत्रपुष्पादिकं भक्त्या तेनोपहृतं समर्पितमहमश्नामि प्रीत्यागृह्णामि नहि

महाविभूतिपते: परमे... ...वतानामिव बहुवित्तताध्यायागादिभि: परितोष: स्यात् किन्चभ... ...समर्पितं यत् किञ्चित् पत्रादिमात्रमपि तदनुग्रहार्थमेवाश्नामीति ...

...ष्य ।

अब हे अर्जुन मेरेभक्तोंको मोक्षरूप अनन्त फलहीहोय सो नहीं है किंतु और देवताओंके आराधनसे मेरा आराधन सहजभी है अर्थात् सुखपूर्वक होसक्ताहै इसआशयसे कहते हैं कि (पत्रमिति) हे अर्जुन जो पुरुष मेरेअर्थ पत्र औ पुष्प और फल और जल इनवस्तुओंको भी भक्ति पूर्वकदेताहै अर्थात् निवेदन करताहै और पत्र आदिचारों वस्तुओंमें भी जो वस्तुभक्ति करके मेरेसमीप प्राप्त करीगई है तिसशुद्ध चित्तभक्तकी वस्तुको मैं भोजन करताहूं अर्थात् ग्रहण कहताहूं (तो अबयहां पत्रं पुष्पम् इसएक वचनसे यह सूचितकिया कि एकभी पत्रपुष्प भक्ति करके निवेदनकिया मेरी प्रसन्नताकाहेतुहै और भक्त्याप्रयतात्मनः) इसके कहनेसे यह सूचितहोताहै कि प्रेमयुक्त एकाग्रचित्तसे निवेदन कियाहुआही पदार्थ मुझको प्राप्तहोताहै क्योंकि बुद्धिसे परे जोनारायण तिसकी शुद्धबुद्धिद्वाराही प्राप्ति संभवहोतीहै इससिभक्तिरहित अभिमानी दुर्योधनके बड़े समृद्धियुक्त पदार्थोंको त्याग के विदुरकेअन्नको भगवान्ने स्वीकारकिया ॥ ॥ २६ ॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७॥

शङ्करभाष्यम् ।

यत एवमतः यत् करोषीति यत् करोषि यदाचरसि शास्त्रीयं कर्म स्वतः प्राप्तं यदश्नासि यत् खादसि यद् जुहोषि हवनं निर्वर्त्तयसि श्रौतं स्मार्त्तंवा यत् ददासि प्रयच्छसि ब्राह्मणादिभ्यो हिरण्मयपात्ररत्नादि यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणं मत्समर्पणं ॥ २७

आनन्दगिरिकृतटीका ।

तदाराधनस्य सुकरत्वे तदेवावश्यकमित्याह यतइति स्वतः शास्त्राद्दृतेः प्राप्तं गमनादीतियावत् यदश्नासि यं किञ्चिद्भोगं भुंक्ते हवनस्य स्वतस्त्वं वारयति श्रौतमिति मत्समर्पणं तत् सर्वं मह्यं समर्पयेत्यर्थः ॥ २७ ॥

स्वामिकृतटीका ।

न च फलपुष्पादिकमपि यज्ञार्थं पशुसोमादिद्रव्यवन्मदर्थमेवोद्यमैरापाद्य समर्पणीयं किन्तर्हि यत्करोषीति स्वभावतः शास्त्रतो वा यत्किञ्चित् कर्मकरोषि तथा यदश्नासि यज्जुहोषि यद्ददासि यच्च तपस्यसि तपः करोषि तत् सर्वं मय्यर्पितं यथा भवति एवं कुरुष्व ॥ २७॥

नवलभाष्य ।

हे अर्जुन जिससे मेरी प्रसन्नतामें केवल सबसे अधिक शुद्ध भक्तिहीहेत

है कुछ बाहरके दिखानेका आडंबर नहींकारणहै इससे जो कुछ तू स्वभाव
से शास्त्रोक्त कर्म्म करताहै और जो अनाय   प्राप्त अन्नादि भोजन कर-
ताहै और जो कुछ वेदोक्त वा धर्म्मशास्त्रो   ग्निमें हवन करताहै और
जो कुछ ब्राह्मणादिकोंके अर्थ सुवर्णपात्र औ रत्नादिकोंका दानदेताहै और
जो कुछ तपकरताहै तिनसबोंको मेरेअर्पणकर अर्थात् उनसब कर्मफलोंके
प्राप्तिकी इच्छाको त्यागकरके केवलमेरी प्रीतिकेही अर्थ कर्मोंकोकर ॥२७॥

शुभाऽशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपष्यासि ॥ २८ ॥

शंकरभाष्यम् ।

एवं कुर्वंस्तव यद्भवति तच्छृणु शुभेति शुभाशुभफलैरेवं शुभाशुभे इष्टानिष्टफले येषां तानि शुभाशुभफलानि कर्माणि तैः शुभाशुभफलैः कर्मबन्धनैरेवं मत्समर्पणं कुर्वन् मोक्ष्यसे सोऽयं संन्यासयोगोनाम संन्यासश्चासौ मत्सर्पणतया कर्मकर्त्तृत्वाद्योगश्चासाविति तेन संन्यासयोगेन युक्तआत्मान्तःकरणं यस्य तव स त्वं संन्यासयोगयुक्तात्मा सन् विमुक्तः कर्मबन्धनैर्जीवन्नेव पतिते चास्मिन् शरीरे मामुपेष्यस्यागमिष्यसि ॥ २८ ॥

आनंदगिरिकृतटीका ।

किमतोभवति तदाह एवमिति भगवदर्पणबुद्ध्या सर्वकर्म कुर्वतो जीवन्मुक्तस्य प्रारब्धकर्मावसाने विदेहकैवल्यमावश्यकमित्याह शुभेत्यादिना भगवदर्पणकारणान्मुक्तिः संन्यासयोगाच्चेति साधनद्वयशङ्कां शातयति सोयमिति ॥ २८ ॥

स्वामिकृतटीका ।

एवञ्च यत्फलं प्राप्स्यसि तच्छृणु इत्याहशुभाशुभेति एवं कुर्वन् कर्मबन्धनैः कर्मनिमित्तैरिष्टानिष्टफलैर्मुक्तो भविष्यसि कर्मणां मयि समर्पितत्वेन तव तत् फलसम्बन्धानुपपत्तेरतश्च विमुक्तः सन् संन्यासयोगयुक्तात्मा संन्यासः कर्मवदर्पणं सएव योगस्तेन युक्त [illegible] तथाभूतस्त्वं मां प्राप्स्यसीत्यर्थः ॥ २८ ॥

नवलभाष्य ।

इसरीतिसे कर्मकरनेसे जोकुछहोताहै तिसकोसुन इसआशयसे भगवान् कहते हैं कि (शुभेति) हे अर्जुन इसप्रकार मेरेअर्थ कर्मको समर्पण करता हुआ जोतूसो शुभ और अशुभ अर्थात् अपनाको इष्ट और अनिष्ट हैं फल जिन्होंके ऐसेजे कर्मबन्धन तिन्होंसे छूटजायगा फिर मेरेअर्थ समर्पणकीबुद्धिसेकियाजो कर्मयोग तिसको संन्यासयोग कहतेहैं तिसकरकेयुक्तहै अन्तःकरण जिसका ऐसाहुआ तूजीवतेही कर्मबन्धनोंसे विमुक्तहोके शरीरपातके अनन्तर मुझको प्राप्तहोगा ॥ २८ ॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तुमां भक्त्या मयिते तेषु चाप्यहम् ॥ २९ ॥

...म्।

रागद्वेषवान् तर्हि भगवान् यतो भ... नेतराणीति तन्न समोहमिति समः तुल्योहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ... दूरस्थानां यथाग्निः शीतं नापनयति समीप मुपसर्पतामपनयाति तथाऽहं ... नेतरान् ये भजन्ति तु मामीश्वरं भक्त्या मयि ते स्वभावत एव न मम रागनिमित्तं मयि वर्त्तन्ते तेषु चाप्यहं स्वभावत एववर्त्ते नेतरेषु नैतावता तेषु द्वेषो मम ॥ २६ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

भगवतो रागद्वेषवत्वेनानीश्वरत्वमाशङ्क्य परिहरति रागेत्यादिना तर्हि भगवद्भजन मकिंचित्करमित्याशङ्क्याह अग्निवदिति तत् प्रपञ्चयति यथेति भक्तानभक्तांश्चानुगृह्णतोऽननुगृह्णतश्च भगवतो न कथं रागादिमत्वमित्याशङ्क्याह ये भजन्तीति ये त्रिवर्णा श्रमादिधर्म्मा मां भजन्ति ते तेनैव भजनेनाचिन्त्यमाहात्म्येन परिशुद्धबुद्धयो मयि मत्स मीपे वर्त्तन्ते मदभिव्यक्तियोग्यचिंता भवन्ति तुशब्दोऽस्य विशेषस्य द्योतनार्थः तेषु च समी पेसमत्वं तेषामहमपि स्वभावतो वर्तमानस्तदनुग्रहपरो भवामि यथा व्यापकमपि सावित्रं तेजः स्वच्छे दर्पणादौ प्रतिफलति तथा परमेश्वरोऽवर्जनीयतया भक्तिनिरस्तसमस्तकलु षसत्त्वेषु पुरुषेषु सन्निधत्ते दैवीं प्रकृतिमाश्रिता न भजन्तीत्युक्तत्वादित्यर्थः ॥ २६ ॥

स्वामिकृतटीका।

यदि तु भक्तेभ्य एव मोक्षं ददासि नभक्तेभ्यस्तर्हि तवापि किं रागद्वेषादिकृतं वैषम्य मस्ति नेत्याह समोहमिति सर्वेषु भूतेष्वहं समः अतोमम प्रियश्च द्वेष्यश्च नास्त्येव एवं सत्यपि ये मां भजन्ति तेभक्त्या मयि वर्त्तन्ते अहमपि तेष्वनुग्राहकतया वर्त्ते अयं भावः यथाग्नेः स्वसेवकेष्वेव तमः शीतादि दुःखमपाकुर्वतोऽपि न वैषम्यं यथा वा कल्पवृक्ष स्य तथैव भक्तपक्षपातिनोऽपि मम वैषम्यं नास्त्येव किन्तु मद्भक्तेरेवायं महिमेति॥२६॥

नवलभाष्य।

तोक्या भगवान्भी रागद्वेषयुक्त हैं जो भक्तोंके ऊपरतो अनुग्रह करते हैं औरोंकोनहीं तिसआशंकाको दूरकरतेहुये भगवान् कहते हैंकि(समो... ...) हे अर्जुन सबप्राणियोंके बिषे मैंसमानहीहों जिससे न कोई मेराशत्रुहै और न कोईप्रिय है किन्तु अग्निकेतुल्य मैंहूं जैसे अग्निदूर स्थित जे पुरुष तिन के शीतकोनहीं दूरकरताहै और जेपुरुष अग्निके समीपआके प्राप्तहोते हैं तिन्हींकेशीतको दूरकरता है यह अग्निकास्वभावही है और अग्निकाशत्रु मित्र कोईनहीं है तैसे मैंभी भक्तोंकेऊपर अनुग्रह करताहूं औरोंके ऊपरनहीं इससे हे अर्जुन जे पुरुष मैं जो ईश्वर तिसको भक्तिकरके भजते हैं ते स्व भावहीसे मेरेबिषे रहते हैं कुछ मेराउनमें रागहोय तिसनिमित्तसेनहीं और तिनभक्तोंमें मैंभी स्वभावहीसेरहताहूं और अभक्तोंमें नहींरहताहूं कुछइतने से मेरा किसीसे द्वेषहोय सो नहीं है अर्थात् परमेश्वर सर्वव्यापक होनेसे सबमें रहताहै तोभी अनन्य भक्तोंकी चित्तवृत्ति सबकालमें परमेश्वरही में रहतीहै इससे वे परमेश्वरहीमें रहते हैं तो परमेश्वरभी अपने अनन्तकल्या ण गुणोंकरके उनके हृदयमें प्रकाशकरताहै इसहेतुसे भगवान्ने कहाकि मैं

भीअग्निवत् उनके समीपही रहताहूं और विमुख मनुष्योंको तो भावनाके नहींहोनेसे अति निकटवर्तीभी परमेश्वर कोशों दूरकीतरह होरहा है इससे कहा अभक्तों में मैं नहींरहता ॥ २

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३० ॥

शङ्करभाष्यम् ।

शृणु मद्भक्तेर्माहात्म्यं अपिचेदिति अपि चेत् यद्यपि सुष्टु दुराचारः सुदुराचारोऽतीव कुत्सिताचारोऽपि भजते माम् अनन्यभाक् नान्यभक्तिः सन् साधुरेव सम्यग्वृत्त एव स मन्तव्यः ज्ञातव्यः सम्यग् यथावत् व्यवसितो हि यस्मात् साधुनिश्चयः सः ॥ ३० ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

प्रकृतां भगवद्भक्तिं स्तुवन् पापीयसामपि तत्राधिकारोऽस्तीति सूचयति शृणु इति सम्यग्वृत्त एव भगवद्भक्तो ज्ञातव्य इत्यत्र हेतुमाह सम्यगिति ॥ ३० ॥

स्वामिकृतटीका ।

अपि च मद्भक्तेरेवायमवितर्क्यः प्रभाव इति दर्शयन्नाह अपिचेदिति अत्यन्त दुराचारोऽपि यद्यप्यपृथक् तेन पृथक् देवतापि वासुदेव एवेति बुद्ध्या देवतान्तरभक्तिमकुर्वन् मामेव परमेश्वरं भजते तर्हि साधुः श्रेष्ठ एव स मन्तव्यः यतोऽसौ सम्यग्व्यवसितः शोभनमध्यवसायं कृतवान् ॥ ३० ॥

नवलभाष्य ।

अबतू मेरीभक्तिके माहात्म्यको श्रवणकर कि हे अर्जुन प्रथमदुराचार अतिनिन्दित आचारभी मनुष्यहोय और फिर अनन्य भक्तिहोके अर्थात् नहीं है और विषयादिकों में प्रीतिजिसकी ऐसाहो के जो मेराभजन करता है तो साधुही अर्थात् अच्छे आचारवालाही वह है ऐसामानना चाहिये क्योंकि जिससे उसने अच्छा निश्चयकिया है जो सबखोटे कामोंका त्याग करके भगवद्भजनमें प्रवृत्तहुआ ॥ ३० ॥

क्षिप्रं भवति धर्म्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

शङ्करभाष्यम् ।

उत्सृज्य च बाह्यां दुराचारतामन्तः सम्यग् व्यवसायसामर्थ्यात् क्षिप्रमिति क्षिप्रं शीघ्रं भवति धर्मात्मा धर्मचित्त एव शश्वत् नित्यं शान्तिञ्चोपशमं निगच्छति प्राप्नोति शृणु परमार्थं कौन्तेय प्रतिजानीहि निश्चितां प्रतिज्ञां कुरु न मे मम भक्तः मयि समर्पितान्तरात्मा मद्भक्तो न प्रणश्यतीति ॥ ३१ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका ।

हेत्वर्थमेव प्रपंचयति उत्सृज्येति भगवन्तं भजमानस्य कथं दुराचारता परित्यक्त्वा भवतीत्याशंक्याह क्षिप्रमिति सति दुराचारे कथं धर्म्मचित्तत्वं तदाह शश्वदिति उपश

मो दुराचारादुपरमः किमिति तद्भक्तस्य दुराचारादुपरतिरुच्यते दुराचारोपहतचेतस्तया किमित्यता न नंक्ष्यतीत्याश क्षिप्रंभवति ॥ ३१ ॥

.मिकृतटीका।

ननु कथं समीचीनाध्यवस... साधुर्मन्तव्यस्तत्राह क्षिप्रमिति सुदुराचारोऽपि मां भजन् शीघ्रं धर्मचित्तो भवति ततश्च शश्वच्छान्तिं चित्तोपप्लवोपरमरूपां परमेश्वरनिष्ठां नितरां गच्छति प्राप्नोति कुतर्ककर्कशवादिनो नैतन्मन्येरन्निति शङ्काकुलमर्जुनं प्रोत्साहयति हे कौन्तेय पटहादि महाघोषपूर्वकं विवदमानानां सभां गत्वा बाहुमुत्क्षिप्य निःशङ्कं प्रतिजानीहि प्रतिज्ञां कुरु कथं मे परमेश्वरस्य भक्तः सुदुराचारोऽपि न प्रणश्यति अपि तु कृतार्थ एव भवतीति ततश्च ते तत्प्रौढिविजृम्भात् विध्वंसितकुतर्काः सन्तो निःसंशयं त्वामेव गुरुत्वेनाश्रयेरन् ॥ ३१ ॥

नवलभाष्य।

और हे अर्जुन फिरवह बाहरका जो दुराचार तिसको त्यागकरके भीतर-अन्तःकरणके अच्छे निश्चयकी सामर्थ्यसे शीघ्रही धर्मात्मा होजाताहै और फिरजब धर्ममें चित्तहुआ तो नित्यही शान्तिको प्राप्तहोता है अर्थात् मनके बशकरने से निरन्तर सुखको प्राप्तहोता है और अब परमार्थ को सुन किहे अर्जुन तू निश्चित यह प्रतिज्ञाकर किमें जो परमेश्वर तिसमें समर्पितकियाहै चित्त जिसने ऐसा जो मेराभक्त सो कभी नाशको प्राप्तनहीं होता अब यहां अर्जुनसे प्रतिज्ञाकरानेका भगवान्का आशय यहहै कि मेरेभक्तकी प्रतिज्ञा कभी दूरनहीं होती है ॥ ३१ ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथाशूद्रास्तेपि यान्ति परांगतिम्॥३२॥

शङ्करभाष्यम्।

किञ्च मां हीति मां हि यस्मात् पार्थ व्यपाश्रित्य ममाश्रिसाश्रयत्वेन गृहीत्वा येऽपि स्युर्भवेयुः पापयोनयः पापानि योनिः येषां ते पापजन्मानः के त इत्याह स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा स्तेऽपि यान्ति गच्छन्ति परां गतिं प्रकृष्टां गतिम् ॥ ३२ ॥

आनन्दगिरिकृतटीका।

इतश्च भगवद्भक्तिर्विधातव्येत्याह किञ्चेति न मे भक्तः प्रणश्यतीत्यत्र हेतुमाचक्षाणो भक्त्याधिकारे जातिनियमो नास्तीत्याह मां हीति ॥ ३२ ॥

स्वामिकृतटीका।

स्वाचारभ्रष्टं मद्भक्तिः पवित्री करोतीति किमत्र चित्रं यतो मद्भक्तिर्दुष्कुलानप्यनधिकारिणोऽपि संसारान्मोचयतीत्याह मां हीति येऽपि पापयोनयः स्युर्निकृष्टजन्मानोऽन्त्यजादयो भवेयुः येऽपि वैश्याः केवलं कृष्यादिनिरताः अतः स्त्रियः शूद्राश्चाप्यध्ययनादिरहितास्तेऽपि मां व्यपाश्रित्य संसेव्य परां गतिं यान्ति हि निश्चितम् ॥ ३२ ॥

[illegible]

और हे+अर्जुन मेरा [illegible] करके पाप [illegible] नि जन्म जिन्होंका ऐसे जे क्षत्री और वैश्य और शूद्र येभी [illegible] होते हैं ॥ ३२ ॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३ ॥

शङ्करभाष्यम्।

किं पुनरिति किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्याः पुण्ययोनयः भक्ता राजर्षयस्तथा राजानश्च ते ऋषयश्चेति राजर्षयः यत एवमतोऽनित्यं क्षणभंगुरमसुखं च सुखवर्जितं मनुष्यलोकं प्राप्य पुरुषार्थ साधनं दुर्लभं मनुष्यत्वं लब्ध्वा भजस्व सेवस्व माम् ॥ ३३ ॥

आनंदगिरिकृतटीका।

यदि पापयोनिः पापाचारश्च त्वद्भक्त्या परां गतिं गच्छति तर्हि किमुत जातिनिमित्तेन संन्यासादिना किंवा सद्वृत्तेनेत्याशङ्क्याहकिं पुनरिति उत्तमजातिमतां ब्राह्मणादीनामतिशयेन परा गतिर्यतो लभ्यते अतो भगवद्भजनं तैः एकान्तेन विधातव्यमित्याह यत इति मनुष्यदेहातिरिक्तेषु पश्वादिदेहेषु भगवद्भजनयोग्यताभावात् प्राप्ते मनुष्यत्वे तद्भजने प्रयतितव्यं इत्याह दुर्लभमिति ॥ ३३ ॥

स्वामिकृतटीका।

यदेवं तदा सत्कुलाः सदाचाराश्च मद्भक्ताः परां गतिं यान्तीति किं वक्तव्यमित्याह किं पुनरिति पुण्याः सुकृतिनो ब्राह्मणाः तथा राजानश्च ते ऋषयश्चेति एवंभूताश्च परांगतिं यान्तीति किं वक्तव्यमित्यर्थः अतस्त्वं इमं राजर्षिरूपं देहं प्राप्य लब्ध्वामां भज स्वकिञ्च अनित्यमध्रुवं असुखं सुखरहितञ्चेमं मर्त्यलोकं प्राप्यअनित्यत्वाद्विलम्बमकुर्वन् असुखत्वाच्च सुखार्थमुद्यमं हित्वा मामेव भजस्वेत्यर्थः ॥ ३३ ॥

नवलभाष्य।

+[illegible] श्लोक ३२ पं० १ ॥ और पुण्यजन्मा जे ब्राह्मण अर्थात् पुण्य से है जन्म जिन्होंका अथवा पुण्यरूपहीहै जन्मजिन्होंका ऐसे जे ब्राह्मण और भक्त राजर्षि अर्थात् राजाहीहुये ऋषिते परमगतिको प्राप्तहोयं इसमें कहनाहीक्याहै अब यहां भाष्यकारने स्त्री और वैश्यजातिके मनुष्य और शूद्र जातिके मनुष्योंकी पापयोनियोंमें गणनाकरी तिसका आशययह है कि शास्त्रमें [illegible] स्त्री जातिमात्रके अनृत १ और साहस २ औरमाया३ और मूर्खता ४ और विवेकका नहींहोना ५ और अपवित्रता ६ और निर्दयता ७ ये सातदोष स्वाभाविक कहे हैं इससे जे पापयोनि हैं और वैश्योंकीभी सत्यानृतवृत्ति अर्थात् सत्यझूठ मिलीहुई आजीविका और हिंसाप्रधान कृषिवृत्तिभी शास्त्रमेंकही है इससे येभी पापयोनि हुये और शूद्र कोतो शोचकरने से और वेदादिशास्त्रके अनधिकारसे अर्थात् अधिकार के नहींहोने से पापयोनिता है और श्रीधर स्वामीजीने तो इसश्लोक के टीका में यद्यपि पापयोनि शब्दसे चाण्डालादि अन्त्यज जातिको जुदाकरके

कहा तोभी कृषिआदि कर्म [illegible] कहा तिससे स्त्रीआदि कोभी किसीतरह पापयोनि [illegible] कथनकिया अर्थात् ऐसे पापयोनि प्राणीभी भगवान [illegible] करने से शुद्धता को प्राप्तहोके परमगतिको प्राप्तहोते हैं तो फिर पुण्ययोनि ब्राह्मण औ क्षत्रिय ये भगवद्भक्ति से परमगति को प्राप्तहोयँ इसका क्या कहनाहै इसअर्थमें भाष्यकार और श्रीधरस्वामी इन दोनों की सम्मति जानीजाती है और आनन्दगिरिजीने तो इसविषयमें कुछ कहाही नहीं ॥ परन्तु यहां भगवान्के कथनमें औरभीअर्थ प्रतीत होताहै तिसप्रकार को कहते हैं कि (मांहिपार्थ)यहांसेलेके दोश्लोकोंका अर्थ तीनकोटि करिकै होता है अथवा दोकोटि करकेभी होता है अर्थात् तीनभागसे वा दोभागसे अर्थहोता है तहां तीनिकोटिमेंतो ऐसाअर्थहै कि हे अर्जुन जे कोई पापयोनिभी अर्थात् शूद्रोंसे भी गयेहुये पापजाति अर्थात् अन्त्यज शवर निषाद चाण्डाल म्लेच्छजातिकेभी प्राणी और तिन से भी अधिक तिर्यक्योनि वानरगृद्धादि पापयोनि प्राणी तेभीमेरा आश्रय करके अर्थात् तू मेरीभक्तिकरके परमपवित्रहोके परमगतिको प्राप्तहोतेहैं यह प्रथम कोटीहुई और तैसेही स्त्री और वैश्य और शूद्र ये मध्यम कोटिके प्राणी हैं अर्थात् नतो ये केवल पापयोनी हैं और न केवल पुण्ययोनी हैं किंतु पुण्यपाप मिश्रित योनिकेप्राणी हैं तेभी मेरीभक्तिकरके धर्मात्माहोके अर्थात् पुण्ययोनियों सेभी उत्तमहोके परमगतिको प्राप्तहोते हैं तोफिर तीसरी उत्तमकोटि के पुण्ययोनिजे ब्राह्मण अर्थात् जे सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुये शमदमादिक धर्मपरायण और अपने राजसस्वभाव को त्यागके मेरेभक्त जे अम्बरीष भीष्मादि और तेरेसरीखे राजर्षि ते मेरी भक्तिकरके परमगति को प्राप्तहोयँ यहकहनाही क्याहै ॥ और जबदोकोटिका अर्थहै अर्थात् जब दोभाग करके अर्थ होता है तो उसकी यहरीति है कि पापयोनियों की कोटि [illegible] पहिलेकीतरह जानना और स्त्रियो वैश्यास्तथाशूद्रा) इसका सम्बन्ध [illegible] के श्लोक में है अर्थात् इसपक्षमें मध्यमकोटितो हैहीनहीं एक पापयोनियों की कोटिहै एक पुण्ययोनियों की तो फिर स्त्री और वैश्य और शूद्र इनकी गणनाभी पुण्ययोनियों मेंही यहां भगवान् को विवक्षित है अर्थात् कहनेको अभीष्ट है क्योंकि शवरी गृद्ध निषादादि अपने भक्तोंके [illegible] लिये पापयोनियों की एककोटी तो भगवान् को स्त्री शूद्रादिकोंसेभी न्यारी कहनाही पड़ेगी औरजो स्त्री शूद्रादिकों मेंभी कोई पापयोनि समझाजावेगा तो उसकी गणना उसीकोटी में की जावेगी जोकि पापयोनियों की कोटी है और सब स्त्री वैश्य शूद्र पापयोनिही होयँ इसमें कुछप्रमाणनहीं देखते क्योंकि जब स्त्रियोंके विना ब्राह्मणादि पुण्ययोनि कोई यज्ञको करनहीं सक्तेहैं क्योंकि वेदमें स्त्रीपुरुषकोसंग संग यज्ञकरनेका अधिकारहै तबब्राह्मणादि कुलकी उत्तमास्त्रियां पापयोनि कैसेहोसक्ती हैं औरअतिथि शुश्रूषादि गृहस्थधर्मभी स्त्रियोंकेविना यथावत् नहींहोसक्ताहै और पतिव्रता स्त्रियोंमें ऐसा उत्तमधर्म

है जिससे देवता लोगोंकोभी भयहोता है सो पतिव्रता स्त्रियोंका माहात्म्य भारतादि ग्रन्थों में प्रसिद्ध है और जो पा नृतादि स्त्रियोंके दोषकहते हैं अच्छी धर्म्मनिष्ठ स्त्रियोंको छोड़के और योंके हैं और सुरभा चुडाला गार्गी आदि स्त्रियों में ब्रह्मविद्याभी प्रसिद्ध है इससे सबस्त्री पापयोनि नहीं होसक्तीं और वैश्य लोगभी वेदाध्ययनादि धर्म्मोंके अधिकारी पापयोनि कैसे होसक्ते हैं और तुलाधार वैश्यकाधर्म्म भारतमें प्रसिद्ध है और जो वैश्य न होयँ तो धनादिकरके ब्राह्मणादिकोंके धर्म्मकीरक्षा कौनकरसक्ता है इससे यज्ञादिकों में धनकी सम्पत्ति बढ़ानेकेलिये और गो ब्राह्मणोंकी रक्षाकेलिये ही परमेश्वरने वैश्यको उत्पन्न किया है यहबात यजुर्वेदके शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट है सो वैश्य पापयोनिमें कैसे होसक्ता है और जे वैश्य धनादिका संग्रह करके धर्म्म में व्ययनहीं करते हैं और ब्रह्मद्रोही हैं और अतिकृपणतासे कुटुम्बियों कोभी दुःखदेते हैं तिनको पापयोनित्वही है ऐसाकहाजाय तौ ब्राह्मणको भी अपने धर्म्मके त्यागमें और द्यूत मद्य पानादिकोंके सेवनमें पापयोनित्व कहनेपड़ैगा इससे हीनजातिही भगवान्को पापयोनि इष्ट है और भक्तहोनेके अनन्तर पाप कर्म्म तौ सम्भवही नहींहोता इससे इसप्रकरणमें पाप कर्म्मका ग्रहण नहीं है ऐसेही शूद्रकोभी शुश्रूषा धर्म्मयुक्त होनेसे पापयोनि नहीं कहिसक्ते जिसके धर्म्मसे भगवान्शीघ्र प्रसन्नहोते हैं तिससे इसका अर्थ यह सिद्धहुवा कि हे अर्जुन जे कोई पापयोनि हैं तेभी मेरीभक्तिसे परमगतिको प्राप्तहोते हैं जे पुण्ययोनि ब्राह्मण और क्षत्रिय और वैश्य और धर्म्मनिष्ठ स्त्री और शुश्रूषा धर्म्मपरायण शूद्र ये मेरेभक्त परमपदको प्राप्त होंय तौ कहनाही क्या है और जो तो मनभावनी भाषा टीका में जगन्नाथ शुक्लने वैश्या शब्दकरके वेश्या स्त्रियोंका ग्रहणकिया सो तौ बड़ाअसंगत है क्योंकि उनके अर्थमें वैश्योंका ग्रहणही नहींहोसक्ता और जो कदाचित् ब्राह्मणके उपलक्षणसे वैश्यका ग्रहणकरै तौ उपलक्षणसे क्षत्रियादिकोंका ग्रहण सिद्धही फिर जो भगवान्ने पृथक् राजर्षिका ग्रहणकिया सो व्यर्थ होजायगा इससे यहां उपलक्षणमें भगवान्का अभिप्राय नहीं है और फिर जगन्नाथका अर्थ सब भगवद्गीताके टीकासे विरुद्ध है क्योंकि किसी टीकामें वैश्यका अर्थ वेश्या नहींकहा है और पापयोनिही करके वेश्याका ग्रहण सिद्धथा फिर भगवान्ने वैश्य शब्दका उच्चारणकिया वोही व्यर्थहोजायगा यह सूक्ष्म बुद्धि बिचारकरै जिससे ऐसा है इससे हे अर्जुन अनित्य क्षणभंगुर अर्थात् क्षणमात्रमें नाशहोनेवाला और असुख सुख रहित जो मनुष्य लोक तिसको प्राप्तहोके मेरा भजनकर अर्थात् अनित्य भीहै परन्तु पुरुषार्थ साधनहै ऐसा दुर्लभ जो यह मनुष्य शरीर तिसको प्राप्तहोके तू मुझको भजनकर ३३॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ ३४॥

इति श्रीभगवद्गीतासु योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः॥ ९

शङ्करभाष्यम्।

कथं मन्मना इति मयि मनो यस्य तव स त्वं मन्मना भव तथा मद्भक्तो भव मद्याजी मद्य जनशीलो भवमामेव च नमस्कुरु मामेवेश्वरमेष्यसि आगमिष्यसि युक्त्वा समाधाय चित्तमेव मात्मानं मामेवमहं हि सर्वेषां भूतानाम् आत्मा परा च गतिः परमयनं तं मामेवम्भूतम् एष्य सीत्यतीतेन पदेन सम्बन्धः मत्परायणः सन्नित्यर्थः॥ ३४॥

इति शङ्करभाष्ये नवमोऽध्यायः॥ ९॥

आनंदगिरिकृतटीका।

भगवद्भक्तेरित्थम्भावं पृच्छति कथमिति ईश्वरभजने इति कर्तव्यतां दर्शयति मन्मना इति एवं भगवन्तं भजमानस्य मम किं स्यादित्याशङ्क्याह मामेवेति समाधायभगवत्ये वेति शेषः एवमात्मानमित्येतद्विवृणोति अहं हीति अहमेव परमयनं तवेति मत्परायणस्तथाभूतः मामेवात्मानमेष्यसीति सम्बन्धः तदेवं मध्यमानां ध्येयं निरूप्य नवमेनाधमानामाराध्याभिधानमुखेन निजेन पारमार्थिकेन रूपेण प्रत्युक्तेन ज्ञानं परमेश्वरस्य परमाराधनमित्यभिधता सोपाधिकं तत्पदवाच्यं निरुपाधिकञ्च तत्पदलक्ष्यं व्याख्यातं॥३४॥

इति आनन्दगिरिकृतटीकायां नवमोऽध्यायः॥ ९॥

स्वामिकृतटीका।

भजनप्रकारं दर्शयन्नुपसंहरति मन्मना इति मय्येव मनो यस्य स मन्मनास्त्वं भव तथा ममैव भक्तः सेवको भव मद्याजी मत्पूजनशीलो भव मामेव च नमस्कुरु एवमेभिः प्रकारैर्मत्परायणः सन्नात्मानं मनो मयि युक्त्वा समाधाय मामेव परमानन्दरूपमेष्यसि प्राप्स्यसि॥ निजमैश्वर्यमाश्चर्यं भक्तेश्चाद्भुतवैभवं। नवमे राजगुह्याख्ये कृपयाऽवोचदच्युतः॥ ३४॥

इति स्वामिकृतटीकायां नवमोऽध्यायः॥ ९॥

नवलभाष्य।

कैसे भजन करनाचाहिये इस आकांक्षामें कहते हैं कि (मन्मना इति) हे अर्जुन मेरेहीबिषे मनहै जिसका उसको कहते हैं मन्मना तैसा तूहो अर्थात् मेरेही में सबकाल अपने मनको धारणकर और मेराही भक्तहोउ अर्थात् मेरेही बिषे प्रीतियुक्त रहाकर और स्त्री पुत्र धनादिकोंमें प्रीति मतकर और मेराही पूजन करनेका है स्वभाव जिसका ऐसा तू होउ अर्थात् और देवताओं में भी मैं जो परमेश्वर तिसीकी दृष्टि से पूजनकर मुझसे न्यारी

देवान्तरकी दृष्टि [illegible] और सब जगत् मेरेही दृष्टिसे [illegible] करदेह दृष्टिसे नमस्कार न कर इसप्रकार सब जग[illegible] मेरेही [illegible] युक्त करके अर्थात् [illegible] करके मुझकोही देखता [illegible] और मेराही आश्रय करता हुआ फिर जो मैं सब भूतोंका [illegible] और [illegible] और सबका आधार तिनही को तू प्राप्तहोगा ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीता[illegible] ॥ ९ ॥

इति[illegible] ॥

———※———

मुन्शीनवलकिशोरके छापेखानेमें लखनऊमें छपी
नवम्बर सन् १८८० ई०

इस पुस्तक को पण्डित रामबिहारी शुक्लने शुद्धकिया ॥